



※ श्रीराधासर्वेश्वरो जयति ※

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर अनन्तानन्त श्रीविभूषित

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य

श्री राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज

अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्य पीठ, निम्बार्क तीर्थ (सलेमाबाद)

किशनगढ़, जि. अजमेर (राजस्थान) द्वारा

वि मो चि त

॥ श्रीराधासर्वेश्वरो जयति ॥

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

॥ रसिकराजराजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्याय नमः ॥

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

तिथि माघ शु. २ शनिवार

वि. सं. २०५०

दि० १२।२।९४

स्थल : श्रीजी कुंज • श्रीधाम वृन्दावन



समर्पण

परमाराध्य श्रीगुरुदेव निकुञ्जलीला प्रविष्ट

श्रीदम्पतिशरण देवाचार्य जी

महाराज के

पावन चरण कमलों में शत शत नमन करते हुए

श्रीमहावाणी के टीकाकार ताऊजी

परमरसिक भक्तप्रवर

रायसाहब रतनलाल जी बेरीवाला

की स्मृति में समर्पित

—नवलबिहारी लाल बेरीवाला

—(श्रीमती) शकुन्तला देवी

श्रीराधासर्वेश्वरो जयति

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर अनन्तानन्त श्रीविभूषित
जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री "श्रीजी" महाराज
अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)
किशनगढ़, जिला—अजमेर (राजस्थान)
का

शुभाशीर्वाद

श्रुति–तन्त्र–पुराणादि शास्त्रों में जिस श्रीयुगल रस-तत्त्व का निरूपण सूत्रात्मक रूप से "रसो वै सः" "रसं ह्येवाऽयं लब्ध्वा आनन्दी भवति" "स आत्मरति आत्मक्रीड आत्म मिथुनः" "स तत्र पर्य्येतिजक्षन् क्रीडन् रममाणः" "इतर राग विस्मारणं नृणाम्" "कुर्वन्ति हि त्वयि रतिम्"। "प्रेष्ठो भवांस्तनुभृताम्" "वितर वीर नस्तेऽधराऽमृतम्"। इत्यादि वचनों से हुआ है। उसी का प्रतिपादन श्रीसुदर्शन चक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यश्री ने अपने स्वप्रणीत "वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी" "प्रातः स्तवराज" "श्रीराधाष्टक स्तोत्र" आदि ग्रन्थों में किया है। और इसी युगल रसतत्त्व का विस्तृत विवेचन श्रीनिम्बार्काचार्य पादपीठाधीश्वर-रसिकाचार्य प्रवर श्रीश्रीभट्टदेवाचार्य जी महाराज एवं रसिक राजराजेश्वर श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी महाराज ने अपनी "श्रीमहावाणी" ग्रन्थ में किया है। श्रीनित्य निकुञ्ज बिहारी युगल किशोर श्यामा श्याम भगवान् श्रीराधाकृष्ण के नित्य नव निकुञ्ज विहार का जो अनिर्वचनीय असमोर्ध्व मञ्जुल रसमय वर्णन श्रीमहावाणी जी में हुआ है। वह अन्यत्र दुर्लभ है। पाँचों सुखों में वर्णित रस की निष्पत्ति इतनी विलक्षण चमत्कार पूर्ण है जिसको रसिक मूर्धन्य रसिक महानुभाव श्रीवृन्दावन धाम में सतत् उपासना में रत रहते हुए अपने पवित्र अन्तःकरण में धारण करते हैं और प्रतिपल उसी प्रियाप्रियतम के केलिरससुधा–सिन्धु में अवगाहन करते हैं।

"श्रीमहावाणी की रसमय ललित पदावली का सम्यक् परिबोध भी सहज सरल नहीं। जो श्रीयुगलरसवेत्ता रसिक महानुभावों की प्रपत्ति पूर्वक रसानुभूति कर सकें वे ही श्रीमहावाणी को किसी अंश में भावाभिव्यक्ति प्राप्त कर सकते हैं। भक्तप्रवर श्रीरतन लाल जी बेरीवाले विशिष्ट रसिक भक्तों में अग्रगण्य रहे हैं। आपने रसिकजनों का अनवरत सत्संग करके "श्रीमहावाणी"का गम्भीर अनुशीलन किया है। जिसके फल-स्वरूप श्रीयुगल रस पिपासुजनों के परिबोधार्थ "श्रीमहावाणी" का सरस सरल भाषानुवाद करके रस साहित्य जगत् की जो सेवा सम्पादित की है वह अनुपम है। हम से अनेकों बार आपसे श्रीवृन्दावन में भाषानुवाद प्रकाशन करने की चर्चा हुई है। किन्तु उनकी विद्यमानता में इस उत्तम भाषानुवाद व्याख्या का प्रकाशन न हो सका। अभी कुछ ही वर्ष पूर्व उनके परिकर में भक्त प्रवर श्रीनवल बिहारी लालजी बेरीवालों का निम्बग्राम में जब हमसे मिलना हुआ तब हमने ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु उन्हें विशेष निर्देश किया। उन्होंने भी तत्काल ही अपने एकवर्ष के सतत परिश्रम से इसका विधिवत् प्रकाशन करा दिया है जो अतीव महत्वपूर्ण है। श्रीयुगल रस रसिक जनों के लिए यह सरस सुन्दर भाषानुवाद के मनन पूर्वक "श्रीमहावाणी" जो का अनुशीलन परम उपादेय होगा। श्रेष्ठीवर श्रीनवल बिहारी लालजी का यह सत्प्रयास निश्चय ही नितान्तया अनुकरणीय है।

मिति मार्गशीर्षशुक्ल पूर्णिमा मङ्गलवार
वि० सं० २०५०

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अनन्त श्री पं० श्रीहरिप्रियाशरण देवाचार्य जी
महाराज के प्रशिष्य गोलोकवासी
श्रीदम्पतिशरण जी महाराज के कृपापात्र धर्मप्राण

महान्त श्रीललिताशरण जी महाराज

का

आशीर्वचन

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के अनेकानेक आचार्यों रसिक संतों एवं विद्वानों की शृंखला में बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में होने वाले संतों में पदवाक्य प्रमाण पारावारीण सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीराधाकृष्ण युगल चरणारविन्द के अनन्य उपासी आचार्य कोटि के विद्वान गोलोक वासी १००८ श्रीपरम गुरुदेव महन्त श्रीहरिप्रिया शरण देवाचार्य जी महाराज (पं० श्रीदुलारे प्रसाद जी) अध्यक्ष श्रीगोपाल मन्दिर विहारी जी का बगीचा का श्रीधाम वृन्दावन में प्रमुख स्थान है।

उनके अनेकानेक विद्वान शिष्यों में श्रीरतन लाल बेरी वाले का प्रमुख स्थान है। आप पाश्चात्य एवं पौरस्त्य भाषा के मर्मज्ञ विद्वान तथा निकुञ्ज रस के अनन्य उपासी तथा महावाणी जी के अधिकारी विद्वान थे। उनके द्वारा लिखी गई महावाणी की टीका शास्त्र सम्मत–सम्प्रदायानुकूल तथा रस शास्त्र के सिद्धान्त के अनुकूल है।

रस रहस्यमय ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये मैं हरिगुरु सेवा परायण, युगलानुरागी, धर्म प्राण श्रीनवल बिहारी बेरी वाले को बहुत बहुत धन्यवाद देता हूँ। और उनके सपरिवार मङ्गल की कामना श्रीविहारी जी महाराज से करता हूँ।

—म० ललिताशरण

॥ श्रीगोलोकविहारिणे नमः ॥

श्रीगोपालशरण देवाचार्य जी महाराज
का मंगलाशंसन

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय अनादि वैदिक सम्प्रदाय है। श्रीराधाकृष्ण युगल उपासना का भूतल पर सम्प्रदाय रूपमें प्रचारित करने वाले आप प्रथम वैष्णवाचार्य हैं। अन्य सभी कृष्णोपासक आचार्य आपके परवर्ती हैं ऐसा समस्त ऐतिहासिकों का मत है और इसमें किसी का वैमत्य नहीं। सम्प्रदाय में सखी भाव उपासना है 'सखी सहस्त्रैः परिसेवितां सदा' (निम्बार्काचार्य) सखी भाव उपासना, गोपीभाव उपासना एक ही वस्तु है इसमें तारतम्य की कल्पना अज्ञान मूलक भावना है, इसी का नाम रसोपासना है। रसरूप भगवान् की उपासना रसोपासना कहलाती है। रसरूप भगवान् वृन्दावन का भगवान् है जिसे वेद में 'रसो वै सः' कहा है-वृन्दावन रसधाम है—'रसस्थानं तु माथुरम्' अयोध्या धर्मका, श्रीरंगं मुक्तिका, द्वारका भक्तिका, तथा वृन्दावन रसका स्थान है (बृहद ब्रह्मसंहिता) रस धामका अर्थ है रसमय भगवान् का धाम किंवा रसमय धाम। यहाँ का धाम भी रसमय, धामी भी रसमय है। उस रसमय प्रभु श्यामसुन्दर की माधुर्य भावसे उपासना ही रसोपासना है यही गोपीभाव उपासना है जो सर्वातिशायी उपासना है श्रीनारद का भक्ति सूत्र हो या शाण्डिल्य का; सभी भक्ति के आचार्यों ने गोपीभाव उपासना को ही सर्वश्रेष्ठ माना है, यह उपासना वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक है सर्वशास्त्र सम्मत है।

श्रीधाम की समस्त गोपियां सखियां और सभी सखियां गोपियां हैं-गोपरूप परमात्मा की प्रियतमा होने से ये गोपियां कहलाती हैं तथा परमाह्लादिनी श्रीराधारानी की सखियां होने से ये सखियां हैं। ऐसा नहीं कि सखी अलग गोपी अलग। गोपी कृष्ण कान्ता, सखियां कृष्णकान्ता नहीं। वृन्दावन अयोध्या नहीं, जनकपुर नहीं, द्वारका नहीं। यहाँ तो सभी गोपियां श्री हैं राधा हैं और सबकी सब कृष्ण कान्ता हैं। यहाँ कान्त केवल श्रीकृष्ण हैं—श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः। ब्रह्मसंहिता। यहां एक कान्ता अनेक कान्ता। उभयविधलीला है। यहाँ सहभोग है, सापत्न्य नहीं। यहां सबकी प्राण श्रीराधा और प्रियतम श्यामसुन्दर।

यह उपासना अनादि है वैदिक है दिव्य है चिन्मय है मन वाणी की पहुंच से बाहर है। ऐसा नहीं जैसा कि आजकल कतिपय भावुक निज आचार्य को आवेश में कहते हैं कि हमारे आचार्य ने ही इसे प्रकट किया अमुक काल में ही प्रकट हुआ इससे पहले नहीं था। ऐसा कहने से सम्प्रदाय का उत्कर्ष भले हो तत्वका उत्कर्ष नहीं। तत्व का तो इस मान्यता से अपकर्ष ही होता है इसे मनीषी ही जानते हैं।

इसलिये इस उपासना का भी उपजीव्य श्रुति भगवती हो है। रसो वै सः यही रसोपासना का मूल बीज है। पुराणों में इसका विस्तार है तन्त्रों में विषद् विवेचन है फिर भी इसका जैसा रसमय, आह्लादक, निरूपण, चित्रण, गान ब्रज की वाणो साहित्य में हुआ है। कहना न होगा अन्यत्र नहीं है। ब्रजके रसिकों ने जैसे मस्ती में इसे गाया है, आनन्द लिया है इस रसका आस्वादन किया है देखते ही बनता है।

इन वाणियों में श्रीहितचौरासी, केलिमाल तथा महावाणी आदि परम प्रसिद्ध हैं। इन सब में भी यथा नाम तथा गुण के अनुसार निम्बार्क सम्प्रदाय की महावाणी रहस्य उपासना का अद्भुत तथा अनुपम रस साहित्य है। प्रातः स्मरणीय श्रीप्रियाशरण जी महाराज ब्रजरज के अनन्य उपासक तथा आजीवन युगल रस में लीन रहने वाले महान् रसिक सन्त थे। सभो सम्प्रदायों की समस्त वाणियां उनको कण्ठस्थ थीं। वाणी रस के आप प्रकाण्ड पण्डित थे। कहते हैं उनको रस कथा को सुनने हेतु पूज्य श्रीकरपात्री जी महाराज भी पधारा करते थे। जब कभी महावाणी का प्रसंग आता लोग बताते हैं बाबा गद्गद हो जाते इसकी प्रशंसा करते अघाते नहीं थे। कहा करते जो रसकी पराकाष्ठा महावाणी में वर्णित है। वह अन्यत्र दुर्लभ है। महावाणी का रस नितान्त रहस्यमय तथा सर्वसाधारण को पहुँच से बाहर है। बिना युगल कृपा तथा रसिक सन्तों के चरण रजको सेवा के बिना इसका रहस्यावगम असम्भव है। सम्प्रदाय का सौभाग्य है जो ऐसो रसनिधि सम्प्रदाय को प्राप्त है।

इसकी आजतक कोई भी अच्छी टीका प्रकाशित नहीं हुई थी। कारण इस पर कलम चलाना भी टेढ़ो खीर थी। इस पर वही कुछ लिख सकता था जिसका समग्र जोवन आराधनामय हो जिसने ब्रज रज को सेवा को हो, रसिक सन्तों का अनुगमन किया हो, रस शास्त्रका अध्ययन किया हो, वाणी साहित्य के साथ-साथ संस्कृत शास्त्रों का भी जिसका अध्ययन हो। नित्यलीलालीन रसिक शिरोमणि तथा आजोवन व्रजरज सेवी श्रीरतनलालजो बेरीवाले ऐसे हो सन्त महापुरुष थे। गृहस्थ होते हुए भी जिनका समग्र

जीवन प्रिया प्रियतम श्रीराधामाधव युगल रस माधुरी के रसास्वादन में बीता था जो आजीवन वृन्दावन के रसिकों के सङ्ग भी रहा करते थे, सम्पूर्ण महावाणी जिन्हें कण्ठस्थ थी, जो नित्य महावाणी पाठ किया करते थे, वे इसकी व्याख्या के सच्चे अधिकारी थे, उन्होंने बड़ी निष्ठा एवं तत्पर ता से इसकी हिन्दी में व्याख्या लिखी–जिसे लगभग ५० वर्ष हो चुके होंगें परन्तु आजतक यह टीका प्रकाशित नहीं हो पायी थी। इसका अपने व्यय से प्रकाशन करके श्रीनवलविहारीजी बेरी वाले ने रसिक साधकों का जो महान् उपकार किया है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

आप महान् धार्मिक, सन्त सेवी, हरिगुरु सेवा परायण तथा श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायानुयायी वैष्णव हैं। आपकी युगलनिष्ठा, व्रजनिष्ठा तथा सन्तनिष्ठा अनुकरणीय है। आपके द्वारा बेरी तथा ब्रज में अनेकानेक प्रकार के जन कल्याणकारी कार्यक्रम होते रहते हैं। बेरी में आपके द्वारा एक मन्दिर की सेवा, नन्दगांव में नन्दलाल की सेवा तथा विहारी जी में भी आपके द्वारा सेवाऐं होती रहती हैं।

मैं उनके द्वारा इस पावन रस ग्रन्थ महावाणी का टीका सहित प्रकाशन करने के संदर्भ में श्रीगुरुगोविन्द सेवा परायण श्रीनवल विहारी बेरी वाले को एवं उनके स्वनाम धन्य मातृ पितृ भक्त पुत्र यशोदानन्दन वेरीवाला को बहुत-बहुत साधुवाद देता हूँ। धन्यवाद देता हूँ उनके समस्त परिवार की शुभकामनाऐं करता हूँ। तथा अपने अलबेले श्रीगोलोक विहारी ठाकुरजी से उनके दीर्घायु तथा उनकी कृष्ण भक्ति निष्ठा के लिये अहर्निश कामना करता हूँ।



परमादरणीय

श्रीदेवेन्द्र स्वरूप जी ब्रह्मचारी

अध्यक्ष

श्रीजयराम अन्नक्षेत्र ट्रस्ट, ऋषिकेश (देहरादून)

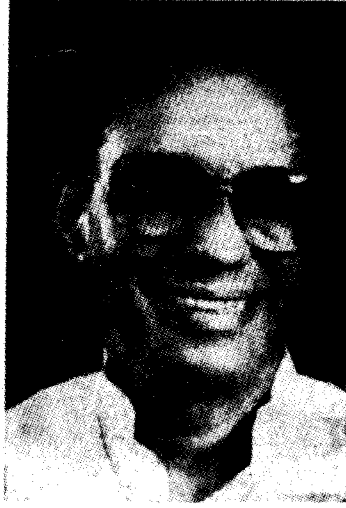
का

शुभाशीर्वचन

स्व० राय साहब श्रीरतनलालजी बेरी वाले जिन्होंने गृहस्थ छोड़ कर वृन्दावन वास किया था, उन्होंने भगवान की आराधना के लिए "श्रीमहावाणी" की व्याख्या की। जो कि भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमियों के लिए एक अनुपम संग्रह है। इनके भतीजे श्रीनवल विहारी जी ने उसका मुद्रण और प्रकाशन किया है, इसके लिए ये धन्यवाद के पात्र हैं तथा मैं इनकी भूरि-भूरि प्रशसा करता हूँ।

मुझे पूर्ण आशा है कि भगवान श्रीकृष्ण प्रेमियों के लिए यह एक अनुपम संग्रह सिद्ध होगा।

—देवेन्द्र स्वरूप ब्रह्मचारी



॥ ॐ ॥

माननीय पं. एम. आर. शर्मा 'जातुकर्ण'

अध्यक्षः अ० भा० ब्राह्मण महासभा (पंजी.) दिल्ली

का

शुभाशीष

अनन्त श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी महाराज की श्रीमहावाणी तदनुसार उसका हिंदी अनुवाद पढ़ कर प्रत्येक भक्तानुरागी श्रीराधा-माधव सर्वेश्वर भगवान के अन्तरमुखी दर्शन के रसास्वादन में सराबोर हो जाता है। निस्संदेह श्रीलाडलीलालजी का ध्यान परमतत्व को प्राप्त कराने वाला रहता है। ऐसा मन करता है कि श्रीश्यामाश्याम के चरणारविन्द में बैठ कर महावाणी के माध्यम से श्रीराधाकृष्ण का वचन चरणामृत प्राप्त किया जा रहा है। आदि शङ्कराचार्यजी ने 'विवेक चूड़ामणि' में आत्मज्ञान का महत्व दर्शाते हुए कहा है कि–

शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम्।
अतः प्रयत्नात्ज्ञातव्यं तत्वज्ञा तत्वमात्मनः॥

अर्थात् शब्दजाल तो चित को भटकानेवाला एक महान वन है, इसलिये इन्हीं तत्वज्ञानी महात्मा से प्रयत्नपूर्वक आत्मतत्व को जानना चाहिये।

निस्संदेह शब्दजाल चित्तको भटकाने वाला एक गहन वन है। परन्तु सरल, लोकभाषा में भगवन् नाम का सतत् उच्चारण और उसका स्मरण प्रभु कृपा को प्राप्त कराता है। प्रस्तुत पुस्तक महावाणी के सरल सुपाठ्य अपनी भाषा में अनुवाद प्रकाशन के लिए सदैव नन्दबाबा के चरणारविन्द में निवास करने वाले वैश्यकुलभूषण धर्ममूर्ति लाला रतनलालजी के वंशज उनके अनुज धर्ममूर्ति लाला आत्माराम जी के कनिष्ठ पुत्र धर्मानुरागी लाला नवलबिहारी गोयल द्वारा जो महान् प्रयास श्रीराधासर्वेश्वर के चरणारविन्द में अनुराग करने वाले सज्जनों के लिए प्रेरणादायक और स्तुत्य कृत्य है।

—मांगे राम शर्मा
मुख्याध्यक्ष

श्री म हा वा णी का र

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य

श्री श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी महाराज का

संक्षिप्त-जीवन चरित्र

अखिल ब्रह्माण्डनायक श्रीश्यामाश्याम अपनी अहैतुकी कृपा से सांसारिक प्राणियों के कल्याणार्थ अपने दिव्यधाम की दिव्य विभूतियों में से जिस किसी को चाहें धरातल पर अवतरित करते हैं, वे अपने प्रभु के आदेशानुसार अपना कार्य करने पुन: दिव्यधाम को लौट जाती हैं। जिस प्रकार सूर्य की रश्मियाँ सूर्य से पृथक् नहीं होतीं, सूर्यरूप हो होती हैं उसी प्रकार भगवान् की विभूतियाँ भी भगवत् स्वरूप ही हैं। ऐसीही भगवत्स्वरूप दिव्य विभूति रसिकराजराजेश्वर महावाणीकार **श्रीहरिव्यास-देवाचार्यजी महाराज थे।** यद्यपि उनकी आद्योपान्त विस्तृत जीवनी का पता लगना कठिन है। तथापि जीवनी के जो कुछ स्रोत उपलब्ध होते हैं, उन्हीं के अनुसार यहाँ महावाणीकार की संक्षिप्त जीवन घटना का कुछ उल्लेख किया जाता है।

आपके माता-पिता हांसी हिसार के निवासी थे उनके साथ आप सद्गुरु की खोज करते दैवयोग से मथुरा नारदटीला पर श्री श्रीभट्टजी महाराज के चरणों में उपस्थित होकर वैष्णवी दीक्षा ग्रहण करने के लिये प्रार्थना करने लगे। आचार्य श्री श्रीभट्टजी ने उन्हें गिरिराज की प्रतिदिन परिक्रमा करके एक वर्ष बाद लौटकर आने की आज्ञा प्रदान की। आज्ञा शिरोधार्य करके वे गोवर्धन जाकर परिक्रमा करने लगे। एक वर्ष बाद जब आये तब श्री श्रीभट्टजी महाराज ने इनसे पूछा, हमारी गोद में तुम्हें कुछ दिखाई दे रहा है क्या? हरिव्यासदेवजी ने उत्तर दिया कुछ नहीं दीखता। तब श्रीभट्टजी ने फिर परिक्रमा करते हुए एक वर्ष बाद पुन: लौटकर आने का आदेश दिया। तदनुसार जाकर एक वर्ष बाद जब श्रीहरिव्यासदेवजी लौटकर आये तो श्रीभट्टदेवाचार्य ने पुन: वही बात पूछी "हमारी गोद में तुम्हें कुछ दीखता है?" श्रीहरिव्यासदेवजी ने उत्तर दिया—हाँ, एक सुकुमार किशोर और किशोरी दोनों आपकी गोद में बैठे दीख रहे हैं। तब गुरुदेव ने इन्हें दीक्षा दी। इन्होंने वि० सं० १५२० में वाराणसी में रहते हुए नृसिंहपरिचर्या पुस्तक की प्रतिलिपि अपने हाथ से की था। गुरुदेव के परमधाम वास होने पर आप उनके पीठ पर अभिषिक्त हुए, और धर्मप्रचारार्थ तीर्थाटन करते रहे।

प्रसिद्ध है कि एक बार चटथावल और देवबन्द के बीच एकान्तस्थ उपवन में आपने अपने साथ के साधु-सन्तों सहित मुकाम किया, वहाँ देवी का एक मन्दिर था, किसी ने देवी के बकरे

की बलि चढ़ाई यह देखकर सभी साधु-सन्त वहाँ से आसन उठाकर जब चलने लगे तब, साक्षात् देवी प्रकट होकर श्रीहरिव्यासदेवजी के चरणों में गिर पड़ी, आप मुकाम न उठावें, यहाँ ही श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा की जाय, आप मुझे वैष्णवी दीक्षा प्रदान करें। ताकि फिर कभी कोई मेरे यहाँ पर प्राणियों की बलि न चढ़ावे।

ऐसा ही हुआ, श्रीहरिव्यासदेवजी ने देवी को पञ्चसंस्कार पूर्वक वैष्णवी दीक्षा दी। देवी ने सभी नागरिकों को स्वप्न में आदेश दिया अब कभी भी कोई मेरे प्राणी बलि न चढ़ावें और नगर के समस्त नर-नारी गुरुदेव श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण करें अन्यथा तुम्हारा महान् अनिष्ट होगा। इस प्रकार नगर में कोई भी अवैष्णव नहीं रहा। एक श्वपच जो बाहर से लौटकर आया तो वह पश्चात्ताप करने लगा-हाय मैं ही अभागा रह गया। तब उसे सन्तों की उच्छिष्ट प्रसादी देकर सन्तुष्ट किया। श्रीनाभा जी ने अपने भक्तमाल में इस घटना का इस प्रकार से वर्णन किया है—

खेचर नर की शिष्य निपट अचरज यह आवैं।
विदित बात संसार संत मुख कीरति गावैं॥
वैरागिन के वृन्द रहत सँग श्याम सनेही।
ज्यौं जोगेश्वर मध्य, मनौं शोभित वैदेही॥
श्रीभट्ट चरण रज परस तैं सकल सृष्टि जाकों नई।
हरिव्यास तेज हरि भजन बल देवी को दीक्षा दई॥
(भ० मा० ७७)

मिश्र बन्धुओं ने महावाणी का रचनाकाल वि० सं० १५१७ माना है। आपकी सिद्धान्त-रत्नाञ्जलि (वेदान्त कामधेनु दशश्लोकी की टीका) आदि संस्कृत रचनायें भी हैं। महावाणी हिन्दी ब्रजभाषा का गीतिकाव्य है, इसमें दार्शनिक और औपासनिक दोनों ही सिद्धान्तों का सुन्दर वर्णन है। जो साधारण हिन्दी जानने वालों के लिये भी विशेष उपयुक्त है, किन्तु उज्ज्वल (श्रृङ्गार) रस परक होने से जो इस रस के अधिकारी हों उन्हीं को महावाणी का अनुशीलन करना चाहिये, अनधिकारियों को इसके दर्शन कराने का भी स्वयं महावाणीकार ने निषेध कर दिया है।

महा मनोभव भासि भूलि जिन देहु शठहिं कोउ। (म० वा० सुरतसुख)

महावाणी का तात्पर्य अत्यन्त ही गम्भीर है, किन्तु सामान्य ज्ञानवालों को यह लौकिक काम-वासनाओं जैसा भासित होता है, अतः हर एक को देने योग्य यह नहीं है। देना हो तो "इष्ट भजन रस रीति मन मिलै ताहि मिलि देहु।" (उत्साह सुख)। नहीं तो बड़ा अनर्थ होगा।

❀

।। श्रीहरिः ।।

अनादि वैदिक सम्प्रदायानुगत पदवाक्य प्रमाण पारावारीण अनन्य युगल उपासक श्रीहरिप्रियाशरण देवाचार्य उपनाम पं० श्रीदुलारेप्रसादजी, महाराज के कृपापात्र, रसोपासना मर्मज्ञ, रसिक शिरोमणि वैश्य-कुल कमल दिवाकर श्रीमहावाणीजी के मर्मज्ञ टीकाकार

नित्यलीलालीन

स्वनाम धन्य भक्तप्रवर-लाला श्रीरतनलालजी बेरीवाला का

मङ्गलमय - इतिवृत्त

संसार में नित लाखों जीव जन्मते एवं मरते रहते हैं। आजतक न जाने कितने प्राणी इस धरती पर पैदा हुए, चले गये। अखबारों के आँकड़े बताते हैं—पिचहत्तर अरब मानव आज-तक धरतीपर पैदा हुए, जिनमें आज केवल पांच या छः अरब विद्यमान हैं। क्या यह विचाराधीन प्रश्न नहीं है, शेष कहां चले गये ? है किसी को कुछ पता ? दुनियामें सबसे बड़ा आश्चर्य यही है कि इतने पर भी हम निश्चिन्त हैं—

'अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यम मन्दिरम् ।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ।।

(महाभारत)

जो केवल भोग भोगने, बच्चा-बच्ची पैदा करने तथा कुछ चांदी के टुकड़े जमा करने के लिये ही जीते हैं और करोड़ों का माल छोड़कर पछताते हुए रोते हुए चले जाते हैं, क्या लाभ ऐसे जीने का। जीना उसका सार्थक है, नरतन उसका सफल है, इन्द्रियां उसकी धन्य हैं, जिसने मानव तन पाकर दीन-दुखियों की सेवा की। भटकती मानवता को सच्चा मार्ग दिखाया, पीड़ित मानवता का त्राण दिया, असहायको सहायता दी, भूखे को रोटी, नङ्गे को कपड़े दिये और सबसे बड़ी बात उस परम पिता परमात्मा को—जिसने सूरज चांद बनाए, जिसने तारों को चमकाया, जिसने फूलों को महकाया, जिसने हमारे लिये हवा बनाई, पानी बनाया, धरती दी, भाँति-भाँति के भोग बनाये, जिसने हमको मानव तन दिया, स्वस्थ शरीर दिया, आँखें दीं, कान दिये उस परम पिता को कभी नहीं भुलाया, तथा उस ईश्वर को शीस नवाया, उसके भजन कीर्तन में जिसका सारा जीवन बीता, वही धन्य है, उसका जीना धन्य है, उसका मरना भी मङ्गल है। नहीं तो··· मातुरुच्चार एव सः।

इसी तरह ससार में एक, से एक लेखक, एकसे एक व्याख्याता, एक से एक दार्शनिक,

एक-से एक कवि, गायक एवं नर्तक हुए हैं, हो रहे हैं। कालिदास, भारवि, भवभूति, माघ, बाण, सूर, तुलसी, मीरा, निराला, दिनकर कितने नाम गिनाएं, अगणित विद्वान् भी भूतल पर हो गए हैं। पर देवर्षि नारद के शब्दों में—

न यद् वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद् वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ।।

(श्रीमद्भागवत)

अर्थात् चाहे कितनी सुन्दर कविता क्यों न हो, रस, छन्द, अलङ्कार से भरी-पूरी क्यों न हो, यदि उस कविता में, काव्य में, साहित्य में, रचना में जगमङ्गलकारी, पतित पावन-हरिगुण-गान नहीं, प्रभु श्यामसुन्दर के असमोर्ध्व सौन्दर्य माधुर्य का उद्गार नहीं, भक्तिभाव से भरा नहीं तो वह वायसतीर्थ के समान है, जिसमें उच्छिष्ट आस्वादी पापी कौए ही मंडराते रहते हैं, मानस सरोवरमें रहने वाले हंस नहीं, उसी तरह हरिगुणगानरहित कविता के काव्य को नीर छीर त्रिवेकी हंसतुल्य सदसद् विवेकी संत काव्य देखते नहीं, पढ़ते नहीं छूते तक नहीं, परंतु यदि हरिगुण गान से संवद्ध साहित्य है, काव्य है, भले ही उसमें साहित्यिक कोई गुण नहीं हो,काव्यकी परिभाषासे सर्वथा वंचित हो, रस नहीं अलङ्कार नहीं, कुछ भी नहीं, फिर भी भागवत संत ऐसे काव्यको प्राणकी तरह संजोए रहते हैं, कण्ठहार बनाए रहते हैं सदा उसका पाठ करते हैं, चिन्तन मनन करते हैं, इस दृष्टि से देखने से स्व० श्रीरतन लालजी का जीवन धन्य था, सारा जीवन उनका प्रियाप्रियतम श्रीराधामाधव के रसमय चिन्तन में ही बीता, तत्सम्बन्धी साहित्य रचना में ही बीता।

इतना ही नहीं, वह केवल भागवत ही नहीं वैष्णव ही नहीं थे, किंतु भक्ति रसकी सर्वोच्च दशा, उपासना के सर्वोपरि सोपान पर आरूढ़ रसोपासना, माधुर्य उपासना-वृन्दावनीय उपासना के मर्मज्ञ तथा अधिकारी साधक थे, श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के अनन्य रसिक थे, प्रिया-प्रियतम युगलकिशोर के असमोर्ध्व माधुर्य के रसिक आस्वादक थे, जोकि उनके द्वारा रचित 'प्रेम उपासना' नामक लघुपुस्तिका से स्पष्ट है।

शान्त, दास्य, सख्य,वात्सल्य तथा मधुर उपासनाओं में सर्वोच्च उपासना मधुर उपासना, सखीभाव उपासना,गोपीभाव उपासना जिसकी सिद्धि-जिसका साधन जिसका अनुराग,बिना रासेश्वरी राधा की आराधना, बिना वृन्दावन की रज की उपासना, बिना इस रसके रसिकजनों की चरणवन्दनतथा मन्त्रराज(अष्टादशाक्षर गोपालमन्त्र) की भावनाके संभव नहीं, के आप मर्मज्ञ थे, अहैतुक आराधक थे, सदा सर्वदा उसी रस में डूबने रहने वाले वन्दनीय महाभाग थे।
देखिये उनकी प्रेम उपासना)

सन् १९५० में मैंने पहलीबार आपके दर्शन वृन्दावन के कुम्भमेला में किये थे। पहली बार उसी साल मैं वृन्दावन आया था, श्रीजीके कुञ्ज में ठहरा था। हमारे प्रातः स्मरणीय आबाल कृष्णभक्त युगल रसिक गुरुदेव श्रीझाजी महाराज की श्रीयुगमतत्त्व समीक्षा आदि पुस्तकें प्रेमधाम प्रेस में छप रही थीं मेला में श्रीजीमहाराज (जगद्गुरु निम्बार्काचार्य) के पंडाल में एक दिन मेरे गुरुदेव श्रीझाजी का श्रीराधा तत्त्व पर सार गर्भित प्रवचन था। श्रीगुरुजी युगल किशोर के अनन्य

उपासक थे। युगल उनके प्राण थे, युगल चिन्तन में ही उनका जीवन बीता था, वे तो जन्म-जन्मान्तर के युगल आराधक मालूम पड़ते थे। अपने दर्जनों प्रकाशित पुस्तकों में आपने श्रीराधामाधव का यशोगान किया है। युगल सम्बन्धी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान किया है, तत्सम्बन्धी कुशंकाओं का निराकरण किया है। उनके उस सारगर्भित प्रवचन के श्रोताओं में हमारे रसिक शिरोमणि महावाणी टीकाकार नित्यलीला लीन श्रद्धेय लाला रतनलालजी भी बैठे थे। उनको गुरुदेव का प्रवचन बहुत भाया बहुत प्रभावित हुए। कभी जानते नहीं पहचानते नहीं थे—पता लगाकर कुंज में आये। मुझे वैसे ही याद है—भरकर फल लाये थे, गुरुजी को प्रणाम किया। प्रवचन की बात चलाई, युगल रसकी चर्चा चल पड़ी। दोनों महापुरुष थे, दोनों समान धर्मी थे, दोनों एक निष्ठ थे, कृष्णानुरागी थे, युगल उपासक थे, रसोपासक थे, दोनों वृन्दावन के अनुरागी थे, समान धर्मा होने से दोनों का मन मिल गया। लालाजी आपके प्रवचन से बहुत प्रभावित हुए थे, तब तो रोज कुञ्ज आने लगे, महावाणी पर चर्चा होने लगी।

इससे पूर्व हमारे पूज्य गुरुदेव(पं० श्रीभगीरथजी झा) का महावाणीके प्रसङ्गमें रसिक मूर्धन्य प्रातःस्मरणीय नित्यलीलालीन बाबा श्रीप्रियाशरणजी महाराज से रस पर चर्चा हो गई थी। प्रसङ्ग ऐसा हुआ—गुरुदेव की युग्मतत्त्व समीक्षा का रस प्रकरण बिन्दुजी के प्रेस में छप रहा था। दिवंगत निम्बार्क महासभा के प्रधानमन्त्री श्रीनन्दकुमार शरणजी ब्रह्मचारी ने हमारे गुरुमहाराज से कहा—झाजी, इस प्रकरण को एकबार बाबा (श्रीप्रियाशरणजी महाराज) से दिखा लें तो अच्छा है। बाबा रसमर्मज्ञ हैं। ब्र० जी के कहने पर गुरुदेव बाबा के पास गए। पहले दिन तो बाबा ने कहा ठीक है। १० दिन बाद फिर गए तो बाबा बिगड़ पड़े। बोले—पण्डित लोग हर बात में वेद-वेद की बात करते रहते हैं। भला वेद इस रस को क्या जाने। इसी तरह की और बातें भी कह दीं। गुरु महाराज को भी आवेश आ गया, बोले—बाबा, लगता है आप ब्राह्मण नहीं है। वेदका नाम सुनते ही आपको ज्वर आगया। यह तो ठीक नहीं। बाबा, रसोपासना का मूल 'रसो वै सः' यह वेद वाक्य ही है। वहाँ से आकर गुरुजीने महावाणी मंगाई उसका सिद्धांत सुख देखा और पांच दिन में ही महावाणी पर एक पूरा अध्याय ही लिख दिया। महावाणी का शास्त्र सम्मत समर्थन किया। यह प्रसङ्ग लाला श्रीरतनलालजीको मालूम था इसके बावजूद भी लाला जी ने अपनी टीका श्रीगुरुदेव को दिखाई उन दिनों मुझे रसका कुछ भी ज्ञान नहीं था, पर मुझे खूब स्मरण है लालाजी कई दिनोंतक कुञ्ज में हमारे गुरु महाराज के पास आते रहे, महावाणी पर बहस होती, शास्त्रीय चर्चा होती। लालाजी भी अपनी टीका का शास्त्र से समर्थन चाहते थे, शास्त्रानुकूल व्याख्या के पक्षपाती थे। गुरुमहाराज ने उनकी टीका को शास्त्र सम्मत बताया। उनकी टीका को बहुत-बहुत सराहा। मुझे याद है—जब लालाजी चले जाते गुरुजी बोलते रतनलालजी का शास्त्रवाक्य पर निष्ठा है, शास्त्रानुकूल व्याख्या की है। गुरुजी को शास्त्र पर बड़ी निष्ठा थी वे कहते-जितना-जितना मैंने शास्त्र का अध्ययन किया मुझे शास्त्रवाद पर निष्ठा बढ़ती गई और शास्त्रों के द्वारा भक्ति-निष्ठा भी उत्तरोत्तर बढ़ती गई। गुरु महाराजने लालाजी को महावाणी टीकाको शास्त्र सम्मत बताया।

स्व० श्रीलालाजी ने श्रीमहावाणी जैसे अति गंभीर, अतिरहस्य, अत्यन्त गोपनीय तथा सर्वोपरि रसग्रन्थ की शास्त्र सम्मत व्याख्या लिखकर साधक जगत् का जो महान् उपकार किया है। ऐसे सम्प्रदाय गौरव भागवत महापुरुष का जीवनवृत्त भगवच्चरित्र की तरह लोक-मङ्गल कारी होता है तो आइये उस महापुरुष की गौरवमय जीवनगाथा की एक झांकी कर लें—

राय साहब लाला रतनलालजी का जीवन परिचय इस प्रकार है—

नित्यलीलालीन श्रीमान् लालारतनलालजी बेरी वाले का जन्म सन् १८८९ में बेरी गांव में हुआ। आपके पिताश्री का नाम श्रीयुत राय साहब लाला श्रीलक्ष्मीनारायण जी तथा माता जी का नाम श्रीमती शृङ्गारा देवी था। आपका परिवार सदा धर्मपरायण, परोपकारी तथा श्रीराधाकृष्ण युगल उपासक रहा है। आपके पिताश्री हरियाणा तत्कालीन पंजाब के जाने-माने धनाढच व्यापारी थे, उनकी सार्वजनिक सेवाओं के सम्मान स्वरूप तत्कालीन बर्तानिया सरकार ने उनको आनरेरी मजिस्ट्रेट ज्यूरी का सदस्य तथा रायसाहब के पदों से विभूषित किया था। रायसाहब लालारतनलालजी ने बी०ए० की परीक्षा पास की थी। संस्कृत में इनकी सदा विशेष रुचि रही। जिसके कारण इन्होंने संस्कृत में विशेष पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। श्रीमद्भागवत में आपकी बड़ी निष्ठा थी इनको श्रीमद्भागवत के १८०० श्लोक कण्ठस्थ थे। १७ वर्ष की आयु में ही आपका विवाह श्रीमती कलावती देवी से हुआ था।

सन् १९११ में आप अपने पैतृक व्यापार में संलग्न हो गये। उस समय आपका व्यापार बेरी, रोहतक, दिल्ली, कलकत्ता, करीम गंज (आसाम), अहमदाबाद तथा बम्बई आदि स्थानों में बहुत व्यापक रूप से श्रीरामगोपाल लक्ष्मीनारायण के नाम से अनाज, आढ़त तथा बैंकर्स का काम चलता था।

सन् १९३८ में आपने बेरी में एक महिला अस्पताल खुलवाया तथा वैश्यकालेज रोहतक में एक कमरे का उद्घाटन किया। इनका सौहार्द, समाजसेवा के भाव को देखते हुए तत्कालीन भारत के वायसराय ने सन् १९४० में आपको रायसाहब पद से सम्मानित किया।

इस व्यापार तथा सामाजिक सेवाओं में निरत रहने पर भी शैशव अवस्था से ही आप युगल किशोर श्रीराधामाधव की सेवा में सराबोर रहते थे। श्रीव्रजभूमि के प्रति इनका भक्तिभाव, अटूट श्रद्धा, विश्वास अन्तिम समय तक अखण्ड बना रहा। सन् १९४१ से १९५६ तक आपने अधिकतर नन्दगांव में ही निवास किया। उक्त अवधि में आपने वहां अपने परिवार वालों के सहयोग से मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। मन्दिर में दो विशाल दरवाजे-नन्दपोल व सिंहपोल के नाम से बनवाये तथा जगमोहन के चारों तरफ संगमरमर बरण्डा बनवाया। सन् १९४५ में आप वृन्दावन पधारे, जहां पुरोहित पाड़ा में आपने बृहद धर्मशाला का निर्माण कराया।

सन् १९५० में जब आप ६१ वर्ष की आयु के हुए तब से आप भारतीय वैदिक परम्पराओं का अनुसरण करते हुए वानप्रस्थ आश्रम का अवलम्बन कर अपने बृहत् व्यापार तथा घर गृहस्थी की आसक्ति छोड़कर श्रीधाम वृन्दावन में निवास करते हुए प्रियाप्रियतम श्रीराधा-माधव युगल किशोर नाम रूप धाम लीला के अनुचिन्तन में ही तल्लीन रहने लगे।

यों तो आपका भगवान् श्रीकृष्ण में शैशवसे ही आकर्षण था। भगवान् श्रीमन्नारायण के समस्त रूपों में वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण रूप पर आपका सर्वाधिक आकर्षण तथा अनुराग था। आप भगवान् के वृन्दावनेश्वर रूप को सर्वातिशायी मानते थे। इसी तरह उपासना के समस्त भावों में आपका गोपीभाव में सर्वाधिक आकर्षण था, गोपीभाव को आप सर्वातिशायी मानते थे। यद्यपि व्रज में गोपियों की संख्या असंख्य है। किसी के मतसे तीन करोड़, किसी के मतसे छ: करोड़, किसी के मत से सौ करोड़, तथापि नित्यसिद्धा-साधनसिद्धा भेद से गोपियों के दो भेद आप मानते थे। साधनसिद्धा गोपियों के चार भेद—मुनिरूपा, श्रुतिरूपा, देवरूपा तथा लौकिका आपने माने हैं।

इसप्रकार गोपीजनों के अनेक भेद प्रभेद होनेपर भी दो यूथ परम श्रेष्ठ आपने माने हैं। एक चन्द्रावलीका यूथ दूसरा राधायूथ। इनमें राधा भावको मदीया तथा चन्द्रावली भावको त्वदीया बताकर आपने मदीय राधाभाव का सर्वश्रेष्ठ भाव अपनी प्रेम उपासना नामक पुस्तिका में बताया है। आपके गोपियों की दो भावनाऐं बताई हैं—एक कृष्ण-सङ्गाभिलाषिणी दूसरी तत्सुख-सुखित्व-भाववती। दूसरी भाववती गोपियों के आठ यूथ हैं जिस आठ यूथों की आठ यूथेश्वरियां क्रमश: ललिता, विशाखा, चम्पकलता, चित्रा, तुंगविद्या, इन्दुलेखा तथा रङ्गदेवी जी हैं। ये सब की सब यूथेश्वरियां तत्सुख सुखित्वभाववती हैं। इन्हीं की भावनाओं से ओतप्रोत भाव श्रीमहावाणी का भाव है, अत: श्रीमहावाणी रस का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है, ऐसा मानकर आपने आजीवन श्रीमहावाणी को अपना आराध्य ग्रन्थ माना। तथा अन्तिम समय तक रसिक राज राजेश्वर जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यास देवाचार्य रचित महावाणी को रस साधना का सर्वोपरि ग्रन्थ मानकर तदनुसार प्रियाप्रीतम की भावना में आप तल्लीन रहे। सतत महा-वाणीजी की भावना में तल्लीन रहने,अहर्निश उसका स्वाध्याय, मनन अनुचिन्तन करते रहने के कारण आपको जो महावाणी का दिव्य प्रकाश प्राप्त हुआ दिव्य अनुभूति हुई उसे आपने साधक जगत् की मंगल भावना के कारण अपनी व्याख्या के रूप में व्यक्त की।

आप महान् संत थे, महान् रसिक थे, निकुञ्ज रसके अनन्य उपासी थे, सम्प्रदाय के गौरव थे। आपका व्यक्तित्व महान् था आप वस्तुत: महान् भागवत थे। आपसे जो भी मिलता, वह आपका शान्त स्वभाव, आपकी नम्रता, आपकी रसिकता तथा ब्रजनिष्ठा को देख-कर नतमस्तक हुए बिना नहीं रहता। अपने भोगविलासमय घर के शाही जीवन को छोड़कर आपने व्रज में आकर जो तपोमय जीवन बिताते हुए सेवा एवं तपस्या का जीवन बिताया यह न केवल बड़े-बड़े सेठ साहूकारों के लिये ही अपितु संत-महात्माओं के लिये भी अनुकरणीय रहा।

आजीवन रस साधना में व्यापृत रहते हुए आपने १९७१ में प्रियाप्रियतम के अस-मोर्ध्व सौन्दर्य माधुर्य तथा लीलाविलास का चिन्तन करते हुए अपनी इह लीला को समाप्त कर सदा-सदा के लिये निकुञ्ज लीला में लीन हो गए।

आपके द्वारा सम्पादित विविध पारमार्थिक, सामाजिक तथा साहित्यिक सेवाओं का विवरण निम्नांकित है—

(१) श्रीनन्दगांव के मुख्य मन्दिर में आपने श्रीश्रीजी के विग्रह की प्रतिष्ठा कराई। पहले श्रीजी का विग्रह मन्दिर में नहीं था, आप के ही प्रयास से यह मंगलमय कार्य हुआ।

(२) श्रीजी शयनकक्ष भी मन्दिर में आपके प्रयास से अलग बनवाया गया।

(३) नन्दबाबा की गौशाला भी आपने अलग बनवाई।

४) नन्दभवन के अन्दर चाँदी, सोना के दरवाजे तथा सिंहासन भी आपकी ही प्रेरणा से परिवार वालों की सहायता से बनवाये गए।

(५) आपने वैश्य सामाजिक महाविद्यालय-ट्रस्ट भिवानी के संस्थापक ट्रस्टी के पद को भी २६।६।४ से १४।६।७४ तक सुशोभित किया।

साहित्यिक

(१) आपने प्रेम सम्बन्धी एक छोटी-सी पुस्तक 'प्रेम उपासना' लिखी जो सं० २०२२ वि०स० में प्रकाशित हो चुकी है।

(२) चाचा वृन्दावनदास जी द्वारा विरचित 'लाड़सागर' नामकी पुस्तक भी आप के प्रयास से ही प्रकाशित हुई।

(३) बृहद्भागवतामृत का हिन्दी अनुवाद अपने प्रकाशित कराया।

(४) श्रीमहावाणीजी की प्रस्तुत टीका की आपने रचना की।

(५) वृन्दावन के रसिकों में प्रसिद्ध समाजगायन में आपकी बड़ी निष्ठा थी और समाज गायन की भी आपने एक पुस्तक लिखी।

इस तरह आपका सम्पूर्णजीवन त्याग, तप, सेवा तथा भगवत् साधना में व्यतीत हुआ। आप आध्यात्मिक जगत् के देदीप्यमान रत्न थे। वास्तव में ऐसे ही महापुरुष देश तथा राष्ट्र के गौरव होते हैं। ऐसे रसिक शिरोमणि को शत-शत अभिनन्दन।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

श्रीकृष्णजन्माष्टमी
२०५० वि० सम्वत्

पं० वैद्यनाथ झा
शास्त्र चूड़ामणि राष्ट्रपति पुरस्कृत पूर्व प्राचार्य
श्रीनिम्बार्क सं० म० विद्यालय वृन्दावन

भू० पू० वेदान्ताध्यापक
जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीश्रीजी महाराज
सलेमाबाद—राजस्थान

॥ श्रीनन्दरायजी सदा सहाय ॥

श्रीनवलबिहारीलाल जी बेरीवाला

व्यक्तित्व : कृतित्व

आनन्दकन्द भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन की अहैतुकी कृपा से महावाणी ग्रन्थ सुधी पाठकों, सन्तों के करकमलों में प्रस्तुत है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशक श्रीनवलबिहारीलालजी गोयल सुप्रसिद्ध व्यवसायी, धार्मिक-प्रकृति-निष्ठ, भजनरत सद्गृहस्थ हैं—भौतिकतावादी आज के युग में एक विशाल ग्रन्थ-सेवा सम्पादन इस बात का सहज ही परिचय प्रदान करता है।

आपका जन्म प्रतिष्ठित धार्मिक परिवार के एक सद्गृहस्थ दम्पति श्रीआत्मारामजी एवं श्रीमती इमरती देवी जी के सुपुत्र रूप में दिनांक ७-८-३२ को हुआ। प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आप अपने पैतृक व्यवसाय में व्यस्त रहे एवं मेहनत एवं ईमानदारी के साथ अपने व्यापार एवं प्रतिष्ठान की साख में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि कर अपार धन सम्पत्ति, यश, वैभव को प्राप्त किया। ८ वर्ष की आयु में आपका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ। १३ वर्ष की आयु में श्रीमन्निम्बार्क सम्प्रदाय के ५० वें आचार्य स्वामी श्री १००८ श्रीदम्पति शरण देवाचार्यजी महाराज से आपने मन्त्र दीक्षा प्राप्त की।

१८ वर्ष की आयु में धार्मिक एवं प्रतिष्ठित परिवार की सुकन्या शकुन्तलादेवी से आपका परिणय हुआ। इस सफल परिणय का प्रत्यक्ष फल आज भी आपके परिवार में देखने को मिलता है। आपकी अर्धांगिनी (शक्ति एवं शक्तिमान की भांति) सदैव ही आपके प्रत्येक कार्य में सहयोग करती हैं। आपके घर में परिवार की परम्पराओं के अनुकूल ही एक सुपुत्र यशोदानन्दन का जन्म हुआ, जो कि व्यवसाय व्यापार आदि का समस्त कार्य देखते हैं।

व्यापार व्यवसाय के मध्य आप कलकत्ता, अहमदाबाद, बम्बई, करीमगंज आदि नगरों में रहे एवं व्यापार को विस्तार प्रदान किया। अब इस समय आप स्थायी रूप से दिल्ली में सपरिवार निवास कर रहे हैं। आपने प्रारंभिक अवस्था से अपनी ५८ वर्ष की आयु तक अत्यधिक दक्षता से व्यवसाय किया एवं अब विगत ४-५ वर्षों से सारा दायित्व अपने सुपुत्र को प्रदान कर अपना समय समाजसेवा एवं धार्मिक कार्यों में व्यतीत करते हुए भजन-रत रहते हैं।

समय-समय पर बृहद् सन्तसेवाओं का आयोजन, तीर्थ भ्रमण एवं द्वार पर पधारे याचक की यथा शक्ति सहायता के साथ-साथ विभिन्न तीर्थों में आपके द्वारा बहुत से बृहद् धार्मिक एवं जीर्णोद्धार परक कार्य हुए हैं एवं अब भी चल रहे हैं—

श्रीनन्दगांव में स्थित श्रीनन्दभवन के स्वर्ण चांदी के समस्त द्वार, झूले, रथ आदि

की मरम्मत एव पालिश की सेवा आपके सहयोग से सम्पन्न हुयी। मन्दिर के समीप स्थित विशाल धर्मशाला का जीर्णोद्धार आपने कराया।

वृन्दावन में स्थित श्रीरतनलाल बेरोवाला द्वारा निर्मित धर्मशाला का जीर्णोद्धार व आधुनिकीकरण आपने कराया जिसमें श्रीवृन्दावन में पधारने वाले अतिथियों के निवास की उत्तम व्यवस्था है।

बेरो में लगभग ११३ वर्ष प्राचीन एवं विशालतम मन्दिर धर्मशाला, पाठशाला एवं कूप का जीर्णोद्धार आपने अपनी देख रेख में सम्पन्न कराकर वहां एक नवीन वातावरण का निर्माण किया है।

आप बेरी स्थित बेरी गौशाला के उपप्रधान हैं एवं वहां की व्यवस्था-सम्पत्ति आदि का दायित्व सम्पूर्ण रूप से आप पर है।

इस सबके अतिरिक्त एक विशिष्ट धन के आप भगवत्कृपा से धनी हैं। वह है हस्तरेखा ज्ञान। आप केवल कल्याण या अभिरुचि की भावना से जिज्ञासुओं के हाथ देखते हैं एवं हस्त-रेखाओं के माध्यम से व्यावहारिक एवं पारमार्थिक कुशल क्षेम बताते हैं। अनेकजनों को आपने हस्तरेखा के आधार पर भगवत् पथगामी बनाया है एवं व्यावहारिक मार्गदर्शन किया है।

मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है संग्रह की। आपने अनासक्त भाव से जहां सांसारिक धन सम्पदा का अर्जन संग्रह किया-वहां आपके पास स्वयं शङ्कर स्वरूप रुद्राक्षों का भी अपार संग्रह है। एक मुखी आदि कुछ रुद्राक्ष जो कि दुर्लभ हैं एवं लोप हो गये हैं, वे आपके संग्रह में अनेकों की संख्या में विद्यमान हैं। इन सभी के अतिरिक्त परम सरल, मृदुभाषी, दीन एवं सुदृढ़ व्यक्तित्व के धनी आप में अनेकों गुण विद्यमान हैं।

वैसे भी 'यस्यास्ति भक्ति भगवत्यकिंचना सर्वे गुणैस्तत्र समासते सुराः।' अर्थात् जो भगवान् का अकिंचन भक्त होता है, उसके हृदय में समस्त गुणों के अधिष्ठातृ देवता वास करते हैं। अतः यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि आप धार्मिक परिवार में जन्मे युगल उपासना रत एक उच्चकोटि के भगवद् भक्त हैं।

सर्वेश्वर भगवान् के चरणों में प्रार्थना है कि आपको दीर्घायु प्रदान करें। जिससे जनकल्याण एवं धार्मिक तीर्थस्थलों का सेवा कार्य अनवरत रूप से चलता रहे एवं इनके सुपुत्र एवं परिवारीजन भी उसी पथ के अनुगामी बनें।

—गिरिराज प्रसाद
दर्शनाचार्य

*** प्रकाशकीय

अखिल राज राजेश्वर श्रीश्यामाश्याम की अहैतुकी कृपा से श्रीमहावाणी जी पाठकों के कर कमलों में प्रस्तुत करते हुए मैं स्वयं को धन्य मानता हूँ। मेरे पूज्य ताऊजी ने गृहस्थ में रुचि त्याग कर श्रीवृन्दावन में वास करते हुए विभिन्न सन्त महात्माओं विद्वानों का सत्संग किया। फल स्वरूप महावाणी के विषय रस सिद्धान्त का गूढ़ अध्ययन कर इन्हें हृदयंगम किया। और इस विषय में उन्हें जो अनुभव एवं अनुभूतियां हुईं, उन्हें वे लेखनोबद्ध करते गये। महावाणी में जो गूढ़ विषय थे उन्हें पूज्य ताऊजी ने सरलभाषा में प्रस्तुत कर साहित्य एवं सन्त समाज को एक अभूतपूर्व सेवा की। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि यह ग्रन्थ प्रकाशित हो और इस विषय में उनकी मेरे साथ कई बार चर्चा भी हुयी। उन्हीं की इस इच्छा एवं आदेश को पूर्ण करने की प्रेरणा जागृत हुयी श्रीधाम वृन्दावन में ही।

इस सन्दर्भ में जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराज के दर्शनार्थ मैं निम्बग्राम गया एवं महाराज श्री से वृत्तान्त निवेदन किया। महाराज श्री ने आशीर्वाद ही नहीं कृपायुक्त आदेश भी प्रदान किया कि यह एक अभूतपूर्व कार्य है इसे यथाशीघ्र पूर्ण करने में ही सभी का कल्याण है।

महाराज श्री के दिव्य शक्ति युक्त आशीष एवं सन्तों की कृपा से यह एक वृहद् सेवा मुझ दीन को माध्यम बनाकर प्रभु ने सम्पादित करायी है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के उपरान्त मैं पुनः महाराज श्री के चरणों में मगसिर सुदी पूर्णिमा मंगलवार के दिन सलेमाबाद गद्दी पर उपस्थित हुआ। महाराजश्री की अहैतुकी कृपा के कारण ही रात्रि में महाराज श्री ने निजमहल में दर्शन प्रदान करते हुए कार्य के सम्पादित होने पर अनेक आशीष प्रदान करते हुए इसके विमोचन की स्वीकृति प्रदान कर मुझे सदैव के लिये ऋणिया बना लिया। साथ ही महाराज श्री ने आदेश दिया कि इस ग्रन्थ का प्रचार-प्रसार भारत में नहीं विश्व में होना चाहिये। सन्त गुरु कृपा से मैं तन मन धन से इस प्रयास में सफल होने की कोशिश करूँगा।

मैं तो केवल निमित्त हूँ, इस कार्य के सम्पादन में मुझे अनेक सन्त-महन्त गुरुजन पारिवारिक जनों का सहयोग प्राप्त हुआ है। बगीचे वाले महाराज जी महन्त श्री ललिताशरण जी महाराज एवं आपके योग्य शिष्य स्वामी श्रीगोपाल शरण देवाचार्य जी महाराज को पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ उन्हीं की प्रायोगिक सहायता एवं मार्गदर्शन एव मंत्र जाप से इसका प्रकाशन सम्भव हो सका।

हरयाणा सरकार के सम्माननीय प्रेस एडवाइजर (राजनीति) एवं अ० भा० ब्राह्मण महासभा दिल्ली के अध्यक्ष श्री मांगे राम जी शर्मा का अत्यधिक सहयोग प्राप्त हुआ है। प्रकाशन के पश्चात् ग्रन्थ के प्रचार प्रसार हेतु आपने सर्वथा सहयोग प्रदान करने की व्यवस्था की है। श्री१००८ जयराम दास पंचायती गौशाला बेरी के प्रधान श्री देवेन्द्र स्वरूप जी ब्रह्मचारी का आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा है पूज्य ताऊजी भक्तवर श्रीरतनलाल जी बेरीवाला के जीवन-परिचय सम्पादन हेतु मैं शास्त्र-चूड़ामणि परम विद्वान् श्री पं० वैद्यनाथ जी झा की हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में गोयल चैरिटेबिल ट्रस्ट ने अपना उदार आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। यह ट्रस्ट प्रकाशक के पिता श्रीआत्माराम गोयल की स्मृति में स्थापित किया है एवं इसकी चेयरमैन श्रीमती शकुन्तला देवी गोयल हैं।

अपनी धर्मपत्नि श्रीमती शकुन्तला देवी ने भी मुझे अन्य सांसारिक कार्यों के साथ-साथ इस कार्य में सहयोग किया है। मेरे चि० सुपुत्र यशोदा नन्दन को मेरा पुनः पुनः आशीर्वाद है। वह आज के सुपुत्रों से नितान्त भिन्न परमाज्ञाकारी, वैष्णव व भक्त है। व्यापार में व्यस्त रहते हुए भी धर्म एवं वैष्णवता के रुचिवान् है एवं मेरे द्वारा प्रस्तावित सभी धार्मिक कार्यों में पूरी निष्ठा से सहयोग प्रदान करता है।

अन्त में प्रेस के संचालक मेरे स्नेहपात्र चि० गिरिराज नांगिया को मैं आशीष देता हूँ। गिरिराज ने मुद्रण के साथ-साथ प्रूफ़ एवं सम्पादन में भी यथोचित सहयोग प्रदान किया है।

इसके अतिरिक्त इस धर्म-कार्य में मुझे जिन-जिन सज्जनों, परिवारी जनों का सहयोग मिला है मैं हृदय से उनका कृतज्ञ हूँ।

ग्रन्थ में त्रुटि-विच्युति की क्षमा प्रार्थना सहित—

—नवलबिहारी लाल बेरीवाला



आशीष-कामना

—यशोदानन्दन गोयल
सुपुत्र : श्रीनवलबिहारी लाल जी बेरीवाला

मेरे लिये बड़े ही सौभाग्य का विषय है कि इस दिव्य ग्रन्थ के प्रकाशन में किंचित् सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस महत् कार्य में सभी पूज्य जनों के मार्गदर्शन एवं सहयोग के लिये मैं प्रणाम करता हूँ, एवं सभी से विनीत प्रार्थना करता हूँ कि मुझे आशीष प्रदान करें जिससे मैं अपने पूर्वज एवं पिता श्री के दिखाये मार्ग पर चल सकने में समर्थ हो सकूँ।

महावाणी का रस सिद्धान्त

—श्रीगोपालशरण देवाचार्य

राधां कृष्ण स्वरूपां वै कृष्णं राधा स्वरूपिणम् ।
कलात्मानं निकुञ्जस्थं गुरुरूपां सदा भजे ।।

आत्म परमात्म तत्त्व रस रहस्य के निर्णायक वेदान्त वाक्यों में परम तत्त्व को निरतिशय आनन्द, भूमा सुख, तथा निरतिशय प्रेमास्पद माना गया है। जैसा कि औपनिषद वाक्य है—"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन' 'नालब्ध्वा सुखं करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति, भूमव सुखम्, यत्र नान्यत् पश्यति, नान्यच्छृणोति नान्यद विजानाति स भूमा' 'तदेतत् प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्माच्च सवस्मात्' इत्यादि ।

वह निरतिशय आनन्द सर्वातिशय रसरूप है और वह रस 'सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः' श्रुतिके अनुसार सर्वरस होने पर भी सर्वोपरि रस शृंगार रसात्मक है। क्योंकि रसों में उज्ज्वल रस सर्वातिशायी माना गया है। वह रस द्विदलात्मक है। वृन्दावन योगपीठ पर इस दिव्य शृंगार के आलम्बन प्रिया प्रियतम श्रीराधा माधव हैं। प्रेम पुलिन यमुना पुलिन पर अवस्थित सच्चिदानन्दमय वृन्दावन इसका उद्दीपन विभाव है।

इस रसका सम्यक् समास्वादन माधुर्य उपासना, रसोपासना, किंवा सखीभाव उपासना द्वारा रासेश्वरी श्रीराधा की अकारण करुणा से श्रीधाम वृन्दावन में ही सभव है। जैसाकि रसिक महानुभावों का कथन है—

अनाराध्य राधा पदाम्भोजयुग्ममनासेव्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्कम् ।
असंभाष्य तद्भाव गंभीर चित्तान् कुतः श्याम सिन्धो रसस्यावगाहः ।।

इस दिव्यातिदिव्य रसमयी उपासना के गुह्यतम रहस्य एवं माधुर्यमयी पद्धति के परिज्ञान के लिये श्रीधाम के रसिक मूर्धन्य सन्तों श्रीहरिव्यास देवाचार्य, श्रीस्वामी हरिदासजी, गोस्वामी श्रीहित हरिवंश महाप्रभु प्रभृति प्रिया प्रियतम की अन्तरंग सखी स्वरूपाओं की वाणियों का सप्रेम नित्य स्वाध्याय तथा तत् सम्प्रदायानुगत साधकों की शान्तिदायिनी सुसंगति नितान्त आवश्यक है।

यद्यपि रसोपासना माधुर्य उपासना किंवा सखी भाव उपासना का बीज अनादि अपौरुषेय निखिल ज्ञान विज्ञानागार मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद में ही निहित है। रसोपासना का मूल

आधार 'रसो वै सः' यह प्रसिद्ध श्रुतिवाक्य ही है। पुराणों तथा पाञ्चरात्र संहिताओं में भी इसका बृहद् वर्णन उदाहरण तथा प्रामाणिकता से समर्थन हुआ है। फिर भी कहना न होगा कि हिन्दी के स्वर्णिम भक्ति कालमें सगुण भक्ति शाखा के वृन्दावनीय रसिक संतों द्वारा विरचित मन्त्र स्वरूप वाणियों में जैसा सरस आकर्षक तथा आह्लादक निरूपण हुआ है, वैसा विस्तृत तथा माधुर्यमय चित्रण पौराणिक किंवा पाञ्चरात्रिक संहिताओं में दृष्टिगत नहीं होता।

इन वाणियों में भी रसिकराज राजेश्वर निम्बार्काचार्य जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी महाराज द्वारा विरचित महावाणी यथा नाम तथा गुण है। इस सदी (बीसवीं) के वृन्दावन के मूर्धन्य रसिक अशेष वाणी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् आजीवन वृन्दावन रजसेवी नित्य लीलालीन व्रजविभूति बाबा श्रीप्रिया शरणजी महाराज कहा करते थे कि इसका जैसा उदात्त स्वरूप, जैसा असमोर्द्ध्व चित्रण तथा यादृश युगल किशोर प्रियाप्रियतम श्यामा श्याम के असमोध्व सौन्दर्य माधुर्य एवं लीला विलास का जीवन्त चित्रण महावाणीजी में हुआ है, ऐसा अन्य किसी वाणीमें नहीं। ऐसा कहते हुए बाबा अपने प्रवचनमें भावाभिभूत हो जाते थे। उनको सम्पूर्ण महावाणी कण्ठस्थ थी। आप नित्य महावाणी जी का पाठ करते थे। उनका वेद, उनकी गीता उनका सर्वस्व महावाणी जी ही थीं।

इस संदर्भ में ज्ञातव्य है और प्रसन्नता की बात है कि व्रजभाषा की इस रसमयी मन्त्रमयी बृहद्वाणी महावाणी का रस चिन्तन, रस सिद्धान्त, माधुर्य उपासना तथा युगल स्वरूप निरूपण सब श्रौतसिद्धान्तानुरूप है, पुराणों, पाञ्चरात्रों एवं समस्त वैष्णव तन्त्रोंके मान्य सिद्धान्त के सर्वथा अनुरूप हैं। इस रहस्य को हमारे प्रातः स्मरणीय रसिक राज राजेश्वर पूर्वाचार्य श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी ने अपनी प्रेममयी उपासना द्वारा युगल तत्त्व, तथा लीला विलास का साक्षात्कार करके भाषा ग्रन्थ के रूप में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। इसके विभिन्न सुखों में प्रतिपादित उपासना प्रकार, सेवा प्रकार, ध्यान वर्णन, पीठ वर्णन, विलास चिन्तन सब शास्त्रानुयायी है, जिसका संकेत श्रीआचार्य चरण ने स्वयं 'निगमागम को सार वेद तन्त्र को मन्त्र जो भारी' कहकर स्वयं किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के टीकाकार रसिक शिरोमणि गोलोक वासी लाला श्रीरतनलाल जी ने भी अपनी टीका में महावाणी प्रतिपाद्य सिद्धान्त को सर्वत्र शास्त्रीय प्रमाण प्रस्तुत कर इसे शास्त्रीय सिद्ध किया है। इस विषय में सर्वाधिक विवेचन हमारे सम्प्रदाय के उद्भट विद्वान् द्वैताद्वैत प्रस्थान के अद्वितीय परिष्कारक आबाल कृष्ण रसिक श्रीयुगम तत्त्व समीक्षा आदि ग्रन्थों के निर्माता दार्शनिक सार्वभौम नित्य लीलालीन मैथिल पं० श्रीभगीरथ जी झा ने अपनी श्रीयुगम तत्त्व समीक्षा के महावाणी विचार प्रकरण के स्वतन्त्र रूप से एक विस्तृत निबन्ध लिखकर महावाणी के रस दर्शन को अनेकानेक श्रुति, स्मृति-तन्त्र के अकाट्य प्रमाणों द्वारा किया है, जिसमें उन्होंने बड़े विस्तार से श्रीमहावाणीजी के विभिन्न प्रकरणों के रसमय पदों को उद्धृत कर महावाणीकी उनकी मान्यताको शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा सम्प्रदायके रस सिद्धान्त को सर्वथा शास्त्रीय किया है, जो उनका सम्प्रदाय के लिये महान् उपकार है।

साम्प्रदायिक रस सिद्धान्त को निगमातीत कहकर इसका उत्कर्ष मानने वाले महानुभाव भ्रम में हैं। सनातन सिद्धान्त के अनुसार वेद-मूलक मान्यता कथमपि उपादेय नहीं होती। इसी तरह रसोपासना या नित्य विहार उपासना अमुक काल से ही चली है अमुक आचार्य ने ही प्रकट किया है, इससे पहले नहीं थी, इत्यादि भावनाएं भी अज्ञान

मूलक है, यह धारणा प्रतिपाद्य तत्त्व की उत्कर्षाधायक नहीं अपितु अपकर्ष जनक ही होती है। वैदिक संस्कृति में जिस मान्यता की अनादि परम्परा होती है, श्रौत परम्परा होती है, शिष्य परम्परा होती है वह मत मान्य होता है, ग्राह्य होता है।

हम यहां महावाणी जी के कतिपय अंशों को ही उद्धृत कर महावाणी का रस सिद्धान्त दिग्दर्शन कराने का लघु प्रयास कर रहे हैं। महावाणी के उपक्रम में पहला वाक्य है—

राधांकृष्ण स्वरूपां व कृष्णं राधास्वरूपिणम्।
कलात्मानं निकुञ्जस्थ गुरुरूपं सदाश्रये॥

उक्त श्लोक में केवल राधां कृष्णस्वरूपां वै अथवा केवल कृष्णं राधा स्वरूपिणं कहने पर एकमें अंशित्व दूसरे में अंशत्वका भ्रम होने के कारण आपने युगल किशोर में सर्वथा साम्य एवं एकरूपता निर्धारण हेतु व्यतीहार में कृष्णं राधा स्वरूपिणं कहा तथा "एक स्वरूप सदा द्वै नाम" का सिद्धान्त प्रतिपादन किया। सिद्धान्त दृष्टि से युगल में तारतम्य को अपराध बताया। 'ऐसा कहकर आपने आद्याचार्य महामुनीन्द्र निम्बार्क भगवान् के शास्त्र सम्मत पथ का अनुसरण किया। भगवान् निम्बार्क ने अपने साक्षात् शिष्य श्रीऔदुम्बराचार्य को कहा—"यः कृष्ण सैव राधा या राधा कृष्ण एव सः। अनयोरन्तर्दशो संसारान्न विमुच्यते। तथा 'कल्लोलके वस्तुत एकरूपकौ राधामुकुन्दौ समभाव भावितौ। यद्वत् सुसम्पृक्त निजाकृती ध्रुवावाराधयामो व्रजवासिनौ सदा।

इसी तरह वेदान्त कामधेनु में आद्याचार्य चरणने (अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमाना मनुरूप सौभागाम् श्लोक के 'अनुरूप सौभागाम्' इस अंश के द्वारा युगलतत्त्व को सर्वथा समान माना है। महावाणीकार अपने आद्याचार्य के इसी सिद्धान्त का अनुसरण सहज सुख के उपक्रम में कहा—"एक ही द्वै जु छै एक ही दीप हि दिन किहि सोचे निपुणहि करि सुटोरी। श्रीहरिप्रिया दर्शहित दोय तन दर्शवत एक तन एक मन एक दोरी।" इसी तरह पुरुषार्थ बोधिनी उपनिषद् में कहा है—

श्रीराधाकृष्णयोरेक-मासनपद्म एकाबुद्धिरेकं मनः एकं ज्ञानमेक आत्मा एकं पदमेकाकृति एकं ब्रह्मतयाऽसनं हेम मुरलिका वाद्यं हेमं पद्यम्।

कलात्मानम्—कला से आपने कामकला, शृंगार कला, रतिकला का भाव लिया। इस प्रकार काम कला काम का सर्वान्तिम पर्यवसान बताया यानी काम बोज (क्लीम्) जैसाकि पद्म पुराण में बताया—अहं च वासुदेवाख्यो नित्यं काम कलात्मकः। इस प्रकार कामकला या कलात्मानं के द्वारा युगल को आपने कामबीज रूप में स्मरण किया। और कामबोज की युगलात्मकता या युगल विलासिता का चित्रण बृहद गौतमीय तन्त्र में निम्नांकित रूप में किया गया है—

ककारः पुरुषः कृष्ण सच्चिदानन्द विग्रहः।
ईकारः प्रकृती राधा नित्यं वृन्दावनेश्वरी॥
लश्चानन्यात्मकः प्रेमसुखं च परिकीर्तितम्।
चुम्बनाश्लेष माधुर्यं विन्दुनाद समीरितम्॥

यहाँ कामबीज के ककार से सच्चिदानन्द विग्रह श्रीकृष्ण ईकार से महाभाव स्वरूपिणी वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा 'ल' से प्रेमसुख तथा बिन्दुनाद से युगल का लीला विलास-आलिंगन चुम्बन का चिन्तन होता है। काम बीजात्मक होने से युगलमें प्रणवात्मकता भी व्यक्त हो जाती है। जैसा कि 'क्लीमोकारयोरेकत्वं पठयते ब्रह्मवादिभिः' इस गोपाल तापिनी वाक्य से स्पष्ट है। कलात्मकत्व कथन से 'उतामृतत्वस्येशानः' 'त्रिपादूर्ध्व उदेत् पुरुषः' 'तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते' इत्यादि पुरुष सूक्त का परमार्थत्व भी श्रीयुगल किशोर में व्यक्त होता है। जैसा कि गौतमीय तन्त्र में कामबीज की व्याख्या में मैथिल महर्षि गौतमके प्रति मन्त्र में सम्प्रदाय गुरु देवर्षि नारदने कहा है—

क्लीं कारादसृजद विश्वमिति प्राह श्रुतेः शिरः
× × ×
त्रिपादूर्ध्व उदेत् पुरुषः इत्याहुः प्रथमा गिरः
बीजोच्चारण मात्रेण चित्स्वभावः प्रजायते ।।

इस तरह आचार्य प्रवर श्रीहरिव्यास देव ने अपने आराध्य युगल को कलात्मा (क्लीं) कहकर प्रणवः गायत्री तथा पुरुष सूक्त आदि समस्त वैदिक मन्त्रों का प्रतिपाद्य बताया। इन्हीं सब तथ्यों के तथा साम्प्रदायिक परम्परा के आधार पर 'गायत्री में राधाकृष्ण' नामक अभिनव प्रकाशित ग्रन्थ में भूतपूर्व प्राचार्य राष्ट्रपति पुरस्कृत पं० श्रीवैद्यनाथ जी झा ने प्रिया प्रियतम श्रीराधा माधव को गायत्री प्रतिपाद्य सिद्ध किया है, जो महावाणी सिद्धान्त के अनुसार है।

इन्हीं सब बातों को लक्ष्य करके श्रीमहावाणी जी के सिद्धान्त सुख के उपसंहार में कहा गया है —'निगमागम को सार तन्त्र को मन्त्र जो भारी'

निकुञ्जस्थम्—यहाँ निकुञ्ज पद से 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायाम् परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मया विपश्चिता' इत्यादि श्रुतियों के तात्पर्य गोचर अक्षर धाम के हृदयभूत वृन्दावन का भी परमान्तरंग, समस्त योगपीठों का अंशी योगपीठ कामबीज का विलास स्थान कहा जाता है। जिसे गोपाल योगपीठ की व्याख्या में कर्णिका शब्द से कहा गया है। जैसाकि श्रीगोपालतापिनी में कहा गया है—

'यत्तस्य पीठे हैरण्याष्टपलाशमम्बुजम् तदन्तरालाद्यार्णाखिन्नबीजं कृष्णाय नम् इति बीजाढ्यं स ब्रह्मा ब्राह्मण मायाप्रांगण गायत्री यथावयालिख्य' इत्यादि।

इसी श्रुति की व्याख्या में पद्म पुराण पाताल खण्ड वृन्दावन माहात्म्य में पार्वती महेश्वर सेवा प्रेम के रूप में कहा—

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डे तद्बाह्याभ्यन्तर स्थिते,
विष्णोर्धाम परं तेषां प्रधानं वरमुत्तमम्।
यत्परं नास्ति कृष्णस्य प्रियं स्थाने मनोरमम्
× × ×
यद् यद् परमैश्वर्यं नित्यं वृन्दावनेश्वरम्
कृष्ण धाम परं तेषां वनमध्ये विशेषतः ।।

वहाँ अति विस्तार के साथ वृन्दावन के हृदय स्थान (कर्णिका) निकुञ्ज धाम का वर्णन किया गया है, जो पद्म पुराण के वृन्दावन माहात्म्य में तथा श्रीभगीरथ जी झा द्वारा विरचित युग्म तत्व समीक्षा के धाम मयूख प्रकरण में देखा जा सकता है। वही श्रीमहावाणी में निकुञ्ज पद से विवक्षित है, केवल लता मन्दिर नहीं।

निकुञ्ज का योगपीठ में कर्णिका स्थान के रूप में श्रीमहावाणी में भी बहुत अच्छा वर्णन हुआ है। जैसाकि सिद्धान्त सुख के उपक्रम में कहा गया है।

सूक्ष्म कलरव जन्म पर वेद तंत्र कौ मंत्र।
श्रीवृन्दावन हरिप्रिया, नित्य विहार स्वतंत्र ।।
वेद तंत्र कौ मन्त्र मनोहर श्रीवृन्दावन नित्य विहार।
सूक्ष्म कलरव जन्य ब्रह्म पर परमधाम कौ परमाधार ।।

× × ×

ऐसो निज धाम जा मध्य नित झूमि। अमित दल कमल आकार रहि भूमि।
मञ्जु मञ्जुल की अष्ट दल पंगति तिन ऊपर सखीन की कुञ्ज सरंगति।
तेजोमय कर्णिका अति प्रदेशा। ताके चहुं ओर सरवश प्रदेशा।

आजु महल के चौक बिच, मणि मण्डल रसपुंज।
ता चहुँधां सोगनि बनी, अष्टमोहिनीकुंज ।।
मंगल शैल प्रजंन्त लगि, सेवा-सुख इन मांहि।
रसमणि मोहन महल, भयो कल्पवृक्ष की छांहि ।।

× × ×

आँगन मोहन महल के, मोहन मंडल मंजु।
ता ऊपर अष्टकोण कौ, सुख सिंहासन रंजु ।।
कोण कोण प्रत्येक इक, प्रिय प्रमदा-गण संग।
रुचि अनुसारे सेवहीं, उर अनुराग अभंग ।।
उत्तर श्रीरंगदेवि जू, दिस ईसान सुदेवि।
पूरब श्रीललिता सखी, अग्नि बिसाखा सेवि ।।
दक्षिन चंपक लत्तिका, चित्रा नैऋति पेखि।
पश्चिम तुंगविद्या सखी, वायुकोंन इंदुलेखि ।। इत्यादि।

इस प्रकार गोपाल तापिनी, पुरुषार्थ बोधिनी, वृन्दावन माहात्म्य, श्री ब्रह्म संहिता, सनत्कुमार संहिता, ज्ञानामृत संहिता, सनत् कुमार तन्त्र, वृहद् गौतमीय तन्त्र तथा क्रमदीपिका में सर्व मुख्य योग पीठ रूपी कमल की कर्णिका शब्द से प्रतिपाद्य निरतिशय आनन्द घन वृन्दावन का हृदय स्थान ही महावाणी के रस सिद्धान्त में निकुञ्ज पद से ध्येय तथा गेय माना गया है। इन्हीं सब बातों को लक्ष्य करके महावाणी में कहा गया—

राधां कृष्ण स्वरूपां वै कृष्णं राधा स्वरूपिणम् ।
कलात्मानं निकुञ्जस्थं गुरुरूपं सदाश्रये ।।

गुरुरूपाम्—यहां गुरु पद से सम्प्रदाय गुरु श्रीसनकादि आचार्य से लेकर श्रीश्रीभट्ट देवाचाय पर्यन्त समस्त गुरु अभिप्रेत हैं। वे सभी युगल किशोर के इच्छा विग्रह हैं जैसा कि सिद्धान्त सुख में कहा गया—

उपमा कहत मौन मति होई।
पिय प्यारी इच्छा वपु जोई।।
एक डार की सी सब तोरी।
तत्पर महल टहल रस बोरी।।

इस प्रकार राधां कृष्ण स्वरूपां वै, इस श्लोक द्वारा श्रीयुगल स्वरूप, गुण, माहात्म्य, विलास धाम आदि भी सूचित कर तृतीय तथा चतुर्थ प्रकरण में श्रीयुगल किशोर की निरतिशय रस रूपता एवं रसिक रूपता करने हेतु तृतीय सुख के आरम्भ में कहा—

राधां कृष्णावहं वन्दे रस रूपौ रसायनौ
वृन्दावन निकुञ्जस्थौ नित्य लीला समाश्रितौ

श्रीमहावाणी के जितने विषय प्रतिपादित हैं उन सबका सार सिद्धान्त सुख नामक प्रकरण के अन्त में रसिक शेखर श्रीआचार्य पाद ने जिन पद्यों द्वारा प्रदर्शित किया है, वे पद यहां पाठकों के आह्लाद के लिये उद्धृत किये जाते हैं—

"प्रिया शक्ति आह्लादिनी प्रिय आनन्दस्वरूप।
तनु वृन्दावन जगमगे इच्छासखी अनुरूप।।
कोटिन कोटि समूह सुख रूख लिए इच्छा शक्ति।
प्राणेशहिं प्रमुदावहीं प्रमदावलि अनुरक्ति।।
जब तें एए तवहितें ये ये एक अनन्त।
श्रीवृन्दावन में सदा नित विलास विलसन्त।।
सरिता रसश्रृंगार की बहति सदा चहु ओर।
इक छत राज करें जू श्रीहरिप्रिया युगल किशोर।।
परमातम परब्रह्म करि विस्तारण जग जाल।
जन पालन जय जय महाराज बिहारी लाल।।
महारसरास विहारी लाल वारी जाऊं जग जनपाल।
निर्विकार आकारविन शुद्ध ब्रह्म चैतन्य।
सोइन की निजकेलि को सूक्ष्म कलरव जन्य।।
निर्विकार आकार परब्रह्म शुद्ध चैतन्य।
निर्विशेष व्यापक भयो जिहि जिदंशते जन्य।।
पर इच्छा आधीन हैं कीन्हों रस विस्तार।

जाके एक हि अंश करि परमातम अवतार ।।
अखिल अण्ड व्यापक अरु अखिल अण्ड आधार ।
अखिल अण्ड के ईश हैं हरत करत प्रतिवार ।।
एक दोय अरु तीन पुनि चारि पांच बहुरूप ।
धरि धरि लीलाधारहीं आप अपार अनूप ।।
जाके ए सब होत है सो ये नित्य किशोर ।
श्रीहरिप्रिया शिरोमणि सदा बसौं निशिभोर ।।
राजधानी मानी मनहि वृन्दावन विभुरूप ।
सुख दायक नायक सखी सच्चिदानंदस्वरूप ।।
सखी री सच्चिदानंद स्वरूप । सकल सुखदायक नायक भूप ।
श्रीवृन्दावन रजधानी मानी परम अनूप ।।
आदि अनादि एक रस अद्भुत सदा सनातन रूप ।"

उक्त पदों में प्रिया प्रियतम उनकी अभिन्न प्राण-स्वरूपा सखीवृन्द, वृन्दावन धाम तथा नित्य निकुञ्ज के नित्य प्रकार समस्त प्रकार, रसोपासना या नित्य विहार उपासना तथा श्रीमहावाणी का रस चिन्तन या रस सिद्धान्त सब स्पष्टतया कहे गये हैं। इन्ही पदों के आधार पर श्रीमहावाणी में समस्त सुखों सहज सुख, सेवा सुख आदि की व्याख्या एवं चिन्तन करना चाहिये।

इस सम्बन्ध में विशेष जिज्ञासु रसिक साधकों को महावाणी की प्रस्तुत टीका तथा सम्प्रदाय के मूर्धन्य विग्रह दिवगत श्रीभगीरथ जी झा कृत युग्मतत्व समीक्षा का महावाणी विचाराध्याय द्रष्टव्य है। लेख विस्तार के भय से हम यहां एतत् सम्बन्धी विशेष व्याख्या करना समुचित नहीं समझते।

अन्त में इतना ही कहकर हम अपने वक्तव्य का विराम लेते हैं जो महावाणी का रस सिद्धान्त साधक जगत् के लिये आचार्य चरण श्रीहरिव्यास देवजी का दिव्य वरदान है। इति श्रीराधाकृष्णार्पणमस्तु।

स्वामी गोपालशरण देवाचार्य
गोलोक धाम
गौशाला नगर
वृन्दावन
२९.१२.९३



आशीर्वाद

मैं रामबिहारीलाल रतनलाल गोयल अपने [illegible] बिहारीलाल गोयल को आशीर्वाद देता हूँ कि [illegible] स्वर्गीय रायसाहब [illegible] की [illegible] गई श्रीमद्भगवद्गीता [illegible] किया है, [illegible]

[illegible]

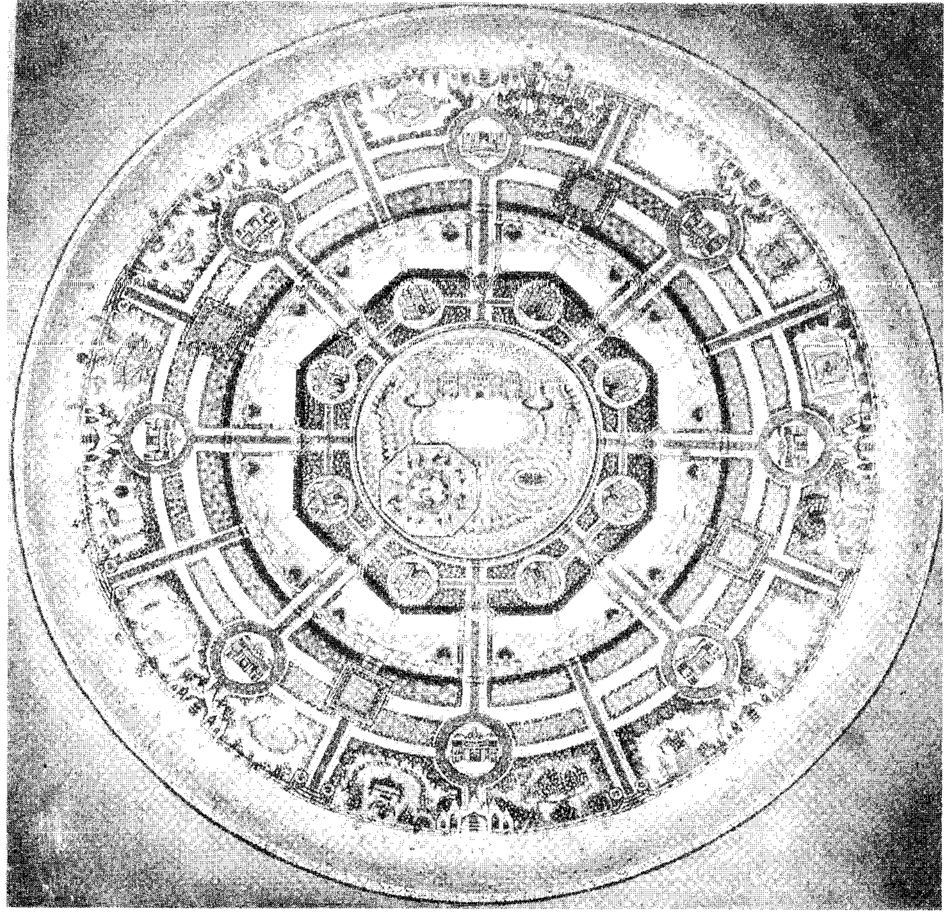
अनुक्रमणिका

सेवा-सुख

श्री सहज सुख

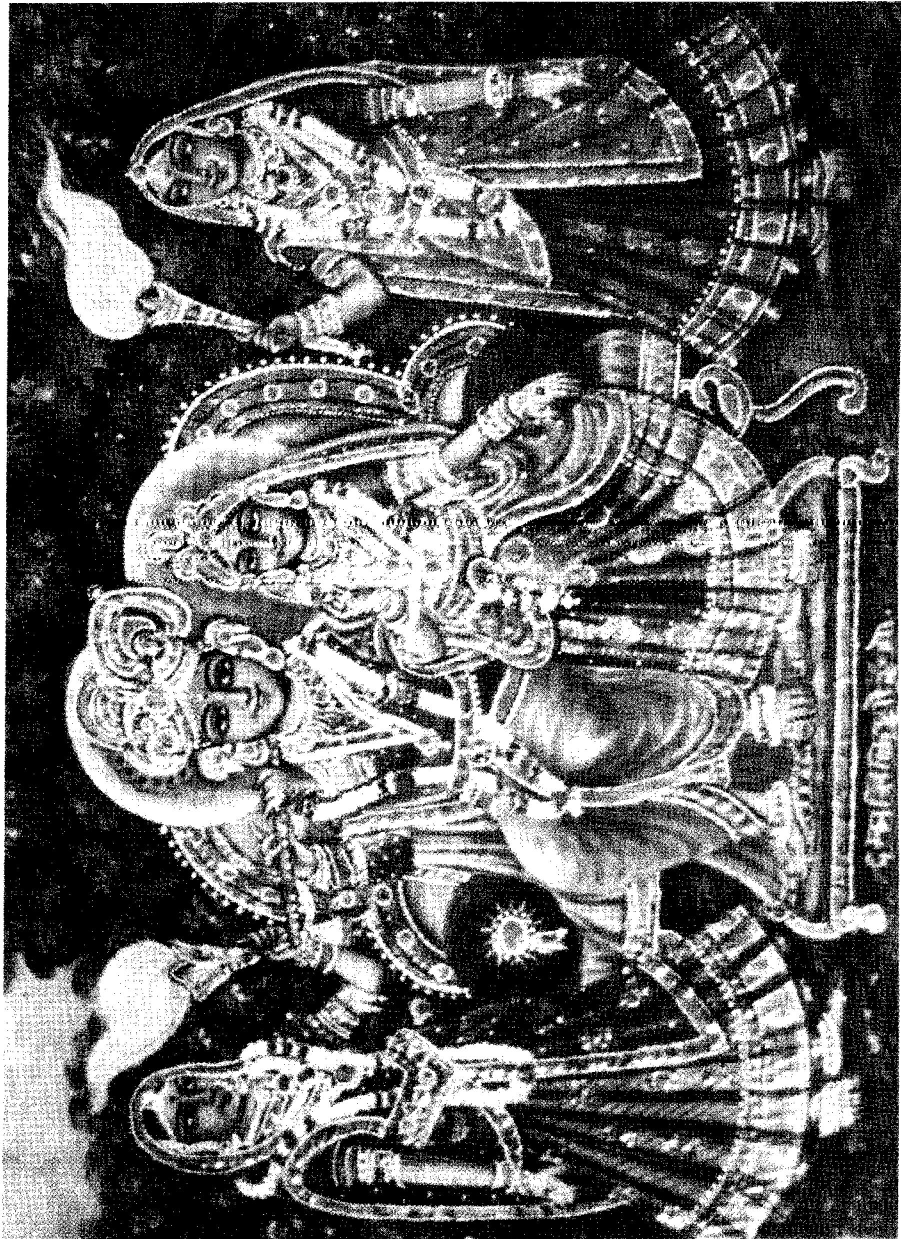


।।श्रीराधासर्वेश्वरो जयति।।



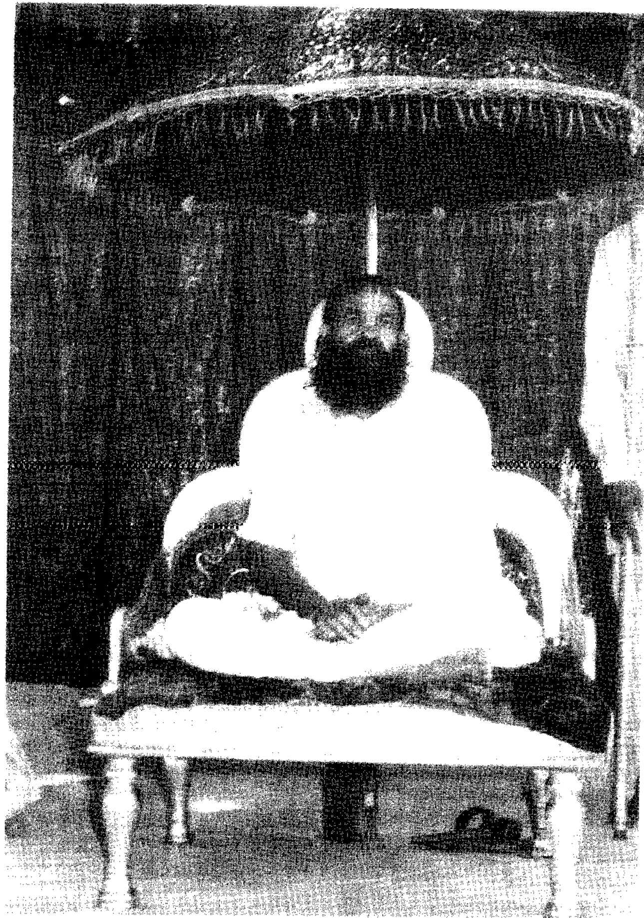
● योगपीठ ●







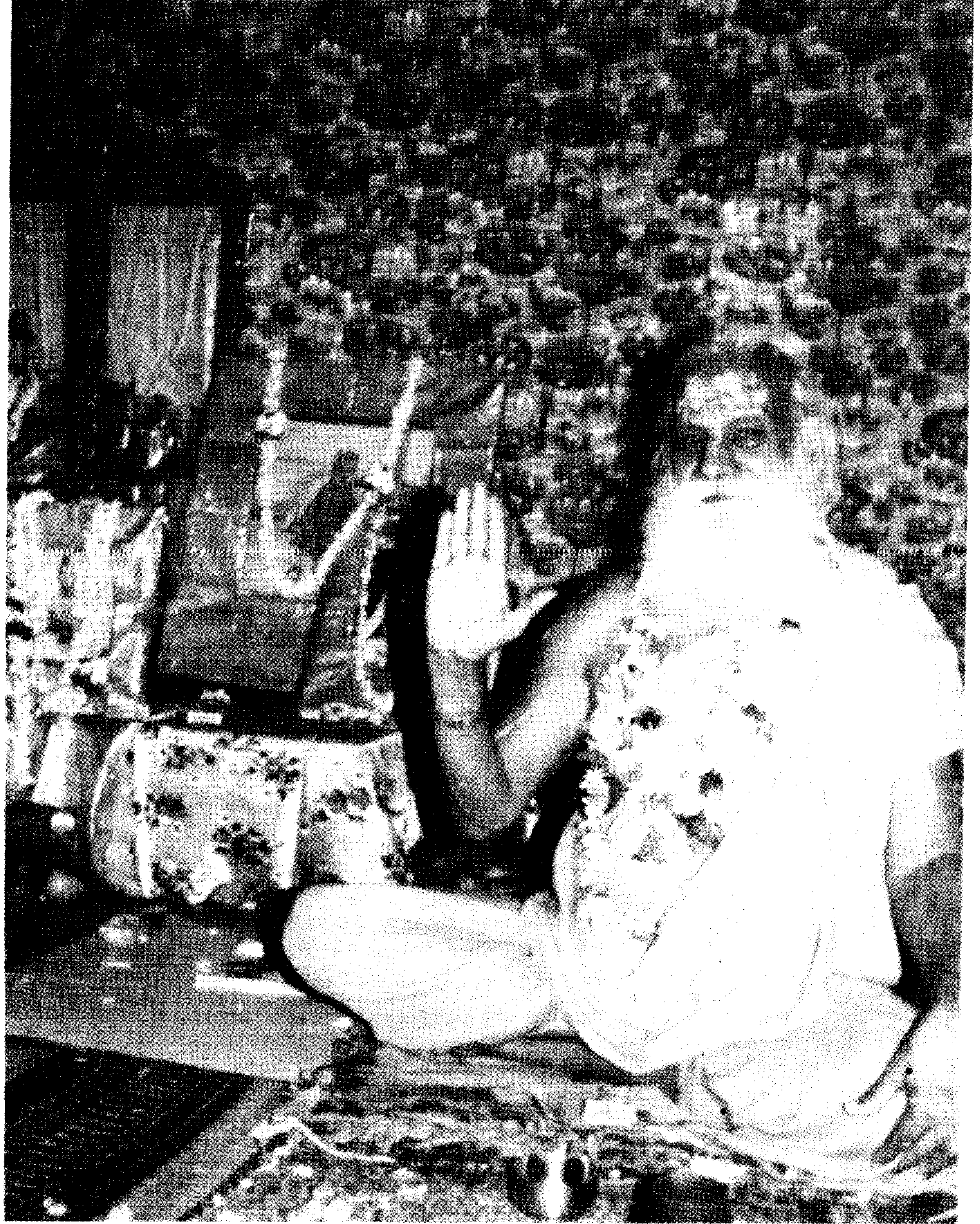
अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्क पीठाधीश्वर
रसिक राज राजेश्वर श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी महाराज





श्रीश्री १००८ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्योपवृंहितानादि वैदिक -
सत्सम्प्रदायानुगत विद्वद्गोष्ठी वरिष्ठ सकलशास्त्र निष्णात
गुरुदेव स्वामी श्री हरिप्रियाशरण देवाचार्य जी महाराज
(महन्त : श्रीबिहारीजी का बगीचा, वृन्दावन)





पूज्य गुरुदेव प्रातः स्मरणीय

श्रीश्री १००८ स्वामी श्रीललिताशरण देवाचार्य जी महाराज

(महन्त : श्रीबिहारीजी का बगीचा, वृन्दावन)

परमश्रद्धेय श्रीश्रीसद्गुरुदेव
पूज्य स्वामी श्रीगोपालशरण देवाचार्य जी महाराज







श्रीमहावाणी के टीकाकार

भक्तप्रवर रायसाहब श्रीरतनलाल जी बेरीवाला









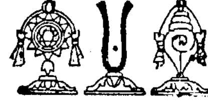
श्रीरतनलाल जी बेरीवाला के भतीजे
श्रीमदनलाल जी बेरीवाला



श्रीनवलबिहारी लाल जी बेरीवाला के सुपुत्र
श्रीयशोदानन्दन गोयल



❀ श्रीराधासर्वेश्वरो जयति ❀



॥ श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्राय नमः ॥

श्री महावाणी

॥ श्लोकाः ॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
राधाऽधर सुधासिन्धौ नमो नित्य विहारिणे ॥१॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं ईश्वरत्व और माधुर्य भगवत्ता[१] युक्त उन श्रीकृष्ण भगवान् को नमस्कार करता हूँ जिनकी बुद्धि कभी भी कुण्ठित अर्थात् विकल नहीं होती है और जो श्रीराधा अधरामृत रूपी सागर में निरन्तर विहार करते रहते हैं ॥१॥

॥ भावार्थ ॥

दोहा—श्रीअकुण्ठ मेधा सुभग जयति कृष्ण भगवान ।
प्रिया अधर सागर सुधा बिहरत रैन विहान ॥१॥
करत प्रथम श्लोक से ग्रन्थकार आचार्य ।
वस्तु निर्देशात्मकः सरस मंगलाचार ॥२॥

भगवते

दोहा—स्वयं भगवते शब्द से स्रवत अर्थ अनुरूप ।
ईश्वरत्व माधुर्यता युत श्रीकृष्ण स्वरूप ॥३॥
एक काल आधार्य इक ये दोऊ झलकाय ।
दमकत दिपति दुगन मनो धूपछाँह[२] परिछाँय ॥४॥

१—भगवत्ता तावत् सामान्यतो द्विविधैयः परमैश्वर्य्य रूपा परम माधुर्यरूपा चेति । (प्रीति सन्दर्भ)
२—एक प्रकार का वस्त्र जो दो ओर से दो रंग का दीखता है ।

"अखिल अण्ड व्यापीक अरु अखिल अण्ड आधार।
अखिल अण्ड के ईश ह्वै हरत करत प्रतिपार ॥५॥"
विश्वकाय परमात्मा श्रीनारायण विष्णु।
ये सब हैं इनके धर्म यह धर्मी जग जिष्णु ॥६॥
वर्णन मैं नहीं कर सकूँ प्रभु ऐश्वर्य अपार।
जब नूपुर झनकारतें लेत केति अवतार ॥७॥
किहि विधि वर्णन फिर करूँ कृष्ण रूप माधुर्य।
लजत मधुर माधुर्य पर कोटि कला ऐश्वर्य ॥८॥
पद नख छवि प्रतिबिम्ब लखि चन्द्रहु बनत चकोर।
"दर्प करें दलमल सेव को कन्दर्प करोरि ॥९॥"
"जाके पद नख ज्योति की आभा को अणु लेश।
जगमगात है जगत में पार ब्रह्म परमेश ॥१०॥"
रम्य मुकर मणि खम्ब में लखि प्रभुनिज परछाहिं[१]।
प्रिया रूप धरि करि हरि भोगन कों ललचाहिं ॥११॥
"अति ऐश्वर्य माधुर्य को वर्णे को विस्तार।"
झलक झला झल झलमले दोउ गुण एक अधार ॥१२॥

कृष्णाय

दोहा—कृष्ण शब्द की उपनिषद् वेद करत व्युत्पत्ति।
कृषि[२] शब्द भू वाचको णश्च अर्थनिर्वृत्ति ॥१३॥
इन दोउन को ऐक्य जहां परमब्रह्म सोई रम्य।
याते ऋषि मुनि कृष्ण को सभी कहें परब्रह्म ॥१४॥
करत कृष्ण तें अर्थ यह हरिमुख चन्द्र चकोर।
प्रेम रूप माधुर्य तें खेंचत[३] जो निज ओर ॥१५॥
करत अर्थ पर रसिक जन प्रिया पदाम्बुज भृंग।
राधे ओर खिचे[४] रहें यासो अंग त्रिभंग ॥१६॥

१—"अपरि कलित पूर्वः कश्चमत्कार कारी, स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्य पूरः। अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लब्ध चेताः स रभरामुपभोक्तुं कामये राधिकेव॥" (श्रीललितमाधव)
२—"कृषिः भूवाचको शब्दोणश्चनिर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परमब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।" (महाभारत)
३—"कर्षतीति कृष्णः।"
४—"कृष्यते अनया (राधया) कृष्ण।"

लिखी भागवत में मिली कृष्ण उक्ति हम यह।
शब्दब्रह्म[१] परब्रह्म दोउ कलित कृष्ण की देह ।।१७।।
शब्द ब्रह्म नूपुर ध्वनि परम ब्रह्म नख कान्ति।
महावाणी एसे कहे उपरोक्त सिद्धान्त ।।१८।।

अकुण्ठ मेधसे

दोहा—अकुण्ठमेधा से अर्थ निसरत सुन्दर सोय।
किसी काल और कार्य में मति कुण्ठित नहीं होय ।।१९।।
इनको जैसे भाव से भजते हैं जो भक्त।
तिनके तैसे भाव पर रहते हरि अनुरक्त ।।२०।।
अपने प्रेमी पर करत ईश्वरादि गुण त्याग।
उनसे कोटि गुणा अधिक लाल ललित अनुराग ।।२१।।
यद्दपि नाथ के हाथ में तीन लोक की नाथ।
तद्दपि सदा टेकत रहें प्रिया चरण पर माथ ।।२२।।
"सकल शिरोमणि साँवरो सब गुण कला निधान।
तद्दपि कहे मैं हूँ प्रिये तव पद रेणु समान ।।२३।।"
जानत भलो प्रकार हैं श्याम प्रीति की शैलि।
अकुण्ठमेधा है अतः रसिक रसीलौ छैल[२] ।।२४।।

राधाधर सुधा सिन्धौ

विहरत हरि राधा अधर मधुर सुधा रस सिन्धु।
वर्णत हैं यह बात यौं श्रीपुराण स्कन्ध ।।२५।।
कृष्ण आत्मा[३] राधिका विहरत तिन संग श्याम।
अतः कहें विद्वान सब कृष्ण आत्माराम ।।२६।।
प्रिया कृष्ण की आत्मा यह जब सब को ज्ञात।
विहरें प्रिया अधर हरी, कहा बड़ी तब बात ।।२७।।
पद्म वराह पुराण में लिखी मिली यह बात।
श्रीनरहरि प्रह्लाद को प्रेम सों चाटत गात ।।२८।।

१—"शब्द ब्रह्म परब्रह्म उभे में शाश्वती तनू।" (भा० ११ स्कन्ध)
२—प्रीति की रीति रंगीलौहि जाने। यद्यपि सकल लोक चूड़ामणि दीन अपनपौ माने ।। (श्रीचतुराशीजी)
३—आत्मा तु राधिका तस्य तथैव रमणादसौ।
आत्माराम तथा प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढ़ वेदिभिः ।। (स्कन्ध पुराण)

सींचत जब निज भक्त को अधर सुधा रस पाग ।
अँग अँग चूमें न क्यों प्रिया मूरति अनुराग ॥२९॥

नित्य विहारिणे

चौपाई—"नित्य[१] विहार कहत हैं ताह । मिले रहत मिलवे की चाह ॥३०॥
जब दर्शे तब परशन चाह । जब पर्शे तब दर्शन दाह ॥३१॥
तन मन मिले मिलन की आश । अँग अँग शिथिल मन्दगति श्वास ॥३२॥"
दोहा—"दर्श सु कहिये प्रेम रस परश केलि सुख काम ।
गौर श्याम आसक्त अति रोम रोम अभिराम ॥३३॥
विधुरन देत सो प्रेम है अँगनि उमँग सो काम ।
रस सागर विलसत रसिक रोम रोम अभिराम ॥३४॥
स्मर प्रेम रसमय भये तन मन प्राण अधार ।
क्रीड़त कामिनि कन्त ये ताको कहत विहार ॥३५॥"
यद्दपि यह प्रलयादि में होय नष्ट[२] संसार ।
पर विहरें प्रीतम प्रिया दोउ गलवहियाँ डार ॥३६॥
छिन छिन बाढ़े यद्यपि अरु नूतन प्रीति अपार ।
पल पल प्रिया छकावती छके न प्रेम भिखारि ॥३७॥
लाउ लाउ अरु लाउ अरु लेहु लेहु घन श्याम ।
दोउन की रट यह लगी कोउ न पाय विराम ॥३८॥

राधां कृष्ण स्वरूपां वैकृष्णं राधास्वरूपिणम् ।
कलात्मानं निकुञ्जस्थं गुरुरूप सदा भजे ॥२॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं निकुञ्जस्थ उन श्रीराधा कृष्ण को भजता हूँ जो परस्पर एक दूसरे के स्वरूप हैं अर्थात् श्रीराधा श्रीकृष्ण स्वरूपा हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधा स्वरूप हैं; जो काम बीज की आत्मा अर्थात् उत्पत्ति स्थान हैं और जिनका गुरु तत्व से अभेद वपु है ॥२॥

१—नित्य विहार के लक्षण "श्रीललित किशोरदेवजी" की वाणी से उद्धृत करके लिखे गये हैं। (चौ० ३१-३२ तथा सा० ३३-३४-३५)

२—"चन्द्र मिटे सूरज मिटे मिटे त्रिगुण विस्तार ।
दृढ़ व्रत श्रीहरिवंश को मिटे न नित्य विहार ॥" (श्रीहिताचार्य श्रीहित हरिवंश गोस्वामी)

॥ भावार्थ ॥

दोहा—ग्रन्थकार आचार्य अब ऐसे करें बखान।
मन्त्र, गुरु, प्रीतम प्रिया ये सब एक समान ॥१॥
"कृष्णरूप श्रीराधिका राधे रूपा श्याम।
दर्शन को ये दोय हैं हैं एकहि सुख धाम ॥२॥"
असित पीत दोउ लाख सम नवल छैल अरु बाल।
पृथक पृथक ये गात क्यों लगी विरह यह ज्वाल ॥३॥
पीघले तन एके भये एक स्वरूप सुजान।
भयो भेद निर्धूत[1] भ्रम लगी जो विरह कृशान ॥४॥
बँधत न पर फिरहु दुहुन इतने हु पर धीर।
एक दूसरे को लखन बाढ़ी दर्शन पीर ॥५॥
छिन छिन अतः रमनी[2] रमन रमन रमनि धरि रूप।
राधे कृष्णा कृष्णा राधे महामन्त्र अनुरूप ॥६॥

कलात्मानम्[3]

दोहा—मेलि छैल गल बाहु निज करत अकेलि सुकेलि।
तरु तमाल तें करत जनु कनक बेलि अठखेलि ॥७॥
सूक्ष्म कलरव प्रिया पद नूपुर[4] तें जब होय।
झीनी झीनी क्वणित कल काम बीज ही सोय ॥८॥
काम बीज को अर्थ[5] सब अष्ट दशाक्षर मंत्र।
मंत्र और कल एक हैं ऐसे कहते तन्त्र ॥९॥

१—राधाया भवतश्च चित्त जतुनी स्वेदैर्विलाप्यक्रमाद्।
युञ्जन्नद्रि निकुञ्ज कुञ्जरपते निर्धूत भेद भ्रमम् ॥
चित्राय स्वमन्व रञ्जयदिह ब्रह्माण्ड हर्म्योदरे।
भूयोभि नव राग हिंगुल भरेः श्रृङ्गार कारुः कृती ॥ (श्रीउज्ज्वल नीलमणि)
२—"न स रमण न हम रमणी। दुहुमन मनोभव पेशल जानि।" (श्रीचण्डी दासजी कवि)
३—"कल" शब्द का अर्थ काम बीज श्रीमद्भागवत रास में "जगौ कल" की व्याख्या में इसी प्रकार किया है। "अत्र श्लेषांतरेण काम बीजं जगौ"। (वैष्णव तोषणी)
४—श्रीराधापद कमल तें नूपुर कलरव होय।
निर्विकार व्यापक भयो शब्द ब्रह्म कहें सोय ॥ (महावाणी सिः सु)
५—एतस्यैव हि मंत्रस्य शिष्टं विवरणं स्मृतम्।
तेषु क्लर्थश्च व्याख्या तोद्वाभ्यां पद्भ्यां बुधोत्तमैः ॥ (श्रीरहस्य शोडषि)

काम बीज के जब दोऊ, हैं यह उदगम ठाम।
याते कल की आत्मा, प्रिया श्याम अभिराम ॥१०॥

निकुञ्जस्थम्

दोहा—लाल लसे ललना हिये प्रिया लाल हृत कंज।
एक दूसरे के बसें गहवर हिये निकुंज ॥११॥

गुरुरूपम्

दोहा—हरि सतगुरु में भेद[१] नहीं, हैं दोऊ एक समान।
कहें संत महावाणि यों, सबहिं वेद पुराण ॥१२॥
पर अगले श्लोक से, परम्परा हि मिलान।
करें यहाँ गुरु शब्द को, अर्थ हंस भगवान ॥१३॥
कहें हंस अवतार[२] वरु, परमहंस[३] आचार्य।
तउ अभेद[४] हैं युगल तें इनको सभी प्रकार ॥१४॥
कियो विशेषण युगल को याही तें गुरु रूप।
गुरु तत्व प्रीतम प्रिया तत्व रूप अनुरूप ॥१५॥

मूल—हरिणीं हारिणीं हृणां ह्लीतां च चतुर क्रियाम्।
कौमारीं सततं वन्दे तप्तचामीकर प्रभाम् ॥३॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं हरिणी हारिणी हृणा और ह्लीता इन चार कुमारियों की जो प्रियाजी की अंग संगिनी सखियाँ हैं निरन्तर वन्दना करता हूँ जो कि चार क्रिया रूपा हैं और जिनकी कान्ति तप्त स्वर्ण सरीखी है।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—सनक सनन्दन सनातनः विधि सुत सनतकुमार।
प्रिया अंग संगनि[५] सखी ह्वै राजत अनुसार ॥१॥
मंगल विग्रह दिव्य प्रिये सोहत सब अनुरूप।
शिष्य हंस भगवान् के चारों चार स्वरूप ॥२॥

१—सतगुरु के मारग पग धारे। हरिसत गुरु विच भेद न पारे॥ (महावाणी सि: सु)
२—मत्स्याश्व कच्छप नृसिंह वराह हंस राजन्य विप्र विबुधेषु कृतावतारः। (भा: १० स्कन्ध)
३—"परमहंस आचार्य का अद्भुत हृदगत इष्ट। (भा: उ: सु)
४—"आचार्य मां विजानीयात्"। (भा० ११ स्कन्ध)
५—यदि इनको श्रीरंग देवीजी के यूथ में वर्णन करें तो गुरु रूपा परम्परा में विरोध होता है अतः ये अंग-संगनियाँ हैं।

ह्रिणी१ हरि अभिलाषिणी हरि अनुचारिणी जोय ।
सनक कनक ह्वै जेहरी झनक करत पद सोय ॥३॥
ह्री मन हरणी हारिणी२ ह्वै कर हिय को हार ।
कुचन बीच ररि राजति चतुर सनन्दन चारु ॥४॥
ह्रीणां३ लज्जा स्वामिनी चतुर सनातन नाम ।
भूषित भूषण रूप धरि मनो लाज अभिराम ॥५॥
सुरति केलि विकसित करन लाल बाल सुकुमारि ।
विगत लाज राजत ललित ह्रीतां४ सनत कुमार ॥६॥
लाज स्वामिनी नामिनी ह्रीणां हरि चित चोर ।
विगत लाज ह्रीतां ललित राजत दोउ एक ठोर ॥७॥

मूल—मुग्धांस्निग्धांविदग्धाञ्चा सन्दिग्धां चतुरक्रियाम् ।
वन्देऽऽरुणिक्रियाभासां देवर्षिप्रमदाकृतिम् ॥४॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं सखी स्वरूप उन देवर्षि नारदजी की वन्दना करता हूँ जिनकी कृपा की आभा श्रीअरुणि ऋषि अर्थात् श्रीनिम्बार्क भगवान पर है और जो चार क्रिया रूपों अर्थात् मुग्धा, स्निग्धा, विदग्धा, तथा असन्दिग्धा रूपों से अंगसंगिनी होकर विराजती हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—वन्दों श्रीनारद चरण अरुण रुचिर सुख पुंज ।
चार स्वरूप अनूप जो राजत मंजु निकुंज ॥१॥
निम्बार्क भगवान जो सम्प्रदाय कर मूल ।
तिन पर इनकी दृग कृपा भई भली अनुकूल ॥२॥
मंगल विग्रह प्रिया के सखी स्वरूप ऋषीराज ।
अंगसंगनि ह्वै राजती यह विधि सब सुख साज ॥३॥

१—जेहरि ह्वै रही हरि अभिलाषिनी अनुचारिनी । (म० वा० सि: सु)
२—हरिमन हरनी हारहिये पर । सदा विराजत कुचनि बीच ररि । (सि: सु)
३—ह्री+ईनाम=लज्जा स्वामिनी । जो रस बढ़ाती है । यथा "नेति नेति वचनामृत सुनि सुनि पियहिये बढ़त मनोज ।" (से: सु:)
४—ह्री+ईताम्=विगत लज्जा । यथा "व्रीडहि तजि क्रीडहि विवि विहार ।" (म० वा० उ० सु)

मुग्धा[१] अति भोरी प्रिया लसत करत मन मुग्ध ।
तदपि चतुर चौंसठ कला याते नाम विदग्ध[२] ॥४॥
सहज स्निग्धनि[३] सुठि सरल विलसत निज अनुरूप ।
नेह निवासनि नवल नट नागर नेह स्वरूप ॥५॥
असन्दिग्धा[४] परताप तें निस्संदेह बिहार ।
विहरत प्रिय तजि विरह भ्रम पल पल पियहिं निहार ॥६॥

मूल—शिञ्जन्नूपुर पाद पद्म युगलां हंसीं गतिं विभ्रतीम् ।
चंचत्खंजनमंजु लोचन युगां पीनोल्लसत्कन्धराम् ॥
शुम्भत्कांचन कङ्कणद्युति मिलत्पाणौचलच्चामरम् ।
कुर्वाणां हरि राधिकोपरि सदा श्रीरंगदेवीं भजे ॥५॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं श्रीरंगदेवी जू के युगल चरणारविन्दों को सदा भजता हूँ; जो हंस गति से गमन कर रही हैं; एवं इस प्रकार चलने से स्वर्ण नूपुर शब्दायमान हो रहे हैं। जिनके नेत्र कमल खंजन पक्षी की तरह से चंचल हैं; जिनके हस्त कमल कन्धे पुष्ट तथा उल्लसित हैं; जिनके हस्त कमलों की प्रभा से स्वर्ण के कंकण देदीप्यमान हो रहे हैं और जो इन हस्त कमलों में घूमते हुए चँवरों को प्रिया प्रीतम पर करने के लिए धारण किये हुए हैं।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—नीम सरिस कटु जगत मथि प्रेम भक्ति रस सोधि ।
लिए उवार प्रचार करि जिन जन जगत पयोधि ॥१॥
निम्बार्क भगवान जे जिन पद कोटि प्रणाम ।
श्रीरंगदेवी स्वरूप तें जो सेवें प्रिये श्याम ॥२॥
वृन्दावन उत्तर सुदिश कलित कलिन्दी कूल ।
मंजु कुंज सुख पुंज तहां बनी रुचिर अनुकूल ॥३॥
करि सोलह शृङ्गार सखि ह्वै आसन आसीन ।
शयित लाल ललना ललित भई ध्यान में लीन ॥४॥

१—"मुग्धा" श्रीप्रिया जू के नामों में से एक नाम है अथवा अत्यन्त भोरी ।
२—आप चौंसठ कलाओं में अत्यन्त विदग्धा अर्थात चतुरा हैं ।
३—स्निग्धा अर्थात् नेह स्वरूपा जैसा वर्णन है :—
"सहज स्निग्धनि नेह निवासा ।" (महावाणी सि: सु)
४—असन्दिग्धा अर्थात जिसके प्रभाव से श्रीलाल ललना का कभी विच्छेद नहीं होता है ।

झीनी झीनी क्वणित कल करण झरोखन नाक।
भई, उठी, पुनि गुनि सुनी लगी झरोखन झाँकि ॥५॥
लखी सवे आश्रित सखी भूषण सजी अपार।
वारहि वार जुहारिहैं पलकनि लहिं जुहारि ॥६॥
प्रीतम प्रिया जगान हित सब सखि भरी उमँग।
चली रंग देवी भली लिये सवन कों संग ॥७॥
ग्रन्थकार आचार्य प्रभु अब यों करें बखान।
जे विधि चली अली भली श्रीरंगदेवि सुजान ॥८॥
चाल मराल निरालनि पद नूपुर झनकार।
खंजन मद गंजन चलत चंचल लोचन चारु ॥९॥
चंकन कर कंकन कनक झनक तनकते जाँय।
पीन पुष्ट स्कन्ध पर चँमर भमर सी खाँय ॥१०॥
कुमर कुमरि पर ढरन को चँमर मनहु ललचाँय।
आतुर से चातुर हिलें कब नागरहिं रिझाँय ॥११॥
आवत मन भावत भली यह विधि चली सुजान।
विनवऊँ तिन पद कमल को नमऊँ जोरि युग पानि ॥१२॥

मूल—नव्यां नूतन चीर धारणपरां नील प्रभाद्योतिताम्।
नीलेन्दीवर दीर्घ सुन्दर दृशां नीलं निरीक्षद्वनम् ॥
वृन्दारण्यनिकुंज वास मुदितंराजीवनेत्रं हरिम्।
ध्यायन्तींधरणिस्थिरेण मनसा श्रीनव्यवासांभजे ॥६॥[१]

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रीनव्यवासाजी को भजता हूँ जो नये नये वस्त्र धारण करने में तत्पर हैं और जो श्रीवृन्दावन निकुंजस्थ प्रसन्न चित्त कमलदल लोचन हरि का धरणी की तरह

१—मूल श्लोक से ऐसा प्रतीत होता है कि सखी केवल श्रीलाल जू का ध्यान कर रही है। परन्तु यह बात श्रीमहावाणी ग्रन्थ के संगत नहीं है। यहाँ यह समझना चाहिए कि श्रीनव्यवासाजी सुरति केलि विलास आरूढ़ रसिक दम्पति का ध्यान कर रही हैं जिस विलास में केवल श्रीहरि का ही दर्शन हो रहा है जैसे कि वर्णन है :—

"मन मोहन मन मोहिनीजू भीने रंग अपार।
....
मनो दवी ह्वै अचल चंचला घन श्यामल के भार॥" (म: वा: से: सु: पद: ८२)

निश्चल मन से ध्यान कर रही हैं; जिसके प्रभाव से नील कान्ति देदीप्यमान हो रही है और इनके नील कमल सरीखे बड़े बड़े सुन्दर नेत्र कमलों की कान्ति से वन भी नीला दीख पड़ता है।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—श्रीनिवास आचार्य प्रभु प्रणवऊँ तिन पद कंज।
सखी स्वरूप तें लसहिं जो नव्य वास नव कुंज ॥१॥
पहन पटल तन नवल सखि निश्चल धरणि समान।
नील मणि श्रीश्याम छवि धरहिं हियें निज ध्यान ॥२॥
इकले विकले श्याम नहिं दुरी प्रिया अभिराम।
मनहुँ छिपी घन श्याम में दिपिलिपि घन वाम ॥३॥
इहि विधि ध्यान मगन लगन लगी पगी सुख मूल।
लगी नील द्युति फूटि के नील कमल दृग झूल ॥४॥
रोम रोम तें व्योम तक सोम भूमि पर्यन्त।
नील प्रभा तन फूटि के छूटन लगी अनन्त ॥५॥
नील हंस सारस सलिल धवल अमल गृह नील।
झलक झला झल झलमले चहुँ दिशि नीलहिं नील ॥६॥
लखहिं नील आँगन अजिर नील पताका केतु।
कलश झरोखन मोख सब नील सरित सर सेतु ॥७॥
शुक पिक मृग सुरभी धवल नील अरुण सित कंज।
नील कुसुम फल नील सब वृन्दारण्यनिकुंज ॥८॥
सकल भुवन चर अचर जिन रंगे युगल रंग एह।
कोटि वार विनऊँ नवऊँ अरुण कमल पद तेह ॥९॥

मूल—वचनेऽमृतसागरायतीं गमने मत्त सुरद्विपायतीम्।
हसनेऽमलमौक्तिकायतीं सततं श्रीसखिविश्वभांभजे ॥७॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं निरन्तर उन श्रीविश्वाभा सखीजी को भजता हूँ; जिनके बोलने में मानों अमृत के सागर लहरा रहे हैं; जिनका गमन देवताओं के मस्त ऐरावत हाथी सरीखा है और जिनकी हँसन स्वच्छ मोतियों के बिखरने के समान है।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–विश्वाचार्य चरण कमल वन्दों जन मन रंज ।
विश्वाभा सखि रूप तें लसहिं अनूप निकुंज ॥१॥
बोलन जिन सागर सुधा इन्द्र दुरद मद चाल ।
हंसहिं लसहिं वर्षहिं अमल सरसहिं जनु मुक्ताल ॥२॥
वन्दों पद अरविन्द में अभिनन्दों सखि एश ।
जोरि युगल कर करहु मैं सतत दण्डवत तेषु ॥३॥

मूल–उत्तमाङ्ग परिरक्षणस्थिरा मुत्तरोत्तर रस प्रदायिनीम् ।
स्वामिनी प्रणय पूरनिर्भरामुत्तमां च शिरसाऽभिवादये ॥८॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रीउत्तमा सखीजी को शिर से अभिवादन करता हूँ, जो उत्तमाँग अर्थात् मस्तक की सेवा अथवा रसिक दम्पति के सर्वांगों की सेवा करने में निपुणा हैं; जो उत्तरोत्तर अधिक से अधिक रस प्रदान करने वाली हैं और जो श्रीस्वामिनीजी के प्रेम की पूर्ण भाजन हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–पुरुषोत्तम आचार्य प्रभु पद शत कोटि प्रणाम ।
उत्तम सखि ह्वै कुंज में सेवें जो प्रिये श्याम ॥१॥
उत्तमाँग कहें भाल को प्रिया लाल को भाल ।
मलें फुलेलहिं सखि सुभग करि सग बग कच जाल ॥२॥
यह विधि सेवा करन में लीला रुचिर रचाँय ।
बढ़े परस्पर रस अधिक मुदित युगल मुस्काँय ॥३॥
मङ्गलविग्रह दिव्य यदि उत्तमाङ्ग को अर्थ ।
होय फेर श्लोक को यह विधि सुन्दर अर्थ ॥४॥
रस विशेश आवेशतें समझें निजहि अकेलि ।
हरन विकलता रछन तन करत सहेलि सुमेलि ॥५॥
ढाँप ढाँप सखि प्रिया तन रछत अँग घनश्याम ।
होयँ विकल जनि श्याम कहूँ निरखि अँग अभिराम ॥६॥
उत्तरोत्तर रस दायिनी यासों सखी कहाय ।
करें विविधि विधि केलि यह प्रीतम प्रियाहि रिझाय ॥७॥

एक एक रस माधुरी पुरी भरी रंग रेलि ।
खेल खिलावें दुहन को रस रंग भरी सहेलि ॥८॥
प्रिय प्रीतम प्रीतन प्रिया दुउन प्रेम रंग बोरि ।
करें सखी गठ जोरना मुस्कहिं प्रिय मुँह मोरि ॥९॥
प्रिया प्रणय पूरण भरी सनी जु सखी स्नेह ।
जोरि पाणि विनवऊँ नवऊँ पद सरसीरुह तेह ॥१०॥

मूल—निजदास विलास दायिनीं निजनाथैक गुणौघगायिनीम् ।
वयसा नयनेन्दु[1] हायिनीं सुविलासां शिरसा नतोऽस्म्यहम् ॥९॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रीविलासा सखीजी को शिर से नमन करता हूँ जो अपने आश्रित दासों को रसिक दम्पति का रस विलास प्रदान करती हैं; जो अपने स्वामी युगल के ही गुण समूहों को गाती रहती हैं और जिनकी वयस १२ वर्ष की है ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—श्रीविलास आचार्य जो ह्वै सखि रूप विलास ।
युग पद कोटि प्रणाम तिन सेवहिं जो सुख राशि ॥१॥
प्रीतम प्रिया विलास सुख दें निज दासन दान ।
ह्वै मन मगन मधुर स्वरन करहिं युगल गुण गान ॥२॥
वय जिन बारह वर्ष की मानहु मध्य किशोर ।
ऐसी सखी विलास को भजहुँ युगल कर जोरि ॥३॥

मूल—रस सागर पार धोरणीं रस रूपामृत चन्द्रतोरणीम्[2] ।
सरसस्मित हास्य वादिनीं सरसां रासकरीं भजामहे ॥१०॥

॥ शब्दार्थ ॥

हम उन श्रीसरसा सखीजी को भजते हैं जो रसिक दम्पत्ति को रस रूपी सागर से पार ले जाने में समर्था हैं; जो रस रूपी अमृत के स्राव के लिए चन्द्रस्थानीय तोरण

१—ज्योतिष साहित्यकार नयन से २ इन्दु से १ अङ्क लेते हैं । ऐसे २१ हुए । "अङ्कानां वामतो गतिः ।" इस न्याय से १२ वर्ष हुए अर्थात् सखी की वयस मध्य किशोर हैं ।

२—"तोरणीम्" अर्थात् वहिर्द्वार । नित्य बिहार रस सखियों कृपा से ही भूमण्डल पर आया है । सखियाँ श्रीआचार्य वपु से पृथ्वी पर पधारी हैं उन्होंने यह रस प्रकट किया है । अतः सखियाँ इस रस को प्रकट करने के लिए वहिर्द्वार स्वरूपा हैं । यथा "चलहु चलहु चलिये निज देश ।" इत्यादि मः वाः सिः सुः पदः १२

अर्थात् बहिर्द्वार स्वरूपा हैं और जो सरस मुस्कराती हुई हास्य युक्त बोलती हैं और जो रास सुख को प्रकट करने वाली हैं।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–श्रीस्वरूप आचार्य जो सरसा सखी अनूप।
वन्दों सेवें कुंज नव मंजुल युगल स्वरूप ॥१॥
सुरति केलि आवेश तें जब दोउ होंय अचेत।
नूतन खेल खिलावहीं तब सखि करत सचेत ॥२॥
रस सागर में दुहन कों होन न देवहिं लीन।
पारधोरणी सिन्धु रस यों सखि सरस प्रवीन ॥३॥
रस सागरहिं प्रसारणी उद्गम जनु रस धार।
रस रूपामृत हेत जनु सखि विधु वाहिर द्वार ॥४॥
बोलहिं मधुर सुधा स्रवहिं हांसी हंसहिं जु मन्द।
छावत छवि वृन्दाविपिन कलित कला जनु चन्द ॥५॥
ऐसी सुन्दर सुघर सुठि सरसा सखि सुख राशि।
रास केलि रस में पगी भजहुँ पद्मपद तासु ॥६॥

मूल–मधुरां मधुर प्रभाषिणीं हरिराधा रतिरंग साक्षिणीम्।
शशिकोटिविकाश सुस्मितां प्रणमामि प्रणतात्मनि स्थिताम् ॥११॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रीमधुरा सखीजी को प्रणाम करता हूँ; जो मधुर भाषण करने वाली हैं; जो श्रीप्रिया प्रीतम की सुरति केलि विलास का प्रत्यक्ष अवलोकन करती रहती हैं; जिनकी मुस्कराहट करोड़ों चन्द्रमाओं के विकास के समान है और जो आश्रितजनों के हृदयों में स्थिरभाव से विराजती हैं।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–श्रीमाधव आचार्य प्रभु मधुरा सखि सुठ नाम।
भजहुँ तिनहिं मैं हृदय ते करिहों कोटि प्रणाम ॥१॥
मधुर वचन मृदु रस पगे स्रवहिं सुधा समविन्दु।
अरविन्दनतें झरेहिं जनु मन्द मन्द मकरन्द ॥२॥
सुरति केलि प्रीतम प्रिया लखि सखि अक्षि समक्ष।
रन्ध्र जाल करि चक्षु सखि पावहिं सुख प्रत्यक्ष ॥३॥

कोटि सुधाकर सित प्रभा सखि मुख हास्य उजास ।
वन्दों राजत सतत जो स्थिर उर जो निज दास ॥४॥

मूल—भवतापहरां भयापहां भवपाथोधितरीं दया पराम् ।
दलिताम्बुज नेत्र शालिनीमतिभद्रां मनसा स्मरे मुदा ॥१२॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन अतिभद्रा सखीजी को हर्ष पूर्वक मन से स्मरण करता हूँ; जो कि संसार के तापों तथा भयों को हरण करने वाली हैं; भव सागर से पार होने के लिए जो नौका स्वरूपा हैं; दया करनें में तत्पर हैं; और जिनके नेत्र खिले हुए कमल के समान शोभायमान हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—श्रीवलभद्र आचार्य जो अति भद्रा सखि सोय ।
तिन पद कंज प्रणाम शत बार बार बहु होय ॥१॥
जो जग ताप विनाशनी भव भय हरन अनूप ।
भव सागर उद्धार हित जो जन नवका रूप ॥२॥
कलित कृपा युत ललित दृग कल कुवलय सम मंजु ।
सुमिरों ऐसी सखी के मुदित चित्त पद कंज ॥३॥

मूल—निज वर्ग मधुव्रतावलीढं कमनीयांगुलिपल्लव प्ररूढम् ।
स्वजनामल मानस प्रसूतं प्रियपद्मापद पंकजं स्मरामि ॥१३॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रीप्रिय पद्माजी सखी के चरणारविन्दों को स्मरण करता हूँ; जिनके चरणों की सुन्दर अँगुलियाँ कमल के पल्लवों के समान हैं जिन पर इनके आश्रित जन भौंरों की तरह मंडराते रहते हैं और जो उनके मनों को शुद्ध बनाने में समर्थ हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—प्रिय पद्मा सखी नामजो पद्माचार्य पुनीत ।
पुनि पुनि तिन पद प्रणवहुँ बहुरि नवऊँ सविनीत ॥१॥
कोमल पल्लव कमल सम अँगुलि जिन पद कंज ।
तिन पर राजहिं गुंजहिं आश्रित जन अलि पुंज ॥२॥

निज आश्रित जन मन मुकर करहिं सु उज्ज्वल जोय ।
बार बार सुमिरन करों पद्मा सखि पद सोय ।।३।।

मूल–श्यामां श्यामवयोन्विता परिलसन्नीलाम्बरं विभ्रतीम् ।
आकर्णायत नेत्र पङ्कजभरै रालस्यमातन्वतीम् ।।
लीला लोलमनंग रंग मधुर व्यापार भारावहाम् ।
राधाकृष्ण मुखारविन्दमतुलं संचिन्तयन्तीं भजे ।।१४।।

।। शब्दार्थ ।।

मैं उन श्रीश्यामा सखीजी को भजता हूँ; जिनकी वयस श्यामा अर्थात् मध्य कैशोर है; जो सुशोभित नील वस्त्र धारण किये हुए हैं; जिनके दीर्घ नेत्र कमल मद के आलस्य से भरे हुए कानों पर्यन्त सुशोभित हैं; क्योंकि इन नेत्रों ने रसिक दम्पति की मधुर अनंग केलि को देखा है इसलिये उस कार्य के भार को वहन करने से इनमें खुमारी चढ़ी हुई है, अतः आलस्य युक्त प्रतीत होते हैं; और जो प्रिया प्रीतम के मुखारविन्द की अतुल शोभा को चिन्तन कर रही हैं ।

।। भावार्थ ।।

दोहा–सुभग श्याम आचार्य श्री सखि श्यामा अभिराम ।
वन्दों सेवहिं सतत जो सुन्दर श्यामा श्याम ।।१।।
जिनकी श्याम किशोर वय पहन नील रंग चोल ।
कानन तक आलस्य भरे भ्राजहिं लोचन लोल ।।२।।
काम केलि प्रीतम प्रिया निरखि छके मद प्रीति ।
आलस युत कमनीय दृग तातें होंय प्रतीति ।।३।।
अनुपम मुख प्रीतम प्रिया करहिं चिन्तवन जोय ।
वन्दों बारहिं बार मैं अरुण चरण तिन सोय ।।४।।

मूल–वीणावादन – तारतानमधुरत्वाविष्करित्रीं मुदा ।
श्रीवृन्दावनचन्द्र कृष्णविलसत्पादाम्बुज ध्यायिनीम् ।।
राधाहार विलासभार कुशलां कुन्देन्दुभासा मुखीम् ।
इच्छा शक्तिरतां हरेः प्रियतरां श्रीशारदां सम्भजे ।।१५।।

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रीशारदा सखीजी को भजता हूँ; जो प्रसन्न चित्त से वीणा को उच्च स्वर से बजाने में मधुरत्व को प्रकट करती हैं; जो श्रीप्रियाजू के उन चरणारविन्दों का ध्यान कर रही है जो श्रीवृन्दावन चन्द्र श्रीकृष्ण से विलास प्राप्त हैं; जो प्यारीजू को प्यारे के गले का हार बनाने में कुशल हैं; जिन सखी का मुख कमल कुन्द पुष्प तथा चन्द्रमा की कान्ति सरीखा है; जो रसिक दम्पति की इच्छा शक्ति में रत है और जो श्रीहरि की अत्यन्त प्यारी है ॥

॥ भावार्थ ॥

दोहा–श्रीगोपालाचार्य जो शारद सखी सुजान ।
बीन बजावहिं उच्च स्वर निसरत मधुरी तान ॥१॥
धरें ध्यान ह्वै मगन मन सखि उन पद अरिविन्द ।
जे विलसत कल कमल कर श्रीवृन्दावन चन्द ॥२॥
कुन्द इन्दु वदनी सखि यह विधि केलि कराँय ।
जे विधि श्याम तमाल तें कनक लता लपटाँय ॥३॥
इच्छा शक्ति स्वरूप सखि जो हरि मन अनुकूल ।
ताते प्यारी दुहन की भजहुँ ताहि सुख मूल ॥४॥

मूल–करेणोत्तरीयं हसन्तीं दधानांद्वितीयेन फुल्लारविन्दं वहन्तीम् ।
लसत्पीनवक्षोज सत्पुष्पहारां सदा संस्मरेऽहं कृपालामुदाराम् ॥१६॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन अत्यन्त उदारा कृपाला सखी जू को सदा स्मरण करता हूँ; जो एक हाथ में चूनरी को हँसती हुए लिए हुए हैं और जो दूसरे में खिले हुए कमल को थामे हुए हैं और जिनके भारी वक्षोजों पर सत्पुष्पों (जो कभी नहीं मुरझाते) का हार सुशोभित हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–कलित कृपा आचार्य श्री सखी स्वरूप कृपाल ।
सुमिरों तेह सखि के सदा युगल कमल पद लाल ॥१॥
एक हाथ चूनर गहें दूजे खिले सिरोज ।
सत पुष्पन को हार जिन सोहत उर वक्षोज ॥२॥
के नव सत शृङ्गार हित गहें चूनरी कंज ।
फाग खिलावनहित किधों ऐ दम्पति मन रंजु ॥३॥

किये मनोरथ मनहिं मन जात सखि मुसकात ।
आज खिलाऊँ फाग दोउ उर नहीं प्रेम समात ॥४॥
जबहिं फाग अनुराग में जेहें लालजू हारि ।
तब चढ़ाऊँ यह चूनरी देऊँ छरी सुकुमारि ॥५॥
जब दोउ चाँचरि खेलहिं उडहिं आँचर छोर ।
ते आनन्द समुद्र में तब में होऊँ विभोर ॥६॥
बोरि बोरि निज मन रंगे रस रंग युगल किशोर ।
ह्वै विभोर आनन्द पगे सुमिरों तेह कर जोरि ॥७॥

मूल— रणच्चारु पादाम्बुज न्यास निर्जिद्-
गजेन्द्रामुरो मौक्तिक स्फारहारां ।
सुधा माधुरी हारि मन्दस्मितास्यां
भजे देवदेवीं सुर प्रार्थ्य दास्याम् ॥१७॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन देवदेवी सखीजी को भजता हूँ जिनका दास भाव प्राप्त करने के लिए देवता भी इच्छा करते हैं; जिनके उन चरण कमलों में शब्दाय नूपुर हैं; जिनकी गति न्यास ने देवताओं के ऐरावत हस्ती की चाल को भी तिरस्कृत कर दिया है; जिनके वक्षोजों पर मोतियों का हार सुशोभित है और जिनकी मन्द मुस्कान अमृत की माधुरी को हरण करने वाली है ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—भजहों देव देवी सखी देवाचार्य पुनीत ।
दास भाव देवहुँ चहें निज पद ह्वै सविनीत ॥१॥
पद नूपुर कल क्वणित युत मंजुल रहे विराज ।
निज पद चालनिरखि निरखि लजहिं इन्द्र गजराज ॥२॥
सोहत जिन वक्षोज पर धवल मोक्ति को हार ।
अमी माधुरी हरण हित हास्य कौमुदि चारु ॥३॥
ऐसी सुन्दरि सखी को देवहुँ सेवन चाँहि ।
तिन पद पद्मन वार बहु हम निज शीश नवाँहि ॥४॥

मूल— स्फुरत्सुन्दरोदार मन्दार हार
स्तन द्वन्द्व भारावसीदत्सु मध्याम् ।
लसद्धस्तविन्यस्त ताम्बूल पात्राम्
भजे सुन्दरीं सुन्दराकार छत्राम् ॥१८॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन सुन्दरी सखीजी को भजता हूँ जो सुन्दरता की छत्र स्वरूपा हैं अर्थात् अपनी सुन्दरता से जिन्होंने अन्य सुन्दरताओं को ढाप रखा है; जिनका मध्य प्रदेश वक्षोजों के भार से तथा शोभायमान सुन्दर मन्दार पुष्पों के हारों के भार से कुछ झुका हुआ है और जिनके हस्त कमल में पानदान सुशोभित है ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—श्रीसुन्दर आचार्य सखी सुन्दर भट्ट सुनाम ।
सुन्दरता सुख पुंजजों तिन पद कोटि प्रणाम ॥१॥
कुच विच विकसित कुसुम कल रुचिर हार मन्दार ।
झुकत लफत लचकत मनो सूक्ष्म कटि तिन भार ॥२॥
पानदान कमनीय अति सोहत पल्लव पाणि ।
सुन्दरि सखि पद वन्दिहों जो छवि छत्र समान ॥३॥

मूल— पादारविन्दं शिथिलं दधाना पद्मालया पद्म पराग रंजिता ।
पद्मानना पद्मकुचाभिरामा नमामि तस्याः पदपङ्कजं सदा ॥१९॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रीपद्मानना सखी के उन चरणारविन्दों को सदा नमस्कार करता हूँ; जिनको वे शनैः शनैः (पृथ्वी पर) रखती हैं; जो चरण, कमल के उत्पत्ति स्थान हैं अर्थात् कमल को सौन्दर्य आदि गुण आप से प्राप्त हुए हैं तथा जो चरण पद्म की पराग से रंजित और जिनके वक्षोज, पद्म सरीखे सुन्दर हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—पद्मनाभ आचार्य पद पद्मानना सखि जोय ।
अभिनन्दन वन्दन सुतिन पद अरविन्दन होय ॥१॥
अँग अँग जिनके पदम नाभि कुचानन पद्म ।
पद्म हस्त पद पद्म सखि मनोपद्म की सद्म ॥२॥

पद्मालया स्वरूप सखि जिन तन तें मकरन्द ।
उड़त मन्द मन्दहि चलत वन्दों पद अरविन्द ॥३॥

मूल– अनाप्नुवंस्तन्मुखचन्द्रमस्तुलां विधुर्गतः खां त्रपयाब्जराजः ।
जलेऽपतन्नास मुखाम्बुजश्रीः तामिन्दिरां चेतसि भावयामि ॥२०॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन इन्दिरा सखीजी की मन से भावना करता हूँ, जिनके सुन्दर मुखारविन्द की अतुलनीय शोभा को देखकर चन्द्रमा लज्जा से आकाश को उड़ गया और कमल इनके मुख कमल की शोभा को प्राप्त नहीं कर सका, अतः वह शरमा कर जल में डूब गया ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–श्रीउपेन्द्र आचार्यवपु सुभग इन्दिरा जेह ।
करों हृदय में भावना युगल कमल पद तेह ॥१॥
अतुलनीय मुख देखि जिन छई वदन विधु लाज ।
ह्वै हलको ऊपर उड़्यौ गयो भगन जनु भाज ॥२॥
लाज लज्यो जल विच दुरचो बूढ़ मरचौ अरिविन्द ।
मुख शोभा नहीं पास क्यों परचौ कीच के फन्द ॥३॥
सुन्दर सुभग सुजान सखि तिन पद कोटि प्रणाम ।
करौं दोऊ कर जोर के सुमिरौं पद अभिराम ॥४॥

मूल– कामाङ्गना कोटि मनोज्ञ रूपां
मुखप्रभानिर्जित रात्रि भूपाम् ।
स्वीय प्रिया स्नेह निधान कूपां
रामां स्मरे कृष्ण मनोनु रूपाम् ॥२१॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन रामा सखीजी का स्मरण करता हूँ; जो करोड़ों अप्सराओं से भी सुन्दर रूप वाली हैं जिन्होंने अपनी मुख कान्ति से चन्द्रमा को जीत लिया है, जो श्रीकृष्ण के मन के अनुरूप हैं इसीलिए अपनी प्रिया जू के स्नेह रखने के लिए आप खजाना स्वरूपा हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—रामचन्द्र आचार्य भट सखि रामा रमणीय ।
काम कामिनी तें कलित कोटि गुणी कमनीय ॥१॥
जीते जिन विधु मुख प्रभा सखि हरिमन अनुरूप ।
वन्दों इह सुन्दरि सखि प्रिया नेहनिधि रूप ॥२॥

मूल— प्रावृट् प्रफुल्ल नव चारु कदम्ब पुष्प-
हारा मुख द्युतिविनिर्जित चन्द्रतारा ।
कान्तांग संगजनितांक निदर्शनाय-
वामाकरोदभिलसन् मुकुरं स्वसख्याः ॥२२॥

॥ शब्दार्थ ॥

वह वामा सखी, जो वर्षा ऋतु में पैदा होने वाले सुन्दर नवीन कदम्ब के पुष्पों के हारों को पहने हुए हैं; जिन्होंने अपने मुख की कान्ति से चन्द्रमा तथा तारागणों का तिरस्कार कर दिया है; यह अभिलाषा करती है कि मुझको वह सौभाग्य कब प्राप्त होगा जब मैं अपनी प्यारी सखी उन श्रीप्रिया जू को दर्पण दिखाऊँगी जो अपने प्यारे लाल के अँग सँग से रति रस चिह्नित हो रही हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा—वामा सखि अभिराम जो वामन भट आचार्य ।
पावस खिले कदम्ब कुसुम रही हार उरधार ॥१॥
रति रस चिह्नित प्रिया मुख अँग सँग करि श्याम ।
तिन्हें दिखावन चहत सखि लै दर्पण अभिराम ॥२॥
जीती जिन मुख प्रभा तें विधु द्युति उडगण पान्ति ।
वन्दौं मैं ऐसी सखी सुन्दर जिन मुख कान्ति ॥३॥

मूल— कृष्णा महमभिवंदे युगल पदाम्भोजभावना मुदितां ।
कृष्ण रसायन तृप्तां साक्षादिव सिन्धुजां क्लृप्ताम् ॥२३॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन कृष्णा सखीजी की वन्दना करता हूँ जो श्रीरसिक दम्पति के चरणारविन्दों की भावना प्रसन्न चित्त से कर रही हैं; जो श्रीकृष्ण रसायन से तृप्त हैं और जो

साक्षात् उन लक्ष्मीजी सदृश रचित हैं जो सिन्धु से प्रकट हुई थी। (क्लृप्त का अर्थ कोष में रचित है)।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–श्रीकृष्णाचार्य भट सखि कृष्णा अभिराम।
प्रिया लाल पद भावना पगीं मुदित सुख धाम ॥१॥
निकरि सिन्धु तें जो लसें जनु कमला साक्षात।
कृष्ण रसायन तें छकी वन्दों पद जल जात ॥२॥

मूल– यमुना तीर निकुंजे मधुकरपुंजे विनिद्र तरु वृन्दे।
पद्मामहमभिवन्दे रटंतीं कृष्णेति कृष्णेति ॥२४॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन पद्मा सखीजी को अभिवादन करता हूँ जो श्रीयमुनाजी के किनारे उन निकुंजों में जहाँ खिले हुए पुष्पों वाले उन वृक्षों के समूह हैं जिन पर भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं "श्रीकृष्ण" "कृष्ण" रट रही हैं।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–पद्माकर आचार्य भट पद्मा सखि शुभजेह।
वन्दौं अभिनन्दौं चरण युगल कमल समतेह ॥१॥
कलित कलिन्दी कूल पर रुचिर कुंज एक मंजु।
तहं तरु विकसे कुसुम के गुंजहि जिन अलि पुंज ॥२॥
तेठाँ बैठी रटें सखि कृष्ण कृष्ण प्रिय नाम।
पै साधारण जाप नहिं गुप्त रहस्य अभिराम ॥३॥
प्रिया, लाल सँग होत हू प्रेम विकल जब होंय।
तब तिन कर्ण सचेत हित कहें कृष्ण सखि सोय ॥४॥
इसी भावना में पगीं रटें सखि हरि नाम।
ते सखि पद पद्मन करौं मैं शत कोटि प्रणाण ॥५॥

मूल– अयुतायुतेन्दु रूपां सकल सखि मालिकानूपाम्।
वन्देऽहं श्रुतिरूपां कोटि स्मर कान्ति सारूप्याम् ॥२५॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रुति रूपा सखीजी कोवन्दना करता हूँ जो करोड़ों चन्द्रमाओं-समान रूप वाली हैं, जो सकल सखियों की माला के लिए जलप्राय: प्रदेश रूपा हैं और जिनका रूप करोड़ों कामदेवों की कान्ति के समान सुन्दर है ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–श्रवण भट आचार्य वपु वन्दौं सखि श्रुति रूप ।
कोटि कलाधर सम प्रभा कोटि काम सम रूप ॥१॥
निज आश्रित सखि सुमनहित जो जल प्राय प्रदेश ।
प्रेम भक्ति जल दान करि मुदित रखें सखि तेषु ॥२॥
केधों कुसमन माल में जो सखि सुमन अनूप ।
तिन पद युगल कमल सरिस वन्दौं निज अनुरूप ॥३॥

मूल– मदनमोहन मोहन सुन्दरस्मितविलास कला सुकुतूहलाम् ।
प्रमुदितेन हृदात्वभिवादये मनसिभागवतीं भगवत्प्रियाम् ॥२६॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन भागवती सखीजी को हर्ष पूर्वक हृदय से मन में अभिवादन करता हूँ जो श्रीप्रिया जू की वह मन्द मुसक्यान रूपी विलास कराने में चतुर खिलाड़ी हैं जिससे मदन मोहन का मन मोह को प्राप्त हो जाता है । और जो श्याम सुन्दर की अत्यन्त प्यारी हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–भूरि भट आचार्य वपु सखी भागवती जेह ।
अरुण चरण कुवलय सरिस अभिनन्दों युग तेह ॥१॥
जिन मुख मन्द सुहास लखि प्रिया मुदित मुस्काहिं ।
तिन प्रिय मुस्कन लखि स्वयं मन मोहन मोहिजाहिं ॥२॥
भगवत प्रिया सखि भागवती जो हरि मुस्कन मूल ।
वन्दौं इह सुन्दर सखि मुदित चित्त अनुकूल ॥३॥

मूल– वसन्त कालोदय पुष्पितानि द्विसंध्यरागायित पङ्कजानि ।
प्रिय प्रिया चारु पदाम्बुजेषु प्रीत्यार्पयन्तीं प्रणमामि माधवीम् ॥२७॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रीमाधवी सखीजी को प्रणाम करता हूँ जो श्रीप्रिया प्रीतम के चरणारविन्दों में दोनों संध्याओं में बसन्त काल में पैदा होने वाले पुष्पों तथा लाल कमलों को प्रीति पूर्वक समर्पण करती हैं।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–वन्दनीय सखि माधवी माधव भट सु नाम।
वन्दौं तिन के चरण में अरुण सरोज ललाम ॥१॥
ऋतु बसन्त विकसे सुमन बहु विधि कमल सुचारु।
दोउ संधिन तिन करत अलि युगल चरण उपहार ॥२॥
अथवा प्रिय प्रीतम सखी अंग संग करवाय।
रचि रचि लीला विविध विधि यह विधि सुखहिं बढ़ाय ॥३॥
मंगल विग्रह दिव्य प्रिये खिले कमल ननुसोय।
लाल दिव्य मंगल कमल जिन सहयोग जु होय ॥४॥
होय युगल सहयोग तन सोई कमल उपहार।
ऐसी सखि पद कमल को प्रणवऊँ बारम्बार ॥५॥

मूल– यच्छोभाभर जलधौ विधि मुखविवुधालयं ययुः सुचिरम्।
असितायाश्च तदास्यं शारद विधु मण्डलाकृतिं ध्याये ॥२८॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं श्रीअसिता सखीजी के उस मुख का ध्यान करता हूँ जो शरद कालीन चन्द्रमा के मण्डल की आकृति सदृश है; और जिनके मुख की शोभा रूप समुद्र में ब्रह्मा से आदि लेकर देवतागण बहुत काल पर्यन्त लीनता को प्राप्त हो गये थे।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–श्याम भट असिता सखी भज मन जनि भ्रमभ्रान्ति।
शरदचन्द्र मण्डल सदृश जिन मुख मण्डल कान्ति ॥१॥
विविधविवुधविधि हूँ निरखि जिन मुख विधु छवि नीक।
लजि बूढ़े इन छवि जलद लखिनिज मुख छवि फीक ॥२॥

मूल– शृंगार भारं विविधं विधाय प्रातः स्थितायां निज देवतायाः।
मुखारविन्दैक निरीक्षणाय गुणाकरी दर्पण माचकार ॥२६॥

॥ शब्दार्थ ॥

श्रीगुणकरी सखीजी विविध प्रकार के श्रृङ्गार भार से रसिक दम्पति को सुसज्जित करि के प्रातःकाल स्थित होकर; अपने इष्ट देव (श्रीप्रिया प्रीतम) के मुखारविन्दों को दिखाने के लिये दर्पण तैयार करती हैं।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–गुण करी गोपाल भट सखि गुण रूप निधान।
रे मन ते पद कमलरज फिर न करत किम ध्यान ॥१॥
नख शिख तें श्रृङ्गार करि नव सत युगल किशोर।
लै दर्पण ठाढ़ी सखी तिन लखान छवि भोर ॥२॥

मूल– द्विजराज कला विराजमानां मुखशोभाजित फुल्लकंजलक्ष्मीम्।
मृगराज कटिं मृगायताक्षिमहमीडे सततं सुवल्लभाख्याम् ॥३०॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन सुबल्लभा नामक सखीजी की निरन्तर स्तुति करता हूँ; जो चन्द्रमा की कला के समान सुशोभित हैं; जिनके मुख की शोभा ने खिले हुए कमल की शोभा को जीत लिया है; जिनकी कटि सिंह सदृश है और जिनके नेत्र मृग जैसे हैं।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–श्रीबलभद्र सुवल्लभा वन्दौं पद पुण्डरीक।
जिनमें रह सुख स्वाद लहि चंचल चित्त चंचरीक ॥१॥
हरिकटि मनहर हरिण दृग चन्द्र कला तन भान्ति।
मुख लाजत जलजात छवि राजत सखि इह भान्ति ॥२॥

मूल– शारदीय विधुविम्व मुखाभां कुन्द पंक्ति रदन श्रियमेकाम्।
तुंग पीन कुचभार विनम्रा मानतोस्मि शशि गौरतरांगीम् ॥३१॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन गौरतराँगी सखीजी को नमस्कार करता हूँ, जिनके मुख की कान्ति शरद चन्द्रमा के बिम्ब के समान है; जिनकी दन्तावली की शोभा कुन्द के पुष्पों की पंक्ति के समान अद्वितीय है; जो स्थूल वक्षोज के भार से कुछ झुकी हुई है और जिनके अंग की कान्ति चन्द्रमा सदृश गौर है।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–गोपीनाथ गौराँग सखि वदन शरद विधु बिम्ब।
तिन पद रेणु पराग छकि चंचल चित्त लोलम्ब ॥१॥
कुन्द कली दन्तावली गौर अँग शशि रँग।
लसें झुकीसी कछु सखी भार पीन कुच तुँग ॥२॥

मूल– मयूर पिच्छ द्युति हारि चामर प्रभातिरस्कारि निजप्रियायाः।
संगुम्फयन्तीं विलस्त कराभ्यां धम्मिल भारं प्रणमामि केशीम् ॥३२॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन केशी नामक सखीजी को प्रणाम करता हूँ; जो अपनी प्यारीजी की उस वेणी को जिसकी कान्ति मयूरपिच्छ तथा चँवर की प्रभा को तिरस्कार करने वाली है विलास पूर्वक अपने हस्तकमलों से गूथती हैं।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–केशव भट केशी सखी पद शत कोटि प्रणाम।
जो गूँथें कल कच रुचिर प्रिया वेणी अभिराम ॥१॥
जिन चिकुरन की द्युति रुचिर चमक दमक लखि नीक।
लाजत पिच्छ मयूर द्युति होय चमर छवि फीक ॥२॥
विलसें सुख जेह गुहि स्वयं कर कमलन सो श्याम।
गुहत सोई बड़भागिनी तिन पद पद्म नमामि ॥३॥

मूल– जगत्पवित्रं कुरुते हि यस्या दृगंत पातो वितनोति सौख्यम्।
श्रीस्वामिनी स्नेहनिधान भूतां श्रीकृष्ण मित्रां प्रभजे पवित्राम् ॥३३॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन पवित्रा सखीजी को भजता हूँ; जो श्रीस्वामिनीजी के स्नेह की खजाना रूपा हैं; इसी कारण से जो श्रीकृष्ण की मित्रता को प्राप्त हैं; जिनकी दृष्टिपात जगत को पवित्र करती है और अनिर्वचनीय सुख प्रदान करती है।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–गाँगल भट आचार्य वपु सखि शुभ नाम पवित्र।
वन्दौं तिनके मृदुल मैं अरुण चरण शत पत्र ॥१॥

सुख प्रसारिणी दृष्टि इन जगतहिं करन पवित्र ।
सखी नेह निधिप्रिया की त्यों प्रीतम की मित्र ॥२॥

मूल– काश्मीर पङ्काङ्कित हृत्सरोजां संभावित श्रीपतिपत्सरोजाम् ।
वनिद्र रक्तोत्पल लोचनाभ्याम् मुदास्मरे चेतसि कुङ्कमाभाम् ॥३४॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रीकुङ्कमाभा सखीजी को प्रसन्न चित्त से स्मरण करता हूँ; जिनका हृदय कमल काशमीर देशीय केशर के पङ्क से अङ्कित है; जिसने श्रीप्रियाजी तथा उनके पति श्रीलालजी की सेवा की है और जिनके नेत्र कमलों की शोभा खिले हुए लाल कमलों के समान हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–श्रीकेशव काशमीर भट कुङ्कमाभ सखि जेह ।
मुदित चित्त ह्वै करौं मैं चरण चिन्तवन तेह ॥१॥
सुरति केलि रस रँग में क्रीड़हिं युगल मयङ्क ।
तव प्रिय प्रीतम पद लगे यह विधि केशर पङ्क ॥२॥
प्रिया चरण केशर लगे लाल भाल तें छूटि ।
प्रिये कुच की केशर लसे हरिपद पद्म अनूठि ॥३॥
जब चांपत प्रीतम प्रिया चरण सखी उर लाय ।
सोई केशर तिन चरण की रही उरोजन छाय ॥४॥
अरुण नयन जिन लसत भल, कल कुवलय सममंजु ।
बार बार सुमिरन करौं ऐसी सखी पद कंज ॥५॥

मूल– समस्त नाना विधि देवतागणैः विरंचि गंगाधर शारदादिभिः ।
मूर्द्धाभिवन्द्यारुण पाद पद्मां श्रीश्रीहितां संतत मानतोऽस्मि ॥३५॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्री श्रीहितु सहचरीजी को निरन्तर प्रणाम करता हूँ; जिनके अरुण चरणारविन्दों में श्रीब्रह्माजी, श्रीगंगाजी को धारण करने वाले श्रीशङ्करजी तथा श्रीसरस्वतीजी आदि से लेकर सब देवतागण नाना विधि से नत मस्तक होकर वन्दना करते हैं ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–वन्दौं श्री श्रीभट गुरु, जो हितु सखी स्वरूप ।
नाना विधि सब देवगण सेवहिं जिन अनुरूप ॥१॥
सेवहिं सखि पद कमल सोउ वेद रचावन हार ।
जो त्राता धाता जगत चतुर विधाता चारु ॥२॥
हरि नख निर्गत पावनी धरी गङ्ग जिन शीश ।
सेवहिं सोऊ सखी पद ईश गिरीश महीश ॥३॥
वाणि पानिलै वीन नित करत रहत गुणगान ।
सोऊ सुजान हितु सखि चरन, करत रहत चित ध्यान ॥४॥
विधि शारद शिव देव फिर यह सखि क्यों सेवे न ।
जब सखि देखन को युगल रहें लगाये नैन ॥५॥

मूल– विलोहित प्रान्त विशाल लोचनां मुख प्रभा पूर्ण निशा करोपमाम् ।
सच्चामरालंकृत हस्त पङ्कजां श्रीरंगदेवीं मनसा स्मरामि ताम् ॥३६॥

॥ इति श्रीसखीनामरत्नावली स्तोत्रम् ॥

॥ शब्दार्थ ॥

मैं उन श्रीरंग देवीजी का मन से स्मरण करता हूँ; जिनके विशाल नेत्रों का प्रान्त कुछ रक्त वर्ण का है; जिनकी मुख प्रभा पूर्ण चन्द्रमा सरीखी है और जिनके हस्त कमल में सुन्दर चँवर सुशोभित है ।

॥ भावार्थ ॥

दोहा–ग्रन्थकार आचार्य श्री करत वन्दना फेर ।
"सखी नाम रत्नावली" को जो है सखि सुमेरु ॥१॥
जिन पञ्चम श्लोक में कियो प्रथम गुण गान ।
श्रीरँग देवि सुजान जो निम्बारक भगवान ॥२॥
सोहत जिन कर चमर भल अरु मुख द्युति विधु कान्ति ।
सुरँग रँग रंजित भये जिन दीरघ दृग प्रान्त ॥३॥
किधों निरख निज यूथ सखि तिन पर प्रेम भरपूरि ।
भये दया तें अरुण दृग, किधो युगल मद चूर ॥४॥

॥ इति श्रीसखीनाम रत्नावली स्तोत्र का सरल अनुवाद समाप्त ॥

॥ श्रीनिकुंजबिहारिणे नमः ॥

॥ श्रीमहावाणी ॥

श्रीसेवा सुख

[अथ श्रीपद विलास निकुंज रहस्य श्री महादिव्य राजराजेश्वर प्रवर परमहंस वंशाचार्य श्रीहरिव्यास देव जू कृत श्रीमहावाणी सेवा-सुख लिख्यते ।]

॥ दोहा ॥

जय जय श्रीहितु सहचरी भरी प्रेम रस रंग।
प्यारी प्रीतम के सदा रहतजु अनुदिन संग॥

॥ दोहा पद दोहा ॥

अष्ट काल वरनन करूँ तिनकी कृपा मनाय।
महावाणी सेवा जु सुख अनुक्रम तें दरशाय ॥२॥
सखी नाम रत्नावली स्तोत्र पाठ तहँ कीज।
पुनि गुरु सखिन कृपालु लहि युगल सेव चित दीज ॥३॥
प्रातःकाल ही ऊठि के धारि सखी कौ भाव।
जाय मिले निज रूप सो, याकौ यहै उपाव ॥४॥
मोहन मन्दिर चौक में, मिलि सब सखी समाज।
बीन बजावहिं गावहीं मधुर मधुर सुर साज ॥५॥

॥ दोहा ॥

सर्व प्रथम श्रीग्रन्थकार अनन्त श्रीविभूषित श्रीभट देवाचार्य जिनका सखी नाम श्रीहितु सहचरीजी है उनका अभिवादन करते हुए कहते हैं :—

उन हितु सहचरीजी की सदा जय हो जो प्रेम, रस तथा रंग से भरी हुई हैं और जो रसिक दम्पति के रात दिन सदा साथ रहती हैं। इनकी कृपा मनाय के मैं श्रीमहावाणी ग्रन्थ के अन्तर्गत वर्णित उस "सेवा-सुख" को वर्णन करने लगा हूँ जिसमें क्रम क्रम से अष्ट कालीन सेवा पद्धति दिखलाई गई है ॥१॥२॥

सर्व प्रथम साधक को "सखी नाम रत्नावली स्तोत्र" का पाठ करना चाहिए, फिर सखी स्वरूपा अपने श्रीगुरुदेवजी की कृपा प्राप्त करके श्रीप्रिया प्रीतम की सेवा में अपने चित्त को लगाना चाहिए ॥३॥

अब चित्त लगाने की विधि को बतलाते हुए कहते हैं—"प्रातःकाल ही ऊठि के धारि सखी को भाव।" "प्रातःकाल ही" अर्थात् निशान्त काल सेवा पद्धति के अनुसार जो काल रात्रि के अन्त में ३ बजकर ३६ मिनट पर प्रारम्भ होता है उस समय उठकर सखी का वेष नहीं, अपितु "भाव" धारण करके "निज" रूप से मिलना चाहिए। अब यह देखना है "सखी का भाव क्या है और "निज रूप" किस को कहते हैं :—

"सखी का भाव"

"कृष्ण प्रिया सखी भावं समाश्रित्य प्रयत्नतः।
तयो सेवां प्रकुर्वीत दिवा नक्तमतंद्रितः॥"

(सनत कुमार संहिता प० ३६ श्लो० १३४)

पुनः यथा :—

"आत्मानं चिन्तये तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूप यौवन संपन्नां किशोरी प्रमदाकृतिम्॥
नाना शिल्प कलाभिज्ञां कृष्ण भोगानु रूपिणीम्।
प्रार्थितामपि कृष्णेन तत्र भोग पराङ्मुखीम्॥
राधिकानुचरीं नित्यं तत्सेवन परायणाम्।
कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम्॥
प्रीत्यानुदिवसं यत्नात्तयोः संगम कारिणीम्।
तत्सेवन सुखास्वाद भरेणाति सुनिर्वृताम्॥
इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवां समाचरेत्।
ब्रह्म मुहूर्तमारभ्य यावत्स्यात्तु महा निशाम्॥"

(सः कुः संः पटल ३६ श्लो० १८४ से १८८ तक)

सेवा दो प्रकार से की जाती है। एक "वाहिक" दूसरे "आन्तरिक" यथा:— "सेवा साधक रूपेण सिद्ध रूपेण चात्र हि।" अर्थात् सेवा यथा अवस्थित देह द्वारा तथा अन्तश्चिन्तित देह द्वारा की जाती है। यहाँ सखी भाव कहने का अन्तश्चिन्तित देह से तात्पर्य है। अब उपरोक्त श्लोकों का अर्थ देखिये।

साधक को अन्तश्चिन्तित देह से श्रीकृष्ण प्रेयसी अर्थात् श्रीराधिकाजी की सखी भाव को यत्न पूर्वक आश्रय करके तथा निद्रा को त्याग कर अहर्निश उन दोनों की सेवा करनी चाहिये। (उसका प्रकार यह है) :—

अपनी आत्मा का इस प्रकार चिन्तवन करे कि मैं भी नित्य सिद्धा मनोरम सखियों में से हूँ। मेरी आकृति रूप यौवन सम्पन्ना किशोर अवस्था वाली है। मैं अनेक प्रकार की शिल्प तथा कलाओं में चतुरा हूँ। मैं कृष्ण भोग के अनुरूप होती हुई भी उनके प्रार्थना करने पर भी उनसे भोग विलास करने में पराङ्ग मुखी हूँ। मैं श्रीराधिकाजी की दासी होकर उनकी सेवा परायणा हूँ। श्रीकृष्ण से भी उनमें अधिक प्रेम करती हूँ। मैं उन दोनों के मिलन कराने के कार्य में प्रेम पूर्वक लग रही हूँ। उन दोनों की सेवा सुख का आस्वादन करती हुई परमानन्द में मग्न हूँ। इस प्रकार अपनी आत्मा का चिन्तवन करती हुए ब्रह्म महूर्त से लेकर अर्धनिशा तक उनकी सेवा करती रहे।

"निज रूप" के दो अर्थ हो सकते हैं। (१) गुरु दत्त रूप, अर्थात् दीक्षा प्राप्त समय गुरुदेव साधक को जो मंजरी स्वरूप प्रदान करते हैं। साधक अन्तश्चिन्तित देह से जिस स्वरूप का चिन्तवन कर रहा है उस देह का अपने गुरुदत्त रूप से सायुज्य कर ले इसीलिये मूल में कहा है "प्यारी सखी का भाव जा मिले निज रूप सो" अथवा (२) जैसे "श्रीमद्भागवत" में और "श्रीगोविन्द लीलामृत" में वर्णित है श्रीवैकुण्ठ और नित्य निकुंज में भावी पार्षदों और मंजरियों के चित्र या मूर्तियाँ हैं। साधक अन्तिश्चि-न्तित देह से उस स्वरूप से सायुज्य प्राप्त करे।

श्रीमद्भागवत, स्क ३, अः १५ श्लो० १४ में यथा

"वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठ मूर्तयः।
येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन् हरिम् ॥"

"जो साधक सब प्रकार की कामनाओं को छोड़कर केवल भगवच्चरण शरण प्राप्ति के लिए ही अपने धर्म द्वारा उनकी आराधना करता है उन पुरुषों की वैकुण्ठ में मूर्तियाँ रहती हैं।" (श्रीगोविन्द लीलामृत। सर्ग २१: श्लो० ११२)

"पंचालिकान्तरे अन्वेष्य पश्यनपि मुहुः प्रियाम्।
स्तवद्धां स्वालोकमुतभीभ्यां मेने पश्चालिका प्रियः ॥"

"उस कुंज भवन में जो सब सखियों की मूर्तियों से सुसज्जित था। एक बार कौतुहल से सखियों ने श्रीप्रियाजू को उन मूर्तियों में कहीं विराजमान करके छुपा दिया।

फिर प्यार से अपनी प्यारी को ढूँढ़ने के लिए कहा। सब मूर्तियों का रूप श्रीप्रियाजू सदृश था इसलिए लालजू नहीं पहिचान सके। परन्तु ज्योंही वे देखते-देखते प्रियाजू के निकट पहुँचे। श्रीलड़ैतीजू में लाल के मिलने के आनन्द से और छद्म खुलने के भय से स्तम्भ नाम सात्विक संचरित हुआ और वह मूर्ति सदृश स्तब्ध हो गईं।" भवतु।

उपरोक्त श्लोक से केवल यहाँ यह दिखाना है। नित्य-निकुंज में सब सखियों की मूर्तियाँ अथवा चित्र है। ग्रन्थकार का यह तात्पर्य है साधक अन्तश्चिन्तित देह द्वारा जो वहाँ निकुंज में स्वरूप है अपनी भावना से उससे जा मिले फिर और सखियों के साथ सेवा में लग जावे ॥४॥

"मोहन मन्दिर चौक में मिलि सब सखी समाज।
बीन बजावहिं गावहीं मधुर मधुर स्वर साज ॥५॥"

महावाणी सि: सु: में नित्य वृन्दावन का योग पीठ का वर्णन है। जिसके अन्तर्गत मोहन महल हैं इस महल के मध्य में कल्प वृक्ष के नीचे रसिक दम्पति का शयन भवन है जहाँ रात्रि में ये शयन करते हैं। निशान्त काल में सब सखियाँ युगल को जगाने के लिए उस मोहन महल के चौक में उपस्थित होती हैं। और मधुर मधुर स्वरों से बीन बजाकर प्रिया-प्रीतम को जगाने का प्रयत्न करती हैं। ग्रन्थकार कहते हैं साधक को अन्तश्चिन्तित देह द्वारा सखी का भाव धारण करके उन सब सखियों से भावना द्वारा मिलना चाहिए, जो मोहन महल के चौक में एकत्रित हो रही हैं और मधुर-मधुर स्वरों से बीन बजाकर युगल को जगाने का प्रयत्न कर रही हैं।

अनुरागिनी सुभखा मध्याभास

॥ दोहा ॥

जय मृगनैनी राधिके रंग रंगीली बाल।
गोरी कंचन बेलि ज्यों, लपटी श्याम तमाल ॥१॥

पद ताल चरचरी ॥१॥

जयति जयति भामिनी रंगीली राधिके।
वल्लभा बिहारी जू के गुन अगाधिके॥
लपटि रही लालजू के ललित अंग सोहनी।
तरु तमाल कनक बेलि छवि विमोहनी॥

कामिनी कुरंग नैनी कोकिल कल बैनी।
कला कोटि कोविदे सलौनी सुख दैनी ॥
सहज ही सुहाग भरी गर्वीली गोरी।
जीवनि धन हितू कि श्रीहरि प्रिया किसोरी ॥१॥

प्रथम याम—"निशान्त" रात्रि ३.३६ से प्रातः ६ तक अनुरागिनी सुभखा मध्याभास=राग भैरव। कुरंग नैनी=मृग नैनी। कोकिल कल बैनी=कोयल सरीखा मधुर भाषण करने वाली। कला कोटि कोविदे=कोक कलादि क्रोड़ों कलाओं में प्रवीन। सलोनी=सुन्दर सखियाँ रसिक दम्पति को जगाने के लिए बीना बजाकर मधुर-मधुर स्वर में गा रही हैं।

॥ दोहा ॥

मृगनैनी सुरति केलि जन्य रंग से रंजित तथा गौराँगी श्रीप्रिया जू की सदा जय हो जो कञ्चन बेल सरीखी श्याम तमाल श्रीलाल जू के अँग से लपटी हुई हैं।

॥ पद ॥

कामिनी सुरति केलि जन्य रंग से रंजित तथा कोक कला आदि गुणों में अगाधा उन श्रीराधिकाजी की सदा जय हो जो श्रीबिहारीजू की बल्लभा हैं और जो अपने प्यारे के ललित अँग से इस प्रकार लपटी हुई हैं मानों कि अनिर्वचनीय स्वर्ण लता ने श्याम तमाल को वेष्ठित कर रखा हो। इस समय इनकी शोभा को देखकर मूर्तिमान छवि देवी भी मोह को प्राप्त हो जाती है। इस समय मृग नैनी श्रीप्रियाजू अपने प्यारे से प्यार करती हुई कोकिल सरीखी सुरति केलि सम्बन्धी मधुर-मधुर कुछ अव्यक्त शब्द कर रही हैं। आप कोक कला आदि क्रोड़ों सुन्दर-सुन्दर कलाओं में प्रवीन हैं उनके द्वारा श्रीलाल जू को सुख प्रदान कर रही हैं। श्रीगौरांगी जू ने लाल सरीखे प्यारे को पाया है इसी कारण से यह सौभाग्य से भरपूर और गर्वीली हैं। श्रीहरि एवं श्रीप्रिया किशोरी हितु सखीजी की तो जीवन धन स्वरूपा हैं।

॥ दोहा ॥

रसिक बिहारीलाल की, जीवनि प्रान अधारि।
रसिक रसीली रस भरी, अलबेलि सुकुमारि ॥

॥ पद ताल चंपक ॥२॥

रसिक रसीली राधा रस ही सों भरी है।
रसिक बिहारी जू की जीवनि की जरी है॥
अलबेली जू में ऐसी अधिकता है कोई।
पीवत ही पीवत लाल तृपति न होई॥
सनी है, सुहाग भाग प्रेम रँग मगी है।
प्रीतम पियारे सँग सब निशि जगी है॥
कौन कौन अंग की अनूपता जु कहिये।
श्रीहरि प्रिया दासी होइ सदा संग रहिये॥

रसिक=रस भोक्ता। रसीली=रस युक्त। अलबेली=वामा। जरी=बूटी। मगी=निमग्न। रस="रस स्वरूपं विज्ञेयं परमाह्लादकं सुखम्।" (युः तः पृ० २३६)

सखियाँ जगाती समय गा रही हैं। श्रीप्रियाजू में श्रीलालजू की तीव्र आसक्ति का कारण एक मात्र रस ही है उसी को निर्देश करती हुई गा रही हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रिया सम्बन्धी रस भोक्ता श्रीबिहारीलालजू की श्रीलड़ैतीजू की प्राण आधार स्वरूपा हैं। और अलबेली अर्थात् वामा सुकमारी जू भी लाल सम्बन्धी रस की भोक्ता रस युक्ता तथा रस से भरी हुई हैं।

॥ पद की उत्थानिका ॥

"रस" की व्याख्या बहुत प्रकार से की गई है। ग्रन्थान्तर में यह भी वर्णित है "प्रेम" की ही एक उच्चतम परिपाक अवस्था को "रस" कहते हैं। "प्रेम" और 'रस' में इतना ही तारतम्य है जितना ध्यान और "समाधि" में अर्थात् "ध्यान" में ध्याता ध्येय और ध्यान की त्रिपुटी बनी रहती है। परन्तु "समाधि" में त्रिपुटी नष्ट हो जाती है केवल ध्येय ही रहता है। इसी प्रकार "प्रेम" में प्रेमी, प्रेमास्पद और प्रेम तीनों बने रहते हैं जब कि "रस" में केवल प्रेमास्पद ही रहता है। अतः "प्रेम" की ही उच्चतम अवस्था का नाम "रस" कहा गया है। श्रीलालजू "प्रेम" के भोक्ता हैं, यह बात प्रसिद्ध ही है एवं प्रकार से वे "रस" के लिए भी प्रेम से कहीं अधिकतर ललचाते रहते हैं। अब पद को देखिये।

॥ पद ॥

रसीली राधा यद्यपि अपने प्यारे के रस की भोक्ता होने से रसिक हैं, तो भी लाल के उपभोग्य रस से भरी हुई हैं। इस रस द्वारा उनके प्राणों को पोषण करती हैं इसलिए आप रसिक बिहारी जू की संजीवनी बूटी सदृश हैं। अलबेली जू में कोई एक रस की अनिर्वचनीय अधिकता है जिससे लाल जू अहर्निश पीते हुए भी कभी तृप्त नहीं होते हैं। लाल सरीखे प्यारे को पाकर ही आप सौभाग्य सीमन्तनी हैं। उन्हीं के प्रेम रंग में निमग्न रहती हैं। अपने प्रीतम प्यारे संग सब निशा सुरति केलि जन्य नृत्य करती हुई जगती रही हैं। इस समय श्रीप्रियाजू के समस्त अंगों से रस निर्झर हो रहा है अतः इनके कौन-कौन अंग की अनूपता का वर्णन करूँ? श्रीहरि प्रिया जू कहती हैं मेरी एक मात्र यही अभिलाषा है कि मैं इनकी दासी होकर सदा इनके साथ रहूँ।

॥ दोहा ॥

सब निशि बीती खेल में, तउ उर अधिक उमंग।
ऐसे नवल किशोर वर हियरे वसौ अभंग॥

॥ पद ॥

खेले नव लाल खेल नवल वाल संग।
बीती सब निशा तऊ अधिक उर उमंग॥
पल पल में बढ़ैं चौपि सहज सुरति रंग।
उपजत अति चाव हाव भाव भृकुटि भंग॥
नव किशोर साँवरो किशोरि गोरी अंग।
श्रीहरिप्रिया हिये वसौ अविचल अभंग॥

सुरति केलि विलास विलसते हुए रसिक दम्पति का वर्णन करती हुई सखियाँ कहती हैं। अभंग=निरन्तर। चौंपि=हठ होड़ चाह, हाव भाव=दृष्टि आदि द्वारा सुस्निग्ध प्रेमालाप। भृकुटि भंग=कटाक्ष पात।

॥ दोहा ॥

यद्यपि रसिक दम्पति ने सारी रात सुरति खेल में बिताई है, तो भी इनके हृदयों में इस केलि के लिये उमंग है। मैं यह चाहती हूँ नवल किशोर की यह श्रेष्ठ जोरी ऐसे ही मेरे हृदय में अभंग रूप सदा विराजमान रहे।

॥ पद ॥

यद्यपि नवलाल ने नवल बाल के साथ सुरति खेल, खेलते-खेलते सारी रात बितादी है। तो भी इन दोनों के हृदयों में इस खेल के लिए उमंग बढ़ती ही जा रही है। इन दोनों की चाह सहज सुरति रंग में रंजित होने के लिए क्षण-क्षण में बढ़ती रहती है। यह चाह इनके हृदयों में उस चाव को उपजाती है जिस चाव से ये दृष्टि आदि द्वारा सुस्निग्ध वार्तालाप करते हुए परस्पर कटाक्षपात करने लगते हैं। श्रीहरिप्रिया सखी यह प्रार्थना करती हैं कि यह नवकिशोर साँवरो और गौराँगी श्रीकिशोरीजी ऐसे ही मेरे हृदय में निश्चलरूप से सदा विराजमान रहें।

॥ दोहा ॥

बोलत सी आ नाह यों मधुर मधुर मृदु बाल।
सुख आसन राजै ललित, रलित रंग संग लाल॥

॥ पद ॥४॥

लाल संग रंग रलित ललित बाल ललकें।
सुरति रंग के तरंग अंग अंग झलकें॥
शशिमुखी शशिकांति आह नाह मधुर वलकें।
गोरे गंड दशन खण्ड कामिनी कल कलकें॥
बैठे हैं सुखासन पिय छाजें छवि छलकें।
उर विशाल अति रसाल मोति माल रलकें॥
अरुन वरन चरन वर विवसन ढर ढलकें।
श्रीहरिप्रिया देखत जहाँ लागत नहीं पलकें॥

आहनाह अथवा आनाह=कोष में आ का अर्थ आहा और नाह का फंदा, जाल तथा कवलित करना अर्थ है अर्थात् इस प्रकार का शब्द करना जिससे दूसरा आधीन हो जावे अथवा सीतकारादि अव्यक्त शब्द। बलकें=बोलना, सुख आसन=८४ आसनों में १ आसन विशेष का नाम। रलित=मिलना। ललकें=लल+कें=क्रीड़ा करें। शशिमुखी= चन्द्रमुखी श्रीप्रियाजी। शशिकान्ति=चन्द्रकान्त मणि, जो चन्द्रमा को देख कर पिघलती है यहाँ श्रीप्रियाजू से तात्पर्य है जो चन्द्र स्थानी लाल जू को देखकर पिघलती हैं। कलकलकें=कल+कल+कें=धीमा कोमल एवं अस्पष्ट शब्द करना। दशन खंड=दशन

क्षत। अरुन वरन चरन=श्रीप्रियाजू के महावर से रंजित चरणतल। वरविम्व=लालजू के अधर सुरति केलि में आरूढ़ श्रीप्रिया प्रीतम का वर्णन करती हुई सखियाँ गा रही हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीलालजू बाल अर्थात् श्रीप्रियाजू से मिलकर सुख-आसन से विराजमान होकर ललित रंग बिहार कर रहे हैं। उस समय श्रीप्रियाजू शीतकारादि मधुर-मधुर अव्यक्त शब्दों द्वारा अपने प्यारे को अधीन कर रही हैं।

॥ पद ॥

श्रीलालजू के साथ मिलकर श्रीप्रियाजू ललित रंग बिहार क्रीड़ा कर रही हैं। ये दोनों रस समुद्र में इतने निमग्न हैं कि इनके अँग प्रत्यगों से सुरति रंग की तरंगें झलक रही हैं। यद्यपि श्रीचन्द्र मुखी श्यामाजू सदा वामा रहती हैं परन्तु ज्योंही उन्होंने अपने प्यारे के चन्द्र मुख को आसक्ति से दीन देखा चन्द्र कान्ति मणि की तरह से उनका हृदय पिघल कर पानी-पानी हो गया और वे अपने प्यारे की मन भाई करने को तैयार हो गईं। सुरति बिहार आरूढ़ श्रीप्रियाजू शीतकारादि मधुर-मधुर अव्यक्त शब्दों द्वारा अपने प्यारे को आधीन कर रही हैं। कोमल गोरे गण्डों पर दन्त क्षत से कामिनी अर्थात् भीरू भय से धीमा कोमल एवं अस्पष्ट शब्द कर रही हैं। प्यारे की इस समय की सुख-आसन से विराजने की छवि कुछ कही नहीं जा सकती है मानों यह छवि इनके अंगों में समाती नहीं है छिलक-छिलक कर बाहिर फैल रही है। सुरति नृत्य करते हुए उरविशाल पर अति रसाल सुशोभित मोतियों की माला भी झोटा ले रही है। और प्यारीजू के महावर से रंजित लाल-लाल चरण तल प्यारे के अधरों से चुम्बन प्राप्त होने से ढलक रहे हैं। उपरोक्त छवि को श्रीहरि प्रियाजू अनिमिष नेत्रों द्वारा देख रही हैं।

अनुरागिनि दिव्य गंधा मध्याभास

॥ दोहा ॥

प्रिया बदन सुखमा सदन, रह्यो प्रेम परिपूरि।
जा मधि प्रीतम प्राण की, सरबस जीवनि मूरि॥

॥ पद तिताला ॥५॥

प्रिया मुख सुखमा कौ आपार।
जा मधि लाड़ लड़े कौ सरबस अंग अनंग उद्गार॥

जीवनि प्रान प्रान-जीवनि का अधर सुधा सुख सार।
पीवत परम तृषातुर पल पल बाढ़त प्रेम अपार॥
रंग रँगीले रदन वदन में सोहत सुखद सुढार।
हँसत जबै कछु लसत लुनाई ललित मनोहर मार॥
गोरे गंड अरुनता तिन विच अद्‌भुत अमल उदार।
मनु संपुट मधि लै अनुरागहि भरि राख्यौ भरतार॥
श्यामल विन्दु चिबुक श्रुति भूषन नासा वेसरि चार।
बडरे नैन सु अंजन खंजन गंजन गरब पहार॥
वरनी जात न वरुनी भौंहे सोहें आड लिलार।
शीश फूल सीमन्त चन्द्रिका चिकुर चतुर चित्त हार॥
गुही श्याम मखतूल पीठ पर बेनी विरह विदार।
निज कर रची नवल नव नायक सुन्दर वर सुकुमार॥
दुख दरनी हिय हरनी श्यामा सकल सुखन विस्तार।
निरखि हरखि श्रीहरि प्रिया सहचरी बलि बलि बारम्बार॥

अनुरागिनी दिव्य गन्धा मध्याभास=राग देवगन्धार। सुखमा सदन=आनन्द का घर। जीवनि मूरि=संजीवनि बूटी। आगार=आकर=खजाना। अनंग=दिव्य का उद्‌गार=ऊ फान। रदन=दन्तावली। वदन=मुखारविन्द सुढार=एक बराबर=सुन्दर। लुनाई=लावण्यता=सुन्दर मार=कामदेव। अमल=स्वच्छ। उदार=विशाल। संपुट=डब्बा। भरतार=श्रीलालजू। चिबुक=ठोडी। श्रुति भूषण=कर्ण फूल। बेसरिचार=चारु बेसर=सुन्दर नथ। सुअंजन=अंजनयुक्त। खजन=पक्षी का नाम। गजन=खण्डन। गरव पहार=पहाड़ सरीखा अभिमान। वरुनी=टेढ़ी। ललार=ललाट मस्तक। शीशफूल=मस्तक आभूषण। श्रीमंग चन्द्रिका=मस्तक की मांग और चन्द्रिका। चिकुर=केश पाश। चतुर=श्रीलालजू। मखतूल=रेशमी।

श्रीप्रियाजू का मुखारविन्द लाल के सुख का सदन है और इनके अँग प्रत्यंग प्रेम से भरपूर हैं इसी कारण से श्रीलालजू की श्रीप्रियाजू में इतनी आसक्ति है। इसी विषय को वर्णन करती हुई सखियाँ कह रही हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाजू का यह मुख कमल ही नहीं है, अपितु यह वह सुख का सदन है जो प्रेम से भरा हुआ है और जिसमें प्रीतम प्राण की सर्वस्व संजीवनी बूटी निहित है ।

॥ पद ॥

श्रीप्रियाजू का मुख कमल श्रीलालजू के सब सुखों का खजाना स्वरूप है । क्योंकि इसमें ही लाड़ लड़ेका सर्वस्व अंग प्रत्यंगों का दिव्य काम का संचार निहित है । अर्थात् इस मुख कमल को देखकर ही लाल का दिव्य काम उद्दीपन होता है । इस मुख कमल में भी प्राण जीवन लाल की अधर सुधा प्राण संजीवनी बूटी स्वरूप है अतः यह सब सुखों की सार स्वरूप है । इस अधर सुधा में न जाने क्या शक्ति है, इसको प्यारे क्षण-क्षण में तृषातुर की तरह पीते रहने पर भी कभी तृप्त नहीं होते हैं और इसके पान से उनके हृदय का प्रेम अपार बढ़ता रहता है । पान की पीक से रंजित सुढार और सुन्दर दन्तावली मुख कमल में कैसी सुहावनी लगती है । मुसकाने से जब इसका विकास होता है तो इसकी ललित लावण्यता देखकर क्रोड़ों कामदेव मोह को प्राप्त हो जाते हैं । अद्भुत स्वच्छ तथा विशाल गोरे कपोलों में जो स्वाभाविक लालिमा है (क्योंकि अनुराग का रंग लाल होता है अतः) ऐसा प्रतीत होता है मानों किसी अनिर्वचनीय विधाता ने स्वच्छ स्फटिक मणि के डिब्बा में अनुराग भरा रखा हो । अथवा प्यारे की ही लाल पीक जो कपोलों पर लगी है, वह पीक नहीं है अपितु मानों भरतार श्रीलालजू ने ही किसी स्वच्छ मणि के डिब्बा में अनुराग भर दिया हो । श्रीप्रियाजू की ठोड़ी पर श्याम विन्दु कानों में कर्णफूल और नासिका पर सुन्दर नथ सुशोभित है । आपके अंजन युक्त बड़े-बड़े नेत्र कमलों की चंचलता को देखकर खंजरीट पक्षी का चञ्चलता का पहाड़ सरीखा अभिमान चूर-चूर हो जाता है । टेढ़ी भौंहों की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता है । माथे की आड़ कैसी सुहावनी लगती है । चतुर शिरोमणि श्रीलालजू का चित्त लड़ेंतीजू के शीश फूल, सीमन्त चन्द्रिका और केश पाश को देखकर चुराया जा रहा है । श्रीप्रियाजू की पीठ पर काली रेशम से गूथी हुई बेनी जो नवल नव नायक सुन्दर वर सुकुमार ने स्वयं अपने हाथों से रची है कैसी सुन्दर लगती है । यद्यपि श्रीलालजू सुन्दर शिरोमणि अत्यन्त सुकुमार हैं सेवा करने का परिश्रम नहीं सहन कर सकते हैं तो भी नवल नव नायक अर्थात् "धीर ललित" नायक हैं अतः वे अपना सौभाग्य अपनी प्यारी की सेवा करना ही मुख्य समझते हैं । इसलिए बेनी को उन्होंने स्वयं अपने हाथों से गूथा है । यद्यपि प्यारे को अपनी प्यारी का मुख कमल देखे बिना क्षण काल भी चैन नहीं पड़ती है तो भी इस लम्ब्यमान बेनी

जो कटि पश्चात भाग को हर समय छूती रहती है देखकर प्यारे का मुख देखने का विरह विदीर्ण हो जाता है। कहाँ तक वर्णन करें श्रीलड़ैती जू ही लड़ैते के हृदय को हरने वाली इनके देह पार्थिक्य तथा अतृप्ति जन्य सब दुःखों का विदीर्ण करने वाली हैं। श्रीहरि प्रिया सहचरीजी रसिक दम्पति को उपरोक्त प्रकार से देखकर हर्षित होकर फूली नहीं समाती हैं बार-बार इन पर बलिहारी जाती हैं।

॥ दोहा ॥

श्रमकन बन तनि बन रहे, गेह लाड़ गम्भीर।
विहरत सेज बिहार विवि, सुरति समर रन धीर॥

॥ पद ॥६॥

कुंवर दोउ सुरति समर रन धीर।
मध्य सेज विहार विहरत रही सुधि न शरीर॥
स्वेद वनकन गन मगन मन धनी धन विनु चीर।
उमँग अँग अँग अनंग रंग सों रहे रँगि वर वीर॥
वदन विधुवर विसद सुन्दर स्त्रवत अमृत सीर।
तृषित पीवत तृपति होत न क्योंहू अमित अधीर॥
मघ लालचि लाडिले छवि भरे गहर गंभीर।
हितू श्रीहरि प्रिया हरषत निरखि निपटहि नीर॥

श्रम कनवन=पसीना के जल विन्दु। तनि=तन=शरीर। सुरति समर=सुरति केलि जन्य युद्ध। विनुचीर=बिना वस्त्र। रंगि वर वीर=रंग बिहार के सुभट योद्धा। बदन विधुवर=श्रेष्ठ मुख चन्द्रमा। विशद=भारी=अत्यन्त सीर=क्षीर=रस=जल। अमित=अपरमित=अत्यन्त अधीर=व्याकुल। निपटहि नीर=अत्यन्त नजदीक से। सुरति केलि युद्ध में आरूढ़ रसिक दम्पति का वर्णन करती हुई सखियाँ कह रही हैं।

॥ दोहा ॥

सुरति सेज पर रसिक दम्पति परस्पर के लाड़ में भर कर सुरति युद्ध के योद्धाओं की तरह बिहार कर रहे हैं। इस परिश्रम से इनके अंगों में श्रम जल विन्दु झलक रहे हैं।

॥ पद ॥

अत्यन्त सुकुमार कुंवर होकर भी ये दोनों सुरति समर के योद्धा हैं। इस समय सुरति शय्या पर ये इतने आसक्त होकर बिहार कर रहे हैं कि इनको अपने शरीरों की भी सुध-बुध नहीं है। परिश्रम से यद्यपि दोनों अंगों पर बहुत स्वेद जल विन्दु झलक रहे हैं। तो भी धनी धन मग्न मन से विगत वास होकर बिहार कर रहे हैं। ये दोनों योद्धा दिव्य काम के रँग में रंजित होकर सदा उमँग में भरे रहते हैं। जैसे चन्द्रमा से अमृत स्राव होता रहता है इसी प्रकार इन दोनों के अत्यन्त सुन्दर मुख चन्द्रमाओं से अधर सुधा रस अथवा सौन्दर्य रूपी रस स्राव होता रहता है। जिस रस को ये दोनों तृषातुर की तरह यद्यपि सदा पान करते रहते हैं तो भी ये कभी भी किसी प्रकार से भी तृप्त नहीं होते हैं। अपितु इसके पान के लिए ये सदा व्याकुल ही बने रहते हैं। यद्यपि इन दोनों की छवि सौन्दर्य सागर का कोई आर-पार नहीं है। तो भी ये लाड़िले परस्पर के अधर सुधा रस अथवा रूप माधुरी आस्वादन के बड़े लालची हैं। श्रीहितु सहचरीजी एवं श्रीहरि प्रियाजी उपरोक्त झाँकी को रसिक दम्पति के अत्यन्त निकट से देखकर हर्षित होती हैं।

अनुरागिनी रत्नकला मध्याभास

॥ दोहा ॥

मन चीते कारज भये, रन जीते जुग लाल।
उरझि रहे अँग अंग यों कंचन बेलि तमाल॥

॥ पद ॥७॥

रंग रंगीले छैल छबीले।
राजत दोऊ रसिक रसीले॥
रतिरन जीति जोरि जुगराज।
किये सकल मन वांछित काज॥
सजे सगवगे सहज शृङ्गार।
रस रगमगे जगमगे अपार॥
मनु उरझी तरु कंचन बेली।
यों सोहें श्रीहरिप्रिया सहेली॥

अनुरागिनी रत्नकला मध्याभारा=राम कली राग। युग लाल=रसिक दम्पति। सगबगे=आर्द्र होना=गीला होना। रग मगे=रंजित होना।

सुरतान्त छवि का वर्णन करती हुई सखियाँ गा रही हैं।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति के सब मनोरथ पूर्ण हुए। इन्होंने सुरति युद्ध में विजय प्राप्त की। अब इनके अँग प्रत्यँग इस प्रकार से उलझे हुए हैं मानों कोई स्वर्ण लता श्याम तमाल से वेष्टित हो रही हो।

॥ पद ॥

सुरति रंग से रंजित होने से रंगीले, परस्पर की छवि से भरे होने से छबीले तथा रस में निमग्न होने से रसीले इस समय ये दोनों रसिक अति सुशोभित हैं। इस युग राज जोरी ने सुरत युद्ध में विजय प्राप्त की है। इनके मन के सब मनोरथ पूर्ण हो गये। परस्पर चुम्बनादि से इनके विग्रह सगबगे हो रहे हैं। इस समय इसी स्वाभाविक शृङ्गार से ये सुसज्जित हैं। रस से रंजित होने से ये अपार जगमगा रहे हैं। हे सहेली! श्रीहरि एवं प्रिया इस प्रकार सुशोभित हैं मानों स्वर्णलता श्याम तमाल से उलझ रही हो।

॥ दोहा ॥

लाल भामते जीयके, लसौ बसौ हिय धाम।
श्यामा सहज सनेहनी, सहज सनेही श्याम॥

॥ पद ॥८॥

सहज सनेही श्यामा श्याम।
मोहे कोटि कोटि रति काम॥
अंग अंग आभा अभिराम।
लाड लड़ीले जागे याम॥
लाल भामतौ श्रीराधा भाम।
विलसौ श्रीहरिप्रिया हिय धाम॥

लसौ=अलंकृत करौ। याम=प्रहर=लगभग ३ घण्टे का समय। हिये धाम=हृदय रूप मन्दिर। भाम=भामिनी=सुन्दरि युवती सखियाँ रसिक दम्पति की विरदावली गान कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

स्वाभाविक स्नेह करने वाले श्यामा-श्याम हमारे मन के भाँवते लाल हैं। हम यह चाहती हैं कि ये दोनों हमारे हृदय मन्दिर को इसी प्रकार अलंकृत करके सदा इसमें विराजमान रहें।

॥ पद ॥

स्वाभाविक स्नेह करने वाले इन श्यामा-श्याम ने अपने सुन्दर अँग-अँग की आभा से क्रोड़ों रति काम देवों को मोहित कर दिया है। ये लाड़ लड़ीले सुरति विलास में आसक्त होने से रात्रि के पिछले प्रहर में जगते रहे हैं। यह भाँवता लाल एवं भामिनी श्रीराधा ऐसे ही विलसते-विलसाते श्रीहरि प्रिया सखी के हृदय मन्दिर में सदा विराजमान रहें।

॥ दोहा ॥

प्यारी जीवनि प्यारे की, प्यारौ प्यारी प्रान।
रंग महल में विलसहीं, दोऊ एक समान॥

॥ पद ॥६॥

प्यारी जू प्यारे की जीवनि प्यारौ प्यारी प्रान अधार।
प्यारी प्यारे कें उर माला प्यारौ प्यारी के उरहार॥
प्यारी प्यारे रंग महल में रंग भरे दोउ करत बिहार।
रंग भरी निरखत हरषत हिये श्रीहरिप्रिया सकल सुखसार॥

दोऊ एक समान="कृष्ण रूप श्रीराधिका, राधे रूप श्रीस्याम। दर्शन को ये दोय हैं, हैं एकहि सुख धाम।" सखियाँ विरदावली गान कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

क्योंकि प्यारीजू प्यारे की जीवन स्वरूपा है और प्यारे-प्यारी के प्राण सदृश हैं, अतः ये दोनों रंग महल में एक समान भाव से ही विलास करते हैं।

॥ पद ॥

प्यारीजू प्यारे की जीवन स्वरूपा और प्यारे प्यारी के प्राण आधार स्वरूप हैं। इसीलिए प्यारी, प्यारे की हृदय की माला होकर सदा उनके हृदय से लगी रहती हैं। और प्यारे प्यारी का हार बन कर उनके वक्षस्थल पर सदा विराजते हैं। एवं प्रकार से

ये दोनों प्यारी तथा प्यारे सुरति रंग विलास में रंजित होकर रंग महल में सदा विलास करते हैं। उभय संगम रंग से रंजित श्रीहरि प्रिया सखी इस सकल सुख सार स्वरूप बिहार को देख देखकर हृदय में हर्षित होती हैं।

॥ अनुरागिनी विश्वाभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

कुंज भवन में करत दोउ, सुरति रंग रति केलि।
उरझि रहे सुरझत नहीं, तनु तनु मन मन मेलि॥

॥ पद तिताला ॥१०॥

नित नव कुंज भवन में केलि।
करत हैं दंपति सुख संपति अति रसिक रसिकनी रति रस रेलि॥
उरझि रहे सुरझत नहीं क्योंहू दोउ जन तनु तनु मन मन मेलि।
तृपति न होत तृषातुर चितवत हितु जहाँ श्रीहरिप्रिया सहेलि॥

अनुरागिनी विश्वाभा मध्याभास=राग विभास। तृषातुर चितवत=बड़े प्यासे नेत्रों से देखना। सुख सम्पति=सुख तथा धन दौलत स्वरूप। सखियाँ मंगल गान कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

ये दोनों रसिक रसिकनी कुंज महल में सुरति रंग रति केलि करते हुए परस्पर तन-तन मन-मन मिलाकर इतने उलझे हुए हैं जो यत्न करने से भी नहीं सुलझाये जा सकते हैं।

॥ पद ॥

नित्य नव कुंज भवन में ये सुख सम्पति स्वरूप दम्पति अति रसिक तथा रसिकिनीजू रति रस केलि कर रहे हैं। जिसमें इन दोनों जनों के तन से तन मन से मन मिलकर इतने उलझ गये हैं जो किसी प्रकार से भी सुलझाये नहीं जा सकते हैं। एवं प्रकार की छवि को श्रीहितु सहचरीजी और श्रीहरि प्रियाजू सहेली यद्यपि बड़े प्यासे नेत्रों द्वारा देख रही हैं, तो भी इनके नेत्रों की तृप्ति नहीं होती है।

॥ दोहा ॥

सुरति रंग के रंग में, रहे रंग अँग अंग।
अद्‌भुत आज विराजहीं, प्यारी प्रीतम संग॥

॥ पद ॥११॥

रंगे दोउ सुरति रंग के रंग।
रंग रंगीले आज विराजत प्यारी प्रीतम संग॥
सोहत भूषन वसन रंगमय शिथिल भय सब अंग।
हितू सखि श्रीहरिप्रिया विलोकत उर में अधिक उमंग॥

भूषन वसन रंगमय=आलिंगन चुम्बन रूप भूषण वस्त्र। सुरति रंग में रंजित रसिक दम्पति का वर्णन करती हुई सखियाँ कह रही हैं।

॥ दोहा ॥

आज प्यारी प्रीतम जिनके अंग प्रति अंग सुरति रंग में रंगे हुए हैं, परस्पर मिलकर अद्‌भुत ढंग से विराजमान हैं।

॥ पद ॥

ये दोनों रंग रँगीले प्यारी प्रीतम सुरति रंग के रंग में रंगे हुए आज कैसे सुशोभित हो रहे हैं। इन्होंने रंगमय अर्थात् परस्पर आलिङ्गन चुम्बन रूप वस्त्र भूषण धारण कर रखे हैं। केलि जन्य परिश्रम से इनके सब अंग शिथिल हो रहे हैं। उर में अत्यन्त उमंग में भरकर इनको श्रीहितु सखी एवं श्रीहरि प्रियाजू देख रही हैं।

॥ दोहा ॥

अंग अंग बस ह्वै रहे, जद्यपि श्याम सुजान।
तद्यपि पीवत प्यार सों, अधर सुधा रस पान॥

॥ पद ॥१२॥

प्रीतम प्यार सों पीवत अधर सुधा रस।
अलबेली के मुख अंबुज सों लगे चसन चस॥
भोइ रहे प्यारी जू के रंगहि होइ रहे अंग अंग बस।
अति उदार श्रीहरिप्रिया स्वामिनि प्रगट करत जस॥

चसन चस=अधुर सुधा आदि चखने लगे। अथवा चुम्बन अधर सुधा आदि पान करने का शब्द। मादक द्रव्य। भोई रहे=भीग रहे। आर्द्र हो रहे। अधर सुधा की मादकता वर्णन करती हुई सखियाँ कह रही हैं।

॥ दोहा ॥

यद्यपि श्याम चतुर शिरोमणि हैं और इनके अँग-अँग सुरति केलि जन्य आनन्द भार से विवश हो रहे हैं तदपि यह प्यारे प्यार से अधर सुधा रस पान कर रहे हैं।

॥ पद ॥

अलबेली के मुख कमल की मकरन्द रूपी मादक द्रव्य को चखते हुए प्रीतम प्यार से अधर सुधा रस पान कर रहे हैं। प्यारे प्यारी के रंग में भीग रहे हैं। अतः इस समय इनके अँग प्रत्यँग लड़ैतीजू के आधीन हो रहे हैं। एवं इस प्रकार से श्रीलालजू को सुख प्रदान करके श्रीहरि की प्रिया स्वामिनीजू अपना श्रेष्ठ यश प्रकट करती हैं।

॥ दोहा ॥

आलस तजिये जाउँ बलि, लगी भुरहरी हौन।
त्यौं त्यौं पौढ़त तानि पट, वानि परी यह कौन॥

॥ पद ॥१३॥

परी बलि कौन अनौखी बान।
ज्यौं ज्यौं भोर होत है त्यौं त्यौं पौढ़त हो पट तानि॥
आलस तजहु अरूनई उदई गई निशा रति मानि।
श्रीहरिप्रिया प्रान धन जीवनि सकल सुखनि की खानि॥

भुरहरी=प्रातःकाल। अरुनई उदई=सूर्य उदय से पूर्व समय। गई निशा रति मानि=रात्रि समाप्त हुई। मानो रात्रि की अधिष्टातृ देवी रति विलस कर चली गई। अरुणोदय देखकर सखियाँ जगाने का प्रयत्न कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

मैं आपकी बलिहारी जाऊँ! प्रातःकाल होने लगा है। आप कृपा करके आलस का त्याग करें। हे सखि! देख तो सही इन दोनों का यह क्या स्वभाव पड़ गया है? अब प्रातःकाल होने को है और ये पट तान-तान कर सोने का प्रयत्न कर रहे हैं।

॥ पद ॥

मैं बलिहारी जाऊँ, इन दोनों की यह क्या अनौखी बान पड़ी है ? ज्यौं-ज्यौं प्रातः-काल होता जा रहा है, त्यौं-त्यौं ये पट तान-तान कर सोने का प्रयत्न कर रहे हैं। अब अरुणोदय हो गया है आलस को त्यागिये। रात्रि की अधिष्टातृ देवी रति सुख विलस-कर चली गई है अर्थात् अब रात्रि नहीं है। हे श्रीहरि एवं प्रिया ! आप ही हमारे प्राण जीवन धन तथा सकल सुखों की खान स्वरूपा हो।

॥ दोहा ॥

सुनि सहचरी के वचन प्रिय, उठी सुरति सुख लूटि।
संभरि सेज तें सुभट ज्यों, विजयी होय वधूटि॥

॥ पद ॥१४॥

ललन संग सोय उठी सुख लूटि।
सुरत समर में सुभ लाड़ लड़ि सरवस लीनौ घूटि॥
सिथिल कंचुकी उभय कुचन पर रहि कच आवलि छूटि।
श्रीहरिप्रिया स्वामिनी श्यामहि सुवस किये जुध जूटि॥

वधूटि=दुलहिनी=श्रीप्रियाजी। सुरत समर=सुरति केलि जन्य युद्ध। सुभट=योद्धा। कच आवलि=अलकावली सखी की प्रार्थना सुनकर रसिक दम्पति उठ बैठते हैं।

॥ दोहा ॥

सखी के मीठे वचन सुनकर वधूटि अर्थात् प्रियाजू अपने के साथ सुरति सुख लूटि-कर सुरति शय्या से विजयी योद्धा की तरह सँभर कर उठ बैठी।

॥ पद ॥

ललना ललन के संग सुख लूट कर सोकर उठि बैठीं। सुरति युद्ध में सुभट योद्धा की तरह से युद्ध करके लाड़िलीजू ने लाड़ लड़े का सर्वस्व रस आस्वादन किया। इस समय इनकी कंचुकी ढीली होकर वक्षस्थल पर लटक रही है और अलकावली बिखरी हुई है। श्रीहरिप्रिया सखी की स्वामिनी ने युद्ध में जुटकर विजय प्राप्त की है, एवं इस प्रकार से इन्होंने अपने प्यारे श्याम को अपने आधीन कर लिया है।

॥ दोहा ॥

सब निशि लूटी सुरत सुख, प्रान प्रिया हरि संग।
भाग सुहाग सची रची, रसिक रवन के रंग॥

॥ पद ॥१५॥

राची रसिक रवन के रंग।
श्रीराधा रमनी रस रूपा अमित अनूपा अंग॥
भाग सुहाग भरी भरि भामिन उर अनुराग अभंग।
सारी रैन सुरत सुख लुटी प्रान प्रिया हरि संग॥

सची=सजना। अलंकृत होना। रची=रंजित। भरि=अतिशय सखियाँ विरदावली गान कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

प्राण प्रिया श्रीप्यारीजू ने अपने प्यारे श्रीहरि के साथ सारी रात सुरति केलि जन्य सुख आस्वादन किया है। रसिक रमण के अनुराग रंग से रंजित होने के कारण ही श्रीलड़ैतीजू सौभाग्य भाग से अलंकृत हैं।

॥ पद ॥

रस रूपा श्रीराधा रमणी जिनके अँग प्रत्यँग अत्यन्त अनुपम हैं, अपने प्यारे रसिक रमण के अनुराग रंग से रंजित हैं। हे अतिशय सुन्दरि भामिनि! आपके हृदय में आपके प्यारे का अभंग अनुराग भरा हुआ है, अतः आपही सौभाग्य भाग से भरी हुई हैं। आप प्रीतम की प्राण प्रिया हैं, आपने अपने प्यारे श्रीहरि के साथ सारी रात सुरति केलि सुख आस्वादन किया है।

॥ दोहा ॥

जय नव रंग बिहारिनी, नव वासा सुखकारि।
जय श्रीहरिप्रिया स्वामिनी, श्रीराधा सुकुमारि॥

॥ स्तोत्र ॥

जय जय श्रीनव रंग बिहारिन। जय जय नव वासा सुख कारिन॥१॥
जय जय श्रीनव केलि परायनि। जय जय विश्वानन्द विधायनि॥२॥

जय जय श्रीवृन्दावन रानी। जय जय परमोत्तम सुख दानी ॥३॥
जय जय श्रीमुख अद्भुत शोभा। जय जय निज विलास रस गोभा ॥४॥
जय जय श्रीप्रीतम की प्यारी। जय जय सरस सरूप उज्यारी ॥५॥
जय जय श्रीराधा गुण गोरी। जय जय मधुरा मधु रस बोरी ॥६॥
जय जय श्रीअति अमित अनूपा। जय जय सहज सुभद्र स्वरूपा ॥७॥
जय जय श्रीमोहन मन हारी। जय जय पद्मा प्रान अधारी ॥८॥
जय जय श्रीअह्लादिनि देवी। जय जय श्यामा सब सुख सेवी ॥९॥
जय जय श्रीपिय बल्लभ राधा। जय जय सारद सब सुख साधा ॥१०॥
जय जय श्रीनव नित्य नवीना। जय जय नवल कृपाल प्रवीना ॥११॥
जय जय श्रीसब सुख की धामा। जय जय देव देवि का नामा ॥१२॥
जय जय श्रीलावनिता देसा। जय जय सुन्दरि सरस सुवेसा ॥१३॥
जय जय श्रीकल कोकिल बैंनी। जय जय पद्मा हरि सुख देनी ॥१४॥
जय जय श्रीगुन रूप गंभीरा। जय जय श्रीऐंदिरा हरि ढिग हारा ॥१५॥
जय जय श्रीछवि कोटि छबीली। जय जय रामा हिये वसीली ॥१६॥
जय जय श्रीआनन्द अभिरामा। जय जय वामा सब सुख धामा ॥१७॥
जय जय श्रीमोहन मन हरनी। जय जय कृष्ण प्रिया सुख करनी ॥१८॥
जय जय श्रीरंग रूप रसीली। जय जय पद्माभा प्रति पाली ॥१९॥
जय जय श्रीरस वरषा करनी। जय जय श्रुति रूपा श्रुति वरनी ॥२०॥
जय जय श्रीपरिपूरन कांमा। जय जय भागवती भवि भांमा ॥२१॥
जय जय श्रीससि कोटि प्रकासी। जय जय माधवी हिये निवासी ॥२२॥
जय जय श्रीवृन्दावन वसिता। जय जय असित सित रस रसिता ॥२३॥
जय जय श्रीजस जग विख्याता। जय जय गुन आकरि सुख दाता ॥२४॥
जय जय महा प्रेम प्रसिद्धा। जय जय विसद वल्लभा रिद्धा ॥२५॥
जै जै श्रीगुन गन आगारा। जै जै गौरांगी आधारा ॥२६॥
जै जै श्रीकंचन दिवि अंगी। जै जै कुंवरि सुकेसि सुरंगी ॥२७॥
जै जै श्रीछवि चित्र विचित्रा। जै जै पावन करन पवित्रा ॥२८॥
जै जै श्रीअलि अलक लड़ैती। जै जै कुमकुम कला बड़ैती ॥२९॥

जै जै श्रीनव नित्य नवेली। जै जै सुखदा हितू सहेली ॥३०॥
जै जै श्रीराधा निज नामिनी। जै जै श्रीहरिप्रिया जय स्वामिनी ॥३१॥

इस स्तोत्र की प्रत्येक पहिली तुकों में श्रीस्वामिनीजी की विरदावली का गान है और प्रत्येक दूसरी तुकों में श्रीरंगदेवीजी तथा श्रीनव्यवासाजी सखियों से लेकर श्रीहरिप्रियाजी सखी पर्यन्त सब सखियों का परिचय है। बात यह है, ज्यौं ही रसिक दम्पति सोकर उठे हैं त्यौंहि बारी-बारी से सखियाँ उनकी शय्या के निकट जाकर युगल के चरणारविन्दों को छूती जा रही हैं। क्योंकि इस समय ये दोनों आलस्य में हैंसुरति रंग के आनन्द में झूम रहे हैं। इनको अनुसन्धान नहीं है। इसलिए विरदावली गान करते हुए, जो सखी चरण कमलों को छूने आती है साथ की साथ उसका भी परिचय देती हुई सखियाँ गा रही हैं। अब स्तोत्र के अर्थ को देखिये।

॥ दोहा ॥

श्रीराधा सुकुमारीजी की सदा जय हो, जो श्रीनव रंग बिहारिणीजी अर्थात् श्रीरंगदेवीजी श्रीनव वासाजी तथा श्रीहरिप्रियाजी को सुख प्रदान करने वाली स्वामिनी हैं।

॥ स्तोत्र ॥

श्रीनव रंग बिहारिनीजू श्रीरंगदेवीजू तथा श्रीनव्यवासा सखी को सुख प्रदान करने वाली श्रीस्वामिनीजी की सदा जय हो ॥१॥ श्रीविश्वाभा सखी को आनन्द विधान करने वाली तथा नव केलि परायणा श्रीप्रियाजू की सदा जय हो ॥२॥ श्रीपरमोत्तमा सखी को सुख प्रदान करने वाली श्रीवृन्दावन रानी की सदा जय हो ॥३॥ श्रीनिजविलास सखी के लिए जो आभा युक्त रस भूमि स्वरूपा है और जिनके मुखारविन्द की अद्भुत शोभा है ऐसी लड़ैतीजू की सदा जय हो ॥४॥ श्रीसरसा सखी के रूप को प्रकाश करने वाली अपने प्रीतम की प्यारी श्रीप्रियाजू की जय हो ॥५॥ श्रीमधुरा सखी को माधुर्य रस में निमग्न करने वाली सर्वगुण सम्पन्ना गौराँगी श्रीराधा रानी की जय ॥६॥ श्रीसहज सुभद्रा सखी के लिए जो मंगल रूप हैं और जिनकी शोभा अत्यन्त अनूप है ऐसी प्रियाजू की सदा जय हो ॥७॥ श्रीपद्मा सखी की प्राण आधार स्वरूपा है और जो श्रीमोहन के मन को हरने वाली है उनकी जय हो ॥८॥ श्रीश्यामा सखी का सर्वस्व सुख जिनकी सेवा करना है ऐसी श्रीअह्लादिनी देवीजी की सदा जय हो ॥९॥ श्रीशारदा सखी के लिए जो सब सुखों की प्राप्ति स्वरूपा है और जो अपने प्यारे की बल्लभा हैं उन श्रीराधा की जय हो ॥१०॥

परम कृपाला सखी जो अत्यन्त चतुरा हैं जिनके लिये श्रीप्रियाजू नव नित्य नवीना हैं ऐसी लड़ैतीजू की जय हो ।।११।। श्रीदेवदेवी सखी जिनका नाम है जिनके लिए श्रीप्यारीजू ही सब सुखों की धाम स्वरूपा हैं ऐसी श्रीप्रियाजू की जय हो ।।१२।। श्रीसुन्दरी सखी जो अत्यन्त सरस हैं और जिन्होंने सुन्दर वेशभूषा धारण कर रखी है जिनके लिए श्रीप्रियाजू सुन्दरता की स्थान स्वरूप है ऐसी प्रियाजू की जय हो ।।१३।। श्रीपद्मा सखी जो हरि को सुख प्रदान करने वाली हैं ऐसा करने से कोकिल सरीखी मधुर भाषिणी अर्थात् श्रीप्रियाजू प्रसन्न होती हैं उनकी सदा जय हो ।।१४।। श्रीइन्दिरा सखी जो श्रीहरि की सेवा में हीरा की तरह चमकती रहती हैं और जिनकी सेव्यागुण तथा रूप में गम्भीर स्वरूपा श्रीप्रियाजी हैं उनकी सदा जै हो ।।१५।। श्रीरामा सखी के हृदय में जो सदा निवास करती हैं और जो छवि की अधिष्ठातृ देवी से भी क्रोड़ों गुणा अधिक सुन्दरी हैं ऐसी श्रीप्रियाजू की सदा जय हो ।।१६।। श्रीवामा सखीजी के लिए जो सब सुख धाम स्वरूपा हैं ऐसी आनन्द अभिरामा स्वरूपा श्रीलड़ैतीजू की जय हो ।।१७।। श्रीकृष्ण सखी जो श्रीप्रियाजू को हर प्रकार से सुख प्रदान करती रहती हैं ऐसा करने से जो श्रीमोहन के मन को हरन करने वाली हैं इनकी सदा जय हो ।।१८।। आभायुक्ता श्रीपद्मा सखीजू उन प्रियाजू का पालन पोषण करने वाली है जो रंग रूप में रसीली हैं ऐसी प्रियाजू की सदा जय हो ।।१९।। श्रीश्रुति रूपा सखी जिनकी विरदावली श्रुतियाँ भी गान करती हैं और जो उन लड़ैतीजू की उपासक हैं जो रस की वर्षा करती हैं ऐसी प्रियाजू की जय हो ।।२०।। श्रीभागवती सखी जो समृद्धशाली भाग्यवान भामा है जिन पर उन प्रियाजी की कृपा है जो परिपूर्ण कामा है ऐसी प्रियाजी की सदा जय हो ।।२१।। श्रीमाधवि सखीजी जिनके हृदय में वह प्रियाजी विराजती है जिनकी शोभा क्रोड़ों चन्द्रमाओं से भी अधिक है ऐसी श्रीलड़ैतीजू की सदा जय हो ।।२२।। श्रीअसिता सखी जो माधुर्य रस में रसायित हो रही है जिन पर वृन्दावन वसिता श्रीवृन्दावनेश्वरी की कृपा है उनकी जय हो ।।२३।। श्रीगुणाकर सखी को जो सुख प्रदान करने वाली हैं और जिनका यश जग विख्यात है ऐसी श्रीलड़ैतीजू की सदा जय हो ।।२४।। श्रीबल्लभा सखी विशद रिद्धि मृद्धि युक्ता हैं जिन पर उन लड़ैतीजू की कृपा है जिनका प्रेम महा प्रसिद्ध है उन प्रियाजू की जय हो ।।२५।। श्रीगौराँगी सखी का जो आधार स्वरूपा है और जिन प्रिया के गुण गणों का कोई आर पार नहीं है अर्थात् जो गुणगणों की भण्डार हैं उनकी सदा जय हो ।।२६।। श्रीसुकेशी सखीजी जो उन कुँवरि के सुन्दर प्रेम रंग से रंजित है जिनका दिव्य मङ्गल विग्रह स्वर्ण सरीखा है ऐसी प्रियाजू की सदा जय हो ।।२७।। श्रीपवित्रा सखीजी जिन पर उन प्रियाजी की कृपा है जिनकी छवि चित्र विचित्र है जो अपने पावन यश से सखी को पवित्र करती हैं ऐसी

लड़ैंतीजू की सदा जय हो ॥२८॥ श्रीकुँमकुँमाभा सखी जो बड़ैंती श्रीप्रियाजू की कला स्वरूपा हैं और जिन पर लाड़ करने के योग्य लड़ैंतीजू की कृपा है उनकी सदा जय हो ॥२९॥ श्रीहितु सहेलीजू को जो सुख प्रदान करने वाली हैं उन नित्य नवीनी श्रीप्रियाजू की सदा जय हो ॥३०॥ श्रीहरिप्रियाजू सखी की स्वामिनी जिनका निज नाम श्रीराधा है उनकी सदा जय हो ॥३१॥

॥ दोहा ॥

नित्य किसोरि किसोर दोउ, नित्य कामिनी कंत।
नित विलास विलसत दोउ, नित नव भाव अनंत ॥

॥ स्तोत्र ॥

जय श्रीराधा नित्य किसोरी रसिक बिहारी नित्य किसोर।
जय श्रीराधा पिय चित चोरी प्रीतम प्रान प्रिया चित चोर ॥१॥
जय श्रीराधा राजति गोरी गुन मन्दिर वर सुन्दर स्याम।
जय श्रीराधा रसिकिनि जोरी रसिक रसीलौ सब सुख धाम ॥२॥
जय श्रीराधा रूप अगाधा मन मोहन सोभा नहिं पार।
जय श्रीराधा हरनी बाधा बाधा हर हरि प्रान अधार ॥३॥
जय श्रीराधा अति सुकुमारी अति अद्भुत प्यारौ सुकुमार।
जय श्रीराधा पिय की प्यारी प्यारी कौ पिय परम उदार ॥४॥
जय श्रीराधा कृष्ण वल्लभा राधा बल्लभ कृष्ण कृपाल।
जय श्रीराधा कृपा सुल्लभा दयानिधे हरि दीन दयाल ॥५॥
जय श्रीराधा नैन विसाला कृष्ण कमल दल नैन विशाल।
जय श्रीराधा रूप रसाला रंग रंगीलौ रूप रसाल ॥६॥
जय श्रीराधा परम प्रवीना चित सुख चातुर परम प्रवीन।
जय श्रीराधा नित्य नवीना नीरज नैन सु नित्य नवीन ॥७॥
जय श्रीराधा रति रस रंगी कृष्ण कोटि कंदर्प सुरंग।
जय श्रीराधा मणि कनकांगी मरकत मनि मोहन मृदु अंग ॥८॥
जय श्रीराधा रवनी कवनी रहसि रवन रस जोरि विचित्र।
जय श्रीराधा दुःख दव दवनी दुख दव दवन प्रवीन पवित्र ॥९॥

जय श्रीराधा वारिज बदनी वारिज बदन वृन्दावन चन्द।
जय श्रीराधा सब सुख सदनी सब सुख सदन सदानन्द कन्द ॥१०॥
जय श्रीराधा लावनि ललिता लावनि ललित लाड़िलौ लाल।
जय श्रीराधा सब सुख सलिता सब सुख सलित सदा सब काल ॥११॥
जय श्रीराधा सहज स्वरूपा सकल सिरोमनि सहज स्वरूप।
जय श्रीराधा अमित अनूपा अद्भुत आभा अमित अनूप ॥१२॥
जय श्रीराधा कंता कामिनी कंत कामिनी राधा कंत।
जय श्रीराधा हरिप्रिया स्वामिनि विलसत नव नव भाव अनंत ॥१३॥

उभय रसिक रसिकिनी की विरदावली गान करती हुई सखियाँ कह रही हैं ॥

॥ दोहा ॥

जिनकी नित्य किशोरि किशोर अवस्था है, जो नित्य कामिनी कन्त हैं और जो नित्य नये-नये अनन्त भावों से नित्य विलसते रहते हैं ऐसे श्रीप्रिया प्रीतम की सदा जय हो।

॥ स्तोत्र ॥

नित्य किशोरी श्रीराधा और नित्य किशोर श्रीरसिक बिहारी की सदा जय हो। श्रीप्रीतम के चित को चोरने वाली श्रीराधा और प्राण प्रिया के चित्त को चोरने वाले प्रीतम की सदा जय हो ॥१॥ गौर वर्णा चमकती हुई श्रीराधा और सब गुणों के आधार स्वरूप श्याम सुन्दर की सदा जय हो। रसिक की जोरी रसिकिनी श्रीराधा और सब सुखों के धाम स्वरूप रसिक रसीलो श्याम की सदा जय हो ॥२॥ रूप अगाधा श्रीराधा और मन मोहन जिनकी शोभा का कोई आर पार नहीं है इनकी सदा जय हो। सब बाधाओं को हरन करने वाली श्रीराधा और इनका प्राण आधार हरि जो सब बाधाओं को हरने वाले हैं इनकी सदा जय हो ॥३॥ अति सुकुमारी श्रीराधा और अति अद्भुत सुकुवाँर इनके प्यारे की सदा जय हो। पिय की प्यारी श्रीराधा और प्यारी के परम उदार पिय की सदा जय हो ॥४॥ कृष्ण वल्लभा श्रीराधा और राधा वल्लभ कृपाल कृष्ण की सदा जय हो। कृपा सुल्लभा श्रीराधा और दयानिधि दीन दयाल श्रीहरि की सदा जय हो ॥५॥ नयन विशाला श्रीराधा और कमलदल नयन विशाला श्रीकृष्ण की सदा जय हो। रूप रसाला श्रीराधा और रंग रंगीले रूप रसाल श्रीकृष्ण की सदा जय हो ॥६॥ परम प्रवीना श्रीराधा और चित्त को सुख प्रदान करने वाले परम प्रवीन चतुर

श्रीकृष्ण की सदा जय हो। नित्य नवीन श्रीराधा और नित्य नवीन कमल दल लोचन श्रीकृष्ण की सदा जय हो ॥७॥ कामदेव की स्त्री रति को लज्जित करने वाली श्रीकृष्ण सम्बन्धी रति रस से रंजित श्रीराधा और क्रोड़ों कामदेवों से सुन्दर श्रीप्रिय सम्बन्धी सुन्दर रँग में रंजित श्रीकृष्ण की सदा जय हो। कनक अर्थात् स्वर्ण मणि अँगी श्रीराधा और मरकत अर्थात् नील मणि मृदु अँग मोहन की सदा जय हो ॥८॥ कमनीय रमणी श्रीराधा और रहस्य रस रमण इनके प्यारे एवं प्रकार की विचित्र जोरी की सदा जय हो। सब प्रकार के दावाग्नि समान दुःखों को दमन करने वाली श्रीराधा और दावाग्नि सरीखे दुःखों को दमन करने वाले परम प्रवीन पवित्र श्रीकृष्ण की सदा जय हो ॥९॥ कमल बदनी श्रीराधा और कमल मुख श्रीवृन्दावन चन्द्र की सदा जय हो। सब सुखों की धाम स्वरूपा श्रीराधा और सब सुखों के धाम स्वरूप सदा आनन्दकन्द श्रीकृष्ण की सदा जय हो ॥१०॥ सब प्रकार की लावण्यता अर्थात् सुन्दरता से भी ललित श्रीराधा और सब लावण्यताओं से भी ललित अर्थात् सुन्दर लाड़िले लाल श्रीकृष्ण की सदा जय हो। सब सुखों की नदी स्वरूपा श्रीराधा और सब सुखों को सदा सब काल प्राप्त करने वाले समुद्र जल स्वरूप श्रीकृष्ण की सदा जय हो ॥११॥ स्वाभाविक सुन्दर स्वरूपा श्रीराधा और स्वाभाविक सुन्दर स्वरूप वाले सकल शिरोमणि श्रीकृष्ण की सदा जय हो। अत्यन्त अनूप श्रीराधा और अद्भुत आभा वाले अमित अनूप श्रीकृष्ण की सदा जय हो ॥१२॥ कान्ता कामिनी अर्थात् अपने प्यारे की प्यारी श्रीराधा और कामिनी का कन्त अर्थात् श्रीराधा कन्त श्रीकृष्ण की सदा जय हो। श्रीहरिप्रिया सखी की स्वामिनी श्रीराधा जो अपने प्यारे श्रीकृष्ण के साथ नये-नये अनन्त प्रकार के भावों से विलास करती रहती हैं उनकी सदा जय हो ॥१३॥

॥ दोहा ॥

अलबेले आँगन खरे, अंस अंस भुज धारि।
लै दरपन दिखरावहीं, ह्वै सनमुख सहचारि॥

॥ पद ॥१८॥

अति अलबेले आंगन ठाढ़े।
भुजा परस्पर अंसनि दीने सुरति रंग में भीने गाढ़े॥
पलटे पट आभूषन अंगन उर नख रेखा अद्भुत सोहें।
पीक कपोल अधर वर अंजन हार बार उरझे मन मोहें॥

आलस बलित अरुन दृग अंबुज छैल छबीले रस में पागे।
लै दरपन श्रीहरिप्रिया सहचरी ठाढ़ी युगल कुंवर वर आगे॥

द्वितीय याम–प्रातः ६ बजे से ८.२४ तक

अंस=कन्धा। उर नख रेखा=वक्षस्थल पर नखक्षत।

शयन मन्दिर से उठकर रसिक दम्पति मोहन महल के आँगन में परस्पर गलबहियाँ दिये हुए खड़े हैं, और श्रीहरिप्रिया सहचरीजू दर्पण दिखला रही हैं।

॥ दोहा ॥

अलबेले रसिक दम्पति परस्पर गलबहियाँ दिये हुए मोहन महल के चौक में खड़े हैं। सहचरी इनके सामने खड़ी होकर इन्हें दर्पण दिखला रही हैं।

॥ पद ॥

अति अलबेले रसिक दम्पति सुरति रँग के गाढ़ भाव से रंजित हुए, परस्पर गलबहियाँ दिये हुए, मोहन महल के चौक में खड़े हैं। विलास में अत्यन्त आसक्त होने के कारण इनको अपने-अपने वस्त्र आभूषणों का अनुसंधान नहीं है। इसलिए अंगों के वस्त्र आभूषण परस्पर बदले हुए हैं। वक्षस्थल का नख क्षत अद्भुत प्रकार से सुशोभित है। कपोलों पर पीक अधरों पर अंजन लगा हुआ है। उलझी हुई हारावली छबीले रस में और अलकावली की शोभा हमारे मनों को मोह रही है। छवि से भरे हुए दोनों छैल पगे हुए हैं। इन दोनों के नेत्र कमल रात्रि के जगने तथा आलस्य युक्त होने से कुछ अरुणता लिये हुए हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरीजू युगल किशोर के सामने खड़ी होकर इन्हें दर्पण दिखला रही हैं।

॥ दोहा ॥

रति रस चिह्न सँवारही, सहचरि निज पट छोर।
ज्यों ज्यों सकुचत जात हैं, नागरि नवल किसोर॥

॥ पद ॥१४॥

निसि के रति रस चिह्न सँवारति ज्यों ज्यों सकुचत नवल किसोर।
रंगदेवी अति रंग रंगीली लै पोंछति निज पट के छोर॥
याही रस में मगन निरंतर नहिं जानत कित रजनी भोर।
सोभा निरखि हितू श्रीहरिप्रिया दम्पति पर डारें तृन तोर॥

रतिरस चिह्न—रति विलास सम्बन्धी पीक अंजनादि के निशान।

श्रीरंगदेवीजू रात के रति रस चिह्नों को अपनी चूनरी से पोंछकर ठीक कर रही हैं। श्रीहितु सहचरीजी तथा श्रीहरिप्रियाजू दम्पति की शोभा देखकर उन पर तृग तोड़ कर डाल रही हैं।

॥ दोहा ॥

सहचरी अपनी चूनरी से ज्यौं-ज्यौं रति रस चिह्नों अर्थात् पीक अंजनादि के निशानों को पोंछ रही हैं त्यौं-त्यौं नागरि और नवल किशोर सकुचते जा रहे हैं।

॥ पद ॥

रसिक दम्पति के सुरति केलि जन्य रंग में रंजित श्रीरंगदेवीजू ज्यों-ज्यों रात के रति रस चिह्नों को अपनी चूनरी से पोंछ कर संवारती जा रही हैं त्यों-त्यों नवल किशोर सकुचते जा रहे हैं। ये दोनों इस रस में इतने निमग्न हैं कि इन्हें यह भी मालूम नहीं है कि कब रात होती है और कब दिन निकलता है। इस समय की इनकी शोभा देखकर श्रीहितु सहचरीजी और श्रीहरिप्रियाजू दम्पति पर तृण तोड़कर डाल रही हैं कि कभी इन पर किसी का दृष्टि दोष न पड़ जावे।

॥ दोहा ॥

मुख सोधन मुख बसन करि, मंगल भोग अरोग।
आरति हित बैठे दोउ, श्रीहरिप्रिया संजोग॥

॥ पद ॥२०॥

मुख सोधन सुख कुंज सदन में करत बिहारी बिहारनि दोऊ।
अलबेली अनिमिष अँखियन सों सुन्दर बदन निहारनि दोऊ॥
करि मुख बसन असन मंगल आरोगि अंचय जल झारनि दोऊ।
श्रीहरिप्रिया बैठाय सिंघासन सज आरति सहचारनि दोऊ॥

अरोग=पाकर। संयोग=दोनों मिलकर। अनिमिष=टकटकी बान्धकर देखना। मुख वसन=रूमाल से मुख पोंछना। असन=अशन=भोजन करना। अशन मंगल=मंगल भोग। अचय=पान करने सखियाँ प्रिया प्रीतम के मुखारविन्दों को धुलाकर रूमाल से पोंछकर मंगल भोग अरुगा रही हैं और मंगल आरती की तैयारी कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

इसके पश्चात् सखियों ने रसिक दम्पति के मुखारविन्दों को धुलाकर रूमाल से पोंछकर मंगल भोग अरुगाया, फिर श्रीहरि एवं प्रिया परस्पर गलबहियाँ दिये हुए आरती के लिए विराजमान हुए।

॥ पद ॥

मोहन महल के चौक में चारों ओर कुंजें हैं जिनमें मङ्गला से लेकर शयन पर्यन्त सब सेवाएँ होती हैं। उत्तर दिशा में मङ्गल कुंज हैं उस सुख कुंज सदन में रसिक दम्पति पधारे हैं वहाँ सखियों ने युगल मुखारविन्दों को धुलाया है। वहाँ श्रीबिहारी बिहारिन बिहार में प्रवृत्त होते हुए एक दूसरे के सुन्दर मुखारविन्दों को एकटक नेत्र कमलों से देख रहे हैं। फिर मुखारविन्दों को रूमाल से पोंछकर मङ्गल भोग आरोग कर दोनों ने जल-पान करके स्वर्ण झारो से हस्त कमलों को धोया है फिर श्रीहरि एवं प्रिया को सिंहासन पर विराजमान कराकर सखियाँ आरती सजा रही हैं।

॥ दोहा ॥

मंगल आरति बारहीं, मंगल रंग रंगीलि।
मंगलमय मुख छवि निरखि मंगल दृग उनमीलि॥

॥ पद ॥२१॥

मंगल कुंज में मंगल आरति, मंगल रंग रंगीली वारति।
मंगल मुख अरविंद निहारति, मंगल मूरति हिय में धारति॥
मंगल सब सहचरि अनुसारति, मंगल मोद विविध विस्तारति।
मंगल चौंर लिए कर ढारति, मंगल मनसिज मन मनुहारति॥
मंगल जय जय शब्द उचारति, मंगल श्रीहरिप्रिये विचारति॥

उनमीलि=खोलकर। पनसिज=कामदेव। मनुहारति=खुशामद करना। सखियाँ मंगल आरती कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

मंगल अनुराग से भरी हुई, मंगल रूप सखियाँ मंगल आरती कर रही हैं। एवं करती हुई वे सखियाँ अपने मंगलमय एकटक नेत्रों से रसिक दम्पति की मंगलमय मुख की छवि को देखती जा रही हैं।

॥ पद ॥

मंगल अनुराग से रंजित सखियाँ मंगल कुंज में मंगल आरती करती हुई अपने आपको रसिक दम्पति पर वारि रही हैं। युगल के मंगल मुख कमल को देख-देखकर वे उनकी मंगलमयी छवि को अपने-अपने हृदयों में धारण करती हैं। मंगल स्वरूप सब सखियाँ इसी प्रकार अनुसरण करती हुई विविध प्रकार के आनन्दों का विस्तार करती हैं। मंगल रूप चँवरों को हाथों में लिए उसे ढाल रही हैं। मंगल स्वरूप कामदेव दम्पति की छवि देखकर मन ही मन में इनकी सेवा प्राप्ति के लिए खुशामदें कर रहा है। अथवा रसिक दम्पति का इष्ट दिव्य कामदेव है (महा मन्मथ इष्ट उपासी ज़ूः सः पदः ३०) अतः सखियाँ उस महामन्मथ की खुशामदें कर रही हैं कि वह इन दोनों पर कृपा करें जिससे कि ये नित्य बिहार में प्रवृत हों। सखियाँ मंगल जय जय ध्वनि कर रही हैं। श्रीहरिप्रिया सखी युगल के लिए मंगल कामनाएँ मना रही हैं।

॥ अनुरागिनी विलासावलि मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

कमल नैन बस कारिनी, नित्य किसोरी वाम।
सुजस उजागरि नागरी, जय राधा सुख धाम॥

॥ पद ॥२२॥

जय राधा जय सब सुख साधा जय जय कमल नैन बस करनी।
जय स्यामा जय सब सुख धामा जय जय मन मोहन मन हरनी॥
जय गोरी जय नित्य किसोरी जय जय भागनि भरी सुभामिनि।
जय नागरि जय सुजस उजागरि जय जय श्रीहरिप्रिया जय स्वामिनि॥

अनुरागिनि विलासावलि मध्याभास=राग विलावल। सुजस उजागरि=सुन्दर यश को प्रकाश करने वाली। सुभामिनि=सुन्दर सुन्दरी। ३ आगामी पदों द्वारा मंगल आरती के पश्चात् सखियाँ विरदावली गा रही हैं।

॥ दोहा ॥

नित्य किशोरी वाम, सुख धाम स्वरूप उन राधारानी की सदा जय हों जो अपनी प्रेम माधुरी से अपने प्यारे कमल नैन को अपने वश में करे रखती हैं अतः नागरीज़ू का यह सुयश जस प्रकाशमान है।

सब सुखों की सिद्धि स्वरूपा, कमल नयन लालजू को वश में करने वाली श्रीराधा-रानी की सदा जय हो सब सुखों की धाम स्वरूपा मन मोहन लाल के मन को हरन करने वाली श्रीश्यामाजू की सदा जय हो। नित्य किशोरी सब प्रकार के भाग्यों से भरी हुई सौभाग्यवती श्रीगौराँगीजू की सदा जय हो। नित्य नागरी जिनका सुयश यश प्रकाशमान है। एवं प्रकार की श्रीहरिप्रिया सखी की स्वामिनी की सदा जय हो।

॥ दोहा ॥

एक रंग में रंगे दोउ, एक प्रान द्वै गात।
बदन विलोकत परस्पर, छिन बिछुरे न सुहात॥

॥ पद ॥२३॥

बदन बिलोकति में न अघात।
पल न लगें पल रहे थकित ह्वै डगभरि चल्यौ न जात॥
दोउ दोउन के प्रान जीवनि धन छिन विछुरे न सुहात।
एक रंग रंगि रहे रंगीले एक प्रान द्वै गात॥
महा सुकुवारि किसोर किसोरी जोरी अति अवदात।
निरखति श्रीहरिप्रिया सहचरी उर आनन्द न समात॥

बदन=मुखारविन्द ! अवदात=सुन्दर।

॥ दोहा ॥

इन दोनों के विग्रह तो दो हैं और प्राण एक है। ये दोनों एक ही अनुराग रंग में रंजित हैं। अतः परस्पर मुखारविन्दों को एकटक दृष्टि से सदा देखते रहते हैं। यदि क्षण काल के लिए विछुर जावें तो ये दोनों तड़फने लग जाते हैं।

॥ पद ॥

परस्पर मुखारविन्दों के देखने से ये दोनों कभी भी तृप्त नहीं होते हैं। पलभर के लिए भी इनकी पलकें नहीं झपकती हैं। विलास जन्य आनन्द में ये इतने निमग्न होकर थकित हो रहे हैं कि इनसे इस आनन्द को छोड़कर एक डग भी नहीं चला जाता है। ये एक दूसरे के प्राण जीवन धन हैं। क्षण काल का वियोग भी इनसे नहीं सहन होता है। इन दोनों का प्राण तो एक है देह दो हैं और ये दोनों रंगीले एक ही अनुराग रंग में रंगे हुए हैं। ये किशोर किशोरी की जोरी अत्यन्त सुकुमार और अति सुन्दर है, श्रीहरिप्रिया सहचरी का आनन्द इनको देख-देखकर हृदय में नहीं समाता है।

॥ दोहा ॥

नैंनन नैंन मिलावहीं कहि कहि बैंन रसाल।
रसिकन को धन सहज दोउ, लाड़ लड़ीले लाल॥

॥ पद ॥२४॥

लाल दोउ लाड़ लड़ीले हो कहत परस्पर बैंन।
सुनि सुनि पुनि पुनि रीझि रीझि नैंनन सों लावत नैंन॥
अति अनुराग सुहाग भाग रस भीनें नागर नेह।
कोटि कोटि रति अनंग अंग में झलक तरंग अछेह॥
मन मोहन मन मोहनी सहज ही स्यामल गौर।
श्रीहरिप्रिया रसिक जन कौ धन जोरी जुगल किसोर॥

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति इस समय रहस्य विलास सम्बन्धी बातचीत करते हुए परस्पर नेत्रों से नेत्र मिला रहे हैं। ये दोनों लाड़ लड़ीले लाल रसिक जनों के स्वाभाविक धन स्वरूप हैं।

॥ पद ॥

ये दोनों लाड़ लड़ीले लाल रहस्य विलास सम्बन्धी इस प्रकार की बातचीत कर रहे हैं जिनको सुन-सुनकर रीझकर रसिक दम्पति परस्पर नेत्रों से नेत्र मिलाते हैं। ये दोनों नागर नागरि अति अनुराग तथा सौभाग्य भाग रस स्वरूप नेह में क्रोड़ों रति कामदेवों को तिरस्कार करने वाली दिव्य काम के रंग की अक्षय तरंगें झलक रही हैं। श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं, ये मन मोहन मोहनी की स्वाभाविक स्यामल गौर जोरी स्वरूप युगल किशोर की जोरी, रसिकजनों की तो धन स्वरूपा है।

॥ दोहा ॥

लाई कुंज सनान में, निज सहचरी समुझाय।
पहराये पट पोंछि अंग, जथा रीति अह्नवाय॥

॥ पद ॥२५॥

निज सहचरि समुझाये दोऊ। न्हान कुंज में आये दोऊ॥
मनि चौकी पधराये दोऊ। ऊबटनां उबटाये दोऊ॥

सरस सुगन्ध लगाये दोऊ। सौरभ नीर न्हवाये दोऊ ॥
मृदुल अंग अंग छाये दोऊ। पाटम्बर पहराये दोऊ ॥
करन सिंगार सुहाये दोऊ। श्रीहरिप्रिया हुलसाये दोऊ ॥

पाटंबर=वस्त्र। सौरभ नीर=सुगन्धी जल। सखियाँ रसिक दम्पति को स्नान कुंज में लाकर स्नान करा रही हैं।

॥ दोहा ॥

यद्यपि ये दोनों रसिक रसिकिनी विलास सुख को छोड़ना नहीं चाहते थे, तो भी सखियाँ स्नान समय जानकर उन दोनों को समझा बुझाकर न्हान कुंज में ले आईं। पहिले विधि पूर्वक स्नान कराकर अंग अगोछकर फिर इन दोनों को वस्त्र धारण कराये।

॥ पद ॥

निज सहचरियाँ समझा बुझाकर युगल को न्हान कुंज में लाईं। दोनों को मणि जटित चौकी पर विराजमान कराकर अंग प्रत्यंगों में उबटना लगाया। फिर सरस सुगन्ध युक्त इतर फुलेल लगाकर इनको सुगन्धी जल से नहवाया फिर कोमल वस्त्रों से इनके मृदुल अंगों को अंगोछकर वस्त्र धारण कराये। फिर सुन्दर शृङ्गार करने के लिए श्रीहरिप्रिया उल्लसित हुईं।

॥ दोहा ॥

अंस भुजा दीनें दोऊ, भीने रंग अपार।
करन सिंगार सुहावते, आये कुंज सिंगार ॥

॥ पद ॥

करन सिंगार सिंगार कुंज में आये अलबेले दोऊ प्यारे।
चटकभरी चटकति चरननि में पावरियां सोहैं नैन अन्यारे ॥
विथुरे बार अंस भुज दीने सुरति रंग में भीनें भारे।
श्रीहरिप्रिया पधराय सिंघासन बरन बरन आभरन सवारे ॥

अंस भुजा=गलबहियाँ। चटकभरी=चमकदार=सुन्दर पावरियाँ=चरण पादुका या चट्टी। चटकति=चट-चट शब्द कर रही है। अन्यारे=परस्पर मिले हुए। सुहावने=प्यारे मोहन महल के चौक में सेवा समाधान के लिए आठ कुंजें हैं। उत्तर दिशा की पहिले कुंज में मंगला होती है। ईशान कौन की दूसरी कुंज में स्नान। अब पूर्व दिशा की तीसरी शृङ्गार कुंज में युगल को पधरा रही हैं। परस्पर गलबहियाँ दिये हुए, भीगे

बालों से एक-एक वस्त्र धारण किये हुए, तथा चरणों में चट्टियाँ पहने हुए रंग में निमग्न कैसे जा रहे हैं, ग्रन्थकार उस शोभा का चित्र खेंचते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

ये दोनों प्यारे सुरति विलास जन्य रंग में भीगे हुए, परस्पर गलबहियाँ दिये हुए, श्रृङ्गार कराने के लिए श्रृङ्गार कुंज में पधारे।

॥ पद ॥

ये दोनों अलबेले प्यारे श्रृङ्गार कराने के लिए श्रृङ्गार कुंज में पधार रहे हैं। इनके परस्पर नयनों से नयन मिले हुए कैसे सुहावने लगते हैं। इनके चरण कमलों में चटकीली चट्टियाँ चलती दफा कैसे चट-चट शब्द कर रही हैं। इनकी अलकावलियाँ विथुरी हुई हैं। ये परस्पर गलबहियाँ दिये हुए, अत्यन्त सुरति रंग में भीजे हुए, गाढ़ आलिंगन किये हुए आ रहे हैं। श्रृङ्गार कुंज में श्रीहरिप्रियाजू ने इनको सिंहासन पर पधरा कर वरन-वरन के वस्त्र आभूषणों से आभूषित किया।

॥ दोहा ॥

देखि देखि सखि कहत यों, कैसे बने उदार।
जीवनि हितु-जन जियन की, नष-सिख सजि सिंगार॥

॥ पद ॥२७॥

नख सिख सजि सिंगार विराजें।
लै दरपन दिखरावति सुन्दरि कैसे आज उदार बिराजें॥
देखि देखि सोभा अंग अंग की उमंगे उरनि अपार बिराजें।
श्रीहरिप्रिया हितू जन जिय की जीवनि प्रान अधार बिराजें॥

श्रृङ्गार कुंज में सखियों ने युगल का श्रृङ्गार किया फिर उनको दर्पण दिखलाया अब उनकी रूप माधुरी देख-देखकर प्रसन्न हो रही है।

॥ दोहा ॥

जब रसिक दम्पति नख शिख श्रृङ्गार करके विराजे, तब सखियाँ इनकी रूप माधुरी देख-देखकर कहने लगीं "आज आप दोनों उदार कैसे सुन्दर बने हो। हितु सहचरी के अनुगतजनों के तो आप जीवन स्वरूप हो।"

॥ पद ॥

नख शिख श्रृंगार करके जब रसिक दम्पति विराजे तब सुन्दरियाँ युगल को दर्पण दिखलाकर कहने लगीं "आज ये उदार कैसे सुशोभित हैं।" सखियों के हृदय इनकी शोभा देख-देखकर आनन्द से भर जाते हैं। यह जोरी श्रीहरिप्रियाजू और श्रीहितु सहचरीजी के जनों की तो जीवन तथा प्राण आधार स्वरूपा है।

॥ दोहा ॥

प्रेम पुलकि अंग अंग में, देत हेत जुत कौर।
भोग सिंगार अरोगहीं, सुकुवांरन सिर मौर॥

॥ पद ॥२८॥

बैठे दोउ सुकुंवार सिरोमनि अरोगत हैं भोग सिंगार।
चांमीकर चौकी पर सुन्दर आनि धरो सहचरी भरि थार॥
आदर सहित देत कर कौरनि कमल बदन करि करि मनुहार।
श्रीहरिप्रिया प्रसंसि परस्पर प्रेम पुलक अंग अंग अपार॥

पुलकि=रोमाञ्च। चामीकर=स्वर्ण। मोहन महल की कुंजों का पद नं० २६ की उत्थानिका में वर्णन कर चुके हैं। अब अग्नि कौन की चौथी "श्रृंगार-भोग" कुंज में प्रिया प्रीतम को सखी पधराकर भोग-श्रृंगार अरुगवा रहीं हैं।

॥ दोहा ॥

श्रृंगार भोग अरोगते हुए दोनों सुकुंमार शिरोमणि कोरों को उठा-उठाकर एक दूसरे के मुख में देते हैं तब प्रेम से युगल के अंग-अंग में रोमाञ्च हो जाते हैं।

॥ पद ॥

दोनों सुकुंमार शिरोमणि श्रृंगार भोग कुंज में बैठे हुए भोग श्रृंगार अरोग रहे हैं। स्वर्ण रत्नजटित चौकी पर सखियों ने स्वर्ण थाल में सब सामग्रियाँ सजाकर रखी हैं। ये दोनों एक दूसरे के मुख कमलों में मनुहार कर-करके आदर सहित ग्रास दे रहे हैं। श्रीहरि एवं प्रिया भोजन करते हुए परस्पर इस प्रकार से प्रशंसा करते हैं जिससे इनके अंग प्रत्यंगों में प्रेम के अनुभाव अर्थात् रोमाञ्च हो जाते हैं।

॥ दोहा ॥

अचवन अचवावति बिये, हितू हियें हुलसाय।
रोरी तिलक बनावहीं, बीरी भोग लगाय॥

॥ पद ॥२६॥

लै झारी अचवन अचवावति।
हितू सहेली हित की चित की समझि समझि हियरे हुलसावति॥
दै सुखवास विसाखा बीरी लै लै ललिता भोग लगावति।
श्रीहरिप्रिया तिलक मस्तक रचि नीराजन की सोंज सजावति॥

हुलसाय=उल्लसित होकर=प्रसन्न होकर। सौज=सामग्री मुखवास=सुगन्धी द्रव्य कर्पूरादि। नीराजन=आरती। सखियाँ युगल को अचवन करवा रही हैं।

॥ दोहा ॥

हृदय में उल्लसित होकर हितु सहचरीजी ने युगल को अचवन कराया, फिर सखियों ने बीरी भोग लगाकर दोनों के मस्तकों पर रोली के तिलक बनाये।

॥ पद ॥

हितु सहचरीजी ने रत्नजटित स्वर्ण की झारी से दोनों का अचवन कराया। आप दोनों की हितैषी हैं इनके हृदय की बात समझकर अपने हृदय में प्रसन्न हो रही हैं। श्रीविशाखाजी ने लगी हुई बीरियों को सुगन्धी द्रव्य से सुवासित किया फिर श्रीललिताजी ने उन बीरियों को भोग लगाया। श्रीहरिप्रियाजू ने दोनों के मस्तकों पर रोली का तिलक बनाकर, आरती की सामग्रियों को सजाया।

॥ दोहा ॥

सजि लाई आरति सखी, अग्रवर्ति कर दीय।
अद्भुत रीति उतारहीं, निरखि निरखि छवि वीय॥

॥ पद ॥३०॥

मूरतिमान सिंगार सहचरी सजि लाई आरति सिंगार की।
आनि दई कर अग्रवर्ति के कहा कहों सोभा कनक थार की॥
अद्भुत रीति उतारति वारति निरखि सुछवि विवि वर उदारकी।
श्रीहरिप्रिया पुलक अंग अंग में बाढ़ी उर उमँगनि बिहार की॥

अग्रवर्ति=श्रीरंगदेवी आदि आठों सखियों को कहते हैं यहाँ श्रीरंगदेवीजू से तात्पर्य है। बीय=दोनों की। सखियाँ शृंगार आरती कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

सखी ने शृंगार आरती सजाकर अग्रवर्ती श्रीरंगदेवीजू के हाथ में दी है। वे युगल की छवि को देख-देखकर अद्भुत रीति से आरती उतार रही हैं।

॥ पद ॥

जो सहचरी शृंगार आरती सजाकर लाई हैं इतनी सुन्दर लग रही हैं मानों साक्षात् शृंगार रस हीने सहचरी का रूप धारण किया हो। उन्होंने सजे हुए आरती के थाल को श्रीरंगदेवीजू के हाथ में दिया। उस स्वर्ण थाल की शोभा कही नहीं जा सकती है। श्रीरंगदेवीजू उदार युगल की छवि को देख-देखकर अद्भुत रीति से आरती उतार-उतार कर, अपने प्राणों को बारती जा रही हैं। श्रीहरि एवं प्रिया के अंग प्रत्यंगों में प्रेम से रोमाञ्च हो रहे हैं, और रति विहार के लिए इनके हृदयों में उमंगें बढ़ रहीं हैं।

॥ अनुरागिनी आनन्दा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

यह सुख दै सब सखिन कों, सहज सुरत रस लीन।
कुंजन कुंजन बिहरहीं, निज इच्छा आधीन॥

॥ पद ॥३१॥

चले तहाँ तें उरन उमँहियाँ। बिहरत कुंजन कुंजन मँहियाँ॥
चाल मराल दिये गर बँहियाँ। तिरछी चितवनि निरखति छँहियाँ॥
आस पास सोहें सब सँहियाँ। जुगलचन्द मुख रूप चष चहियाँ॥
कोउ कर चौंर मोरछल गहियाँ। अप अपनी सब सोंज सजहियाँ॥
बर बिहार वै सम बिहरहियाँ। श्रीहरिप्रिया प्रमोद प्रदहियाँ॥

तृतीय याम–"पूर्वान्ह" प्रातः ८-२४ से १०-४८ तक

अनुरागिनि आनन्दा मध्याभास=राग आसावरी। सहज सुरत रस=स्वाभाविक रति बिहार रस। मराल=हंस। छँहियाँ=छाया। सँहियाँ=सखियाँ। चष=नेत्र। चहियाँ=चाहती हैं। मोरछल=मोर पँखों का चँवर। वै=वय=अवस्था। प्रमोद=आनन्द। प्रदहियाँ=देने वाली। शृंगार आरती के बाद युगल वन-विहार को पधारते हैं।

॥ दोहा ॥

उपरोक्त प्रकार से सखियों को सुख प्रदान करके रसिक दम्पति स्वाभाविक रति विहार रस आस्वादन करने के लिए अपनी स्वयं इच्छा से कुंज-कुंजों में बिहार करने लगे ।

॥ पद ॥

अब रसिक दम्पति जिनके हृदयों में आनन्द और उत्साह भरा हुआ है मोहन महल से चलकर कुंज कुंजान्तरों में बिहार करने लगे । परस्पर गलबहियाँ दिये हुए ये हंस गति से झूमते झूमते चल रहे हैं । प्यारे अपनी प्यारी की परछाहीं को तिरछी चितवनि से देखते जा रहे हैं । भाव यह है यद्यपि लाल अपनी प्यारी का गाढ़ अलिंगन किये हुए हैं तो भी प्रेम की गाढ़ आसक्ति ने लाल को भुला दिया है । वह अपनी प्यारी की परछाहीं श्रीवृन्दावन की भूमि पर पड़ी हुई देखकर तिरछी चितवन से मानों श्रीवृन्दावन से कह रहे हैं "तू बड़ भागी है तेरे वक्षस्थल पर यह सौन्दर्य बिखरता जा रहा है जिसके मुझ को दर्शन भी प्राप्त नहीं है ।" रसिक दम्पति के आस-पास सखियाँ सुशोभित हैं जो चाह भरी आँखों से युगलचन्द के मुख कमलों तथा युगल के रुख को देख रही हैं । किसी सखी के हाथ में चँवर है, कोई मोरछल ले रही है । अपनी-अपनी सेवा की सब समग्रियाँ लिए हुए हैं । दोनों सम वयस रति बिहार में आसक्त हैं । एवं प्रकार से श्रीहरि एवं प्रिया सखियों को आनन्द प्रदान कर रहे हैं ।

॥ दोहा ॥

रंग दरस दादिकन मन, सहज करत संचार ।
कुंज बिहारीलाल यों, विहरत कुंज बिहार ॥

॥ पद ॥३२॥

कुंज बिहारी कुंज बिहारिनि कुंज बिहार बिहारें री ।
रंगद रसद रहसि वसुदादिक रमत सुरुचि अनुसारें री ॥
अमृत कुंज कौ अमृत लै लै पी पी प्रान प्रति पारें री ।
फल कल चल दल थल विथलनि में श्रीहरिप्रिया संचारें री ॥

मर्कतमणि......रस रंग सहेली (तालिका).........इसके अनुसार रंगद=रंग प्रदान करने वाली कुंज श्रीप्रियाजू का विग्रह । रसद=रस देने वाली कुंज श्रीलालजू का विग्रह । रहसि=रहस्य कुंज । वसुदा=धन देने वाली । पृथ्वी=मनोरथों को पूर्ण करने

वाली कुंज। अमृत कुंज=मुखारविन्द जहाँ अधर सुधा रूपी कुंज है। फलकल=वक्षोज रूपी कुंज (श्रीफल कोक कलश कुच शोभा) तालिक चलदल=उदर (चलदल उदर अनूपम ओभा) (तालिका) थल विथिलनि=(अंग-अंग प्रति सीमा सोई। थल अरु विथल जानिये जोई।) (तालिका) संचारें=कठिनाई से चलना बिहरना उपरोक्त आठ कुंजों का वर्णन किया है। रसिक दम्पति के अंग प्रत्यंगों से ग्रन्थकार का तात्पर्य है। दोनों रति बिहार में निमग्न हैं। यही रति निकुंज बिहार है।

॥ दोहा ॥

कुंज बिहारीलाल और कुंज बिहारिनि श्रीलड़ैतीजू का परस्पर अंग प्रत्यंगों में बिहार करना ही कुंज बिहार है। इन अंग प्रत्यंगों को यहाँ रंगद रसादिक नामों से कहा गया है।

॥ पद ॥

कुंज बिहारी कुंज बिहारिनि परस्पर अंग प्रत्यंगों में विलास विलस रहे हैं यही इनका कुंज बिहार है। कभी प्यारे रंगद अर्थात प्यारीजू के विग्रह रूप कञ्चनमयी कुंज में, कभी प्यारी रसद अर्थात् प्यारे के विग्रह रूप मर्कतमणि कुंज में, बिहार करते हैं। कभी दोनों रहस्य कुंज अर्थात् रति पति भवन में विलास करते हैं (यहाँ भी रहस्य अंग प्रत्यंग से तात्पर्य है) कभी वसुदा कुंज अर्थात् परस्पर देह रूप पृथ्वी पर अपनी रुचि के अनुसार रमण करते हैं कभी अमृत कुंज अर्थात् परस्पर अधर सुधा रस पान से अपने-प्राणों को पुष्ट करते हैं। कभी फल कल अर्थात् हृदय कुंज कभी चलदल अर्थात् उदर रूपी कुंजों में बिहार करते हैं। कभी श्रीहरि एवं प्रिया विथलनि अर्थात् अंग-अंग की सीमा रूप कुंज में बड़ी कठिनाई से बिहार करते हैं। तात्पर्य यह है गाढ़ आलिंगन करने से भी रसिक दम्पति के बीच में जो अलग-अलग होने की दरज रहती है यही थल विथ-लनि कुंजें हैं। दोनों एक होना चाहते हैं "चहत एक भयो गात" परन्तु ऐसा नहीं होता है दूसरे गाढ़ आलिंगन को त्यागना नहीं चाहते हैं अतः इन कुंजों में बड़ी कठिनाई से बिहार करते हैं।

॥ दोहा ॥

विधि पूर्वक आदर सुरुचि, आरोगन रस पुंज।
हितू सखिनि के हेत करि, आये भोजन कुंज॥

॥ पद ॥३३॥

भोजन कुंज में आये दोऊ भोजन करन सुहाये री।
हितू सहेली हित चित अनुसरि करि आदर पधराये री॥
विधि पूर्वक बैठे आसन पर अंग अंग सचुपाये री।
श्रीहरिप्रिया आरोगत रुचि सों विविध भोग मन भाये री॥

सचु=ष+च (कोष) सर्वोत्कृष्ट=सर्वोत्तम। युगल भोजन कुंज में पधारे हैं। यह महल में दक्षिण दिशा में।

॥ दोहा ॥

श्रीहितु सखी के हेत से रसिक दम्पति भोजन कुंज में आये। वहाँ आदर सहित विधि पूर्वक आसनों पर विराजमान हुए। और रुचि से विविध प्रकार के रस व्यंजन आरोगने लगे।

॥ पद ॥

रसिक दम्पति भोजन करने के लिए भोजन कुंज में पधारे। हितु सहेलीजी ने युगल के हित और उनके चित्त के अनुसार उन्हें आदर पूर्वक पधराया। दोनों विधि पूर्वक इस प्रकार से आसन पर बैठे जिससे उनको सर्वोत्कृष्ट सुख मिल सके। श्रीहरि एवं प्रिया विविध प्रकार के मन भाये व्यंजनों को अपनी रुचि के अनुसार आरोग रहे हैं।

॥ दोहा ॥

सामा सजि सब सहचरी, परसत परम रसाल।
निज निज रुचि भोजन करत, दोउ लाड़िली लाल॥

॥ पद ॥३४॥

भोजन करत लाड़िली लाल।
रतन जटित कंचन चौकी पर आनि धर्यो सहचरि भरि थाल॥
छप्पन भोग छतीसों खटरस लेह्य चोष्य भछि भोज्य रसाल।
जेंवत जाहि सराहि सरस अति परसत रंग रंगीली बाल॥
जे जे बिंजन कर पल्लवनि ते छुवति छबीली छई छवि जाल॥

ते ते बिंजन ताहि ठौर ते लेत छबीलौ होत निहाल।
इहि विधि राजभोग आरोगत सुख संभोगत नैन विशाल॥
श्रीहरिप्रिया परस्पर दोऊ परम प्रवीन प्रेम प्रतिपाल॥

लेह्य=खीर या चटनी की तरह के चाट कर खाने के पदार्थ। चोष्य=चूसकर खाने के व्यंजन। भक्ष्य=ग्रास तोड़कर खाने के पदार्थ पूरी रोटी आदि। भोज्य=मोहन भोग भात आदि। कर पलवनि=कर कमलन। श्रीप्रियाप्रीतम राजभोग आरोग रहे हैं।

॥ दोहा ॥

परम रसाल सामग्रियों को सजा-सजाकर सहचरियाँ परोस रही हैं। दोनों लड़िली-लाल निज रुचि से भोजन कर रहे हैं।

॥ पद ॥

लाड़िली लाल भोजन कर रहे हैं। सहिचरियों ने रतन जटित स्वर्ण चौकी पर, स्वर्ण थाल में सब सामग्रियाँ सजाकर लाकर रखी हैं। छप्पन प्रकार के भोग्य पदार्थ और छत्तीस प्रकार के व्यंजन, खटरस, मिठरस, तथा रसीले लेह्य, चोष्य भक्ष्य और भोज्य सब सामग्रियों की सराहना करते जा रहे हैं और रंग रंगीली सखियां और ला ला कर परोसती जा रही हैं। जिन-जिन व्यंजनों को छवि जाल स्वरूपा छबीली प्यारीजू अपने हस्त कमलों से छूती हैं, छबीले प्यारे उन्हीं-उन्हीं पदार्थों को वहीं से उठा उठाकर अपनी प्यारी को अरुगा रहे हैं और स्वयं आप अरोग रहे हैं। ऐसा करते हुए प्यारे अपने आपको कृत्-कृत्य मानते हैं। एवं प्रकार से नयन बिशाल रसिक रसिकिनी, राज-भोग आरोग कर सुख संभोगते हैं। श्रीहरि एवं प्रिया दोनों परस्पर के प्रेम प्रति पालन करने में परम चतुर हैं।

॥ दोहा ॥

अचवन करि श्रीहरिप्रिया बीरी मुख में लीन।
हित प्रमोद भरि मोद सों तिहि छिन आरति कीन॥

॥ पद ॥५३॥

अचवन करि आरोगे बीरी। हित प्रमोदिका आरति कीरी॥
निरखि निरखि छवि नैनन नीरी। भई सखियन की अखियाँ सीरी॥
मुदित महामन मोद मतीरी। जै जै उचरति धरति न धीरी॥
श्रीहरिप्रिया जोरी नवलीरी। अलबेली और लाड़ लड़ीरी॥

नीरी=निकट=नजदीक। सीरी=शीतल। मतीरी=मति+री। सखियाँ बीरी अरुगवा कर आरति कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

फिर श्रीहरि एवं प्रिया ने अचवन करके बीरी आरोगी। और श्रीहितु सहचरीजी ने मोद में भर के उसी समय आरती की।

॥ पद ॥

युगल ने अचवन करके बीरी आरोगी और हितु सहचरीजी ने आरती की। सखियों की आँखें प्रिया प्रीतम की छवि नजदीक से देख-देखकर शीतल होती जा रही हैं। उनके मन और बुद्धि अत्यन्त मोद में भरे हुए हैं अतः वे अधीर होकर बार-बार युगल की जय ध्वनि कर रही हैं। यह श्रीहरि एवं प्रिया की जोरी अत्यन्त नवल, अलबेली और लाड़ लड़ीली है।

॥ दोहा ॥

पीवत पानी वारि के, जुगलचन्द छबि देखि।
अलकलड़े सुकुंवार जै, कहि कहि बचन विसेखि॥

॥ पद ॥२२॥

जै जै अलक लड़े सुकुंवार।
जय जय नित्य किशोरी जोरी जीवनि प्रान अधार॥
जय जय मोहन की उर माला जै राधा उरहार।
जय जय श्रीहरिप्रिया जुगल पर पीवत पानी वार॥

आरती के पश्चात सखियाँ वार फेर करके जल पी रही हैं।

॥ दोहा ॥

जुगल चन्द्रमाओं की छवि देख-देखकर सखियाँ वारि फेरि करके जल पी रही हैं फिर "अलकलड़े सुकमारों की जय" एवं प्रकार से बार-बार जै ध्वनि कर रही हैं।

॥ पद ॥

अलकलड़े सुकुमारों की जय हो। हमारी जीवन प्राण अधार स्वरूपा नित्य किशोरी जोरी की जय हो। मोहन के उर की माला स्वरूपा श्रीराधा रानी की जय हो। श्रीराधा के गले के हार स्वरूप श्रीमोहन की जय हो। एवं प्रकार से जै जै ध्वनि करके श्रीहरिप्रियाज्ञू ने युगल पर वार फेर करके जल पिया।

॥ दोहा ॥

चले अंस भुज दीनि दोऊ, करी हंस गति हीन।
सुख आसन रंग भीनि बनि, बैठे परम प्रवीन॥

॥ पद ॥३७॥

चले दोउ अंसनि भुज दीनें। चाल मराल करी गति हीनें॥
श्रमित जानि प्रीतम रस लीनें। मुकुट छाँह प्यारी पर कीनें॥
बैठे सुख आसन रंग भीनें। श्रीहरिप्रिया दोउ परम प्रवीनें॥

श्रीरसिक दम्पति का "राजभोग" मोहन महल के अन्तर्गत आठ कुंजें हैं, उनमें से दक्षिण दिशा की कुंज में हुआ था। अब उस कुंज से राजभोग के बाद शयन करने के लिए नैऋत कौन की कुंज में पधार रहे हैं। उसी शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

राजभोग आरोग कर रसिक दम्पति परस्पर गलबहियाँ दिये हुए शयन कुंज की ओर झूमते-झूमते इस प्रकार की गति से चल रहे हैं, मानों अपनी गति से हंस गति को हीन कर रहे हों। वहाँ पहुँच कर अनुराग में भीगे हुए परम प्रवीन दोनों बन ठन कर सुख आसन पर विराजमान हुए।

॥ पद ॥

परस्पर गलबहियाँ दिये हुए, अपनी चाल से हंस गति को हीन करते हुए वहाँ से दोनों पधारे। यद्यपि मार्ग में धूप आदि निवारण के लिए, सखियाँ युगल पर छत्रादि कर रही हैं, तो भी अपनी प्यारी को श्रमित जानकर प्यारे सेवा रस प्राप्ति के लिए, उन पर अपने मुकट से छाया करते हुए चल रहे हैं। वहाँ पहुँच कर परम प्रवीन श्रीहरि एवं प्रिया दोनों अनुराग में भर कर सुख आसन से विराजमान हुए।

॥ अनुरागिनी सुरंगांगा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

मध्य काल दिन जानि के, उन्मादनि उन्मादि।
सब सनमुख ह्वै रुख गहें, कहें जै नमो आदि॥

॥ स्तोत्र ॥३८॥

जय नमो राधा रसिकिनी। जय नमो मृदु मधु मुसिकिनी॥१॥

जय नमो प्रीतम वल्लभा। जय नमो प्रणतनि सुल्लभा ॥२॥
जय नमो पिय मन रंजनी। जय नमो विरह विभंजनी ॥३॥
जय नमो प्रेम पयोधिनी। जय नमो रति रस बोधिनी ॥४॥
जय नमो सब सुख सागरी। जय नमो सब गुन आगरी ॥५॥
जय नमो अद्भुत आननी। जय नमो मन हर माननी ॥६॥

चतुर्थ याम–मध्याह्न १०-४८ से ३-३६ तक।

अनुरागिनि सुरंगांगा मध्याभास=राग सारंग। उन्मादिनि=युगल के प्रेम में उन्मत्त सखियाँ। उन्मादि=उन्माद+आदि=युगल का उन्माद प्रेम विवशता आदि। प्रनितनि=प्रणित, शरणागतजन। विभंजनी=काटने वाली। पयोधिनी=समुद्र स्वरूपा। प्रेमा पर परा=परा भक्ति से भी श्रेष्ठ जो प्रेम है, श्रीप्रियाजू उस प्रेम की विग्रह स्वरूपा हैं। नारद भक्ति सूत्र और शाण्डिल्य भक्ति सूत्रों में "परा" का स्वरूप श्रीब्रज गोपिका बतलाई गई हैं "यथा ब्रज गोपिकानाम्"। (ना० सूः २१) "अतएव तदभावाद्वल्लवीनाम्।" (शा० सूः १४) अतः श्रीब्रज गोपियों के प्रेम से जो पर अर्थात् श्रेष्ठ प्रेम है श्रीप्रियाजू उस प्रेम की स्वरूपा हैं।

इस स्तोत्र द्वारा ग्रन्थकार रसिक दम्पति का स्वरूप निर्वाचन करते हुए कहते हैं :—विशेष रूप से श्रीप्रिया की विरदावली गान करते हैं।

॥ दोहा ॥

मध्याह्न में सखियाँ, जो युगल के प्रेम में उन्मत्त हो रही हैं, उनको उन्माद आदि अवस्था को, रसिक दम्पति का रुख देखकर, उनके सन्मुख नमो नमो आदि से इस प्रकार कहने लगे।

॥ पद ॥ स्तोत्र ॥

रसिकिनी श्रीराधा की जै हो जो मृदु-मृदु मुसका रही हैं ॥१॥ प्रीतम वल्लभा की जय हो जो प्रणतन शरणागत जीवों को सुलभता से प्राप्त हो सकती हैं ॥२॥ प्रीतम के मन को रंजन करने वाली की जय हो, जो लालजू के अतृप्ति जन्य अथवा विग्रह पार्थिक्य रूप विरह को नष्ट करने वाली हैं ॥३॥ प्रेम की समुद्र स्वरूपा की जय हो जो प्रीतम सम्बन्धी रति रस विहार के तात्पर्य को जानती हैं ॥४॥ सब सुखों के सागर स्वरूप की जय हो जो सब गुणों की अग्रणीय हैं ॥५॥ अद्भुत सुन्दर मुखारविन्द वाली की जय हो जिनके मान को देखकर भी प्यारे का मन हरण हो जाता है ॥६॥

जय नमो चन्द्र प्रभा हरा। जय नमो प्रेमा पर परा ॥७॥
जय नमो कोकिल कलरवा। जय नमो भव भंजनि भवा ॥८॥
जय नमो बीरी चर्विता। जय नमो गुन निधि गर्विता ॥९॥
जय नमो अधर प्रवालिनी। जय नमो रदन सुढालिनी ॥१०॥
जय नमो नासा चटकनी। जय नमो पिय मन अटकनी ॥११॥
जय नमो नक बेसरि धरा। जय नमो प्रीतम मन हरा ॥१२॥
जय नमो नैन विसालनी। जय नमो रूप रसालनी ॥१३॥
जय नमो अंजन अंजिता। जय नमो खंजन गंजिता ॥१४॥
जय नमो ईछन आतुरा। जय नमो चितवनि चातुरा ॥१५॥
जय नमो भौंहें सोहनी। जय नमो पिय मन मोहनी ॥१६॥
जय नमो श्रुति ताटंकनि। जय नमो अलकनि बंकनि ॥१७॥
जय नमो आड़ लिलाटिका। जय नमो दिव्य सुहाटिका ॥१८॥
जय नमो शीश सुफूलनी। जय नमो दिव्य दुकूलनी ॥१९॥

अपनी कान्ति से चन्द्रप्रभा को हरण करने वाली की जय हो जो ब्रज गोपियों के प्रेम से भी श्रेष्ठ पर परा प्रेम स्वरूपा हैं ॥७॥ कोकिल से भी मधुर भाषिणी की जय हो जो संसार के भय को छुड़ाने वाली हैं ॥८॥ सब गुणों की निधि रूपा प्रेम से गर्वित लड़ैतीजी की जय हो जिनको प्यारे अपने हाथों से बीरी खवाते हैं ॥९॥ मूँगा सरीखे लाल अधरबिम्ब वाली की जय हो जिनकी दन्तावली अति सुन्दर एक सार हैं ॥१०॥ चटक पक्षी (गोरिया) नासा सरीखी नासा वाली की जय हो जिनकी रूप माधुरी को देखकर प्रीतम का मन अटक जाता है ॥११॥ नासा में नथ धारण करने वाली की जय हो जिसको देखकर प्यारे का मन हरण हो जाता है ॥१२॥ विशाल नेत्र कमलों वाली की जय हो जिनका रूप लाल को रस प्रदान करने वाला है ॥१३॥ नेत्रों में अंजन आंजिता प्रियाजू की जय हो जिनके चंचल नेत्रों के सामने खंजन पक्षी का चंचलता का गर्व चूर-चूर हो जाता है ॥१४॥ बड़ी आतुर दृष्टि से लाल की ओर देखने वाली लड़ैतीजी की जय हो जिनकी चितवनि चातुरी से भरी हुई है ॥१५॥ सुन्दर भौंह वाली प्रियाजू की जय हो जो पिय के मन को मोहन करने वाली हैं ॥१६॥ कानों में सुन्दर झूमक धारण करने वाली की जय हो जिनकी अलकावली बलखाये हुए टेढ़ी हैं ॥१७॥ मस्तक पर आड़ धारण करने वाली की जय हो जो आड़ दिव्य स्वर्ण की है ॥१८॥ सीस फूल धारण करने वाली की जय हो जो नीली साड़ी पहने हुए हैं ॥१९॥

जय नमो सुभ सीमंतिनी। जय नमो रस बरसंतनी ॥२०॥
जय नमो सुख सरसंतनी। जय नमो सुभ दरसंतनी ॥२१॥
जै नमो गण्ड उदारनी। जै नमो चिबुक सुचारनी ॥२२॥
जै नमो कंठ अदूषना। जै नमो जगमग भूषना ॥२३॥
जै नमो कंचुकि कस बनी। जै नमो नव रंग रस सनी ॥२४॥
जै नमो उरज सुढारनी। जै नमो मणिगण हारिनी ॥२५॥
जै नमो मुक्ता दामिनि। जै नमो अति अभिरामिनी ॥२६॥
जै नमो उदर सुवेसिनी। जै नमो नाभि सुदेसिनी ॥२७॥
जै नमो सुन्दरि ग्रीवनी। जै नमो सोभा सींवनी ॥२८॥
जै नमो बाहु विचित्रनी। जै नमो परम पवित्रनी ॥२९॥
जै नमो चूरी चित्रनी। जै नमो मोहन मित्रनी ॥३०॥
जै नमो कंकन कंचना। जै नमो अति रस संचना ॥३१॥
जै नमो पहुचि प्रभाउका। जै नमो अगनित भाउका ॥३२॥

शुभ सौभाग्य की माँग धारण करने वाली की जय हो जो सदैव लाल और कुंज-विश्व पर रस की वर्षा करती रहती हैं ॥२०॥ सुख सरसाने वाली की जय हो जिनका दर्शन शुभकारी है ॥२१॥ गोल उदार कपोलों वाली की जय हो जिनकी ठोड़ी सुचारुअर्थात् सुन्दर है ॥२२॥ जिनका कण्ठ प्राकृतिक दोषों से रहित है उनकी जय हो जो कण्ठ में ऐसे आभूषणों को धारण किये हुए हैं जिनकी ज्योति जगमगा रही है ॥२३॥ कसी हुई कंचुकी धारण करने वाली की जय हो जो लाल को नये-नये रंग रस प्रदान करती हैं ॥२४॥ सुढार वक्षस्थल वाली की जय हो जिन उरोजों पर मणियों के सुन्दर-सुन्दर हार धारण कर रखे हैं ॥२५॥ मोतियों की माला पहनने वाली की जय हो जो मालाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं ॥२६॥ सुन्दर पोशाक से सुसज्जित जिनका उदर है, ऐसी प्रियाजू की जय हो जिनकी नाभि अत्यन्त सुन्दर है ॥२७॥ सुन्दर ग्रीवा वाली की जय हो जिनकी अँग माधुरी शोभा की सीमा स्वरूपा है ॥२८॥ विचित्र बाहुदण्ड वाली की जय हो जिनका स्वरूप सब प्रकार से पवित्र है ॥२९॥ चित्र विचित्र चूड़ियाँ धारण करने वाली की जय हो जो अपने प्यारे मोहन की अन्तरंग मित्र स्वरूपा हैं ॥३०॥ स्वर्ण के कंकण वाली की जय हो जो महा रस को सींचती हैं ॥३१॥ प्रभावशाली पहुँची धारण करने वाली की जय हो जिनसे अनगिनत भाव प्रकट होते हैं ॥३२॥

जै नमो हरि कर पाननी। जै नमो रत्न विधाननी ॥३३॥
जय नमो मणि मुद्रावलि। जय नमो नग हीरावली ॥३४॥
जय नमो नख चन्द्रावली। जय नमो परम प्रभावली ॥३५॥
जय नमो करतल कलितनी। जय नमो रंग सुललितनी ॥३६॥
जय नमो कृस कटि राजनी। जय नमो किंकिनि बाजनी ॥३७॥
जय नमो पृथुल नितंबिनी। जय नमो मन अवलम्बनी ॥३८॥
जय नमो जंघ सुकेलनी। जय नमो प्रीतम झेलनी ॥३९॥
जय नमो जानु सुहेतकी। जय नमो पिंडुरी केतकी ॥४०॥
जय नमो जेहरि हेमकी। जय नमो मूरति प्रेम की ॥४१॥
जय नमो गुल्फ सुसाजिता। जय नमो नूपुर बाजिता ॥४२॥
जय नमो एड़ी अद्भुता। जय नमो रंग सु संयुता ॥४३॥
जय नमो पद पद पानभा। जय नमो सब सुख दानभा ॥४४॥

श्रीप्रियाजू की जय हो जिनका रत्न जटित हथ फूल लालजू का हस्त-कमल है अर्थात् जिनका हस्त-कमल सदा लालजू के हाथ में रहता है ॥३३॥ रत्न जटित अंगूठियाँ धारण करने वाली की जय हो जिन मुद्रिकाओं के चारों ओर नग हीरा का जड़ाव हो रहा है ॥३४॥ चन्द्रमाओं की अवली सरीखे नख वाली की जय हो जो परम प्रभाव से देदीप्यमान हैं ॥३५॥ सुन्दर हथेली वाली की जय हो जो करतली सुन्दर महिन्दी से रंजित है ॥३६॥ जिनकी वह सुन्दर कृषकटि सुशोभित है, उनकी जय हो जिस पर वाद्यमान किंकिणी धारण कर रखी है ॥३७॥ जिनका वह कटि पश्चात् भाग भारी है उनकी जय हो जो मन मोहन का अवलम्ब स्वरूप है ॥३८॥ सुन्दर केलों सरीखी जँघा वाली की जय हो जो जँघा लाल को झेलती हैं ॥३९॥ गोल-गोल गोडों वाली की जय हो जिनकी पिंडुरियाँ केतकी फूल सदृश हैं ॥४०॥ स्वर्ण के जेहरि आभूषण जो चरणों में धारण किये जाते हैं उनकी जय हो क्योंकि साक्षात् प्रेम की मूरति श्रीप्रियाजू के ये चरणों में लगे रहते हैं ॥४१॥ श्रीप्रियाजू के गुल्फों अर्थात् टखनों को सुसज्जित करने वाले वाद्यमान नूपुरों की जय हो ॥४२॥ श्रीप्रियाजू की अद्भुत ऐड़ियाँ जिनमें महावर लगी हुई है उनकी जय हो ॥४३॥ पद पान (चरण फूल) की कान्ति की जय हो यही आभा सब सुखों को प्रदान करने वाली है ॥४४॥

जय नमो अंगुरी चारुभा। जय नमो सुखद सुढारुभा ॥४५॥
जय नमो हँसक अनवटा। जय नमो सोहत सुभ घटा ॥४६॥
जय नमो नखमणि बिसदनी। जय नमो पद तल रसदनी ॥४७॥
जय नमो कन्ता कामिनी। जय नमो नवघन दामिनी ॥४८॥
जय नमो छवि चम्पकतनी। जय नमो सहजहि सुख सनी ॥४९॥
जय नमो गौरांगी प्रिया। जय नमो श्यामा शुभ श्रिया ॥५०॥
जय नमो रास विलासनी। जय नमो रहसि हुलासनी ॥५१॥
जय नमो प्रेम प्रकासिनी। जय नमो नेह निवासिनी ॥५२॥
जय नमो रंग बिहारिनी। जय नमो पिय हिय हारिनी ॥५३॥
जै नमो पिय उर धारिनी। जै नमो रस विस्तारिनी ॥५४॥
जै नमो अखिलनन्दनी। जै नमो बल्लभ बन्दनी ॥५५॥
जै नमो पिय मन फन्दनी। जै नमो परमाकन्दनी ॥५६॥
जै नमो जीवनि जीयकी। जै नमो प्रेमा पीयकी ॥५७॥

सुन्दर आभा वाली अँगुलियों की जय हो इनकी सुढार कान्ति सब सुखों को देने वाली है ॥४५॥ वाद्यमान बिछवों की जय हो जो सुन्दर तथा शुभ सुघटित हैं ॥४६॥ चमकीली चरण नख मणियों की जय हो तथा रस दैनी पद तली की जय हो ॥४७॥ अपने प्यारे की प्यारी की जय हो जो दामिनी की तरह सदा नवघन स्वरूप अपने श्याम पिय के साथ रहती हैं ॥४८॥ चम्पकतनी श्रीप्रियाजू की छवि की जय हो जो छवि सदा सुख में सनी रहती है ॥४९॥ गौराँगी प्रियाजू की जय हो जिनकी नित्य श्यामा अवस्था रहती है, जो मंगलमय सब शोभाओं से युक्त हैं ॥५०॥ नित्य रास विलास विलसने वाली की जय हो जो रहस्य लीलाओं में उल्लास को प्राप्त होती रहती हैं ॥५१॥ प्रेम को प्रकाश करने वाली की जय हो जो स्नेह में नित्य निवास करती है ॥५२॥ रति रंग में नित्य विहार करने वाली की जय हो अपने प्यारे के गले का हार नित्य बनी रहती हैं ॥५३॥ पिय को अपने उर पर धारण करने वाली की जय हो आपही रस का विस्तार करने वाली हैं ॥५४॥ अखिल आनन्द दाता की जय हो जिनकी वन्दना स्वयं आपके वल्लभ करते रहते हैं ॥५५॥ पिय के मन को प्रेम फन्दा में फंसाने वाली की जय हो जो सब की अन्तिम मूल स्वरूप हैं ॥५६॥ जो लालजी के जिय की जीवन स्वरूपा हैं उनकी जय हो, जो अपने प्यारे के प्रेम की मूर्ति है ॥५७॥

जै नमो प्रेम प्रदायिका। जै नमो नागरि नायिका ॥५८॥
जै नमो रति रमनीयका। जै नमो अति कमनीयका ॥५६॥
जै नमो प्रगलभ भक्तिदा। जै नमो तुरिय विरक्तिदा ॥६०॥
जै नमो निगमागम सदा। जै नमो रसिकानन्ददा ॥६१॥
जै नमो राधा नामिनी। जै नमो हरिप्रिया स्वामिनी ॥६२॥

प्रेम प्रदान करने वाली की जय हो जो सभ्य नायिका है ॥५८॥ अपने प्यारे के साथ रति रमण करने वाली की जय हो जिनके अंग प्रत्यंग अति कमनीय हैं ॥५६॥ दृढ़ परा भक्ति देने वाली की जय हो जो भक्ति समाधि अवस्था से भी वैराग्य करा देती है ॥६०॥ जिनका तत्व वेद को भी सदा अगम्य है उनकी जय हो, आप रसिक चूडामणि अपने प्यारे को भी आनन्द प्रदान करती हो ॥६१॥ जिनका नाम "राधा" है उनकी जय हो जो श्रीहरिप्रियाजू की स्वामिनी हैं ॥६२॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया स्वामिनी प्रणमि, पुनि प्रणमों प्रिया प्रान।
कमलनैन श्रीकृष्ण कहि, बरनत विविध विधान॥

॥ स्तोत्र ॥३६॥

जय श्रीकृष्ण कमल दल लोचन दुख मोचनि मृग लोचनि राधा ॥१॥
जय श्रीकृष्ण श्याम घन सुन्दर दिव्य छटा तन गोरी राधा ॥२॥
जय श्रीकृष्ण रसीलौ नागर रसिक रसीली नागरि राधा ॥३॥

युगल की विरदावली गान करती हुई सखियाँ कह रही हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीहरि की प्रिया और हमारी स्वामिनीजू को प्रणाम करके फिर प्राण स्वरूप लालजू को अभिवादन करती हुई "कमल नैन श्रीकृष्ण" से प्रारम्भ करके उस स्तोत्र को कहना प्रारम्भ करती हैं जिसमें युगल का यश विविध विधान से वर्णन किया गया है।

॥ स्तोत्र ॥

कमल नयन श्रीकृष्ण और उनके अतृप्ति जन्य विरह को मेटने वाली मृगाक्षी श्रीराधा की जय हो ॥१॥ श्याम घन स्वरूप श्रीकृष्ण और घन की दिव्य छटा अर्थात् विद्युत स्वरूपा गौरी राधा की जय हो ॥२॥ रसीलो नागर श्रीकृष्ण और रसिक रसीली नागरि श्रीराधा की जय हो ॥३॥

जय श्रीकृष्ण छबीलौ दूलह नवल छबीली दुलहिनि राधा ॥४॥
जय श्रीकृष्ण मनोहर मूरति परम मनोहर मूरति राधा ॥५॥
जय श्रीकृष्ण सदा सुख सागर सहज सदा सुख सिंधुनि राधा ॥६॥
जय श्रीकृष्ण राधिका बल्लभ कृष्ण वल्लभा रसिकिनि राधा ॥७॥
जय श्रीकृष्ण प्रिया मन मोहन प्रान प्रिया मन मोहनि राधा ॥८॥
जय श्रीकृष्ण चारु चन्द्रानन सुधा सदन ससि बदनी राधा ॥९॥
जय श्रीकृष्ण पद्म परिपूरन पूरन परम पदमनी राधा ॥१०॥
जय श्रीकृष्ण तमाल तरुन छबि कनक लता छबि छाजति राधा ॥११॥
जय श्रीकृष्ण मीन मन मानहु निरमल जल जनु जीवनि राधा ॥१२॥
जय श्रीकृष्ण नित्य नवरंगी नवरंगनि रंग भीनी राधा ॥१३॥
जय श्रीकृष्ण सुकोमल सीवां अति सकुंवारी सीवां राधा ॥१४॥

छबीलो दुलह श्रीकृष्ण और नवल दुलहिनि श्रीराधा की जय हो ॥४॥ मन को मोहन करने वाली मूर्ति श्रीकृष्ण और परम मनोहर मूर्ति श्रीराधा की जय हो ॥५॥ सदा सुख सागर स्वरूप श्रीकृष्ण और सदा स्वाभाविक सुख सिन्धुनि स्वरूपा श्रीराधा की जय हो ॥६॥ राधिका वल्लभ श्रीकृष्ण और कृष्ण वल्लभा रसकिनी श्रीराधा की जय हो ॥७॥ प्रिया के मन को मोहन करने वाले श्रीकृण और प्रिया के प्राण समान प्यारे श्रीकृष्ण के मन को मोहन करने वाली श्रीराधा की जय हो ॥८॥ चन्द्रमा से भी सुन्दर मुखारबिन्द वाले श्रीकृष्ण और अमृत की सदन स्वरूपा चन्द्रमुखी श्रीराधा की जय हो ॥९॥ पूर्ण पद्म (नौ निधियों में से एक) श्रीकृष्ण और परम पूर्ण पद्मिनी श्रीराधा की जय हो ॥१०॥ पद्मिनी के यह लक्षण कोष में वर्णन हैं।

"भवति कमल नेत्रा नासिका क्षुद्ररन्ध्रा, अविरल कुच युग्मा चारु केशी कृषाङ्गी।
मृदु वचन सुशीला गीत वाद्यानुरक्ता, सकल तनु सुवेशा पद्मिनी पद्म गन्धा॥"

तमाल तरु की छवि सदृश श्रीकृष्ण और स्वर्ण लता की छवि सरीखी श्रीराधा की जय हो ॥११॥ मछली के समान मन वाले श्रीकृष्ण और उनके जीवन स्वरूप निर्मल जल स्वरूपा श्रीराधा की जय हो ॥१२॥ नित्य नवरंगी श्रीकृष्ण और नव-नव रंगों से भीनी हुई श्रीराधा की जय हो ॥१३॥ कोमलता की सीमा स्वरूप श्रीकृष्ण और अति सुकुमारता की सीमा स्वरूपा श्रीराधा की जय हो ॥१४॥

जय श्रीकृष्ण अमित गुण आगर अति अद्भुत गुण आगरि राधा ॥१५॥
जय श्रीकृष्ण विसाल विभाकर रूप रसाल प्रभाकर राधा ॥१६॥
जय श्रीकृष्ण सुभग सुभ सुन्दर सरस सुभग सुभ सुन्दरि राधा ॥१७॥
जय श्रीकृष्ण बिलास बिसारद विसद विलास विचच्छनि राधा ॥१८॥
जय श्रीकृष्ण दिव्य दुति कंद्रप कोटि दिव्य रति राजति राधा ॥१९॥
जय श्रीकृष्ण किसोर नित्य नव नित्य नवीन किशोरी राधा ॥२०॥
जय श्रीकृष्ण नील मणि आभा कंचनि मणि आभा अति राधा ॥२१॥
जय श्रीकृष्ण लाड़िलौ प्रीतम प्यारी प्रिया लाड़िली राधा ॥२२॥
जय श्रीकृष्ण शिरोमनि सर्वस सर्व सिरोमनि सुन्दरि राधा ॥२३॥
जय श्रीकृष्ण अखिल परमापर परमापर प्रानेसा राधा ॥२४॥
जय श्रीकृष्ण कल्पतरु तरवर तरतम कलप तरोवरि राधा ॥२५॥
जय श्रीकृष्ण हरे हरि स्वामी श्रीहरिप्रिया स्वामिनी राधा ॥२६॥

अमित गुणों के आकर अर्थात् खजाना स्वरूप श्रीराधा की जय हो ॥१५॥ सूर्य की तरह बड़े भारी प्रकाशमान श्रीकृष्ण और रूप रसाल से सूर्य अथवा चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान श्रीराधा की जय हो ॥१६॥ शुभ तथा सुन्दर सौभाग्य वाले श्रीकृष्ण और सरस शुभ सौभाग्यवती सुन्दरि श्रीराधा की जय हो ॥१७॥ रति विलास (बिहार) में अत्यन्त चतुरा श्रीराधा की जयहो ॥१८॥ कामदेव से भी अतिदिव्य द्युति युक्त श्रीकृष्ण और क्रोड़ों रतियों से सुन्दर दिव्य द्युति सुशोभित श्रीराधा की जय हो ॥१९॥ नित्य नव किशोर अवस्था वाले श्रीकृष्ण और नित्य नवीन किशोरी श्रीराधा की जय हो ॥२०॥ नील मणि ज्योति स्वरूप श्रीकृष्ण और स्वर्ण मणि ज्योति स्वरूपा श्रीराधा की जय हो ॥२१॥ लाड़िलौ प्रीतम श्रीकृष्ण और प्यारी प्रिया लाड़िली श्रीराधा की जय हो ॥२२॥ सर्व शिरोमणि श्रीकृष्ण और सर्व शिरोमणि सुन्दरि श्रीराधा की जय हो ॥२३॥ सर्व श्रेष्ठ तत्वों से भी श्रेष्ठ तत्व श्रीकृष्ण और उनके प्राणों की ईश श्रेष्ठ तत्वों से अपार श्रेष्ठ श्रीराधा की जय हो ॥२४॥ कल्प वृक्ष से भी श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और तर तथा तम प्रत्ययों से भी परे दिव्य कल्प वृक्ष स्वरूपा श्रीराधा की जय हो ॥२५॥ हर अर्थात् श्रीशिवजी महाराज के भी स्वामी हरि श्रीकृष्ण, हरि की प्रिया स्वामिनी श्रीराधा की जय हो ॥२६॥

॥ दोहा ॥

मन मोहन मोहन महल, पौढ़े जाय प्रज्यंक।
प्यारी सहचरी सब रहीं, न्यारी करन निसंक ॥

॥ पद ॥४०॥

मोहन मोहिनी मन रंजन।
भुजा परस्पर अंसनि दीने चलत हंस गति गंजन ॥
मोहन मन्दिर महा मनोहर करि प्रवेस सुख संजन।
प्यारी सखी रहीं न्यारी जहँ श्रीहरिप्रिया भय भंजन ॥

मन रंजन=मन को प्रसन्न करने वाले। गंजन=तिरस्कार करने वाले। सुख संजन=सुख प्रदान करने वाला। नैरित कौन कुंज में राज भोग के पश्चात्, सखियों की विरदावली गान सुनकर रसिक दम्पति मोहन महल के मध्य शयन भवन में पधारे।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति, मन को मोहन करने वाला मोहन महल में जाकर शय्या पर पौढ़े, उनके संकोच को निवारण करने के लिए प्यारी सहचरियाँ उनसे अलग रहीं अर्थात् वहाँ नहीं गईं।

॥ पद ॥

मोहन मोहनीजू परस्पर मनों को रंजन करने वाले हैं। दोनों परस्पर गलबहियाँ दिये हुए झूमते झूमते हंस गति को तिरस्कृत करते हुए चल रहे हैं। महा मनोहर मोहन महल में सुख प्रदान करने वाले रसिक दम्पति ने प्रवेश किया। श्रीहरि एवं प्रिया के संकोच भय को दूर करने के लिए प्यारी सखियाँ अलग रहीं अर्थात् वहाँ नहीं गईं।

॥ दोहा ॥

सुख सरसत बरसत रसें, रुचि तरंग नहिं पार।
श्रीहरिप्रिया दोउ विलसहीं, सुमन सेज साधार ॥

॥ पद ॥४१॥

विहरत सुमन सेज पर दोऊ।
अलबेले आनन्द की मूरति और तहाँ नहिं कोऊ ॥॥१॥॥

प्यारी के बदनारबिन्द की लेत बलैयाँ लाल।
पुनि पुनि परम प्रसंसत प्रीतम प्रिया प्रेम प्रति पाल ॥२॥
भरि अंकवारि कुवांरि कुंवर वर करत बिहार विनोद।
मदन केलि रस मत्त मगन भये मन न समावत मोद ॥३॥
नेति नेति बचनामृत सुनि-सुनि पिय हिय बढ़त मनोज।
त्यों त्यों अति रनधीर मिलावत अंसनि अरुन सरोज ॥४॥
नूपुर मुखर किंकिनी कौ अति होत रुनकझुन राव।
अमित अनंगन के अंगन में उपजत अगनित भाव ॥५॥
सुख सरसावत रस बरसावत रुचि तरंग नहिं पार।
श्रीहरिप्रिया निज दासी निरखति लता ओट निरवार ॥६॥

वदनारविन्द=मुख कमल। मनोज=दिव्य काम। अंसन=कन्धे। अरुन सरोज=लाल कमल सरीखे श्रीप्रियाजू के चरण तल। मुखर=शब्दायमान। अनंगन=कामदेवों। निरवार=दूर करके। श्रीरसिक रसिकिनी शय्या विहार विलस रहे हैं सखियाँ युगल की विलसन को वर्णन करती हुई कहती है :—

॥ दोहा ॥

श्रीहरि एवं प्रिया दोनों फूलों की शय्या पर रति विहार विलस रहे हैं। इस समय रस की वर्षा ने इन दोनों के सुखों को सरसा दिया है। इस सुख समुद्र में दोनों की इतनी रुचि तरंगें उठ रही हैं जिनका कोई आर पार नहीं है।

॥ पद ॥

दोनों फूलों की शय्या पर बिहार कर रहे हैं। दोनों अलबेलों के विग्रह आनन्द-मय हैं इस समय इनके पास और कोई नहीं है। प्यारे प्यारी के मुख कमल की बलैयां ले रहे हैं ॥१॥ प्रीतम बार-बार अपनी प्यारी की परम प्रशंशा करते जाते हैं और प्यारी अपने प्रीतम के प्रेम को अधर सुधा आदि पान करा कर पुष्ट करती जा रही हैं ॥२॥ कुँवरि कुँवर वर परस्पर अंक में लै-लै कर बिहार विनोद कर रहे हैं। मदन केलि रस में उन्मत्त हो रहे हैं। इस समय का आनन्द इनके मन में समाता नहीं है ॥३॥ लड़ेंतीजू के मुख कमल से ज्यों-ज्यों नेति-नेति वचनामृत सुनते हैं त्यों-त्यों लाल के हृदय में दिव्य काम का वेग बढ़ता है। और वे सुरति केलि रणधीर अपनी प्यारी के लाल-लाल कमल सरीखे चरण तलों को अपने अंसों से मिलाते हैं ॥४॥ रति बिहार नृत्य में नूपुर

तथा शब्दायमान कोंधनी के रुनुक झुनुक शब्द होते जा रहे हैं जिनसे अमित कोटि काम-देवों के अंग प्रत्यंगों में अगनित भाव प्रकट होते हैं ।।५।। उभय संगम की रस वर्षा से युगल का सुख समुद्र सरसाने लगता है और इसमें इन की अपार रुचि तरंगें लहरें मारने लगती हैं । श्रीहरि प्रिया एवं इनकी निज दासियाँ इस झाँकी को लता ओटों से लताओं को कुछ उकसा उकसा कर देख रही हैं ।

।। दोहा ।।

कहत परस्पर सहचरी, उर में भरी उछाहु ।
निरखि-निरखि सुख या समै, लैहु नैनन कौ लाहु ।।

।। पद ।।४२।।

नैनन कौ लाहौ लीजिये ।
गोरी श्याम सलौनी जोरी सुरस माधुरी पीजिये ।।
छिन-छिन प्रति प्रमुदित चित चावहि निज भावहि में भीजिये ।
श्रीहरिप्रिया निरखि तन मन धन लै न्यौछावरि कीजिये ।।

रति विलास विलसते हुए श्रीप्रिया प्रीतम की रूप माधुरी देखकर परस्पर सखियाँ कह रही हैं ।

।। दोहा ।।

हृदयों में उमँगें भरी हुई सहचरियाँ परस्पर कह रही हैं "इस समय इस सुख को देखकर अपने नेत्रों का फल लीजिये ।"

।। पद ।।

"हे सखियो ! गौरी श्याम सलौनी जोरी की सुरस माधुरी को अपने नेत्र कमलों द्वारा पान कर करके इन नैनों का फल लीजिये । क्षण-क्षण में प्रसन्न हो-होकर अपने-चित्तों के चावों से अपने-अपने निज भावों में भीग जाएँ । श्रीहरि एवं प्रिया की इस समय की रूप माधुरी देख-देखकर अपने तन मन धन इन पर न्यौछावर कीजिये ।"

।। दोहा ।।

कोक कला कुल में कुसल, कल किसोर कमनीय ।
मन मोहत है मोहिनी, मूरति अति रमनीय ।।

॥ पद ॥४३॥

मन मोहति मूरति अति मोहनी ।
सब सुख सींव सुरूप सिरोमनि साँवरि सूरति सोहिनी ॥
कोक कला कुल कल कमनीय किसोर कमल दृग जोहनी ।
श्रीहरिप्रिया प्रान जीवनि धन लावनिता ललचोहनी ॥

सुरति केलि आरूढ़ लालजू अपनी प्यारी को सुख प्रदान कर रहे हैं । यह देखकर लाल की प्रशंसा करती हुई सखियाँ कह रही हैं ।

॥ दोहा ॥

यह कमनीय सुन्दर किशोर प्यारे कोक शास्त्र सम्बन्धी कलाओं के ज्ञाताओं में अति कुशल है; अतः यह अति रमणीय मूर्ति अपनी कोक कलाओं द्वारा मोहनी श्रीलड़ैतीजू के मन को मोहित करते हैं ।

॥ पद ॥

लालजू की यह अति मोहनी मूर्ति श्रीप्रियाजू के मन को मोहित करती है । यह साँवरी सूरत सब सुखों की सींव स्वरूप और सुन्दर शिरोमणि है । कोक कलाओं के ज्ञाताओं में यह सर्वश्रेष्ठ कमनीय किशोरजू ही हैं जिनके नेत्र कमल प्रिया की ओर विलसोहीं चितवनि से सदा देखते रहते हैं । श्रीहरि को अपनी प्रिया ही प्राण जीवन धन स्वरूप हैं जिनकी लावण्यता देख-देखकर इनका लालच बढ़ता रहता है ।

॥ दोहा ॥

कृष्ण वल्लभा लाड़िली, राधा वल्लभ लाल ।
बसहु निरन्तर हीय में, आनन्द रूप रसाल ॥

॥ पद ॥४४॥

जीवनि धन राधा वल्लभ लाल ।
कृष्ण वल्लभा रसिकिनि राधा वारिज बदनी बाल ॥
जुगल किसोर किसोरी जोरी गोरी स्याम तमाल ।
बसहु निरन्तर हियें श्रीहरिप्रिया आनन्द रूप रसाल ॥

सखियाँ फिर कहने लगीं ।

॥ दोहा ॥

हम यह प्रार्थना करती हैं कि कृष्ण वल्लभा यह लाड़िली और राधा वल्लभ यह लाल जो आनन्द, रूप, तथा रस स्वरूप हैं सदा हमारे हृदयों में निवास करते रहें ।

॥ पद ॥

हमारे जीवन धन स्वरूप यह राधा वल्लभ लाल, और कृष्ण वल्लभा रसिकिनी कमल मुखी बाल श्रीराधा हैं। जुगल किशोर किशोरी की यह जोरी जो सदा गौर श्याम स्वरूपों से तमाल कञ्चन लता की तरह रहते हैं सदा हमारे हृदयों में निवास करें। श्रीहरि एवं प्रिया दोनों के विग्रह, आनन्द, रूप तथा रस ही के गठित हैं।

॥ दोहा ॥

अंग अंग आभा हरन मन, सब सुख सींव सुरूप।
अति अलबेली निपटहीं, रंग रस भरी अनूप॥

॥ पद ॥४५॥

रंग रस भरी निपट अलबेली। लाड़ लड़े की लाड़ लड़ीली॥
अंग अंग आभा मन हरनी। आलिंगन चुम्बन आभरनी॥
नवल नागरी नीरज नैनी। कोक कला कोविद पिक बैनी॥
सब सुख सींव सुरूप आगाधा। श्रीहरिप्रिया स्वामिनी राधा॥

श्रीप्रियाजू की विरदावली गान करती हुई सखियाँ कह रही हैं।

॥ दोहा ॥

अति अलबेली श्रीप्रियाजू का दिव्य मंगल विग्रह एक मात्र अनूप प्रकार के रंग रस ही से भरा हुआ है। आप सब सुखों की सीमा स्वरूपा हैं। अपने अंग प्रत्यंग की कान्ति से अपने प्यारे के मन को हरण करती हैं।

॥ पद ॥

लाड़ लड़े श्रीश्याम सुन्दर की लाड़ लड़ीली श्रीप्रियाजू अलबेली अर्थात् टेढ़ापन लिए हुए केवल रस रंग से ही भरी हुई हैं। आपके अंग प्रत्यंगों की कान्ति से लालजू का मन हरण होता है। और वह आपका गाढ़ आलिङ्गन करके आपके सब अंगों को चूमते हैं। अतः आपके प्यारे के आलिङ्गन चुम्बन चिह्न ही आपके आभूषण हैं। आपकी अवस्था सदा नवल रहती है। आप नागरी अर्थात् सभ्या हैं। आपके कमल सरीखे नेत्र कमल हैं। सब कोक कलाओं में आप चतुरा हैं। आपका कोयल सरीखा मधुर भाषण है। कहाँ तक कहें आपही सब सुखों की सीमा हैं। आपका स्वरूप समुद्र की तरह अगाध है। आप श्रीहरिप्रिया सखी की स्वामिनी श्रीराधा हैं।

॥ दोहा ॥

चक्रबर्तिनी जोरि यह, जीवनि प्रान धनीय ।
श्रीराधे चूड़ामनी, रसिक मुकुट मनि पीय ॥

॥ पद ॥४६॥

रसिक मनि मुकुट श्रीराधे चूड़ामनी ।
करत हैं केलि दोउ कंठ भुज मेलिके
जोरि चक्रवर्तिनी कनक मर्कत तनी ॥
मधुर मृदु हँसनि में जोति जगमग
लसनि अनुराग बस सरस रस बरसनी ।
परम परबीन रहे लीन रति रंग में
हितू श्रीहरिप्रिया प्रान जीवनि धनी ॥

चक्रवर्तिनी जोरि=सब जोरियों से श्रेष्ट जोरी । श्रीकृष्ण सब अवतारों के अवतारी हैं यह श्रीमद्भागवत में स्पष्ट वर्णन है । स्कन्द पुराण में वर्णन है :—

"आत्मा रामस्य कृष्णस्य ध्रुव मात्मास्ति राधिका ।
तस्या एवांश विस्तारा: सर्वा: श्रीकृष्ण नायिका: ॥"

पुनः राधिकोपनिषद् यथा :—

"एतस्या एव काम व्यूह रूपा गोप्यो महिष्यः श्रीश्चेति ।"

अर्थात् श्रीकृष्ण सब अवतारों के अवतारी हैं श्रीराधिकाजी की ही अंश रूपा सब श्रीकृष्ण नायिकाएँ हैं, याने सब गोपियाँ, द्वारिका की महिषियाँ तथा वैकुण्ठादि की सब लक्ष्मियाँ श्रीराधिकाजी की ही काय व्यूह रूपा हैं । अर्थात् रसिक दम्पति की यह जोरी सब जोरियों की चक्रवर्ति स्वरूपा हैं । कनक मरकत तनी=स्वर्ण तथा नीलमणि विग्रह स्वरूपा । दसन=दन्तावली । लसनि=चमकना । परबीन=चतुर । युगल की विरदावली गान करती हुई सखियाँ कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति की यह जोरी और सब जोरियों की चक्रवर्ति स्वरूपा अर्थात् अवतारी स्वरूपा है । हमारी तो जीवन प्राण धन स्वरूपा है । श्रीराधे सब कृष्ण नायिकाओं की चूड़ामणि हैं और रसिक प्रीतम सब अवतारों के मुकुट मणि स्वरूप हैं ।

॥ पद ॥

रसिक प्रीतम सब अवतारों के मुकुट मणि और प्रियाजू श्रीराधे, सब कृष्ण नायिकाओं की चूड़ामणि हैं। यह चक्रवर्तिनी जोरी जिनके दिव्य मंगल विग्रह स्वर्ण तथा नीलमणि सदृश हैं परस्पर गलबहियाँ दिये हुए रति केलि विलास कर रहे हैं। इस समय मन्द-मन्द मुस्कराहट से इनकी दन्तावली की चमक से सारा भवन जगमग जगमग कर रहा है। दोनों अनुराग के वश में होकर रस की वर्षा कर रहे हैं। श्रीहितु सहचरीजी एवं श्रीहरिप्रियाजू की प्राण, जीवन धन स्वरूप यह परम प्रवीन जोरी रति रंग बिहार में अत्यन्त लीन हो रही है।

॥ दोहा ॥

यह सुख मुख कहत न बनै, जो सुख सजवति सेज।
पान अदन रस बदन कौ, देत लेत हियें हेज॥

॥ पद ॥४७॥

यह सुख मुख कहत न बनि आवै।
नैनन ही के द्वारनि लै लै हीयन मांहि बसावें॥
अदन पान अरविन्द बदन रस मदन सदन सरसावें।
कमल कमल प्रति पालन कै कै अति आनन्द बढ़ावें॥
रमत रहसि रस मन मन मानें बितन बारि बरसावें।
तहू चोंपचित बढ़त चौगुनी खेलत हूँ न अधावें॥
घरी चार दिन रह्यो जानि कें सहचरि आनि जगावें।
श्रीहरिप्रिया सुखद सेज्या तें सुमनासन पधरावें॥

पान अनद=चर्वित ताम्बूल आरोगना। रस वदन=अधर सुध मदन सदन=गुह्य स्थान="रतिपति भवन हु कहिये जाही" (तालिका) कमल-कमल=अंग प्रत्यंगों से तात्पर्य है। "हृदय कमल मुख कमल सुहाये" (तालिका)। वितन वारि=उभय संगम रस। चौंप=होड़ रति विलास विहार का वर्णन करती हुई सखियाँ कह रही हैं।

॥ दोहा ॥

उस अलंकृत शय्या विहार सुख का मुख से कहते नहीं बनता है, जिसमें रसिक दम्पति, चर्वित ताम्बूल तथा अधर सुधा रस हेज भरे हुए परस्पर दै लै रहे हैं॥

॥ पद ॥

रति विलास सुख मुख से कहते नहीं बनता है। यह सुख तो एक मात्र नयनों के द्वारों से हृदयों में ले जाकर वहीं बसाना चाहिए। रसिक दम्पति के चर्वित ताम्बूल तथा अधर सुधा रस के परस्पर आदान प्रदान से इनके अंग प्रत्यंगों में दिव्य काम संचरित होता है। मुख से मुख, कपोल से कपोल तथा हृदय से हृदय एवं प्रकार से अंगों का अंगों से मिलना परस्पर के अंगों को पुष्ट करता है तथा आनन्द बढ़ाता है। दोनों मन माने प्रकार से रहस्य रस विलास को विलसकर उभय संगम रस की वर्षा करते हैं। तो भी इनकी इस खेल से तृप्ति नहीं होती है, अपितु होड़ा-होड़ी पहिले से भी चौगनी तृषा बढ़ती जाती है। चार घड़ी दिन बाकी रहने से सहचरियाँ आकर युगल को जगाती हैं। श्रीहरिप्रियाजू प्रिया प्रीतम को सुखद शय्या से ले जाकर, फूलों से सुसज्जित आसन पर विराजमान कराती हैं।

॥ अनुरागिनी गौरमुखी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

जै जै आनन्द कन्दनी, श्रीहरिप्रिया किसोरि।
जै जै राधा रसिकिनी, रसिक बिहारी जोरि॥

॥ पद ॥४८॥

जै जै राधा रसिकिनी। रसिक बिहारी जोरी बनी॥
जै जै स्यामा लाड़िली। मन मोहन मन चाड़िली॥
जै जै रूप उजागरी। नित्य नवीना नागरी॥
जै जै आनन्द कन्दनी। जन जीवनि जग बन्दनी॥
जै जै सब सुख धामिनी। श्रीहरिप्रिया जै स्वामिनी॥

पञ्चम याम—अपराह्न सायं ३-३६ से ६ बजे तक

अनुरागिनि गौर मुखी मध्याभास=गौरी राग। आनन्द कन्दनी=आनन्द की मूल स्वरूपा। चाड़िली=चाह की मूर्ति। उजागरी=प्रकाशमान। उत्थापन समय सखियाँ विरदावली गान कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीराधा रसिकिनी और रसिक बिहारी की इस जोरी की सदा जय हो। ये हरि एवं प्रिया आनन्द के भी मूल स्वरूप हैं और सदा किशोर रहते हैं।

॥ पद ॥

श्रीराधा रसिकनी और रसिक बिहारी की इस जोरी की सदा जय हो। श्रीश्यामा लाड़िली की जय हो जो मन मोहन की चाह की मूर्ति हैं। प्रकाशमान रूप वाली श्रीप्रियाजू की जय हो जो नित्य नवीन नागरी स्वरूप हैं। आनन्द की भी मूल स्वरूपा श्रीलड़ैतीजू की जय हो जो जग-वन्दन श्रीलालजू की भी वन्दनीय हैं। सब सुख धाम स्वरूपा श्रीप्यारीजू की जय हो जो श्रीहरिप्रियाजू की स्वामिनी हैं।

॥ दोहा ॥

उत्थापन के भोग की, विधिवत रचना बानि।
अरुगावति श्रीहरिप्रियें, निरखि निरखि हियें आनि॥

॥ पद ॥४६॥

तर मेवा अरु विविध मिठाई।
अरघ देई सादर सुख सुन्दरि सुन्दर स्वरन थार भरि ल्याई॥
सब सब रितु की सब सामग्री सुखमय सरस सखी सरसाई।
आरोगत दोऊ अलबेले कहि न परत हित की हितवाई॥
अरस परस गरसा मुख देत दिवावति दम्पति रुचि उपजाई।
अति रोचक अमृत अमृतावत बिचि बिचि बहु विधि विहंसि बढ़ाई॥
मुदित महामन मंजरि सुन्दरि सहचरि सखी सहेलि सुहाई।
श्रीहरिप्रिया की निरखि निरखि छवि हरखि-हरखि हियरें हुलसाई॥

अरघ=अर्घ=षोडशोपचार पूजन में से एक उपचार। इस उपचार में जल, दूध, कुशाग्र, दही, सरसों, चावल और मेवा मिलाकर देवता का अर्पण करते हैं। यहाँ शुभ कामना के लिए प्रिया प्रीतम पर उपरोक्त सामिग्री मिश्रित अर्घ्य को वार फेर करके किसी को देने से है। तर मेवा=ताजा फल=रस युक्त फल। हित=स्नेह। हितवाई=स्नेह की क्रिया। सखियाँ युगल को गा बजाकर उत्थापन भोग अरुगा रही हैं।

॥ दोहा ॥

सखियाँ, उत्थापन के भोग की विविध प्रकार की रचना करके, श्रीहरि एवं प्रिया की रूप माधुरी देख-देखकर उसको अपने-अपने हृदयों में ला-लाकर गा रही हैं।

॥ पद ॥

सखियों ने मंगल कामना के लिए प्रथम युगल के चरण कमलों से जल छुवाकर

अर्घ्य वार-फेर करके किसी को दिया फिर ताजा रसीले फलों और विविध प्रकार की मिठाईयों को सुन्दर स्वर्ण थालों में भर-भरकर आपके सामने रखा। सब ऋतुओं में होने वाली सुखमय सरस सब प्रकार की सामिग्रियों को सखियाँ परोस रही हैं, जिनके हृदय युगल के प्रेम से सरस हो रहे हैं। दोनों अलबेले प्यारे स्नेह युक्त अनूठे ढंग से आरोग रहे हैं। इनके परस्पर स्नेह की क्रिया कुछ कहने में नहीं आती है। एक दूसरे के मुख कमल में ग्रास देकर इस प्रकार से खाते हैं जिससे रसिक दम्पति की रुचि बढ़ती है। यद्यपि ये अति रोचक अमृतमय पदार्थों को आरोग रहे हैं तो भी बीच-बीच में जब यह मुस्कराते हैं, इनकी मुस्कराहट अमृत से भी अधिक रुचि बढ़ाने वाली क्रिया करती है। श्रीहरि एवं प्रिया की आरोगने की शोभा को देख-देखकर सखी, सहेली, सहचरी सुन्दरी और मंजरियाँ अपने-अपने मनों में अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं और युगल की छवि निहार-निहार कर हर्षित होकर इनके हृदय उल्लसित हो रहे हैं।

॥ दोहा ॥

अचवन अँचि मुख बास लै, दै गर बांह बिसाल।
फूल सखी की फूलि में, चले फूलि दोउ लाल॥

॥ पद ॥५०॥

फूल चले दोउ लाल बिहारी। फूल सखी की फूल निहारी॥
फूली संग सोहें सहचारी। अप अपनी सब सोंज सँवारी॥
कोउ कर दुरवति चौंर सुढारी। कोउ मोरछलि लिए विजनारी॥
कोउ कर लिये डबा कोउ झारी। कोउ लिये सुकर मुकर मनहारी॥
देखत देखत बन फुलवारी। सुख आसन बैंठे सुखकारी॥
श्रीहरिप्रिया जोरी जीय जियारी। प्रान प्रीतमा पीय पियारी॥

अचि=आरोगकर। मुख वास=सुगन्धित बीरी। फूल निहारी=फूल निकुंज देखने के लिए। सौंज=सामग्री। मोरछल=मोर पंखों का चँवर। विजना=पँखा। डबा=पान दान। सुकर=हस्त कमल। मुकर=दर्पण। मनहारी=मनोहर। उत्थापन भोग के पश्चात् रसिक दम्पति वन-बिहार के लिए पधार रहे हैं।

॥ दोहा ॥

उत्थापन भोग आरोगने के बाद आचमन करके मुख में सुगन्धित बीरी लेकर परस्पर गल बहियाँ दिए हुए दोनों सुन्दर लाल अत्यन्त प्रसन्न होकर फूल सखी की फूल निकुंज देखने के लिए पधारे।

॥ पद ॥

दोनों लाल बिहारी अत्यन्त प्रसन्न होकर फूल सखी की फूल निकुंज देखने के लिए पधारे। इनके साथ प्रसन्न चित्त सहचरियाँ अपनी-अपनी सेवा की सामग्रियाँ सुसज्जित ढंग से लिये हुए सुशोभित हैं। किसी के हाथ में चँवर है कोई मोरछल ढोर रही है कोई पँखा लै रही है। कोई पानदान, कोई झारी कोई सुन्दर हस्त कमलों में मनोहर दर्पण लिए हुए है। इस प्रकार से बन फुलवारी देखते-देखते सबको आनन्द प्रदान करते हुए रसिक दम्पति सुख पूर्वक सिंहासन पर विराजमान हुए। श्रीहरिप्रिया की यह जोरी सखियों की जीवन स्वरूपा है और प्रीतम को अपनी प्रिया प्राणों से भी अधिक प्यारी हैं।

॥ दोहा ॥

अंग अंग रस रंग में रली अली अलबेलि।
आरति जानि दुहून की, आरति करति सहेलि॥

॥ पद ॥५१॥

संध्या आरति करति सहेली। स्यामा-स्याम गुन गर्व गहेली॥
निरखि निरखि छवि नैन नवेली। अंग अंग रंग रली अलबेली॥
सोहति उर चौसर चंबेली। रस रंजन राजति रति रेली॥
तरु सिंगार प्रेम की बेली। श्रीहरिप्रिया हरत मन हेली॥

षष्ठम याम—सायं ६ बजे से ८-२४ तक।

रस=प्रेम की ही उच्चतम अवस्था। रंग=रस की उच्चतम अवस्था रति बिहार। आरति जानि=आर्तिजान=अधीरता समझकर। गुन गर्व गहेली=गम्भीर गुणों से गर्वित। चौसर चम्बेली=चम्बेली के चार लड़े हार। अथवा रति विलास में श्रीस्वामिनीजी के चरण कमल "चारु पदाग्र चमेली कही" (तालिका)। तरु सिंगार=श्रीलालजू प्रेम की बेली=श्रीलड़ेंतीजू। रति बिहार में आसक्त प्रिया प्रीतम की सखियाँ संध्या आरती कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति के अंग प्रत्यंग रस रंग विलास में आसक्त हैं। ये रति बिहार विलसने के लिए अत्यन्त अधीर हो रहे हैं यह समझ कर अलबेली सखियाँ जल्दी से संध्या आरती करती हैं।

॥ पद ॥

श्यामा श्याम के गम्भीर गुणों से गर्वित सहेलियाँ संध्या आरती कर रही हैं। नवेली सखियाँ इस समय की इनकी छवि को देखती जा रही हैं। ये गाढ़ आलिङ्गन किये

हुए हैं। अतः अलबेलीजू के अंग प्रत्यंग अनुराग से रंजित होकर प्यारे के अंग प्रत्यंगों से मिले हुए हैं। प्यारे ने प्यारी के लाल-लाल चरण तलों को अपने हस्त कमलों से पकड़ कर अपने हृदय से इस प्रकार लगा रखे हैं मानो इन्होंने कोई चम्बेली का चौसर हार पहन रखा हो। रस रंग से रंजित इनका उभय मिलन रति विलास, इस प्रकार से सुशोभित है, मानों शृङ्गार रस रूपी श्याम तमाल से प्रेम रूपो कञ्चन लतिका वेष्टित हो रही हो। श्रीहरि एवं प्रिया की उपरोक्त छवि सब सखियों के मनों को हरण करती है।

॥ दोहा ॥

पराभक्ति रति वर्द्धिनी, स्यामा सब सुख दैनि।
रसिक मुकुटमनि राधिके, जय नव नीरज नैनि॥

॥ स्तोत्र ॥५२॥

जयति जय राधा रसिक मनि मुकुट मनि हरनी त्रिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुना निधि प्रिये॥१॥
जयति गोरी नव किसोरी सकल सुख सीमा श्रिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये॥२॥
जयति रति रस वर्द्धिनी अति अद्भुता सदया हिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये॥३॥

संध्या आरती के पश्चात् प्रेम रूपा श्रीप्रियाजू से "पराभक्ति" प्राप्ति के लिए प्रार्थना कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

सब सुखों को प्रदान करने वाली और "पराभक्ति" में रति को बढ़ाने वाली, नव कमल दल नयनी, उन श्यामा श्रीराधारानी की जय हो जो रसिक लाल की मुकट मणि अर्थात् शिरोभूषण स्वरूपा हैं।

॥ स्तोत्र ॥

रसिक मुकट मणि लाल के भी मन को हरण करने वाली त्रिये, श्रीराधा रानी की जय हो। आप ही "पराभक्ति" प्रदान करने वाली हैं। हे करुणा की सागर प्रिये मुझ दीन पर कृपा करें॥१॥ सब सुखों की सीमा स्वरूप लक्ष्मी नव किशोरी गौराँगीजी की जय हो॥२॥ रति रस को बढ़ाने वाली अद्भुत प्रकार की दया हृदय में धारण करने वाली की जय हो॥३॥

जयति आनन्द कन्दिनी जगबन्दिनी वर वदनिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥४॥
जयति स्यामा अमित नामा वेद विधि निर्वाचिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥५॥
जयति रास विलासिनी कल कला कोटि प्रकासिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥६॥
जयति विविध बिहार कवनी रसिक रवनी सुभ धिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥७॥
जयति चंचल चारु लोचनि दिवि दुकूला - भरनिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥८॥
जयति प्रेमा प्रेम सीमा कोकिला कल बैनिये।
पराभक्ति प्रदायिनि करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥९॥
जयति कंचन दिव्य अंगी नवल नीरज नैनिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥१०॥
जयति बल्लभ बल्लभा आनन्द कलभा तरुनिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥११॥

आनन्द की भी मूल स्वरूपा जग वन्दनीय लाल की भी वन्दनीय सुन्दर मुखारविन्द वाली की जय हो ॥४॥ जिनके श्रीब्रह्माजी ने वेद में अनन्त नाम उच्चारण किये हैं ऐसी श्रीश्यामाजू की जय हो ॥५॥ क्रोड़ों मधुर-मधुर कलाओं को प्रकाश करने वाली रास विलासिनी की जय हो अथवा रास विलास करने के लिए अपने एक स्वरूप से अपनी अंश कला रूपा जो क्रोड़ों गोपियों को प्रकाश करती हैं उनकी जय हो ॥६॥ विविध प्रकार के सुन्दर बिहारों द्वारा रसिक लाल अपने प्यारे को रमण कराने वाली शुभ बुद्धि वाली श्रीलड़ैतीजू की जय हो ॥७॥ अपने प्यारे को सुख प्रदान करने के लिए जिनके सुन्दर नेत्र कमल सदा चञ्चल रहते हैं ऐसी दिव्य वस्त्र आभूषण धारण करने वाली की जय हो ॥८॥ मूर्तिमान प्रेम स्वरूपा, प्रेम की अवधि रूपा तथा कोकिल सरीखा मधुर भाषण करने वाली की जय हो ॥९॥ स्वर्ण सदृश दिव्य मंगल विग्रह वाली डहडहे कमल सरीखे नेत्रों वाली की जय हो ॥१०॥ अपने प्यारे लालजू की प्यारी, आनन्द की भी मधुर आभा अथवा आनन्द की कलाओं को प्रकाश करने वाली नित्य तरुण अर्थात् किशोर अवस्था वाली की जय हो ॥११॥

जयति नागरि गुन उजागरि प्रान धन मन हरनिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥१२॥
जयति नौतम नित्य लीला नित्य धाम निवासिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥१३॥
जयति गुण माधुर्य भूपा सिद्धि रूपा शक्तिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥१४॥
जयति सुद्ध स्वभाव सीला स्यामला सुकुमारिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥१५॥
जयति जस जग प्रचुर परिकर श्रीहरिप्रिया जीवनि जिये।
पराभक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुणा निधि प्रिये ॥१६॥

नागरिता अर्थात् सभ्यता के गुणों को प्रकाश करने वाली अपने प्राण धन स्वरूप लालजू के मन को हरण करने वाली की जय हो ॥१२॥ नित्य नई-नई लीलाओं को विलसने वाली नित्य धाम श्रीवृन्दावन में निवास करने वाली की जय हो ॥१३॥ सब माधुर्य गुणों की भूप स्वरूपा सब शक्तियों को सिद्धि प्रदान करने वाली की जय हो ॥१४॥ शुद्ध शील स्वभाव वाली सुकुमारी श्यामलाजू की जय हो ॥१५॥ जिनका यश जगत विख्यात है, जिनका अनन्त परिकर है और जो श्रीहरिप्रिया सखी के जीवन स्वरूपा हैं उनकी जय हो। आप ही "पराभक्ति" को प्रदान करने वाली हैं। हे करुणा की सागर स्वरूपा प्रिये ! मुझ दीन पर कृपा करें ॥१६॥

॥ दोहा ॥

नव नव रंगि त्रिभंगि जय, स्याम सुअंगी स्याम।
जय राधे जय हरि प्रिये, श्रीराधे सुख धाम॥

॥ स्तोत्र ॥५३॥

जय राधे जय राधे राधे जै राधे जै श्रीराधे।
जय कृष्ण जय कृष्ण कृष्ण जै कृष्ण जै श्रीकृष्ण ॥१॥
स्यामा गोरी नित्य किसोरी प्रीतम जोरी श्रीराधे।
रसिक रसीलौ छैल छबीलो गुन गरबीलो श्रीकृष्ण ॥२॥

रास बिहारिनि रस विसतारिनि पिय उरधारनि श्रीराधे।
नव नव रंगी नवल त्रिभंगी स्याम सुअंगी श्रीकृष्ण ॥३॥
प्रान पियारी रूप उज्यारी अति सुकुंवारी श्रीराधे।
मैंन मनोहर महा मोद कर सुन्दर बर तर श्रीकृष्ण ॥४॥
सोभा सैंनी मोभा मैंनी कोकिल बैंनी श्रीराधे।
कीरति वन्ता कामिनि कन्ता श्रीभगवंता श्रीकृष्ण ॥५॥
चन्दा बदनी कुन्दा रदनी सोभा सदनी श्रीराधे।
परम उदारा प्रभा अपारा अति सुकुंवारा श्रीकृष्ण ॥६॥
हंसा गवनी राजति रवनी क्रीड़ा कवनी श्रीराधे।
रूप रसाला नैंन विसाला परम कृपाला श्रीकृष्ण ॥७॥
कंचन बेली रति रस रेली अति अलबेली श्रीराधे।
सब सुख सागर सब गुन आगर रूप उजागर श्रीकृष्ण ॥८॥
रवनी रम्या तरु तर तम्या गुण आगम्या श्रीराधे।
धाम निवासी प्रभा प्रकासी सहज सुहासी श्रीकृष्ण ॥९॥
शक्त्याह्लादिनि अति प्रिय वादिनि उर उन्मादिनी श्रीराधे।
अँग अँग टौना सरस सलौना सुभग सुठौना श्रीकृष्ण ॥१०॥
राधा नामिनि गुण अभिरामिनि श्रीहरिप्रिया स्वामिनी श्रीराधे।
हरे हरे हरि हरे हरे हरि हरे हरे हरि श्रीकृष्ण ॥११॥

गुणगान करती हुई सखियाँ कह रही हैं।

॥ दोहा ॥

श्याम सुन्दर की जय हो यद्यपि इनके अंग प्रत्यंग सब सुन्दर हैं तो भी नये-नये अनुराग के भार से ये तीन जगह से नमित होने से आपको तृभंग ललित कहते हैं श्रीहरि की प्रिया सब सुखों की धाम स्वरूपा श्रीराधे रानी की जय हो।

॥ स्तोत्र ॥

श्रीराधा रानी की जय हो। श्रीकृष्ण की जय हो ॥१॥ गौरांगी श्यामा नित्य किशोरी प्रीतम की जोरी स्वरूपा श्रीराधा हैं और रस प्रदान करने वाला रसिक, सौन्दर्य युक्त छैल, माधुर्यादि गुणों से गर्वित श्रीकृष्ण हैं ॥२॥ रास विलास में बिहार द्वारा रस

का विस्तार करने वाली अपने प्यारे को हृदय में धारण करने वाली श्रीराधा हैं, नये-नये अनुराग से रंजित, नवल, तृभंग ललित, अँग प्रत्यँगों से सुन्दर श्रीकृष्ण हैं ॥३॥ प्यारेलाल के प्राणों से भी प्यारी, रूप को प्रकाश करने वाली अत्यन्त सुकुमारी श्रीराधा हैं, कामदेव के भी मन को हरण करने वाले अत्यन्त आनन्द बढ़ाने वाले सुन्दर से भी सुन्दर श्रीकृष्ण हैं ॥४॥ शोभा श्रेणी अर्थात् समुदाय रूप शोभा स्वरूपा, मोभा मैनी=मू+आभा+मैनी= बन्धन में डालने वाली+कान्ति+रति; अर्थात् कामदेव की स्त्री रति की कांति का तिरस्कार करने वाली तथा कोकिल सरीखे बोलने वाली श्रीराधा हैं; कीर्तिवान कामिनी श्रीप्रियाजू के प्यारे भगवान श्रीकृष्ण हैं ॥५॥ चन्द्रमुखी, कुन्द सरीखे दन्त वाली और शोभा के सदन रूपा श्रीराधा हैं; परम उदार, प्रभा अपार अति सुकुमार श्रीकृष्ण हैं ॥६॥ हंस सरीखी चाल वाली, सुशोभित रमणी सुन्दर बिहार करने वाली श्रीराधा हैं; रसीला रूप वाले, विशाल नेत्र कमल वाले परम कृपाल श्रीकृष्ण हैं ॥७॥ स्वर्णलता सदृश रति बिहार में आसक्त अति अलबेली श्रीराधा हैं; सब सुखों के सागर स्वरूप सब गुणों के आकर अर्थात् खान रूप को प्रकाश करने वाले श्रीकृष्ण हैं ॥८॥ रमण करने वाली रमणियों में तारतम्य से श्रेष्ठ से श्रेष्ठ रमणी अगम्य गुणों वाली श्रीराधा हैं; श्रीवृन्दावन धाम में निवास करने वाले; अत्यन्त प्रभावशाली सुन्दर हास्ययुक्त श्रीकृष्ण हैं ॥९॥ आह्लादिनी शक्ति स्वरूपा अत्यन्त प्रिय भाषिणी श्रीकृष्ण प्रेम से उन्मत्त हृदय वाली श्रीराधा हैं; जिनके अँग प्रत्यंगों में मानो जादू भरा है, रस युक्त सुन्दर सुभगता के स्थान स्वरूपा श्रीकृष्ण हैं ॥१०॥ जिनका श्रीराधा नाम है सुन्दर-सुन्दर गुणों की वाटिका स्वरूपा श्रीहरिप्रिया सखी की स्वामिनी श्रीराधा है; हरा श्रीराधा के तन मन धन को हरण करने वाले हरि, श्रीकृष्ण हैं ॥११॥

॥ अनुरागिनी केलि कौमुदी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

संध्या बन्दन समय कौ, इहि विधि सुखहिं सजाय।
मधुर गान मिलि गावहीं, मृदु बाज्यंत्र बजाय॥

॥ पद ॥५४॥

मधुरा मधुर मृदंग बजावैं। अनुरागनि रागनि गुन गावैं॥
सप्त सुरनि के सजनि सुनावैं। तोरें तान मान उपजावैं॥

संगीतन की रीति रचावैं। मूरछना गति ग्राम जमावै॥
नृत्यक सखी नृत्य दिखरावैं। लाग दाट के थाट थटावै॥
उरप तिरप हुरमई हुरमावैं। नई नई निपुनई निरमावै॥
कुसल कला कृत हस्तक भावैं। भृकुटि विलासनि बिहँसि बढ़ावै॥
इहि विधि उर अभिलाख पुरावैं। सब मिलि श्रीहरिप्रिये दुलरावै।

सप्तम याम—प्रदोष रात्रि के ८-२४ से १०-४८ तक।

अनुरागिनि केलि कौमुदी मध्याभास=राग कल्यान। मधुरा=सखी का नाम। (श्रीतुंग विद्याजी की यूथ की सखी है)। अनुरागनि=राग रागिनी स्वरूपा सखी। मान=आदर। सजनि=बान्धकर। तान=गान नृत्य के भेद। निपुनई=चतुर मूरछना गति ग्राम=गायन के भेद। उरप-तिरप-हुरमई हुरमावैं=नृत्य कला के भेद। लाग-दाट=नृत्य के भेद। थाट=बाहुल्यता। निरमावैं=दिखलाती हैं। कुशल कला कृत=चातुर्य युक्त नृत्य कला सम्बन्धी। दुलरावैं=लड़ावैं।

संध्या आरती के पश्चात् सखियाँ अपने गायन तथा नृत्य कला से रसिक दम्पति को लड़ा रही हैं।

॥ दोहा ॥

संध्या समय एवं प्रकार से कीर्तनादि वन्दना रूप सुख प्रदान करके मधुर-मधुर वाद्ययन्त्र बजाकर सब सखियाँ मिलकर गाने लगीं।

॥ पद ॥

मधुरा सखी मधुर-मधुर मृदंग बजा रही हैं और राग रागिनी स्वरूपा सखियाँ गा रही हैं। राग रागिनियों में गुणगान कर रही हैं। सातों स्वरों को पृथक-पृथक बान्ध बान्धकर सुनाती हैं। गान की समाप्ति में जब "तान" तोड़ती हैं तो सब "वाह-वाह" कहके उनका मान बढ़ाती हैं। संगीत कला की रीति से "मूर्छना", "गति" तथा "ग्राम" की रचना करके इनको जमाती हैं। नृत्यक सखियाँ बहुत प्रकार के "लाग", "दाट" के थाट बना-बनाकर नृत्य दिखला रही हैं। नृत्य कला के भेद उरप, तिरप, तथा हुरमई दिखलाती हुई चतुरता से नई-नई गतियों का निर्माण करती हैं। ये सखियाँ नृत्य कला में इतनी कुशल हैं जब हाथों के भाव दिखलाकर विलास युक्त भृकुटियों को मटकाती हैं तो इनको देखकर सब जोर से हंसने लग जाती हैं। एवं प्रकार से सब सखियों ने श्रीहरि एवं प्रिया को मिलकर लड़ा-लड़ाकर अपने हृदयों के सब मनोरथों को पूर्ण किया।

॥ दोहा ॥

निरखि हरखि श्रीहरिप्रिया, अंग संगिनी सहेलि।
लाल लाड़िली करत मिलि, रहसि कुंज में केलि ॥

॥ पद ॥५५॥

लाड़ लाड़िली केलि निकुंजे।
कमल कमल क्रीड़ा कृत कौसल रहसि विहँसि रस केलि निकुंजे ॥
परस सरस मरसत उरजनि कर करसत करजनि केलि निकुंजे ॥
अंग संगिनि सहचरि श्रीहरिप्रिया हरखि निरखि सुख केलि निकुंजे।

अंग संगनि=वस्त्र आभूषण आदि स्वरूपा सखियाँ जो ४ प्रकार की हैं "सिद्धान्त सुख" में जिनका वर्णन है। कमल-कमल क्रीड़ा=रहस्य चुम्बनादि। कर जनि केलि= करज हाथ की अँगुली के नख को कहते हैं। नखक्षत केलि से बिहार सूचित करते हैं। रहसिकुंज=अंग प्रत्यंग रूपी कुंजे "गह्वर कुंज सुहियो कहावै।" रति केलि बिहार को वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

लाल लाड़िली मिलकर अंग प्रत्यंग रूपी कुंजों में रहस्य केलि करते हैं। वस्त्र आभूषण आदि रूपा अंग संगनी सखियाँ श्रीहरि एवं प्रिया के इस रति विलास को देख-देखकर हर्षित होती हैं।

॥ पद ॥

लाल लाड़िली परस्पर मिलकर अंग प्रत्यंग रूपी कुंजों में रहस्य बिहार करते हैं। मुख से मुख कपोल आदि से कपोल मिलाकर चातुरी पूर्वक मुस्कराते हुए अधर सुधा चुम्बनादि रस विलास विलसते हैं। वक्षोजों को स्पर्श करके कर कमलों से कर्षण करके नखक्षत रूपी रहस्य केलि में प्रवृत्त होते हैं। श्रीहरि एवं प्रिया की इस सुख केलि को देखकर आपके वस्त्र आभूषण आदि रूपा अंग संगनी सखियाँ हर्षित होती हैं।

॥ दोहा ॥

ऐन मैन सुख सैन दोउ, मूरति दुल मृबिहार।
करत रहौ निसिदिन विपिन, छिन छिन हूं बलिहार ॥

॥ पद ॥५६॥

या बानिक पर हूं बलिहारी।
विपिन बिहार करत रहौ निशि दिन छिन छिन प्रति पर हू बलिहारी ॥
ऐन मैन सुख सैन सखिन के चैन दैन पर हूं बलिहारी।
श्रीहरिप्रिया मनोज मनोहर मृदु मूरति पर हूँ बलिहारी ॥

ऐन मैन =ठीक। हूबहू। यथार्थ। सुखसैन=सुख शयन=प्रचण्ड सुख (कोष) अथवा सुख पूर्वक जब सुख शय्या पर बिहार करते हैं। मृदुल विहार=माधुर्य रस। बानिक=बनावट। छबि। चैन दैन=आनन्द प्रदान करना। मनोज=कामदेव। युगल साक्षात् माधुर्य रस की मूर्तियाँ हैं। इनका रति-बिहार विलास ही सखियों का भोग्य है। इसी बिहार पर बलिहारी जाती हुई सखियाँ कहती हैं।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति माधुर्य रस बिहार की मूर्तियाँ हैं। इन दोनों का यथार्थ प्रचण्ड सुख विलास ही है। सखियाँ यही मनाती हैं, कि ये ऐसे ही रात दिन विहार करते रहें और हम रति बिहार में प्रवृत्त युगल की इस रूप माधुरी को देख-देखकर इन पर बलिहारी जाती रहें।

॥ पद ॥

रति विलास में आसक्त दम्पति की छवि पर मैं बलिहारी जाऊँ। मैं यह मनाती हूँ कि ये ऐसे ही रात दिन बिहार करते रहें और इनकी इस छबि पर मैं क्षण-क्षण में बलिहारी जाती रहूँ। इनका सुख-शय्या बिहार, ही यथार्थ में सखियों का प्रचण्ड अर्थात् अत्यन्त सुख है और यही सुख इनको आनन्द प्रदान करने वाला है इसी सुख पर ये बलिहारी जाती रहती हैं। श्रीहरि एवं प्रिया पर मैं बलिहारी जाऊँ ये साक्षात् माधुर्य रस की मूर्तियाँ हैं जिनको देखकर क्रोड़ों कामदेवों के मन हरण हो जाते हैं।

॥ दोहा ॥

या सोभा समकरन को, रति कंदर्प करोरि।
हरन हितू जन हियन की, बनी भाँवती जोरि ॥

॥ पद ॥५७॥

बनी भावती जोरी नवल किसोर किसोरी।
साँवरी सलौनी गौरी सोभा सिंधु में झकोरी ॥

निरखत छबि होरी पल न लगै पलको री।
रंग रस बोरी मानो ढोरी साँचे एक ही में
करें चित वित चोरी छबि नहीं थोरी।
हरत हितू श्रीहरि प्रिया मो हियो री ऐसी
दुति पर वारों रति कंदर्प करोरी॥

रति कन्दर्प=कामदेव और उसकी स्त्री रति। रसिक दम्पति की शोभा वर्णन करती हुई सखियाँ कहती हैं।

॥ दोहा ॥

युगल की शोभा की बराबरी क्रोड़ों कामदेव और रति भी नहीं कर सकते हैं। यह भाँवती जोरी श्रीहितु सहचरी के अनुयायीजनों के हृदयों को हरन करने वाली है।

॥ पद ॥

नवल किशोर किशोरी की यह भाँवती जोरी इतनी सलोनी है मानों यह साँवल गौर शोभा रूपी समुद्र को मन्थन करके उसमें से निकाले हों। हे सखी! इनकी छबि देखकर हमारे पलक एक पल के लिए भी नहीं झपते हैं, अपितु एकटक दृष्टि से इनकी ओर देखते ही रहते हैं। यह जोरी अनुराग रंग रस में इतनी निमग्न है मानों यह दोनों अनुराग रूपी एक ही साँचे में ढले हुए हों। इनकी छबि माधुरी सब के चित्त वित्तों को चुराने वाली है। श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं इनकी द्युति श्रीहितु सहचरीजी और मेरे हृदय को हरन करने वाली है इनके सौन्दर्य पर क्रोड़ों कामदेव और रतियों को वार-फेर करके फेंक दूँ।

॥ दोहा ॥

सिंहासन श्रीहरिप्रिया, सोहत सुढर ढरे।
रसिक बिहारी बिहारनि, दोउ गुन रूप भरे॥

॥ पद ॥५८॥

बने दोउ रसिक बिहारी बिहारनि रूप भरे गुन भरे।
अंग अंग सोहें रंग भीने अभरन रतन जरे॥
पहरें बसन सुबरनी छबि मनहरनी ढरनि ढरे।
श्रीहरिप्रिया बैठे सिंहासन निरखति नैन ठरे ॥

सुढर ढरे=सुन्दरता रूपी साँचे में अच्छी प्रकार से ढले हुए। सुवरनी=सुन्दर वर्ण अर्थात् रंगों के। पुनः सखियाँ युगल के सौन्दर्य को वर्णन करती हुई कहती हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीहरि एवं प्रिया, मानों सुन्दरता रूपी साँचे में अच्छी प्रकार से ढले हुए सिंहासन पर सुशोभित हैं। ये दोनों रसिक बिहारी बिहारनि रूप तथा समस्त गुणों से भरपूर हैं।

॥ पद ॥

ये दोनों रसिक बिहारी बिहारनि रूप तथा समस्त गुणों से भरपूर हैं। इनके अंग प्रत्यंग अनुराग रंग से रंजित हैं और ये रत्न जड़ित आभूषण पहने हुए हैं। सुन्दर-रंग-बिरंगे वस्त्रों को धारण किये हुए की छबि सब के मनों को हरण करने वाली है। मानो यह किसी अनिर्वचनीय सुन्दरता रूपी साँचे में ढले हुए हों। श्रीहरि एवं प्रिया, इस समय सिंहासन पर बैठे हुए परस्पर ढरारे नेत्र कमलों से देख रहे हैं।

॥ दोहा ॥

नख सिख सुन्दर बरन बर, अंग अंग आभर्न।
जोरी श्यामा श्याम की, बनी मैंन मन हर्न॥

॥ पद ॥५९॥

श्याम श्यामा बनी जोरी मन हरन री।
कोटि कन्दर्प रति दिव्य दम्पति दरश,
सरस अनुराग अंग अंग बर बरन री॥
मुकुट मंजुल चिकुर चन्द्रिका नील पट,
शीश सोभा सुमन मिलि मुकत लरन री।
तिलक लिल्लाट ताटंक कुंडल श्रवन,
गंड मंडल झलक अलक सौं ढरन री॥१॥
भौंह सोंहनि चपल नैन अंजन,
सुरति रंग रंजनसुकंज गंज खंजरन री।
नासिका अग्रमुक्ता हलनि झलमलति,
देखि दुति दलमलति अमित दुति धरन री॥२॥

बदन सुख सदन मधि रदन रस रगमगे,
रद छदन अरुनई हूते अति अरुन री।
मन्द सस्मित मधुर बत-रसन रस रते,
अति अलंकृत किये दिये भुज गरन री ॥३॥
कनक केयूर चूरी कटक कंकने पहुँचि,
करपत्र मुदरी सुकर तरन री।
नखन मनि जोति लखि होत लोयनि,
ललक पलक चाहत न छवि छलकतें टरन री ॥४॥
कसिब कंचुक कसी अतिलसी कंचुकी,
बसी उर उर बसी स्रकनि की सरन री।
पदिक चौकी सरी चौसरी लरी मिलि,
लसत सुन्दर तनू दर जु दुख दरन री ॥५॥
कटि निकट जटित कटि पटी पुरट,
सुघटि पृथु नितंबनि अटी निज पटावरन री।
जेहरी पानि पद परसि पायल परत,
अनुसरत ऐसे आदेस आचरन री ॥६॥
परम रमनी महा रनित नूपुर रतन,
खचित हंसकनवट नखनि रंग ररन री।
पद तली ललित कोमल कमल दलन,
सम निरखि दृग मधुप गति होति विसमरन री ॥७॥
उदित आनन्दमय इन्दु इकरस सदा,
रसिक सिरमौर पटतर जु बर परन री।
अमित अद्‌भुत प्रभा पुंज श्रीहरिप्रिया,
सकल सोभा स्वकृति सम न कोउ करन री ॥८॥

मैन=कामदेव। मंजुल=सुन्दर। चिकुर=केशपाश। चन्द्रिका=श्रीप्रियाजू की मुकटी। शीस सोभा सुमन=शीशफूल। मुक्तलरन=मोतियों की साँकली। लिल्लाट=मस्तक। ताटंक=कर्णफूल। गंड=कपोल। अलक=अलकावली सौहनि=सुन्दर। गंज=

चूर्ण करना। खंजरनरी=खंजन पक्षी, री सम्बोधन। दलमलति=नष्ट होना। अमित=अपरमित। दुतिधरन=सूर्य अथवा चन्द्रमा। रदन=दन्तावली। रद 'छदन=ओष्ट=अधर। अरुनई=लालिमा। सूर्य उदय से पूर्व की लालिमा। रते=रन्त=आसक्त। केयूर=बाजूबन्ध। कटक=दस्तबन्ध=कड़े। कंकने=कंकण=हाथ के आभूषण। कानत करपत्र=हथ फूल। मुदरी=अँगूठी। सुकरतरन=हथेली, लोयन=नेत्र। ललक=लालसा। कसिब=रेशमी=लाल अतलसी=मखमल या रेशमी। अथवा अतिलसी=अत्यन्त सुशोभित। उरवसी=हृदय पर पहनने कर हार विशेष। स्रकनि=सृक् मालाएँ। सरन+री=शरण पदिक चौकी=चौकी आभूषण की पदक अर्थात् जुगनी। चौसरीलरी=चार लड़ का हार। दरजु=दरज=दराड़=पार्थिक्य दुख। दरन=नष्ट करना कटि निकट=कमर के समीप। कटि पटी=कौंधनी। पुरट=स्वर्ण की। सुघटि=सुन्दर घड़ी हुई। पृथु=भारी=नितम्बनि=कटि पश्चात् भाग। अटी=धारण हुई। निजपटावरन=निज वस्त्र+आवरन ढके हुए। जेहरी=चरण के आभूषण। पान पद=चरण फूल। पायल=नूपुर। आदेस+आज्ञा। रंजित नूपुर=रंग बढ़ाने वाले नूपुर। हंसक=बजते हुए बिछवा। मधुप=श्रीलालजू। इन्दु=चन्द्रमा। रसिक शिरमौर=श्रीलालजू। पटतर=बराबरी। अमित=अनन्त=मित रहित। प्रभा पुँज=कान्ति का समूह। स्वकृति=सौभाग्य=कर्मफल। गाढ़ आलिंगन किये हुए रति विलास में आसक्त रसिक दम्पति की शोभा वर्णन करती हुई सखियाँ कहती हैं।

॥ दोहा ॥

नख से लेकर शिख पर्यन्त सुन्दर वर्ण वर्णों के वस्त्रों से सुसज्जित और अंग प्रत्यंगों में आभरण धारण किये हुए श्याम श्यामा की जोरी अत्यन्त सुन्दर बनी हुई है जिसको देखकर कामदेव का मन मोहित हो जाता है।

॥ पद ॥

श्यामा श्याम की जोरी मन को हरण करने वाली है। दिव्य दम्पति जिनके अंग-प्रत्यंगों से श्रेष्ठ से श्रेष्ठ अनुराग निर्झर हो रहा है, की शोभा देखकर क्रोड़ों कामदेव तथा रति मोह को प्राप्त हो जाती हैं। ये दोनों गाढ़ आलिंगन किये हुए इस प्रकार से विराजे हुए हैं जिससे श्रीलालजू का सुन्दर मुकुट श्रीप्रियाजू के केश पाश, चन्द्रिका, (मुकटी) नील साड़ी, शीश फूल तथा केश पाशों के निकट की मोतियों की लड़ों (साँकली) से जा मिला है। प्यारे का तिलक प्यारीजू के ललाट से इनका कर्ण फूल प्यारे के कुण्डल से जा मिले हैं जिनकी झलक दोनों के कपोलों पर पड़कर इनकी अलकावली पर्यन्त ढरक रही हैं॥१॥

प्यारीजू की भोहें अत्यन्त सुन्दर हैं। प्यारे इक टक दृष्टि से इनकी ओर देख रहे हैं। प्यारीजू के अंजन युक्त चञ्चल सुन्दर नेत्र कमल हैं, जो अपने प्यारे की ओर इतनी आसक्ति भरी दृष्टि से देख रहे हैं मानों ये सुरत रंग से रंजित हैं और इनकी चपलता खंजन पक्षी के चञ्चलता के मद को चूर्ण कर रही है। प्रियाजू के नक वेसर के अग्र मोती की हलन ऐसी झलमला रही है जिसको देखकर अनन्त द्युति को धारण करने वाले इनके प्यारे लाल की कान्ति भी फीकी लगती है ।।२।। प्रियाजू का मुख कमल प्यारे का सर्वस्व सुख सदन है। जिसमें प्यारीजू की दन्तावली प्यारे के अधर सुधा रस पान से सगवगी हो रही है और रद छदन अर्थात् ओष्ट लालिमा से भी अधिक अरुण हो रहे हैं। एवं प्रकार से अधर सुधा तथा रसना पान करते कराते दोनों मन्द तथा मधुर रीति से मुस्करा रहे हैं और भाव युक्त आभूषणों से आभूषित होकर परस्पर गलबहियाँ दिये हुए हैं ।।३।। रति विलास में आसक्त लालजू की दृष्टि प्रियाजू के भुज दण्डों के आभूषणों अर्थात् स्वर्ण बाजू बन्धों, चूड़ियों, दस्त बन्धों, कंकणों, पोंहचियों, हथफूलों, अंगूठियों तथा हाथ के हथेलियाँ पर पड़ती हुई ज्योंही नख मणि ज्योति पर पोंहची, त्योंही प्यारे की दृटि वहीं ठिठक गई और अब वह दृष्टि एक क्षण के लिए भी उस माधुरी से जिसमें छवि उझली पड़े हैं हटना नहीं चाहती हैं ।।४।। दोनों गाढ़ आलिंगन किये हुए हैं अतः प्यारी की लाल रेशम की कसी हुई कंचुकी, प्यारे के अतलसी जामा की कंचुकी से सटी हुई है और लड़ैतीजू की उरवसी आभूषण लाल के उर में बसी हुई इनकी माला के नीचे इस प्रकार दब गई है मानों यह उरवसी माला की शरण ग्रहण किये हुए हो। प्यारे की चौकी की जुगनी सरी अर्थात् जाकर प्यारी के चौसर हार से इस प्रकार सट गई है मानो दोनों के सुन्दर विग्रहों के बीच पार्थिक्य रूपी दरार के दुःख को यह मिटा रही हो ।।५।। प्रियाजू की कटि के निकट रत्नों से जटित स्वर्ण की सुन्दर प्रकार से घड़ी हुई कोंधनी है जो उनके भारी कटि पश्चात् भाग पर इतनी फैल फूटकर सुशोभित है, कि जिसने अपनी कान्ति से प्यारीजू के वस्त्रों को भी ढक रखा है। प्रियाजू के चरणो का "जेहरि" आभूषण और "पद पान" अर्थात् चरण के उपरि भाग पर धारण होने का पान आकृति आभूषण "पायल" को स्पर्श किये हुए हैं। ये आभूषण यह दिखला रहे हैं मानों हरिजू अपने पाणि से प्रियाजू के पदों का स्पर्श करते हुए उनके पाओं में गिर रहे हों। ऐसा करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रियाजू के दिव्य आभूषण भी हरिजू के आदेश से उनके अनुसार आचरण कर रहे हों ।।६।। अब प्यारे की दृष्टि प्यारीजू के उन रत्न जटित नूपुरों पर पड़ी जो परम रमणीय चरण कमल की महावर के प्रतिबिम्ब से रंजित हैं। फिर प्यारे उनके रत्न

खचित शब्दायमान बिछवों को देखने लगें जो उनके नखमणि के रंग से रंजित हो रहे हैं। एवं प्रकार से देखते-देखते ज्योंहीं लालजू की दृष्टि प्रियाजू की ललित कोमल कमलों से भी अधिक कोमल पदतली पर पड़ी त्योंही उनके भौंरा सरीखे चञ्चल नेत्र अके थके से होकर वहाँ के वहाँ स्थगित हो गये और वह और अंगों का देखना भूल गये ।।७।। यदि कोई सदा एक रस रहने वाला अनिर्वचनीय आनन्दमय चन्द्रमा उदित हो तो भी उसकी भी उपमा रसिक शिरमौर लालजू से नहीं दी जा सकती है। कहाँ तो उपरोक्त चन्द्रमा और कहाँ रसिक शिर मौर लाल ? ओर छोर रहित तेज पुंज स्वरूपा, श्रीहरि की प्रिया लड़ैतीजू की प्रभा का क्या वर्णन करें ? चौदह भवनों की शोभा, सम्पति तथा बड़भाग मिलकर भी इनकी बराबरी नहीं कर सकती हैं ।।८।।

।। अनुरागिनी कर्णकान्ता मध्याभास ।।

।। दोहा ।।

इहि प्रकार बीती जबै, घरी चार रजनी।
अदन सदन आये दोउ, संग लिये सजनी ।।

।। पद ।।६०।।

संग लिये सजनी पीय पियारी।
इहि विधि घरी चार रजनी सुख विलसि चले दोउ करन बियारी ।।
अदन सदन आये मन भाये पधराये करि सौंज तियारी।
श्रीहरिप्रिया प्रवीन परस्पर दोउ दोउन की जीय जियारी ।।

अनुरागिनि कर्नकान्ता मध्याभास=राग कान्हरौ। अदन सदन=भोजनशाला। सौंज=सामग्री। प्रवीन=चतुर। ब्यारू कराने के लिए सखियाँ, युगल को भोजनशाला में ले गई हैं।

।। दोहा ।।

रति विलास आनन्द में जब चार घड़ी रात्रि व्यतीत हो गई तब रसिक दम्पति सखियों को साथ लेकर भोजनशाला में पधारे।

।। पद ।।

इस प्रकार से चार घड़ी रात तक रति विलास सुख विलस के, पिय प्यारी सखियों को साथ लेकर ब्यारू करने के लिये भोजनशाला में पधारे। वहाँ सखियों ने सब साम-

ग्रियाँ तैयार करके युगल को आसनों पर पधराया। श्रीहरि एवं प्रिया अत्यन्त चतुर हैं और एक दूसरे के प्राणों को जिलाने वाले हैं।

॥ दोहा ॥

गरस परस्पर देत मुख, सरस पुलक अंग संग।
जिय ज्यारी ब्यारी करत, पिय प्यारी के संग॥

॥ पद ॥६१॥

करत बियारी पिय प्यारी संग।
अरस परस गरसा मुख देत दिवावत अति उपजावत रति रंग॥
मधुर दूध सम्मिलित मिश्रि भरि कनक-कटोरे पीवत सोमंग।
श्रीहरिप्रिया आरोगत रुचि सों विविध पक्वान पुलक अँग॥

गरस=गरसा=ग्रास। अरस परस=परस्पर। सोमंग=सह उमंग=आनन्द से। पुलक=आनन्द रोमांच=पिय प्यारो ब्यारू कर रहे हैं।

॥ दोहा ॥

प्यारे अपनी प्राण भाँवती प्यारी के साथ ब्यारू कर रहे हैं। परस्पर ग्रासें उठा-उठाकर जब एक दूसरे के मुख में देते हैं तब स्पर्श सुख से दोनों के हृदय सरस हो जाते हैं और अंग प्रत्यंगों में रोमांच हो उठते हैं।

॥ पद ॥

प्यारे अपनी प्यारी के साथ ब्यारू कर रहे हैं। एक दूसरे के मुख में परस्पर ग्रास देना ही रति रंग बिहार सुख को उपजाता है। दोनों अत्यन्त उमंग से स्वर्ण कटोरों में मिश्री सम्मिलित मधुर दूध भर-भरकर पान कर रहे हैं। श्रीहरि एवं प्रिया जब रुचि पूर्वक विविध प्रकार के पकवान तथा पान द्रव्य आरोगते हैं तब परस्पर स्पर्श सुख से दोनों के अँगों में रोमांच हो उठते हैं।

॥ दोहा ॥

अम्बुज बदनी सहचरी, विधि अचवन अचवाहि।
बीरी रचि रचि देत कर जुगलचन्द्र मुख चाहि॥

॥ पद ॥६२॥

अंबु अचवावत अम्बुज बदनी।
कर लिये झारी कनक कटोरनि भरि भरि प्यावति अम्बुज बदनी॥

रचि रचि बीरी देत दोउन कर उर उमगावति अंबुज बदनी।
श्रीहरिप्रिया चखि चाहि चकित रहि कहि नहिं आवति अंबुज बदनी॥

अम्बुज वदनी=कमलवदनी। अम्बु=जल। चखि=नेत्र। कनक =स्वर्ण व्यारू के पश्चात् सखियाँ अचवन करवा रही हैं।

॥ दोहा ॥

कमल वदनी सहचरियाँ युगल चन्द्रको विधि पूर्वक अचवन करवाकर, चाह भरी दृष्टि से इनकी ओर देख देखकर चिर वीरियाँ बना बना कर दोनों के हस्त-कमलों में दे रही हैं।

॥ पद ॥

कमल वदनी सखियाँ जल से आचमन करवा रही हैं। कुच्छ सखियाँ स्वर्ण झारियों में से जल कनक कटोरों में भर भर कर युगल को पान करा रही हैं। दूसरी वीरियाँ बना बना कर दोनों के हस्त कमलों में देकर हृदयों में फूली नहीं समाती हैं। कमल वदनी सखियाँ जिस चाह भरी दृष्टि से इस समय श्रीहरि एवं प्रिया को देख रही हैं उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

॥ दोहा ॥

निज इच्छा अनुसारनी, निज सहचरि मृगनैनि।
सारति बारति आरती, समझि सैन की सैन॥

॥ पद ॥६३॥

आरति वारति अलि मृगनैनी।
निज सहचरि इच्छा अनुसारनि समझि सैन की सैना बैनी॥
जगमग जोति जगति दीपावलि कनक थार मधि सचित सुचैनी।
श्रीहरिप्रिया हितवाय हियनि में लै बलाय सनमुख सुख दैनी॥

सारति=सा+रति=प्रेम सहित। सैना बैनी=नेत्र के इङ्गित अंकित से। सचित=सुसज्जित। सुचैनी=सुख देने वाली। हितवाय=हित के लिये। मङ्गल कामना के लिये सखियाँ शयन आरती कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

युगल की इच्छा वृत्ति स्वरूपा मृग नैनी निज सहचरियाँ, रसिक दम्पति के नेत्र कमलों के अङ्कित से यह समझ कर कि अब इनकी शयन की इच्छा है, प्रेम सहित अपने

प्राणों को वारती हुई शयन आरती करने लगीं ।

॥ पद ॥

मृगनैनी अलियाँ शयन आरती वारने लगीं। ये निज सहचरियाँ युगल की इच्छा वृत्ति स्वरूपा हैं, अतः इनके नेत्र कमलों के इशारे से इनकी शयन करने की अभिलाषा को समझ कर आरती करने लगी हैं। सुख प्रदान करने वाली सखियों ने स्वर्ण थाल में दीपावली की पङ्क्तियाँ कैसे सुन्दर ढँग से सजाई हैं, जो जगमग जगमग करती हुई निकुञ्जजगत को प्रकाशमान कर रही हैं। आरती के पश्चात सुख दैनी सखियाँ, श्रीहरि एवं प्रिया की मङ्गल कामना के लिये अपने अपने हृदयों से इनका हित मनाती हुई, युगल के सन्मुख बार बार इनकी वलिया लेने लगीं।

॥ दोहा ॥

सयन अयन सुख सखी जहां, सची सुपेसल सेज ।
तापर पौढ़े एक पट, ओढ़ि रंगीले हेज ॥

॥ पद ॥६४॥

सुन्दर सुहाई सुख दाई सुख सेज पर हेज भरे पौढ़ पलकें लगि गईं ।
भुज सिरहाने दिये हिय सो लगाय हिये प्रेम रस पियें पलकें लगि गईं ॥
विपुल पुलक लस अंग आलस बस अरसनि परस पलकें लगि गईं ।
श्रीहरिप्रियाजू की जोरी नवलकिसोरी ओढ़ें पियरि पिछौरी पलकें लगि गईं ॥

सुख सखी=शय्या सहेली=समवर्तनी शय्यास्वरूपा सुख सखी। शयन अयन=शयन भवन=शय्या कुञ्ज । सुपेसल=सुन्दर । हेज=स्नेह युक्त । विपुल=बहुत ज्यादा । पुलक=रोमाञ्ज । लस=सुशोभित । अरसनि परस=आपस में स्पर्श करना=परस्पर अँक में लेना । व्यारू के पश्चात रसिकदम्पति "वायुकोन" की कुञ्ज में कुच्छ समय के लिये शयन करते हैं। शयन समय की झाँकी का वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

अब रसिक दम्पति उस शयन कुञ्ज में पधारे जहाँ सखियों ने "सुख सखी" नामक सुन्दर सेज सजा रखी थी। उस शय्या पर दोनों रंगीले प्यारे एक ही पट ओढ़कर हेज में भरे हुए सो गये।

॥ पद ॥

सुख प्रदान करने वाली सुन्दर शय्या पर हेज में भरे हुए दोनों पौढ़ गये और

उनकी आँखें लग गईं। एक की भुजा को दूसरे के सिराहने दिये हुए हृदय से हृदय लगाये हुए और प्रेम रस पान किये हुए सोते हुए ये कैसे सुन्दर लग रहे हैं। इनके अङ्ग प्रत्यंगों पर परस्पर स्पर्श से भारी रोमाञ्च हो रहे हैं। दोनों आलस्य वश होकर सो रहे हैं। श्रीहरि प्रिया जू की यह नवल किशोरी जोरी इस समय पीली पिछोरी ओढ़े हुए शयन कर रही है।

॥ दोहा ॥

हितू सहचरी हितभरी, चाँपि चरन चित चाय।
हरें हरें हटि पट दिये, झट दै बाहरि आय॥

॥ पद ॥६५॥

हितू सखी हित की हितवाई।
पाँय पलोटि हरें हरें अटकें पट दे झट दे बाहरि आई॥
रंध्रनि मग लगि रूप माधुरी अवलोकति सहचरि समुदाई।
श्रीहरि प्रिया की सहज सुरति रति गान करति मधुरे मनभाई॥

हरें हरें=शनै शनै। हटि=हट कर=दूर होकर। पट=किवाड़। झटदै=जल्दी से। रंध्रनि=जाली। मग=मार्ग से। सुरतिरति=रतिविलास के प्रेम को। समुदाई=समुदाय=सब सखियाँ। श्रीहितुसहचरीजी युगल की चरण सेवा करके जब वे सो जाते हैं, बाहिर आकर जाली में से रूप माधुरी सब सखियों को साथ देखती हैं, उसी का वर्णन करते हैं।

॥ दोहा ॥

हित चिन्तक श्रीहितु सहचरी जी चाव में भरी हुई युगल के चरण कमलों को दबाती हैं। फिर उनको सोये हुए देखकर, शनै शनै उनसे हट कर जल्दी से आहिस्ता से किवाड़ लगा कर वाहिर आती हैं।

॥ पद ॥

श्रीहितु सहचरीजी युगल की हितचिन्तक हैं। अतः उनके पाँय पलोटकर, उनको सोये हुए देखकर, शनै शनै उनसे अलग होकर, जल्दी से आहिस्ता से, किवाड़ लगा कर वाहिर पधारी हैं। फिर जाली के रंध्रों में से और सब सखियों के साथ इन दोनों सोये हुएयों की रूप माधुरी का अवलोकन करती हैं। फिर श्रीहरि एवं प्रिया के स्वाभाविक

सुरति केलि विलास के प्रेम को अपनी मन भाई रीति से मधुर मधुर स्वरों से गान करती हैं।

"अनुरागिनि अलबेलि केलि मध्याभास"

॥ दोहा ॥

अछन अछन उच्चरहु री, ज्यौं ये परें न जागि।
श्रीहरिप्रिया सुख सेज पर, सोये सुख श्रम पागि॥

॥ पद ॥६६॥

सुख सेज श्रमित दोउ श्यामा-श्याम रति रङ्ग भरें गरें रहे लागि।
अँग अँग उरझे अँग अंगनि में परम प्रेम रस मध्य पागि॥
सिथिल वसन रसना रतनावलि राजति मुख मुख राग रागि।
श्रीहरिप्रिया के लछन बरनन करे अछन अछन मति परें जागि॥

अनुरागिनि अलवेलि केलि मध्याभास=राग अण्डानो। अछन अछन=शनै शनै। श्रमपागि=थककर। रसना=नाड़ा=नीवीवन्ध। रतनावलि=दिव काम "अँग अँग उदय होय जो काम। रतनज्योति ताहि को नाम (तालिका) राजति=उदीप्त। मुख मुख राग राग=परस्पर मुख से मुख मिले हुए राग से अथवा ताम्बूल पीक आदि से रञ्जित। लछन=केलि=लीला। सोये हुएओं की रूप माधुरी सखियाँ वर्णन करती हैं श्रीहितु सहचरीजी, शनै शनै बोलने की कहती है ताकि युगल जग न जावे।

॥ दोहा ॥

श्रीहरि एवं प्रिया सुख विलास से थक कर सुख सेज पर सोये हुए हैं, अतः आप धीरे धीरे बोलें ताकि ये जग न जावें।

॥ पद ॥

दोनों श्यामा श्याम सुख विलास से थककर रति रँग में भरे हुए, गले से गले लगाये, सुख शय्या पर शयन कर रहे हैं। इस समय परम प्रेम रस में पगे हुए इनके अँग प्रत्यंग परस्पर उलझे हुए हैं। नीवी बन्ध ढीला हो गया है। दिव्य काम उद्दीप्त हो उठा है। परस्पर मुख कमल से मुख कमल मिले हुए हैं, जो अधर सुधा अथवा ताम्बूल आदि से रञ्जित हैं। हे सखियो! श्रीहरि एवं प्रिया की केलि धीरे धीरे इस प्रकार से वर्णन करें जिससे ये जग न जावें।

॥ दोहा ॥

देखत ही दृग थकित ह्वै, रहत गहत नहिं चेत।
श्रीहरिप्रिया के अंग में, अति निसंक छबि देत॥

॥ पद ॥६७॥

आज छबि फबी है री मदन मोहन की।
मंद मंद मुसकनि मोहनि तन अधखुली पल जोंहन की॥
देखत ही दृग रहत थकित ह्वै सोभा कटीली भोंहन की।
श्रीहरिप्रिया अंक मधि अंकित अति निसंक सोंहन की॥

अतिनिशंक=निस्संकोच। मोहनि तन=श्रीप्रियाजू के तन की ओर। अध खुली पल=आधे खुले नेत्र कमल। जोहन=देखना। कटीली=टेढ़ी। सोहन=सुन्दरता। निद्रायित अवस्था में श्रीहरि, श्रीप्रियाजू के अङ्क में शयन कर रहे हैं उसी शोभा का वर्णन करती हुई सखियाँ कहती हैं।

॥ दोहा ॥

हे सखि! तू देख तो सही इस समय श्रीहरि श्रीप्रियाजू के अङ्क में निस्संकोच भाव से शयन करते हुए कैसे सुन्दर लगते हैं? हमारे नेत्र इस समय की इस रूप माधुरी को देखते देखते थकित हो जाते हैं और हम सुध बुध भूल जाती हैं।

॥ पद ॥

आज श्रीमदन मोहन लाल की छबि कैसी फव रही है। यह इस समय शयन करते हुए भी, आधे खुले हुए नेत्र कमलों से अपनी प्यारी की ओर देखते हुए मन्द मन्द कैसे मुस्करा रहे हैं। हमारे नेत्र लाल की टेढ़ी भौंहों की शोभा को देखते देखते थकित रह जाते हैं। इस समय श्रीहरि श्रीप्रियाजू के अँक में कैसे निस्संकोच भाव से शयन करते हुए सुन्दर लगते हैं? तू देख तो सही।

॥ अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

अर्द्ध सरवरी में रही, घरी छ सातक आय।
तब इच्छा अनुसारिनी, सहचरि दिये जगाय॥

॥ पद ॥६८॥

दिये जगाय जुगलबर जबहीं।
अर्द्ध सरवरी माहिं छ सातक रही जानि निज सहचरि तबहीं॥
इहि प्रकार इच्छा अनुसारनि उर अभिलाखनि पुरये सबहीं।
श्रीहरिप्रिया के दरस परस बिनु निमिख न एक रहत हैं कबहीं॥

अष्टम याम-"नक्त" रात्रि १०-४८ से ३-३६ तक।

अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास=राग विहागरौ। अर्धशर्वरी=आधीरात। निमिख=पल। आधी रात से छ या सात घड़ी पहिले, युगल की इच्छा समझ कर, सखियाँ रास विलास आनन्द विलसाने के लिये रसिक दम्पति को जगाती हैं। परस=स्पर्श।

॥ दोहा ॥

अर्ध रात होने में जब छ या सात घड़ी बाकी रहती हैं तब इनकी इच्छा अनुसार कार्य करने वाली सहचरियाँ युगल को जगाती हैं।

॥ पद ॥

जब आधी रात होने में छ सात घड़ी बाकी रही तब निज सहचरियों ने जुगल वर को जगा दिया। ऐसा करने से उन इच्छा अनुसार कार्य करने वाली सखियों ने अपने अपने हृदयों की अभिलाषाओं को पूर्ण किया जो श्रीहरि एवं प्रिया के दर्शण स्पर्षण बिन एक पल भी नहीं रह सकती हैं।

॥ दोहा ॥

सोभा हद सोहत सरस, रद छद चित्र अमंद।
लै लरमुक्ता वारहीं, लखि जगमग मुख चंद॥

॥ पद ॥६९॥

जगमग चन्द्र बदन की जोति।
अति सुन्दर सोभा की सींवां लखि चखिचौंधी होति॥
प्रीतम के मुख अंबुज रस करि चित्रित अमित उदोति।
लखि सुख श्रीहरिप्रिया हितू सखि वारति हैं लरमोति॥

रदछद=ओष्ट। अमन्द=प्रकाशमान। चख=नेत्र। चौंधी=चकचौंध=अति

प्रकाश के कारण देख न सकना । मुख अम्बुज रस=अधर सुधा अमित+उदय+अति अथवा ताम्बूल पीक रञ्जित । अमित अदोति=वेहद-चमक । लर मोति=मोतियों की हारावली । रसिक दम्पति के मुख कमलों को अधर सुधा तथा ताम्बूल पीक आदि से चिन्हित देखकर यह समझकर ये दोनों रतिविलास सुख से सुखी हैं, सखियाँ मोतियों की हारावली वेर फेर करने लगी ।

॥ दोहा ॥

अधर सुधा रस से सरस और ताम्बूल पीक से रञ्जित । रसिक दम्पति के एवं प्रकार के ओष्टो द्वारा चित्रित मुख कमलों की अत्यन्त शोभा हो रही है । एवं प्रकार की मुख चन्द्रमाओं की जगमगाहट देखकर सखियाँ उन पर मोतियों की मालाएँ वार रही हैं ।

॥ पद ॥

प्रियाजू के मुख चन्द्रमा की ज्योति कैसी जगमगा रही है शोभा की सीवाँ स्वरूप इस मुखारविन्द को देखकर सखियों के नेत्रों में चका चौंधसी हो रही है । प्यारे के पान से भरे हुए मुख कमल द्वारा चुम्बित होने से प्यारी के कपोलादि चित्रित से हो उठे हैं, जिनको देख देख कर श्रीहरिप्रिया सखी और श्रीहितु सहचरीजी मोतियों की हारा-वली वार फेर कर रही हैं ।

॥ दोहा ॥

निकसे बिकसे बदन बिबि, बिपुल पुलक भुजजोरि ।
भई प्रमदित प्रमुदावली, ज्यों लहि चन्द चकोरि ॥

॥ पद ॥७०॥

निकसि चले दोउ बहियाँ जोरी ।
प्रमुदित संग लगी प्रमदावलि लहि चंदहि ज्यों तृषित चकोरी ॥
बिकसित बदन सदन सुख सोंहन मन मोहन छबि फबति न थोरी ।
श्रीहरिप्रिया सिंगार सिंघासन बैठे आनि किसोर किसोरी ॥

निकसे=निकले । बिकसे=प्रकाशमान हुए । बदनबिबि=दोनों के मुख कमल । विपुल पुलक=अत्यन्त रोमाञ्च । प्रमदावली=सखी गण । तृषित चकोरी=प्यासी चकोरी । रसिक दम्पति शयन कुञ्ज से बाहिर निकलकर रास विलास के उपयोगी शृङ्गार करके सिहाँसन पर विराजमान हुए हैं ।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति जिनके मुख कमल प्रफुल्लित हो रहे हैं और जिनके अङ्ग प्रत्यंगों में आनन्द से रोमाञ्च हो रहे हैं परस्पर गल वहियाँ दिये हुए शयन कुञ्ज से बाहिर पधारे। सखियाँ इनको देख कर इतनी प्रसन्न हुईं, जैसे चकोरियों को चन्द्रमा उदय होने से हर्ष होता है। सुख सदन स्वरूप सुन्दर मन मोहन का मुखारविन्द आनन्द से प्रफुल्लित होने से इन की छबि अत्यन्त फवि रही है। श्रीहरिप्रिया ने युगल का रास विलास के उपयुक्त शृङ्गार किया फिर दोनों किशोर किशोरी सिंहासन पर आनकर विराजमान हुए।

॥ दोहा ॥

प्रान प्रियन के जियन की, जानि मोद मनमानि।
अली चली विमली जहां रासथली रसदानि ॥

॥ पद ॥७१॥

रसदैनी रसथली सुहाई।
प्रान प्रियन के जानि जियन की अली चली विमली तहँ आई ॥
मोहन मदन मनोज चंद्र की चटकि चंद्रिका रहि छित छाई।
श्रीहरिप्रिया मंडल प्रवेस करि अति सुदेस रस रहसि रचाई ॥

जियन की=हृदयों की। विमली=अति सुन्दरी पवित्र सहचरी। मनोज चन्द्र=साक्षात मन्मथ मन्मथ श्रीलालजू। चन्द्रिका=चान्दनी। छित=पृथ्वी। मण्डल=रास चबूतरा। सुदेश रस=मौका के अनुरूप रस अर्थात् रास विलास के उपयुक्त रस। रहसि=गोप्य। रसिकदम्पति रास मण्डल पर "रास" के लिये पधारे हैं।

॥ दोहा ॥

सुन्दरी पवित्र सहचरियाँ प्राण से प्यारे युगल के मन की जानकर प्रसन्न चित्त होकर वहाँ पोंहचीं जहाँ रस प्रदान करने वाली रास स्थली है।

॥ पद ॥७१॥

जहाँ रस प्रदान करने वाली सुन्दर रासस्थली है प्राण प्रीतम के हृदयों की जानकर सुन्दर पवित्र सहचरि वहाँ पोंहची। काम देव को मोहन करने वाले साक्षात् मन्मथ मन्मथ स्वरूप चन्द्र की चान्दनी वहाँ प्रवेश करते ही समस्त पृथ्वी पर छागई। एवं प्रकार से श्रीहरि एवं श्रीप्रियाजू ने रास मण्डल पर प्रवेश करके रास विलास के उपयुक्त अति रहस्य रस रचाया।

।।अनुरागिनि कंदर्प कामा मध्याभास।।

।। दोहा ।।

बिबिध भाँति गुनभेद गति, रीझि भीजिअँग अंग ।
नचत नवल नागर दोऊ, रहसि रासि रस रंग ॥

।। पद ।।७२।।

नचत नवल नागर रहसि रास रंगे ।
सुभग वन पुलिन थल कलपतरु तल विमल मंजु मंडल कमल दल अभंगे ॥
रूनुनु नूपुर रमकि झमकि हंसक झुनुनु कुनुनु किंकिनि कलित कटि सुधंगे ।
चरन की धरन उच्चरन सप्तक सुरन हरन मन नन करन उर उमंगे ॥
भृकुटि मटकें लटें लटकि अटकें उझटि झटकि नासा-पुटें चटकि चंगे ।
अलग लग दाट अपटें झपट झट रपट सुघट सांगीत रट थुंग थुंगे ॥
खिरर थिररें तृवट तिर्प उरपें उरनि मुरनि सिर ढुरनि अति गति सुढंगे ।
चखनि चलवनि चपल चिंदु चाली चलनु चर्चरी भेद भ्रुवनि विभंगे ॥
रीझि रस भीजि रिझवार दोउ रसिक बर परस्पर पी सुधाधर समंगे ।
मत्त अनुराग अंगे अनंगे रमत रंग श्रीहरिप्रिया नित्य संगे ॥

अनुरागिनी कंदर्प कामा मध्याभास=राग केदारो । सुभग=सौभाग्यवान श्रीवृन्दावन । पुलिन थल=श्रीयमुनाजी के किनारे के स्थल पर । कल्पतरुतल=कल्प वृक्ष के नीचे । विमल=स्वच्छ । मञ्जु=मनोहर । मण्डल कमलदल=अष्टदल कमल आकार अथवा सहस्त्र दल कमलाकार चबूतरा । अभंगे=नित्य । रमकि झमकि हंसक=विछवों का शब्द । झुनुनु कुनुनु किंकिनि=कोंधनी के शब्द । कलित कटि=कृश कमर । सुधंगे=नृत्य कामे सप्तक सुरन=स, र, गा, मा, पा, धा, नी इत्यादि सात स्वर । उझटि झटकि=उछटिकर जल्दी से । नासा पुटे=वेसर चटकि चंगे=उलझी हुई सुन्दर लगती है । अलग लग=नृत्य में कभी अलग कभी मिलकर । दाट=नृत्य में एक दूसरे को रोकना । अपटे=नृत्य करते करते रुक जाना स्थगति होना । झपट झट=जल्दी से एक दूसरे को आलिङ्गन करना । रपट=एक के दूसरे से छूटना । सुघर साँगीत=अच्छे प्रकार से गाते हुए । रट थुंग थुगे=वार वार ताली वजाकर थुंग थुगे कहते हैं । खिरर थर रें तृवट तिर्प उरपें=नृत्य के भेद तथा ताल आदि । उरनि मुरनि=वक्षस्थल का मुड़ना । शिर ढुरनि=मस्तक का

हिलना। अतिगति सुढंगे=अच्छे ढंग से तेज चलना। चरवन चलवनि चपल=नेत्रों का चञ्चलता से चलना। चिन्दु चाली चलन=मस्त हाथी की चाल चलना। चर्चरी भेद=गीत के साथ भिन्न भिन्न ताल देना। भ्रुवनि विभंगे=भोहों का चलाना। सुधा धर=अधर सुधा। सभंगे=उमंग सहित। मत्त=मतवाले। रसिक दम्पति बिबिध प्रकार से रास विलास अस्वादन करते हुए नृत्य करते हैं।

॥ दोहा ॥

दोनों नवल नागरि नागर पहिले बिबिध भान्ति की नृत्य कलाओं के भेदों के आस्वादन से परस्पर रीझकर रस में भीज जाते हैं फिर ये रहस्य रास रस रङ्ग अर्थात् सुरति केलि रसरङ्ग का उपभोग करते हैं।

॥ पद ॥

सौभाग्य वान श्रीवृन्दावन के मध्य, श्रीयमुना के पुलिन स्थल में कल्प वृक्ष के नीचे एक कमलदल आकार रास मण्डल है जो कमल दलों से भी अधिक कोमल तथा जो नित्य सुशोभित रहता है। उस रास मण्डल पर ये दोनों नवल नागरि नागर रहस्य रस रास रंग में नृत्य कर रहे हैं। सुधंग नामक नृत्य करने से इनके नूपरों से रुनुनु, शब्दायमान–बीछवों से रमकि झमकि और इनकी कोमल कृष् कटि में बन्धी हुई कोंधनी की क्षुद्र घँटि-काओं से झुनुनु कुनुनु शब्द होते हैं। और जब ये ठुमकि ठुमकि कर चरणों को उठा उठाकर नृत्य करते हैं, तब इनके चरणों की पटकन से सा, रे, गा, मा, पा, धानी इत्यादि सात स्वर प्रकट होते हैं जिससे इनके परस्पर मन हरण हो जाते हैं श्रीलालजू प्यारी को आलिङ्गन किया चाहते हैं प्यारी का इस समय का नेति नेति शब्द सुनकर प्यारे का हृदय आनन्द में भर जाता है। कभी कभी नृत्य करते हुए इनकी भ्रुकुटियाँ परस्पर मटकती हैं। कभी प्यारी की लटकी हुई अलकावली हिलती हिलती उछटकर इनके नाक की वेसर से चट उलझ जाती है उस समय वह क्या ही सुन्दर लगती है। कभी अलग अलग कभी दोनों मिलकर नृत्य करते हैं। कभी नृत्य करते हुए रोकने की नाईं एक दूसरे के सामने खड़े हो जाते हैं। कभी एक साथ स्थगित हो जाते हैं। कभी जल्दी से झपट कर परस्पर आलिङ्गन करते हैं कभी छुड़ाकर अच्छी प्रकार से गाते गाते तालियाँ बजा बजा कर थुंग थुंग की रट लगाते हुए नृत्य करते हैं। कभी जब ये तृवट तिर्प तथा उरप आदि नृत्य के भेदों की गतियाँ अच्छे ढंग से लेते हैं तब इन दोनों के नूपरों तथा किंकिणियों से खिरर थिरर शब्द होते हैं और तान की साथ इनके उरस्थल तथा मस्तक ढुर जाते हैं। कभी कभी जब ये नेत्र कमलों को चञ्चलता से चलाते हुए मत्त गजराज

की चाल से भौंहे मटकाते हुए चलते हैं तब गीत की भिन्न भिन्न तानों के साथ साथ तालें देते हैं। एवं प्रकार से नित्य करते हुए दोनों रस में निमग्न हो जाते हैं और दोनों रीझकर परस्पर के नृत्य पर रीझकर रीझ में उमंग सहित परस्पर के अधर सुधा रस को पान करते हैं जिससे इन दोनों के अँग प्रत्यँग दिव्य काम से व्याप्त हो जाते हैं। एवं प्रकार से अनुराग में मत्त होकर ये श्रीहरि एवं प्रिया नित्य मिलकर रतिरङ्ग विहार को विलसते हैं।

॥ अनुरागिनि खंजनाक्षी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

इहि बिधि रास रहस्य रमि, श्रीहरिप्रिया सहेत।
बिबिध भाँति रस रीति सों, ब्याह सदन सुख लेत॥

॥ पद ॥७३॥

दोऊ ए ब्याह सदन सुख लेत।
बिबिध भाँति की रीति भाँति सों लाड़िलड़ी सरबेत॥
पहरें बसन सुहानें अभरन मौरी मौर छबि देत।
अंग अंग सोहन मनमोहन श्रीहरिप्रिया सहेत॥

अनुरागिनी खंजनाक्षी मध्याभास=रागखम्माच। सहेत=हित सहित। ब्याह सदन=विवाह के घर। सर्वेन=सबसे श्रेष्ठ अथवा सब प्रकार का। सहाने=सुन्दर। मौरी मोर=जो विवाह में दुल्ह दुल्हनी के मस्तकों पर बान्धे जाते हैं। रास के बाद व्यहवलों का वर्णन करते हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीहरि एवं प्रिया उपरोक्त प्रकार से प्रेम पूर्वक रहस्य रास विलास विलसकर अब बिबिध प्रकार की रस रीति से ब्याह के घर का सुख लेते हैं।

॥ पद ॥

ये दोनों सर्व श्रेष्ठ लाड़िले अब बिबिध भान्ति की रीति भान्ति से ब्याह सदन का सुख लेते हैं। दोनों बिबाह के उपयोगी सुन्दर सुन्दर वस्त्र आभूषण पहने हुए हैं। इन दोनों के मस्तकों पर मौरी मौर कैसी छबि दे रहे हैं। इनके अङ्ग प्रत्यंग सुन्दर हैं, मनको मोहन करने वाले हैं क्योंकि ये श्रीहरि एवं प्रिया सहेत हैं, अर्थात् इन दोनों के रोम रोम में हित भरा हुआ है।

॥ दोहा ॥

ब्याहि बिराजे सेज पर, श्रीहरिप्रिया लै संग।
हुलसि हुलसि हियें बिलसहीं, बाढ़्यौ अति रति रंग॥

॥ पद ॥७४॥

सेज पर बाढ़्यौ अति रति रंग।
दुलह दुलहिन अलक लड़ीले अलबेले अंग अंग।
नित्य नवीन किसोर लाल दोउ नित्य नवीन अभंग॥
बिलसत बिबिध बिलास हास रस श्रीहरिप्रिया के संग॥

हुलसि हुलसि=उल्लसित होकर आनन्दित होकर। अभंग=निरन्तर। बिवाह विनोद के पश्चात दुल्ह दुल्हनि शय्या सुख विलसते हैं उसका वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

ब्याह के पश्चात श्रीहरि, श्रीप्रियाजू को साथ लेकर सेज पर विराजमान हुए फिर उल्लास सहित रति विलास सुख विलसा, जिससे दोनों के हृदयों में अति रति रंग बढ़ा।

॥ पद ॥

अलक लड़ीले अलवेले दुलह दुल्हनि के अंग प्रत्यंगों में सेज पर बिहार करते हुए अति रति रंग बढ़ा। और इन दोनों नित्य नवीन किशोर लड़ेतों ने नित्य नवीन बिलास विविध प्रकार से विलसा। हास्य रस विलास के समय श्रीहरि प्रिया सखी जी भी उपस्थित थीं।

॥ दोहा ॥

अनहोनें सुख लै चले, गौनें के गुन जाल।
सिंघासन पर आयके, बैठत भये दोउ लाल॥

॥ पद ॥७५॥

सिंघासन बैठत भये दोउ लाल।
अनहोनें गौनें के सुख लै दै अंसन भुज माल॥
चहुँदिसि ठाढ़ी अति रति बाढ़ी सुखद सहचरी जाल।
श्रीहरिप्रिया की रूपमाधुरी निरखत नैन निहाल॥

गुन जाल=गुणों के समूह स्वरूप (कोक कलादि गुणों से तात्पर्य है) गौनें के सुख

विलसकर रसिक दम्पति सिंहासन पर आकर विराजमान हुए हैं सब सखियाँ इनके चारों ओर खड़ी होकर इनकी रूप माधुरी निहार रही हैं ।

॥ दोहा ॥

सब कोक कलाओं के समूह स्वरूपा दोनों लाल लड़ेंती ने अनहोने गौने के सुखों अर्थात् उन विलासों को विलसा जो आज तक किसी ने नहीं विलसे हैं फिर परस्पर गल-बहियाँ देकर ये दोनों सिंहासन पर आकर विराजमान हुए ।

॥ पद ॥

अनहोने गौंने के सुखों को विलसकर परस्पर गल बहियाँ दिये हुए, ये दोनों लाल सिंहासन पर आकर विराजमान हुए। इनको सुख प्रदान करने वाली सहचरियों का समूह, जिनका प्रेम इनके रति विलास सुख को देख कर बढ़ा हुआ है, इनके चारों ओर खड़ी होकर श्रीहरि एवं प्रिया की रूप माधुरी को अपनी आँखों से देख देख कर निहाल हो रही हैं।

॥ श्रीराधारंग विहारिणेभ्यो नमः ॥

॥ दोहा ॥

रंग रँगीली सहचरी, रंग रँगीली आदि ।
श्रीराधा रंग बिहार कों, बरनति हैं उनमादि ॥

* स्तोत्र *

श्रीराधा रंगबिहारिनि, श्रीराधा पिय उरधारिनि ।
श्रीराधा सुख बिसतारिनि, श्रीराधा रति सुखसारनि ॥
श्रीराधा अति सुकुँवारी, श्रीराधा स्यामा प्यारी ।
श्रीराधा रूप उज्यारी, श्रीराधा जोबन वारी ॥
श्रीराधा नेह नवीना, श्रीराधा प्रेम प्रवीना ॥५॥
श्रीराधा रति रसभीना, श्रीराधा हित आधीना ॥
श्रीराधा गुन गरबीली, श्रीराधा छैल छबीली ।
श्रीराधा सोभा सीली, श्रीराधा रसिक रसीली ॥
श्रीराधा स्याम सहेली, श्रीराधा कंचन बेली ।
श्रीराधा गरब गहेली, श्रीराधा अति अलबेली ॥१०॥

श्रीराधा नित्य किसोरी, श्रीराधा गुन निधि गोरी।
श्रीराधा मन मृग डोरी, श्रीराधा प्रीतम जोरी॥
श्रीराधा सब सुख सागरि, श्रीराधा सब गुन आगरि।
श्रीराधा रूप उजागरि, श्रीराधा नव नित नागरि॥
श्रीराधा दिव्य सुदामिनि, श्रीराधा भव्य सुभामिनि॥१५॥
श्रीराधा कंता कामिनि, श्रीराधा भा अभिरामिनि॥
श्रीराधा सोभा सैंनी, श्रीराधा मोभा मैंनी।
श्रीराधा पंकज नैंनी, श्रीराधा कोकिल बैंनी॥

प्रेम मल्लभा=प्रेम+मल्लभा=उत्तम प्रेम की ज्योति स्वरूपा। प्रवासिन=वटोही। सुहीकी=सुन्दर हृदय की। अविछुरति=अ+विछुरति=कभी नहीं विछुरने वाली। माधुर्य मोभा=माधुर्य कान्ति से मोहन करने वाली। मोभामैंनी=मोह+भा+मैंनी=जिनकी कान्ति मात्र से कामदेव मूर्च्छित श्रीप्रियाजू का रूप गुण गान करती हुई सखियाँ गा रही हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीरङ्गदेवीजू से आदि लेकर सब अनुराग से रञ्जित सहचरियाँ श्रीराधा रति रँग बिहारके उन्माद को वर्णन करने लगीं।

॥ स्तोत्र ॥

श्रीराधा अपने प्यारे को हृदय से लगाकर रति रङ्ग विहार कर रही हैं॥१॥ श्रीराधा ही रति सुख की सार स्वरूपा हैं अतः आपही रति विहार सुख का विस्तार करती हैं॥२॥ श्रीराधा ही प्रेम सम्बन्ध में चतुरा हैं अतः इनका नेह इनके प्यारे की ओर सदा नवीन बना रहता है॥३॥ श्रीराधा के हित से ही आधीन होकर इनके प्यारे रति रस में सदा भीगे रहते हैं॥४॥ श्रीराधा सदा किशोर अवस्था वाली श्यामसुन्दर की प्यारी हैं आप अत्यन्त सुकुमारी हैं॥५॥ श्रीराधा यौवन युक्ता हैं आप के रूप से ही सब प्रकाश है॥६॥ श्रीराधा अपने प्यारे छैल की छबि स्वरूपा हैं अतः प्रेम सम्बन्धी गुणों से सदा मानवती रहती हैं॥७॥ श्रीराधा रसिक लाल के उपयोगी रस स्वरूपा है आप का शोभा युक्त शील स्वभाव है॥८॥ श्रीराधा स्वर्ण की लता सरीखी हैं सदा अपने प्यारे श्याम के साथ रहती हैं॥९॥ श्रीराधा अति अलवेली हैं अतः सदा गम्भीर मानवती रहती हैं॥१०॥ श्रीराधा गोरी सबगणों की भण्डार स्वरूपा है आपकी अवस्था नित्य किशोर

रहती है ।।११।। श्रीराधा लालजू के मनरूपी मृग को पकड़ने की डोरी स्वरूपा हैं आप सदा जोरी स्वरूप से अपने प्रीतम के साथ रहती हैं ।।१२।। श्रीराधा सब सुखों की सागर स्वरूपा हैं आप ही सब गुणों की आकर अर्थात् खान हैं ।।१३।। श्रीराधा नव नित्य नागरि अर्थात् सभ्या है आप से ही समस्त रूप का प्रकाश है ।।१४।। श्रीराधा का दिव्य मङ्गल विग्रह दिव्य विद्युत सरीखा है आप ही वास्तव में उपयुक्त भामिनि अर्थात् सुन्दर कामिनि हैं ।।१५।। श्रीराधा अपने प्यारे लाल की प्यारी हैं आपकी आभा अत्यन्त मधुर है ।।१६।। श्रीराधा शोभा की समूह स्वरूपा है आप अपनी कान्ति से मोह+भा+मैनी अर्थात् कामदेव की स्त्री रति को भी मोह में डालने वाली हैं ।।१७।। श्रीराधा के नेत्र कमल सरीखे हैं आप कोकिल सरीखा मधुर भाषण करने वाली हैं ।।१८।।

श्रीराधा मृदु मधु हसिता, श्रीराधा द्विज दुति लसिता ।
श्रीराधा पिय हिय बसिता, श्रीराधा रति रस रसिता ।।२०।।
श्रीराधा कृष्णबल्लभा, श्रीराधा कृपा सुल्लभा ।
श्रीराधा दम्भ दुल्लभा, श्रीराधा प्रेम सुल्लभा ।।
श्रीराधा कोमल अङ्गा, श्रीराधा मैंन तरंगा ।
श्रीराधा उरसि उमङ्गा, श्रीराधा केलि अभङ्गा ।।
श्रीराधा कुंजनिवासिनी, श्रीराधा रासबिलासिनि ।।२५।।
श्रीराधा प्रेम प्रकासिनि, श्रीराधा प्रभा प्रवासिनि ।।
श्रीराधा वारिज बदनी, श्रीराधा सुखमा सदनी ।
श्रीराधा बिसद विरदनी, श्रीराधा मोहन मदनी ।।
श्रीराधा हंसा गवनी, श्रीराधा राजति रवनी ।
श्रीराधा क्रीड़ा कवनी, श्रीराधा दुःखहिं दवनी ।।३०।।
श्रीराधा जीवनि जी की, श्रीराधा प्यारी पीकी ।
श्रीराधा हितू सु ही की, श्रीराधा रहसि रसी की ।।
श्रीराधा लावनि ललिता, श्रीराधा अमृत सलिता ।
श्रीराधा कोमल कलिता, श्रीराधा करुणा बलिता ।।
श्रीराधा चंपक बरनी, श्रीराधा चारु अभरनी ।।३५।।
श्रीराधा पिय चित हरनी, श्रीराधा प्रेम वितरनी ।।

श्रीराधा कुंचित केसा, श्रीराधा सहज सुवेसा।
श्रीराधा महा सुदेसा, श्रीराधा पिय प्रानेसा॥

श्रीराधा जब मधुर मधुर मुसकराती है तब इनकी दन्तावली की ज्योति अत्यन्त सुशोभित होती है ॥१९॥ श्रीराधा अपने प्यारे के हृदय में सदा वसती हैं, अपने प्यारे को रति रस से सदा रसायित करती रहती हैं ॥२०॥ श्रीराधा सत श्रीकृष्ण की प्यारी हैं एक मात्र यह कृपा से ही सुलभ हैं ॥२१॥ श्रीराधा के सब अङ्ग प्रत्यङ्ग कोमल हैं जिन में श्रीकृष्ण विषयक दिव्य काम की तरङ्गें उठती रहती हैं ॥२२॥ श्रीराधा की प्राप्ति दम्भ से दुर्लभ है प्रेम+मल्ल+भा आप उत्तम प्रेम की ज्योति स्वरूप है ॥२३॥ श्रीराधा के हृदय में श्रीकृष्ण विषयक प्रेम की उमंगे उठती रहती हैं यह अपने प्यारे के साथ रति केलि बिहार अभंग रूप से करती रहती हैं ॥२४॥ श्रीराधा निकुंजों में निवास करती हैं अपने प्यारे के साथ सदा रास बिलास में तत्पर रहती हैं ॥२५॥ श्रीराधा प्रेम प्रकाश करने वाली हैं अतः इन्हीं की प्रभा के वटोही बनो ॥२६॥ श्रीराधा कमल वदनी है सुख के सदन अर्थात् स्थान स्वरूपा हैं ॥२७॥ श्रीराधा की बड़ी भारी कीर्ति है आप अपने प्यारे मोहन को अपने प्रेम से मत्त करने वाला है ॥२८॥ श्रीराधा सुन्दर सुन्दर क्रीड़ाऐं करने वाली हैं जिनसे इनके प्यारे और सब सखियों के बिरह जन्य अथवा अतृप्ति जन्य दुख दूर हो जाते हैं ॥२९॥ श्रीराधा हंस सरीखी चाल चलती हैं आप सब रमणियों में श्रेष्ट सुशोभित है ॥३०॥ श्रीराधा लालजू की जीवन स्वरूपा है आप अपने प्यारे की प्यारी है ॥३१॥ श्रीराधा सुही अर्थात् सुन्दर हृदय वालों की हित करने वाली हैं अपने प्यारे के साथ रहस्य रस सम्बन्धी लीला करने वाली है ॥३२॥ श्रीराधा ललित लावण्य स्वरूप है आप अमृत की नदी स्वरूपा है ॥३३॥ श्रीराधा कोमल कलिता अर्थात् पुष्प की कली स्वरूपा है आप कृपा युक्ता है ॥३४॥ श्रीराधा चम्पा के पुष्प सरीखे वर्ण वाली है आप सुन्दर सुन्दर आभूषण धारण किये हुए है ॥३५॥ श्रीराधा अपने प्यारे के चित्त को हरण करने वाली है आप प्रेम को बाँटने वाली हैं ॥३६॥ श्रीराधा के केश घुँघराले है आप सुन्दर वेश भूषा धारण किये हुए हैं ॥३७॥ श्रीराधा महा सुदेश अर्थात् महिमान्वित श्रीवृन्दावन में वास करने वाली हैं आप अपने प्रीतम के प्राणों की ईश्वरी है ॥३८॥

श्रीराधा गामा भामा, श्रीराधा स्यामा रामा।
श्रीराधा नित्य सुनामा, श्रीराधा नित्य सुधामा ॥४०॥
श्रीराधा मोहन मित्रा. श्रीराधा परम पवित्रा।

श्रीराधा चातुर चित्रा, श्रीराधा चारु चरित्रा ॥
श्रीराधा परा भक्तिदा, श्रीराधा सुद्ध सक्तिदा ।
श्रीराधा सानुरक्तिदा, श्रीराधा गुण विरक्तिदा ॥
श्रीराधा रंग रँगीली, श्रीराधा हियें बसीली ॥४५॥
श्रीराधा बार बड़ीली, श्रीराधा लाड़-लड़ीली ॥
श्रीराधा मोहनि मूरति, श्रीराधा सोहनि सूरति ।
श्रीराधा परमा पूरति, श्रीराधा नित अविछूरति ॥
श्रीराधा सुन्दरि सोभा श्रीराधा माधुरि मोभा ।
श्रीराधा आनन्द गोभा, श्रीराधा लोचन लोभा ॥५०॥
श्रीराधा रूप मंजरी, श्रीराधा रङ्ग मंजरी ।
श्रीराधा नवल मंजरी, श्रीराधा नेह मंजरी ॥
श्रीराधा सब सुख साधा, श्रीराधा गुणनि अगाधा ।
श्रीराधा हरणी बाधा, श्रीराधा हरिप्रिया राधा ॥५४॥

श्रीराधा सदा बामा कामिनी सरीखा आचरण करने वाली है आप सदा किशोर अवस्था वाली रमणी रहती हैं ।।३९।। श्रीराधा का नित्य यही सुन्दर नाम है आप सदा सुन्दर धाम श्रीवृन्दावन में ही निवास करती हैं ।।४०।। श्रीराधा के मोहन—लाल ही मित्र हैं आप परम पवित्र हैं ।।४१।। श्रीराधा विविध प्रकार की चतुरता युक्त हैं आपका चरित्र अत्यन्त पवित्र है ।।४२।। श्रीराधा परा भक्ति प्रदान करने वाली हैं आप ही भजन करने की शुद्ध शक्ति देने वाली हैं ।।४३।। श्रीराधा ही अपने में अनुराग देने वाली हैं आप ही प्रकृति के सत्, रज तथा तम् इन तीनों से विरक्तता प्रदान करने वाली हैं ।।४४।। श्रीराधा अपने प्यारे के अनुराग से रञ्जित हैं अतः उनके हृदयमें सदा बसी रहती हैं ।।४५।। श्रीराधा सब सखियों, अथवा गोपियों अथवा महेषियों में श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठा है आप अपने प्यारे की अत्यन्त लाड़ लड़ीली हैं ।।४६।। श्रीराधा का विग्रह मोहन करने वाला है आप की सूरत अत्यन्त सुन्दर है ।।४७।। श्रीराधा सब प्रकार से परिपूर्ण हैं आपका आपके प्यारे से कभी वियोग नहीं होता है ।।४८।। श्रीराधा शोभा युक्त सुन्दरी है अपनी मधुमा की कान्ति से अपने प्यारे को मोहन करने वाली है ।।४९।। श्रीराधा आनन्द मय हैं आपके लोचन आपके प्रीतम को लोभ प्रदान करने वाले हैं ।।५०।। श्रीराधा रूप लता के फूल सदृश हैं आप अनुराग रूपी लता का फूलों का गुच्छा सरीखी है ।।५१।। श्रीराधा

तरुणता रूपी लता का कुसुम और स्नेह रूपी लता के पुष्प समान हैं ।।५२।। श्रीराधा सब सुखों की सिद्धि स्वरूपा है आपमें अगाध गुण है ।।५३।। श्रीराधा सब बाधाओं को हरण करने वाली हैं आप ही श्रीहरि की प्रिया राधा हैं ।।५४।।

श्रीराधाकृष्णैकात्मभ्यो नमः

।। दोहा ।।

कृष्णरूप श्रीराधिका, राधे रूप श्रीस्याम।
दरसन कों ये दोय हैं, हैं एकहि सुखधाम ।।

।। स्तोत्र ।।७७।।

राधेकृष्ण राधेकृष्ण, कृष्ण कृष्ण राधे राधे।
राधेस्याम राधेस्याम, स्याम स्याम राधे राधे ।।१।।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण, नव घन गोरी राधे।
राधेस्याम राधेस्याम, सुन्दर जोरी राधे ।।२।।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण, अद्भुतरूपा राधे ।
राधेस्याम राधेस्याम, सहज स्वरूपा राधे ।।३।।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण, मोहनि मूरति राधे।
राधेस्याम राधेस्याम, सोहनि सूरति राधे ।।४।।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण, नवरङ्गभीनी राधे।
राधेस्याम राधेस्याम परम प्रवीनी राधे ।।५।।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण, कोमल अङ्गा राधे।
राधेस्याम राधेस्याम, सहज अभंगा राधे ।।६।।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण, अति सुकुँवारी राधे।
राधेस्याम राधेस्याम, सुखद सुढारी राधे ।।७।।

रसिक दम्पति का गुण गान करती हुई सखियाँ कहती हैं "एक स्वरूप सदा द्वै नाम" वास्तव में इन दोनों की एक ही आत्मा है नाम मात्र भिन्न भिन्न हैं इत्यादी। स्तोत्र का यह अँश "राधेकृष्ण राधेकृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे। राधेश्याम राधेश्याम श्याम श्याम राधे राधे ।।" "श्रीसम्मोहन तन्त्र" या "रास उल्लास तन्त्र" अथवा अन्य किसी तन्त्र शास्त्र से उद्धृत है, जो श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीगुरुदेव से "अष्ट दशाक्षर

श्रीगोपालमन्त्र" और "श्रीमुकुन्दमन्त्र" की दीक्षा समय हर समय जप करने के लिये नाम मन्त्र के रूप में दिया जाता है ॥

॥ दोहा ॥

श्रीराधिका श्रीकृष्ण रूप हैं और श्रीश्याम सुन्दर श्रीराधा रूपा हैं । ये दोनों दर्शन मात्र को दो हैं तत्वांश में ये दोनों सुख धाम एक ही हैं ॥

॥ स्त्रोत्र ॥

श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण है । श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण ही हैं और श्रीराधे श्रीराधा ही हैं ॥ श्रीराधे श्रीश्याम हैं, श्रीराधे श्रीश्याम हैं । श्रीश्याम श्रीश्याम ही हैं और श्रीराधे श्रीराधा ही हैं ॥१॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं और नव घन स्वरूप श्रीकृष्ण, गोरी राधे हैं । श्रीराधे श्रीश्याम हैं राधे श्रीश्याम हैं श्याम सुन्दर अपनी जोरी स्वरूपा श्रीराधे हैं ॥२॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं और अद्भुत श्रीकृष्ण राधे हैं । श्रीराधे श्रीश्याम हैं श्रीराधे श्रीश्याम हैं सहज स्वरूप श्रीश्याम श्रीराधे हैं ॥३॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण है मोहनि मूरति स्वरूप श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं । श्रीराधे श्रीश्याम हैं श्रीराधे श्याम है सोहनि सुरति स्वरूप श्रीश्याम श्रीराधे हैं॥४॥श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं नव अनुराग से भीगे हुए श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं । श्रीराधे श्रीश्याम हैं श्रीराधे श्रीश्याम हैं परम चतुर श्रीकृष्ण राधे हैं ॥५॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण है कोमल अङ्गा श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं । श्रीराधे श्रीश्याम है श्रीराधे श्रीश्याम हैं सहज परिपूर्ण श्रीश्याम, श्रीराधे है ॥६॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं अत्यन्त सुकुवाँर श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं श्रीराधे श्रीश्याम है श्रीराधे श्रीश्याम है सुन्दर रीति से सुख प्रदान करने वाले श्याम श्रीराधे है ॥७॥

राधेकृष्ण राधेकृष्ण अति कमनीया राधे ।
राधेस्याम राधेस्याम रति रमनीया राधे ॥८॥
राधेकृष्ण राधेकृष्ण परमापुंजे राधे ।
राधेस्याम राधेस्याम रहसि निकुंजे राधे ॥९॥
राधेकृष्ण राधेकृष्ण सब सुखसारा राधे ।
राधेस्याम राधेस्याम परम उदारा राधे ॥१०॥
राधेकृष्ण राधेकृष्ण पिय प्राणेसा राधे ।
राधेस्याम राधेस्याम दिव्य सुवेसा राधे ॥११॥

राधेकृष्ण राधेकृष्ण मनहर मित्रा राधे।
राधेस्याम राधेस्याम विसद विचित्रा राधे ॥१२॥
राधेकृष्ण राधेकृष्ण मङ्गल नामा राधे।
राधेस्याम राधेस्याम दिविगुण धामा राधे ॥१३॥
राधेकृष्ण राधेकृष्ण नीरज नैंनी राधे।
राधेस्याम राधेस्याम आनन्दऐंनी राधे ॥१४॥
राधेकृष्ण राधेकृष्ण नित्यविहारा राधे।
राधेस्याम राधेस्याम प्रान अधारा राधे ॥१५॥
राधेकृष्ण राधेकृष्ण रूप उज्यारी राधे।
राधेस्याम राधेस्याम हरिप्रिया प्यारी राधे ॥१६॥

श्रीराधे श्रीकृष्ण है श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं अति कमनीय श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं। श्रीराधे श्रीश्याम हैं श्रीराधे श्रीश्याम है रमणीय रति विलास स्वरूप श्रीश्याम श्रीराधे हैं ॥८॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं सब श्रेष्ठ वस्तुओं के समूह स्वरूप श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं। श्रीराधे श्रीश्याम हैं श्रीराधे श्रीश्याम हैं निकुञ्जके रहस्य स्वरूप श्रीकृष्ण राधे है।६। श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं सब सुखों के सार स्वरूप श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं। श्री राधे श्रीश्याम हैं श्रीराधे श्रीश्याम है परम उदार श्रीकृष्ण श्रीराधे है ॥१०॥ श्रीराधे श्री कृष्ण है श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं प्रियाजू के प्राणों के ईश श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं श्रीराधे श्याम हैं दिव्य वस्त्राभूषण धारी श्रीश्याम श्रीराधे हैं ॥११॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण है। श्रीराधे श्रीकृष्ण है मन को हरण करने वाले मित्र श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं। श्रीराधे श्रीश्याम है राधे श्रीश्याम हैं अति अद्भुत श्रीश्याम राधे है ॥१२॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं मङ्गल नामा श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं। श्रीराधे श्रीश्याम हैं श्रीराधे श्रीश्याम हैं दिव्य गुणों के धाम स्वरूप श्रीश्याम श्रीराधे हैं ॥१३॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण है कमल नयन श्रीकृष्ण श्रीराधे हैं। श्रीराधे श्रीश्याम है श्रीराधे श्रीश्याम है आनन्द के स्थान स्वरूप श्री श्याम श्रीराधे है ॥१४॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं श्रीराधे श्रीकृष्ण हैं नित्य विहार करने वाले श्रीकृष्ण श्रीराधे है। श्रीराधे श्रीश्याम है श्रीराधे श्रीश्याम है प्राणों के आधार स्वरूप श्रीश्याम श्रीराधे है ॥१५॥ श्रीराधे श्रीकृष्ण है श्रीराधे श्रीकृष्ण है रूप स्वरूप श्रीकृष्ण उजारी राधे हैं। श्रीराधे श्रीश्याम है श्रीराधे श्रीश्याम है और हरि श्रीश्याम प्रिया प्यारी राधे है ॥१६॥

॥ दोहा ॥

श्रवन सुने स्तव सुचित श्री, राधेस्याम सुजान।
मध्यनिसा मन मानिकें, दियौ सबकों सनमान ॥

॥ पद ॥७८॥

रसिकवर दियौ सबकों सनमान।
श्रवननि सुनि निज सुजस सुचित श्रीराधेस्याम सुजान ॥
चले मनोहर मोहन मन्दिर सङ्ग सखी सुखदान।
श्रीहरिप्रिया पौढ़ाय सेज पर करन लगी गुन गान ॥७८॥

श्रीप्रिया प्रीतम ने अपना सुयश सुनकर सब सखियों को सन्मान दिया फिर शयन मन्दिर पधार पौढ़गये।

॥ दोहा ॥

श्रीराधे और सुजान श्रीश्याम सुन्दर ने चित्त देकर अपनी विरदावली सुनी फिर आधी रात जान कर सब सखियों का सन्मान किया।

॥ पद ॥

श्रीराधे और सुजान श्रीश्यामसुन्दर ने चित्त देकर अपने सुजश को अपने कानों से सुना फिर दोनों रसिकवरोंने सब सखियों का सन्मान किया और आप फिर सुखदानी सब सखियों को साथ लेकर मोहन महल में पधारे। इसके पश्चात् श्रीहरि एवं प्रिया तो सेज पर पौढ़ गये और सखियाँ गुण गान करने लगीं।

॥ अनुरागिनि सुष्ठु सुन्दरी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सुख सों सेज बिराजिये, दियें भुजा अँकमाल।
स्यामा जू के लाड़िले, लाड़-लड़ीले लाल ॥

॥ पद ॥७९॥

स्यामा जू के लाड़िले हो लाड़-लड़ीले लाल।
लाड़-लड़ी के लाड़-लड़ीले सोहैं नैंन बिसाल ॥
सुख सों सेज बिराजिये हो दिये भुजा अँकमाल।
मोहन मदन बदन की सोभा निरखत होहिं निहाल ॥

हौं बलि-बलि या रूप पै हो परम अनूप रसाल ।
श्रीहरिप्रिया सुख संपति दंपति सदा बसो मम भाल ॥७९॥

अनुरागिनि सुष्ठु सुन्दरी मध्याभास=राग सोरठ । सुख सम्पति=विहार रूपी सुख धन दौलत । श्रीसखियाँ गुण गान गा रही है ।

॥ दोहा ॥

हे श्रीश्यामाजू के लाड़िले ! हे लाड़ लड़ीले लाल ! अब आप अपनी प्यारी के गलवहियाँ देकर सुख पूर्वक शयन करें ।

॥ पद ॥

हे श्रीश्यामाजू के लाड़िले ! हे लाड़ लाड़िले लाल ! आप लाड़ लड़ी श्रीप्रियाजू के लाड़ लड़ीले हो आप दोनों के आलस्य युक्त विशाल नेत्र कमल कैसे सुन्दर लगते हैं । आप परस्पर गल वहियाँ दिये हुए सुख पूर्वक शय्या पर विराजें । काम देव को मोहन करने वाली इस समय की आपके मुखारविन्द की रूप माधुरी को देख कर मैं निहाल हो रही हूँ । मैं इस परम सुन्दर अनूपम तथा रसीले रूप पर वलिहारी जाऊँ । श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं "रसिक दम्पति का यह नित्य बिहार ही मेरी सुख सम्पति है यह सदा मेरे मस्तक को अलंकृत करता रहे ।" अर्थात् "मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि रसिक दम्पति का यह नित्य विहार ही मेरे भाग्य में सदा लिखा रहे ।।"

॥ दोहा ॥

कहत बिहारीलाल बलि, सुनिय बिहारिनि बैंन ।
अर्द्ध-निसा आई यहै, अब कीजै सुख सैंन ॥

॥ पद ॥८०॥

बिहारनि कीजिये सुख सैंन ।
श्रमित बदन सोहैं मन मोहैं झपकोहैं नीरज नैंन ॥
अलबेली आनन्द की हो आई अधरैंन ।
श्रीहरिप्रिया स्वामिनी हितू सहेलिन की सुख दैंन ॥८०॥

नीरज नैंन=कमलनयन । अधरैन=आधीरात । श्रीलालजू श्रीप्रियाजू से शयन करने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं ।

॥ दोहा ॥

श्रीबिहारीलाल कह रहे हैं हे बिहारिनिजू मैं आपकी बलिहारी जाऊं मेरी बात

सुनिये, अब आधी रात का समय हो गया है अतः सुख पूर्वक शैन कीजिये।

॥ पद ॥

"हे बिहारिनीजू अब सुख पूर्वक शयन कीजिये। आपके श्रमित मुखार बिन्द की शोभा मेरे मन को मोह रही है आपके कमल नयन निद्रावश झपके जा रहे हैं। हे अलवेलीजू अब आनन्द मय आधी रात का समय हो गया है। हे स्वामिनीजू ! आप श्रीहरिप्रिया और श्रीहितु सहचरी जू को सुख प्रदान करने वाली हैं, इन की भी यही अभिलाषा है कि अब आप सुख पूर्वक शयन करें।"

॥ दोहा ॥

तन मन मिलि बिहरत दोऊ, अति उदार सुकुँवार।
मन मोहन मन मोहिनी, भीने रङ्ग अपार॥

॥ पद ॥८१॥

मन मोहन मन मोहिनी जू भीने रङ्ग अपार।
मोहन मंदिर मध्य करें दोऊ सुख सों सुरत बिहार॥
गुण निधि गोरी सेज पर जू सोये (दोउ) सुकुंवार।
मनहु दबी है अचल चंचला घन स्यामल कें भार॥
रसिक रसीली राखे जू लै उरजनि कें आधार।
अधर-सुधारस प्यावति पियकों प्यारी परम उदार॥
तन मन मिलि एकत भये जू बिचि न समावत हार।
निज दासी जहाँ निकट निहारति श्रीहरिप्रिया सुख सार॥८१॥

गुणनिधि गोरी सेज="सर्वतो भद्रनी शय्या" (सिः सुः पदः ३३) सब कोक आदि गुणों की समुद्र स्वरूपा सर्व प्रकार के मङ्गल प्रदान करने वाली समवर्तनी अङ्ग सङ्गनी शय्या सहेली। अचल चंचला=स्थिर रहने वाली विद्युत स्वरूपा श्रीप्रियाजू। उर जनि= वक्षोज। परस्पर गल वहियाँ दिये हुए युगल शयन कर रहे हैं।

॥ दोहा ॥

अति उदार सुकुमार श्रीमन मोहन लालजू और श्रीमन मोहनी जू अपार अनुराग में भीगे हुए तन से तन और मन से मन परस्पर मिलाकर विहार कर रहे हैं।

॥ पद ॥

मन मोहन लाल जू और श्रीमन मोहनी जू अपार अनुराग में भीगे हुए मोहन महल के मध्य जो शयन कुञ्ज हैं वहाँ दोनों सुख पूर्वक सुरत विहार कर रहे हैं। सब कोक आदि गुणों की समुद्र रूपा, सर्वतो भद्रनी नामक शय्या सहेली है उस पर दोनों सुकुमार इस प्रकार सो रहे हैं मानों स्थिर विद्युत घन श्यामल के भार से दब रही हो। हे रसिक रसीली प्रियाजू अपने प्यारे को अपने हृदय से लगाये रखें परम उदार प्यारीजू अपने पिय को अधर सुधा रस पान करा रही हैं। इस समय दोनों के तन से तन मन से मन इस प्रकार मिले हुए हैं कि बीच में हार का अन्तरा पड़ना भी इन्हें नहीं सुहाता है। श्रीहरि एवं प्रिया के सुख के सार स्वरूप इस रति विहार को इनकी निज दासियाँ निकट से देख रही हैं।

॥ दोहा ॥

अलक-लड़ैती लाड़िली, अलक लड़ौ सुकुँवार।
अलक लड़ो मोहन महल, अलक-लड़ोइ बिहार॥

॥ पद ॥८२॥

बिहारिनि अलक-लड़ैती हो अलक-लड़ौ सुकुँवार।
अलक-लड़े मोहन मंदिर में अलक-लड़ोइ बिहार॥
अलक-लड़ी उरझनि दोउन की अलक-लड़ोई प्यार।
अलक-लड़ी(श्री)हरिप्रिया निहारति अलक-लड़ौ सुखसार॥८२॥

अलक=अल्+क=योग्य होने का हर्ष होना। सखियाँ रसिक दम्पति के गुण गान करती हुई कह रही हैं लाड़ करने के योग्य तो ये युगल ही हैं।

॥ दोहा ॥

लाड़ करने के योग्य श्रीलड़ेती जू हैं या इनके प्यारे लाड़िले सुकुमार हैं इनके लाड़ से ही हर्ष होता है। या यह मोहन महल या इन दोनों का विहार ही लाड़ करने योग्य है।

॥ पद ॥

लाड़ करने के योग्य श्रीविहारनि हैं, या इनके प्यारे सुकुमार हैं। जहाँ ये युगल निवास करते हैं मोहन—महल वह लाड़ करने योग्य है और इनका विहार भी लाड़ करने योग्य है। इन दोनों की परस्पर उरझन और इन का प्यार भी लाड़ करने योग्य है। इन

दोनों का सुख सार रूप विहार को श्रीहरिप्रिया सखी जी अहर्निशि देखती रहती हैं यह भी लाड़ करने योग्य हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया प्रिया जु हरि, हिलिमिलि हियें सभीर।
रहो सदा सुखनिधि सनें, सुरत समर रणधीर॥

॥ पद ॥८३॥

कुँवर दोऊ सुरत समर रनधीर।
गुन-मंदिर सुन्दर-बर दोऊ बिहरत कुंज-कुटीर॥
सुख सागर नागर नागरि नव नित्य उजागर अमृतसीर।
श्रीहरिप्रिया प्रिया हरि हिय में हिलिमिलि रहो सभीर॥८३॥

सभीर="अङ्ग संगनी" "अन्तरंगनी" तथा "समवर्तनी" सखियों की भीर समूह साथ लेकर अथवा—सभीर=सहभीरु=लज्जायुक्ता श्रीप्रिया जू के साथ। गुण मन्दिर= कोक कला आदि सब गुणों के स्थान स्वरूप अमृतसीर=अमृतक्षीर=अमृत का भी सार स्वरूप रस ग्रन्थकार ने जो सिद्धान्त प्रारम्भ में "राधा कृष्ण स्वरूपां वै कृष्णं राधा स्वरूपिणम्" मध्य में"कृष्ण रूप श्रीराधिका राधे रूपा श्याम। दर्शन को ये दोय हैं हैं एक ही सुखधाम।" उसी को अन्त में प्रतिपादन करते हुए आप यहाँ कह रहे हैं "श्रीहरिप्रिया प्रिया जू हरि हिल मिल हियें सभीर।" "रहो सदा सुखनिधि सने सुरत समर रनधीर अर्थात् सखियाँ प्रार्थना कर रही है ये दोनों इसी प्रकार से हिल मिलकर रति विलास सुख विलसते रहैं।

॥ दोहा ॥

ये दोनों सुख के सागर स्वरूप और सुरत समर के रणधीर योद्धा श्रीहरि एवं प्रिया और श्रीप्रिया एवं हरि अपनी अपनी अङ्ग सङ्गनी सखियों को साथ लेकर परस्पर हिल मिलकर हृदय से हृदय लगाकर इसी प्रकार से रति विलास सुख विलसते रहें। हम एक मात्र यही चाहती हैं।

॥ पद ॥

कोक कला आदि गुणों के आधार स्वरूप, ये दोनों सुन्दर वर कुँवर, सुरत समर के रणधीर योद्धा इसी प्रकार से निकुञ्ज कुटी का विहार विलसते हैं। आप दोनों सुख के सागर स्वरूप नागर नागरी की विलसन से अमृत का भी सार स्वरूप रस का प्रकाश

होता है। श्रीहरि एवं प्रिया और श्रीप्रिया एवं हरि अपनी अपनी अङ्ग सङ्गनी सखियों की भीर साथ लेकर दोनों परस्पर हिल मिलकर एक होकर इसी प्रकार से हमारे हृदयों में सदा निवास करते रहैं। हम एक मात्र यही चाहती हैं।

॥ दोहा ॥

सुख फूली आनन्द लता, सरस महमही प्रेम।
रसिक सहेलिन कें सदा, रस बरषहिं नित नेम ॥

॥ पद ॥८४॥

रसिक सहेलिन के रस बरषे। आनन्द लता हिये मधि हरषे ॥
सखी सहचरी फूली तन में। सरस सुंदरी महमहि मन में ॥१॥
प्रेम मञ्जरी परम सुहाई। मन मोहनी महा मन भाई ॥२॥
कनक-तनी रति बनी जोबनी। चिमतकारिनी सुभ सुदर्सनी ॥३॥
एक एक तें अति अलबेली। लाड़भरी गुन गरब गहेली ॥४॥
एक बरन तन बैस किसोरी। एक रूप रस मांहि झकोरी ॥५॥
झमकि झमकि टहलें अनुसरहीं। जो जो श्रीहरिप्रिया आज्ञा करहीं ॥६॥

महमही=मह+मही=उत्सव+सम्मानित। अर्थात् प्रेम के सरस उत्सव से सम्मानित सखियाँ। कनक तनी=स्वर्ण सरीखे देह वाली। रतिवनी=काम देव की स्त्री रति से भी सुन्दर। जोवनी=किशोर अवस्था प्राप्त। शुभ दर्शनी=जिनके दर्शन से मङ्गल होता है। गुण गरब गहेली=कोक कला आदि गुणों के अभिमान को गम्भीरता पूर्वक ग्रहण करने वाली। कलकण्ठी नववासा=सखियों के नाम हैं। पहियाँ=पास। सूचित= सङ्केत से बतलाया हुआ। शुचि तन=साक्षात् शृङ्गार रस मूर्तिविग्रह। पति=सङ्गीत में स्थाई भाव। मङ्गल विमली=एक खेल का नाम। मङ्गल प्रद निर्मल जिसमें कोई सकाम वासना न हो। श्रीप्रिया प्रीतम के वस्त्र आभूषण आदि स्वरूपा अङ्ग-सँगिनी तो आप के साथ हर समय रहकर आपके रति विलास सुख का आनन्द अनुभव करती रहती हैं अब ग्रन्थकार सखी, सहेली, सहचरी, सुन्दरी और मञ्जरी आदि सखियों पर रतिविहार आनन्द का क्या प्रभाव पड़ता है उसको अङ्कित करते हुए कहते हैं' ?-

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति के सरस प्रेम के उत्सव से सम्मानित होकर सखियों के हृदयों की आनन्द लताएें सुख रूपी फल फुलों से फली। हम यह प्रार्थना करती हैं कि इसी प्रकार

से यह रस इन रसिक सहेलियों पर नित्य नियम से सदा वर्षता रहे।

॥ पद ॥

सुरति केलि जन्य रस की वर्षा से रसिक सहेलियाँ हृदयों में हर्षित हुईं इनकी आनन्द लताऐं बढ़ीं। सखीं और सहचरियाँ फूली तन में नहीं समाती हैं। इस प्रेम उत्सव से सरस सुन्दरी सखियाँ सम्मानित होकर अपने मनों में गाती नही हैं। और मन मोहनी श्रीलड़ैंती जू की महा मन भाई ये प्रेम मञ्जरी सखियाँ इस रस वर्षा में भीगी हुई परम सुहाई लगती हैं ॥१॥२॥३॥ उपरोक्त सब सखियाँ स्वर्ण सरीखे विग्रहों वाली, साक्षात रति से भी सुन्दर किशोर अवस्था प्राप्त, चमत्कृत रूपवाली तथा मङ्गल स्वरूपा हैं ॥४॥ इनमें से एक से एक अधिक नुकीलापन लिये हुए रसिक दम्पति से लाड़ लड़ाई हुई और कोक कला आदि गुणों के अभिमान को गम्भीरता पूर्वक ग्रहण करने वाली हैं ॥५॥ इन सब का एक सरीखा वर्ण, समवयस तथा किशोर अवस्था है। ऐसा प्रतीत होता है मानों ये सबएक ही रूप रस में झकोर के निकाली गई हों ॥६॥ ये सखियाँ श्रीहरि एवं प्रिया की आज्ञा के अनुसार चाय में भरी हुई रमक झमक चलती हुई रात दिन इनकी टहल में लगी रहती हैं ॥७॥

श्रीरङ्गदेवी के जुथ महियां। कलकण्ठी नवबासा पहियां ॥७॥
मङ्गल आरति सैन प्रजंता। जुगल चन्द्र की केलि अनन्ता ॥८॥
सुचित सुचीतन रङ्ग बढ़ावें। रङ्ग रँगीली के मन भावें ॥९॥
रङ्ग रली के रङ्ग रचावें। मङ्गल विमली खेल मचावें ॥१०॥
चरन चरन पर परन एक गति। कर पर करतारनि की जति अति ॥११॥
मगन भई तन सुधि न संभारें। आनन्द सिंधु बढ़्यौ जु अपारें ॥१२॥
यह सुख मुख कछु कहत न आवै। बिन श्रीहितू कृपा को पावं ॥१३॥
श्रीहरिप्रिया सकल सुख सार। लाल-लाड़िली नित्य बिहार ॥१४॥८४॥

श्रीरङ्गदेवीजी के यूथ में कलकण्ठी नववासा आदि सखियाँ हैं जो इनके पास रह कर मङ्गल आरती से शयन पर्यन्त युगल चन्द्र की अनन्त केलियों का समाधान करती रहती हैं। ये सखियाँ साक्षात् शृङ्गार मूर्ति स्वरूप रसिक दम्पति के रति विलास के रङ्ग को अपने सङ्केतों द्वारा बढ़ाती रहती हैं। ऐसा देखकर रङ्ग रङ्गीली श्रीरङ्गदेवीजी को ये सखियाँ बहुत अच्छी लगती हैं ॥८॥९॥१०॥

कभी कभी ये सखियाँ मङ्गल विमली नामक खेल रचाती हैं। जिसके द्वारा अनुराग

रङ्ग में रङ्गी हुई सखियों के भी रङ्ग रच जाता है। इस खेल में ये सब सखियाँ नृत्य करती करती अपने चरणों को एक साथ ठुमक कर रखती हैं और संगीत के स्थाई भाव पर एक साथ अपने हाथों से तालियाँ बजा बजा कर तान देती हैं ॥११॥१२॥ एवं प्रकार से यह खेल खेलती हुई सब सखियाँ मगन होकर, अपने तन की सुध बुध भूल जाती है। इस प्रकार से यह आनन्द सिन्धु इतना अपार बढ़ गया जो एक मुखसे कहा नहीं जा सकता है। यह सुख बिना श्रीहितु सखी की कृपा के कौन पा सकता है? यह लाल लाड़िली का नित्य विहार श्रीहरि प्रिया सखी के सब सुखों का सार स्वरूप है ॥१३॥१४॥१५॥

॥ दोहा ॥

रसिक रङ्ग रेली सबै, रसिक सहेली गाय।
आवैं निज निज कुंज में, लालैं लाड़-लड़ाय॥
इहि बिधि सेवा-सुख समै, मङ्गल सैन प्रज्यंत।
ध्यावै सो पावै सदा, परम तंत को तंत॥

॥ कुण्डलिया ॥

हीनश्रद्ध नास्तिक हरि-धर्म बहिमुंख होइ।
जिनसों यह जस महारस कहौ सुनौ जिनि कोइ॥
कहो सुनौ जिनि कोइ बिना इक अनंनि उपासिक।
ताहू में यह भाव सखी वृन्दावन वासिक॥
श्रीहरिप्रिया पद पद्म को मन मधुकर जिहिं कीन।
सोई सब तें श्रेष्ठ है और सबै जग हीन॥

परम तत्व=श्रीप्रिया प्रीतम। तन्त=सारांश। हरि धर्म=वैष्णव धर्म। महारस=गुह्य शृङ्गार रस। लाल लड़ैती जू को लड़ाकर सब सखियाँ अपनी अपनी कुञ्जों में जाकर विश्राम करती हैं। ग्रन्थकार समाप्ति में इस ग्रन्थ के कहने सुनने वाले अधिकारी का निर्णय करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥१॥२॥

रसिक और रसिकिनी के अनुराग से रञ्जित सब रसिकिनी सहेलियाँ इस प्रकार से गाय वजाय कर लाल लड़ैतीजू को लड़ायकर अपनी अपनी कुञ्जों में विश्राम करने के लिये पधारीं।

इस प्रकार से यह "सेवा सुख" जिसमें मंगला से लेकर शयन पर्यन्त की सेवाबिधि का वर्णन है समाप्त हुआ। जो कोई इसका श्रद्धा पूर्वक सदा ध्यान करेंगे वे परम तत्व अर्थात् श्रीप्रिया प्रीतम के तन्त अर्थात् इनका सारांश सुख श्रीनित्यबिहार सुख को प्राप्त करेंगे।

।। कुण्डलिया ।।

जो कोई हीन श्रद्धा, नास्तिक अथवा वैष्णव धर्म से वहिर्मुखी हों उनसे "सेवा सुख" रूपी यह जस जिसमें गूह्य शृङ्गार रस का वर्णन है कोई भी मत कहो सुनो। रसिकदम्पति का यह "सेवा सुख" एक मात्र अनन्य उपासिक से ही कहना सुनना चाहिये। वह भी सखीभाव से उपासना करने वाला तथा श्रीवृन्दावन निवास करने वाला हो। उपरोक्त अधिकारियों में से जिसने अपने मन को श्रीहरि एवं प्रिया के चरण कमलों का मधुकर बना दिया है वही साधक सबसे श्रेष्ठ है और जगत के सब साधक उससे हीन हैं।

।। दोहा ।।

षट अरु तीस श्लोक सुनि, अरु पुनि दोहा पांच।
चौरासी आभास जुत, पद द्वै दोहा सांच।।
इक कुण्डलिया ए सबै, अट्ठाइस सत एक।
अब अनुरागिनि प्रतिजु पद, कहत सु बरनि विवेक।।

।। कवित्त ।।

च्यारि सुभरवा माँहि दोय दिवि गन्धा में कहि।
रत्नकला में तीन विश्व-आभा द्वादश चहि।।
नव बिलास आवली सप्त आनन्दा में सुनि।
दस सुरंग अंगाजु गौर मुख्या में षट पुनि।।
षटहु केलि कौमुदी में कर्नकान्ति षट जानिये।
द्वै अलबेली केलि में रहे जु सो उनमानिये।।
विचित्र-सोभा में च्यार एक कंद्रप-कामा में।
खंजनाक्षी षट कहे षटहु सुन्दरि सुष्ठा में।।
चौरासी पद इहि प्रकार सेवा सुख लहिये।
पंद्रह अनुरागिनी माहिं सम्पूरन सहि ये।।

॥ दोहा ॥

अष्टकाल सेवा जु सुख, अहल महल की बात।
कछू अलभि ताहि न रहै, साधहि सो साछ्यात ॥

इति श्रीपद विलास निकुंज रहस्य श्रीमहादिव्य महाराजेश्वर प्रवर परमहंसवंशाचार्य्य श्रीमद्हरिव्यासदेवजू कृता श्रीमहावाणी अष्टकाल सेवासुख संपूर्णम्

ग्रन्थ की समाप्ति में ग्रन्थकार इस "सेवा सुख" की पदों की गणना तथा राग रागिनियों का ब्योरा बतलाते हुए कहते हैं :—

॥ दोहा ॥

इस "सेवा सुख" के प्रारम्भ में ३६ श्लोक हैं फिर ५ दोहे हैं। इसके पश्चात ८४ पद आभास दोहे सहित हैं। समाप्ति में २ दोहे और १ कुण्डलिया हैं। इस प्रकार सब मिलकर १२८ पद हैं। अब कौन कौनसी राग रागिनि में कितने कितने पद हैं इस विषय को वर्णन करते हैं।

॥ कवित्त ॥

४ शुभखा अर्थात् भैरव राग में, २ दिवि गन्धा अर्थात् देव गन्धार में, ३ रत्नकला अर्थात् रामकली में, और १२ विश्वाभा अर्थात् विभास में हैं। ६ विलासावली याने— विलावल में, ७ आनन्दा याने आसावरी, में १० सुरंग अङ्गा याने सारङ्ग में और ६ गौर मुखी याने गौरी राग में हैं। ६ केलि कौमुदी अर्थात् कल्याण में, ६ कर्नकान्ति अर्थात् कान्हरौ में, और २ अलवेली केलि अर्थात् अड़ानों में हैं। ४ विचित्र शोभा याने विहागरौ में, १ कन्दर्प कामा याने केदारौ में, ६ खजनाक्षी याने खम्माच में और ६ सुन्दरी सुष्टा अर्थात् सोरठ राग में हैं। इस प्रकार से १५ प्रकार की राग रागिनियों "सेवासुख" में कुल पदों की संख्या ८४ है।

॥ दोहा ॥

इस ग्रन्थ की फल स्तुति वर्णन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं: —

"इस अष्टकालीन सेवा सुख में अहल महल अर्थात् महल में बसने वाले श्रीप्रिया प्रीतम तथा सखी गणों की सब बातों का विवर्ण है। इसको निरन्तर सेवन करने से मोहन महल सम्बन्धी कोई बात अलभ्य नहीं रहेगी। और श्रद्धापूर्वक इसकी साधना करने से श्रीरसिक दम्पति के नित्य बिहार के साक्षात् दर्शन हो जावेंगे।"

इति श्रीपद विलास निकुञ्ज रहस्य श्रमहादिव्य महा राजेश्वर प्रवर परम हंस वंशाचार्य श्रीमद् श्रीहरिव्यासदेव जू कृत-श्रीमहावाणी अष्टकाल सेवा सुख का सरल हिन्दी अनुवाद सम्पूर्णम् ॥

उत्साह सुख



देवेन्द्र-मौलि-मन्दार मकरन्द-कणारुणाः ।
विघ्नं हरन्तु श्रीराधा-कृष्ण-पादाब्जरेणवः ॥

॥ दोहा ॥

जय जय श्रीहितु सहचरी भरी प्रेम-रस-रङ्ग ।
प्यारी प्रीतम के सदा रहति जु अनुदिन सङ्ग ॥
तिनकी कृपा मनाय कृति नैंमित कहौं बनाय ।
महाबाणी उत्साहसुख दम्पतिकौं सुखदाय ॥

॥ अनुरागिनि वैजयन्ती मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सुरत रङ्ग न्हानादि लै अरु आरति परजंत ।
भली भाँति पूज्यौ मृगज नैंनि मनोहर कंत ॥

॥ पद (बसन्त)॥

आज भली भाँति पूज्यौ बसन्त । मिलि मृगनैंनी मनहरन कंत ॥
अन्हवाये सचि सुचि सुरत रंग । अंचर अनुराग अँगोछि अंग ॥
प्रेमाम्बर सुन्दर अति रसाल । पहिराये रङ्गरँगीली बाल ॥
आलिंगन अभरन तन सजाय । चरच्यो चन्दन चुंबन सुहाय ॥
सुख आसन ऊपरि करि सँजोग । भुगताये बहु बिधि भाव भोग ॥
अँचवायो अधरसुधा अमोल । मुख बीरी दीनी कल कपोल ॥
तिरछी चितवनि आरति उतारि । बलि गई(श्री)हरिप्रिया छबि निहारि ॥

कोष में वसन्त को "मदन महा महोत्सव", "ऋतु राज" तथा "कुसुमाकर" आदि नामों से कहा गया है । ग्रन्थकार के शब्दों में "जा मध्य सौरभ सकल लसन्त । ताकी संज्ञा कही वसन्त ।" (तालिका) रसिक महानुभावों ने अपनी अपनी मान्यताओं के

अनुसार वसन्त के अर्थ किये हैं तथा लीलाएँ वर्णन की हैं। किसी किसी ने श्रीप्रिया प्रीतम को ही मूर्तिमान वसन्त कहा है यथा—"देखौ प्यारी कुञ्जविहारी मूर्तिमान वसन्त।" "तेरी नव तरुणता नव वसन्त।" इत्यादि (श्रीगदाधरजी भट) परन्तु श्रीमहावाणी कार अगले पद में कहेंगे "दोउन में नीकौ वसन्त वन्यौ।" अर्थात् दोनों के दिव्य मंगल विग्रहों में तत् तत् सुखी भाव की परस्पर अभिलाषा मयी जो सुगन्ध की लपटें उठती हैं ग्रन्थकार के मत में उन्हीं लीलाओं को वसन्त कहते हैं। अर्थात् साक्षात् सम्भोग से पहिले दोनों के अङ्ग प्रत्यंगों से एक दूसरे को सुखी करने के लिये उत्कण्ठा रूपी जो सौरभ उठती है उसी को वसन्त कहते हैं। अब पद के अर्थ को देखिये।

मृग नैनी=श्रीप्रियाजू। सचि=यथार्थ। शुचि=शृङ्गार रस। अन्हवाये सचि सुचि सुरत रङ्ग=श्रीरघुनाथ दास जी गोस्वामी कृत "प्रेमाम्बुज—मरन्द मधु स्तव राज" ग्रन्थ में वर्णित है:—"कारुण्यामृत वीचिभिः तारुण्यामृत धारया। लावण्यामृत वन्याभिः स्नापितां ग्लोपितेन्दिराम्॥" "लक्ष्मी जी को पराजय करने वाली श्रीप्रियाजू ने अपने प्यारे को कारुण्यामृत की तरङ्गों, तारुण्या-मृत की धाराओं और लावण्यामृत की बाढ़ों से स्नान कराया।" इसी प्रकार यहाँ भी तत्पर्य है अर्थात् प्यारीजू ने अपने प्यारे को यथार्थ शृङ्गार रस रूपी अपने कारुण्यामृत, तारुण्यामृत तथा लावण्यामृत रूपी सुरत रङ्ग से स्नान कराया।

सुखासन=८४ आसनों में से एक का नाम। अनुराग="सदानुभूतमपियः कुर्वन्नव नवं प्रियम्। रागो भवन्नव नवः सो अनुराग इतीर्यते॥" (उज्जवलनीलमणि)

राग की उस गाढ़ अवस्था को अनुराग कहते हैं जिसमें प्रिय पास रहने से भी क्षण क्षण में नवीन दीखते हैं।

प्रेम="सम्यङ मसृणित स्यान्तो ममत्वातिशयाङ्कित" इत्यादि (भः रः सि)

चित्त का पूर्णतया ममता से पिघल जाना प्रेम कहलाता है। श्रीप्रिया जू अपने प्यारे का प्रोढ़ानुराग उत्सवों से वसन्त पूजन करती हैं। यथाः "या वा राधयति प्रियं ब्रज मणिं प्रौढ़ानुरागोत्सवै।" (राः सुः निः श्लोक ६७)

॥ दोहा ॥

आज मृग नैनी श्रीप्रियाजूने अपने प्यारे मनोहर कन्त को अपने कारुण्यामृत, तारुण्यामृत तथा लावण्यामृत आदि सुरत समुद्र के रङ्ग में इस प्रकार निमग्न किया है मानों उन्होंने स्नान से लेकर आरती पर्यन्त उनका भली भान्ति से वसन्त पूजन किया है।

॥ पद ॥

आज मृग नैनी श्रीप्रियाजू ने मन को हरन करने वाले अपने प्यारे से मिलकर उनका भली भान्ति से वसन्त पूजन किया है। सर्व प्रथम उन्होंने अपने प्यारे को यथार्थ श्रृङ्गार रस के सुरत रङ्ग में स्नान कराया, अर्थात् प्यारीजू ने अपनी करुणामृत की तरंगों, तारुण्यामृत की धाराओं तथा लावण्यामृत की बाढ़ों से अपने प्यारे को नहलाया। फिर अनुराग रूपी वस्त्र से उनके अंगों को अँगोछा अर्थात् अनुराग भरी दृष्टि से उनको इस प्रकार से देखा जिससे प्यारे क्षण प्रतिक्षण में उनको नवीन रूप माधुरी वाले दीखने लगे। इसके पश्चात् रङ्ग रङ्गीली वाल श्रीलड़ैतीजू ने अति रसीले सुन्दर सुन्दर प्रेम रूपी वस्त्र उनको पहनाये अर्थात् स्वामिनी जू प्रेम के अनुभावों वश स्वयं विपुल पुलकायित हो गईं, और एवं प्रकार से अपने प्यारे को भी प्रेम के अनुभावों से विभूषित किया। फिर प्रेम से अपने हृदय से लगाकर उनका गाढ़ आलिङ्गन नहीं किया, मानों उन्होंने आलिङ्गन रूपी आभरणों से अपने प्यारे को सजाया है। अब उनका उद्भट चुम्बन करके उनके सर्वांगों में चन्दन लेपन किया। इसके पश्चात अपने प्यारे को सुखासन से विराजमान करा कर रति सम्बन्धी सब भोगों को भुगवाया। फिर अधर सुधारूपी अमूल्य जल अचवाया। और कल कपोल रूपी वीरी खवाई। समाप्ति में अपनी तिरछी चितवनि द्वारा अपने प्यारे की आरती की। उपरोक्त छबि को देख देख कर श्रीहरि प्रियाजू बार बार वलिहारी जाती हैं।

॥ दोहा ॥

रसिक रसिकनी सेज पर विविध हेज बिलसंत।
फलदलादि सौरभ सने बिबि तन बने बसन्त॥

॥ पद राग वसंत ॥

दोउन में नीको बसन्त बन्यौ। बसन्त बन्यौ रतिरङ्ग सन्यौ॥
रसरसिक रवन रसिकनी सेज—पर विलसत विविध विहार हेज॥
रहि अंगमाधुरी झूमि झूमि। चित्रित कीनी मुख चूमि चूमि॥
सौंदर्यताय सौरभ सुभाय। रहे अलिआलिन लोचन लुभाय।
बनि जंघ जुगल रंभा अनूप। फल लगे रहत नित सहज रूप॥
ह्वै निपट नवल नागर निसंक। लइ ललित लड़ीली लाय लंक॥
उर उमगि उमगि अनुरागबेलि। सींची सुहाग अमृत सहेलि॥

परसत कपोल मरसत उरोज। बलबलक बोल बाढ़त मनोज ॥
जय(श्री)हरिप्रिया हितु हिय में फूल। नित उरसि बसौ आनन्दमूल ॥२॥

फलदलादि="श्रीफल कोक कलश कुच शोभा।" (तालिका) दल="चल दल उदर अनुपम औभा" (तालिका) आपके अङ्ग प्रत्यँगों से तात्पर्य है। सौरभ=सुगन्ध। विवि=दोनों। हेज=वह प्रेम, जिसमें अपने प्रेमी को सुख प्रदान करने के लिये व्याकुलता है। अलि=भौरियाँ। आलिन=सखियाँ। रंभा=कदली। लंक=हृदय। सहेलि=श्रीप्रियाजी वल बलक बोल="आहनाह मधुर वलकें" (से: सु:) अर्थात् विहार आनन्द से उत्थित अव्यक्त शब्द। मनोज=दिव्य काम इस पद से ग्रन्थकार अपनी मान्यता के अनुसार वसन्त का स्वरूप निर्धारित करते है: "जामध्य सौरभ सकल लसन्त। ताको संज्ञा कही वसन्त।" तालिका।

॥ दोहा ॥

रसिक श्रीलालजू रसिकिनी श्रीप्रियाजू सेज पर विराजमान होकर विविध प्रकार की विलास मय केलियों को हेज में भरे हुए विलस रहे हैं। श्रीप्रियाजूके वक्षोज उदर आदि से अपने प्यारे को सुख प्रदान करने के लिये और श्रीलालजू के अङ्ग प्रत्यंगों से अपनी प्यारी को सुख पोंहचाने के लिये अभिलाषा मयी परिमल की लपटें उठ रही हैं। एवं प्रकार से दोनों के अङ्ग वसन्त रूप हो रहे हैं।

॥ पद ॥

दोनों के अँगों से रति रंग में सनी हुई अभिलाषा मई तरङ्गे उठ रही है। अतः दोनों में बहुत ही सुन्दर वसन्त बना हुआ है। रसिक और रसिकिनी रस में रसायित होकर सेज पर विविध प्रकार के बिहार को हेज युक्त विलस रहे हैं। दोनों के अङ्गों से माधुरी की बोछारें झूम झूम कर निर्झर हो रही हैं जिनको मानों रसिक दम्पति ने परस्पर मुख चूम चूम कर चित्रित कर दी है। सुन्दरता रूपी सौरभ की लपटें उठ रही हैं जिस पर सखियों के लोचन रूपी भौरियाँ मँडरा रही हैं। प्यारीजू की कदली सरीखे अनुपम युगल जंघाएँ जिनपर सहज सौन्दर्य रूपी फल लगे हुए हैं ज्योंही प्यारे ने देखीं त्योंही नवल नागरने निपट निशंक भाव से ललित लड़ीलीजू को अपने हृदय से लगा लिया। फिर उमँग उमंग कर, उन्होंने अपनी अनुराग की वेली सौभाग्यवती सहेली प्यारीजू को अधरामृत से सींचन की। लाड़से कपोलों को स्पर्श करके वक्षोजों को मरसत किया। जिस आनन्द से ज्यों ज्यों "आह नाह" आदि अव्यक्त शब्द होते हैं, त्यों त्यों दिव्य काम बढ़ता जा रहा

है। उपरोक्त विलास देखकर श्रीहरि प्रियाजू तथा हितु सहचरीजी फूली नहीं समाती हैं और यह प्रार्थना करती हैं कि आनन्द का मूल रूपी यह छवि सदा हमारे हृदयों में ऐसे ही विराजमान रहे।

॥ दोहा ॥

श्रीराधा रसरूपिनी सनी रूप गुन भार।
लिये सङ्ग अङ्ग सङ्गिनी विहरें विपिन बिहार॥

॥ पद ॥३॥

विहरें श्रीराधे वन बिहार। अति भरी सरस गुन रूप भार॥
आनंद उमगि अङ्ग सङ्ग सैन। चित चिमत्कार मन मथत मैन॥
मधुराकृत कुण्डल कल कपोल। रस देत लेत प्रतिछिन अतोल॥
रति बनी जोबनी तनी हेम। सुख सनी मोहनी परम प्रेम॥
कल कुंजनि कुंजनि कमल केलि। मिलि सचु पायो रतिरंग रेलि॥
लहलही ललित कुल लता लूमि। मृदुमंजु मनोहर झिली झूमि॥
बरबरन बरन सम सुमन झौंर। मकरन्द संद मति भ्रमत भौंर॥
मुद मदन मान मर्दन महीप। करि लीनो अपनो सुबस दीप॥
जय जय श्रीहरिप्रिया ह्वै निसंक। लड़लड़ी लाड़ लड़लड़े लंक॥

श्रीराधा रस रूपिनी=रस अर्थात् श्रीलालजू के स्थानापन्ना श्रीप्रियाजी। गुन=कोक कला सम्बन्धी गुण। अङ्ग सङ्गनी=श्रीप्रियाजू के वस्त्र आभूषणादि स्वरूपा सखियाँ। विपिन विहार="तन वृन्दावन जग मगै" (तालिका) अङ्ग सङ्ग विहार। सैन=सैना। मैन=कामदेव। कल=सुन्दर अतोल=अपरिमित। तनीहेम=स्वर्णवर्णा। सचुपायो=सुख पूर्वक आस्वादन कियो। लहलहो=फल फूलों से लदी हुई। कुल=समूह। लूमि झुकी हुई। मृदु=कोमल मञ्जु=सुन्दर। झलि झूमि=झिलमिलाती हुई। समसुमन झोर=एक समान फूलों के गुच्छे। यहाँ अङ्ग प्रत्यंगों से तात्पर्य है। सन्द=एकीकरण। मुदि=प्रसन्न होना। मदन=कामदेव। महीप=राजा दीप=द्वीप=टापू=देश। यहाँ मङ्गल विग्रह से तात्पर्य है विपरीत रति विलास का वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीराधा रस रूपिनी अर्थात् श्रीप्रियाजू अपने प्यारे के अनुरूप कोक कला सम्बन्धी

सब गुणों के भार से सम्पन्न होकर अपने वस्त्र आभूषणादि स्वरूपा अपनी अङ्ग सङ्गिनी सखियों को साथ लेकर अपने प्यारे के साथ विपरीत रति बिलास विहार में प्रवृत्त होती हैं।

॥ पद ॥

श्रीप्रियाजू अपने प्यारें के दिव्य मङ्गल विग्रह रूपी वन में विहार कर रही हैं। यह इस समय इन्हीं सरीखे रस, कोक कला सम्बन्धी गुणों तथा रूप के भार से सम्पन्ना हैं। इनके अङ्ग प्रत्यङ्गों से आनन्द और उमङ्ग की सेनाऐं इतनी घुमड़ रही हैं जिनको देखकर काम देव का चित्त चमत्कृत और मन मथित हो गया है। प्यारी जू अपने कल कपोलों को अपने प्यारे के मकराकृत कुण्डलों सहित कपोलों से (कपोल) मिलाकर अतुलनीय रस का आदान प्रदान कर रही हैं। नव यौवनी, स्वर्ण तनी श्रीप्रियाजू जो अपने प्यारे के सुख में सनी हुई, उनके मन को मोहन करने वाली तथा परम प्रेम रूपा है, इस समय अपने प्यारे के उपभोग्य के लिये साक्षात् "रति" रूप धारण किये हुए हैं। यह इनके अँग प्रत्यंगों रूपी सुन्दर कुञ्जों में विविध प्रकार की केलियाँ करती हुईं अपने प्यारे के साथ रति रङ्ग विलास का आस्वादन कमल निकुञ्ज में करती हैं। (कमल-निकुञ्ज से रहस्य लीला तात्पर्य है) उसका वर्णन करते हैं, रूप यौवन आदि फल फूलों के भार से झुकी हुई लता स्वरूपा प्यारी जू अपने प्यारे का लूम झूम कर गाढ़ आलिङ्गन किये हैं। यद्यपि आपका दिव्य मंगलविग्रह अत्यन्त मृदु,मञ्जु तथा मनोहर है तो भी आप लाल के झूमि झूमि कर नृत्य को झेल रही हैं। प्यारीजू के अंग प्रत्यंगों में रतिविलास उपयोगी एक समान वर्ण वर्ण के फूलों के गुच्छे महक रहे हैं जिनकी सुगन्ध से लाल रूपी भौंरे की मति यह निश्चय नहीं कर पाती कि इस गुच्छे की सुगन्ध ले या उसकी, अतः किं कर्तव्य-विमूढ़ होकर इनकी मति भ्रम में पड़ जाती है। इस प्रकार लड़ेतीजू ने उन मही पति लाल को जो मादन के मान को मर्दन करके प्रसन्न हो रहे थे जीत लिया और उनके देह रूपी देश को अपने वश में कर लिया। श्रीहरि की प्रिया उन लड़ैती जू की सदा जय हो जिन्होंने निशंक भाव से हारे हुए एवं संकोच में दवे हुए अपने प्यारे को हृदय से लगा रखा है ॥

॥ दोहा ॥

कमल केलि मिलि करत दोउ बिन ब्रीडा बिबि लाल।
सचकित सखियन के भये निरखि नैंन छबि जाल ॥

॥ पद ॥४॥

दोउ लाल करत मिलि कमल केलि। दुरि ओरें कोरें देखति सहेलि ॥

सु रसा रसाल अद्भुत अनूप। जहँ रच्यौ रङ्ग रति रवन रूप ॥
अहलाद सहित आनन्द उदार। व्रीडहिं तजि क्रीडहिं बिबि बिहार ॥
मचि मार परस्पर दुहूँ ओर। जोबन सजोर नागर किसोर ॥
अँग-अंग उपटि छबि देत ऐन। मुख हो हो हो हो बदत बैन ॥
घुमड़ाय रह्यौ सौरभ समूह। सचकित भये लोचन लखि कुतूह ॥
बलि(श्री)हरिप्रिया मधुलिह मदंध। मँडराय रहे गहराय गन्ध ॥४॥

कमल केलि="निज तन सुभग रतनमणि कहिये। कमल निकुञ्ज कमल हूँ लहिये।" (तालिका) रति विलास की गुह्य लीला से तात्पर्य है। दुरि औरे कोर=इधर उधर जालियों में से छिपकर। सुरसा=सु+रसा=सुन्दर पृथ्वी=यहाँ श्रीप्रियाजू के दिव्य मंगल विग्रह से तात्पर्य है। रवन रूप=रमण रूप श्रीलालजू। अह्लाद=श्रीप्रियाजू। आनन्द=लालजू उपटि=चिह्नित होना। मधुलहि=भौरे। मद्ध सौरभ रूपी मद से अन्धे होकर मँड़राय रहे हैं। अैन=अयन=स्थान हूवहू। गहराय गन्ध=अधिक गन्ध से पद न० ३ में कमल केलि का वर्णन समाप्त नहीं हो सका था उसी विषय को फिर वर्णन करते हैं। वहाँ विपरीत रति विलास का वर्णन किया गया था यहाँ सुखासन विलास का वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति व्रीड़ा छोड़कर परस्पर मिलकर इस प्रकार से कमल केलि अर्थात् रहस्य रति विलास कर रहे हैं जिस छवि जाल को देखकर सखियों के नैन चकित हो गये हैं।

॥ पद ॥

दोनों लाल लड़ेतीजू परस्पर मिलकर कलम केलि अर्थात् रहस्य रतिविलास केलि कर रहे हैं। सखियाँ इधर उधर छिपकर जालियों में से देख रही हैं। आज का विहार श्रीप्रियाजू के अद्भुत अनूपम रसाल दिव्य मंगल विग्रह पर हो रहा है। जहाँ इनके अनुरूप रमण इनके प्यारे ने रति रङ्ग विलास रचा है। (यहाँ ग्रन्थकार सावधान करते हुए कहते हैं रसिक दम्पति का विलास प्राकृतिक केलि नहीं है।) अपितु साक्षात् आनन्द रूप श्रीलालजू अपनी अह्लादिनी शक्ति से व्रीड़ा त्याग कर बिहार कर रहे हैं। दोनों नागर किशोर यौवन के जोर में भर कर परस्पर दोनों ओर से मार मचा रहे हैं। गाढ़ आलिंगन से दोनों के अँग प्रत्यँग चिन्हित हो गये हैं और तत् तत् स्थान सुन्दर छवि दे

रहे हैं। आनन्द में भीगे हुए दोनों के मुखार विन्दों से अहो-अहो शब्द निकल रहे हैं। उभय संगम से सुगन्ध की गहरी लपटें उठ रही हैं। सखियों के लोचन यह कोतूहल देख कर एकदम सचकित हो गये हैं। श्रीहरि—प्रिया सखीजी बार बार वलिहारी जाती हैं। उभय संगम की गहरी गन्ध से भौरों के झुंड के झुंड मदान्ध होकर मंडरा रहे हैं।

॥ दोहा ॥

मृदुमूरति मनभांवते करत कुंज कलकेलि।
चलि हो सहचरि छबि जहाँ अवलोकें अलबेलि ॥

॥ पद ॥५॥

चलि चलि हो अलि अवलोकें जाय। जहाँ रमत रसिक रसभरे भाय ॥
वृन्दावन जमुना कुंज केलि। दोउ विलसहिं नागर नव नवेलि ॥
कछु कही जात नहीं बात बैन। सुख देखत ही बनि आत नैन ॥१॥
मृदु मूरति मनभव नवकिसोर। अङ्ग अङ्ग उठें छबि की हिलोर ॥
इक पहलेंही रगमगे रङ्ग। पुनि आनि पर्यो होरी प्रसंग ॥२॥
अलबेलि प्रिया अलबेलौ लाल। अलबेली सङ्ग सहेलि जाल ॥
अलबेलौ खेल मच्यौ अनूप। अलबेले मनभाँवते भूप ॥३॥
चोवा चन्दन वन्दन अबीर। भये सोरबोर सबके सरीर ॥
तकि-तक्कि परस्पर करत मार। तुटि तूटि परत भूषण अपार ॥४॥
डफ ताल बेंन बाजें मृदङ्ग। सहनाई महुवरि मिलि उपंग ॥
बीना मुखचंगा सुर रसाल। कल अमृत कुंडली इभ कपाल ॥५॥
कोलाहल सब दिसि रह्यौ छाय। बिच हो हो हो बोलत सुहाय ॥
पिय प्यारी दियें दोउ भुजा अंस। क्रीडत सुख सरवर राजहंस ॥६॥
तन गौर स्याम अभिराम जोरि। लाजें लखि कंद्रप रति करोरि ॥
बलि(श्री)हरिप्रिया अनुराग फाग। निरखहिं जिन जिनके धन्य भाग ॥७॥

कलकेलि=सुन्दर केलि। मनभव=कामदेव स्वरूपा हिलोर=लहरें। रगमगे रंग=अनुराग से रञ्जित सहनाई=नफीरी। वैन=वीना अथवा वेणु। महुवरि=वाजे का नाम। उपंग=मशक का वाजा मुखचंगा=मुहचंग। अमृत कुण्डली=बाजे का नाम

इमक पाल=बाजे का नाम । इस पद से ग्रन्थकार प्रकट वसन्त खेल का वर्णन करते हैं ।

॥ दोहा ॥

हे सहचरी ! वहाँ चलकर इन दोनों अलबेलों का दर्शन करें जहाँ कोमलता की मूर्ति स्वरूप तथा मनभावते लाल ललना कुञ्ज में सुन्दर वसन्त केलि कर रहे हैं ।

॥ पद ॥

हे सखि वहाँ चलकर देखें जहाँ ये दोनों रसिक रस भरे भावों से भरे हुए रमण कर रहे हैं । ये दोऊ नागर और नव नवेलि जू श्रीवृन्दावन में श्रीयमुना के निकट कुञ्ज में केलि कर रहे हैं । इन दोनों के विलास की बात कहते नहीं बनती है अपितु नेत्रों से देखने से ही सुख प्राप्त हो सकता है । कोमलता की मूर्ति, साक्षात् काम–देव स्वरूप ये दोनों नव किशोर हैं जिनके अँग प्रत्यँगों से छवि की हिलोरें उठ रही हैं । एक तो पहिले ही ये अनुराग के रंग में भीगे हुए थे फिर होरी का प्रसंग आने से वह अनुराग और अधिक उमड़ उठा ॥२॥ श्रीप्रियाजू अलबेली अर्थात् रस के भार से बाँकापन लिये हुए हैं । ये लाल भी अलबेलो है और साथ में सब सखियाँ भी अलबेली हैं और अनूपम वसन्त खेल भी अलबेली है । भान्ति से रचाया गया है । इस खेल में ये दोनों अलबेले हमारे मन के भाँवते हो भूप स्वरूप है ॥३॥ चोवा, चन्दन, वन्दन और अबीर से सबके शरीर सोर बोर हो गये हैं । दोनों प्यारे तकितकि कर परस्पर मार करते हैं जिससे अपार भूषण टूट टूट कर गिर जाते हैं ॥४॥ डफ, ताल वेणु, मृदंग, नफीरी, महुवरि, उपंग, बीना मुह चंग रसीले स्वरों से बज रहे हैं तथा मधुर अमृत कुण्डली इमक पाल आदि के मधुर मधुर स्वर सुनाई दे रहे हैं ॥५॥ चारों दिशाओं में कोलाहल छा रहा है । बीच बीच में हो हो शब्द कैसा सुहावना लगता है । पिय प्यारी परस्पर गल वहियाँ दिये हुए, कैसे विचर रहे हैं मानों सुख रूपी सरोवर में कोई अलौकिक राज हंसों की जोरी किलोल कर रही हो ॥६॥ इस अभिराम जोरी के तन गौर श्याम हैं । इनको देखकर क्रोड़ों कामदेव और रतियाँ लज्जित होती हैं । श्रीहरि प्रियाजू बार बार वलिहारी जाती हुई कहती हैं "यह अनुराग मय फाग जो देखते हैं उनके भाग्य धन्य हैं ।"

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया नित हीय में लसौ बसौ सब काल ।
अति सुन्दरबर सोहनी बानिक मोहनलाल ॥

॥ पद ॥६॥

मनमोहै (री) सोहै अति सुन्दर बानिक मोहनलाल की।
झुकनि छबीली रङ्गरँगीली पगिया गोरे भाल की॥
नवल नासिका नथ मोतीकी झलकनि रूप रसाल की।
श्रीहरिप्रिया बसौ नित हियमें चितवनि नैन बिसाल की॥६॥

वानिक=वनावट। छबि। पगया गोरे भाल की=श्रीलालजू की पाग स्वामिनीजी की ओर इतनी झुकी हुई है मानों वह पाग श्रीप्रियाजु के भाल पर ही हो पद न०५ में "पिय प्यारी दिये दोउ भुजा अँस। क्रीड़त सुख सरवर राज हँस।।" वर्णन किया गया है। उस अवसर में गाढ़ आलिङ्गन इस प्रकार से किये हुए हैं जिससे माल लाल की पाग श्रीप्रियाजू के भाल पर सुशोभित हो रही हो। उसी झाँकी का वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीहरि एवं प्रिया की यह झाँकी ऐसे ही सुशोभित होकर हमारे हृदयों में सदा काल वसी रहे। इस समय श्रीमोहन लाल की रूप माधुरी की छवि अत्यन्त सुन्दर है। हमारे मनों को मोहन करने वाली है।

॥ पद ॥

इस समय की मोहन लाल की रूप माधुरी की सुन्दरता मेरे मन को मोहन करने वाली है। प्यारे की छबि से भरी हुई रङ्ग रगीली पाग जो झुक कर इस समय प्यारी जूके गोरे भाल पर आई हुई है, कैसी सुन्दर लगती है। प्यारी जी की नवल नासिका पर सुशोभित उस नथ के मोती की कैसी शोभा हो रही है जिसमें प्यारे का रसीला रूप झलमला रहा है। श्रीहरि प्रिया जू यह प्रार्थना करती है, कि रसिक दम्पति के विशाल नेत्र कमलों की इस समय की परस्पर चितवन सदा मेरे हृदय में वसी रहे।

॥ दोहा ॥

रंगरँगीली सहचरी भरी प्रेम रस मंत।
रति दंपतिहि बँदावहीं (रति) रंगरँगीलौ बसंत॥

॥ पद ॥७॥

रति रंगरँगीलो रति बसंत। देखौ देखहु री कैसौ लसंत।
रति रङ्गरँगी नव नित्य भूमि। जहाँ रहे बिबिध तरु लूमि लूमि॥१॥

रति रङ्ग रँगीली लतन पाँति । रहि झूलि फूलि फरि ललित भाँति ॥
रति रङ्ग रँगीली रङ्ग भाय । कल कूजित कोकिल कुल सुहाय ॥२॥
रति रङ्ग रँगीले मोरी मोर । मिलि नृत्य करत चहुँ ओरी ओर ॥
रति रङ्ग रँगीलौ रङ्ग बाग । जहाँ रच्यौ सिंघासन मध्य भाग ॥३॥
रति रङ्ग रँगीले दोउ लाल । बैठे निसंक दिये अंकमाल ॥
रति रङ्ग रँगीली सखी संग । कर लिये बसंत उर भरि उमंग ॥४॥
रति रङ्ग रँगीली कनक थारि । मधि सरस नूत मौर जव सँवारि ॥
रति रङ्ग रँगीलौ बजे मृदंग । केउ निर्तत गति पर गति सुधंग ॥५॥
रति रङ्ग रंगीली तान मान । मिलि करत महा सहचरि सुजान ॥
रति रङ्ग रँगीले केसरि नीर । छिरकत छबि सों छबिभरे चीर ॥६॥
रति रङ्ग रँगीलो लै गुलाल । बुरकावहिं उपरि अबीर बाल ॥
रति रङ्ग रँगीली रीझि भीजि । उर उमँग उठी आनन्द कीजि ॥७॥
रति रङ्ग रँगीली रंग वृष्टि । करि भिजई भामिनि कृपादृष्टि ॥
रति रंगरँगीलो रति विलास । बिलसावहिं बिलासनि हिय हुलास ॥८॥
रति रंगरँगीली रंगकेलि । नित बसहु हियें (श्री) हरिप्रिया सहेलि ॥९॥

(श्रीरंगदेवीजू का वसन्त)

रंगरंगीली=श्रीरङ्गदेवी जू । प्रेम रसमत्त=प्रेम से रसायित । रति दम्पति= युगल के रति विलास उद्दीपन करना । वंदावही=वन्धावही=उद्दीपन करती हैं । लसन्त= सुशोभित । भाय=भाव । कल=मधुर । कुल=समूह । नूत मौर=आम की नई मञ्जरियाँ । जब=यव=जौ की डार वालों सहित । सुधंग=नृत्य गति का नाम । तान मान=नृत्य के भेद सर सन्मान करना । आनन्द कीज=आनन्द की आभा कान्ति "ज" का अर्थ कोष में आभा या कान्ति है । हुलास=उल्लास । लूमि लूमि=झुके हुए । "वसन्त" के प्रकट उपकरण भी रसिक दम्पति के रति विलास को उद्दीपन करने वाले हैं । इसी भाव को लेकर ग्रन्थकार प्रकट बसन्त विलास को वर्णन करते हुए कहते हैं :—

॥ दोहा ॥

अनुराग रङ्ग से रञ्जित और प्रेम रस में भरी हुई श्रीरङ्ग देवी जू सहचरी रसिक दम्पति के रति विलास सुख को उद्दीपन करती हुई रति रङ्ग रंगीलो वसन्त खेल मचाती हैं ।

॥ पद ॥

रसिक दम्पति को रतिविलास और अनुराग से रञ्जित करने वाला, यह रति वसन्त खेल देखो सखी ! कैसा सुशोभित हो रहा है। श्रीवृन्दावन की यह नित्य नव नवायमान भूमि अनुराग रङ्ग से रञ्जित और युगल के रति विलास सुख को उद्दीपन करने वाली हैं, जहाँ विविध प्रकारके वृक्ष लूमि झूमि कर नीचे झुके हुए हैं। रति विलास और अनुराग से रञ्जित वे लताओं की पंगतियाँ हैं जो ललित भान्ति से फूल फल कर लह लहा रही हैं ॥१॥ रति और अनुराग रङ्ग से भावित कोकिलों के समूह के समूह कैसे सुहावने मधुर शब्द कर रहे हैं। रति और अनुराग से भीजे हुए मोरी और मोर परस्पर मिल मिलकर चारों और कैसे नृत्य कर रहे हैं ॥२॥ रति विलास और अनुराग रङ्ग को उद्दीपन करने वाला वहाँ रङ्ग बाग है जिसके मध्य भाग में एक बहुत सुन्दर सिंहासन की रचना की गई है। जिस पर रति विलास और अनुराग रङ्ग में भीजे हुए दोनों लाल निशंक भावसे परस्पर गल वहियाँ दिये हुए, आकर विराजमान हुए हैं ॥३॥ इनके साथ इनकी सखी गणों की भीड़ है जो इनके रति अनुराग सुख की उमँग से भरी हुई है और जो वसन्त उपकरण हाथों में लिये हुए हैं। रति अनुराग बर्धन करने वाले स्वर्ण थाल हैं जिनके मध्य में सरस, नूतन आम के मौर और वालों सहित जौ की डालियाँ अच्छे ढंग से सुसज्जित करके रखी गई है ॥४॥ रति और अनुराग को बढ़ाने वाला रङ्गीला मृदङ्ग बज रहा है जिस की ताल पर कोई कोई सखी सुधंग गति से नृत्य कर रही हैं। नृत्य करते करते जब रति रङ्ग रङ्गीली तान पर सखी चरण से तान देती हैं तब महा सुजान सहचरियाँ सब मिलकर उस सखी का सन्मान करती है ॥५॥ वहाँ के केशरी नीर भी रति विलास और अनुराग को उद्दीपन करने वाले हैं जिनको रसिक दम्पति और सखियाँ सुन्दर सुन्दर वस्त्रों पर छबि से परस्पर छिरकती हैं। रति विलास और अनुराग रङ्ग में भीगे हुए लालजू ने गुलाल और अबीर लेकर अपनी प्यारी पर छिरका ॥६॥ जिससे प्यारी जू रति और अनुराग रङ्ग में भीजगई और रीझकर उमंग से उनके हृदय में एक प्रकार की आनन्द की आभा उठी ॥ जिससे भामिनी श्रीप्रियाजू ने अपने प्यारे को कृपा दृष्टि से नहीं देखा, मानों उनको रति और अनुराग वृष्टि से नहला दिया ॥७॥ एवं प्रकार से ये दोनों रति रङ्ग रंगीलो रति–विलास में प्रवर्त हुए। विलासिनी सखियाँ जिन के हृदयों में असीम उल्लास है नाना प्रकार से विलसा रही हैं। श्रीहरि प्रिया सहेली यह प्रार्थना करती हैं कि रसिक दम्पति की यह रति रङ्गीली रंग केलि मेरे हृदय में ऐसे ही नित्य वसी रहे ॥८॥

॥ दोहा ॥

फूल्यौ वृन्दावन फब्यौ फूलफाल कं साज।
फूली फिरत सुदेवि रतिराज उछव के काज ॥

॥ पद ॥८॥

फूली फूली फिरति सुदेवि आज। रतिराज उछवकें साज काज ॥
फूली फूली सहचरि सखी साथ। उपकरन लिये मनहरन हाथ ॥
फूली फूली गावत बसन्त राग। अँग अंग पगी अनुराग पाग ॥१॥
फूले फूले खग मृग टोल टोल। छबि देखि देखि इनकी अतोल ॥
फूल्यौ फूल्यौ वृन्दावन अति रसाल। छबि रही कहि न परें फूल फाल ॥२॥
फूली फूली काबेरी कबराचार। मंजुकेसी सुकेसी कंठि हार ॥
फूली फूली मनोहरा उर अपार। हीराहार महाहीरा रूप भार ॥३॥
फूली फूली लै लै सरस डार। अंब मौर हरित जव नव सँवार ॥
फूली फूली कमल कर कनक थाल। धरि कलस उलस चली चपलचाल ॥४॥
फूले फूले बिछिया बजें सुहाय। रुनु रुनुनु रमक झुनु झुनुनु पाय ॥
फूली फूली मुखरित किंकिनि जालि। सुनि श्रवन सुखाकर होति आलि ॥५॥
फूले फूले करनन में करन फूल। झलमलित ललित दुति अति अमूल ॥
फूली फूली लटकें लट सुबेस। गोरे गोरे गोल कपोल देस ॥६॥
फूली फूली बनिठनि इहिं प्रकार। जाय बसन्त बँदाई बिबि उदार ॥
फूले फूले श्रीहरिप्रिया प्रानपाल। रीझ रीझ दई उर फूल माल॥७॥८॥

(श्रीसुदेविजू का वसन्त)

रतिराज उछव=ऋतुराज वसन्त का नाम है अर्थात् रतिविलास उद्दीपन करने वाला वसन्त उत्सव। कावेरी, कवरा, मञ्जुकेशी, सुकेशी, कंठिहार, मनोहरा, हीराहार, महा हीरा=ये आठों श्रीसुदेविजू की यूथ के सखियों के नाम हैं (सिद्धान्त सुख) उलस=उल्लास सहित। मुखरित=शब्दायमान। लट=अलकावली। बंदाई=वन्धाई=वधाई देना व अर्चन करना=अर्पण करना। कलस=मंगलकलश। अति अमूल=अत्यन्त अमूल्य=अतिशय। रति विलास सुख से जो रसिक दम्पति, सखियों वृन्दावन, तरुलता खग मृगादि को फूल हुई उसका वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

(दम्पति के रतिविलास सुख) से फूल फलों से फलित होकर फूला हुआ एवं सजा हुआ श्रीवृन्दावन कैसी शोभा दे रहा है। और इसी आनन्द में फूली हुई श्रीसुदेवि जू रति वर्धन करने वाले इस राज उद्दव अर्थात् वसन्त उत्सव के कार्य में लगी हुई इधर उधर घूम रही हैं।

॥ पद ॥

आज श्रीसुदेवि जू फूली फूली फिर रही हैं। रति सुख वर्धन करने वाला राज उत्सव अर्थात् वसन्त खेल को सजाने के कार्य में लगी हुई हैं। इनके साथ इनकी सहचरियाँ इसी आनन्द में फूली हुई लगी हुई हैं। इनके हाथों में बसन्त खेल के उपयोगी मन को हरण करने वाले उपकरन हैं। ये आनन्द में फूली हुई वसन्त राग गा रही है। इनके अङ्ग प्रत्यँग अनुराग से पगे हुए हैं ॥१॥ इन सखियों की अतुलनीय शोभा को देखकर खग, मृगों के झूँड के झूँड फूले नहीं समाते हैं। अति रसीला श्रीवृन्दावन भी खूब फूला हुआ है। फूल फलन की फूलन ऐसी फवि रही है जो कहने में नहीं आती हैं ॥२॥ श्रीसुदेविजू के यूथ की सखियों की फूलन का क्या कहें। सुन्दर कावेरी जी कवराजू, मंजु केशीजू, सुकेशीजू, कण्ठहाराजू, मनोहराजू हीरा हार तथा महा हीराजू ये सब रूप लावण्य से भरपूर हैं और उत्सव के अपार आनन्द से फूली हुई हैं ॥३॥ ये सखियाँ आम के मौरो की सरस डालें और हरित नवीन वालों सहित जौ की शाखाऐं स्वर्ण थालों में अच्छे ढंग से सजा सजा कर आनन्द में फूली हुई हाथों में लिये हुए हैं। मङ्गल कलशों को लिये हुए उल्लास सहित चपल चाल से चल रही हैं ॥४॥ चलती समय इनके चरणों के वीछया रुनु रुनु झुनु झुनु शब्द करते हुए कैसे सुहावने लगते हैं। कौंधनी की क्षुद्रघण्टिकाऐं कैसे शब्दायमान हो रही हैं। जिनको सुनि सुनिकर सखियाँ प्रसन्न होती हैं। ॥५॥ इन सखियों के आनन्द से फूले हुए कानों में वे कर्ण फूल कैसी शोभा दे रहे हैं जिन की ललित कान्ति अतिशय झलमला रही है। इन सखियों के गोरे गोल गोल कपोलों पर अलकावलियाँ कैसे सुन्दर ढंग से झूम झूम कर लटक रही हैं ॥६॥ उपरोक्त प्रकार से बनी ठनी वसन्त उत्सव के आनन्द में फूली हुई सखियों ने परम उदार रसिक दम्पति को वसन्त बधाई दी। श्रीहरि एवं प्रिया ने जो सबके प्राणों को पालने वाले हैं रीझ कर सब सखियों को अपने उर की प्रसादी मालाऐं पहनाई। अथवा आनन्द से फूली हुई श्रीहरि की प्रिया श्रीस्वामिनीजू जो सब सखियों के प्राणों को पालने वाली हैं, उन्होंने रीझ कर सब सखियों को अपने हृदय से नहीं लगाया मानो अपने हृदय रूपी फूल मालाऐं

उन को पहना दी। अथवा रीझ कर अपनी प्रसन्नता रूपी फूल मालाएँ पहना दी।

॥ दोहा ॥

ललित उमंग अँग अंग में ललित बसंत बिनोद।
लालै लाड़ लड़ावहीं मिलि ललना मन मोद॥

॥ पद ॥६॥

ललित बसंत ललित ललना मिलि लालैं लाल लड़ावहीं।
ललित उमंग ललित अङ्ग अङ्ग में उमँगि उमँगि बरषावहीं॥
ललित बाजने बजत ललित गति सरस सुघर सुर गावहीं।
ललित विनोद ललित श्रीहरिप्रिया निरखि निरखि सचुपावहीं॥६॥

(श्रीललिताजू का वसन्त)

ललित वसन्त=दिव्य काम को बढ़ाने वाला ललित का अर्थ "कामुक" कोष में है। विनोद=खेल। सचुपावहीं=आनन्द प्राप्त करती हैं। ललित अर्थात् युगलके दिव्य काम की उमंग में भर कर सखियाँ लाल ललना को वसन्त खेल खिलाती हुई लड़ा रही हैं। ललित=क्रीड़ासक्त=आमोद प्रमोद सुन्दर=कामुक इत्यादि।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति की ललित उमङ्ग अर्थात् उनकी दिव्य काम सम्बन्धी उमंग सखियों के अङ्ग अङ्ग में छा रही है। अतः वे उस मोद में भरी हुई सब मिलकर लाल ललना को वसन्त विनोद खिलाती हुई लड़ा रही है।

॥ पद ॥

दिव्य काम उद्दीपन करने वाली वसन्त में ललित ललना अर्थात् मनोहर सखियाँ मिलकर लाल ललना को लड़ा रही हैं। इनके सुन्दर अङ्ग प्रत्यंगों में क्रीड़ा करने की अत्यन्त आसक्ति है अतः यह उमङ्ग उमङ्ग कर आमोद प्रमोद की वर्षा वर्षा रही हैं। ये सखियाँ मनोहर वाजों को ललित गति से बजाती हुई रसीले सुघर स्वरों से गा रही हैं। एवं प्रकार से इनके मनोहर खेल को देखकर दिव्य काम में आसक्त श्रीहरि एवं प्रिया अत्यन्त आनन्दित होते हैं।

॥ दोहा ॥

थिर चर बन ब्यापक भयो बितरन बितन अनन्त।
सखी बिसाखा को जु अभिलाषामई बसन्त॥

॥ पद ॥१०॥

सखी बिसाखा की अभिलाषा कौ बसंत आजु देखौ री !
पात पात अरु गात गात में बरन्यौ न जात विसेखौ री !
कुरबक बकुल कदम्ब अंब जंबू बिद कोबिद केलें री !
पनस पयाल पुनाग नाग नव नीप सरस रस झेलें री !
सुक पिक चातिक केकि कोक कोका कारंड कपोतें री !
पारावतन की पाँति पाँति गुन गावत मिलि मिलि गोतें री !
सरवर सरित सरोज पुंज प्रति कुंज कुंज छबि छाजें री !
कोटि काम लावन्य श्रीहरिप्रिया तिनहिं रिझावन काजें री ॥१०॥

(श्रीविशाखाजी की वसन्त)

थिर चर=जड चैतन्य। वितरन=प्राप्त कराना। वितन=दिव्य काम। अभिलाषा=कामना। मनोर विसेखौ=विशेषौ=विलक्षणता। कुखक=गुलकेश। गुलशादाव का फूल। बकुल=मोरछली कदम्ब=कदम्ब का वृक्ष। अम्ब=आम का वृक्ष जम्बूविद=जामन। कोविद=लाल कचनार पनस=कटहर। प्रियाल=चिरोञ्जी का पेड़ पुन्नाग=एक प्रकार का फूल। नाग=नागकेशर नव नीप=छोटा कदम्ब का वृक्ष। शुकपिक=तोता मैना। चातक=पपीहा। केकि=मयूर कोक कोका=चकवा चकवी। करंड=बतख कपोतै=कबूतर। पारावत=कबूतर विशेष गौतें=झुण्ड के झुण्ड। सरवर=कुण्ड। सरित=नदी। सरोज पुंज=कमलों के समूह। श्रीविशाखा सखी के मनोरथ के अनुसार दिव्य काम श्रीवृन्दावन के स्थावर जँगम में व्याप्त होकर रसिक दम्पति की असंख्य दिव्य काम सम्बन्धी अभिलाषाओं को बढ़ा दिया।

॥ दोहा ॥

सखी विशाखा ने वसन्त सम्बन्धी जो मनोरथ किया उसके अनुसार श्रीवृन्दावन के जड़ चैतन्य में दिव्य–काम संचरित हो उठा जिस से युगल की अनन्त दिव्य काम सम्बन्धी वासनाएं उद्दीपन हो गईं।

॥ पद ॥

विशाखा सखी ने जो आज वसन्त खेल का मनोरथ किया उसको देखो। जिसके प्रभाव से वृक्ष लताओं के पत्ते पत्ते में और खग मृगों के गात गात में जो भाव की

विलक्षणता हुई उसको वर्णन नहीं कर सकते हैं। गुलशादाव, मोरछली, कदम्ब, आम, जामन तथा लाल कचनार में भाव संचरित होने से ये केलि करने लगे। कटहर, चिरोञ्जी का पेड़, पुन्नाग, नाग केशर छोटे छोटे कदम्ब इस सरस रस को झेलने लगे।१। तोता मैना, पपीहा, मयूर, चकवा चकवी, बतख, कबूतर तथा पालतू कबूतर पक्षियों के झुंड के झुंड पंक्तियाँ बान्ध बान्ध कर इखटे हो होकर आकाश में उड़ते हुए दम्पति के गुण गाने लगे। सरवरों नदियों में कमलों के समूहं खिल उठे। कुञ्ज कुञ्जों की छवि वृद्धि को प्राप्त हो गई। वे श्रीहरि एवं प्रिया जिन पर क्रोडों काम देवों की लावण्यता को वारि फेरि करके डाल दें, इनको रीझाने के लिये उपरोक्त प्रकार से श्रीवृन्दावन के स्थावर जङ्गम में दिव्य काम संचरित हुआ।

॥ दोहा ॥

विपुल पुलक अङ्ग अङ्ग में बाढ़्यौ रङ्ग रसाल।
बिबिहिं बसन्त बँदावहीं चंपकबरनी बाल॥

॥ पद ॥११॥

चंपकलतिका चंपकबरनी छबिसों बिबिहिं बसन्त बँदावति।
आनँदभरे अरविंद बदनबर निरखि निरखि निज नैन सिरावति॥
विपुल पुलक अँग अंग बढ़्यौ रसरंग तरंग उमँगि उमँगावति।
सुखसागर नागरि नागर श्रीहरिप्रिय प्रतिछिन हिय हुलसावति॥११॥

(चम्पकलताजू का वसन्त)

विपुल पुलक=अधिक प्रेम के अनुभाव रोमाञ्चादि। बिबिहिं=दोनों को। बन्धावहीं=वसन्त उपकरण अर्पण करती हैं। अरबिन्द वदन=कमल मुख। श्रीचम्पकलता सखी प्रेम के अनुभाव—रोमाञ्चादि से सुसज्जित होकर युगल को वसन्त उपकरण अर्पण करने के लिये पधारीं और सुख सागर स्वरूप रसिक दम्पति को भी प्रेम में निमग्न कर दिया।

॥ दोहा ॥

चम्पकवर्णी बाल श्रीचम्पकलताजू जिनके अङ्ग प्रत्यँगों में गहरे प्रेम के अनुभाव रोमाञ्च आदि हो रहे हैं और जिनका हृदय अनुराग से रञ्जित और रस से रसायित हो रहा है रसिक दम्पति को बसन्त बन्धा रही है अर्थात् वसन्त उपकरण चरणों में भेट करके मस्तक पर तिलकादि लगा रही हैं।

॥ पद ॥

चम्पकवर्णी चम्पकलताजू ने छवि से युगल के मस्तकादि पर तिलकादि रूप से बसन्त बन्धाया और आनन्द भरे मुख कमलों के दर्शनों से अपने नेत्रों को सिराया। सखी के अङ्ग अङ्ग में गहरे प्रेम के अनुभाव–रोमांचादि से इनके हृदय में अनुराग और रस की तरङ्गें बढ़ी हुई हैं, जिन्होंने रसिक दम्पति के रस रङ्ग को और अधिक उमगा दिया। श्रीहरि प्रिया सखी जी का हृदय सुख सागर स्वरूप नागरि और नागर को उपरोक्त प्रकार से देख कर छिन छिन में उल्लास को प्राप्त होता है।

॥ दोहा ॥

श्रीपंचमि सुख सरसरति नृत्य करत उर ऊजि।
प्रमुदित चित चित्रा सखी प्रानप्रियन कौं पूजि॥

॥ पद ॥१२॥

श्रीपंचमि प्रमुदित चित चित्रा प्रानप्रियन कौं पूजि पूजि।
गावत सरस राग अनुराग भरी कलकंठनि कूजि कूजि॥
आवज अमृत कुंडली महुवरि बजत पखावज गूंजि गूंजि।
श्रीहरिप्रिया सुमुँहके सौंही नृत्य करति उर ऊजि ऊजि॥१२॥

(श्रीचित्रा सखीजी की वसन्त)

ऊजि=ओज मनोज रसिक दम्पति का दिव्य काम। प्रमुदित=आनन्दित। कल-कण्ठनि=मधुरस्वर। कुजि कुजि=कूकना। चहचहाट करना। कूजना। आवज, अमृत कुडली, महुवरि=बाजों के नाम। पषाबज=मृदङ्ग। गुंज गुंजि=बड़ी शब्दायमान समूह=सखियों के यूथ। सोहीं=सामने। श्रीचित्रा सखी रसिक दम्पति के सरस रति सुख में रसायित होकर नृत्य कर रही हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीपञ्चमी चित्रा सखी ने अपने ओज मनोज बढ़ाने वाले नृत्य से रसिक दम्पति के सरस रति सुख को बढ़ाया। एवं प्रकार से वह अपने प्राणप्रियन का वसन्त पूजन करके हृदय में आनन्दित हुईं।

॥ पद ॥

श्रीपञ्चमी चित्रा सखी एवं प्रकार से अपने प्राण प्रियन लाल ललना का बसन्त

पूजन करके हृदय में आनन्दित हुईं। फिर वे अनुराग में भरकर अपने मधुर कण्ठ से कूज कुज कर सरस राग गाने लगीं। उस समय आवज, अमृत कुण्डली महुवरि आदि बाजे मधुर स्वर से बजने लगे और पखाबज गूंजने लगी। और श्रीचित्रा सखीजी श्रीहरि एवं प्रिया और सखियों के समूह के सामने हृदय में युगल सम्बन्धी ओज मनोज भरकर नृत्य करने लगीं।

॥ दोहा ॥

तुंगविद्या रिझवति वियें लिये सखी सब सङ्ग।
मृदुगति मृदंग बजावहीं धी धी धी धिधिलङ्ग ॥

॥ पद ॥१३॥

धी धी धी धी धी धिलङ्ग मृदङ्ग गति बजावहीं।
तुंगविद्या विद्यातुंग रंग अति उपजावहीं॥
मंजुमेधा मधुसिन्दा मिलि नाट्य थाट थटावहीं।
थेई थेई त त तत्तथेई थेई थेई उघटावहीं॥
तनमेधा मधुरेछना सुमेधा सुरहिं भरावहीं।
गुनचूड़ा सहित मधुरा मुदित मान मिलावहीं॥
बरांगदा उमंग अंग संग संग गावहीं।
निरखि निरखि हरखि हियें श्रीहरिप्रियें रिझावहीं॥१३॥

(श्रीतुङ्गविद्याजी की वसन्त)

वियें=दोनों। विद्यातुङ्ग=श्रेष्ट विद्या। रंग=अनुराग मंजु मेधा मधुस्यंदा=तुङ्ग-विद्याजू के यूथ की सखियों के नाम। नाटचथाट=नाटक का अभिनय। उघटावहीं=उच्चारण करती हैं। तन मेधा, मधुरे, छना, सुमेधा, गुण चूडा तथा मधुरा=ये सब तुङ्ग विद्या की सखियों के नाम हैं। मान=गायन का भेद। स्वर की ठीक मिकदार। बरांगदा=सखी का नाम। (तुङ्ग विद्या के यूथ की) श्रीतुङ्गविद्याजू बसन्त खेल में अपनी मृदङ्ग आदि की सेवा से युगल को रीझाती हैं।

॥ दोहा ॥

तुंगविद्याजी अपनी यूथ की सब सखियों को साथ लेकर मधुर गति से मृदङ्ग बजा बजाकर युगल को रीझा रही हैं।

॥ पद ॥१३॥

श्रीतुंगविद्याजी अपनी श्रेष्ट विद्या द्वारा अति अनुराग प्रकट करती हुई युगल की

वसन्त सेवा कर रही हैं। यह धी, धी, धी, धी धीधिलङ्ग मृदङ्ग मधुर गति से नहीं बजा रही है मानों मृदंग से ६ बुद्धि के गुणों को प्रकट कर रही हैं। धी याने बुद्धि के ६ गुण यह हैं। :—मृदंग की ध्वनि द्वारा इन गुणों को जनाती हैं।

"शुश्रुषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहा पोहार्थि विज्ञानं तत्वज्ञानानां च धी गुणाः ॥" (कोष)

तत्व ज्ञान प्राप्त करने के लिये इन ६ गुणों की आवश्यकता है :—सेवा करना, उपदेश सुनना उसको ग्रहण करना, धारण करना अर्थात् उस पर अमल करना, ऊहा पोही कुतर्क द्वारा निश्चय करना फिर विशेष विज्ञान में स्थित हो जाना। अर्थात् अपने इष्ट में दृढ़ भाव से लग जाना। इत्यादि फिर मंजुमेधा और मधुस्यदा सखियाँ मिलकर एक नृत्य या नाटक के थाट को सजाती हैं जिसमें थेई थेई आदि नृत्य गान करती हैं। तन मेधा, मधुरेक्षणा और सुमेधा नामक सखियां स्वरों की अलाप चारी करती हैं। गुण चूड़ा और मधुरा सखियाँ प्रसन्न होकर स्वरों के मान अर्थात् मिकदार को ठीक करती हैं और वरांगदा सखीजू उपरोक्त वर्णित स्वरों के साथ साथ गाती हैं। उपरोक्त प्रकार के नाटच अभिनिय को देख देख कर रसिक दम्पति हिय में हर्षित होते हैं। श्रीहरि एवं प्रिया को इस प्रकार से सखियाँ रिझाती हैं।

॥ दोहा ॥

बिमल रूप श्रीहरिप्रिया अति अनूप अवरेखि।
बिमल बसंत बँदावने चली अली इन्दुलेखि॥

॥ पद ॥१४॥

बिमल बसन्त बनी इन्दुलेखा अली चली पूजन बसन्त।
बिमल बसंत बनीं सब सुंदरि गावतिं जैसोई राग बसंत॥
जैसोई बिमल बसंत सिंघासन ता पर बनि बैठे बसंत।
तैसेई बिमल रूप श्रीहरिप्रिया तैसेई फूले फल बसन्त॥१४॥

॥ इति बसंत ॥

(श्रीइन्दुलेखाजू का बसन्त)

अवरेखि=अवि+रेख=पहाड़ या दीवार+लकीर अर्थात् इससे आगे रुकावट है। अर्थात् हद से तात्पर्य है। श्रीइन्दुलेखाजू वसन्त पूजन के लिये पधारी हैं।

॥ दोहा ॥

जिनकी रूप माधुरी विमल, अनुपम तथा सुन्दरता की हद है, इन श्रीहरि तथा प्रिया की विमल बसन्त पूजन करने के लिये श्रीइन्दुलेखाजू पधारीं।

॥ पद ॥

इन्दुलेखा मानों साक्षात् स्वच्छ बसन्त का रूप धारण करके बसन्त पूजन के लिये पधारी हैं। साथ में सब सखियाँ भी विमल बसन्त का रूप धारण किये हुए हैं और बसन्त राग को ही गा रही हैं। सिंहासन ने भी विमल बसन्त का रूप धारण कर रखा है। जिस पर स्वयं प्रिया प्रीतम बसन्त रूप होकर विराज मान है। श्रीहरि एवं प्रिया का जैसा स्वच्छ रूप है ऐसे ही सब जगह बसन्ती फूल फूले हुए हैं।

अथ होरी महासुदी पूर्णमासी तें फागुन सुदि पूर्णमासी तांई। अनुरागनि वैजयंती वंसतेह जोई मध्याभास॥

॥ दोहा ॥

सहज सौंज जैसिय बनी तैसिय सहचरि संग।
स्यामा स्याम निकुंज में खेलत होरी रंग॥

॥ दोहा ॥१५॥

स्यामा स्याम निकुंज-भवन में रंगभरे खेलैं होरी।
तैसिय संग सहेली सुंदरि सखी सहचरी गोरी॥
रमक झमक उचकनि उरजन की लचनि लंक चित चोरी।
निरखि थकित भयो मन मोहन कौ नीवी बंधन डोरी॥
अति अनुराग भरी पिचकारी प्यारी पिय पर छोरी।
रोम रोम रमि रह्यौ रंग आनन्द उमंगन कोरी॥
मुसकनि हँसनि अबीर गुलालनि मार मची दुहुँ ओरी।
तिहिं धूंधरि में सोहत हैं श्रीहरिप्रियाजू की जोरी॥१५॥

॥ होरी ॥

यद्यपि ग्रन्थकार ने इस प्रसंग में होरी खेल का बहुत बिस्तार पूर्वक वर्णन किया है तो भी यह देखना है ग्रन्थकार का इस खेल को वर्णन करने में सूक्ष्म क्या अभिप्राय है। "सम्बोधन दे वर्तत जोरी। जाकी संज्ञा कहियत होरी॥" (तालिका) अर्थात् रसिक दम्पति परस्पर मिलकर जब आनन्द में विभोर होते हैं, उस समय इनके मुखारविन्दों से

जब "अहो" "अहो" इत्यादि शब्द निकलते हैं उस समय उस आनन्द विलास को होरी कहते हैं। अर्थात् मिलने से पहिले तत् सुख सुखी भाव की अभिलाषा मयी सुगन्ध की लपटों को बसन्त कहते हैं और मिलने के बाद के आनन्द को होरी कहते हैं अब इस पद के अर्थ को देखिये :—

अनुरागिनि वैजयन्ती मध्याभास=बसन्त राग। सौंज=सामग्री। रमिक=आनन्द से प्रसन्न होना उचकनि=हिलना। चलनि लंक=कमर का लचकना नीवी बन्धन डोरी=नाडा। धुंधरि=गुलाल के उड़ने से अन्धकार। होरी खेल का वर्णन करते हैं।

॥ दोहा ॥

श्यामा श्याम निकुञ्ज भवन में रङ्ग की होरी खेल रहे हैं। इनके अनुरूप इनकी सखियाँ होती खेल की सब सामग्रियाँ लिये हुए इनके साथ खेल रही हैं।

॥ पद ॥

श्यामा श्याम निकुंज भवन में अनुराग में भरे हुए होरी खेल रहे हैं। इस खेल में इनके साथ सखी, सहेली, सहचरी, सुन्दरी और गोरी अर्थात् मंजरिया पाञ्चों प्रकार की सखियाँ सम्मिलित हैं। खेल के आनन्द में सखियों के इधर उधर चलने से उनके वक्षोजों का रमकि झमक के हिलना उनकी पतली कमरों का लचकना तथा नीवीबन्धन डोरी देखकर मोहन का मन चकित थकित सा हो गया है। तब लड़ेतीजू ने अपने प्यारे की ओर कृपा भरी दृष्टि से नहीं देखा मानों अति अनुराग रङ्ग से भर कर अपने प्यारे पर पिचकारी छोड़ी इस रङ्ग ने प्यारे के रोम रोम को आनन्द और उमंग से रञ्जित कर दिया ॥२॥ फिर दोनों ओर से मुसकनि हंसनि रूपी अबीर गुलालों की मारा मार मची। श्रीहरि एवं प्रिया की यह जोरी तो, एवं प्रकार की मुसकन हसन रूपी अबीर गुलाल की धूँधर में ही विशेष सुशोभित होती है।

॥ दोहा ॥

जोरी जस नित गाय नव उपजावो आनन्द।
भल आये दिन भाँवते होरी प्रेम सुछंद॥

॥ पद ॥१६॥

भल आए भल आए री दिन भाँवते होरी के होरी।
सब मिलि मंगल विमली खेलौ भरि भरि अबीर गुलालन झोरी॥
नित्य नयौ आनन्द उपजावौ गावौ जस जोरी के जोरी।
श्रीहरिप्रिया लड़ाय चाय सों सफल करो जीवन अलि योंरी॥१६॥

मंगल विमली=एक खेल का नाम। सखियाँ होरी खेल का मङ्गलाचरण करती हुई कहती हैं।

॥ दोहा ॥

हे सखियो ! इस होरी खेल अर्थात् सुच्छन्द प्रेम विहार के भाँवते दिन भले आये है। अब इस जोरी के नब नब यश नित्य गाय गाय कर आनन्द उपजाओ।

॥ पद ॥

हे री सखियो ! होरी के भाँवते दिन भले आये हैं। सब मिलकर अवीर गुलालों की झोरियाँ भर भर कर "मङ्गल विमली" नामक खेल खेलो। जोरी के नब नब यश नित्य बना बना कर गाओ और एवं प्रकार से नित्य नया आनन्द उपजाओ। एवं श्रीहरि एवं प्रिया को चाय से लडाय लडाय कर, हे अलिओ ! अपने जीवन को सफल बनाओ।

॥ दोहा ॥

नवल रँगीली भाँति सों नवल रँगीलौ पीय।
नवल खेल मिलि खेलहीं नवल विविध विधि वीय॥

॥ पद ॥१७॥

नवल किसोरी गोरी गुननिधि पिय सङ्ग होरी खेलहीं।
केसरि अरु अनुराग कुमकुमा भरि भरि पिचका पेलहीं॥
नवल रँगीलि छबीलि भाँति सों बूका वन्दन मेलहीं।
श्रीहरिप्रिया प्रसन्न बदन दोउ नव निकुंज में केलहीं॥१७॥

बीय=दोनों। पिचका=पिचकारी। बूका वन्दन=चन्दन के चूरे आदि से बनाई हुई सामग्री जो होरी में गुलाल की तरह काम आती है। होरी खेल का वर्णन करते हैं।

॥ दोहा ॥

पहिले नवल रंगीलो पीय श्रीलालजू अपनी प्यारी से मिलकर नवल रंगीली भान्ति से होरी खेल खेंलते हैं। फिर दोनों मिलकर विविध प्रकार की विधि से खेल मचाते हैं।

॥ पद ॥

नवल किशोरी गोरी श्रीप्रियाजू सब गुणों के निधि स्वरूप अपने प्यारे साथ होरी खेल रही हैं। अनुराग सहित केसरि के कुम कुमा और पिचकारी रङ्ग से भर भर कर अपने प्यारे पर छोड़ रही हैं। नवल रङ्गीली श्रीप्रियाजू छवीली भान्ति से बूका वन्दन डाल रही है। श्रीहरि एवं प्रिया इस प्रकार से नव निकुञ्ज में प्रसन्न चित्त से दोनों केलि कर रहे हैं।

॥ दोहा ॥

छबि सौं छीटें छिरकहीं छैल छबीली बाल।
जिय जीवनि सी जानिके परसत पद नव लाल ॥

॥ पद ॥१८॥

छबि सौं छैल छबीली छिरकत छींटें केसरि रङ्ग।
अति सुकुंवार करन की परसी सरसी लसी अँग अङ्ग ॥
जियजीवनि-सी जानि जानि मनि उर में आनि उमंग।
परसत पद जय श्रीहरिप्रिया के मन करि मदन त्रिभंग ॥१८॥

लसी=सुशोभित। मन करि=मन से। मदनत्रिभग=तृभंग ललित श्रीलालजू। प्यारी जू अपने प्यारे पर केसर की छीटें छड़क रही है। प्यारे रीझकर मन से उनके चरण छूते हैं।

॥ दोहा ॥

छैल छवीलीवाल प्रियाजू छवि से केसर की छींटे अपने प्यारे पर छिड़कती है और नवलाल प्यारे उन छीटों को अपनी जीवन स्वरूप मान कर लडेतीजू के चरणों को छूते हैं।

॥ पद ॥

छैल छवीली श्रीप्रियाजू छवि से केसर रङ्ग की छीटें अपने प्यारे पर छिड़कती हैं। अत्यन्त सुकमार हस्त कमलों का स्पर्श प्राप्त होने से उन छीटोंने लाल जू के अङ्ग प्रत्यँगों को सरस बनाकर सुशोभित कर दिया। प्यारे ने उन छीटों को अपने प्राण जीवन स्वरूप समझा और उमंग में भर कर उस मदन तृभंगी लाल ने श्रीहरि की प्रिया अपनी प्यारी के जय जय उच्चारण करते हुए चरणों को इस प्रकार पकड़ लिया मानों वे चरणों का पूजन कर रहें हो। (मन् का अर्थ पूजन भी है)

॥ अनुरागनि किसोरसुन्दरी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

कमल कुंजके द्वार मिलि रच्यौ सुरङ्ग रसाल।
सहज सुरत सुख संग में रँगभीने दोऊ लाल ॥

॥ पद ॥१९॥

एरी सखी! रँगभीने दोउ लाल, रच्यौ सुरंग रसाल री रँगहोरी ॥१
एरी सखी! कमल कुंज के द्वार, विहरत बर सुकुँवार री रँगहोरी ॥२

एरी सखी ! साँवल गौर किसोर, रङ्ग रँगीलो जोर री रँगहोरी ॥३
एरी सखी ! अंसन पर अवतंस, राजत जुग हितु हंस री रँगहोरी ॥४॥
एरी सखी ! अरबीले दोउ छैल, कैसे कहिये अरैल री रँगहोरी ॥५॥
एरी सखी ! दोऊ मते मनोज, दोउ रति के चोज री रँगहोरी ॥६
एरी सखी ! लाड़ लड़े लड़काय, लाड़ लड़ी के चाय री रँगहोरी ॥७
एरी सखी ! कर पिचकरिया लेत, सुभग अङ्ग तकि देत री रँगहोरी ॥८
एरी सखी ! कह्यौ न परत तिहिं काल, जो सुख बढ़्यौ बिसाल री रँगहोरी।
एरी सखी ! फैलि पर्यौ रङ्ग पीत, सीत करत अँग भीत री रँगहोरी ॥१०
एरी सखी ! अचिरज भयो अपार, श्रमकन झलक सुढार री रँगहोरी ॥११
एरी सखी ! सगबगे सरस सनेह, दीपत दोउन की देह री रँगहोरी ॥१२
एरी सखी ! भीने रङ्ग सुरङ्ग, यह अद्‌भुत गति अङ्ग री रँगहोरी ॥१३
एरी सखी ! बोलत हो हो बोल, सुनि सुनि रहत अडोल री रँगहोरी ॥१४॥
एरी सखी ! रीझि रहे सिर नाय, दियो सुधाधर प्याय री रँगहोरी ॥१५
एरी सखी ! प्यारीजू परम प्रवीन, मन भायो सब कीन री रँगहोरी ॥१६
एरी सखी ! विविध अबीर गुलाल चित्रित कीनौ भाल री रँगहोरी ॥१७
एरी सखी ! फगुवा दे सनमान भाँति भाँति पकवान री रँगहोरी ॥१८
एरी सखी ! निरवधि नित्यविलास छिन एक न अवकास री रँगहोरी ॥१९
एरी सखी ! श्रीहरिप्रिया हिय ऐन बसहु सदा सुख चैन री रँगहोरी ॥२०

अनुरागिनी किशोर सुन्दरी मध्याभास=रागकाफी कमल कुञ्ज="निजतन सुभग रतन मणि कहिये। कमल निकुञ्ज कमल हूँ लहिये।" (तालिका) रसिक दम्पति के रहस्य अङ्गों से तात्पर्य है। अंसन् पर अवतंस=कन्धो पर माला यहाँ माला से हस्त कमल अथवा चरण कमल से तात्पर्य है। "कर पद वर अंसनिपर ढाल। सोई कही कदम्ब की माल।" (तालिका) युगहित हंस=मानों प्रेम रूपी हंसों का जोड़ा। अरैल=हठीले। मते मनोज=दिव्य काम में मस्त। रति के चोज=रति विलास की चाव की मूर्ति। रङ्ग पीत=यहाँ पीत वर्णा प्यारी जू से तात्पर्य है। शीत=शीत कार शब्द। भीत=भयभीत। श्रमकन=पसीना। सुढार=सुन्दर। सगवगे=भीगे हुए। रंग सुरंग=अनुराग से रञ्जित। अड़ोल=स्थकित। सुधाधर=अधरामृत। निरवधि=अवधि रहित। अवकाश=फुरसत।

अैन=अयन=स्थान रति विलास को होरी के व्याज से वर्णन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं।

॥ दोहा ॥

कमल कुञ्ज के द्वार अर्थात् रसिक दम्पति परस्पर अङ्गों से अङ्ग मिलाकर रसीले अनुराग सम्बन्धी लीला रचते हैं अर्थात् स्वाभाविक सुरति सुख विलास संगम विलसते हुए दोनों अनुराग रङ्ग में सम्यक् प्रकार से भीग जाते हैं।

॥ पद ॥

हे सखी ! यद्यपि ये दोनों अनुराग रँग में सदा भीगे रहते हैं तो भी और अधिक रसीले अनुराग में भीगने के लिये रँग होरी के नाम से लीला की रचना करते हैं ॥२॥ ये दोनों साँवल गौर किशोर अनुराग रङ्ग के जोर में भर कर रङ्ग होरी खेल रहे हैं। ये दोनों परस्पर गल वहियाँ दिये हुए ऐसे सुशोभित हैं मानों कोई हित रूपी अनिर्वचनीय हंसों का जोड़ा हो ॥४॥ ये दोनों छैल परस्पर रस आस्वादन कराने के लिये हठ कर रहे हैं इनको मैं अरैल अर्थात् जिद्दी तो कैसे कहूँ ॥५॥ ये दोनों दिव्य काम से ऐसे उन्मत्त हो रहे हैं मानों ये रति विलास उत्सुकता की कोई मूर्तियाँ हो ॥६॥ यह लाड़ लड़ीलो लाल लाड़ लड़ी के चाय में भर कर हाथ में पिचकारी लेकर कैसे तक तक कर अपने प्यारी के सुभग अङ्गों को छिड़क रहे हैं ॥८॥ [(श्लेषार्थः कुटिल कटाक्ष छुटत पिचकारी। भरी रहसि रंगन सो भारी। तालिका) अर्थात् लालजू अपनी प्यारी के रहस्य अङ्गों को अपनी प्रेम भरी दृष्टि से अवलोकन करते हैं ॥८॥] उस समय जो विशाल सुख बढ़ा उसको वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सकते हैं ॥९॥ क्योंकि प्यारे की प्रेम भरी कटाक्ष रूपी पिचकारी ने प्यारी पर पीत रंग नहीं फैलाया अपितु उस पिचारी ने उनके दिव्य काम को जगा दिया और उनके सीतकार शब्दों ने प्यारे को भय भीत बना दिया ॥१०॥ उस समय प्रेम के अनुभाव प्रकट होने से दोनों के अंगों पर श्रमकन झलकने लगे। परन्तु यह आश्चर्य यह है कि पसीने के कण कैसे सुढार मोतियों की तरह से शोभा बढ़ा रहे हैं ॥११॥ सरस स्नेह से दोनों के अँग भीगे हुए कैसे देदीप्यमान हो रहे हैं ॥१२॥ अनुराग रूपी सुरंग रंग से भीगे हुए होने के कारण इन दोनों के अंगों की यह अद्भुत गति हो रही है ॥१३॥ अरी सखी। आनन्द में भर कर जब ये "हो हो।" बोल बोलते हैं उन शब्दों को सुन सुन कर हम सब स्थकित रह जाती हैं (ग्रन्थकार के मत में "सम्बोधन दैवर्नत जोरी। ताकी संज्ञा कहिय होरी।" (तालिका) ॥१४॥ प्यारीजू ने जो कृपा की वृष्टि की, इस पर रीझ कर प्यारे ने अपना मस्तक ज्योंही झुकाया त्योंही लड़ैंतीजू ने उनको अधर सुधा रस से सिञ्चन किया ॥१५॥ अब परम प्रवीन प्यारीजू ने अपने प्यारे का

उद्भट चुम्बनादि करके अपनी मन भाँवती इच्छाओं को पूर्ण किया ।।१६।। "लसनि हंसनि में द्विज द्युति जोई । अवीर गुलाल कही है सोई" । (तालिका) चुम्बन करते करते प्यारीजू ने हंसकर अपने प्यारे का मस्तक नहीं चूमा मानों उन्होंने अपने प्यारे के भाल को अवीर गुलाल से चित्रित किया है ।।१७।। लालजू ने रीझकर अपनी प्यारी को सन्मान रूपी फगवा दिया और अपने अँग प्रत्यँगों के अर्पण रूपी भान्ति भान्ति के पकवानों द्वारा अपनी प्यारी को तुष्ट पुष्ट किया ।।१८।। रसिक दम्पति का इसी प्रकार से निर-वधि निरन्तर विलास होता रहता है । इस नित्य विहार से इनको एक छिन के लिये भी छुटकारा नहीं मिलता है ।।१६।। श्रीहरिप्रियाजू यह प्रार्थना करती है कि यह युगल किशोर मेरे हृदय रूपी मन्दिर में नित्य ऐसे ही सुख पूर्वक विहार करते हुए विराजमान रहें ।।२०।।

।। दोहा ।।

होरी केलि निकुंज में बिलसावो बहु भाय ।
ललहिं लड़ावो लडैति के सब सजनी मिलि आय ।।

।। पद ।।२०।।

लड़ैती के ललहिं लड़ावो री । सबै सजनी मिलि आवो री ।।
निकुंज में केलि मचावो री । प्रिया संग होरी खिलावो री ।।१
रँगीले को रंग भरावो री । चोवा चंदन चरचावो री ।।२
लै लै पिचकारी धावो री । छबीले कों छिरकि रिझावो री ।।३
अबीर गुलाल उड़ावो री । सुडम्बर अम्बर छावो री ।।४
बाजे बहु भाँति बजावो री । उर आनंद उपजावो री ।।५
रीझ कौं फगुवा मँगावो री। ब्याह की विहस बढ़ावो री ।।६
उबटना अंग उबटावो री । केसरि कें नीर न्हवावो री ।।७
सुहाने पट पहिरावो री । सुखासन पर पधरावो री ।।८
कमल की माल बनावो री । लाल के गर लहकावो री ।।६
रोरी को तिलक रचावो री। मोतिन के अछित लगावो री ।।१०
रुचिर रचि बीरी खवावो री । निरखि छबि नैन सिरावो री ।।११
बिधोकत वेद पढ़ावो री । बेदी में सुख बिलसावो री ।।१२

गुन भरी गारी गावो री। हो हो कहि शब्द सुनावो री ॥१३
रँग हो हो हो हे हाँ हाँ हाँ
तुम गोरे हो मोहन गोरे। देखत के कारे कोरे ॥१४
सो तौ यह दोष हमारो। आँखिन में अंजन कारो ॥१५
तुम्हें जाने हो मोहन जाने। अब नेक रहो किन छाने ॥१६
नातर कहि हैं वा दिनकी। बोलनि प्यारीजू विनकी ॥१७
तुम आछे हौ मोहन आछे। को परे तिहारे पाछे ॥१८
अहो अधरसुधा अनुरागे। प्यारीजूकें पायन लागे ॥१९
तुम प्यारे हो मोहन प्यारे। कहा कहिये कर्म तिहारे ॥२०
कहौ यामें कौन बड़ाई। हम देखत हा हा खाई ॥२१
तुम लोने हो मोहन लोने। आगें भये न अब कोइ होने ॥२२
क्यों नीचे नीचे झांखें। ए लाज लपेटी आँखें ॥२३
तुम कैसे हो मोहन कैसे। भले भूलि गये गुन वैसे ॥२४
पहराय कमल की माला। करि दिये लाड़िले लाला ॥२५
तुम्हें गारी कहा अब दीजै। मुखपर पानी वारि पीजें ॥२६
रंग होरी हो रंग होरी। बनी श्रीहरिप्रियाजू की जोरी ॥२७
रँग हो हो हो हे हाँ हाँ हाँ
गहि गँठजोरि जुरावो री। प्रेम कें पाग पगावो री ॥२८
बेगि भाँवरिय फिरावो री। गौने को चार करावो री ॥२९
महल में सेज बिछावो री। दूलह दुलहिनि पौढ़ावो री ॥३०
दुरि दुरि देखि सिहावो री। रंग में रैन बिहावो री ॥३१
धनि धनि भाग मनावो री। मन बांछित फल पावो री ॥३२
कर अंगुरी चटकावो री श्रीहरिप्रिया की बलि जावो री ॥३३

चोबा=जो कस्तूरी आदि द्रव्यों से बनाया जाता है। सुडम्वर+सु+अडम्वर सुन्दर प्रकार के ठाट वाट से। अम्वर=आकाश। विहस=हास्यरस। लडकावौ=लटकाओ। विधोकत=विधियुक्त लोने=लावण्य युक्त। दुरि दुरि=छिपछिपकर। होरी खेल के अन्तर्गत व्याहवलों का वर्णन करते हुए कहते हैं ।:—

॥ दोहा ॥

हे सजनियो ! आप सब मिलकर यहाँ पधारें । निकुन्ज में होरी केलि को बहुत भावों से विलसाकर श्री लड़ैती जू के लाल लडा आवें ॥

॥ पद ॥

सब सजनियाँ आकर मिलकर लड़ेती जू के लाल को लडावें । निकुञ्ज में होरी खेल रचें लाल को प्रियाजू के साथ होरी खिलावें ॥ १ ॥ रंगीले प्यारे को चोवा चन्दन आदि चरचाकर रंग से भरावें ॥ २ ॥ सब सखियाँ अपनी अपनी पिचकारियाँ लै लैकर पधारें, उनसे रंग छड़क छड़क कर छवीले लाल को रीझावें ॥ ३ ॥ अवीर गुलाल इतना उडावें जो आकाश में बादल की तरह छा जावे ॥ ४ ॥ भान्ति भान्ति के वाजे वजाकर उर आनन्द उपजावें लाल को रीझाकर फगवा मंगावें । एवं प्रकार से केलि करके अब ब्याहवला रूपी हास्यविलास केलि द्वारा दोनों के आनन्द को वढ़ावें ॥ ६ ॥ सर्व प्रथम दोनों के अँगों में उबटना लगावें फिर केशर के नीर से स्नान करावें ॥ ७ ॥ सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहिरावे फिर सुख पूर्वक आसनों पर विराजमान करावें ॥ ८ ॥ कमल की माला बनाकर श्रीलालजू के गले में धारण करावें ॥ ९ ॥ रोली का तिलक लाल के मस्तक पर रचाकर उस पर मोतियों के अक्षत लगावें ॥ १० ॥ रुचि वढ़ाने वाली वीडिआँ वना कर जुगल को खवावें और इनकी रूप माधुरी को देख देख कर अपने-अपने नैनों को सिरावें ॥११॥ फिर विधिउक्त अर्थात जैसी प्रकार विधि है उसके अनुसार वेद की ऋचाओं का पाठ कराओ ॥१२॥ फिर गुणों से भरी हुई सुन्दर सुन्दर गारियाँ गाबैं और हो हो शब्द सुना सुना कर लालको हंसै ॥१३॥ "हे प्यारे ! वास्तव में आप गोरे हैं केवल दीखने मात्र के आप काले हैं ॥१४॥ सो तो यह हमारा ही दोष है क्योंकि हमारे नेत्रों में काला काजल लगा हुआ है उसके प्रभाव से आप काले प्रतीत होते हैं ।१५। अच्छा अब जान गई जान गईं हमारे से आप की कौनसी बात छुपी हुई है ॥१६॥ नहीं तो हम उसदिन की कहदेंगी जिनकी बोलन अत्यन्त प्यारी है उसके तुम................॥१७॥ अच्छा आप बहुत अच्छे हैं, आपके पीछे कौन पड़े ॥१८॥ अहो ! बड़े आश्चर्य की बात है आप अधर सुधा के अनुराग में फंस कर उस दिन प्यारीजी के पायन लगे थे ॥१९॥ आप हमारे प्यारे हैं इसलिये आप के इस प्रकार के बहुत कर्म हैं हम कहाँ तक कहैं कहना नही चाँहती हैं ॥२०॥ कहो इसमें भी कोई बड़ाई है । हमने स्वयं अपने आखों से आप को हा हा खाते हुए देखा है ॥२१॥ हे मोहन ! आप अत्यन्त लावण्य युक्त हैं । आप जैसा न तो पहिले कोई हुआ नहीं आगे होने की आशा है ॥२२॥ आप शरमा क्यों गये ?

नीचे नीचे क्या झाँक रहे हैं आप की आंखों से ऐसा प्रतीत होता है मानो ये लाज से लपेटी हुई हैं ।।२३।। हे मोहन आप कैसे हैं ? क्या आप उनके गुण भूल गये जिन्होंने कमल की माला पहिनाकर आपको लाड़िले लाल बना दिया है ।।२४।।२५।। आप को हम गारियाँ कहाँ तक सुनावें । हम तो बारबार आपके मुखारविन्द पर जल वारि वारि के पीती हैं ।।२६।। यह रङ्ग होरी धन्य हैं जिस में श्रीहरि एवं प्रिया की जोरी ऐसी सुशोभित है ।।२७।। रङ्ग हो हो इत्यादि । अब इन दोनों का परस्पर गठजोर जुड़ावो । और इनको प्रेम रूपी पाक में परिपक्व करौ ।।२८।। अव इनकी जल्दी से भावरि फिराओ फिर गौने का चार अर्थात् गौने सम्बन्धी सब नेग जोग कराओ ।।२९।। महल में सेज बिछाकर अब दुल्हा दुल्हनि को सैन कराऔ ।।३०।। इस समय की झाँकी को छुप छुप कर देखो और अपने २ भागों को सहराओ । एवं प्रकार के आनन्द में रात्रिव्यतीत करौ ।३१। अपने अपने भाग्यों को धन्य धन्य मनाती हुई मन वाँछित सब फलों को प्राप्त करौ ।।३२।। प्रसन्नता का अनुभव रूप हाथों की अगुलियाँ चटकाओ । एवं प्रकार से श्रीहरि एवं प्रिया की बार बार बलिहारी जाओ ।।३३।।

।। दोहा ।।

अमल कमल की माल उर सौहैं बर नैंन बिसाल ।
रंगमहल श्रीहरिप्रिया जिया भाँवते लाल ।।

।। पद ।।२१।।

लाल मेरे भाँवते जियके सोहैं बर नैंन सलोने बिसाल ।
सोहनी सूरति मोहनी मूरति पूरति प्रेम रसाल ।।
अति सुढार सुन्दर उर ऊपर अमल कमल की माल ।
लहलहाति लावनि रँग भीनी महमहाति गुन जाल ।।
रङ्गमहल में राज करौ दिनि दूलह दुलहिनि बाल ।
श्रीहरिप्रिया प्रियाहरि छबि लखि लोचन होत निहाल ।।२१।।

अमल कमल की माल=स्वच्छ कमलों की माला । यहाँ हस्त कमलों का गले में माला की तरह धारण करने से तात्पर्य है "कर पद वर अंसन पर ढाल । सोई कही कमल की माल ।" (तालिका) लहलहाति=लटक रही है । लावनि=सुन्दरता । महमहाति=सुगन्ध उठरही है । गुन जाल=गुण समूह । पद न० ६ में रसिक दम्पति होरी खेल के वाद शय्या पर पधारे हैं । परस्पर गल बहियाँ दिये हुए युगल की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए कहते हैं ।

॥ दोहा ॥

रंग महल में श्रीहरि एवं प्रिया जो हमारे प्राणों के भांवते लाल हैं परस्पर कैसे गल बहियाँ दिये हुए हैं। इनके सुन्दर तथा विशाल नैन कमल कैसे सुशोभित हो रहे हैं।

॥ पद ॥

ये दोनों मेरे प्राणों के भाँवते लाल हैं इन के नेत्र कमल कैसे विशाल और सुन्दर हैं। रसिक दम्पति की यह सोहनी सूरत और मोहनी मूर्ति रसीले प्रेम से पूरित है। हस्त कमलों की परस्पर गल बहियाँ दिये हुए ये ऐसे सुशोभित हैं, मानों इनके अति सुढार सुन्दर हृदयों पर स्वच्छ कमलों की मालाऐं लटक रही हैं, जो इनकी रङ्ग भीनी लावण्यता तथा गुण समूहों से मिलकर सुगन्ध से महक रही हैं। ये दोनों दुलह दुलहनी लाल सदा ऐसे ही रङ्ग महल में राज करते रहैं। श्रीहरि प्रिया सखी के लोचन श्रीप्रिया प्रीतम की यह छवि देख देख कर ऐसे ही निहाल होते रहें॥

॥ दोहा ॥

अलक लड़ीलौ छबीलौ अति रस भर्‌यौ उदार।
निसिदिन चित चिहुँट्‌यौ रहै हिय कौ मंडनहार॥

॥ पद ॥२२॥

मेरौ अलकलड़ीलौ अलबेलौ हो अलबेलो हियरेको मंडनहार।
एक पलक बिसरै न बिसार्‌यौ धार्‌यौ गहि उरजन अगवार॥
रङ्गरँगीलौ छैलछबीलौ अति रसभर्‌यौ उदार।
फाग खिलावत फूलसों मोहि करि करि बहु मनुहार॥
मृदुल मनोहर मंजुलौ सोहत सुखद सुढार।
आनँदकंद भर्‌यो मकरंदै सहज सौरभ उदगार॥
लागत प्यारौ प्राननि ते मोहिं सुमनहुं ते सुकुंवार।
बिछुरि परै जो तनकहुं तन ते बीतत कलप अपार॥
चिहुंट्‌यौ रहै चिपायतौ चित चिमतकार सुखसार।
श्रीहरिप्रिया प्रेमरसरंजन संजन सुरत बिहार॥२२॥

अलक लड़ीलो=लाड़ करने के योग्य लाड़िलो। मंडनहार=सुशोभित करने वाला

हार । उरजन=वक्षोज । गहि=धारण किया है । अगवार=वक्षोजों का अग्रभाग जैसे रंग का । मनुहार=खुशामद । मंजलो=सुन्दर । मकरंदै=सुगन्ध । सौरभ उदगार= सुगन्ध की लपटें । रंजन=रञ्जित करने वाला । संजन=आसक्त होना । पद न० २१ में युगल परस्पर गलबहियाँ दिये हुए सुशोभित हैं । उसी अवस्था में प्यारीजू अपने प्यारे को हृदय से लगाये हुए कह रही हैं ।

॥ दोहा ॥

लाड़ करने के योग्य ये मेरे लाड़िले छबीले प्यारे असमोर्ध्व रस से भरे हुए अत्यन्त उदार हैं । ये रातदिन मेरे हृदय से चिपटे रहते हैं । इनहीं से मेरे हृदय की शोभा है । ये हार की तरह मेरे हिय पर सुशोभित रहते हैं ।

॥ पद ॥

ये मेरे अलक लड़ीले अलबेले मेरे हृदय को हार की तरह से अलंकृत करते रहते हैं । ये मुझ से एक पलक के लिये भी अलग करने से भी अलग नहीं होते हैं । यह सदा मेरे उरोजों से गाढ़ आलिङ्गन किये रखते हैं । इसी कारण से वक्षोजों के अग्रभाग श्याम हो गये हैं । मेरे प्यारे रङ्ग रंगीले छैल छवीले असमोर्ध्व रस से भरे हुए अति उदार हैं । यह बहुत मनुहार करि करि के मुझको फूल से फाग खिलाते हैं । श्लेषार्थ यह है :—रसिक दम्पति के अङ्ग प्रत्यंगों में रङ्ग विरंगे आनन्द रूपी फूल खिले हुए हैं । गाढ़ आलिङ्गन चुम्बनादि में उनका परस्पर मिलना ही फूल से फाग खिलाना है ॥१॥ मेरे प्यारे अत्यन्त मृदुल, मनोहर सुन्दर तथा अच्छी प्रकार से सुख प्रदान करने वाले हैं । इनका दिव्य मङ्गल विग्रह साक्षात् आनन्द से गठित है जिसमें से स्वाभाविक सुगन्ध की लपटें उठ रहीं हैं ॥२॥ मुझ को ये प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं और फूलों से भी अधिक कोमल लगते हैं । मेरे प्यारे मुझसे यदि एक क्षण के लिये भी विसर जावे तो वह क्षण काल मुझको अपरमित कल्पों के समान व्यतीत होता है ॥३॥ यद्यपि ये मेरे हृदय से सदा चिपटे रहते हैं तो भी इन में एक और अलौकिक चमत्कार है जो मेरे सब सुखों का सार स्वरूप है, याने इनके चित्त में एक चेप है जिस के प्रभाव से ये अपने स्नेहियों के हृदयों से सदा चिपके रहते हैं । श्रीहरिप्रिया सखी जी कहती हैं । यह हरि, श्रीप्रियाजू के प्रेम रस को रञ्जन करने वाले और सुरत विहार में इनकी आसक्ति बढाने वाले हैं ॥

॥ दोहा ॥

मनमोहन बसकारिनी नखसिख रूप रसाल ।
सो स्वामिनि नित गाइये रसिकिनि राधा बाल ॥

॥ पद ॥२३॥

रसभीनी श्रीराधा गाइये हो गाइये हो मोहन जाके आधीन ।
नैन सलोननि ऊपर वारों खंजन मृग अरु मीन ॥
नासा बारी सुबरनी मधि मुक्ताहल छबि देत ।
अति चंचल चित प्रानप्रीतम को नितहिं चुराये लेत ॥१
अरुन बरन बेंदी राजत हैं ललित भाल छबि जाल ।
सहज सलोनी सोहनी जाहि देखत मोहे हैं लाल ॥२
अति अद्‌भुत वर बनक की सोहैं तनक कनक की आड़ ।
निरखत नागर नाह के चित होत चौगुनो चाड़ ॥३
हीको हर नीको फबै सिर टीको जटित जराय ।
जीको जीवन जानिहैं जो देखत रहत लुभाय ॥४
मुक्तावलि सों हिलि जु मिली है अलकावली अनूप ।
रसिया रसिकबिहारी को मन बिबस होत लखि रूप ॥५
सोहत कोमल कनकजरे नग करनफूल समतूल ।
मदनमोहन जिय जीवनि तनकी मेटत मन्मथ सूल ॥६
गोल कपोल अरुन अधरन छबि चिबुक दिठौना चार ।
कंठ पोति जगजोति उरस्थल राजत हीरन हार ॥७
कसी अतलसी कंचुकि कुचपर बाहुनबर केयूर ।
स्याम चुरी कंकन पहुँची करपत्र प्रभा भरपूर ॥८॥
अँगुरिन में मुँदरीमणि मंडित करतल मेंहदी लाल ।
कटि अति क्षीन कसी लहँगापर छुद्रावलि छबि जाल ॥९
पीन नितम्ब रम्भ जंघा जुग जानु पिडुरियां सुढार ।
अटी रहत अतरौटा ओटनि तदपि मचावत मार ॥१०
जेहरि नूपुर चरन पृष्ठिपर रतन जटित पदपान ।
अनवट बिछियन की छबि देखत मोहत रसिक सुजान ॥११
और कहाँ लगि बरनिये अभरन अँग अँग ओप अपार ।
गौर गात अवदात अनूपम पहरि नीलाम्बर सार ॥१२

रमझम डोलति सहचरि सँग लिये दिये भुजा पिय अंस।
मानहु रूपसुधा सरवर में सोहत हसनि हंस ॥१३
नाना केलि कला कौतूहल बिलसत हैं बन माँहि।
सकल सुखन की सम्पति दम्पति देखत दृग न अघाहिं ॥१४
मन्द मन्द मृदु हँसनि मनोहर लसनि दसन मुखचन्द्र।
करत प्रकास सकल बन बीथिन निरखत बढ़त आनन्द ॥१५॥
नवल लाड़िली लाल ललित रस लीला सहज सुदेस।
गावत सुनत सराहन जे कोऊ किये हैं सुकृत विसेस ॥१६
यह जु ध्यान हिय-धरनि में धरि सुमिरत साँझ सबार।
श्रीहरिप्रिया रीझि अपनपौ देत न लावत बार ॥१७॥

रस भीनी=रस में भीगी हुई। नासावारी=नासिका की बाली अर्थात् नथ। सुवरनी=स्वर्ण की मुक्ताहल=हिलता हुआ मोती। अरुण=लाल वनक=बनावट। नाह=दुल्ह=पति। ही=हिय=हृदय। हिलि=झूमकर। समतूल=रूई के समान हलके। मन्थन दिव्य काम। चिवुक दिठोना=ठोडी की वैन्दी। उरस्थल=हृदयपर। अतलसी= रेशमी मखमल केयूर=वाजूवन्ध। कर्कन=कडे। पत्रप्रभा=हस्त कमलों पर केशर कस्तूरी आदि की रेखाऐं।मुदरी=अँगूठी। छुद्रावली=क्षुद्र घंटिका=कौन्धन पीन नितम्व=भारी कटि पश्चात भाग। अतरोटा=सारी केनीचे धारण करने का छोटा लंहगा। जेहरि=चरण के आभूषण का नाम। पदपान=चरफूल अनवट=अँगूठा में पहनने का विछवा अथवा अनुपम। अवदात=सुन्दरा लसन= सौन्दर्य सुदेश=सुन्दर नियम पूर्वक। पद न० ८ की समाप्ति में श्रीहरि को श्रीप्रियाजू के प्रेम रस को रञ्जन करने वाले तथा सुरति विहार में आसक्ति बढ़ाने वाले कहा गया है। अब इस पद द्वारा ग्रन्थकार प्यारीजू के अङ्ग प्रत्यंगो में प्यारे की किस प्रकार की आसक्ति है उस को निर्देश करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

उन स्वामिनी जी रसकिनी श्रीराधा वाल को नित्य गाईये, जो अपने प्यारे मन मोहन लाल को वश करने वाली हैं और जिन का नख से शिख पर्यन्त रूप रस से भरा हुआ है।

॥ पद ॥

रस से भरी हुई उन श्रीराधारानी के यश को गाइये, जिन के इनके प्यारे मोहन

सदा आधीन रहते हैं। इनके नेत्र कमलों की लावण्यता ऊपर खञ्जन पक्षी की चञ्चलता मृग के नेत्रों की सुन्दरता और मीन की गति को बार फेर करके डालदेवें। नासिका पर स्वर्ण, के नथ के हिलते हुए मोती कैसी शोभा दे रहे हैं। इनकी हिलन प्यारे के अति चञ्चल चित्त को नित्य चुराती रहती है ॥१॥ प्यारी के ललित भाल पर छवि जाल स्वरूप लाल रङ्ग की वेंदी सुशोभित है इसकी स्वाभाविक लावण्यता और सुन्दरता को देखकर लालजू मोह को प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥ प्रियाजू के मस्तक पर अति अद्भुत बनावट की स्वर्ण की छोटीसी आड़ सुशोभित है जिसको देखकर इनके प्यारे दुल्ह की चित्त में इनको देखने का चौगना चाव बढ़ता है ॥३॥ इनके शिरपर रतन जटित "टीका" लाल के हृदय को हरन करने वाला अत्यन्त फब रहा है जिसे प्यारे अपने जीवन का सहारा समझकर देख देख कर लुभाते रहते हैं ॥४॥ मुक्ताबली अर्थात् मुखारविन्द की मोतियों की (बन्धनी) साँकल से झूमती हुई अलकावली अनूपम भांन्ति से आकर मिली है जिसको देखकर रस पिपासु रसिक विहारी का मन विवश हो जाता है ॥५॥ प्यारीजू के कानों में कोमल स्वर्ण के रत्न जटित रूई की तरह से हलके कर्ण फूल सुशोभित हैं जो मदन मोहन के प्राणों को जीवन प्रदान करने वाले हैं, और उनके तन की दिव्य काम सम्बन्धी पीड़ा को शान्त करने वाले हैं ॥६॥ प्यारीजू के गोल कपोल हैं, ओठों की छबि लाल है और ठोड़ी पर सुन्दर विन्दनी सुशोभित है कण्ठ पोत की ज्योति जगमगा रही है और हृदय पर हीरों का हार सुशोभित है ॥७॥ कुचों पर रेशमी कञ्चुकी कसी हुई है और बाहुओं पर बाजूबन्ध बन्धे हुए हैं। हाथों में श्याम चूरी, कड़े तथा पोंहचियाँ पहने हुए हैं और हाथों पर कस्तूरी केशर आदि की रेखाऐं अङ्कित हैं ॥८॥ अंगुलियों में मणि मण्डित अंगूठियाँ पहने हुए हैं हाथों की हथेलियाँ मंहिदी से लाल रञ्जित हैं। कटि अत्यन्त पतली और क्षुद्र घंटिका अर्थात् कौंधनी छबि जाल स्वरूप है जो लँहगा पर कसी हुई है ॥९॥ कटि पश्चात भाग अति भारी है दोनों जंघाऐं केले सदृश हैं गोडे और पिडुरियाँ सुढार है। यद्यपि ये सब अङ्ग अतरोटा से ढके रहते हैं तो भी रूप माधुरी इतनी जगमगा रही है कि वह वस्त्र में से बाहिर फूटकर प्रकट हो रही है ॥१०॥ चरणारविन्दों में जेहरि व नूपुर पृष्ट भाग पर रतन जटित पद पान, और अनूपम विछियों की छबि देख देख कर रसिक सुजान लालजू मोह को प्राप्त हो जाते हैं ॥११॥ प्यारीजू के और आभरणों का हम कहाँ तक वर्णन करें आप के अङ्ग प्रत्यंग ही आभरण स्वरूप हैं जिन की शोभा अपार है। आप के गौर अङ्ग की अनूपम कान्ति है और आप नीले रङ्ग की सारी पहने हुए सखियों को साथ लिये हुए प्यारे की गल वहियाँ दिये हुए रिम-

झिम रिमझिम टहल रही हैं, ऐसा प्रतीत होता है मानों रूप सुधा रूपी सरवर में हंस हंसनी का जोड़ा किलोल कर रहा हो ॥१२॥१३॥ सब सुखों की सम्पति स्वरूप रसिक दम्पति अनेक प्रकार की कोक कला सम्बन्धी केलियों तथा खेलों को श्रीवृन्दावन की कुंजों में बिलसते रहते हैं जिन को देख देख कर सखियों के नेत्र अघाते नहीं हैं ॥१४॥ जब ये मन्द मन्द मुस्कराते हैं, तब इनके मुख चन्द्रों की दन्तावलियों की मनोहर व सुन्दर कान्ति से सकल वन वीथियों में प्रकाश फैल जाता है जिसको देख देख कर आनन्द की वृद्धि होती रहती है ॥१५॥ इन नवल लाड़िली लाल की ललित रस लीलाओं को जो कोई सुदेश अर्थात् सुन्दर नियम पूर्वक गाते हैं, सुनते हैं अथवा सहराना करते हैं, उन्होंने महत् कृपा जन्य कोई बड़े भारी सुकृत किये हैं ॥१६॥ उपरोक्त वर्णित ध्यान को जो कोई साधक अपने हृदय रूपी धरणी में धारण करके सायं काल तथा प्रातः स्मर्ण करेंगे, उनपर श्रीहरि एवं प्रिया रीझ जावेंगे और अपनपौ उनको प्रदान करेंगे अर्थात् अपनी कृपा दृष्टि से उनको कृतार्थ करेंगे ॥१७॥

॥ दोहा ॥

हो हो होरी खेलहीं दोउ रसिक रसभीनि ।
संग लिये ललना सरस अपनी अपनी बीनि ॥

॥ पद ॥२४॥

हो हो हो रङ्ग होरी खेलें, संग सरस रस भीनी ललना ।
हो हो दोउ रसिक रसभीने केलें, संग सरस रस भीनी ललना॥१
हो हो ललना हो हो हो हो हो ।
हो हो रंगरँगीली सखी सब आई । संग० ।
हो हो लागति हैं अति परम सुहाई । संग० ॥२
हो हो अपनी अपनी भीरी लीनी । संग० ।
हो हो चारि चारि सखि एकत कीनी । संग० ॥३
हो हो रँगदेवी श्रीप्रियाजू लीनी । संग० ।
हो हो चम्पकलता प्रीतम दिसि कीनी । संग० ॥४
हो हो सखी सुदेवी प्रियाजू लीनी । संग० ।
हो हो चित्रासखि प्रीतम दिसि कीनी । संग० ॥५
हो हो ललिता सखि प्रियाजू लीनी । संग० ।

हो हो तुंगविद्या प्रीतम दिसि कीनी। संग० ॥६
हो हो सखि विसाखा प्रियाजू लीनी। संग०।
हो हो इंदुलेखा प्रीतम दिसि कीनी। संग० ॥७
हो हो निकसि निकसि दोउ भये दुहुं ओरी। संग०।
हो हो प्रीतम स्याम प्रिया तन गोरी। संग० ॥८
हो हो विविध खेलकी सौंजनि साजें। संग०।
हो हो सरस सुभट रनधीर विराजें। संग० ॥९
हो हो रच्यौ है खेल रसरेल पेलकौ। संग०।
हो हो केसरि बारि फुलेल बेल कौ। संग० ॥१०
हो हो रङ्ग रङ्ग की भरि पिचकारी। संग०।
हो हो मार मची दुहूं ओरन भारी। संग० ॥११
हो हो विविध अबीर गुलाल उड़ायौ। संग०।
हो हो बरन बरन घन अम्बर छायौ। संग० ॥१२
हो हो अन अन भांति बाजने बाजें। संग०।
हो हो मनहुँ मेघ मङ्गल धुनि गाजें। संग० ॥१३
हो हो वरषा कौ कछु वार न पारा। संग०।
हो हो दोउ घन दामिनि भये उदारा। संग० ॥१४
हो हो आनन्द सिन्धु बढ़्यौ अधिकाहीं। संग०।
हो हो मगन भये सब के मन माहीं। संग० ॥१५
हो हो तव इच्छा अनुसारिनि सोऊ। संग०।
हो हो सुरति जहाज चढ़ाये दोऊ। संग० ॥१६
हो हो आय स्वरूप सरोवर न्हाये। संग०।
हो हो पहरे पट अभरन मनभाये। संग० ॥१७
हो हो रतन सिंघासन पर पधराये। संग०।
हो हो भाँति भाँति के भोग लगाये। संग० ॥१८

हो हो तिलक रचायऽरु पान खवाये। संग०।
हो हो करि आरति हरिप्रिया पौढ़ाये। संग० ॥१६॥

चीनि=छाँटना। रस भीनि=रस में पगा हुआ। भीरी=यूथ। सौंजनि=सामग्रीयाँ। रस रेल पेल=रस के समूह का स्त्राव होना। फुलेल वेल=बेला का ईतर। अन अन भान्ति वहुत प्रकार के। सुरत जिहाज=सुरत रूपी समुद्र में तैरने के लिये देह रूपी जिहाज चढ़ाये अर्थात बिलास में प्रवृत हुए। प्रकट होरी खेल को वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

अपनी अपनी सरस सखियों को छाँट छाँट कर अपनी अपनी ओर करके, रस में पगे हुए दोनों रसिक रसिकिनी हो हो कह करके होरी खेल रहे हैं।

॥ पद ॥

हो हो ललना! अर्थात् हे सखियो रस में भीगे हुए दोनों रसिक रसिकिनीजू रस केलि रूप रंग होरी खेल रहे हैं। रंग रंगीली सब सखियाँ सरस रस में पगी हुई अपने अपने यूथ की सखियों को साथ ले लेकर रसिक दम्पति के साथ होरी खेलने के लिये पधारी हैं। इन का इस प्रकार से आना अत्यन्त सुन्दर लगता है यूथेश्वरियों में से चार चार सखियाँ अपनी अपनी यूथ की सखियों को साथ ले लेकर दोनों ओर हुई हैं ॥३॥ (इस का प्रकार कहते हैं) श्री रंग देवीजू को इनकी सखियों के साथ श्री प्रियाजू ने अपनी ओर ली हैं और श्री चम्पकलताजू को उनके यूथ की सखियों के साथ प्रीतम की ओर की है ॥४॥ श्री सुदेवी जीको इनकी सखियों के साथ श्रीलड़ैतीजू ने अपनी ओर ली हैं और श्रीचित्रा सखी जूको उनके यूथ की सखियों के साथ लालजू की ओर की है ॥५॥ श्री ललिता सखी जी को इनके यूथ की सव सखियों सहित श्री प्रियाजू ने ली हैं। और श्री तुंग विद्या सखी को उनके यूथ की सखियों के साथ प्रीतम की ओर की हैं ॥६॥ श्री विशाखा सखीजू को इनके यूथ की सखियों सहित श्री प्रियाजू ने ली हैं और श्रीइन्दु लेखाजू को उनके यूथ की सखियों के साथ प्रीतम की ओर की हैं ॥७॥ दो दो सखियाँ अपने अपने यूथ की सखियों को साथ लै लैकर आती जाती हैं इन में से एक अपने यूथ सहित प्रीतम श्याम सुन्दर की ओर होती जाती है और दूसरी अपने यूथ की सखियों के साथ गौरांगी श्रीप्रियाजू की ओर होती जाती हैं ॥८॥ एवं प्रकार से सब सखियों के २ बड़े यूथ हो गये हैं एक लालजू का यूथ दूसरा श्रीप्रियाजू का यूथ। सब सखियाँ खेल की विविध प्रकार की सामग्रियाँ लिये हुये है। सब सखियाँ इस सरस युद्ध की मानों सुभट रणधीर योद्धा हैं ॥६॥ इन दोनों यूथों ने ऐसा खेल रचा है जिस में रस के समूह का स्त्राव हो रहा है। केसर का

जल और वेला का इतर परस्पर छिड़का जा रहा है ॥१०॥ रङ्ग विरंगी पिचकारियाँ दोनों तरफ से छूट रही हैं दोनों ओर से भारी मार मचाई जा रही है ॥११॥ विविध प्रकार का अवीर और गुलाल उड़ाया जा रहा है जिस से आकाश में रङ्ग विरंङ्ग वादल से छागये हैं ॥१२॥ भान्ति भान्ति के बाजे बज रहे हैं। ऐसा मालूम होता है मानों मेघ मङ्गल ध्वनि से गरज रहे हैं ॥१३॥ वर्षा का कुछ आर पार नहीं है, मानों घन दामिनी स्वरूप दोनों प्रियाप्रीतम उदार होकर रस वर्षा रहे हैं ॥१४॥ आनन्द सिन्धु इतना अधिक बढ़ गया जो वर्णन नहीं किया जा सकता है। जिस के प्रभाव से सबके मन प्रसन्न हो गये ॥१५॥ इस के पश्चात् इच्छा सखियों की अभिलाषा से आप दोनों सुरति केलि विलास रूपी समुद्र में ऐसे विहार करने लगे मानों कोई अनिर्वचनीय जहाज सुरत रस सागर में तैर रहे हों ॥१६॥ फिर आप स्वरूप सरोवर पधारे और सब सखियों के साथ आप दोनों ने उस में स्नान किया। फिर सब सखियों के साथ अपने नये नये पट आभूषण धारण किये ॥१७॥ बाद में आप दोनों सब सखियों को साथ लेकर रत्नसिंहासन पर सुशोभित हुए सखियों ने आपके भान्ति भान्ति के भोग लगाये ॥१८॥ फिर आचमन कराकर दोनों के भालों पर सखियों ने तिलकों की रचना की और बीरी अरुगवाईं। समाप्ति में आरती करके श्रीहरि एवं प्रिया को शयन कराया ॥१९॥

॥ दोहा ॥

ज्यों ज्यों कहों त्यों त्योंहिं रंग रेले अंग सुहाव।
सहज रँगीलो भाँवतौ श्रीहरिप्रिया बन्यौ बनाव ॥

॥ पद ॥२५॥

मेरौ रँगीलौ भाँवतौ।
ज्यों ज्यों कहों त्यों त्योंही केलें रेलें रङ्ग सुहावतौ ॥
जो कहौं कमलकुंज में चलिये तौ न करै अनचावतौ।
जो कहौं कमलनिकुंज केलियै तौ करै यही कहावतौ ॥
निसिदिन रुख लिये ही सनमुख रहत सुखें सरसावतौ।
श्रीहरिप्रिया मो में श्रीहरिप्रिया सहजहिं बन्यौ बनावतौ ॥२५

कमल कुंज=कुंज का नाम जो कमलों से सुसजिज्त की गाई है। कमल निकुंज= रसिक दम्पाति के दिव्य मंगल विग्रह। निजता सुभग रक्तमनि कहिये। कमल निकुंज कमल हुलहिये(तालिका)श्रीहरिप्रिया मोमें में श्रीहरि प्रिया सहज ही बन्यों बनावतौ=हे

श्रीहरि प्रिया यह हरि मुझमें स्वाभाविक ही इस प्रकार से भाव रखते हैं कि मैं इनकी प्रिया हूँ। अर्थात् पतिव्रता स्त्री जैसे पति के आधीन रहती है। यह हैं तो मेरे प्रीतम परन्तु मुझमें प्रिया सरीखे भाव का आचरण करते हैं। श्रीप्रियाजू अपने प्यारे का स्वभाव वर्णन करतीं हुई कहती हैं। :—

॥ दोहा ॥

रंगीलो भाँवतो इन श्रीहरि में स्वाभाविक ही प्रिया का वनाव बना हुआ है। क्योंकि मैं इनको जिस जिस प्रकार से कहती हूँ उसी उसी प्रकार से केलि करने में यह तत्पर हो जाते हैं और उसी में यह अपना सौभाग्य समझते हैं।

॥ पद ॥

यह रङ्गीले लाल मेरे मन की भाँवती हर समय करते रहते हैं। जिस जिस प्रकार से मैं कहती हूँ उसी उसी प्रकार से इनको भी मेरीबात सुहाबनी लगती है फिर अनुराग सहित मेरी आज्ञा अनुसार उन केलियों के समूह को करने लगते हैं। यह कभी भी मेरा अन चाहा नहीं करते हैं। जो मैं इन से कमल कुञ्ज चलने के लिये कहती हूँ तो वह उसी समय वहाँ चलते हैं। जो मैं इनसे दिव्य मङ्गल विग्रह रूपी निकुञ्ज में केलि करने की कहती हूँ तो यह मेरी कहने की देरी है उसी केलि में प्रवृत्त हो जाते हैं। इन से मेरा सुख सदा सरसाता रहता है और यह हर समय निशदिन मेरा रुख लिये हुए मेरे सन्मुख खड़े रहते हैं। हे श्रीहरि प्रिया सखी। मुझ में यह श्रीहरि, प्रिया होने का स्वाभाविक ही बरताव करते हैं। अर्थात् यह हैं तो मेरे प्रीतम परन्तु मुझ से ऐसा बरताव करते हैं मानों मैं इन की प्रिया हूँ।

॥ दोहा ॥

दूनै चित चावै चढ़ी बढ़ी उमँग अँग अंग।
कैसी बरसत आज की रङ्गविभावरि रङ्ग॥

॥ पद ॥२६॥

आजु की रङ्ग विभावरी।
बरषत रङ्ग रँगीले दोऊ लड़कावरी॥
रंगरँगीले चंद्रन की रहि चटकि चांदनी चावरी।
रंगरँगीले श्रीहरिप्रिया संगहि दूने रंग चढ़ावरी॥२६

विभावरी=रात्रि। लड़कावरी=लड़कौ+अरी लड्धातु का अर्थ खेलना है। अक

प्रत्य कर्तृ में होने से खिलाडी अर्थ हुआ दोनों होने से लडकौ+अरी बना। अर्थात् अरी हे सखी दोनों खिलाड़ी हैं। रात्रि के विलास को वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति के अङ्ग प्रत्यँगों में उमँग और चाव दूना चढ़ा बढ़ा हुआ है। आज की रङ्गीली रात्रि में कैसा रङ्ग वर्ष रहा है।

॥ पद ॥

हे सखी ! आज की रङ्गीली रात्रि में ये दोनों रङ्गीले खिलाड़ी कैसी रङ्ग की वर्षा कर रहे हैं। इन दोनों रङ्ग रङ्गीले चन्द्रमाओं की चाव रूपी चान्दनी कैसी छिटक रही है। श्रीहरि प्रिया सखी इन रङ्ग रङ्गीलों के साथ हैं यह इनका दूना रङ्ग बढ़ा रही हैं॥

॥ दोहा ॥

लियें फूल की हाथ में छरी भरी अनुराग।
रंगरँगीली सखिन सँग श्रीस्यामाजू खेलत फाग॥

॥ पद ॥२७॥

श्रीस्यामाजू खेलत रङ्गभरी रँग हो हो हो हो हो होरी।
रङ्गरँगीली सहचरि सँग लियें हाथनि फूल गुलाब छरी॥
एक ओर कीने मनमोहन तिनकी सखी तिन ओर करी।
रमकि रमकि उसकरन लियें कर झमकि झमकि आईं सबरी॥१
उड़ि जु गुलाल अरुन भयो अम्बर पिचकारिनकी लागि झरी।
बढ़्यौ खेल रसरेल पेलकौ सुधिहू की जहाँ सुधि बिसरी॥२
डफहि बजावति गावति चाँचरि गारि धमारिन धूम परी।
भयौ है बिपिन सब राग रङ्गमय कौतुक बरन्यौ जात न री॥३

॥ चाँचरि ॥

या मतवारे मीत सों मिलि चाँचरि खेलौ री!
कोउ रहौ न अकेलि अकेलिय हेली सुनौ सब हेलौ री!४
चोबा चन्दन अरगजा लै रँग में रेलौ री!
और अबीर गुलाल उड़ै बूकाबन्दन मेलौ री!५

होय निसंक सुटंक टरौ जिनि जानि अबेलौ री !
छैल के फैल की सैल सबैं सोई आज उजेलौ री !६
बहु दिनकी मनकी रली भलीभाँति सकेलौ री !
श्रीहरिप्रिया प्रताप तें दुख पाँयन पेलौ री !७
उठी उमँग उर अलबेली के मुख लेपन मिस आनि अरी !
श्रीहरिप्रिया निसंक अंकभरि लीनी प्रान सजीवन जरी ॥८॥२७॥

रमकि रमकि=आनन्दित होकर। उपकरन=खेल की सामग्रियाँ। रस रेल पेल=रस के समूह का परस्पर धक्का लगना। सुधि=मूर्तिमान सुधि विज्ञान रूपी देवी। चाचरि=एक खेल का नाम जिस में परस्पर एक दूसरे को धक्का लगा लगाकर खेलते हैं। धमार=होरी का एक प्रकार का गायन का नाम। अरगजा=इतर। वूका वन्दन चन्दन के वुरादा आदि से एक सुगन्धी द्रव्य बनाया जाता है जो होली खेल में काम आता है। सुटंक=सुन्दर अहंकार से गर्भित होकर। फैल=कपट। पाखण्ड। सैल=अमलस्तपन उनैतौ=प्रकाश करो। सकैलौ=सुन्दर प्रकार से पकड़ौ। कल् धातु से वना हैं अर्थ पकड़ना। पैलौ=रूदना। नष्ट करना। जरी=वूटी। औषध प्रकट होरी खेल में लाल ललना के २ यूथों का चाचर खेल वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

अनुराग में भरी हुई श्रीश्यामाजू फूल की छड़ी हाथ में लेकर रङ्ग रङ्गीली सखियों सङ्ग फाग खेल रही हैं।

॥ पद ॥२७॥

अनुराग में भरी हुई श्रीश्यामाजू हो हो कहती हुई रङ्ग होरी खेल रही हैं। इन के सङ्ग में रङ्ग रङ्गीली सखियाँ हैं। सब के हाथों में गुलाव की छड़ियाँ हैं। दूसरी ओर श्रीमोहन लाल हैं उनकी सखियाँ उन के साथ हैं। हाथों में होरी खेल सम्बन्धी सामग्रियाँ लिये हुए हैं। ये सब आनन्द में रमकि झमकि करती हुई आई हैं। दोनों ओर से गुलाल के उड़ने से आकाश लाल हो गया है। पिचकारियों की झड़ी लगी हुई है। दोनों यूथ एक दूसरे को धकेल धकेल कर खेलते हैं। इस खेल में रस की बाहुल्यता इतनी बढ़ी जो कि सुधि की अधिष्ठातृ देवी की भी मति सुधी भूल गई। डफ बजाये जा रहे हैं। चाचर गा रही है और होलो की गारियों की धूम मच रही है। सब वन रङ्ग से रञ्जित हो गया है हे सखि ! इस खेल के आनन्द को कुछ वर्णन नहीं कर सकते हैं ॥३॥

॥ चाँचरि ॥

हमारे इस मतवारे मित्र अर्थात् लालजू से सब मिलकर चाचर खेलें । हे सखियो ! हमारी बात सुनो कोई अकेली अकेली मत रहो ॥४॥ चोवा, चन्दन और इतर लेकर रङ्ग में मिलाओ । अबीर गुलाल उड़ाती हुई बूका वन्दन परस्पर डालो ॥५॥ इनको अलवेले समझ कर संकोच मत करौ अपितु निशंक भाव से सुन्दर अहंकार से गर्वित होकर उपरोक्त प्रकार के रङ्ग गुलाल से प्यारे को रञ्जित कर दो और इन छैल के कपट पाखंड युक्त कामों को तथा इन का अलमस्त पना को आज अच्छी प्रकार से प्रकाश करौ ॥६॥ हमारे बहुत दिनों की मनों की अभिलाषाओं को बहुत प्रकारों से पूर्ण करौ । इन श्रीहरि एवं प्रिया अथवा श्रीहरि प्रिया सखी के प्रताप से रसिक दम्पति के खेल देखने की लोलुपता रूपी दुख को पैरों से कुचल डालो अर्थात् अतृप्ति पूर्वक खूब खेल को देखलो ॥७॥ अलवेली श्रीप्रियाजू के फिर यह उमँग उठी कि किसी मिस से अपने प्यारे के मुख को लेपन करूँ । श्रीहरि ने यह देखकर अपनी जीवन प्राण समान सन्जीविनी बूटी स्वरूप प्रिया को अपने अङ्क में भर लिया ॥८॥

॥ दोहा ॥

चहुँओरी गोरीनि के मंडल मध्य सुधंग ।
देखौ नटवर नृत्य हरि करत मोहनी संग ॥

॥ पद ॥२८॥

देखौ नटवर नृत्य करत मनमोहन थेई हाँरे हाँरे थेई थेई मुख बोलैं ।
ज्यों ज्यों प्रिया पुलकारत त्यों त्यों बाढ़त पुलक अतोलैं ॥
होरी रसबोरी सब गोरी जोरी चुहुँ दिसि डौलैं ।
गावत गीत बजावत बाजे साजे सुरन अमोलैं ॥
नाग्रिदा ताग्रिदा दित्था थुंग्रिदा थुंग्रिदा ग्रिदा द द द द अति गति खोलैं ।
चरन धरन मनहरन मटक मुख चटकीली चखि लोलैं ॥
रीझि प्रिया पोंछत श्रमवनकन लै निज नील निचोलैं ।
श्रीहरिप्रिया निरखत इकटक दियें कहत हो होरी होलैं ॥२८॥

॥ दोहा ॥

चारों ओर सब सखियाँ मण्डल वान्धकर खड़ी हुई हैं, मध्य में हे सखी ! देखो नटवर हरि मोहनी के सङ्ग कैसे सुधंग नृत्य कर रहे हैं ।

॥ पद ॥

हे सखी देखो ! नटवर मन मोहन प्रिया का गाढ़ आलिङ्गन किये हुए कैसे नृत्य कर रहे हैं । बार बार अपनी प्यारी से कह रहे हैं "आप ही हारी हैं आप ही हारी हैं ।" यह सुन सुन कर प्यारीजू प्रेम से गद् गद् होकर रोमाञ्च हो गई हैं इनको देख कर प्यारे भी अतुलनीय रोमाञ्च हो गये हैं । होरी रस में निमग्न हुई सब सखियाँ रसिक दम्पति के चारों ओर डोल रही हैं । और ये अमूल्य स्वरों को मिलाकर बाजे बजाती हुई गा रही है । और मुखों से नग्रदा ताग्रिदा आदि शब्दों को प्रारम्भ करती हैं । प्यारे की चरण की धरण, मुख की मटक और नेत्रों की चटकीली चञ्चलता से प्यारी का मन हरण हो गया ॥२॥ और वे रीझ कर प्यारे के श्रम विन्दुओं अर्थात् पसीने को अपनी नील ओढ़नी से पूछने लगीं । इस प्रकार से श्रीहरि श्रीप्रियाजू के हस्त कमल के स्पर्श से अपने आप को धन्यभाग मानते हुए उनकी ओर टिकटिकी बान्ध कर देखते हुए कहने लगे "आप धीरे धीरे पसीना पोंछें ताके मैं दीर्घ काल तक इस सुख का आस्वादन कर सकूँ । "अथवा" श्रीहरि प्रिया सखी उपरोक्त झाँकी को एक टक दृष्टि से देखती हुई कहने लगी "धीरे धीरे पूछें ।"

॥ अनुरागिनि धन्यभागा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

रङ्गरँगीली आदि दै मिलि सब सखी सहेलि ।
आई खिलावन रँगभरी रस होरी की केलि ॥

॥ पद ॥२६॥

रस होरी खिलावन आई रँगीली रङ्गभरी ।
लियें कलकंठ्यादि सुहाई रँगीली रङ्गभरी ॥१
रसहोरी खिलावन आई सुदेवी रङ्गभरी ।
लियें कबरा आदि सुहाई रँगीली रङ्गभरी ॥२
रसहोरी खिलावन आई ललिता रङ्गभरी ।
लियें रतन प्रभादि सुहाई रँगीली रङ्गभरी ॥३
रसहोरी खिलावन आई बिसाखा रङ्गभरी ।
लिये माधवि आदि सुहाई रँगीली रङ्गभरी ॥४
रसहोरी खिलावन आई चम्पलतिका रङ्गभरी ।

लिये मृगनैन्यादि सुहाई रँगीली रङ्गभरी ॥५
रसहोरी खिलावन आई चित्रा रङ्गभरी ।
लिये तिलकिनि आदि सुहाई रँगीली रङ्गभरी ॥६
रसहोरी खिलावन आई तुंगविद्या रङ्गभरी ।
लिये मंजुमेधादि सुहाई रँगीली रङ्गभरी ॥७
रसहोरी खिलावन आई इन्दुलेखा रङ्गभरी ।
लिये तुंगभद्रादि सुहाई रँगीली रङ्गभरी ॥८
सखी ए सब आईं सुहाई बनीठनी रङ्गभरी ।
अपअपनी सखी सँग लाईं रँगीली रङ्गभरी ॥९
कर सौंजनि खेल की साजैं चली मिलि रङ्गभरी ।
एक एकते अधिक विराजैं रँगीली रङ्गभरी ॥१०
बहु भाँतिन बाजे बजावैं अनूपम रङ्गभरी ।
डफ में उपजैं उपजावैं रँगीली रङ्गभरी ॥११
गुन गावहिं चौगने चाड़ चढ़ी चित रङ्गभरी ।
लड़ी लाड़ लड़नकें लाड़ रँगीली रङ्गभरी ॥१२
जब लालन कों लिये घेरि उमंगनि रङ्गभरी ।
रँग हो हो हो हो टेरि रँगीली रङ्गभरी ॥१३
तब उठीं सँभारि सँभारि निज निज रङ्गभरी ।
लई सैननि में सनकारि रँगीली रङ्गभरी ॥१४
रच्यौ खेल महारसरेल सहेलिन रङ्गभरी ।
दुहुँ ओरनि ते भइ पेल रँगीली रङ्गभरी ॥१५
पिचकारिन धारनि मारैं निहारैं रङ्गभरी ।
तन सारिन ओट सहारैं रँगीली रङ्गभरी ॥१६
रँग रङ्ग अबीर गुलालैं उड़ावैं रङ्गभरी ।
बूकाबन्दन चन्दन घालैं रँगीली रङ्गभरी ॥१७
दुरिकें मुरि भरैं भरावैं बचावैं रङ्गभरी ।

उलटावनि चितैं चुरावैं रँगीली रङ्गभरी ।।१८
प्रिया लै कर कनक कटोरी केसरि रङ्गभरी ।
छलसो पियके सिर ढोरी रँगीली रङ्गभरी ।।१६
दै दै तारी हँसीं सब वामैं कहैं मुख रङ्गभरी ।
आज गोरे किये घनस्यामैं रँगीली रङ्गभरी ।।२०
निज दायहिं पाइ चोवा पिचकाय लै रङ्गभरी ।
अछने अछने पिय जाइ रँगीली रङ्गभरी ।।२१
हँसी भाँवते भीर की भामा हो हो कहि रङ्गभरी ।
भये आजहिं साँचे श्रीस्यामा रँगीली रङ्गभरी ।।२२
मच्यौ चाँचरि खेल सुहायो खिलारिन रङ्गभरी ।
उर में अति मोद बढ़ायौ रँगीली रङ्गभरी ।।२३

अनुरागनि धन्य भागा मध्याभास—राग धनाश्री कलकंठादि=श्रीरँगदेवी की यूथ की सखियों के नाम । कवरादि=श्री सुदेविजू जू की यूथ की सखियाँ ।रत्नप्रभा=श्री ललिताजू के यूथ की सखियाँ। माधवी=श्री विशाखाजू के यूथ की सखियों के नाम मृगनैनी=श्रीचम्प लता की सखियों के नाम । तिलकनि=श्री चित्राजू की सखियों के नाम मंजुमेधा=श्री तुंग विद्या की सखियों के नाम तुंगभद्रादि=श्री इन्दुलेखाजू की सखियाँ। सोंज=सामग्री । सनकारि=ईशारा अथवा ईंगित रस रेल=रस की गडम गन्डा । पेल= धकेलना । उलटावनि=पीछे हटना । उलटे वल चलना । पाँवतेभीर की भामा=लालजू की पक्ष वाली सखियाँ चाचरि=एक खेल का नाम जिसमें एक यूथ दूसरे को धकेलता रहता है । कलकेलि=सुन्दर खेल । बंस=बाँस । उठावनि=आक्रमण करना । चसको= स्वाद । पेलि पेलि=धकेल धकेल । ठेलि ठेलि=धकेलना । सिहावैं=आनन्दित होना । नवलासिन=फूल की गेंद तथा छड़ियों का खेल । कैकै=कई कई अथवा कह कह कर । भेल=इखटे करना । सैल=शेल=जाना (बीच में कुचलते हुए) गोल=यूथ । हुलसावैं= उल्लसित आनन्दित होना । भूमिक=एक प्रकार का खेल । "झूमि झूमि अलि झूम करावैं—सोई झूमक नाम कहावैं (तालिका) चैतव=गौरी रागिनी "चित्र मुखी सो गौरी चैति ।" (तालिका) । दुलरावौ=लड़ावौ । गतिराचौ । मति राचौ । अति राचौ ।= रच् धातुके ये सब अर्थ हैं, जिसको देख कर गति रुक जावे । दूसरे जिसको देख कर बुद्धि उसमें रच जावे अर्थात् लग जावे । तीसरे अत्यन्त शोभायमान । लूमि लूमि=

छिटक रही है। ऊमि ऊमि=मँडरा मंडरा कर ईखटी हो होकर। अलेखें=आलेखें चित्रित करना लिखना। पिय प्यारी=यहाँ इसका अर्थ पिय की प्यारी श्रीलड़ैतीजू करना होगा क्योंकि ऐसा करने से ही आगे का अर्थ ठीक बैठता है। पपीहा=श्री लालजू। वस्तु=श्री प्रियाजू। सजन=सखियाँ। श्रीहरि प्रिया=यहाँ श्रीहरि की प्रिया अर्थात् श्री लडेंतीजू अर्थ है। गारे=पिघले हुए। निदान=जाल=समूह। हेलि=सहेलि। रंग होरी खेल का साँगो पाँग विलास वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीरंग देवी से आदि लेकर सब यूथों की सखी सहेलियाँ अनुराग से भरी हुई रस होरी की केलि खिलाने के लिये पधारी हैं।

॥ पद ॥

अनुराग से भरी हुई सब यूथेश्वरी सखियाँ अपने अपने यूथ की सखियों को साथ लेकर युगल को रस होरी खिलाने के लिये पधारी हैं याने श्री रंगदेवीजू कलकंठी आदि को श्री सुदेवी कवरा आदि को श्री ललिता रत्नप्रभा आदि को श्री विशाखा माधवी आदि को, श्री चम्पकलता मृगनैनी आदि को श्रीचित्रा तिलकनि आदि को श्रीतुंगविद्या मंजुमेधा आदि को और श्रीइन्दुलेख तुंगभद्रा आदि सखियों को साथ लेकर आई हैं ये सब सखियाँ बनठन कर अपनी अपनी सखियों को साथ लेकर पधारी हैं कैसी सुहावनी लगती हैं। इनके हाथों में खेल की सामग्रियाँ सजी हुई हैं। वे सब अनुराग में भरी हुई सब मिलकर खेलने के लिये आ रही हैं। ये रंगीली सखियाँ एक से एक अधिक सुशोभित हैं ॥१०॥ ये भान्ति भान्तिके अनुपम बाजे बजा रही हैं। डफ में स्वयं तानें प्रकट हो रही हैं ये उसे वजा बजाकर और नई नई रंगीली तानें प्रकट कर रही हैं। ॥११॥ ये रंगीली सखियाँ लाड लडन को लडाने के लिये चितों में चौगने चावों से आप के गुणों को गा रही हैं ॥१२॥ फिर इन सखियों ने उमंग में भरकर हो हो शब्द कहते हुए रसिक दम्पति को घेर लिया ॥१३॥ फिर यूथेश्वरियों ने अपने अपने यूथ की सखियों को सभार सभार कर सावधान किया, और नयनों के ईंगित से परस्पर खेलने के लिये कहा ॥१४॥ अथवा रंग रंगीली रंगभरी श्रीप्रियाजू ने दोनों पक्षों की सखियों को खेलने के लिये अपने नेत्र कमलों द्वारा ईंगित (ईशारा) किया ॥१५॥ यह सुनकर सहेलियों ने रस की महा गडम गडा का खेल रचा। जिस खेल में २ पक्ष बनाकर परस्पर धकेल धकेल कर खेलते हैं। एवं प्रकार से दोनों ओर से रङ्गीली पेल प्रारम्भ हुई ॥१६॥ दोनों ओर से पिचकारियों की धारों द्वारा परस्पर मार मचाई जा रही है। जिन को देखकर रङ्गीली रङ्ग भरी सखियों

उन धारों को अपने शरीरों अथवा अपनी साड़ियों की ओट से सहन कर रही हैं ॥१७॥ रङ्ग विरङ्ग अवीर गुलाल उड़ाये जा रहे हैं । बूका, वन्दन तथा चन्दन (जो चन्दन अगुर आदि से तय्यार की जाती हैं) इन सामग्रियों को पिचकारियों में भर भर कर रङ्गीली रङ्ग भरी सखियां वर्षा रही है ॥१८॥ रङ्गीली रङ्ग भरी सखियां एक पक्ष वाली दूसरे पक्ष वाली को छिपकर मुड़ कर भिगोती हैं दूसरे पक्ष वाली अपना वचाव करती हैं । ये रंगीली सखियां खेलते खेलते उलटें पावों से जब पीछे को हटती हैं उस समय की इन की रूप माधुरी सब के चित्तों को चुराती है ॥१९॥ फिर श्रीप्रियाजू ने केशर के रङ्ग से भरी हुई कनक कटोरी लेकर छलसे अपने प्यारे के शिर पर ढोरदी ॥२०॥ यह देखकर सब सखियाँ तारी दै दै कर हंसने लगीं और यह कहने लगी"आज रंगीली रंग भरी श्रीप्रियाजू ने अपने प्यारे को धनश्याम से गोरे वना दिया है ॥२१॥ फिर लालजू ने अपना दाव देख कर श्याम चोवा को अपनी पिचकारी में भर कर दवे हुए पाँवों से शनैः शनैः जाकर अपनी प्यारी को छिड़कने लगे । अपने भाँवते प्यारे को डरे हुए की तरह से आते हुए देखकर रंगीली रंग भरी प्यारीजू हो हो कह कर हंसने लगी । और सब सखियाँ प्रियाजू को चोवा के रङ्ग से भीगी हुई देखकर कहने लगीं "रंगीली रङ्ग से भरी हुई आज ही सच मुच श्रीश्यामाजू श्यामा हुई हैं" ॥२२॥ इसके पश्चात् सब सखियाँ 'चाचरि' नामक खेल खेलने लगी जिस को खेल करि सबखिलारनि सखियों के हृदयों में अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ ॥२३॥

॥ चाँचरि ॥

आवो आवो री सकल सहेलि अति रस चांचरि खेलहीं ।
मिलि अप अपनी अलबेलि अति रस चांचरि खेलहीं ॥२४
तुम सब गुनगरब गहेलि । अति० करि ल्यौरी ल्यौ कलकेलि ॥२५
रङ्गदेवी सुदेवीजू आवो । अति० ललिताजू बिसाखाजु आवो ॥२६
चम्पलता चित्राजू आवो । अति० तुंगविद्या इन्दुलेखाजू आवो ॥२७
केसरि के नीर करावो । अति० जामें बिबिध सुगन्ध ररावो ॥२८
कंचन पिचकारी भरावो । अति० देखें कौन को कौन हरावो ॥२९
बहु बरन अबीर गुलाला । अति० भरि भरि कर कंचनथाला ॥३०
करो मार परस्पर बाला । अति० ज्यों बाढ़ै रङ्ग बिसाला ॥३१
एक बंस के बसन बँधावो । अति० दोऊ दल बीच रुपावो ॥३२

करि करि उठावनो धावो। अति० जाहि जीति निसान बजावो ॥३३
उरकौ अभिलाष पुरीजै। अति० या रस कौ चसकौ लीजै ॥३४
अप अपनौ छल बल कीजै। अति० श्रीहरिप्रिया कों सुख दीजै ॥३५

पेलि पेलि उतहीं करि आवें सजोरनि रङ्गभरी।
ठेलि ठेलि इतही करि जावें रँगीली रङ्गभरी ॥३६
रङ्ग रङ्ग बरषा बरषावें सिहावें रङ्गभरी।
नवलासिनि मार मचावें रँगीली रङ्गभरी ॥३७
कै कै अपने अपने टोल उठावनि रङ्गभरी।
किये भेल सेल दोउ गोल रँगीली रङ्गभरी ॥३८
गहि प्रीतम कौ पट पीत नील पट रङ्गभरी।
दइ गाँठ जुराइ सजीति रँगीली रङ्गभरी ॥३९
देखि देखि हियें हुलसावें हुलासिनि रङ्गभरी।
मिलि झूमक चैंतव गावें रँगीली रङ्गभरी ॥४०॥

॥ चाँचरि ॥

"खेलत में चंचलता जोई। चाचरि नाम कहावै सोई।" (तालिका होरी में चाचरि खेल उसको कहते हैं जिसमें सब सखियाँ २ यूथों में विभक्त की जाती हैं। एक यूथ के यूथपति प्यारे दूसरे की प्यारीजी बनती हैं। फिर दोनों यूथ आमने सामने खड़े होकर होरी गाते हुए एक यूथ दूसरे को पीछे को धकेल देता है इसी प्रकार परस्पर धकेल धकेल कर खेलते हैं। इस प्रकार के खेल को"चाचरि"कहते हैं विलास केलि में दोनों की चञ्चलता को ग्रन्थकार "चाचरि" के नाम से कहते हैं ॥

श्रीहरि प्रियाजू सखियों से कह रही हैं। "हे सहेलियो आप सब मिलकर आवें हम वह "चाचरि खेल" खेलेंगी जो अत्यन्त रस को बढ़ाने वाला है। आप अपने अपने यूथों की सब अलवेली सखियों को साथ लाकर पधारें ॥२४॥ आप सब प्रकार के गुणों के गर्व को धारण करने वाली हो अर्थात् सब गुणों से भरपूर हो। यह चाचर खेल की मधुर केलि की योजना करो ॥२५॥ हे रङ्गदेवो सुदेवीजू ! हे ललिता विशाखाजू ! हे चम्पलता चित्राजू ! हे तुङ्गविद्या इन्दुलेखाजू आप सब पधारें अति रस को बढ़ाने वाले चाचरि खेलको खेलें ॥२६॥२७॥ केसर का जल तय्यार करके उसमें विविध प्रकार के

सुगन्ध द्रव्य मिलावें ।।२८।। कञ्चन की पिचकारियों में उपरोक्त रङ्ग को भरकर परस्पर खेलें। यह देखना है कौनसा यूथ कौन से यूथ को हराता है ।।२६।। बहुत रङ्ग बिरंगे अबीर गुलालों को स्वर्ण थालों में भरि भरि कर परस्पर मार करें जिससे हमारे खेल का विशाल रङ्ग बढ़े।।३०।।३१।।एक वाँस पर वसन अर्थात् झण्डा बँधाओ और जिसको दोनों दलों के बीच रोपन करों। फिर दोनों दल उस झण्डा को जीतने के लिये उठावनी करि करि के धाओ। जो उसको प्राप्त करले उसी की जीत का निशान बजाओ ।।३२।।३३।। उपरोक्त प्रकार से खेल प्रारम्भ करें। और इस खेल द्वारा अपने अपने हृदयों की अभिलाषाओं को पूर्ण करके इस चाचरि खेल के रस का चसका (स्वाद) लेवें ।।३४।। आप सब अपना २ छल बल करके श्रीहरि एवं श्रीप्रियाजू को सुख प्रदान करावें मेरी एक मात्र यही अभिलाषा है ।।३५।। कभी कभी खेल के उत्साह के जोर में भरी हुई रङ्ग भरी सखियाँ दूसरे यूथ की सखियों को धकेल कर दूसरी ओर सरका देती हैं। कभी दूसरे यूथ वाली इसी प्रकार इनको धकेल देती हैं ।।३६।। एक यूथ दूसरे यूथ पर रंग की वर्षा करके प्रसन्न होता है। रंगीली रङ्ग भरी सखियाँ परस्पर छड़ियों से खेलती हुई एक दूसरे पर प्रहार करती हैं ।।३७।। कोई कोई रङ्ग भरी सखी अपने टोल की सखियों को उठाकर दूसरे यूथ की सखियों के बीच में मानो दूसरे टोल की सखियों को कुचलते हुए जाकर परस्पर दूसरे यूथ से मिलकर दोनों यूथों को इखट्टी कर देती है ।।३८।। फिर सखियों ने प्रीतम के पीत पट को पकड़ कर उस से श्रीप्रियाजू के नील पट को बान्ध कर गठजोरा कर दिया। इसकी गाँठ मानों श्रीप्रियाजी की जीत की प्रतीकहै ।।३९।। उल्लास युक्त रंग भरी सखियाँ रसिक दम्पति को उपरोक्त प्रकार से गठजोरे में बन्धे देख कर हृदय में आनन्दित हुई और सब मिलकर "चैतव झूमका गाने लगी ।।४०।।

॥ चैतव झूमका ॥

आवो आवो री मिलि गावो रङ्गीलौ झूमका।
दोउ लालन कों दुलरावो रङ्गीलौ झूमका ।।४१
पहिलो झूमक जाहिको जाकें मनमोहन आधीन।
दूजो झूमक ताहि को ताहि प्रानपिया बस कीन ।।४२
रँगीलौ झूमका,गतिराच्यौ झूमका,मतिराच्यौ झूमका,अतिराच्यौ झूमका।
तीजौ झूमक जाहिको जे गावत जुगल सुहाग ।।४३
चौथो झूमक ताहिकौ जामें फैल रह्यौ अनुराग।

रङ्गीलो झूमका, मनभायो झूमका, सुखदायो झूमका, है सुहायो झूमका ॥
लूमि लूमि रही माधुरी पंचम झूमक झूमि ।
अवलोकन श्रीहरिप्रियें ए आई हैं उमि ऊमि ॥
रङ्गीलो झूमका, है सुन्दर झूमका, है मनोहर झूमका, है बरोबर झूमका ॥४४
इहि भाँतिन झूम झूमाय सु झूमक रङ्गभरी।
सिंहासन पर पधराय रँगीली रङ्गभरी ॥४५
करतारी दै दै नाचें चहुंदिसि रङ्गभरी।
करें मनके मनोरथ साँचे रँगीली रङ्गभरी ॥४६
कोउ नैननि सो हियें लावें लगावें रंगभरी।
कोउ नैननि माँहि बसावें रँगीली रंगभरी ॥४७
कोउ नैननि कौ फल लेखें अलेखें रङ्गभरी।
कोउ नैननि कौ सुख देखें रँगीली रङ्गभरी ॥४८
कोउ उर अभिलाष पुरावें प्रमोदनि रङ्गभरी।
गावें चैतव गारि सुहावें रँगीली रङ्गभरी ॥४९

॥ चैतव झूमका ॥

"झूमि झूमि अलि झूम करावैं। सोई झूमक नाम कहावै।" (तालिका) प्रेम में मद मस्त होकर सखियाँ झूमती हुई प्रिया प्रीतम को रति विलास की खुमारी में झुमाती हैं उसको ग्रन्थकार "झूमका" कहते हैं। अब पद के अर्थ को देखिये। हे सखियाँ! आप सब मिलकर रसिक दम्पति के अनुराग को बढ़ाने वाला इस झूमका को गावें और इसके द्वारा दोनों का लाड़ लड़ावै ॥४१॥ पहिला झूमक उन प्रियाजू का है जिन के मन मोहन आधीन है। दूसरा झूमक श्रीलालजू को है जिन्होंने प्राण प्रिया को वश में कर रखा है। यह झूमका क्या है मानों अनुराग में रञ्जित करने वाला है। मानो विलास की गति अर्थात् फल स्वरूपा है। मानों इसने युगल की मतियों को प्रेम से रचा रखा है। मानो प्रेम की अति अर्थात् अवधि स्वरूपा है ॥४२॥ तीसरा झूमक उन सखियों को है जो युगल का सौभाग्य गाती हैं। चौथा झूमक उस श्रीवृन्दावन को है जिसके कौने कौने में अनुराग फैल रहा है॥ यह रंगीलो झूमका सब के मनों को मनभाया, सुख प्रदान करने वाला तथा सुहावना है ॥४३॥ "प्रिया शक्ति अह्लादिनी पिय आनन्द स्वरूप। तन वृन्दावन

जग मगै इच्छा शक्ति अनूप ।।''(सि:सु)ग्रन्थकार अपनी इस उक्ति के अनुसार चारों तत्वों के सौभाग्य का ऊपर वर्णन कर चुके हैं। अब कहते हैं "होरी लाला" में इन चारों तत्वों के परस्पर मिलने से जो माधुरी उत्थित हुई उस की जय हो। लूमि झूमि कर जो माधुरी प्रिया—प्रीतम, सखियों तथा श्रीवृन्दावन की लता पता सर्वत्र छा रही है पञ्चवाँ झूमका उस माधुरी को है। मानों इस माधुरी की अधिष्ठातृ देवी श्रीहरि एवं प्रिया की होरी लीला को देखने के लिये लूमि झूमि कर यहाँ पधारी हैं। यह रंगीलो झूमका, सुन्दर, मनोहर तथा यथार्थ है ।।४४।। इस प्रकार से रंगीली रङ्ग भरी सखियों ने झूम झूमकर होरी खेलीं, फिर रसिक दम्पति को सिंहासन पर पधराया ।।४५।। उत्सव की समाप्ति में सखियाँ हाथों की तारियाँ बजा बजाकर नाचने लगी, और अपने अपने चिन्तित मनोरथों को पूर्ण करने लगी ।।४६।। कोई कोई रसिक दम्पति को अपने नेत्र रन्धरों द्वारा प्रवेश कराके अपने हृदयों में विराजमान कराती हैं। कोई कोई अपने नेत्र कमलों में ही उनको सुख पूर्वक वसाती है ।।४७।। कोई कोई एक टिक दृष्टि से इनको देख रही हैं नैनों का फल एक मात्र देखना को ही समझ रही हैं। कोई देखना चाहती हैं परन्तु अष्ट सात्विक भाव उदय होने से अश्रुविघ्न रूप हो जाते हैं अतः देख नहीं सकती हैं। कोई कोई रङ्ग भरी सखियाँ नेत्र कमलों को सुख प्रदान करने वाले प्रिया प्रीतम को देखने में सामर्थ हो जाती है ।।४८।। कोई कोई अपने सब चिन्तित मनोरथों को पूर्ण कर लेती हैं। कोई कोई प्रसन्न होकर "चैतव गारी" गाने लगती हैं ।।४९।।

।। चैतव गारी ।।

वृन्दावन सहज सुहावनो जहाँ सहज सदा हरियारी जू।
स्वाति बूंद नित बरषहीं जहाँ आनँदघन पिय प्यारी जू ।।५०
बोलि बोलि पपीहा पीउ पीउ रस गटक लै रस गटक लै।
तेरेई भाग सुहाग सों यह बस्तु अपूरब आई जू ।।५१
तनकी तृषा बुझाइ लै मति मानें मन तृपताई जू। बोलि०
सीपन में मुक्ता जमें अरु कदली माहिं कपूर जू ।।५२
सजन हियें सुख उपजें अरु सो तेरे जीवनिमूर जू। बोलि
बृक्षन में चन्दन बड़ौ अरु जामें बास सुबास जू ।।५३
पक्षिन में तू है बड़ौ जाकें श्रीहरिप्रिया आस जू। बोलि०

॥ चैतव गारी ॥

"चैतवगारी"=होरी सम्बन्धी गारी अर्थात् वह गारी जो चित्त के प्रसन्न होने से व्यँग भाषा से गाई जाती है। श्रीलालजू को सम्बोधन करके सखियाँ कह रही हैं, "यह श्रीवृन्दावन स्वाभाविक ही सुहावना है और यह सदा सर्वदा हरा भरा रहता है क्योंकि यहाँ पिय की प्यारी श्रीलड़ैतीजू आनन्द घन रूपी मेघ से स्वाँती की बूदों की सदा वर्षा करती रहती है हे लाल रूपी पपीहा तू पिऊ पिऊ कहकर रस को गटकता रह ।।"५०।। हे लाल रूपी पपीहा तेरे ही भाग्य सौभाग्य से यह अपूर्व वस्तु अर्थात् श्रीप्रियाजू की दक्षिणा भाव युक्त होकर कृपा दृष्टि रूपी स्वाँती की बूंदों की वर्षा होने लगी है। हे प्यारे ! तू इन बूँदों से अपने तन की तृषा की शान्ति करले परन्तु अपने मनसे तू कभी भी तृप्त मत हो अर्थात् इन बूदों का तू सदा ही प्यासा बना रह ।।५१।। हे लाल रूपी पपीहा तू पिऊ पिऊ कह कह कर रस को गटकता रह। स्वाँती की बूँदों से सीपों में तो मोती उत्पन्न होते हैं और केलों के वृक्षों में इन बूदों से कपूर हो जाता है। सज्जन पुरुषों के हृदयों में इनसे सुख उत्पन्न होता है, और तेरा तो कहना ही क्या है तेरे लिये तो यह बूदें संजीवनी बूटी सरीखी हैं। अतः हे लाल रूपी पपीहा तू पिऊ पिऊ कह कह कर रस पान करता रह ।।५२।। यद्यपि चन्दन का वृक्ष सब वृक्षों से ऊँचाई में बड़ा नहीं है तो भी उसमें सुन्दर सुगन्ध होने से चन्दन सब वृक्षों में बड़ा कहलाता है। इसी प्रकार पपीहा यद्यपि सब पक्षियों से बड़ा नहीं है तो भी स्वाँती की बूँदों का अनन्य होने से सब पक्षियों से बड़ा समझा जाता है परन्तु हे लाल रूपी पपीहा। तेरा तो कहना ही क्या है तू तो एक मात्र श्रीहरि की प्रिया अर्थात् श्रीलड़ैतीजू की कृपा दृष्टि रूपी स्वाँती की बूँदों की आश लगाये बैठा है तू ही परम धन्य हैं अतः हे लाल रूपी पपीहा तू पिऊ पिऊ की रट लगा लगा कर सदा रस पान करता रह ।।५३।। (अब दूसरा प्रसंग प्रारम्भ करते हैं सखियाँ परस्पर अलङ्कार से कह रही हैं)—

॥ गारी ॥

गारी जिनि द्यौ री इन्हें ए अलकलड़ीले।
कहा भयौ जो कारे हैं एरी ए अलकलड़ीले ।।५४
मन के गोरे हैं महा ए अलकलड़ीले।
गोरी के गुन गारे हैं एरी ए अलकलड़ीले ।।५५
कुटिल कहौ जिन री कोउ ए अलकलड़ीले।
कहा भयो जो त्रिभङ्गी हैं एरी ए अलकलड़ीले ।।५६

निपटहिं सरस सुभाव हैं ए अलकलड़ीले ।
प्यारे स्यामाजू के संगी हैं ऐरी ए अलकलड़ीले ॥५७
इनसों आन कछु जिन कहौ ए अलकलड़ीले ।
प्यारी प्रान समान हैं एरी ए अलकलड़ीले ॥५८
न्यारे भये तौ कहा भयो ए अलकलड़ीले ।
श्रीहरिप्रिया निदान हैं एरी ए अलकलड़ीले ॥५९
भई मुदित महामतवार सहचरि रङ्गभरी ।
कछु रह्यौ न शरीर सम्हार रँगीली रङ्गभरी ॥६०
रीझि रीझि दोऊ सुकुँवार दई रीझि रङ्गभरी ।
निज निज रुचिकें अनुसार रँगीली रङ्गभरी ॥६१
न्हाये आय सरोवर संग सबैं मिलि रङ्गभरी ।
सजे अभरन अम्बर अंग रँगीली रङ्गभरी ॥६२
बाहांजोटी किय दोउ लाल चले गति रङ्गभरी ।
सनमानी सबैं सखीजाल रँगीली रङ्गभरी ॥६३
यह होरी रसीली की केलि रसीली रङ्गभरी ।
बसौ श्रीहरिप्रिया हियें हेलि रंगीली रङ्गभरी ॥६४॥२९॥

॥ गारी ॥

इनको गारी न दें । प्यारे तो एकमात्र लाड़ करने ही योज्ञ हैं । यदि इन का वर्ण श्याम है तो इसमें क्या है । यह मन के तो महा गोरे हैं । गोरी श्रीप्रियाजू के गुणों में निमग्न हैं अतः यह एकमात्र लाड़ करने ही योज्ञ है ॥५४॥५५॥

हे सखि ! इनको कोई कुटिल मत कहो । यह तो एक मात्र लाड करने के योज्ञ हैं । यदि यह तृभङ्गी अर्थात् तीन जगह से टेढ़े हैं तो इस में क्या है । इनका स्वभाव तो अत्यन्त सरल है दूसरे यह हमारी श्यामाजू के सङ्गी हैं अतः इनको गारी न दें अपितु सब प्रकार से इनका लाड़ करें ॥५६॥ हे सखि ! इनसे और कुछ बात न कहें । यह तो एक मात्र लाड़ करने के ही योज्ञ हैं । यह तो हमारे प्राणों के समान प्यारे हैं । परम लाड़ करने योज्ञ हैं । यदि श्रीप्रियाजू से इनका मङ्गल विग्रह पृथक है तो इस में क्या हानि है । यह तो श्रीप्रियाजू रूपी रज्जू से सदा बन्धे रहते हैं (निदान का अर्थ रज्जु, रसी कोष में

वर्णित है) इसी ग्रन्थ में भी दूसरे स्थान पर वर्णित है ।"कृष्ण मनमृग डोरिका ।" अतः लाड करने ही योग्य हैं ।।५७।।

उपरोक्त गान को सुनकर सब सखियाँ अनुराग के रंग में रञ्जित होकर महामत-वारी होगईं और वे अपने अपने शरीरों की सुध बुध भूलगईं । रसिक दम्पति भी उपरोक्त गान से रीझ गये और उन्होंने सखियों की रुचियों के अनुसार सब को बधाई में अपनी रीझ प्रदान की। फिर श्रीप्रिया प्रीतम ने सब सखियों को साथ लेकर एक साथ सरोवर में स्नान किया और सुन्दर सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण किये।६०। इसकेपश्चात परस्पर गल बहियाँ दिये हुए दोनों लाल निभृत निकुञ्ज को पधारे और यथा योग्य सब सखियों के यूथों का सम्मान किया ।।६१।। समाप्ति में श्रीहरिप्रिया सखीजो यह प्रार्थना करती हैं कि इस रसीली होरी की केलि हमारी सब सखियों के हृदयों में सदा वसी रहे ।।६२।।

।। दोहा ।।

कुंजनि कुंजनि डोलहीं दियें भुजा अँकमाल ।
मूरति प्रेम सिंगारकी रँगभीने दोउ लाल ।।

।। पद ।।३०।।

रँगीली लाड़िली रँगभीने मोहनलाल ।
मूरति प्रेम सिंगार की सोहैं सहज स्वरूप रसाल ।।
कुंजनि कुंजनि डोलहीं हो मत्त मराल की चाल ।
बात कहत मुसकात जात दोउ दियें भुजा अँकमाल ।।१
गोरी कंचनबेलि-सी (हो) जोरी स्याम-तमाल ।
बसहु निरन्तर (श्री) हरिप्रिया हिय में आनन्द रूपरसाल ।।२।।३०

मूरति प्रेम शृङ्गार की=श्रीप्रियाजू प्रेम श्रीलालजू शृङ्गार की मूरति हैं । (बहुत स्थानों पर वर्णन कर चुके हैं। रङ्गभीने=अनुरागसे भीगे हुए। मत्त मराल=मस्त हंस सरीखे

।। दोहा ।।

फिर परस्पर के अनुराग में भीगे हुए दोनों लाल अर्थात् मूर्तिमान् प्रेम श्रीप्रियाजू और साक्षात् शृङ्गार रस स्वरूप श्रीलालजू परस्पर गल बहियाँ दिये हुए एक कुञ्ज से दूसरी कुञ्ज में डोलने लगे ।

।। पद ।।

फिर रंगीली श्रीलाड़िलीजू और अनुराग में निमग्न श्रीमोहनलालजू जो स्वाभाविक

ही प्रेम और शृङ्गार की रसीली मूर्तियाँ हैं, एक निकुञ्ज से दूसरी निकुञ्ज में मस्त हंस की चाल से डोलने लगे यह परस्पर गल वहियाँ दिये हुए चलते चलते बातें करते जाते हैं, और कभी कभी मुस्कराने लगते हैं गोरी प्यारीजू स्वर्ण लता सरीखी और प्यारे श्याम तमाल जैसे प्रतीत होते हैं। श्रीहरिप्रिया सखी जी यह चाहती हैं कि यह आनन्द रूप रसाल जोरी सदा मेरे हृदय में ऐसे ही विराजमान रहे।

॥ अनुरागिनि आनन्दसिधा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

तैंसिय संग सुअंगना अति रस रसी रसाल।
अति रस होरी खेलहीं अति रस भीने लाल॥

॥ पद ॥३१॥

अति रस भीने दोउ लाल खेलैं अति रस भीनी होरी हो।
तैंसिय संग सुअंग अंगना अति अति रस में बोरी हो॥१
ए सौदामिनि श्रीराधे ए कृष्ण स्याम घन सोहैं जू।
जलतरङ्ग ज्यों मिलि रहे ए पलक न परत बिछोहैं जू॥२
ऋतु आई सुहाई फाग की। अति०
आईं उमड़ि उमड़ि सुघटा-सी कोऊ साँवरि कोऊ गोरी हो।
अति रस रङ्गन की बरषा बरषावें मिलि दुहू ओरी हो॥३॥
ए दोउ मनमोहने अरु सोहने सहज सनेही जू।
जोरी आदि अनादि की ए एकप्रान द्वै देही जू॥४
बाजें चङ्ग मुखचंग बाँसुरी बीन मृदंग उपंगा हो।
आवज अमृत कुण्डली महुबरि सुर की उठत तरङ्गा हो॥५
प्यारी को मुख चंद्रमा प्रीतम के नैन चकोरा जू।
बिन देखे कल ना परे ये रसके महा छकोरा जू॥६
गावति अति मन भावत मुखते हो हो बचन उचारें हो।
कोलाहल रह्यो छाय बिपिन में कहत न लहत अपारें हो॥७
प्यारीजू कंचनकी लता अरु प्रीतम स्याम तमाला जू।
विन आधार न रहि सकें ये परे हैं प्रेम कें पाला जू॥८

रङ्ग रङ्ग पिचकारनि धारनि सारनि ओट सहारें हो।
सोरवोर भये अङ्ग सबनके तोउ नेक न कोऊ हारें हो ॥९
प्रीतम प्रान कपूर हैं प्यारी चिहुँटनी सुरंगी जू।
इनकौ बानिक बनि रह्यौ ये सदा सर्वदा संगी जू ॥१०
अबीर गुलाल उड़ाइ अवनि अम्बर आच्छादित कीने हो।
प्यारीजू पकरि प्रान प्रीतम कों भरि अँकवारी लीने हो ॥११
बदनकमल प्यारीजू कौ पिय मन मधुकर महामोभी जू।
निधि को लालच क्यों छुटै ए रसिया रसके लोभी जू ॥१२
कहैं सहचरी तुम सुनो स्यामघन तब भल छूट न पावो हो।
कै प्यारीजू कें पायन लागो कै तुम हा हा खावो हो ॥१३
अम्ब रवानी कोयली अरु बारि रवानी बेली जू।
स्याम रवानी सुन्दरी या सुखं रवानी सहेली जू ॥१४
बोले मृदु मुसकाय लाल मन मुदित मनोहर बानी हो।
हा हा खायरु पाँय परें सो इती गाढ़ कहा मानी हो ॥१५
ज्यों सुहाग सोने बने अरु ज्यों चुम्बक बने लोहे जू।
यौं इनि दोउन कें बने ए बिरदनके संदोहें जू ॥१६
श्रीहरिप्रिया हितु हिलन मिलन कौ देखि देखि सुखभारी हो।
दै दै तारी दुहु दिसि तें मिलि गावनि लागी गारी हो ॥१७
लसौ बसौ नैनान में नित नित्य किसोर किसोरी जू।
है जन की जीवनि जरी श्रीहरिप्रियाजू की जोरी जू ॥१८॥३१

पाला=पालक=रक्षक। अनुरागनि आनन्द सिंधा मध्याभास=राग आशासिन्धुनि सुअंगना=सखियाँ। सौदामिनि=बिजली। तरंग=लहर। चंग, मुखचंग,उपंग=वाजों के नाम अवज, अमृती, कुण्डली, महुवरि=वाजों के नाम चिहुटनी सुरंगी=चिरमिठी जिस के साथ रखने से कपूर नहीं उड़ता है मोभी=ममता वाला। अंवरवानी=अम्ब रमणी=आम के बौर में रमण करने वाली। वारिखानी=वारि रमणी=जलमें रमण करनेवाली। सुन्दरी=यहाँ सुन्दरी का अर्थ श्रीप्रियाजू है। सुखैखानी=युगल के सुखमें रमण करने वाली सुहाग=सुहागा जिस के सम्पर्क से सोना गलजाता है। चुम्बक=पत्थर जो लोहे को

अपनी ओर खेंच लेता है। विरपन=विरदावली गान करने वाले कवि आदि संदोह=मन्थन किया हुआ। निर्धारित मत। लसौ वसौ=सुशोभित होकर वसौ। जन=उपासक। जीवनजरी=संजीवनी बूटी। प्राण धारण की औषधी। ग्रन्थकार इस पद के दृष्टान्तों द्वारा श्रीप्रिया प्रीतम के परस्पर के प्रेम को जनाते हैं।

॥ दोहा ॥

अति रस में निमग्न दोऊ प्यारे फिर अत्यन्त रसीली होरी खेलने लगे। जैसे आप हैं वैसे ही अत्यन्त रस से रसायित सब सखियाँ आपके साथ हैं।

॥ पद ॥

अति रस में भीगे हुए दोऊ लाल अत्यन्त रसीली होरी खेल रहे हैं। जैसे आप हैं वैसे ही सब सखियाँ भी अति रस में डूबी हुई है ॥१॥ प्यारीजू सुन्दर विद्युत सरीखी, और प्यारे श्याम घनकी तरह सुशोभित हैं। यह दोनों जल और उस की तरंगों की तरह सदा मिले रहते हैं। एक पलक के लिये भी इनका कभी विछोह नहीं होता है ॥२॥ सुन्दर फाग की ऋतु आई है। दोनों ओर से कोई साँवरी कोई गौर घटाऐं उमडि घुमड़ि के उठ रही हैं। जो परस्पर मिलकर अति रस रंग की वर्षा बरसा रही हैं ॥३॥ यह दोनों सुन्दर एक दूसरे के मनों को मोहन करने वाले हैं। इनकी यह जोरी अनादि के भी आदि अर्थात् सबके आदि कारण स्वरूपा है वास्तव में इन दोनों का प्राण एक है और देह दो हैं ॥४॥ कैसी सुन्दर फाग की ऋतु आई है। चंग, मुखचंग, बाँसुरी, मृदङ्ग, उपङ्ग, आवज, वज रहे हैं और अमृति, कुण्डली और महवर के स्वरों की कैसी तरङ्गें उठ रही हैं ॥५॥ प्यारीजू के मुख चन्द्रमा पर प्रीतम के चकोर सरीखे नेत्र कमल सदा मण्डला रहे हैं। प्यारे के नेत्र सदा रस के पीपासु रहते हैं प्यारी के देखे बिना इनको एक क्षण के लिये भी कल नहीं पड़ता है ॥६॥ फाग की ऋतु कैसी सुन्दर आई है। जब दोनों मन भावते गाने लगते हैं तब इन के मुख कमलों से हो हो का वचन कहा हुआ कैसा सुहावना लगता है। इस समय समस्त श्रीवृन्दावन में जो आनन्द का अपार कोलाहल छा रहा है उस का वर्णन नहीं कर सकते हैं ॥७॥ प्यारीजू तो स्वर्ण लता सरीखी हैं और प्रीतम श्याम तमाल सदृश हैं। किन्तु बिना आधार के ये दोनों नहीं रह सकते हैं। इन दोनों का आधार अर्थ पालक अर्थात् रक्षक एक मात्र प्रेम है उसी के आधार से यह फलती फूलते हैं ॥८॥ फाग की सुन्दर सुहाई ऋतु आई है। रङ्ग बिरङ्गी पिचकारियों की धाराओं को सखियाँ अपनी अपनी सारियों की ओटें करि करि के झेल रही हैं। यद्यपि सब के अङ्ग भीग भीग कर सोराबोर हो गये हैं तो भी कोई भी अपनी हार स्वीकार

नहीं करती हैं ॥९॥ प्रीतम के प्राण कपूर सदृश हैं। इनकी रक्षा के लिये प्यारीजू सुन्दर रङ्ग की चिरमिठी गुञ्जा सरीखी हैं। अतः इन दोनों का उपरोक्त प्रकार का वानिक बना रहता है। ये दोनों सदा सर्वदा संग रहते हैं ॥१०॥ कैसी सुन्दर फाग की ऋतु आई है। सखियों ने अबीर और गुलाल इतना उड़ाया मानों पृथ्वी और आकाश इन दोनों चीजों से आछादित हो गई। इस धूँधरि में प्यारीजू ने अपने प्यारे को पकड़ कर अङ्क में भर लिया ॥११॥ प्यारीजू का मुख मानों कमल है और प्यारे का मन मानो अत्यन्त लोभी भोंवरा है। इस लिये अपनी निधि का लालच कैसे छूट सकता है क्यों कि यह रसिक लाल रस का अत्यन्त लोभी है ॥१२॥ सुन्दर सुहावनी फाग की ऋतु आई है। तब सहचरियाँ कहने लगी "हे प्यारे श्याम घन आप जभी छूट सकते हैं या तो आप प्यारीजू के पायन लगें या हा हा खावें" ॥१३॥ कोयल तो आम के बौर में रमण करती है। और लताऐं जल से पुष्ट होती हैं। सुन्दरी श्रीप्रियाजू श्याम से रमण करती हैं और रसिक दम्पति के सुख से सखियाँ रमण करती हैं ॥१४॥ कैसी सुहावनी फाग की ऋतु आई है। अब प्यारे लाल मुस्कराते हुए प्रसन्न मन से यह मनोहर वाणी कहने लगे। "हम हा हा खावें और पायन पड़ें ऐसी क्या नाराजगी है। हम सब कुच्छ करने को तैय्यार हैं" ॥१५॥ जैसे सोने में सुहागा डालने से वह उज्ज्वल होकर पिघल जाता है। और जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को अपनी ओर खेंच लेता है इसी प्रकार से इन दोनों का प्रेम है यह विरदावली गान करने वाले महाकवि श्रीशिव सनकादिक का मन्थन किया हुआ निर्धारित मत है ॥१६॥ फाग की ऋतु कैसी सुहावनी आई है उपरोक्त प्रकार से रसिक दम्पति के हिलन मिलन अर्थात् विलास केलि को देख देख कर श्रीहरिप्रियाजू और श्रीहितु सहचरीजी अत्यन्त हर्षित हुईं और दोनों ओरों से तारी दे दे कर सब सखियाँ गारी गाने लगी ॥१७॥ फिर यह प्रार्थना करने लगीं " यह नित्य किशोर किशोरी की जोरी इसी प्रकार से सदा हमारे नेत्रों में आनन्द पूर्वक विराजमान रहें। यह श्रीहरि एवं श्रीप्रिया की जोरी उपासक जनों के लिये सन्जीवनी बूटी सरीखी है ॥१८॥ कैसी सुन्दर सुहावनी फाग की ऋतु आई है। अति रस में भीगे हुए दोउ लाल अति रस भीनी होरी खेल रहे हैं ॥

॥ निष्कर्ष ॥

उपरोक्त होरी लीला विलास से ग्रन्थकार ने यह निर्धारित किया है कि रसिक दम्पति की परस्पर की प्रीति किस प्रकार की है। विरदावली गान करने वाले महा कवि श्रीशिव सनकादिक का भी परस्पर की प्रीति के विषय में यही निश्चित मत है। निम्न

लिखित ८ दृष्टान्तों द्वारा अपने हृदय के भाव को व्यक्त करते हैं :—

(१) विद्युतवर्णी श्रीप्यारीजू और श्याम घन स्वरूप प्यारे जल तरङ्ग की तरह सदा मिले रहते हैं। १ पलक के लिये भी इनका कभी विछोह नहीं होता है। सदा मिले रहते हुए भी जल तरङ्ग की परस्पर खिंचाव नहीं है। यह कमी समझ कर दूसरा दृष्टान्त देते हैं (२) "प्यारीजू का मुख चन्द्रमा प्रीतम के नैन चकोराजू।" यहाँ भी एक तरफा प्रीति है तथा चन्द्रमा छिपने के बाद चकोर की तड़फन नहीं रहती अतः इस में भी कमी समझकर तीसरा दृष्टान्त देते हैं (३) "प्यारीजू कञ्चन की लतिका प्रीतम श्याम तमालाजू। बिन आधार न रहसकें यह परे प्रेम के पालाजू।" स्वर्ण लता और श्याम तमाल परस्पर के प्रेम से दोनों पलते हैं परन्तु एक सूख जाने से दूसरा कायम रहता है ग्रन्थकार के मत में रसिक दम्पति के परस्पर प्रेम को अङ्कित करने के लिये यह दृष्टान्त भी ठीक नहीं रहा फिर काले (४) "प्रीतम प्राण कपूर हैं प्यारी चिहुटनी सुरङ्गीजू।" अर्थात् बिना चिरमठी गुन्जा के जैसे कपूर उड़जाता है इसी प्रकार प्यारीजू के सन्निधान विना प्यारे के प्राण व्याकुल हो जाते हैं। कपूर गुन्जा की वियोग में तड़फन है परन्तु इन दोनों के संयोग में कोई विशेष उत्कंठा नहीं है इसलिये पाँचवां दृष्टान्त देते हैं (५) "वदन कमल प्यारी जू को पिय मन मधुकर महा मोभी जू इत्यादि।" प्यारे लालची भौराँ की तरह प्यारी जूके मुख कमल पर सदा मंडराते रहते हैं। इस दृष्टान्त में भी दोनों का रमण नहीं है अतः फिर कहते हैं (६) "अम्ब खानी कोयली और वारि खानी वेली जू।" इत्यादि याने जैसे कोयल एक मात्र आम के बौर से रमण करती है, लताऐं एक मात्र जल से ही जीवित रहती हैं इसी प्रकार सुन्दरी श्रीप्यारीजू का रमण श्याम सुन्दर से है और सखियों का जीवन एक मात्र उभय सङ्गम है। परस्पर मिलने से उज्ज्वल होकर पिघल जाना और सदा परस्पर कर्षण होना उपरोक्त दृष्टान्तों में नहीं आया अतः सातवाँ और आठवाँ दृष्टान्तों द्वारा अपने मन्तव्य को पूर्ण करते हैं' (७) "ज्यूं सुहाग सोनेवने (८) ज्यों चुम्बक वने लोहे जू। यह इन दोउवन को वने ये विरदन के सन्दोहे जू।" अर्थात् सुहागा पड़ने से ही सोना उज्ज्वल होकर पिघलता है और चुम्बक से ही लोहा खिंचता है। रसिक दम्पति की प्रीति में ये दोनों धर्म स्वाभाविक ही सदा विद्यमान रहते हैं। उपरोक्त आठों दृष्टान्तों के धर्मों को मिलकर युगल की परस्पर प्रीतिका कुच्छ दिगदर्शन करा सकते हैं। ये आठों दृष्टान्त सखियों के आठ यूथों के हैं ऐसा भी कह सकते हैं।

॥ अनुरागिनि धन्यभागा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

वृन्दाबन कल कुंज में मंजुल केलि रसाल।
रसमय होरी खेलहीं नित्य बिहारीलाल ॥

॥ पद ॥३२॥

रसमय होरी खेलहीं जय जय श्रीनित्यबिहारी लाल।
श्रीवृन्दावन सुखपुंज में मंजुकमल कलकुंज रसाल॥
सुभग सुरंग सुहावनी अवनी अति कवनीय अनूप।
मृदुमनि मण्डित मन हरै दिव्य अखण्डित सहज स्वरूप ॥१
चम्पक मधु कुंद केतकी कोमल कुवलय कदलि कदम्ब।
ललित लता कुल संकुला लपटि लपटि रही रस अवलम्ब॥२
मधुर सरोवर रस भर्यौ अमल कमल जहाँ रहे रस झूमि।
मत्त मुदित मड़रावहीं मधुलिह घन मकरन्दनि घूमि॥३
खग मृग तन बन क्रीडहीं अप अपने मिलि सहज सुभाय।
त्रिविध पवन हित रवन कें गवन करत रसभवन रमाय॥४
अँग अँग सहचरी रङ्गभरी रङ्गभरेन कें रहि रँग रागि।
सकल खेलकी सौंज लै पुलकि पुलकि रस प्रेमहिं पागि॥५
रङ्ग रङ्ग पिचकारी भरी दई स्याम स्यामाजू कें हाथ।
तकि तकि तन तन छिरकहीं सोरबोर कर लीने साथ॥६
साख जवादिरु कुमकुमा मलयागर घनसार मिलाय।
सरस सुगन्धित अरगजा उमँगि उमँगि अँग दिये लगाय॥७
मोहन मन के भाँवते दोउ सुन्दरवर नवल किसोर।
हरखि हरखि सुख बरषहीं निरखि निरखि निज२प्रिय ओर॥८
बिबिध भाँति बाजे बजें एक संच सुर तान बन्धान।
नूपुर कंकन किंकिनी बलयाबलि कल शब्द सुठान॥९
अबीर गुलाल उड़ावहीं हो हो हो हो बचन उचारि।
धर अम्बरमें अरुनई फैल गई वैभव विस्तारि॥१०

केलि कलाबलि सहचरी समझाये दोऊ सुकुँवार।
रङ्ग रह्यो बहु रङ्ग में अब कीजै बलि फूलबिहार ॥११
सुभग सिंघासन सोहनो पद्मरागमनि झलक सुहाय।
मदन सदन के चौकमें चारुमती जहाँ दियौ बिठाय ॥१२
जानि सखिन के जीय की अति प्रवीन सिरमौर सुजान।
तहाँ मिलि बैठे दोऊ लला लै लै अधर सुधारस पान ॥१३
बरन बरन बनि बनि रहे डहडहे मृदुल मनोहर फूल।
खेलत में अति सुख बढ़्यौ नवजोवन सुन्दर समतूल ॥१४
अलकलड़ीले लाड़िले कमलन कमल मचाई मार।
छबि अनुराग सिंगार की परी प्रेममधि झलक अपार ॥१५
इततें कुन्दकली चली मधुक सुमन सों करन कलोल।
उततें अम्बुज रस भर्‌यौ उघर्‌यौ कोमल कलित कपोल ॥१६
मालति मिलि चलि मोगरे जुही सेवती सदा सुहाग।
बरकरना सों केतकी बिलसत फूलफाल कौ फाग ॥१७
बहँसे बहँसन बिलसियौ बिबिध भाँति फूलनको खेल।
भिरि भिरि फूले फूलसों भई परस्पर पेलापेल ॥१८
श्रमित जानि निज सहचरी नेक निहोरि राखी विरमाय।
लै कर फूलन बीजना व्यारत व्यार परम सुखदाय ॥१९
कोउ सखि पाँय पलोटहीं कोउ सखि भुज चाँपति चित चाहि।
समन भई सब सिथिलई फिरि खेलौ बलि जाँउ उमाहि ॥२०
जहाँकी तहाँ सब सहचरी सजि सजि लीनी सौंज सँवारि।
खेल मचायौ तीसरे दोऊ सुभट फिरि उठे सँभारि ॥२१
अम्बर में घनदामिनि बरषत रस आनन्द अहलाद।
थल अरु बिथल भरे सबै एकमेक करैं तजि मरजाद ॥२२
चहल पहल रँगमहल में दोऊ अहल अलबेले लाल।
तत्पर तहाँ निज टहलमें श्रीहरिप्रिया प्रबीनी बाल ॥२३॥३२

अनुरागिनी धन्यभागा मध्याभास=राग धनाश्री। वृन्दावन कलकुञ्ज=यहाँ श्रीप्रियाजू के दिव्य मङ्गल विग्रह रूपी कुञ्जों से तात्पर्य है। मञ्जु=सुन्दर। कमल कल कुञ्ज="हृदय कमल मुख कमल सुहायो कर पद नैन कमल मन भायो। औरहु कमल भेद बहु विधि के। भरे सुरङ्ग स्मर ऋद्धि सिद्धि के।" (तालिका)अवनी="तन अवनी सरिता श्रृङ्गार" (तालिका) दिव्य मङ्गल विग्रह। मणिमण्डित="अङ्ग अङ्ग उदय होय जो काम रत्न ज्योति ताही को नाम" (तालिका) चम्पक=नासिका (तालिका) मधुक="मधुक सुमन संज्ञा कपोल की (तालिका) कुन्द ="रद कुन्दहि जानो ॥" (तालिका) केतकी= "कही केतकी पिण्डुरीरूप।" (तालिका) कुवलय=हृदय। कदली=जंघा (तालिका) कदम्ब="चरण कदम्ब" (तालिका) ललित लता=छबि की लता लपटि छबि पावै।" (तालिका) रस अवलम्ब="मर्कतमणि—रस रङ्ग सहेली" (तालिका) श्रीलालजू को अवलम्बन करके। सरोवर="नाभि सरोवर" (तालिका) मधुलिह=भौंरा "अलिमृग दृग कहिये"=लालजू के नेत्र कमल घन मकरन्द=गाढ़ सुगन्ध। खग, मृग=नेत्र (तालिका) विविध पवन=श्वासा (तालिका) अँग अँग सहचरी=अङ्ग सङ्गनी अन्तरङ्गनी आदि सखियाँ पिचकारी=,'कुटिल कटाक्ष" (तालिका) साख जवादि कुमकुमा="तत्सुख सुख सुरङ्ग सुनि सोई।" (तालिका) घनसार=अरगजा="अतर अरगजा और अगर सत। उमङ्ग उलास अनङ्ग रङ्ग वर्षत।" [तालिका] विविध भांति बाजे=विविध भान्ति के बाजे बाजे। सोई अङ्ग अङ्ग भूषणसुर साजे।" [तालिका] अबीर गुलाल="लसनि हसनि मोंद्वजि द्युति जोई। अबीर गुलाल कही है सोई।" [तालिका] धर अम्बर=यहाँ धर= श्रीप्रियाजू। अम्बर=प्यारे। केलिकलावलि सहचरी="रहसि रङ्गावलि रतिरूपा अर्थात् रतिरूपा अङ्ग सङ्गनी। सुभग सिंहासन=[तालिका] अनङ्ग तरङ्गा सखी [समवर्तनी प्रसङ्ग] चारुमति="चाव चारु अनन्तनी।" [अन्त रङ्गनी प्रसंग] कमलनि कमल= रसिक दम्पति के अङ्ग प्रत्यँग। छबि अनुराग सिंगार=प्रेम और श्रृङ्गार रस मूर्तिमान। कुन्द कली=लालजू के अधर रदनादि। मधुक सुमन=कपोल [तालिका] मालति मिलि चली मोगरे=आलिङ्गन चुम्बन जो वही। मली मालति संज्ञा लही।" [तालिका] जुही="जोहन जुही" [तालिका] सेवती सदा सुहाग="सदा सुहाग सेवती श्यामा" [तालिका]। परकरना=अङ्क। केतकी=पिण्डुरी" [तालिका] वहसे वहसनि=होडा होड़ी। पेलापेल=परस्पर धकेलना विरमाय=आराम कराया। समन भई=थकावट दूर हुई। उमाहि=उत्साह युक्त। अम्बर में=सुमेरु के शिखर का रति विलास नृत्य। घन दामिनी=प्रिया प्रीतम [तालिका] आनन्द अह्लाद=प्रिया प्रीतम। थल अरु विथल=

"अन्य अंग प्रति सीमा सोई" । [तालिका] चहल पहल=भीड़ भाड़ । अहल=रहने वाले [फारसीशब्द] होरी लाल के व्याज से ग्रन्थकार ने इस पद में रसिक दम्पति के सुमेरु के शिखर के रति विलास नृत्य को वर्णन किया है ।

॥ दोहा ॥

श्रीनित्यविहारी लालजू, श्रीप्रियाजू के दिव्य मंगल विग्रह रूपी श्रीवृन्दावन की सुन्दर कल कुञ्जों में रसीली रति विलास केलि रूपी रसमय होरी खेल रहे हैं ।

॥ पद ॥

श्रीनित्य विहारी लाल की जय हो जो रसमय होरी खेल रहे हैं । श्रीप्रियाजू के दिव्य मंगल विग्रह रूपी वृन्दावन में सुख पुञ्ज स्वरूप मधुर कमलादि नामों की सुन्दर सुन्दर रसीली कुञ्जें हैं । जिस वन की भूमि अत्यन्त सौभाग्यवती, अनुराग रंग से रञ्जित सुहावनी, अति कमनीय तथा अनुपम है जो स्वाभाविक ही मृदु मृदु मणियों से मण्डित दिव्य तथा अखण्डित है । जिस को देखकर आपके प्यारे का मन हरण हो जाता है ।१। इस वृन्दावन में चम्पक, मधुक, कुन्द, केतकी कोमल कुवलय, कदली और कदम्ब आदि की बहुत सी ललित लताओं के कुलों का समूह है जो रस का अवलम्ब करके परस्पर लपटी हुई हैं । श्लेषार्थ यह है :—रसिक दम्पति परस्पर गाढ़ आलिगन किये हुए हैं जिस के प्रभाव से इनकी परस्पर नासिका से नासिका, कपोल से कपोल, दन्तावली से दन्तावली, पिण्डरियों से पिण्डुरी कोमल हृदय से हृदय, जंघाओं से जंघा और चरणों से चरण रस अवलम्ब के कारण मिले हुए हैं ॥२॥ इस वन में रस से भरा हुआ मधुर सरोवर है जिस में रस के प्रभाव से स्वच्छ कमल खिल रहे हैं । जिन पर गाढ़ सुगन्ध के लोभी भौंरा मस्त होकर प्रसन्न चित्त से मण्डरा रहे हैं । श्लेषार्थ :—प्यारीजू की नाभी ही मधुर सरोवर है रस के सन्निकट वक्षोज, उदरादि स्वच्छ कमल खिले हुए हैं जिनकी सौन्दर्यादि गाढ़ सुगन्ध से प्यारे के नेत्र कमल रूपी भौंरा मत्त होकर मुदित चित्त से मण्डरा रहे हैं ॥३॥ इस तन रूपी वन में पशु पक्षी परस्पर मिल जुल कर अपने अपने स्वभावों से क्रीड़ा करते हैं । विविध प्रकार की शीतल मन्द सुगन्ध पवनें इस रस भवन में रमण कराने के निमित्त चलती रहती हैं । श्लेषार्थ :—प्यारे के चञ्चल स्वभाव वाले खञ्जन पक्षी सरीखे और मृग जैसे डह डहे नेत्र कमल प्यारी जू के तन रूपी वृन्दावन में स्वतन्त्रता पूर्वक विहार कर रहे हैं अर्थात् रूप माधुरी को पान कर रहे हैं । लड़ैतीजू की इस समय की शीतल मन्द सुगन्ध युक्त श्वाँसा अपने प्यारे रस भवन को रमण कराने के लिये अनुकूल चल रहे हैं ॥४॥ इस वन के सब भागों में रंग भरी सहचरियाँ अनुराग से रञ्जित

रसिक दम्पति के रङ्ग में रङ्गी हुई होरी खेल के उपयुक्त सब सामग्रियाँ लिये हुए उपस्थित हैं जिन के अङ्गों पर प्रेम रसके सात्विक विकार रोमाञ्च आदि हो रहे हैं। श्लेषार्थ :—प्यारीजू के अँग प्रत्यँगों में इनकी अँग संगनी तथा अन्तरंगिनी सहचरियां हैं जो प्यारे के रङ्ग में रंजित हो रही हैं अर्थात् इस समय इन का रोम रोम प्यारे को सुख प्रदान कराना चाहता है इस लिये रति विलास सम्बन्धी सब सोंज से यह विभूषित हैं अर्थात् अंग प्रत्यगों में रोमाञ्च हो रहे हैं और यह इस समय प्रेम के उच्चतम रस में पगी हुई हैं ॥५॥ सखियों ने रंग बिरंगे रंगो की पिचकारियां भरि भरि करि श्याम श्यामाजू के हाथों में देदीं। फिर ये दोनों एक दूसरे के अंगों पर तकि तकि कर छिरकने लगे। यहाँ तक कि एक साथ ही दोनों रंग में तर बतर हो गये। श्लेषार्थ :—सखियों से प्रेरित होकर रसिक दम्पति परस्पर कुटिल कटाक्ष करने लगे जिन से रति विलास जन्य रहस्य रंग अर्थात् दिव्य काम उद्दीपन हो गया जो दोनों के अँग प्रत्यँगों में भली प्रकार से छा गया ॥६॥ फिर दोनों उमंगि उमंगि करि सरस सुगन्ध युक्त वह अरगजा परस्पर लगाने लगे जिस में शाख जव आदि के साथ केशर, चन्दन, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थ मिले हुए हैं। श्लेषार्थ :—इन दोनों का रति विलास विहार तत्सुख सुखी मयी है। फिर परस्पर चुम्बनादि करते हुए ये दोनों उस घन विहार में प्रवर्त हुए जिस में सुख की अपार मारा मार मची हुई है जिस से दोनों के अँगों में उमंग उल्लास और अनंग रस की वर्षा होने लगी ॥७॥ यद्यपि ये दोनों ही सुन्दर वर नवल किशोर हैं तो भी मोहन लालजू के मन को यह रति विलास बहुत भाया। वह अपनी प्रिया की उस समय की दशा को देखकर इतने प्रसन्न हुए मानों उन पर कोई अनिर्वचनीय सुख की वर्षा हो रही हो ॥८॥ होरी खेल में विविध प्रकार के बाजे एक ही संच स्वर, तान तथा वधान में बज रहे हैं तथा इनके साथ साथ नूपुरों, कङ्कणों, किंकिणियों तथा कड़ों आदि के मधुर शब्द भी हो रहे हैं। श्लेषार्थ :—रति विलास अर्थ में "विविध भान्ति के बाजे बाजें। सोई अङ्ग अङ्ग भूषण स्वर साजें।" (तालिका) अर्थात् रति विलास नृत्य में भूषणों का कलरव ही बाजे हैं ॥९॥ सखियाँ हो हो वचन उच्चारण करती हुई इतना अबीर और गुलाल उड़ा रही है कि पृथ्वी और आकाश में लालिमा का बड़ा भारी वैभव फैल गया। श्लेषार्थ :—रति विलास नृत्य में रसिक दम्पति के "लसनि हंसनि में द्विज द्युति जोई। अबीर गुलाल कहावै सोई।" तालिका अर्थात् दुन्तावलियों की ज्योत्सना अबीर और अधरों की लालिमा गुलाल कहलाती है। दोनों जब हो हो वचन कहते हुए मुसकाने हंसने लगे तो वह लालिमा धर श्रीप्रियाजू अम्बर प्यारे के अँग प्रत्यँगों में वैभव विस्तार सहित

फैलगई ।।१०।। फिर केलि कलावली नाम की सहचरीने दोनों सुकुमारों को समझाते हुए कहा "रङ्ग के खेल में आज बड़ा रङ्ग रहा," मैं आप की बलिहारी जाऊँ अब आप "फूल विहार" करें। श्लेषार्थ :—केलि कलावली सहचरी रतिरूपा अन्तरङ्गिनी सहचरी जी है जो युगल को रति विलास में प्रवर्त कराती हैं यह वृत्ति रूपा है। इन्होंने इस विलास को बन्ध करने की प्रार्थना की और चुम्बनादि "फूल विहार" करने के लिये प्रवर्त किया ।।११।। फिर चाव रूपा चारुमति अन्तरङ्गिनी सहचरीजी ने वह सुन्दर सौभाग्यवान सिंहासन 'मदन सदनु, के चौंक में बिछाया जिसमें पद्मराग मणियाँ अपार रूप से झिल मला रही हैं ।।१२।। अति प्रवीन शिर मौर सुजान रसिक दम्पति सब सखियों के मन की बात समझकर उस सिंहासन पर गल बहियाँ दिये हुए परस्पर अधर सुधा रस पान करके विराजमान हुए ।।१३।। फिर ये दोनों रङ्ग बिरंगे सुन्दर डह डहे मृदुल मनोहर फूलों से परस्पर खेलने लगे। दोनों की नव यौवन सम्पन्न सुन्दर एक बराबर की अवस्था है अतः आज के खेल में बड़ा आनन्द रहा। श्लेषार्थ युगल के अङ्ग प्रत्यङ्गों में यद्यपि स्वाभाविक ही सुख के फूल खिले रहते हैं तो भी इनका मिलकर बैठना अधर सुधा रस पान ने उन फूलों को और अधिक मनोहर डह डहे बना दिया। दोनों की नव यौवन सम्पन्न सुन्दर एक बराबर की अवस्था है इस लिये आज के विलास में सुख का अत्यन्त विस्तार हुआ ।।१४।। लाड़ करने के योग्य दोनों लाड़िलों ने परस्पर कमलों से मारामार मचाई। ये दोनों साक्षात् अनुराग रस और शृङ्गार रस की मूर्तियाँ स्वरूपा हैं इन में बीच बीच में प्रेम की भी अपार झलक आती रहती है। श्लेषार्थ :—घन विहार में गाढ़ आलिङ्गन चुम्बन ही कमलों की मारा मार मचाना है। "अरुण रङ्ग अनुरागहि जानौ। श्याम रङ्ग शृंगार हि मानो। कह्यौ प्रेम कौ पीत जु रंग। इत्यादि।" अर्थात् गाढ़ आलिंगन द्वारा जब दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तो कभी कभी प्रेम के अष्ट सात्विक भाव संचरन होने से दोनों के अँगों में प्रेम की पियराई अधिक अपार रूप से झलकने लगती है ।।१५।। अब फूलों का परस्पर विहार वर्णन करते हुए कहते हैं :—प्यारे की ओर से कुन्द की कलियाँ महा के फूलों के साथ किलोल करती हुई चलाई जा रही हैं। प्यारी ने अपना मुख कमल उघारि के रस से भरे हुए कमलों की वर्षा प्रारम्भ की है ।।१६।। एवं प्रकार से फूलों की वर्षा में मोलसरी मोगरे से, जुही सदा सौभाग्यवती सेवती से, श्रेष्ठ कर्णिका केतकी से परस्पर मिलकर "फूलों के फाग" को विलस रही हैं ।।१७।। श्लेषार्थ :—प्यारे अपने कुन्द कली सरीखे रदनों से प्यारी के महा के फूलों जैसे कोमल कलित कपोलों का चुम्बन करते हैं एवं प्रकार से आलिंगन चुम्बन करते हुए कभी कभी इक टक दृष्टि से सदा सौभाग्यवती

श्रीश्यामाजू को देखने लगते हैं। फिर अपनी प्यारी की केतकी पुष्प सरीखी पिण्डुरियों को अपने अङ्क में लेकर फूले नहीं समाते। एवं प्रकार से ये दोनों आनन्द में फूल कर "फूल के फाग" को विलसते हैं ॥१६॥१७॥ इसी तरह से फूलों के खेल को विविध प्रकार से होड़ा होड़ी विलसते रहते हैं। एक दूसरे को अङ्क में ले ले कर आनन्द से फूले हुए परस्पर पेलापेल मचाते हैं ॥१८॥ सखियों ने रसिक दम्पति को जब श्रमित समझा तब बार बार निहोरे करि करि के थोड़ी देर उनको आराम कराया और फूलों के पंखे लेकर उनसे पवन करके उनको परम सुख पोंहचाया ॥१६॥ कोई कोई सखी उनके चरण पलोटने लगीं कोई चाव में भरि करि भुज दण्ड चांपने लगी। जब थकावट दूर होगई तब बलिहारि लेती हुई कहने लगीं "चाव में भरि करि फिर खेलऐ" ॥२०॥ सब सखियाँ सजि सजि कर अपनी अपनी खेल की सामग्रियां संवारिके जहाँ की तहाँ उपस्थित हुईं। फिर तीसरा खेल मचाया जिस के लिये दोनों सुभट रणधीर संभरि के उठे ॥२१॥ अब की वेर घन दामिनी स्वरूप पिय प्यारी सुमेरु के शिखर पर नृत्य करते हुए उस आनन्द अह्लाद की वर्षा करने लगे जिस ने थल और विथल को भरि के मर्यादा त्याग के एकम-एक कर दिया। श्लेषार्थः—"अँग अँग प्रति सीमा सोई। थल और विथल जानिये जोई।" [तालिका] अर्थात् रति विहार में रसिक दम्पति इतने आसक्त हुए कि उनको अपने अँग प्रत्यँग की सीमाओं का भी ज्ञान नहीं रहा दोनों ऐकमऐक हो गये ॥२२॥ एवं प्रकार से दोनों अलबेले लालों के उनके देह रूपी रंग महलों में बिलास की चहल पहल मची उस समय उनकी निज टहल में श्रीहरि प्रिया प्रवोनी वाल तहाँ सेवा में तत्पर उपस्थित रहीं ॥२३॥

॥ दोहा ॥

लडहोरी मिलि खेलहीं दोऊ लड़लड़े लाल।
लड़लड़ी कुंज सुदेस में संग लड़लड़ी बाल॥

॥ पद ॥३४॥

लड़होरी मिलि खेलहीं दोउ लड़लड़कंता री।
लड़लड़ी कुंज सुदेस लाड़ लडेलड़ी लड़लड़कंता री ॥१॥
मदन मदनि माते महा लड़०।मिथुन मनोरम बेस लाड़० ॥
तैंसिय सहचरि संग की लड़ीलाड़ अँग अंग।
रची है केलि रति रेल की बढ़्यौ परस्पर रङ्ग ॥२॥

चितै चोंप चाढ़े दोऊ चारुमती कें चोज।
अति आदर अँचवाइ कें अधरसुधा-अम्भोज ॥३॥
फूल फबे अँग अङ्ग में अतन जतन अनुकूल।
आज्ञा अनुवर्तिनि सखा देखि दिये हितु हूल ॥४॥
कल केसरि कें चहवचे कर कर भरि पिचकारि।
छिरकत छबिसों छल भरे निज निज तनहिं निहारि ॥५॥
अति रति बरषा बरषहीं पूषन पूषन बंध।
चोवा चन्दन कुमकुमा जखि कर्दम सौगन्ध ॥६॥
चहल पहल कें दलदलै सकत न चरन उठाय।
उमगभरे भिरि भाँवते जकि थकि रहे सुभाय ॥७॥
सोहत अँग अँग रगमगे जगमगे जोवन जोर।
मोहत मन सुखमाधुरी सुख बाढ़्यौ नहिं थोर ॥८॥
दमकति दति दसनावली लसनि हँसनि रँगरेलि।
अलक रलक उरपर रही विनहिं फुलेल उलेलि ॥९॥
लहँगा कटि अद्भुत लसै ललित लंकसों लागि।
लटकि लता ललितावली लिये पियें अनुरागि ॥१०॥
चाँचरि माची मैनकी हो हो हो मुख बोलि।
सब गुन रूप अचागरे तन मन ग्रंथनि खोलि ॥११॥
अबीर गुलाल उड़ावहीं रह्यौ छाय नभ लाल।
सूझ न साँझ सबेर की परे प्रेम कें जाल ॥१२॥
बाजे बाजैं अनभती कलकिंकिनि मंजीर।
अमृत कुण्डली महुबरी आवज सुर गम्भीर ॥१३॥
चलत चरचरी चाल में घटि बढ़ि होत न रंच।
बिच बिच वीना बलकहीं गरब रोषहू संच ॥१४॥
निर्तत मोर जरोर सों छके छबीले छाक।
कौतुक लागे कौतुकी करतारनि की ताक ॥१५॥

खेलत खेलत रङ्ग रह्यो कह्यो सहचरि समुझाइ।
तनक तनक बलि बिरमिये ज्यों श्रम सकल बिहाइ ॥१६॥
बहुबिध फगुवा फूल के दिये हिये हिलि हेज।
चाँपि चुपरि श्रीहरिप्रिया पौढ़ाये सुख सेज ॥१७॥३३

मदनि मदन=दिव्य रति काम रूपा प्रिया प्रीतम। मिथुन=युगल। चोंप=चाव। चारुमती=चावरूपा अन्तरङ्गिनी अँग संगनी। अँम्भोज=मुख कमल की सुधा अतन=दिव्य काम। जतन=यत्न। हितु हूल=हितु सखी जीने हुल हुली दी अर्थात् प्रवर्त कराया। कल केशर=रतिरङ्ग (तालिका)। चहवचे=चुवचे। कुण्डा पूषण पूषणबन्ध=पूषण बादल को कहते हैं। रस रूप वादल के बन्ध टूट गये। यरव करदम=सौभग रस (तालिका) दलदले=कीचड़। उलेलि=चञ्चल। लंक=कमर। ललितावली="ललित गुण सुन्दरी लाड़।" लाड़ स्वरूपा अन्तरंगनी सखी। चाचरि=पेला पेल होरी खेल। मैन=दिव्य काम। अचागरे=अच+अग्र आस्वादन करने वालों में अग्रणीय। रंच=नेक, संच=अति अधिक। मोर=यहाँ लालज्नु से तात्पर्य हैं। ताक=ताल। हिलहेज=प्रेम सहित। चाप चुपर=समझा बुझकर अथवा चरण पलोटकर निहोरे करके ग्रन्थकार होरी के व्याज से रसिक दम्पति के सुरति केलि जन्य परस्पर के लाड़ का वर्णन करते हैं।

॥ दोहा ॥

सुन्दर लड़लड़ी नामक कुञ्जमें लाड़िली सखियों को साथ लेकर, दोनों लाड़िले परस्पर मिलकर लाड़ की होरी खेल रहे हैं ॥

॥ पद ॥

अरी सखी ! सुन्दर लड़लड़ी नामक कुञ्ज में प्यारी लाड़िली और उनके कन्त दोनों मिलकर लाड़ की होरी खेल रहे हैं। इस समय इन दोनों को दिव्य काम और दिव्य रति ने उन्मत्त कर रखा है , उसी के अनुकूल इनका वेष हैं। अर्थात् दोनों विगत वास हैं ॥१॥ इसी प्रकार से इनकी सहचरियों के अङ्ग प्रत्यंगों में भी युगल का लाड़ भरा हुआ है। अब इन सखियों ने रति विलास की वह केलि रची जिस से इन दोनों का रति रङ्ग विलास परस्पर और अधिक बढ़ गया ॥२॥ चारुमति अन्तरंगनी सखी जी की चाव भरी दृष्टि इन पर पड़ने से इनका चाव और अधिक बढ़ गया। इन्होंने सर्व प्रथम परस्पर मुख कमलों का अधर सुधा रस पान किया ॥३॥ जिस से इन दोनों के अङ्ग

प्रत्यँग आनन्द से फूल गये और अनुकूल भाव से दिव्य काम सब ठोर संचरन हो गया। जब आप की आज्ञा अनुवर्तिनी हितु सखी जी ने यह देखा तो उन्होंने आप दोनों को विलास में प्रवर्त होने की हुल हुली दी ।।४।। सुन्दर केशर के होज भरे हुए हैं। छवि भरे प्रिया प्रीतम अपने हस्त कमलों से उन चुवचों में पिचकारियाँ भरि भरि के एक दूसरे के अङ्गों को देख देखकर छलसे परस्पर छिड़क रहे हैं। श्लेषार्थ :—दोनों के अँग प्रत्यगों में रहस्य रति रंग भरा हुआ है यही कल केसर के चुवचे हैं। एक दूसरे के अंगों को कुटिल कटाक्षों द्वारा भाव भरी दृष्टि से देखना उस रति रंग को अपनी दृष्टि में भरिकर एक दूसरे पर छिड़कना है ।।५।। एवं प्रकार से रति रंग की अत्यन्त वर्षा वर्षने लगी। यहां तक कि आप दोनों के मंगल विग्रह रूपी सूर्य के तेज ने रति रंग रूपी वादल के बन्ध तोड़दिये। फिर परस्पर आलिंगन चुम्बन करते हुए तत्सुख सुखी सुरंग रंग में दोनों भीग गये। इस के पश्चात सुख संगम रूपी सौगन्ध की कर्दम में जा फंसे यही दोनों का सौभाग्य रस है इसी के लिये ये सदा लालायित रहते हैं ।।६।। यद्यपि इस संगम रूपी दल दल में ये इतने जा फंसे कि एक क्षण के लिये भी इस से अपने चरणों को नहीं उठा सकते हैं। तो भी परस्पर मिले हुए दोनों भाँवतो की उमंगे बढ़ती जा रही हैं और भाव में भरे हुए अके से जके से हो रहे हैं ।।७।। इनके अँग प्रत्यँग रति रंग में भीगे हुए कैसे सुशोभित हो रहे हैं। यौवन का जोर कैसा जगमगा रहा है। दोनों के मुखारविन्दों की माधुरी मन को मोह रही है। इनके सुख का कुच्छ आरापार नहीं है ।।८।। जब रंग में भरि कर ये दोनों हंसते हैं तब इनके दन्तावली की दमक कैसे चमकने लगती है। इनके हृदयों पर चंचल अलकवलीयाँ कैसी रलक रही हैं ये विना ही किसी फुलेल के कैसी चमचमा रही है ।।९।। प्यारी की कटि पर ललित कमर से कसा हुआ अद्भुत प्रकार का लहँगा सुशोभित है। ऐसा प्रतीत होता है मानो इस लहँगा से लता की तरह से वह लाड़ स्वरूपा ललित ललतावली अन्तरंगिनी सखी लपट रही हो जो प्यारे का अनुराग लिये हुए है। अर्थात् विहार में प्यारी का लहँगा लालजू से इस प्रकार लपट गया है मानों लहँगा के रूप में प्यारी का साक्षात लाड़ प्यारे को लड़ा रहा है ।।१०।। फिर हो हो कहिकर दोनों परस्पर हाथा पाई करते हुए दिब्य काम के वशीभूत होकर चाचरि खेल खेलने लगे। कोक कला सम्बन्धी सब गुणों और रूपों के आस्वादन करने वालों में ये दोनों अग्रगण्य हैं अंतः तन मन की ग्रन्थी खोलकर विलास में प्रवर्त हुए ।।११।। मुस्कन हसन अबीर गुलालन" अर्थात् इन दोनों के मुस्कराने और हँसने से दन्तावली और अधर पल्लवों के विकास से इतनी लालिमा छाई मानों समस्त नभ मण्डल लाल हो गया। इस

समय ये ऐसे प्रेम के जाल में पड़े हुए हैं कि इनको साँझ सवेर का भी ज्ञान नहीं है ।१२ भान्ति भान्ति के बाजे बज रहे हैं । इनके साथ साथ किंकिणी की क्षुद्र घण्टिकाओं का मधुर शब्द हो रहा है । अमृती, कुण्डली, महुवरी, आवज, सुरंगी और भैर आदि बाजे बज रहे हैं ।।१३।। ये सब बाजे चरचरी ताल में सब एक स्वर में मिले हुए बज रहे हैं । इनके स्वरों में नेक भी घट बढ़ नहीं होती है । वीच बीच में वीना भी बज रही है । श्लेषार्थ :—सुरति बिलास में "विविध भान्ति के बाजे बाजै । सोई अँग अँग आभूषण स्वर साजै ।" (तालिका) अतः रति नृत्य में विविध भान्ति के आभूषणों के मधुर स्वर हो रहे हैं । प्यारे की अति अधिकता देखकर प्यारी को उस समय का गर्व, रोष कैसा सजता है ।।१४।। रति नृत्य में प्यारे मोर की तरह से मरोर से नृत्य कर रहे हैं क्योंकि यह छवीले इस समय प्यारी जू के अधरामृत रूपी छाक से छके हुए हैं । यह कौतुकी प्यारे बिलास रूपी खेल के कौतुक में लगे हुए हैं ।।१५।। खेलते खेलते श्रम जान करि सहचरीने समझाकर कहा "आज के खेल में बड़ा रंग रहा । अब आप थोड़ी देर के लिये विश्राम करें मैं आप की वलिहारी जाऊँ । ताकि आप का सब परिश्रम दूर हो जावे ।' ।।१६।। फिर रसिक दम्पति ने वहुत प्रकार के "फूल के फगवा" प्रेम सहित सखियों को दिये । श्रीहरिप्रिया सखीजू ने समझा बुझाकर अथवा युगल के अँगों के चाँपि के फुलेल आदि मर्दन करके आनन्द पूर्वक दोनों को सुख सेज पर पौढ़ाया ।।१७।।

नोट :—"फूल के फगवा" से यहाँ यह तात्पर्य है । रसिक दम्पति और सखियों का सब विलास तत्सुख सुखी मयी है । आज के परस्पर के विलास से प्रिया प्रीतम के अङ्ग प्रत्यङ्गों में जो आनन्द की फूल हुई उस को देखकर सखियाँ इतनी प्रसन्न हुई मानों उन्हें मन माना फगवा मिलगया । यही फूल का फगवा है ।।

।। दोहा ।।

हाँ हाँ हो हो लें बलैं कहत परस्पर बाम ।
सहज सजन सुख बिलसहीं जोरी गोरी स्याम ।।

।। पद ।।३४।।

सहज सजन सुख विलसहीं सुनि सजनी ए
एरी ए सहज सुनि सजनी ए जोरी गोरी स्याम । हाँ हाँ हो हो लें बलें ।
नवल निकुंज बिराजहीं सुनि सजनी ए
एरी ए सहज सुनि सजनी ए मूरति मोहन काम ।। हाँ हाँ हो हो लें बलें ।।१।।

अति रसरूप अचागरे छके छबीले छैल।
बिबिध बिनोद बिहारहीं जुरि जुरि जोवन फैल ॥२॥
उमङ्गि मिले अनुरागसों लगे फाग कें लाग।
कर कंचन की पिचकरी भरि केसरि बड़ भाग ॥३॥
कृष्णागर मलयागिरी घोरि घोरि घनसार।
छिरकत छलसों छबिभरे अति सुगन्ध नहिं पार ॥४॥
राजत दोउ रस रगमगे सोरबोर भये अङ्ग।
अरचे अतर अमोलसों सगबगे सङ्ग सुरङ्ग ॥५॥
लटकि चलनि अति सौहनी मोहन मत्त मराल।
बदनचन्द्र चित चोरहीं चितवनि नैन बिसाल ॥६॥
घुँघरारी अलकावली झलमल बिमल कपोल।
हँसत लसत दसनावली रँगी रङ्ग तम्बोल ॥७॥
धूँधरि अरुन अबीर की मिलि गुलाल गह्यौ गैन।
कर-कंजनि की चलवनी कहि आवत नहिं बैन ॥८॥
सीसी सुभग फुलेल की ढब सों दई ढरकाय।
एक बरन भये भरनमें तन न पिछाने जाय ॥९॥
देखि दुहुँन की दिब्यता उर आनन्द न समाय।
मंगल बिमली गावहीं झुरमुट झूम झुमाय ॥१०॥

खेलति होरी कुंवरि किसोरी झुरमुट झोरी।
झूमि झूमि री झूमि झूमि ॥
अङ्ग रङ्ग बोरी जोवन जोरी झमकि झकोरी ॥ झूमि० ॥११॥
अति रति पागी पिय उर लागी सहज सुहागी। झूमि०
अलि अनुरागी पदमपरागी प्रतिछिन खागी ॥ झूमि० ॥१२॥
बोलत हम्बे सुर ले लम्बे सखी कदम्बे। झूमि०
अधरन बिम्बे अँचवत अम्बे लागि नितम्बे !! झूमि० ॥१३॥
कटिकी कोरें नीवी डोरें बन्धन छोरें। झूमि०

मदन मरोरें बदन निहोरें रतिरस ढोरें ॥ झूमि० ॥१४॥
जलज रसालें रति प्रतिपालें अति गति चालें । झूमि०
लड़वत लालें नैन बिसालें लै लै गुलालें ॥ झूमि० ॥१५॥
चटपट चटकें लटपट लटकें झटपट झटकें । झूमि०
अँग अँग अटकें उमग अघटकें रस गट गटकें ॥ झूमि० ॥१६॥
रटत बिहारी मैं बलिहारी जाँउ तिहारी । झूमि०
जीय जियारी जग उजियारी श्रीहरिप्यारी ॥ झूमि० ॥१७॥
यह रस दुर्ल्लभ है महा सुनि० सुल्लभ कृपा मनाय । हाँ०
श्रीहरिप्रिया की केलिनी सुनि० सब दिन सहज सुभाय॥हाँ० १८।३४।

होलैं वलैं=शनैं शनैं कहती हैं अथवा बलिहारी जाती हैं। वाम=सखियाँ। सजन=अपने प्यारे का। अचगरी=अच्+अग्री=आस्वादन करने वालों में अग्रणीय। कृष्णागर=अगर की लकड़ी। मलयागिरी=चन्दन। घन सार=कपूर। अरचे=लेपन किये। सगवगे=गीला करन। रगमगे=रञ्जित। मत्त मराल=मस्त हंस। विमल विलोल=स्वच्छ चंचल, धूँधर=अन्धकार। गैन=गहन=गाढ़ा। मंगल विमली=खेल या गीत का नाम अथवा सखियों के नाम, सुहागी=सौभाग्य वती। खागी=पक्षी की तरह उड़ि उड़िकर। कदम्बै=यहाँ चरण कमलों से तात्पर्य है! अम्बे=अधरामृत। जलज रसालै=अङ्गों से तात्पर्य है नितम्बे=कटिपश्चात भाग। इस पद में भी होरी विलास के अन्तर्गत रतिक्रीड़ा का वर्णन है।

॥ दोहा ॥

गौराङ्गी श्रीलड़ैतीजू और श्रीश्याम सुन्दर की जोरी रति विलास सुख को अपने सहज स्वभाव से विलसि रही हैं। सखियाँ उस समय की उनकी रूप माधुरी को देख देख कर होले होले परस्पर कह रही हैं "हम आपकी बलिहारी जावें। आप जल्दी न करें अपितु इस विलास को शनैं शनैं विलसैं॥

॥ पद ॥

हे सखियो! यह जोरी स्वाभाविक रति विलास सुख विलस रही है उसका मैं वर्णन करने लगी हूँ। आप ध्यान पूर्वक सुनें। साक्षात् मूर्ति मन्त काम को मोहन करने वाली यह जोरी नवल निकुञ्ज में विराजमान है॥१॥ ये दोनों अतिरस और रूप के आस्वादन करने वालों में अग्रणीय हैं। अधर सुधा रूपी छाक से ये दोनों छवीले छके

हुए हैं। विविध प्रकार के विहार सम्बन्धी विनोद कर रहे हैं। परस्पर मिल मिलकर यौवन के भोगों को भोग्य रहे हैं ॥२॥ फिर दोनों अनुराग से मिलकर फाग के खेल में लग गये। दोनों के हाथों में स्वर्ण की पिचकारियाँ हैं जिन में बड़ भागियों ने वह केशर का जल भरि रखा है जिसमें अगर और मलया गिरिचन्दन घिसकर कपूर घोर कर मिला रखा है। उपरोक्त प्रकार के जल को जिस की सुगन्ध का कोई आर पार नहीं है, ये दोनों छवि भरे एक दूसरे पर छल से छिरकि रहे हैं ॥३॥४॥ एवं प्रकार से ये दोनों रस रंग में भीगे हुए सुशोभित हो रहे हैं। इस समय इनके अँग प्रत्यँग सब तर बतर हो रहे हैं। उपरोक्त रंग से ही रञ्जित नहीं हैं अपितु "अतर अरगज और अगर सत। उमंग उल्लास अनंग रंग वर्षत (तालिका) अर्थात् उमंग और उल्लास सहित परस्पर अनंग रस की वर्षा करने लग रहे हैं जिस वर्षा से ये दोनों भीग गये हैं अर्थात् दिव्य काम उद्दीपन हो गया है ॥५॥ प्यारे की लटकि चलन कैसी सुन्दर लगती है। इस को देख कर मस्त हंस भी मोह को प्राप्त हो जाता है। मुख कमल की माधुरी चित्त को चुराने वाली है। विशाल नेत्र कमलों से कैसे देख रहे हैं ॥६॥ इन की स्वच्छ घुँघराली अलकावली विलास के कारण चञ्चल कैसी झल मला रही हैं। जब यह हंसते हैं तब पान के रङ्ग से रञ्जित इन की दन्त पंक्तियाँ कैसी सुशोभित होती हैं ॥७॥ अरुण अबीर की धुधरि मची हुई है जो गुलाल से मिलकर और अधिक गाढ़ी हो गई है। इस धूँधरि में दोनों के हस्त कमलों की परस्पर चलने की शोभा का कुछ वर्णन नहीं कर सकते हैं।८ फिर प्यारे ने समय देखकर सुभग फुलेल की शीशी अपनी प्यारी पर ढरकादी। अथवा "निज तन सुभग रतन मणि कहिये" (तालिका) "सुमन सनेह फुलेल कहावैं।" (तालिका) अर्थात् खेलते खेलते प्यारे ने स्नेह पूर्वक अपने निजतनको अपनी प्यारीकी ओर ढरकादिया अर्थात् उनका गाढ़ आलिंगन किया। दोनों हिल मिलकर इस प्रकार एक हो गये कि इस समय इनके तन भी पृथक् पृथक् पहचाने नहीं जा सकते हैं ॥९॥ इस समय की इनकी दिव्य माधुरी के दर्शन करके सखियों का आनन्द इनके हृदयों में नहीं समाता है। अतः ये सब झूमि झूमिकर मङ्गल विरली गाती हुई, "झुरमट" खेल खेलने लगी ॥१०॥ यह कहने लगी "हमारी कुँवरि किशोरी होरी खेल में कैसे झूमि झूमिकर "झुरमट" खेल खेल रही हैं। इनके अङ्ग प्रत्यँग सब अनुराग रङ्ग से रञ्जित हैं। यौवन के जोर से कैसे झूमि झूमि कर खेल रही है ॥११॥ सहज सौभाग्यवती हमारी प्यारी रति विलास में अत्यन्त पगी हुई अर्थात् रत्यन्त दशा में झूमि झूमि करि अपने प्यारे के हृदय से कैसी लगी हुई है। और इनके चरण कमलों की सुगन्ध के अनुरागी भौंरे हमारे प्यारे पक्षी की

तरह से छिन छिन में झूमि झूमि कर इनके चरण कमलों में कैसे पड़ रहे हैं ।।१२।। हे सखि ! इनके चरणों में पड़े हुए जब प्यारे आतुअ होकर लम्बे लम्बे श्वाँस लेने लगे तब प्यारी ने हृदय से लगाकर इनका गाढ़ आलिङ्गन किया, और अधरों से अधर मिलाकर इन को अधर सुधा रस पान कराया ।।१३।। फिर दिव्य काम से मोहित प्यारे के बार बार निहोरे करने से "कटि की कोरें नीवी डोरें बन्धन छोरे" अर्थात् प्यारी विगतवास हुई । फिर झूमि झूमिकर रति रस की वर्षा होने लगी ।।१४।। दोनों के अँग प्रत्यंगों में ऐसे रसीले कमल खिले हुए हैं जो परस्पर मिल जुलकर रति रस को पुष्ट करते हैं और जो झूमि झूमिकर रति विलास की गति को बढ़ाते हैं । प्यारी अपनी मधुर हंसन मुस्कराहट रूपी गुलाल से विशाल कमल दल लोचन अपने प्यारे को झूमि झूमि कर लड़ा रही है ।।१५।। रति विलास में हाथा पाई करते हुए कभी परस्पर अङ्गों के मिलने से चटपट शब्द होता है । कभी लटपटाते हुए एक दूसरे पर लटक जाते हैं । कभी झूमि झूमि कर परस्पर झटपट झटकते हैं कभी विहार में एक दूसरे के अंगों से अंग अटक जाते हैं । फिर उमँग में भरि कर अघट घटना रूपी विहार करते हैं । फिर अधर सुधा रस को आनन्द से घूँटे लै लै कर झूमि झूमिकर पान करते हैं ।।१६।। एवं प्रकार से जब प्यारी ने प्यारे को आनन्द से छकादिया तब श्रीबिहारीलाल ने "हे मेरे प्राणों को जीवदान देनेवाली ! हे जग उज्यारी, और हे श्रीहरिप्रिया सखी की प्यारी मैं तुम्हारी बार बार वलि हारी जाऊँ ।" एवं प्रकार से झूमि झूमि कर बार बार रट लगादी ।।१७।। हे सजनी तू सुनि, जो रस मैंने तुझ से वर्णन किया है यह रस दुर्लभ से भी दुर्लभ है किन्तु जो रात दिन रसिक दम्पति, सखियों अथवा श्रीवृन्दावन की कृपा मनाते रहते हैं, उनके लिये यह रस सुलभ हो जाता है । और श्रीहरि एवं प्रिया की उपरोक्त रति विलास केलि उन कृपा मनाने वाले साधकों को स्वाभाविक ही अहर्निश सुहाने लगती है ।।१८।।

।। अनुरागिनि सुरंगांगा मध्याभास ।।

।। दोहा ।।

सहज रँगीली रँगभरी रंगभरे सँग रंग ।
भीनी होरी खेलहीं नित्य नवीनी अङ्ग ।।

।। पद ।।३५।।

हो मेरी सहज रँगीली रँगभरी खेलैं रंगभरे सँग होरी हो ।
नित्य अभङ्ग अङ्ग रँग भीनी नित्य नवीन किसोरी हो ।।

चंचल चारु सलोने दृग अनहोने अति अनियारे हो।
अंजन बिन खंजन मदगंजन रसरंजन रतनारे हो ॥१॥
नासा बेसरि जलज मनी की नीकी बनक बनीकी हो।
मनु पिय मन पीवन पीयूषहिं तरफत कनक तनीकी हो ॥२॥
गोल कपोल जुगल अति गोरे मुख तम्बोल रस लागी हो।
मनु क चन सम्पुट मधि लै अनुराग भर्यौ अनुरागी हो ॥३॥
चिबुक चितै चित चुभ्यो रहति सखि! कहत कह्यौ नहिं आवै हो।
श्रौन तरौन सलोननि की उपमा लगि कौन लगावै हो ॥४॥
सुमन सनेह रली रलकैं झलकैं अलकैं अलबेली हो।
मनु माधुरि धुरवा ढलकैं सखि ललकैं लखि तलबेली हो ॥५॥
सुभग जराय जर्यौ अति सोहैं ललित लाल छबि छाजी हो।
मनहु भागमनि भाल बाल कैं बाहिर आनि बिराजी हो ॥६॥
सारी सुही किनारी कोरनि कामकेलि रस बोरी हो।
कञ्चुकि कसी लसी अतलस गोरे गर गरब गरोरी हो ॥७॥
कटि अति क्षीन लगी न लगी-सी लफति उरोजनि भारैं हो।
उर डोरी जकरी सकरी पकरी लहँगा लहकारैं हो ॥८॥
चरन करन आभरन स्वरन मन हरन बरन तरु नीकैं हो।
मनहु बेलि अलबेलि झेलि रहि झूलि फूलि फरु नीकैं हो ॥९॥
तैसिय संग सहेली निजनिज सजि सजि सौंजनि सरसैं हो।
मनभाये रँग अनँग उमंगनि अँग अंगनि में बरसैं हो ॥१०॥
प्रीति भरी पिचकारी प्यारी पियपर डारी आछैं हो।
हो हो हो कहि लटक चालसों लाल गहे पग पाछैं हो ॥११॥
भिरि भामिनि छिरकत छबि सों सौगंधिक अतर अमोलैं हो।
अरुन बरन अनुराग गुलालैं मुरि हँसि पिय मुख घोलैं हो ॥१२॥
चरचित चोवा चोंप चाय के चंदमुखी चटकीली हो।
सुख सोंधे सानत मन मानत मानमती मटकीली हो ॥१३॥

चहल पहल भई मदन महल में अहल न कोउ अहूटे हो।
टूटे हार बार उर छूटे कोटि सुरति सुख लूटे हो ॥१४॥
बिबिध भाँति बाजनकी बजनी सुनि सुनि श्रवननि सजनी हो।
रुचि तरंग बाढ़ी अति गाढ़ी अंग उतंग उरजनी हो ॥१५॥
कुच परसन मरसन मिस मोरी रोरी लगनि लगाई हो।
दाय पाय पिय लै अदले बदले में बाल जगाई हो ॥१६॥
जै जै श्रीवृन्दावन मंजुल कुंज कमल के बासी हो।
ऐसेंहीं बिलसौ हुलसौ मिलि श्रीहरिप्रिया रसरासी हो ॥३५॥१७

अनुरागिनी सुरंगागा मध्याभास=राग सारंग। रंग भीनी=अनुराग से भीगी हुई। अनियारे=विलक्षण। रतनारे=रत्नो सदृश चमकीले जिन में लाल डोरे पड़े हैं। जलजभनी=मोती। बनक=बनावट। पीयूषि=अमृतरोन=कुण्डल। धरुवा=बादल। ललकैं=तड़फन तलवेली=बेचैनी। तलवली। गरव गरोरी=गर्भगरूर अभिमान की। चहल पहल=यहाँ रस की भीड़ भाड़ से तात्पर्य है। अहूटें हो=अहो। हटी नहीं। अहलन=सखी उतंग उरजनी=ऊपर को उठे हुए वक्षोज। प्यारे की प्यारी के आभूषणों तथा अँग प्रत्यंगों में आसक्ति का वर्णन करते हुए विलास मई होरी कहते हैं।

॥ दोहा ॥

स्वाभाविक ही अनुराग रङ्ग से रञ्जित और नित्य नवीन अङ्ग वाली श्रीप्रियाजू रङ्ग भरे अपने प्यारे के साथ अनुराग रंग से रञ्जित रङ्ग भीनी होरी खेल रही हैं।

॥ पद ॥

हे सखी ! मेरी सहज रंगीली अनुराग रंग से रञ्जित प्यारीजू रंग भरे अपने प्यारे के साथ होरी खेल रही हैं जिन के नित्य सुढार अँग प्रत्यँग अनुराग रंग से भीगे हुए हैं और जो नित्य नवीन किशोरी हैं।

प्यारीजू के नेत्र कमल, चञ्चल, सुन्दर, लावण्य युक्त अनुपम और विलक्षण हैं। जो बिना ही अञ्जन के खञ्जन पक्षी के चञ्चलता के अभिमान को चूर्ण कर देते हैं तथा जो रस से रञ्जित और जो रत्नों की तरह चमकीले हैं जिन में लाल लाल डोरे पड़े हुए हैं ॥१॥ प्यारी जू की नासिका पर सुशोभित वेसर के मोती की बहुत ही सुन्दर बनावट बनी है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्यारे का मन ही यह हिलता हुआ वेसर का मोती हो जो तनक तनी श्रीकृशोदरी के मुख चन्द्रमा के अमृत को पान करने के लिये

तड़फड़ा रहा हो ॥२॥ प्यारीजू के अतिगोरे युगल कपोल हैं जिन पर प्यारे के मुख के पान के रस की पीक लगी हुई है ऐसा प्रतीत होता है मानो अनुरागी प्यारे ने किसी अनिर्वचनीय स्वर्णके सम्पुट में मूर्तिमान अनुराग को भर दिया हो ॥३॥ हे सखी ! प्यारी जू की ठोड़ी की शोभा कुच्छ कहने में नहीं आती है । इस को देखकर चित्त वहीं ठेहर जाता है अर्थात् हटने को मन नहीं करता है । कान के तरोनों में जा लावण्य भरा हुआ है उसकी उपमा किस से दी जा सकती है अर्थात् किसी से नहीं ॥४॥ सुमन फुलेल से भीगी हुई अलवेली अर्थात् घुँघराली चञ्चल अलकें कैसी झलक रही हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानो प्यारीजू की माधुरी रूपी वादलों के यह ध्रवा ढलक रहे हों । हे सखी ! इन्हें देखकर प्यारे की हृदय की ललक में ताला बेली मच जाती है ॥५॥ सौभाग्य वान जड़ाऊ टीका जिसके मध्य में मध्य–नायक लाल लगा हुआ है अति सुन्दर है इसकी ललित लाल छवि छा रही है । ऐसा प्रतीत होता है मानों प्यारीजू के भाल पर इन की भाग्य मणि ही वाहिर आकर मूर्तिमान स्वरूप से विराजमान हो रही हो ॥६॥ प्यारीजू की कसूंभी सारी की किनारी और कोरें काम केलि रस में डुवे हुए हैं । अतलस की कसी हुई कञ्चुकी इस प्रकार से सुशोभित है मानों गोरे गले में इन्होंने अपने गर्भ अतिशय गरूर की कञ्चुकी पहन रखी हो ॥७॥ प्यारीजू की कटि अति क्षीण है यह लगी है या नहीं कुच्छ प्रतीत नहीं होती है । वक्षोजों के भार से यह लचकती रहती है । अतः अमंगल के भय से लहकारी लहँगा के नीवी बन्ध से यह जकर के पकड़ी हुई है ॥८॥ तरुणी श्रीप्रियाजू के चरणों और हस्त कमलों में लालजू के मन को हरण करने वाले स्वर्ण के वर्ण वर्ण के आभूषण हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई अलवेली लता अपने फूल फलोंसे फली हुई उनके भार और पवन से हिलने के परिश्रम को सम्यक् प्रकार से झेल रही हो ॥९॥ जैसी प्रियाजू है इनकी सखियां भी इसी प्रकार से अपनी अपनी खेल की सामग्रियाँ सजा सजा कर लिये हुए सुशोभित हैं । इन के अँग प्रत्यँगों में उमँग भरा मन भीया हुआ दिव्य काम का रंग वर्ष रहा है ॥१०॥ फिर प्यारीजू ने अपने प्यारे पर प्रीति भरी पिचकारी अच्छे प्रकार से छोड़ी । यह देखकर प्यारे हो हो कहकर लटक चाल से पीछे को हट गये ॥११॥ इसके पश्चात् प्यारीजू प्यारे से जा भिरीं और उन पर अमूल्य सुगन्धित इतर छिड़क दिया । और अनुराग सहित उन के मुखपर अरुण वरण का गुलाल मण्डित कर दिया ॥१२॥ फिर चन्द मुखी चटकीली लड़ेतीजू ने चौप चाव से अपने प्रीतम के वदन पर चौवा चर्च दिया । फिर मटकती हुई आकर अपने प्यारे के मान के भाजन स्वरूपा प्रियाजू ने सुख पूर्वक उनको सौंधे से सान दिया । एवं प्रकार से

उन्होंने अपने मन का भाया सब किया ।।१३।। एवं प्रकार से मदन महल में यद्यपि रस की अच्छे प्रकार से दल दल सी मचगई तो भी वहाँ रहने वाली सखियाँ पीछे का नहीं हटीं । उनके हार टूट गये केश बन्ध खुल गये तो भी उन्होंने क्रीड़ों प्रकार के सुरत सुख लूटे ।।१४।। सखियों के कर्णरन्ध्रों में जब विविध प्रकार के वाजों के शब्द आते हैं तब उनकी बढ़ी हुई रुचि तरंग और गाढ़ी होकर अँग प्रत्यंगों और उतंग कुचों में संचरित हो जाती है ।।१५।। फिर प्यारे ने रोरी मोरी लगाने के मिस से अपनी प्रिया के वक्षोजों को स्पर्श किया । यद्यपि प्रीतम ने अपना दाव पायकर ऐसा किया तो भी इस के वदले में इन की प्यारी का दिव्य काम उद्दीपन हुआ और फिर उन्होंने अपना मन माया सब किया ।।१६।। अन्त में सखियाँ विरदावली गान करती हुई कहने लगी "हे मञ्जु कुंज कमल के वासी आप की जय हो । हे रस राशि स्वरूप श्रीहरि एवं प्रिया ! आप ऐसे ही दोनों मिलकर उल्लास पूर्वक रति विलास सुख को विलसते रहो हमारी एक मात्र यही प्रार्थना है ।

नोट :—उपरोक्त पद में होरी का खेल तो एक व्याज मात्र है । तालिका के अनुसार सब तकों का अर्थ विलासमय ही है । परन्तु कई स्थानों पर पहिले वर्णन कर चुके हैं । इसलिये यहाँ केवल होरी खेल का ही अर्थ किया है ।

।। दोहा ।।

नवल निकुंज कुटीर में विविध बिहार विनोद ।
श्रीहरिप्रिया मिलि बिलसहीं मानि मानि मन मोद ।।

।। पद ।।३६।।

प्रानप्रिया नव कुंज कुटीर में हो हो हो रहि खेलत होरी ।
बिबिध बिनोद बिहार हार में अति रसमार सची दुहू ओरी ।।
नव कुमकुम करपूर अगरसत भरि पिचकारि परस्पर छोरी ।
सगबगे अंग रंग भीने नव लै गुलाल लपटावत रोरी ।।
छूटत पट आभूषन टूटत सुख लूटत झुकि झोरा झोरी ।
श्रीहरिप्रिया नित्य नवरंगी नवल किसोर नवीन किसोरी ।।३६।।

झुकि झोरा झोरी=हाथापाई ।

।। दोहा ।।

नवल निकुंज कुटीर में श्रीहरि एवं प्रिया मन में मोद मानिकर विविध प्रकार के विनोद परस्पर मिलकर विलसि रहे हैं ।

॥ पद ॥

हमारे प्राणों से भी प्यारे रसिक दम्पति नव कुंज कुटीर में हो हो कह करि होरी खेल रहे हैं। विविध प्रकार के विनोद विहारों में कभी कोई हारता है कभी कोई हारता है। अतः दोनों ओर से अति रस की मार मची हुई है। नव केशर, कर्पूर और अगर सत की पिचकारियाँ भरि भरि कर परस्पर छोड़ रहे हैं। जिससे दोनों के अङ्ग रङ्ग में भीजकर तरबतर हो गये हैं। फिर गुलाल और रोरी को परस्पर लपटाते हैं एवं प्रकार से दोनों खेल में परस्पर पेला पेली करते हैं, जिससे दोनों के वस्त्र आभूषण सिथिल होकर टूट गये हैं। इस तरह से हाथा पाई करते हुए दोनों सुख लूटते हैं। श्रीहरिप्रिया सखी जी कहती हैं एवं प्रकार से नित्य नव रंगी नवल किशोर और नवीन किशोरी विलास करते हैं॥

॥ दोहा ॥

पल बिछुरें न कल परें ढरे रहैं रसढारि।
सहज साँवरी गोरि यह जोरी परम उदारि॥

॥ पद ॥३७॥

होरी सहज साँवरी गोरी सोहैं जोरी परम उदार, होरी।
परिरम्भन चुम्बन आलिंगन यही सहज आहार, होरी॥
होरी लाड़लड़ी के लाड़लड़ौ पिय रहत सदा आधीन, होरी।
प्यार प्रीतिको ओर न आवें दिन दिन नेह नवीन, होरी॥१॥
होरी निसबासर जानत नहिं कितहूं परे प्रेम कूं पार, होरी।
पल बिछुरे न परैं कल क्यों हूं ढरे रहैं रसढार, होरी॥२॥
होरी प्यारी कें अनुराग रँग्यौ पिय पिय प्यारी अनुराग, होरी।
प्रान एक द्वै देह श्रीहरिप्रिया हितू जनन कें भाग, होरी॥३॥३७॥

कूपार=समुद्र।

॥ दोहा ॥

सहज रङ्गीली साँवरी गोरी जोरी परम उदार है। ये दोनों इस प्रकार के रस में ढरे हुए हैं। कि यदि ये एक पल के लिये भी बिछुर जावे तो इन्हें कल नहीं पड़ती है।

॥ पद ॥

हे सखी! यह सहज साँवरी गोरी जोरी परम उदार है! इन का एक मात्र सहज

आहार परस्पर परिरम्भण चुम्बन और आलिङ्गन ही है। यह लाड़लड़ीलो पिय सदा लाड़ लड़ी के आधीन रहते हैं। इनकी प्यार प्रीति का कोई ओर छोर नहीं है। ये इनका स्नेह दिन प्रति दिन नवीन होता रहता है ॥१॥ ये दोनों प्रेम के एक अनिर्वचनीय समुद्र में पड़े रहते हैं। जिस से इनको रात दिन का भी कुच्छ पता नहीं रहता। ये इस प्रकार के रस में ढरे हुए हैं कि एक पलक के लिये भी बिछुरने से इन को किसी प्रकार से भी कल नहीं पड़ती है। प्यारे प्यारी के अनुराग में रङ्ग हुए हैं और प्यारी प्यारे के अनुराग से रंजित् हैं। इन दोनों के प्राण तो एक हैं और देह दो हैं। श्रीहरिप्रियाजू और श्रीहितु सहचरी जी के आश्रितजनों के भाग्यों की हम क्या प्रशंसा करें जिन को ऐसी जोरी प्राप्त हुई है ॥

॥ अनुरागिनि चित्रमुखी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

जय वृन्दावन धाम सब जनमन पूरन काम।
सुघर सहेलिन संग रँग बिहरें स्यामा स्याम ॥

॥ पद ॥३८॥

जय वृन्दाबन धाम, अति अभिराम, पूरन मनकाम, रसिक विश्राम।
बहो जहाँ श्रीस्यामा स्याम होरी खेलहीं ॥१
कनक पिचकारी, भरी केसरि भारी, परस्पर डोरी, मचाई रंगरारी।
बहो निपटहीं चतुरारी, कोककलान में ॥२
अबीर गुलाल, रुचिर रसाल, भरि भरि थाल, सहचरि जाल।
बहो लाड़िली लालन ऊपर डारहीं ॥३
दुरिमुरि भरनि, बचावनि बिचरनि, बितन बितरनि, रसढर ढरनि।
बहो अंग अङ्ग मिलि रङ्ग बाढ़्यौ उमङ्गसों ॥४
सगबगी देह, सुमन सनेह, नहिं छबि छेह, अतिहिं फबह।
बहो छैलछबीले रँगीले बिमल बिहारहीं ॥५॥
कमल कमल फूले, मिले अनुकूले, सुखसरबर झूले, अलिदृग भूले।
बहो निरखि निरखि सखियन को हियो सिरावहीं ॥६
गरबीले लाल, दिये अंकमाल, अद्भुत मराल, को है गजचाल।
बहो मन्द मन्द मधुर सुर नूपुर बाजहीं ॥७

सनमुख निहारि, करैं मनुहारि, लखि उनहारि, लै बलिहारि ।
बहो लालच लागे हैं दोऊ लालची ॥८
पुलकि परस्पर, दोउ सुन्दरवर, श्रमबून्दनि भर, सोभित सुघर ।
बहो भरी अनुरागसों निरखत भागसों ॥९
जयजय श्रीहरिप्रिय, लगाय हियसों हिय, जिवाये सबके जिय, अति सुखदीय ।
बहो नित प्रति बिलसहीं कुंजकुटीर में ॥१०॥३८

अनुरागिनि चित्रमुखी मध्याभास=राग गौरी चैती । रंग रारी=होरी सम्बन्धी खेल का झगड़ा । बचावनि बचिरनि=चल फिर के बचाना । वितन वितरनि=दिव्य काम को प्रदान करना । नहीं छवि छेह=छवि का कभी क्षय नहीं होता । मनुहारि= मनाना । उनहारि=एक बराबर ।

॥ दोहा ॥

उस श्रीवृन्दावन धामकी सदा जय हो जो सब जनों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला है और जहाँ श्रीश्याम श्यामा सुन्दर सुघर सहेलियों के साथ विहार करते हैं ॥

॥ पद ॥

अति अभिराम श्रीवृन्दावन धाम की सदा जय हो जो सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा रसिको का विश्राम स्थान है । जहाँ श्रीश्याम श्यामा होरी खेल रहे हैं ॥१॥ स्वर्ण की पिचकारियों में केशर का नीर भरि करि परस्पर डाल रहे हैं । एवं प्रकार से होरी सम्बन्धी रार मचा रहे हैं । अहो दोनों ही कोक शास्त्र की कलाओं में निपुण है ॥२॥ सहचरियों का समूह सुन्दर रसीले बहुत प्रकार के अबीर गुलालों को स्वर्ण के थालों में भरि भरि करि रसिक दम्पति के ऊपर डाल रही है ॥३॥ रसिक दम्पति भी एक दूसरे को छिपकर मुड़कर रङ्ग से भरते हैं । ये दोनों इधर उधर विचरते हुए उसे बचाते हैं । एवं प्रकार से दिव्य काम को परस्पर उद्दीपन करते हुए प्रदान करते हैं । इस तरह से एक दूसरे पर रस की वर्षा करते हैं । फिर दोनों अगों से अङ्ग मिलाकर उमंग से सुरति केलि जन्य रङ्ग को बढ़ाते हैं ॥४॥ एवं प्रकार से दोनों के दिव्य मङ्गल देह स्नेह रूपी फुलेल से भींग गये । इन की छवि का कभी भी क्षय नहीं होता है । अपितु सुन्दरता और भी बढ़ती जा रही है । ये दोनों छैल छवीले रंगीले विमल विहार कर रहे हैं ॥५॥ युगल के अङ्ग प्रत्यङ्ग ही कमल स्वरूप हैं जो परस्पर अनुकूल भाव से मिलकर फूले हुए हैं । अर्थात् अनुकूल भाव से गाढ़ आलिङ्गन किये हुए हैं । एवं प्रकार से सुरति

केलि जन्य सुख सरवर के किनारे झूल रहे हैं। जिन्हें देखकर सखियों के नेत्र रूपी भोंरियों ने अपनी चञ्चलता त्याग दी है अर्थात् सखियाँ एक टक से देख रही हैं। एवं प्रकार से सखियों के हृदय देख देख करि सिरा रहे हैं ॥६॥ ये दोनों गरवीले लाल परस्पर गल बहियाँ दिये हुए हैं। मानों दोनों कोई अद्भुत हंस हों। इनकी झूम झूमाती चाल के सामने गजराज की चाल क्या है। इस समय इनके मधुर मधुर नुपुर कैसे बज रहे हैं ॥७॥ ये दोनों एक दूसरे को देखते हुए परस्पर मनुहारि कर रहे हैं। यद्यपि ये दोनों एक दूसरे के उनुहार है अर्थात् जो कला गुण सौन्दर्य एक में है वही दूसरे में भी है तो भी यह आश्चर्य दोनों परस्पर के लालच में लगे हुए हैं। यह बात देखकर सखियाँ वलिहारी जाती हैं ॥८॥ दोनों सुन्दर वर लड़ेतों के परस्पर मिलने से रोमाञ्चादि सात्विक उदय हो रहे हैं। रति विलास के परिश्रम से श्रम बूँदे झलक रही हैं। इस समय दोनों सुघर वर सुशोभित हो रहे हैं। एवं प्रकार की रूप माधुरी अनुराग में भरी हुई सखियाँ अपने बड़ भागों से देख रही हैं ॥६॥ श्रीहरि एवं प्रिया की जय हो जो गाढ़ आलिङ्गन द्वारा परस्पर हिय से हिय मिलाकर स्वयं तो सुखी होते ही हैं अपितु ऐसा करने से ये सब सखियों को भी जीवन दान देकर सुखी करते हैं। अन्त में सखियाँ प्रार्थना करती हैं "आप दोनों ऐसे ही कुञ्ज कुटीर में नितप्रति विलसते रहें" ॥१०॥

—: सोहिलो :—

॥ दोहा ॥

बिबिध कुंज वृन्दाबिपिन बिलसि मनोरम केलि।
सुनहु सहेली सोहिलो सब सुख आज सहेलि ॥

॥ पद ॥३६॥

सहेली सुनि सोहिलो सोहिलो सब सुख आज ॥ टेक
सोहिलो वृन्दाबिपिन जामें बिबिध कुंज विलास।
जहाँ आनन्दरूपनिधि मिलि पुजवहीं मन आस ॥१॥
सोहिलो मकरन्द मुख अरविन्द कौ मधु पान।
पिवत जीवत पीय पल पल तौहू तृषित निदान ॥२॥
सोहिलो ललित लता लपटि रही लूमि झूमि तमाल।
पत्र पल्लव फूल फल फबि रहे रूप रसाल ॥३॥

बदन आनन्दकन्द चन्द कि बनी सोहिली जोति ।
भुहुमि परसि प्रकास पूरन जगरजगमग होति ॥४॥
मधुर कोमल सरस रस सोहिलो कलित कपोल ।
प्रान पोषहिं तोषहीं तन अङ्ग अङ्ग अलोल ॥५॥
मंजु जोबन मञ्जरी रसभरी सहज सुभाय ।
करी सौरभ सीस पिय लै धरी सोहिल गाय ॥६॥
सोहिलो सुख बिलसि हुलसत पिय कदम्ब की छाहिं।
चढ़े चोज मनोज दोऊ उमङ्ग अङ्ग न माहिं ॥७॥
सोहिलो सुख सुभग भू पर रमि रसिक सिरमौर ।
रहे जकि थकि चकित चखि लखि जघन सघन सुठौर ॥८॥
सोहिली रङ्गभरी रसीली सुखद साँकरिखोरि ।
चले चौकसि चतुरमनि तऊ ह्वै गई बुधि बौरि ॥९॥
रतिरवन के भवनकी अति बनी सोहिल गैल ।
परत पग तहाँ प्रानपियके गये गरब गुन फैल ॥१०॥
सुरति सुन्दरि सहचरी रची सेज सुमन सुदेस ।
तहाँ सोहन मदनमोहन बिहरें सोहिल बेस ॥११॥
महामृदुल रस महल मधि सोहिलो सरद निवास ।
लगे लालच रहत निसिदिन करि निरन्तर बास ॥१२॥
सोहिलो सुख जम्यौ जतनें रतन जोति जगाय ।
नवल नेह निसंक पौढ़े अङ्क सों अङ्क लगाय ॥१३॥
सोहिलौ सुख रम्यौ रोमनि रोम प्रति प्रति राचि ।
जदपि करत सम्भोग भोगी मिथुन मुखसों जाचि ॥१४॥
सोहिली रुचि बढ़त ज्यों ज्यों चढ़त चोंप अपार ।
एक तन मन विमल दोऊ विहर्यौ चहत विहार ॥१५॥
नील अरुन सु पीत मनि छबि सोहिली रति मानि ।
चकित चोर भये भरे के जदपि सब गुन खानि ॥१६॥

सखी सहेली सहचरी मञ्जरी सुन्दरि बेलि।
अपने अपने ओरें कोरें रही सोहिल झेलि ॥१७॥
फूल फूलन सों फब्यो मिलि सोहिलो सनमान।
निरखि खग मृग थकित भये पग भरि न पावत जान ॥१८॥
सोहिलो सुख गहर गहवर भर्यौ भाव अनन्त।
लहरि लै लै लाड़ लाड़त लड़लड़ी लड़कन्त ॥१९॥
सोहिलो आस्वाद सुख आनन्दमय अह्लाद।
उमँगि उमँगि उरेंड दोऊ उर भरे उनमाद ॥२०॥
सोहिलो अति बनी जोबनि चमत्कारिनि बाल।
सहज सोहनि मोहनी पिय करि लई हियमाल ॥२१॥
गुन प्रभा गौरांगि अद्भुत सदा सोहिल सोभ।
एक छिन टारि न सकत कहुं लगे लालच लोभ ॥२२॥
कहा कहों सुनि हो सखी जो बढ़्यौ उर अनुराग।
प्रानप्रीतम मानई धनि अपनो सोहिल भाग ॥२३॥
महा दुर्ल्लभ हू ते दुर्ल्लभ सोहिलो सुखसार।
एक अवलोकनि कृपा करि रहत उर भयौ हार ॥२४॥
सोहिलो श्रीहरिप्रिया को सकल सुख कौ धाम।
कहत सुनत सराहहीं जे पावहीं बिसराम ॥२५॥

—: सोहिलो :—

"सोहिल" दो शब्दों से मिलकर बना हुआ शब्द है अर्थः—सो=पूर्ण करना। हिल=स्वेच्छा अनुसार क्रीड़ा करना। अर्थात् युगल को स्वेच्छा अनुसार क्रीड़ा (विहार) करवाकर तृप्त करना यह शब्दार्थ हुआ। ग्रन्थकार के शब्दों में "सुख ही करि पावत रस रेली। ताहि सोहिलो कहत सहेली।" (तालिका) अर्थात् सखियाँ रसिक दम्पति को सुरति केलि विलास में प्रवृत्त करके उनको पूर्ण सुख प्रदान करती हैं। उनकी तृप्ति से जब रस की रेल सखियों की ओर आती है तब वे स्वयं सुखी होती हैं। अतः ग्रन्थकार इस विलास को "सोहिलो" के नाम से कहते हैं।

मन रम=मन को रमण करने वाली। मन भाई। वृन्दाविपिन=श्रीवृन्दावन

धाम अथवा श्रीप्रियाजू का श्रीदिव्य मङ्गल विग्रह "तन वृन्दावन जगमगै ।" (पद० २६ सि. सु) आनन्द रूपनिधि=श्रीलालजू । "पिय आनन्द स्वरूप ।" (पद० २६ सि. सु) मकरन्द मुख अरिविन्द=कमल मुख की सुगन्ध स्वरूप । मधुपान=अधर सुधा । निदान=निदान । तृषित निदान=प्यासा का प्यार । तमाल=श्रीलालजू । ललित लता=श्रीप्रियाजू । जोति=ज्योति=प्रकाश । पुहुमि=श्रीवृन्दावन यहाँ प्रियाजू का विग्रह कलित=सुन्दर=मधुर । पोषै=पुष्ट होना । तोषहीं=प्रसन्न होना । अलोल=स्थिर मञ्जु जोवन मञ्जरी=योवन रूपी पुष्पों के गुच्छे के सदृश श्रीप्रियाजू के चरण कमल "श्रीराधारूप मञ्जरी (सेः सुः) ररी सौरभ=सुगन्ध से मिली हुई । सीसपिय लैधरी=श्रीलालजू ने लेकर मस्तक पर धारण की । सो हि लगाय=हृदय से लगाली । कदम्ब की छाहि=श्रीप्रियाजू के चरणों की छायामें अर्थात् लड़ेती जू को कृपा के आश्रय से । चोज मनोज=दिव्य काम के चाव में भरकर । सुख सुभग भू पर="सुभग भूमि मग में अनुसरही । तिहि अङ्ग की पग संज्ञा धरहि ।" (तालिका) अर्थात् श्रीप्रियाजू के चरण कमल । सुखद साँकरि खोरि=निकटि नितम्बनि के निज डोरी । कहियत ताहि साँकरी खोरी" (तालिका) । रतिरवन के भवन="निज तन सुभग रतन मनि कहिये । कमल निकुञ्ज कमल हू लहिये । रति पति भवन हु कहिये जाही ।" (तालिका) गुनकैलि=कोककला सम्बन्धी सब गुण विखर गये । सुरति सुन्दरि सहचरी=आनन्द अह्लादिनि पिय प्यारी सुरति सोई सुन्दरि सहचारी" (तालिका) । सेज "सुमन सुदेश=सुमन स्नेह फुलेल कहावै ।" (तालिका) "सर्वतो भद्रिनी शय्या सुमन वल्लरि फूल ह्वै ।" (समवर्तनी अङ्गसंगनि) अर्थात् स्नेह रूपी सुन्दर फूलों की वृत्ति रूपा श्रीप्रियाजू की अङ्ग सङ्गनि सखी ने सेज रची अर्थात् स्नेह पूर्वक दक्षिणा होकर अपने दिव्य मङ्गल विग्रह रूपी शय्यापर अपने प्यारे को सुख प्रदान किया महा मृदुल रस महल="कोमल चित्त युगल को जो है । महा मृदल रस महल सो सोहै ॥" (तालिका) शरद निवास=याचत में जो अति अभिलाष । सोई कहियत शरद निवास ।" (तालिका) । रतन जोति="अङ्ग अङ्ग उदय होय जो काम । रतन जोति ताहि कोना (तालिका) मिथुन=दोनों । चोंप=चाव । होड़ा होड़ी । नील अरुन सुपीत मनि छबि=नील मणि छबि लालजू सुपीत मणि छबि=प्रियाजू । अरुण=अनुराग अथवा विम्बाधर आदि अरुण वर्ण के रसिक दम्पति के अँग प्रत्यँग । रति मानि=तृप्त होकर । चकित चोर भये भरेके=जैसे भरे हुए घर में चोर चकित हो जाता है । कोरें=कोलों अथवा गवाक्षों में लगी हुई । फूल फूलनि=युगल के अँग प्रत्यँग । खग मृग=सखियों के नेत्र कमल अथवा श्रीवृन्दावन

के पशु पक्षी। गहर गहवर="गहवर कुंज सोहियो कहावै" (तालिका उरेंड़=उन्मत्त। दिवाने (प्रेम दीवाने) प्रेम से घूमना गौराँगी=श्रीप्रियाजू। सोहिल सोभ=जिनके लिये स्वच्छन्द क्रीड़ा करना शोभादेता है।

॥ दोहा ॥

हे सहेली ! आज आप उस "सोहिले" को सुनें, जो हम सब सखियों के लिये सब प्रकार के सुखों को प्रदान करने वाला है। श्रीवृन्दावन स्वरूप रसिक दम्पति के अँग प्रत्यँगों में बिविध प्रकार की रसमय कुञ्जें हैं जिन में ये दोनों मन को रमण करने वाली विविध प्रकार की केलियाँ करते हैं॥

॥ पद ॥

हे सहेली ! सब सुखों को प्रदान करने वाले इस "सोहिलो" को आज सुनो ! हमारी मङ्गल शुभकामनाएें इस वृन्दावन को हैं जिसमें रसिक दम्पति के विलास के लिये विविध प्रकार की कुञ्जें हैं। अथवा श्रीवृन्दावन स्वरूप श्रीप्रियाजू के दिव्य मङ्गल विग्रह की जय हो जिस में विविध प्रकार की रसमयी वे कुंजे हैं जिन में आनन्द स्वरूप के निधान इनके प्यारे इन से मिलकर अपनी सब अभिलाषाओं को पूर्ण करते हैं ॥१॥ प्रिया जू के मुख कमल की मकरन्द स्वरूप अधर सुधा की जय हो जिसको पी पी कर प्रीतम प्राण धारण करते हैं और जिस को क्षण प्रतिक्षण पीते रह कर भी सदा प्यासे के प्यासे रहते हैं ॥२॥ ललित लता स्वरूपा उन श्रीलड़ेंतीजू के उस दिव्य मंगल विग्रह की जय हो जिसमें उनके सौन्दर्य रूपी रसीले पल्लव, फूल तथा फल खिले हुए हैं और जो लूमि झूमि कर तमाल स्वरूप अपने प्यारे के लपटी हुई है ॥३॥ यद्यपि आनन्द कन्द चन्द स्वरूप श्रीलालजू के मुखार विन्द की स्वाभाविक ही सुन्दर ज्योति है, तो भी श्रीवृन्दावन की पृथ्वी स्वरूपा श्रीप्रियाजू के मंगल विग्रह से मिलकर वह ज्योति और अधिक जग-मगाने लगी ॥४॥ मधुर, कोमल सुन्दर कपोलों के सरस रस की जय हो जो रस प्यारे के प्राणों के पोषण तन को तोषण करने वाला है, और जो इनके अँग प्रत्यँगों की चञ्चलता को शान्त करके इनको स्थिर भाव प्राप्त करा देता है ॥५॥ श्रीप्रियाजू के चरण कमल मानों लहलहाती हुई यौवन रूपी लता की मंजरी स्वरूपा हैं। यह मंजरी स्वा-भाविक ही रस से भरी हुई और सुगन्ध से सरावोर हो रही है। प्रीतम ने ऐसे चरण कमलों को अपने हस्त कमल से ग्रहण करके मस्तक पर धारण करके हृदय से लगा लिया ॥६॥ प्यारे स्वच्छन्द पूर्ण विलास को इन्हीं चरण कमलों की छाया अर्थात् आश्रय से उल्लास पूर्वक विलसते हैं अत। रसिक दम्पति जिन के अंग प्रत्यंगों में उमंग भरी हुई

है, दिव्य काम के चाव चोंप से विहार में प्रवृत हुए ॥७॥ सोहिलो सुख अर्थात् उस स्वच्छन्द पूर्ण विलास की जय हो जो रसिक शिरमौर सुभग भू अर्थात् श्रीप्रियाजू के दिव्य मंगल विग्रह रूपी भूपर सुख पूर्वक विलस रहे हैं। ज्यों ही इनकी दृष्टि सघन सुठोर जंघाओं की ओर पड़ती है त्योंही यह दृष्टि चकित सी होकर जकी थकी सी रह जाती है ॥८॥ लाल को सुख प्रदान करने वाली रंग भरी रसीली सांकरी खोर की जय हो (निकट नितम्बनि के निजडोरी। कहिये ताहि साँकरी खोरी) जहाँ चतुर शिर मौर प्यारे यद्यपि बहुत सावधानी से चले, तो भी यहाँ इनकी बुद्धि अस्त व्यस्त सी हो गई ॥६॥ रति रवन के भवन अर्थात् श्रीप्रियाजू के दिव्य मङ्गल विग्रह रूपी भवन की जय हो जिस की गलियाँ अति सुन्दर हैं प्यारे इन गलियों में जब प्रवेश करने के लिये उद्यत होते हैं तब इनके कोक कला सम्बन्धी सब गुण विखर जाते हैं ॥१०॥ सुरति सुन्दरि सहचरी= "आनन्द आह्लादिनी पियप्यारी, सुरति सोई सुन्दरि सहचारी।" तालिका रची सेज सुमन सुदेश="सुमन स्नेह फुलेल कहावै (तालिका) अथवा "सर्वतो भद्रणी शय्या सुमन बल्लरि फूल है" [सभवर्तनी अङ्गसङ्गनी प्रकरण] अर्थात् रसिक दम्पति की सुरति विलास की वृत्ति ही सुन्दरि सहचारी है। यहाँ यह तात्पर्य है श्रीप्रियाजू की, सुरति केलि वृत्ति रूपा सुन्दर सहचरी ने स्नेह रूपी फूलों की शय्या रची, अर्थात् श्रीप्रियाजू ने स्नेह पूर्वक दक्षिण होकर अपने प्यारे को अपने दिव्य मङ्गल विग्रह रूपी शय्यापर सुख प्रदान कराया। उस पर मदन को मोहन करने वाले लालजूने अपनी इच्छा अनुसार पूर्ण विलास के उपयोगी वेष धारण करके विहार किया ॥११॥ रसिक दम्पति का कोमल चित्त ही "महा मृदुल रस महल" है, "कोमल चित्त युगल का जोहै। महा मृदुल रस महल जुजो है।" [तालिका] इस में पूर्ण रस विलास की याचना मयी अभिलाषाऐं जिन को ग्रन्थकार "शरद निवास" कहते हैं उठती रहती हैं। यद्यपि रसिक दम्पत्ति अहर्निश विलास में प्रवृत्त रहते हैं तो भी अधिक से अधिक इस रस को पान करने के लिये निरन्तर ललचाते रहते हैं इस याचना की जय हो ॥१२॥ इस समय रसिक दम्पति के अङ्ग प्रत्यंगों में दिव्य काम उद्दीपन हो रहा है और ये दोनों नवीन स्नेह के वशीभूत होकर अँक से अँक लगाकर निशंक भाव से पौढ़े हुए हैं ॥१३॥ इस पूर्ण विलास का सुख युगल के रोम रोमों में रच गया। ये पूर्ण सम्भोग भोगते हुए भी तृप्त नहीं होते हैं अपितु अपने मुखार विन्दों से और अधिक से अधिक सम्भोग के लिये बार बार याचना करते रहते हैं ॥१४॥ ज्यों ज्यों उमङ्ग की हठ का चाव बढ़ता जाता है त्यों त्यों इनको रुचि और अधिक बढ़ती जाती है। बात यह हैं जहां तन और मन एक हों फिर वहाँ विहार कैसे सम्भव हो

सकता है । इन दोनों का तन मन एक है और विहार के लिये इच्छुक हैं इसी लिये दोनों तड़ फड़ा रहे हैं ॥१५॥ नीलमणि छवि श्रीलालजू सुपीत मणि छवि श्रीप्रियाजू तथा इनके अरुण रङ्ग के अधर विम्बादि अङ्ग प्रत्यंगों ने विलास करते करते रति स्वीकार कर ली है अर्थात् ये दोनों अङ्ग प्रत्यंगों के सम्भोगों से परस्पर तृप्त हो गये हैं । यद्यपि युगलवर सब गुणों की खान स्वरूप हैं तो भी जैसे भरे हुए घर में चोर चकित हो जाता है वह निश्चय नहीं कर पाता कि क्या वस्तु ग्रहण करूँ । इसी प्रकार ये दोनों चकित से होकर थकित हो रहे हैं ॥१६॥ इस रस मय विहार के एक कणिका को भी झेलने की किसी की सामर्थ्य नहीं हैं, परन्तु प्रेम की वेलिया सखी, सहेली, सहचरी,सुन्दरी अपितु मंजरियों तक उपरोक्त विहार को देखकर सुध बुध नहीं भूली हैं अपितु अपने अपने स्थानों पर स्थित होकर देखती हुई इस रस प्रवाह की प्रवलवों को झेलती हुई खड़ी हैं ॥१७॥ रस विलास के आनन्द से युगल के मङ्गल विग्रह फूल रहे हैं । अङ्ग प्रत्यँग रूपी फूल परस्पर मिल ही नहीं रहे हैं अपितु एक दूसरे का सन्मान करते हुए कैसे सुन्दर लगते हैं । इस झांकी को देखकर निकुंज विश्व के खग मृग चकित थकित से रह जाते हैं एक पैंड भी इधर उधर नहीं हिल सकते हैं । अथवा खग, मृग ["खंजन, मीन, अलि, मृग दृग कहिये" तालिका] युगल या सखियों के नेत्र कमल एक टिक दृष्टि से देखने लगे पलक भी नहीं झपती हैं ॥१८॥ सोहिलो सुख अर्थात् रति विलास क्रीड़ा का पूर्ण सुख बहुत गहर गम्भीर है जिसमें अनन्त भाव भरे हुए हैं । लाड़ लड़ी प्यारीजू लड़कन्त अपने प्यारे को आनन्द से लहरे हिलोर ले ले कर लाड़ लड़ारही हैं ॥१९॥ यह सोहिलो, रसिक दम्पति का आनन्दमय अह्लाद का अस्वाद सुख है, इसको यह दोनों उन्मत्त होकर उमङ्ग में भर भर कर पान करते हुए प्रेम उन्माद होकर बखेर रहे हैं ॥२०॥ रति विलास क्रीड़ा की मूर्ति स्वरूपा प्यारीजू प्रति यौवन के भार से अब एक चमत्कृत अवस्था को प्राप्त हो गई जिन को सहज ही मोहन करने के स्वभाव वाले प्रियतम ने अपने हृदय से लगाकर माला बना ली ॥२१॥ सब कोककला सम्बन्धी गुणों की प्रभा स्वरूपा गौरांगी श्रीप्रियाजू को ही सदा अद्भुत पूर्ण विलास क्रीड़ा शोभा देती है क्योंकि प्रियतम को सुख प्रदान करने के लोभ और लालच से अपने प्यारे को एक क्षण के लिए भी अपने हृदय से अलग नहीं कर सकती हैं ॥२२॥ [जब प्यारीजू ने अपने प्यारे का गाढ़ आलिगन करते हुए अपने हृदय का हार बना लिया] उस समय युगल के हृदयों में जो अनुराग बढ़ा उसका हे सखी, मैं क्या वर्णन करूँ । अपनी प्यारी की यह कृपा ढुरन देखकर प्राण प्रियतम ने जय जय कार करते हुए अपने भाग्य की सराहना की ॥२३॥ यद्यपि सब सुखों की सार स्वरूपा

रसिक दंपति की यह पूर्ण विलास क्रीड़ा महा दुर्लभ से भी दुर्लभ है तो भी इनकी तनिक कृपा दृष्टि निपात से ही यह विलास सुलभ होकर हृदय में हार की भाँति सुशोभित होने लगता है ।।२४।। श्रीहरि एवं प्रिया का यह सोहिला अर्थात् पूर्ण रति विलास क्रीड़ा सब सुखों का आश्रय है जो कोई इसको कहेंगे सुनेंगे अथवा सराहेंगे वे सब प्रकार का पूर्ण विश्राम लाभ करेंगे ।।२५।।

।। दोहा ।।

अतिकी गति सब होय चुकी तन धीरज न धराहिं ।
मेरी जीवनप्रान बलि ए अलि मोहिं मिलाहिं ।।

।। पद ।।४०।।

मोहिं मिलाय दै री मेरी जीवनि प्रान ।
मैं बहुते करि मानिहौं मो पर तेरो अहसान ।।१
तू ही तू हियकी हितू री तो बिन सरत न काज ।
अब मेरे या जीयकी री है सब तोहि कौं लाज ।।२
कहा करौं कैसे भरौं री बिन देखे नहिं चैन ।
मनमोहन मुख अवलोकनकौं तरसत मेरे (ए) नैन ।।३
अति की गति सब होय चुकी री अब कछु रती रही न ।
तरफर तरफर करत फरफरत जैसे जल बिन मीन ।।४
तन तनक न धीरज धरै री मनहू निपट अधीर ।
पलक सह्यौ नहिं परत है मोहिं सखामृग रिपु चीर ।।५
जित देखौं तित दुखमई री भई दिसि बिदिसा मोहिं ।
आनन्दकन्दा चन्द के बिनु क्यों सियराई होहिं ।।६
अङ्ग अङ्ग सिथिलै भये री बुद्धि बिकल बेहाल ।
रहत न प्रान कपूर ज्यों (ये) बिनु गुंजा-गोपाल ।।७
मनअनुसारिनि है तूही री तोसों कहा दुराव ।
श्रीहरिप्रिया निहचै लगौ मेरौ मन बच तोसों भाव ।।८।।४०

—: उत्थानिका :—

पिछले पद नं० ३९ तुक नं० २१ में प्रियाजू की एक अद्भुत चमत्कृत अवस्था

का वर्णन कर चुके हैं। इस अवस्था में अपने प्यारे का गाढ़ आलिङ्गन करते हुए प्रिया जी को प्रेम वैचित्ती अवस्था प्राप्त हो गई जिसके ये लक्षण हैं :—"प्रेम–वैचित्वम्"—

"प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्ष स्वभावतः।
या विश्लेषधियार्तिस्तत् प्रेम वैचित्वं उच्यते ॥१॥"

(उज्ज्वल नीलमणि शृङ्गार भेद १ श्लोक)

कभी कभी प्रेमी के प्रेमास्पद अत्यन्त नजदीक होते हुए भी प्रेम अपने स्वाभाविक धर्म से इतना बढ़ जाता है कि प्रेमी को यह पता ही नहीं रहता कि उसका प्रेमास्पद उसके नजदीक ही है प्रेम की उस विरही अवस्था को "प्रेम वैचित्ती" कहते हैं। यह अवस्था एकमात्र पूर्ण रति विलास क्रीड़ा में ही होती है। श्रीउज्ज्वल नील मणि का यह मत है।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाजू इस प्रकार विलाप करते हुए कहने लगीं :—

हे मेरी जीवन प्राण स्वरूपा अली, मैं तेरी बलिहारी जाऊँ, प्यारे के विरह से मेरे हृदय की वेदना अति की गति को पार कर चुकी है, मेरे तन को किसी प्रकार भी धीरज नहीं बन्धता है तू किसी प्रकार उनको मुझसे मिला दे।

शब्दार्थ :—

साखामृग=वन्दर। रिपु=शत्रु, वैरी। चीर=चीथड़ा, वस्त्र। विदिशा=दिशों के बीच के कोने। गुञ्जा=चिरमिठी। गोपाल=लालजू। शाखा मृग रिपुचीर=वन्दर की शत्रु एक जडी विशेश जिसको काञ्च की फली भी कहते हैं जिस के काँटे वन्दर के वालों में उलझने से सुलझ नहीं पाते अपितु वन्दर की मृत्यु ही हो जाती है।

॥ पद ॥

हे मेरी जीवन प्राण स्वरूपा सखी! मेरे प्यारे को मुझ से मिलाय दे। मैं तुझे बहुत करके मानूंगी। तेरा अहसान सदा मुझ पर रहेगा। हे सखी! इस समय तू ही मेरे हृदय की हितैषिणी है तेरे बिना कुछ कार्य नहीं हो सकता है। अब मेरे प्राणों की रक्षा की लाज तुझ पर ही निर्भर है अर्थात् तूं ही मेरे प्राणों को बचा सकती है ॥१॥ अब मैं क्या करूँ कैसे प्राणों को धारण करूँ प्यारे के देखे बिना मुझको क्षण भर भी चैन नहीं पड़ता है। मनमोहन का मुख देखने के लिए मेरे नैन तड़फड़ा रहे हैं ॥२॥ मेरे हृदय की वेदना की गति सीमा को पार कर चुकी है अब दशमी अवस्था प्राप्त होने को रत्ती भर भी देरी नहीं है। जैसे जल के बिना मछली तड़फड़ाती है इसी प्रकार मैं प्यारे

के बिना तड़फड़ा रही हूँ ॥३॥ मेरा तन तनिक भी धीरज नहीं धरता है और मन भी अत्यन्त अधीर हो रहा है। अपने शरीर पर धारण किये हुए वेशभूषा एक क्षण के लिए भी मुझको इस प्रकार दुखदाई प्रतीत होते हैं जैसे बन्दर के ऊपर चीथड़ा डालने से वह तड़फड़ाने लगता है अथवा जैसे बन्दर को कौंच की फली शत्रु के समान है याने कौंच की फली लग जाने से वह अपने शरीर को नोंच नोंच कर समाप्त कर देता है, इसी प्रकार से मुझको भी इस समय अपना देह धारण रखना एक पल के लिये भी दुष्कर हो रहा है ॥४॥ जिस ओर भी मेरी दृष्टि पड़ती है सब दिशा और विदिशा मुझको दुखदाई प्रतीत होती हैं। मेरे प्यारे आनन्द को प्रदान करने वाले चन्द्रमा हैं उनको देखे बिना मेरा हृदय कैसे शीतल हो सकता है ॥५॥ विरह ने मेरे अङ्ग प्रत्यंगों को शिथिल बना दिया है और मेरी बुद्धि व्याकुल होकर बेहाल हो गयी है। जैसे चिरमिठियों के अभाव से कपूर उड़ने लगता है इसी प्रकार ये मेरे प्राण मेरे प्यारे गोपाल के बिना उड़ते जा रहे हैं ॥६॥ हे श्रीहरिप्रिया सखी, तू ही मेरे मन के अनुसार कार्य करने वाली है तुझसे क्या छुपाव है। तू हरि की प्रिया है अतः निश्चय पूर्वक मन वचन कर्म से मेरा भाव तुझ में ही लगा हुआ है अर्थात् इस समय तू ही मेरे प्यारे को मिला कर मेरे प्राणों की रक्षा कर सकती है ॥७॥

—: सहेली :—

॥ दोहा ॥

रुख लियें सनमुख रहै जानि सजीवनि मोहि।
तू मेरी सहचरि हितू तातें कहत हौं तोहि॥

॥ पद ॥४१॥

सहेली मेरौ लाड़लड़ीलौ लड़ायतौ है जाकें मेरोही लाड़।
रुख लीयें सनमुख रहै मेरे हितही को चित चाड़ ॥१॥
दिवस कहौं तो दिवस है री राति कहौं तो राति।
नाहि दूजी बात जाके एकै प्रीति पनाति ॥२॥
स्वासा गनि गनि पग धरै री करि करि बहु मनुहारि।
नेक रुखाई देखि मुखपर पीवत पानी वारि ॥३॥
जो उपजै उरमें सखी री सो पहले ही पाय।
प्रगट दिखावत दृष्टि सों मोहिं परम चतुर मनिराय ॥४॥
तनकहु छिन कल ना परै री बिन देखे पिय मोहिं।

तू मेरी सहचरि हितू है ताते कहति हौं तोहिं ॥५॥
महामधुर रस-लालची री लैन कितो ललचाय।
कहा कहों तिहिं समयको जब राखौं अधर मिलाय ॥६॥
कबहुँ सहज में करि रहौं री प्रनय-कोपजुत मान।
मोहिं मनावन कारने पिय केतो करत बिधान ॥७॥
मो माने तें मानई री जनम सफल सिरमौर।
मेरेहु तन मन तनकहू कहुँ नहिं अवलम्बन और ॥८॥
निद्रालस-बस हे सखी री आवत मोहिं जँभाय।
मेरे हित चित कृत करे पिय कर चुटकी चुटकाय ॥९॥
केवल रसही में रस्यौ री रसिया परम प्रबीन।
मैं हू ता बिन कछू न मानत वाही रस लवलीन ॥१०॥

—: उत्थानिका :—

पिछले पद नं० ४० में प्रियाजू की "प्रेम वैचित्ती" दशा का वर्णन कर चुके हैं। सखी ने प्यारी के हस्तकमलों को प्यारे के अङ्गों पर रखा रखा कर यत्न पूर्वक उनको सचेत कराया। फिर प्यारी प्यारे के गुणोंका प्रेम उद्गार रूप से इस प्रकार वर्णन करने लगी। इस समय प्यारे भी उन उद्गारों को शयन अभिनय करते हुए श्रवण कर रहे हैं। प्राय: विरह दशा में ही अपने प्रेमास्पद के प्रति हृदय में भरे हुए प्रेमोद्गार बलात् प्रकट हो जाते हैं रोके नहीं रुकते यथा:—

संजीवनि=प्राण प्रदान करने वाली औषधी, बूंटी। लड़ायतौ=लाड़ करने वाला। चाउ=चाव। अभिलाषा। पनाति=प्रण। पनपना। प्रणयकोप=प्रेम की नाराजगी। मान=प्रेम की ही अवस्था विशेश। केवल रस=वह रस जिस में दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। विधान=तजवीज। गुहि गुहि=गूंथ गूंथ कर। सहरावै=दवाते हैं। उर उठनि=वक्षोजों का उठाना। गहर उसास=लम्बे २ श्वाँस। रसना=जिह्वा। श्रमवन= पसीना की बूंद। पानि=पाणि–हाथ। अनङ्ग=दिव्य काम। स्याम सोम=श्याम चन्द्रमा लाल। कला निधान=कोक कलाओं के खजाना। गांस=मर्मस्थल का भाव। खटक= वान की अनी सरीखी। लिलिवत=ललचावत। फूलगहावत फूलसो=अपनी प्रसन्नता को मेरी प्रसन्नता में प्रवेश कराते हैं तत्सुखसुखी। भौन=भवन–स्थान। सदन उसोर= खश का घर, महल। अंगेज=स्वीकार करना। रसमय आभरण=आलिंगन चुम्बनादिरूप

आभूषण । मञ्जुलमणि="भरे तम्बोल रङ्ग रदजोई । मञ्जुलमणि कहावै सोई" (तालिका) पीक से सनीहुई दन्तावली । सुहे चीर=लाल वस्त्र । आँक=अँक । चिन्हित करना । शीस सुमन=शीश फूल । वलया=कङ्कण । करफूल=हथ फूल । मुदरी= अंगूठी जेहरि पायल=नूपुरादि चरणों के आभूषणों के नाम । रस कोधनी । मञ्जीर= शब्दायमान नुपुरादि आभूषण । अनवट=अनूपम । उभय कञ्जविचकञ्ज=कमल सरीखे २ अङ्गों के वीच में १ अङ्ग । शशि सन्मुख मन रञ्ज=रसिक दम्पति के मुख से मुख मिले हुए । शशि=प्रियाजू । मनरंज=लालजू डांडी=हस्त कमल । रिमझिम=नन्ही २ बूंदे । वन=जल । पसीना । रौंधि=मन्थन होने से । साँझ का फोलनालालिमा । चपला= विद्युत विजली । सःजन सुर संदोह=स्वरों को मिलाना । अपट=पट रहित । अथवा हट कर नृत्य करना । अप+ट=हट कर । शिशिर=सरदी । सुपेशलसौर=सुन्दर रजाई । मधुरितु=वसन्त ऋतु । मौज मनोज=दिव्य काम सम्बन्धी आनन्द आचमौर जव ड़ारि="यौवन मौर वेग जब काम । रितु वसन्तविलसै वरवाम । साखि जवादि कुम कुमा जोई । तत्सुख सुख सुरंग सुनि सोई ।" (तालिका) ओंॐ श्री यं अधिराज= ओं=इति स्वीकारे । ॐ=हूँ हूँ स्वीकारे । श्री=प्रियाजी । यम्=हे ! सम्बोधन । अधिराज=महाराजाओं के राजा की रानी । अर्थात् हे प्रियाजू हाँ हाँ हूँ हूँ आप ही सब राजाओं के राजा की राजेश्वरी हैं । अरुण अवीर गुलाल="लसनि हसनि मेद्विजद्युति जोई । अवीर गुलाल कहिये है सोई ॥" (तालिका) मृगमद="मदन रंग मद मृग मद जोहै ।" (तालिका) कपूर=घनसार । "घनविहार सोई घन सार ।" (तालिका) । भ्रम भौन=भ्रम भवन । भ्रम का स्थान अर्थात् कारण । चनक=नेत्र कमल ।

॥ दोहा ॥

हे हितु सहचरी ! प्यारे मुझको अपने प्राणों की संजीविनी वूटी समझते हैं । इस लिये मेरा रुख लिये हुए सदा मेरे सन्मुख उपस्थित रहते हैं । आप मेरी हित आकाँक्षि सखी हैं, अतः मैं अपने हृदय की बात तुम से कहती हूँ ।

॥ पद ॥

हे सहेली ! मेरे लाड़िले लाल मेरा लाड़ करने वाले हैं । इनको एक मात्र मेरा लाड़ करना ही अच्छा लगता है । इनके चित्त में मेरा हित करने का ही चाव सदा चढ़ा रहता है । इस लिये यह मेरे प्यारे मेरा रुख लिये हुए सदा मेरे सन्मुख उपस्थित रहते हैं ॥१॥ यदि रात को मैं दिन और दिन को रात कहूँ तो यह भी इसी अनुसार कहेंगे । इनके हृदय में प्रीति के प्रण को छोड़कर दूसरी बात नहीं है ॥२॥

मेरे श्वासों की गति देख देखकर किसी कार्यका संकल्प करते हैं। फिर मेरी मनुहार करिकरिके मुझ को उस कार्य में लगाते हैं। जब मेरे मुखपर नेक रुखाई देखते हैं तो वारि वारि के पानी पीते हैं ॥३॥ मेरे हृदय में जो बात उपजती है। उसको पहिले ही प्राप्त करा देते हैं। यानी मेरे चतुर शिरोमणि प्यारे उसको पहिले से पहिले ही करके मेरी दृष्टी के सामने खड़ी करके दिखा देते हैं ॥४॥ मुझ को भी प्राण प्रीतम के देखे बिना क्षण कालके लिए भी चैन नहीं पड़ती है। तुम मेरी हितैषणी सखी हो, इस लिए अपने हृदय की बात तुम से कहती हूँ ॥५॥ महा मधुर रस के लालची मेरे प्यारे रस लेने के लिए कितने लालायित रहते हैं? उस समय की मैं क्या कहूँ जब अधरों से अधर मिलाती हूँ। ये रस पान के लिए कैसे सट पटाने लगते हैं ॥६॥ जब कभी सहज में ही मैं प्रणय कोप युत मान कर बैठती हूँ, तो मुझ को मनाने के लिए प्यारे किस किस प्रकार की तजबीजें करते हैं ॥७॥ मेरे मान जाने से मेरे मस्तक के मुकुट मणी स्वरूप मेरे सिर मोर प्यारे इतने प्रसन्न होते हैं मानो अब ही इनका जन्म सुफल हुआ हो। मेरे तन मन को भी प्यारे को छोड़ कर और कहीं तनक भी अवलम्ब नहीं है। निद्रा आलस्य के वशीभूत होकर जब कभी मुझे जम्भाई आने लगती है। तो मेरे मंगल विधान के लिए प्रीतम मेरे मुख के सामने अपने हाथ से चुटकी बजाने लगते हैं ॥९॥ यह परम प्रवीन रसिया एक मात्र केवल्य रस अर्थात् वह रस जिस में हम दोनों मिल कर एक हो जाते हैं इस में ही सदा रसायित रहते हैं। मैं भी इनके बिना और किसी को नहीं जानती हूँ, और इसी रस में लवलीन रहती हूँ ॥१०॥

गुहि गुहि मोहिं पहिरावही री नव फूलन की माल।
कर छुवाय कुचघटनि सों मेरो ताकत बदन रसाल ॥११
मेरेहु नैनन को परी री यही अनोखी बानि।
एक पलक के अन्तर तें मोहिं बीतत कलप समान ॥१२
जैसिय चाल चलाऊँ हौं री तैसिय चालत चाल।
मोहन मन अनुसार सों मेरौ करत बचन प्रतिपाल ॥१३
जब सोऊं सुखसेज मैं री तब सहरावै पाय।
गहर उसास सुनावही मोहिं कछु उर उठनि उठाय ॥१४
तब हौं बहु सनमानि कें री बोलि मधुर मुख बैन।
कह्यौ तिहारी अर्थ है यह जो कछु देखत नैन ॥१५

कबहुँ सिथिल होय गिरि परै री मदन मूरछा आय।
जब ज्यौ में ज्यौ ना रहै मेरें कहिये कहा बनाय ॥१६
क्यौं ही क्यौं चेतन करौं री रसना रस रसवाय।
महा दुखित जिय जानिकें मैं लिये हिये सों लाय ॥१७
जो सुख बाढ़्यौ सो सखी री कहि आवत नहिं बैन।
कै जानत मेरो हियो कै जानत (ये) दोउ नैन ॥१८
पीताम्बर सों पोंछही री श्रमबन बदन निहार।
पुनि तिहिं नैन लगाय कें राखत हिय पर धार ॥१९
अति अलबेली लटक सों री अलक लड़ो ढिंग आनि।
अलक सुधारन मिस लियें मेरे परसि कपोलनि पानि ॥२०

नये नये फूलों की मालाएँ गूंथ गूंथ कर मेरे प्यारेजू मुझ को पहनाते हैं। तब मेरे वक्षोजों को छू छू कर एक टक दृष्टि से मेरे रसालमुख की ओर देखने लगते हैं ॥११॥ मेरे नेत्रों को भी ये एक अनोखी बान पड़ गई है कि प्यारे के देखे बिना एक पलक का अन्तराय भी मुझ को कई कल्पों के बराबर बीतता है ॥१२॥ जिस प्रकार से मैं चाहती हूँ उसी प्रकार से यह कार्य में प्रवृत होते हैं। ये मेरे मन मोहन मेरे मन के अनुसार ही मेरे बचनों का प्रति पालन करते रहते हैं ॥१३॥ जब मैं सुख पूर्वक शय्या-पर शयन करती हूँ तब प्यारे मेरे पैरों को सहराने लगते हैं। ऐसे करते करते जब कभी अभिलाषामई तीव्र बेदना उनको सताती है तो यह लम्बे लम्बे गम्भीर श्वास मुझ को सुनाते हैं। उस समय हृदय की धड़कन से प्यारे का हृदय कमल कुछ ऊपर को उभरा हुआ सा प्रतीति होने लगता है ॥१४॥ तब मैंने बहुत प्रकार से इनका सनमान करते हुए ये मीठे बचन कहे, "हे मेरे प्यारे जो कुछ आप नेत्रों से देख रहे हैं ये सब सम्पति आपके लिए ही है ॥१५॥ कभी कभी मेरे प्यारे मदन मूरच्छा से सिथिल होकर गिर पड़ते हैं। ये दशा देख कर मेरे जी में जी नहीं रहता। मैं घबराकर सोचने लगती हूँ अब मैं क्या करूँ? ॥१६॥ जैसे तैसे रस रसना अचवाय कर मैं इन को चेतन करती हूँ। फिर भी इनका दुख निवृत नहीं होता तब इनको महा दुखी जानकर अपने हृदय से लगा कर रखती हूँ ॥१७॥ ऐसा करने से मेरे प्यारे को जो सुख हुआ उसको मैं वर्णन नहीं कर सकती हूँ। उस सुख को या तो मेरा हृदय जानता है। या ये मेरे दोनों नैन जानते हैं ॥१८॥ मेरे मुख पर श्रम विन्दू देख कर आप अपने पीताम्बर से पोंछते हैं।

फिर मेरे पसीनों से सने हुए अपने पीताम्बर को अपनी आखों से लगा कर अपने हृदय पर धारण कर लेते हैं ॥१६॥ कभी कभी मेरे लाड़िले प्यारे अति अलबेली लटक से मेरे निकट आकर अलक सुधारण के भाने से अपने हस्तकमलसे मेरे कपोलों को छूने लगते हैं ॥२०

भयो पुलक अङ्ग अङ्ग में री बाढ़्यो रङ्ग अनङ्ग ।
रोम रोम चाहत कियो सखी ! स्याम सोम सों सङ्ग ॥२१
चित चाहै चितसों मिल्यौ री मन चाहै मन माहिं ।
जिय चाहै जिय सों मिल्यौ तन एकमेक होइ जाहि ॥२२
रसिक सिरोमनि साँवरो री सबगुन-कला-निधान ।
तदपि कहै मैं हौं प्रिये तुव पद-रज-रेनु समान ॥२३
एक समै कहि सैन में री दैन महावर पाय ।
धन्य भाग निज मानि लियो पिय कियो कह्यौ जिहि भाय ॥२४
कठिन लगन की गाँस है री जानै जिहिं जिय होय ।
निसिदिन-खटक लगी रहै सखी ! सुधि न रहै तहाँ कोय ॥२५
केलि–कला–रति कारने री कितो लिलावत लाल ।
अति अधीन ह्वै दीन ज्यों मेरे चरन लगावत भाल ॥२६
पिघलै ही पिघलै हियो री कहाँ लौं रहै कठोर ।
मैं हूँ तन मन लै दियो सखी ! लग लगाय उहिं ओर ॥२७
रचि रचि मोहिं करावही री रितु रितु को सिंगार ।
फूल समै सधि फूलकौ सुख कहत लहत नहिं पार ॥२८
फूलनि को लहँगा रचै री अरु फूलन को सार ।
फूलनि की अँगिया उरजनि पहिरावै फूलन-हार ॥२९
करनफूल रचै फूलन के री फूलन कौ सिरफूल ।
फूलन के अङ्ग अङ्ग आभूषन आभूषित अनुकूल ॥३०

प्यारे का स्पर्श प्राप्त होने से मेरे अङ्ग प्रति अङ्गों में रोमाञ्च हो गए और दिव्य काम का रङ्ग बढ़ गया । उस समय मेरा रोम रोम श्याम चन्द्रमा का सङ्ग करने के लिए ललचा उठा ॥२१॥ मेरा चित्त इनके चित्तसे, मन इनके मनसे प्राण इनके प्राण से और तन इनके तन से मिलकर एकम एक होने के लिए तड़फड़ाने लगा ॥२२॥

यद्यपि रसिक शिरोमणि मेरे प्यारे सब गुण तथा कलाओं के निधान स्वरूप हैं तो भी ये कहते रहते हैं "हे प्रिये मैं आपके चरण कमलों की रज के एक कणिका के समान हूँ"'' ॥२३॥ एक समय जब मैं शयन कर रही थी प्यारे ने ये अभिलाषा प्रकट की कि मैं अपने हाथों से आपके चरण कमलों के महावर रचना करूँ। इनका ज्यादा हट देख कर जब मैंने ये कहा "आप अपने मन का भावता करलें" ये सुन कर प्रीतम ने अपना धन्य भाग्य मनाया ॥२४॥ हे सखी प्यारे की इस दशा का तू आश्चर्य मत कर। मर्मस्थल वेधन करने वाली प्रेम के लगन की गाँस बहुत कठिन है जिसके प्राणों में लगन है वही इसकी वेदना को जानता है। वाण की अनी की तरह यह रात दिन खटकती रहती है। अतः वह सब सुध बुध भूल जाता है। इसीलिए प्यारे का यह हाल है ॥२५॥ मेरे लाल रति विलास क्रीड़ा के लिए कितने लालायित रहते हैं। इसके लिए अत्यन्त अधीन होकर मेरे चरणों में अपने मस्तक को लगाने लगते हैं ॥२६॥ प्रीतम की इतनी दीनता देख कर, मैं कहाँ तक कठोर रह सकती हूँ मेरा हृदय पिघल कर पानी पानी हो जाता है। हे सखी मैंने भी अपने तन मन को इन्हीं के अरपण कर के इन्हीं की ओर लगा दिया है ॥२७॥ यद्यपि प्यारे मेरे शृङ्गारों की पृथक पृथक ऋतुओं के अनुसार से रचना करते हैं। तो भी फूल शृङ्गार के दिनों में फूल शृङ्गार के सुख को तो मैं कहते कहते भी पार नहीं पा सकती हूँ ॥२८॥ मेरे प्रीतम मेरे लिए फूलों का लहँगा, फूलों की सारी, बक्षोजों पर फूलों की अँगियाँ और फूलों के हार अपने हाथों से बना बना कर पहनाते हैं ॥२९॥ फूलों के कर्ण फूल सिर फूल इसी प्रकार और अङ्गों में भी फूलों के आभूषण जहाँ जैसा सुन्दर लगता है। धारण कराते हैं ॥३०॥

सदा रसीले फूलसों री फूल्यौ रहै नित पीय।
फूल गहावत फूलमें मोहिं मेरौ जीवन जीय ॥३१
मन लगाय मृदु लै रचै री नवफूलन कौ डोल।
मोहिं झुलावै झूलही पिय कहि कहि मीठे बोल ॥३२
झूल फूल जो सुख बढ़्यौ री सो सुख समझै कौन।
रोमन रोमन रमि रह्यौ मेरें करि हियरे में भौन ॥३३
कबहुँ मोहिं पधरावही री सुखमय सदन उसीर।
तिहि ठाँ को सुख कहा कहौं सखी! सुखमय होत सरीर ॥३४
सुखमय सुखसेज्या रचै री सुखमय सुमन बिछाय।

सुखमय मोहिं सुवावही तहाँ आप रहै सिर नाय ॥३५
तब मैं हँसि अँक भरि कहौं री यह बलि कौन सी बानि।
इतनी जियमें धरत सो कहा नई करत पहिचानि ॥३६॥
(प्यारीजू) सह्यौ परत नहिं नेक हू यह तिहारे तन कौ तेज।
इन आँखिन धरि लियो है कछु यही सुभाव अँगेज ॥३७
अद्भुत रीति सुभाव की री यह गति समझति हौं न।
आपहिं अपने तेज ते बलि सरमावत सो कौन ॥३८
हिलिमिलि सुख बिलस्यौ सखी री सुखमय सेज सुहाग।
प्रेम उमँग अँग अंग सुरति को जो जिहिं लायक लाग ॥३९
अति सुन्दर मनमोहने री! सोहने साँवरे अङ्ग।
बरषा में बरषा होइ बरषत सरसत रङ्ग अनङ्ग ॥४०

एवं प्रकार से प्रीतम मेरा शृङ्गार करके इस रसीली फूलसे फूले नहीं समाते। हे मेरी जीवन जीय सखी! इनकी फूलन देखकर मैं भी फूल जाती हूँ। एवं प्रकार से प्यारे अपनी फूलको मेरी फूल से गहाते हैं। अथवा प्यारे मेरा शृङ्गार करके फूले नहीं समाते। और हे मेरी जीवन जीय"। इस प्रकार कहके मेरा गाढ़ आलिङ्गन ही नहीं करते हैं, अपितु ऐसा करने से मानों वह अपनी फूलको मेरी फूल से गहाते हैं ॥३१॥ फिर प्यारे मन लगाकर नव नव फूलों का मृदु डोल की रचना करते हैं। उस पर मुझे झुलाते हैं और कभी कभी विनय पूर्वक मीठे मीठे वचन कहते हुए मेरी साथ स्वयं आप भी झूलते हैं ॥३२॥ फूलों के झूला पर झूलकर जो हमको सुख हुआ उस को कौन समझ सकता है। उस सुख ने मेरे हृदय में स्थान बना लिया है और वह आनन्द मेरे रोम रोम में रमा हुआ है ॥३३॥ कभी कभी प्यारे मुझको सुखमय खश महल में पधरा कर ले जाते हैं। उस जगह के सुख का मैं क्या वर्णन करूँ, प्रवेश मात्र से ही मेरा शरीर एक दम सुखमय हो गया ॥३४॥ हे सखी! वहाँ मुझको सुख प्रदान कराने के लिये सुखमय सुन्दर सुन्दर फूलों की सुखमय शय्या की रचना करते हैं फिर सुख स्वरूप प्यारे उस पर मुझको शयन करादेते हैं और स्वयं नत मस्तक होकर मेरे बगल बैठ जाते हैं।३५ तब मैंने हँसकर उनको अङ्क में भर लिया और यह कहा "मैं आपकी बलिहारी जाऊँ यह आपकी क्या बान पड़गई है? आप इस प्रकार अपने मन में करते हैं, क्या आज आप

मेरी नई पहचान करते हैं ? ॥३६॥ तब प्राण नाथ कहने लगे। "हे प्यारीजू ! आप के तन का तेज मुझ से सहा नहीं पड़ता है। इन मेरी आँखों ने कुछ इसी प्रकार का स्वभाव स्वीकार कर लिया है। इसीलिये ही मैं नीचे को झुका हुआ हूँ ॥३७॥ मेरे प्यारे के स्वभाव की गति कुच्छ ऐसी अद्भुत है जिस को मैं भी समझ नहीं पाती हूँ। ऐसा कौन होगा जो स्वयं प्रकाश स्वरूप होकर अपनी प्रभा से शरमाने लगे ॥३८॥ हे सखी ! फिर हम दोनों ने हिल मिल कर, परस्पर उपयुक्त अङ्गों से अङ्ग मिला मिलाकर सौभाग्यवती सेज पर प्रेम उमँग में भर कर सुरति केलि जन्य सुख को विलसा ॥३९॥ अरी सखी ! मेरे मन को मोहन करने वाले श्याम सुन्दर जिनकी अङ्ग माधुरी घन सरीखी साँवरी है, वर्षा काल में वर्षा की तरह वर्ष कर दिव्य काम के रङ्ग को सरसाते हैं ॥४०॥

सुहै चीर सगबग करैं री ! ढरैं महा अनुराग।
आप पगें पिय मोहिं पगावें परम प्रेम रस पाग ॥४१
बरन बरन आभरन रचै री रसमय रसिक सुजान।
पहिरावत पावत अति सुख आलिङ्गन चुम्बन दान ॥४२
मंजुलमनि रसमय रचै री सीस सुमनकौ आँक।
करन कुसुम तैसेई बनें बरबेंदी बेसर नाँक ॥४३
रसमय कंठसिरी सुलरी री दुलरी तिलरी पोति।
चौकी चौसरि हार चम्पकली मोहनमाला मोति ॥४४॥
बाजूबन्द बलयावली री पहुँची वर करफूल।
रतनमूँदरी रुचिर रचावै रसमय अँगुरिन मूल ॥४५
रसना जेहरि पायलैरी मनिमय मृदु मंजीर।
अनवट बिछिया नगन ही हद पद पत्रन के तीर ॥४६
अचरज देख्यौ एक सखी री ! उभय कंज बिच कंज।
जा मधि भाव अनेक रहे लसि ससि सनमुख मनरंज ॥४७
नव नवरंगी लाड़िलौ री नवरँग नवल हिंडोर।
नव नव रङ्ग झुलावही मोहिं नवरङ्ग जोबन जोर ॥४८
होड़न होड़ मचावही री डाँडी छाँड़ें खेल।
कछू सभय मोहिं जानिकें पिय रहे हिये पर झेल ॥४९

रिमिझिमि रिमिझिमि रङ्गकी री बूंदनि अङ्ग भिजाय ।
उतरि कदम्बतर लै चले मोहिं तहाँ राखे बिरमाय ॥५०

अनुराग का रङ्ग अरुण है । जब मेरे प्यारे महा अनुराग में ढरते हैं तो मेरे अङ्ग प्रत्यँग ही क्या अपितु मेरे कसूंभी वस्त्र भी अनुराग के रङ्ग में रञ्जित हो जाते हैं । फिर "परम प्रेम रस पाग" । अर्थात् उस रस की पारि पाक अवस्था में जो रस श्रेष्ठ प्रेम की भी उच्चतम परिपक्व कक्षा है जिसे सुरति विलास आदि कहते हैं उस में मेरे प्यारे स्वयं पगते हैं और मुझ को भी उसी रस में पगा देते हैं ॥४१॥ रसिक सुजान मेरे प्रीतम वरन वरन के रसमय आलिङ्गन चुम्बनादि रूप आभरणों से मेरा शृङ्गार करके अत्यन्त सुखी होते हैं ॥४२॥

"भरे तम्बोल रङ्ग रद जोई । मञ्जुलमणि सो कहावे सोई ॥"

(तालिका) मेरे प्यारे पान खाते खाते अपनी रञ्जित दन्तावली से शीश फूल के स्थान पर मेरे मस्तक का चुम्बन करते हैं जिस से लाल चिन्ह हो जाता है । ऐसा करने से वह मानो मुझ को रसमय शीश फूल पहना रहे हैं । इसी तरह से प्रीतम रसमय कर्ण फूल श्रेष्ट वेंदी और नाक पर वेशर की रचना करते हैं ॥४३॥ इसी प्रकार से रसमय कंठ श्री, सुलरी, दुलरी तिलरी, पोत, चौकी, चौसर हार, चम्पकली और मोतियों की मोहन माला आदि की आलिङ्गन चुम्बन द्वारा जहाँ जैसा उपयोगी है रसमय रचना करते हैं ॥४४॥ इसी तरह बाजूबन्ध, कड़े, श्रेष्ठ गोंहची, हथ फूल और रत्नों की रसमय अगूठियों की प्रीतम अंगुलियों में रचना करते हैं ॥४५॥ इसी प्रकार कोधनी, जेहरि, पायल, मणिमय मृदल वाद्यमान नूपुर, अनवट रत्न जड़ित वीछिया पत्र—पत्र पर्यन्त की हद तक प्रीतम आलिङ्गन चुम्बन द्वारा रसमय आभूषणों की रचना करते हैं ॥४६॥ शशि श्रीप्रियाजी मन रञ्ज श्रीलालजू लश गाढ़ आलिङ्गन किये हुए, सन्मुख मुख से मुख मिलाये हुए । श्रीप्रियाजू कहती हैं मैं और प्रीतम उपरोक्त प्रकार से विराज मान थे उस समय एक नया अचरज दृष्टि गोचर होता था कि दो कमलों के बीच में १ कमल है और खिला हुआ है । शशि के सन्मुख कमल नहीं खिलते हैं, परन्तु यहाँ आश्चर्य यह है तीनों कमल खिले हुए हैं । उपरोक्त कूट के अनेक भाव हैं । ऐसा श्रीप्रियाजी कह रही हैं । श्लेषार्थ यह है रसिक दम्पति के अङ्ग प्रत्यङ्गों के मिलने से अधर सुधा तथा रस रसनादि के व्यतिरिक्त और भी बहुत विलास सम्भव हैं जो केवल रसिकजनों के ही सम्वेद्य हैं ॥४७॥ नये नये अनुराग से रञ्जित मेरे लाड़िले और नये अनुराग रूपी नवल हिण्डोरे पर नये यौवन के नये अनुराग के जोर से मुझ को नई नई भान्ति से प्यारे

झुलाते हैं ।।४८।। होडा होडी झुलाते झुलाते कभी कभी डाँड़ी अर्थात् हस्त कमल छोड़-कर खेल करने लगते हैं। कभी मुझको भययुक्त समझकर प्रीतम अपने हृदय कमल पर मुझको झेलते हैं ।।४९।। फिर रति विलास की रिम झिम रिमझिम रङ्ग की बूंदों से मेरे अङ्गों को तरावोर करके झुलाना बन्ध कर देते हैं। मेरे चरण रूपी कदम्बों के नीचे उतर कर मुझ को श्रमित जानकर अपने अङ्क में मुझको आराम कराते हैं ।।५०।।

पातन तें बन टपकहीं री सुरति रङ्ग रस रौंधि।
रही साँझ-सी फूलकें जहाँ चपला की चकचौंधि ।।५१
सरद चाँदनी रैंन में री रङ्ग रमावै रास।
बिबिध बिकट गति भेद भावसों निर्तत निर्त हुलास ।।५२
बहु बाजन की बाजनी री साजन सुर संदोह।
थेई थेई रट सुघट उघट में उपजावत मनमोह ।।५३
कबहुँ मोहिं मनुहारिकें री कहत कमल दल नैन।
मृदु पद नृत्य दिखाइये मोहि अहो प्रिये सुखदैन ।।५४
जब मण्डल पर पग धरौं री करौं अपट आरम्भ।
तन मन प्रान रहे पियके अकजक-से होय अचम्भ ।।५५
और कहौं सुनि हो सखी री सिसिर सीत सनमान।
रुचि अनुसार लियें अनुसारत सुन्दर सुघर सुजान ।।५६
अङ्ग अङ्ग घुरि पौढ़िबो री ओढ़ि सुपेसल सौर।
को जाचै को दे सखी जहाँ राचे रसकी रौर ।।५७।।
मधुरितु मौज मनोज में अम्ब मौर जौ डार।
सरस साख अभिलाषन सों भरि राखत कंचनथार ।।५८
सजि सजि सौंज समर्पहीं री सब पूजा कौ साज।
महास्तव मुखते पढ़ैं ओं ॐ श्रियं अधिराज ।।५९
छबीले करसों छिरकहीं री नवकेसरि कौ नीर।
अरुन अबीर गुलालसों मेरो चरचत तन सुख चीर ।।६०

उस समय सुरत केलि जन्य श्रमसे मेरे अङ्ग प्रत्यंगों से श्रमकन टपकने लगते हैं।

श्रम से मेरे मङ्गल विग्रह ऐसा अरुण प्रतीत होने लगता है मानों साँझ पड़े लाल बादल पर विद्युत की चकाचौंध हो रही हो ।।५१।। कभी कभी मेरे प्यारे शरद की चान्दनी रातों में रति विलास रूपी रास की अनुराग सहित रचना करते हैं। और विविध प्रकार की विकट गतियों के भेदों को ले लेकर भाव और उल्लास सहित नृत्य करते हैं ।।५२।।

"विविध भाँति के बाजे वाजें। सोई अङ्ग अङ्ग भूषण सुर साजें।"(तालिका)

उस समय हमारे अङ्गों के आभूषणों की ध्वनियां एक साथ स्वर ताल में बन्धी हुई की तरह बजती हैं। और थई थई की रट भी सुघाट स्थान पर युक्त प्रकार से होती है जिस को सुनकर हमारे मन मोह को प्राप्त हो जाते हैं ।।५३।। (अब विपरीत रति विलास को वर्णन करते हुए कहते हैं) कभी कभी कमल दल नैन मेरे प्यारे मेरी बहुत मनुहार करके कहते हैं। "हे सुख प्रदान करने वाली प्रिया आप अपने कोमल चरणों का भी नृत्य दिखाऐ ।।"५४।। यह सुनकर ज्यों ही मैंने मण्डल पर पग रख कर अपट आरम्भ किया, त्योंही प्यारे के तन मन अचम्भित से होकर अके से जके से रह गये ।।५५।। (यहाँ मण्डल प्यारे का दिव्य मङ्गल विग्रह से तात्पर्य है अपट विगत वास को कहते हैं) हे सखी ! तू और सुनि जाड़े के मौसम में शीत काल का सन्मान करते हुए, सुन्दर सुघर सुजान मेरे प्यारे मेरी रुचि के अनुसार विहार करते हैं ।।५६।। उस समय गाढ़ आलिङ्गन द्वारा अङ्गों से अङ्ग मिलाकर सुन्दर रजाई ओढ़कर आस पास शयन करना होता है। जहाँ रस की रौर मचरही है वहाँ यह भी पता नहीं रहता याचक कौन है और दाता कौन है ।।५७।।

(अब वसन्त ऋतु का वर्णन करते हैं)

"जा मध्य सौरभ सकल लसन्त। ताकी संज्ञा कही वसन्त ।।"

"जौवन मौर वेग जव नाम। रितु वसन्त विलसे वर वाम ।।"

"शाखि जवादि कुमकुमा जोई। तत्सुख सुख सुरंग सुनि सोई ।।"(तालिका)।

ऋतु वसन्त जिस में सब रसों की महक उठती है स्वाभाविक ही दिव्य काम के आनन्द को उद्दीपन कराने वाला है, फिर इस समय यौवन के वेग के बढ़ जाने से मेरे प्यारे तत्सुख सुखमई लाखों अभिलाषाओं को अपने कञ्चन थाल रूपी हृदय में भर कर रखते हैं ।।५८।। एवं प्रकार से प्रीतम मेरी वसन्त पूजा का सब साज सजाकर मेरे अर्पण करते हैं। और उस समय इस मन्त्र को पढ़ते हैं "ओंऊँ श्री यं अधिराज।" ओं=इति स्वीकारे। हाँ हाँ ऊँ=इति स्वीकारे। हूँ हूँ। श्री=हे प्रिया जी। यम्=सम्बोधन=हे। अधिराज=महा राजाओं के राजा की रानी। अर्थात् हे प्रियाजू ! हाँ

हाँ हूँ हूँ आप ही सब महा राजाओं के राजा की राजेश्वरी हैं ॥५६॥

(अब होरी का वर्णन करते हैं)

नव केशर को नीर="मन केवर केशर रति रङ्ग।" अरुण अबीर गुलाल="लसनि हसनि में द्रज द्रुति जोई। अवीर गुलाल कही है सोई।" (तालिका) मेरे प्यारे अपने छवीले कर कमलों से नव केशर का नीर नहीं छिड़कते हैं अपितु ऐसा करते हुए वह मुझको रति रङ्ग विहार में प्रवृत करते हैं। फिर हंसते हंसते अपनी मुस्कान माधुरी की मुझपर ऐसी वर्षा करते हैं जिस से मेरे अङ्ग प्रत्यंग ही क्या बल्कि मेरे तन्सुख चीर भी उस वर्षा से रस में तराबोर हो जाते हैं ॥६०॥

घसि घसि अङ्ग लगावही री मृदमद मलय कपूर।
परसतही पावत सुख तन मन मगन प्रेमकें पूर ॥६१
एक समय सुखमें सखी री सोई सेज मँझार।
बाम हाथ हिय पर पर्यौ तब को को उठी पुकार ॥६२
जब पिय हँसि मोहिं यों कह्यौ री यह आई उर कौन।
कहि समझइयें अहो प्रियेजू जौ न परें भ्रम भौन ॥६३
अहो प्रानवल्लभजु कहौं मैं सुनहु सुपन की गाथ।
भूलि परी गहवर बनमें जहाँ सखी न कोऊ साथ ॥६४
चनक मूंदि पिय आयके मोहिं भरिलीनी अँकवारि।
या ते सम्भ्रम ऊपज्यौ उर को को उठी पुकारि ॥६५
सुनत श्रवन पिय हिय सखी री बाढ़्यौ अति आनन्द।
लेत बलैया हरखि हरखि मेरो निरखि निरखि मुखचंद ॥६६
तोसों कहा दुराव है री तो बिन कछू न केलि।
तू मेरी श्रीहरिप्रिया है मन अनुसार सहेलि ॥६७॥४१

मृग मद="मदन रङ्ग मद मृग मद जोहै। (तालिका) मलय कपूर=कपूर को घन सार कहते हैं। "घन विहार सोई घन सार। जा मध्य माचे मार अपार।" (तालिका) फिर प्यारे दिव्य रति विलास के मद में भर कर उस घन विहार में प्रवृत होते हैं जिस में सुख की अपार मारामार मचती है। प्रेम के पूर्ण "पूर रूप" इस विहार के स्पर्श मात्र से ही मेरा तन मन पूर्ण सुखी होकर मगन हो जाता है ॥६१॥

(श्रम विलास का वर्णन करते हैं)

हे सखि। एक समय की बात है। मैं सुख पूर्वक शय्या पर शयन कर रही थी। दैव योग से अचानक मेरा वाम हाथ मेरे हृदय पर पड़गया जिससे मैं सोती हुई दबगई और पुकार पुकार कर यह कहने लगी' कौन है कौन है ॥६२॥ तब प्यारे ने हंस कर मुझ से यह कहा "हे मेरी प्राण प्यारी, यह तुम्हारे हृदय में कौन आगई। मुझ को समझाकर कहें ताकि मुझ को मालूम हो सके, कि तुम्हारे श्रम का क्या कारण है ॥६३॥ तब मैंने प्यारे से कहा "अहो मेरे प्राणवल्लभ मैं आप से अपने स्वप्न की गाथा कहती हूँ। मुझ को ऐसा स्वप्न आया, कि मैं अकेली गहवर बन में जाती हुई रास्ता भूलगई हूँ और उस समय मेरे साथ कोई भी सखी नहीं है ॥"६४॥ "तब प्यारे ने अचानक पीछे से आकर अपने हस्त कमलों से मेरी आँखें बन्द करली, फिर उन्होंने मुझको अङ्क में भर लिया। इसी कारण से मुझको सम्भ्रम हो गया और "कौन है कौन है" इस प्रकार मैं पुकारने लगी" ॥६५॥ हे सखी ! प्रीतम ने अपने कानों से जब यह बातें सुनीं, तब उनको बहुत आनन्द हुआ। और वह प्रसन्न होकर मेरे मुख चन्द्र को बार बार देखकर मेरी वलैया लेने लगे ॥६६॥ हे श्रीहरिप्रिया तुम मेरे मन के अनुसार सहेली हो। तुम से क्या छुपाव है। तुम्हारे विना कोई भी केलि सम्भव नहीं है ॥६७॥

॥ अनुरागिनि कर्णकान्ता मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

भरि झोरीबर जोरिबर अरि अरि उरज उतंग।
स्यामा गोरी स्याम संग खेलत होरी रङ्ग ॥

॥ पद ॥२४॥

स्यामा गोरी खेलत होरी साँवरे प्रीतम संग।
भरि भरि झोरी बर बर जोरी अरि अरि उरज उतंग ॥
लाड़लड़ी लड़वावति लालैं लै लै गुलाल सुरंग।
तर करि लिये अतर मनहरनी ह्वै ह्वै तरनि त्रिभंग ॥
पिचकी सों रिचकी जुरि मुरिके ढुरि ढुरि ढुरनि त्रिभंग।
सगबगे किये रगबगे हियेसों नवजोवनि अङ्ग अङ्ग ॥
लाग फाग अनुराग मूलमें फूल फबे बहु रङ्ग।
श्रीहरिप्रिया सनमुख सुख बिलसत हुलसत उलसि उमंग ॥४२

अनुरागिनी कर्ण कान्ता मध्याभास=राग कानरौ । अरि अरि=भिड़ाकर । मिलाकर । उरज उतंग=उन्नत वक्षोज । अतर="अतर अरगजा और अगर सत । उमंग उल्लास अनङ्ग रङ्ग वर्षत ।" तालिका । तरुनि=श्रीप्रियाजू । तृभङ्ग=लालजू की तरह से तृभङ्गी होकर मुड़ मुड़कर । रिच=ऋच=प्रशंसा करना । जुहार करना । लाग फाग=होरी खेल में ।

॥ दोहा ॥

जोर में भरी हुई श्रीश्यामाजू गुलाल से झोरी भरि के अपने प्यारे श्याम का गाढ़ आलिङ्गन किये हुए उनके हृदय से अपने उतंग वक्षोजों को मिलाकर रङ्ग होरी खेल रही हैं ॥

॥ पद ॥

श्रीश्यामा गोरी अपने साँवरे प्रीतम संग होरी खेल रही हैं । दोनों ने गुलाल की झोरियां भरि रखी हैं और दोनों हृदय से हृदय मिलकर खेल रहे हैं । लाड़ली जी सुरङ्ग गुलाल अपने प्यारे के लगा लगाकर उन्हें लड़ा रही है अथवा । "मुस्कन हंसन अबीर गुलालन" (तालिका) प्यारी अपनी हंसन मुस्कराहट से अपने प्यारे को लड़ा रही हैं । फिर मनहरनी तरुनि श्रीप्रियाजू ने अपने प्यारे को अतर से तर नहीं किया अपितु तृभङ्ग होकर अर्थात् सुरति केलि नृत्य में मुड़ मुड़कर अपने प्यारे पर उमंग उल्लास सहित अनङ्गरंग की वर्षा की जिससे वह उस रस से तर बतर हो गये । ("अतर अरगजा और अगर सत । उमंग उल्लास अनंग रंग वर्षत)।" (तालिका) ॥१॥ श्रीप्रियाजू ने जुरि मुरि के ढुर ढुरि के अपनी पिचकारी से नहीं अपितु अपनी कुटिल कटाक्षों द्वारा अपने प्यारे की प्रशंसा करते हुए उनको प्रथम जुहार किया फिर उन्होंने जिन के अंग अंग में नव यौवन छा रहा है अपने प्यारे का गाढ़ आलिंगन करके उन्हें अनंग रंगमें भिगो दिया और उनका हृदय इसी रस से रञ्जित कर दिया ॥२॥ उपरोक्त प्रकार की अनुराग की फाग के मूल में बहुत प्रकार के रंग बिरंगे फूलों की शोभा हुई । अर्थात् सुरतान्त में रसिक दम्पति के अँग प्रत्यँग आनन्द से फूल गये । श्रीहरिप्रिया सखीजी इस आनन्द की फूलन को देखि देखि करि उल्लास सहित उमंग में भरि भरि के इस सुख को विलसि रही हैं ॥३॥

॥ दोहा ॥

अलक रलक श्रमकन झलक उरपर हार बिलोल ।
दामिनि-सी डोलें प्रिया फूली फूल अमोल ॥

॥ पद ॥४३॥

प्यारीजू फूली फूल फूल सों रिमिझिमि रिमिझिमि डोलें।
मर्कतमनि के अहल महल में कोकिल ज्यों कल बोलें॥ टेक
अलक रलक श्रमकनकी झलकनि उरपर हार बिलोलें।
केसरिया फरिया तरहरिया लँगा ललित अमोलें॥१
जगमग जोति जराय जरी-सी दीपति दामिनि ओलें।
ठमकि ठमकि पग धरत धरनिपर रूप अनूपम तोलें॥२
अति रति रङ्ग रङ्गी नवजोबनि उमँगि उमँगि रस ढोलें।
श्रीहरिप्रिया धन्य बड़भागी जो या बिरद बिलोलें॥३॥४३॥

अलक रलक=चञ्चल अलकावली ! श्रमकन=पसीना विलोल=चञ्चल। हिलता हुआ। रिम झिम=गजगति मर्कतमणि=नीलमणि स्वरूप लालजू का मङ्गल विग्रह अहल महल=देह रूप महल। तर=नीचे: जरीसी=सिलमा आदि संजटित। ओलैं=छिप छिप कर। विरद विलोले=स्थिरचित्त से विरदावली गान करते हैं ! विपरीत विलास का वर्णन करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाजू अपने प्यारे के दिव्य मङ्गल विग्रह पर अमूल्य फूलन से फूली हुई दामिनी सी डोल रही हैं। इस समय इन के अङ्ग पर श्रम बूंदें झलक रही हैं अलकावली और हारावली चञ्चल हो रही हैं।

॥ पद ॥

प्यारीजू आनन्द की फूल से फूली हुई नील मणि सरीखे अपने प्यारे के दिव्य मङ्गल विग्रह पर विहार कर रही हैं। इस रति विलास नृत्य करते समय इनके नूपुरों तथा अन्य आभूषणों से रिमझिम रिमझिम शब्द हो रहे हैं। आप कोकिल सरीखे शीत-कारादि अव्य शब्द उच्चारण कर रही हैं। अलकैं झूमि रही हैं। श्रम से मुखारविन्द पर श्रमविन्दु झलक रहे हैं और वक्षस्थल पर हारावली विशेष चञ्चल हो रही है। यद्यपि इस समय दोनों विगतवास हैं तो भी उभय संगम में दोनों मिलकर एक हो रहे हैं। अब युगल की रूप माधुरी ऐसी प्रतीत होती है मानों प्यारी तो केशरी फरया हों और नीचे प्यारे ललित अमूल्य हरित लहंगा हों। प्यारी की ज्योति जरी के जड़ाव की तरह से

जग मगा रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई अनिर्वचनीय विद्युत मेघ की ओट से चमचमा रही हो। विलास नृत्य में प्यारीजू ठमकि ठमकि कर इस प्रकार चरणारविन्दों कौ धर रही हैं मानों यह अपना अनूपम रूप तोल रही हों। नव यौवनी श्रीलड़ैतीजू अति रति विलास रङ्ग में रङ्गी हुई हैं, अतः उमँगि उमँगि करि अपने प्यारे पर इस रस की वर्षा कर रही हैं। श्रीहरिप्रिया सखी जी कहती हैं वे साधक वास्तव में बड़ भागी हैं जो उपरोक्त प्रकार के रस की विरदावली स्थिर चित्त से गान करते हैं।

॥ अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

लै लै अभिलाषनि गनै मनै सहित निज अङ्ग।
करें समर्पन रमैं यों हरिसों होरी रङ्ग ॥

॥ पद ॥४५॥

रमैं यों हरिसों होरी रङ्ग।
बड़भागन ते फागुन आयो करतहिं करत उमंग ॥
अद्भुत बनक कनक पिचकारी भरि केसरि कें नीर।
छबीली छींट छबि सों छल करिकें छिरकें स्याम सरीर ॥१॥
चोवा चन्दन अतर कुमकुमा बहु सुगन्धि की रेलि।
रिझवें रसिक रसाल लाल कौं करि मन भाई केलि ॥२॥
अबीर गुलाल उड़ाय अनूपम लगियें उर संसर्पि।
लाख लाख अभिलाषन के गन तन मन सकल समर्पि ॥३॥
कैसो सुख ह्वै हैं यों बिलसत अरस परस पिय सङ्ग।
मन मानत निज फगुवा लैहैं पैहैं प्रेम अभङ्ग ॥४॥
श्रीहरिप्रिया कहति सहचरिसों सुनि सब उठीं सराहि।
खेल मच्यौं नव कुञ्जसदनमें हिलिमिलि हिये उमाहि ॥५॥४४॥

अनुरागिनी विचित्र सोभा विहाग मध्याभास=राग विभाग, अभिलाषन गनै= बहुत सी अभिलाषाओं के समूह। मनै सहित=मन के सहित। उर संसर्पि=उर+सं+ सर्पि=सम्यक् प्रकार से घूम घूमाती चाल से चलकर हृदय से लगना। कनक पिचकारी= कुटिल कटाक्ष छुटत पिचकारी" (तालिका) केशर=रति रंग (तालिका)। चोवा=

अतिचित्त चाव सोई चोवा सुनि। (तालिका) चन्दन=चुम्बन। अतर=उमंग (तालिका) कुमकुमा=तत्सुख सुख सुरंग सुनि सोई। (तालिका) बहु सुगन्ध=अनंग रंग वर्षत= (तालिका)। प्यारी अपनो तन मन सकल को अपने प्यारे के अर्पण करती हुई समर्पण रूपा होरी खेल रही है।

॥ दोहा ॥

अपने प्यारे को सुखी करने के लिये प्यारीजू के तन मन में जो जो अभिलाषाऐं उठ रही थीं वे सब अपने तन मन को उनके अर्पण करके पूर्ण की। एवं प्रकार से प्यारी जू अपने प्यारे हरि के साथ होरी खेल रही हैं।

॥ पद ॥

एवं प्रकार से प्यारोजू अपने प्यारे हरि के साथ होरी खेल रमा रही हैं। उमंग भरी प्रतीक्षा करते करते बड़े भागों से यह फागन आया है। छबीली श्रीप्रियाजी अद्भुत बनावट की स्वर्ण की पिचकारी में केशर के नीर को भरि भरि के अपने प्यारे श्याम पर छवि से छल करि के छिड़क रही हैं ॥१॥ चोवा चन्दन और अतर के वह कुमकुमा भरि के जिन में से बहुत भारी सुगन्धि उड़रही हैं इनके द्वारा श्रीलड़ैतीजू अपनी मन भाई केलि करिके अपने प्यारे रसिक रसाल लाल को रिझा रही हैं। एवं प्रकार से प्यारीजू जब अपनी घूम घूमाती चाल से चलती हुई अद्भुत प्रकार के अबीर गुलाल को उड़ा रही थीं तब उन्होंने अचानक अपने प्यारे को अपने हृदय से लगा लिया इस तरह से अपने तन मन सकल को उनके समर्पण करके अपनी और अपने प्यारे की लाख लाख अभिलाषाओं को पूर्ण किया ॥३॥ अन्त में सखियाँ कहती हैं एवं प्रकार से परस्पर मिलकर विलसने में जो रसिक दम्पति को सुख होता है हमारे लिये यही मन भावता फगवा है हम फगवा में युगल का अभंग प्रेम चाहती है ॥४॥ एवं प्रकार से जब श्रीहरिप्रिया सखी जी नें गान किया तब सब सखियों ने उनकी सराहना की। फिर नव कुञ्ज सदन में रसिक दम्पति ने उमाँह में भरिके परस्पर हृदय से हृदय मिलाकर सुरति केलि जन्य खेल फिर प्रारम्भ किया॥

नोटः—उपरोक्त पद के तुकों का "तालिका" के अनुसार रतिविलास पर भी अर्थ हो सकता है परन्तु कई स्थानों पर वह अर्थ कर चुके हैं अतः विस्तार भय से यहां नहीं किया है।

॥ दोहा ॥

मेरैं कर वर दीजिये उर आभरन उतारि।
अलकलड़ी अलबेलि बलि बिहरौ गर भुज धारि ॥

॥ पद ॥४५॥

बलि बलि अलकलड़ी अलबेलि।
यह होरी रतिरस में बोरी बिहरौ बहियाँ मेलि ॥
देहु उतारि दयानिधि मो कर उरकौं हार हमेलि।
लै पिचकी रिचकी उरजन पर बरसौ रसकी रेलि ॥१
देखहुगे कैसो सुख पइहौ कमलकुंजकी केलि।
पूछि लेहु प्यारी सहचरि यह श्रीहरिप्रिया सहेलि ॥२॥४५॥

रिचकी=ऋच्=मङ्गल मय। अलकलड़ी=लाड़ करने योग्य। प्यारे प्रार्थना करते हैं :—

॥ दोहा ॥

हे लाड करने योग्य अलबेलीजू ! आप अपने उर के हार हमेल आदि आभूषणों को मेरे ही हाथों से उतारने की मुझे आज्ञा प्रदान करें। फिर मैं आप की बलिहारी जाऊँ, आप गलबहियाँ डारि के विहार करें।

॥ पद ॥

हे लाड़ करने के योग्य अलबेलीजू मैं आप की बलिहारी जाऊँ। यह होरी हम दोनों को रति बिलास रस में निमग्न करने के लिये ही है इस लिये परस्पर गल बहियाँ देकर विहार करें। हे दया निधि ! आप अपने उरको हार और हमेल आदि आभूषणों को मेरे ही हाथों से उतारने की मुझे आज्ञा दें। ताकि मैं मंगल मयी आपके वक्षोजों पर पिचकारी द्वारा रस की वर्षा करूँ। फिर आप ही देखेंगे कि कमल कुञ्ज की केलि से हम दोनों को कैसा सुख प्राप्त होगा। (यहाँ कमल कुञ्ज से श्रीमंगल विग्रह के रहस्य स्थानों से तात्पर्य है "निज तन सुभग रतन मणि कहिये। कमल निकुञ्ज कमल हूल-हिये।" तालिका। इस विषय में आप अपनी प्यारी सहचरी श्रीहरिप्रिया सहेलीजू से पूछ लेवें कि मेरे कथन में कितनी सत्यता है।

॥ दोहा ॥

आनन्द अहलादिनि दोउ रति रङ्ग रेलि रचाय।
रसहोरी खेलत भये सगबग सहज सुभाय ॥

॥ पद विहाग इकताला ॥

प्यारी बिहारीलाल सौं रस होरी खेलें।
लटकीली गजचाल सौं बूकाबन्दन मेलें॥
जोवन जोर उमंग सौं रति रङ्गहिं रेलें।
लै पिचकी करकमल सौं पिय तनपर पेलें॥१॥
अति निसंक लच लंक सौं भरि अंक सकेलें।
गहि गाढ़ी अह्लादिनी आनन्द अलबेलें॥२॥
अतर लाय तन तर करी नव तिया नवेलें।
सगबग कीनी ढारि कें सीसी जु फुलेलें॥३॥
चहल पहल भइ महल कें या वगर बगेलें।
श्रीहरिप्रिया जे धन्य हैं ते यह रस झेलें॥४॥४६॥

आनन्द=प्यारे। आह्लादिनि=श्रीप्रियाजू। बूका वन्दन="अधर रोग वन्दन छवि पावै।" (तालिका) "रंग भरे मुख सो अंग चूमै। बूका वर्ण कह्यौ है जूमै"। (तालिका) सगवग=गीले होने। पिचकी=पिचकारी="कुटिल कटाक्ष छुटत पिचकारी" (तालिका) लचलंक=लचकती हुई कमर। अंकसकेलै=गाढ़ आलिङ्गन। अतर=अतर, अरगजा, और अगर सत, उमंग उल्लास अनंग रंग वर्षत (तालिका) फुलेलै="सुमन स्नेह फुलेल कहावै" (तालिका) चहल पहल=भीड़भाड़। रस की कीचड़।

॥ दोहा ॥

आनन्द स्वरूप श्रीलालजू और अह्लादिनि स्वरूपा श्रीप्रियाजू परस्पर अनुराग रङ्ग से रञ्जित होकर उस रति विलास की रचना करते हुए रस होरी खेल रहे हैं जिस खेल में इन दोनों के अङ्ग प्रत्यँग स्वाभाविक ही रस से भीगे रहते हैं॥

॥ पद ॥

प्यारीजू विहारी लाल से रस मय होरी खेल रही हैं। वह गज की चाल से झूम झूमाती हुई रंग में भरी हुई अपने प्यारे के कपोलों और अधरों को चूम कर यौवन के जोर से उन्हें रति विलास रङ्ग में निमग्न करती हैं। फिर कुटिल कटाक्षों द्वारा उनकी ओर निहारती है॥१॥ यह देखकर अलवेले आनन्द स्वरूप लालजू ने अह्लादिनी स्वरूपा अपनी प्यारी की लचकती हुई लङ्क को अङ्क में भरि के उनका गाढ़ आलिङ्गन किया।२। फिर प्यारे ने अपनी प्यारी नव तिया नवेली पर अनंग रस की वर्षा की और उन्हें सुमन

स्नेह रूपी फुलेल से भिगो दिया ।।३।। इस प्रकार से इस रस की वर्षा से रंग महल के वगर और गलियों में रस की कीचड़ मच गई । श्रीहरिप्रिया सखी जी कहती हैं जो साधक उपरोक्त प्रकार के रति विलास विहार की भावना करते हैं तथा इसे जो अस्वादन करते हैं वे धन्य हैं ।।४।।

।। दोहा ।।

अवलोकत मुख-माधुरी परिहैं अन्तर आय ।
बाल अहो बलि डारिये इनि नैननहिं बचाय ।।

।। पद।।४७।।

एहो बचाय डारौ इन नैननहिं सुनिये स्यामा प्यारी ।
अंतर मुख अवलोकनिकौ सहि सकत न सौंह तिहारी ।।टेक
लियें गुलाल कर जब देखौं तब डर लागत जिय भारी ।
मति यह आनि परै अँखियनमें अनाचकी अँधियारी ।।१
पहिले ही रँगि रह्यौ प्रेम-रङ्ग पुनि तुम केसरि डारी ।
कहा कहौं यह प्रीति रावरी अद्भुत रीति निहारी ।।२
मधु डोलनि हो हो बोलनि पर प्रान करौं बलिहारी ।
श्रीहरिप्रिया बसी हियमें छबि टरत नहीं छिन टारी ।।३।।४७

अनाचकी=अचानक । रावरी=आपकी ।

।। दोहा ।।

हे श्यामा प्यारी आप मेरी प्रार्थना को सुनें । गुलाल को मेरी आँखों से बचा कर डालें । क्योंकि इस के पड़ने से आपके दर्शनों में अन्तरा पड़ेगा जिसको मैं आप की सोंह खाकर कहता हूँ मैं सहन नहीं कर सकता हूँ ।

।। पद ।।

हे श्यामा प्यारी आप सुनें, मेरी आखों से गुलाल को बचाकर डालें । मैं आप की सौगन्ध खाकर कहता हूँ आपके मुखारविन्द के देखने का अन्तरा मैं सहन नहीं कर सकता हूँ । जब मैं आपके हाथों में गुलाल देखता हूँ तब मुझको बड़ा डर लगता है । कभी ऐसा न हो यह मेरी आखों में अचानक अन्धयारी रूप आ पड़े ।।१।। आपके प्रेम रंग से मैं पहिले ही रंग रहा हूँ (कह्यौ प्रेम को पीत जो रंग—तालिका) फिर और केशर के

रंग को डालके उस प्रेम को और गाढ़ तर आपने कर दिया है (केशर रति रंग-तालिका)। आपकी प्रीति का मैं क्या वर्णन करूँ। इस प्रीति की रीति अद्भुत प्रकार की देखने में आती है ॥२॥ आपकी लटकीली चाल से चलने पर और होहो बोलने पर मैं अपने प्राणों को वलिहारी करता हूँ। श्रीहरि कहते हैं श्रीप्रिया की यह छवि मेरे हृदय में वसी हुई है एक छिन के लिये भी टारी नहीं टर सकती है ॥३॥

॥ दोहा ॥

सरस कुंज सँग सहचरी सखी सहेली बाम।
रसबोरी होरी दोऊ खेलहिं गोरी स्याम ॥

॥ पद ॥४८॥

होरी खेलहिं रसबोरी साँवरे संग स्यामा गोरी।
सरसकुंजमें सखी सहचरी मनमोहनी सोहनी ॥टेक
आनँदभरी रति लाड़ गहेली अति अद्भुत अनहोनी।
रसिक हितू की रूप जोवनी चमत्कारिनी भामा ॥१
सुभ सुदरसनी कनकतनी बनी अनुरागिनि अभिरामा।
पिचकरिया भरि केसरि सो कीनी फरिया केसरिया ॥२
तकि सुकुँवरिया ढरिया सुढरनि लै गुलाल लफथरिया।
भीजि भीजि रसरीझि रसिक नैननि सों नैन मिलाये ॥३
बदन बदन भुज भुज भरिकें अरि अरि उरनि अराये।
परस पुलक बस हिलि मिलि झिलि रस रङ्ग अनङ्ग बढ़ावें ॥४
अप अपने दायनि बहु भायनि चायनि चहल मचावें।
उमगि उमगि बातनि बहु घातनि हँसत लसत अनुरागे ॥५
निधनी ज्यों धन पाय न छाँड़त लाड़त लालच लागे।
बाजे अन अन भांति बजावत मधुर मधुर कलराव ॥६
गावत झूमक अति मन भावत उपजावत चित चाव।
इहि विधि नित वृन्दावन बिहरत नित्य बिहार बिहारी।
श्रीहरिप्रिया सिंगार प्रेम की मूरति मङ्गलकारी ॥७॥४८

लफथरिया=लफ+थरिया=थाल में से गुलाल की लफ अर्थात् पसो भरि के। श्रृंगार प्रेम=श्रृंगार रस और प्रेम अर्थात् श्रीमहाभाव की मूरति।

॥ दोहा ॥

सरस कुञ्ज में गौरी श्याम रस में निमग्न होकर होरी खेल रहे हैं। इस समय इनके साथ सखी सहेली सहचरी सुन्दरी तथा मञ्जरि आदि सब बामाएँ हैं।

॥ पद ॥

श्रीश्यामा गौरी अपने प्यारे साँवरे के साथ रस में निमग्न होकर सरस कुञ्ज में होरी खेल रही हैं। इनके साथ रसिक दम्पति के मनको मोहन करने वाली सलोनी सखी सहचरियाँ हैं जो आनन्द में भरी हुई हैं और अति अद्भुत अनहोने रति विलास के लाड़ से रसिक दम्पति को लड़ाने वाली हैं ॥१॥ रसिक लालने केशर की पिचकारी भरिके उन लाड़िलीजी पर छोड़ी जो हितु सखी जी की रूप यौवनी चमतकारिणी भामा हैं जिन का शुभ दर्शन है और जिन सौभाग्यवती अनुरागिनी का रूप अभिराम है। उस केशर भरी पिचकारी से अपनी प्यारी की फरिया केशरी बनादी। इसके बदले में प्यारीजू ने लालको तक करि सुन्दर ढंग से उनपर ढरिके थाल में से गुलाल की पस्सो भरिके अपने प्यारे के मुख कमल पर अच्छे ढंग से लगा दिया ॥२॥३॥ एवं प्रकार से दोनों रंग गुलाल से भीजकर परस्पर नैनों से नैन मिलाने लगे फिर हृदय से हृदय मुख से मुख मिलाकर गाढ़ आलिंगन किया ॥४॥ इस तरह से परस्पर मिलने से दोनों के अँगों में प्रेम के अष्ट सात्विक रोमाञ्चादि उदय हो गये और दिव्य काम सम्बन्धी रस रंग बढ़ गये फिर ये अपने अपने दावसे चावयुक्त रति रस केलि खेल मचाने लगे ॥५॥ परस्पर बात चीत करते हुए उमंग उमंग करि परिहास करते हुए अपनी अपनी घात देखकर विलास करने लगे। जैसे निर्धनी को धन मिलने से वह उसे नहीं छोड़ता है इस तरह से परस्पर लाड़ करने में ये दोनों लालायित हैं ॥६॥ इस समय आपके आभूषणों से भान्ति भान्ति के बाजे बज रहे हैं जिन सें मधुर मधुर स्वर के शब्द हो रहे हैं। और ये दोनों मन को लुभाने वाला झूमक राग गा रहे हैं जो इनके चावों को और वृद्धि कर रहा है ॥७॥ इस विधि से ये नित्य विहार विहारिनि नित्य श्रीवृन्दावन में विहार करते रहते हैं। श्रीहरि प्रिया सखो जो कहती हैं ये दोनों श्रृंगार रस और साक्षात् महाभाव की मंगलमयी मूर्तियाँ हैं ॥८॥

॥ अनुरागिनि गौरमुखी मध्याभास ॥

(अथ डोल)

॥ दोहा ॥

आवहु री गुन गाइये मिलि अनुरागिनि टोल।
झुलवहिं लाल लड़ाय के लाड़ लड़न को डोल॥

॥ पद॥४६॥

आवहु री मिलि डोल झुलावें। लाड़लड़न को लाड़ लड़ावें॥
तन मन की अभिलाष पुरावें। अति आनन्द उछाह बढ़ावें॥१
निज निज रुचि सिंगार सजावें। निरखि निरखि छबि नैन सिरावें॥२
स्यामा स्यामहिं सुख बिलसावें। ह्वै ह्वै मुदित हियें हुलसावें॥३
मङ्गल बिमली खेल मचावें। अङ्ग अङ्ग रस रङ्ग रचावें॥४
बिबिध भाँति बाजंत्र बजावें। अनुरागिनि गुन गोरी गावें॥५

॥ चित्रमुखी गौरी ॥

गोरी गोरी गोरी श्रीराधिका मन भावन की भाम।
गोरी गुन गरबीलो साँवरो सोहै सब सुख धाम॥६
गोरी गोरी गोरी श्रीराधिका गोरी,
लाड़ लड़ीली लाड़िली प्रीतम प्रान अधार।
गोरी लाड़ लड़ीलो साँवरौ सोहै सब सुखसार॥७
गोरी गोरी गोरी श्रीराधिका गोरी,
गोरी सहज सलोने दोऊ लला सहज सलोने किसोर।
गोरी श्रीहरिप्रिया हिय में बसो सहज सलोनी जोर॥८

केसरी कुम-कुम नीर भरावें। तनक तनक तनकों छिरकावें॥६
चोवा के रचि चित्र बनावें। अबीर गुलाल कपोल लगावें॥१०
कोमल कमल माल पहिरावें। प्रान प्रीतम को प्रेम पगावें॥११
रीझि रीझि रीझवार रिझावें आनन्द के आसन पधरावें॥१२
मुख मुख सों सनमुख जुरवावें। जुगलचन्द को रहसि रमावें॥१३

कमल कमल एकत करवावें मर्कत मनि कंचन खचवावें ॥१४
मन भावत के भोग भुगावें । सहज सुधाधर सच अँचवावें ॥१५
रचि रचि रुचि की बीरी खवावें । वदन बिलोकि बिलोकि सिहावें ॥१६
करि आरति अँगुरी चटकावें । श्रीहरिप्रिया जू की बलि जावें ॥१७॥४६

डोल किसे कहते हैं ? ग्रन्थकार के शब्दों में :—

"फूल फूल मिलि विहरें जोर । जाहि कहियत हैं फूल हिंडोर ॥

(तालिका) रसिक दम्पति परस्पर अङ्गों से अँग मिलाकर सुरति विलास रूपी हिण्डोरे में झूलते हैं उस को ग्रन्थकार "डोल" या "फूल हिंडोरा" कहते हैं ।

अनुरागिनी गौर मुखी मध्याभास=राग गौरी । मङ्गल विमली खेल=एक प्रकार के खेल का नाम जिसमें सखियाँ परस्पर आनन्द करती हैं जैसाकि "सेवा सुख" में वर्णित है "चरन चरन पर परत एक गति । कर पर कर तारिनि कीयति अति ।" इत्यादि । "मर्कत मणि कंचनन खचावै"=प्रिया प्रीतम के परस्पर अँगों को भिलवावै !

॥ दोहा ॥

हे अनुरागिनी सखी गण आप सब पधारें । हम सब मिलकर लाड़ लड़नको लड़ाय लड़ाय करि भूलाती हुई इनके गुण गान करें ॥

॥ पद ॥

आप सब पधारें । आओ सब मिलकर लाड़ लड़न को डोल झुलावें । एवं प्रकार से अपने अपने मनों की सब अभिलाषाऐं पूरी करती हुई रसिक दम्पति के अति आनन्द और उत्साह को बढ़ावें ॥१॥ हम अपनी अपनी रुचियों के अनुसार युगल का श्रृङ्गार करावें फिर इनको देख देख कर अपने नेत्रों को सिरावें ॥२॥ एवं प्रकार से श्यामा श्वाम को सुख विलसावें और स्वयं मुदित होकर अपने अपने हृदयों को उल्लसित करें ॥३॥ सब मिलकर मङ्गल विमली नामक खेल मचावें जिस से हम सब के अङ्ग प्रत्यङ्गों में रस रङ्ग रच जावें ॥४॥ विविध भान्ति के बाजों को बजाते हुए रसिक दम्पति के गुण गौरी राग में गावे ॥५॥

गौरी चित्रमुखी=गौरी चैती राग ।

गौरी श्रीराधिका मन भांवते प्यारे की भामा हैं । अपनी प्यारी गौरी के गुणों से गरवीलो श्रीसाँवरो प्यारो है जो सब सुखों के धाम स्वरूप है ॥६॥ लाड़ लड़ी श्री लाड़लीजू हैं जो प्रीतम की प्राण आधार स्वरूपा है और लाड़ लड़ीलो श्रीसाँवरे हैं जो

सब सुखों के सार स्वरूप हैं ।।७।। लाल किशोर और गोरी दोनों सहज सलोने हैं। श्रीहरिप्रिया सखीजू प्रार्थना करती हैं कि यह सलोनी जोरी मेरे हृदय में सदा निवास करती रहे ।।८।। श्रीराधिका गौरी केसर कुमकुम के जल को पिचकारी में भराती हैं फिर अपने प्यारे पर तनक तनक छिरकती हैं ।।६।। चोवा के चित्र बनाती हैं और अबीर गुलाल को अपने प्यारे के कपोलों पर लगाती है ।।१०।। प्राण प्यारी कोमल कमल माल अथवा कोमल कमलों की माला सरीखे अपने हस्त कमल को अपने प्यारे के गले में धारण कराती हैं एवं प्रकार से प्राण प्रीतम को प्रेम में पगाती हैं ।।११।। इस तरह से सखियां आप रीझकर अपने प्यारे रीझवार को रीझाती हैं फिर उनको सुख आसन पर पधराती हैं ।।१२।। फिर रसिक दम्पति के परस्पर मुख कमलों को मिलाकर युगल को रहस्य केलि में रमाणे का मनोरथ करती है ।।१३।। कमल सरीखे दोनों के अङ्ग प्रत्यङ्गों को परस्पर इस तरह मिलवाकर विलास कराना चाहती हैं जैसे कञ्चन मणियों में मर्कत मणियाँ खचित हो रही हो ।।१४।। एवं प्रकार से हम दोनों को मन भाँवते भोगों को भुगवावें और परस्पर सहज अधर सुधा रस पान करावें ।।१५।। इस तरह विलास में दोनों की रुचियाँ बढ़ावे मानों यही इन को बीरी अरुगवाना है। फिर इनके मुख कमलों को हम देख देख कर सिहावें ।।१६।। एवं प्रकार से इन का विलास करवाकर हम इनकी आरती करके प्रसन्न होकर अपनी अँगुरियाँ चटकावें (यह एक प्रसन्नता की प्रतीक है) इस तरह से हम श्रीहरि एवं प्रिया की बलिहारी जावे ।।१७।।

।। दोहा ।।

अति अनुराग भरे हिये किये नखसिख सिंगार।
डोल सुबरनी पर दोउ झूलहिं परम उदार ।।

।। पद।।५०।।

दोउ झूलहीं डोल सुबरन की।
अति मन फूलहीं बलि जाउँ चरन की ।।
चरन की बलि जाउँ अलि अरुनई तरुवनि की लसी।
चारु अँगुरिन नखनिमनि की जोति जगमग जिय बसी ।।दो०।।१
अनवट नग जरे बिछिया बाजने।
पद पत्र छबि भरे नूपुर छाजने ।।
छाजने नूपुर पद दुहूं पर परे जेहरि पायलें।

ललित लहँगा कलित कृस कटि कस्यो सहचरि चाय लै ॥दो०॥२
नीवी बंधन डोरी किंकिनि कनक की।
रतन जटित रस बोरी बिरची बनक की ॥
बनक की बिरची कुचन पर खची कंचुकि रसरली।
हार हीर हमेल चौसर चन्द्र चौकी चपकली ॥दो०॥३
दुलरी अरु तिलरी माला मोहनी।
सुढरी अमरलरी कंठ श्री सोहनी ॥
सोहनी कण्ठ श्री सुहावनि बाँहु बाजूबन्ध बने।
झबझबी अति फबी चूरी कंकन पहुंची पछिमने ॥दो०॥४
कर कर पान साजैं सुन्दरी।
रतन बिधान सोहैं मुन्दरी ॥
मुन्दरी अँगुरिन सोहैं मोहैं मन नख-आवली।
सहज रङ्ग पुनि रँगि महावरि तैसिय रगमगी करतली ॥दो०॥५
चिबुक दिठौनी सोहैं सानकी।
सुभग सुठौनी दुति अधरान की ॥
अधरान की दुति दसन दमकनि चौका चमकनि मन हरैं।
करन फूल कपोल अलकें झलकें लखि लोयन ढरैं ॥दो०॥६
बरनासा बेसरि मोती की बनी।
अँखियाँ रसभरी चंचल चितवनी ॥
चितवनी चंचल बनी अंजन अंजिता मन रंजनी।
बरुनी पाँति न जाति बरनी भौंहें सब सुख संजनी ॥दो०॥७
इंगुर की सुरकी बेंदी जराय की।
लटकनि मनि रुरकी आड सुहाय की ॥
सुहाय की आड़ चाड़ सो लै बाँधी लाड़ लड़ी लिड़ी।
ललित लाल लगी लर मुक्तानि माँग अड़ी लिड़ी ॥दो०॥८
बनी चन्द्रिका मूल सुभ सिरफूल कें।

चन्द्र बदन अनुकूल कूल दुकूल कें ॥
दुकूल कें कूल सोहैं सुनहरी सारी किनारी रँग सुही ।
कच सचिक्कन सचे सुचैनी बेनी मृगनैनी गुही ॥दो०॥९
तैसेई बने बिहारी अंग अंग छबि भारी ।
मुकट लटकनि महारी चटकनि चंद्रिका री ॥
चंद्रिका री चटकि रहि कछु कहि परै नहिं चहचही ।
नगन निर्मित जोति जगमग लगी कलँगी लहलही ॥दो०॥१०
तुर्रा सुनहरी तारन को सोहै ।
अति छबि छहरी मन कौं मोहै ॥
मोहै मन को लरी-मोतिन लगी लटकनि लाल सों ।
आड कनक ललाट ऊपर बनी बनक बिसाल सों ॥दो०॥११
भौंहैं सोहनी आँखें अनियारी ।
हित की जोहनी हिय की हरनिया री ॥
हरनिया री हीय की बनी नथनिया मन मथन की ।
बड़ड़े मोती अग्र ता के नाहिं उपमा कथन की ॥दो०॥१२
गोल गोल कपोल अति रस सों भरे ।
तिन पर कुण्डल लोल अलकनि सों अरे ॥
अरे अलकनि नग जरे जगमगहिं श्रवन सुहावने ।
रदन छद रदबदन में सुख सदन मदन मुहावने ॥दो०॥१३
ठोड़ी गाड़ सुदेस मृगमद की कनी ।
सोहत अतिहि सुबेस बर बानिक बनी ॥
बनी बानिक कण्ठ कौस्तुभ-मनी मनि-मुक्तावली ।
बसी उर उरबसि कसौंभी कंचुकि पर हीरावली ॥दो०॥१४
करन कनक केयूर कटक पहुँची फबी ।
छला छगुनियाँ पूर नखनमनि की छबी ॥
छबी मनि की अति फबी कटि निकट पटका जरकसी ।

दुहु ओर छुटि रहे छोर अतिहिं मरोर बंसी बर कसी ॥दो०॥१५

कांची कंचन की कटि सोहत सु घटी।
पटी रतनन की रुचिर चुन्नी जटी॥
जटी चुन्नी विचित्रता सों मुक्तजाला जगमगें।
मखतूल फूंदनि अति फबी छबि देखि छबि छबि डगमगें ॥दो०॥१६.

सुथरी सूथन पाँय नूपुर आभरन।
नखमनि अरुन सुहाय तैसेइ पद तरन॥
पदतरन तैसेइ बरन के पुनि रँगे रंग महावरी!
नख तें सिख सिखते नखैं छबि फबी गोरी साँवरी ॥दो०॥१७

मन्द मन्द मुसकात भुज अँसन दियें।
करत परस्पर बात अति अनुराग हियें॥
हियें अति अनुराग सहचरि राग गौरी गावहीं।
तुंगविद्या की सखी मधुरा मृदङ्ग बजावहीं ॥दो०॥१८

नृत्य करत मन भाँवत नीरजनैंनी।
अबीर गुलाल उड़ावत सैनाबैंनी॥
सैनाबैंनी कै कै केसरि कुमकुमौ छिरकावहीं।
अति सुगन्धिक अरगजा लै लज्जा तजि मुख लावहीं ॥दो०॥१९

कौतुक बढ्यौ अपार कहत नाहीं बनै।
दोउ परम उदार अति रस में सनै॥
सने रस में दोउ नागर नव किसोर किसोरी।
जय जय श्रीहरिप्रियाजू की रहौ अविचल जोरी ॥दो०॥२०॥५०

॥ दोहा ॥

हृदय में अत्यन्त अनुराग भरे हुए एवं नख से लेकर शिखा पर्यन्त समस्त श्रीअङ्ग में शृङ्गार किए हुए अति उदार श्रीयुगल वर स्वर्ण निर्मित डोल में झूल रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीयुगल मणि स्वर्ण रचित डोल में झूल रहे हैं। तथा मन ही मन अत्यन्त मुदित हो रहे है। मैं इनके चरणारबिन्द की बलि जाती हूँ। हे सखी, मैं श्रीप्रिया जी

की चरणारबिन्द की बलि जाती हूँ। जिन चरण युगल के तलवों की अरुणिमा विशेष शोभा युक्त है ।। श्रीकिशोरी जी के चरणों की सुन्दर अंगुलियाँ हैं, उनको मणि सदृश नखों की जगमगाती हुई ज्योती हमारे हृदयों में बसी हुई है। इनके अनवत (सुन्दर) नगों से जड़े हुए हैं। बिछुवा मुखरित हो रहे हैं, पदपान अति मनोरम है। एवं नूपुर मधुर ध्वनी पूरित है। इन सुन्दर नूपरों के साथ दोनों चरणों में जेहर और पायल भी सुशोभित है।

सहचरियों ने अत्यन्त चाव से इनके सुन्दर कटि प्रदेश में सुललित लहङ्गा पहनाया है। नीवी बन्ध (नाड़ा) और स्वर्ण रचित करधनी शोभायमान है। रत्नों से जड़ी हुई शब्द रस से भरी हुई एवं कलात्मकता से परिपूर्ण है। इस प्रकार विशेष बनाववाली आनन्ददायी कंचुक कुचयुग्म पर कसी हुई है। होरी का हार, हमेल चौसर, चन्द्र चौकी, चंपकली, दुलरी मनोहरतिलरी और सुन्दर रचना युक्त अमर लड़ी ये सब आभूषण कण्ठ श्री से सुशोभित हो रहे हैं। कण्ठ की सुन्दरता के समान ही सुहावने बाजु बन्दों से बाहुओं की सुन्दरता हो रही है। झमझमाती हुई चूड़ियां छवि पूरित कंकण और पछिमणि (चूड़ियों के पीछे धारण किए जाने वाले कंकण) से अलंकृत है।

हाथ में सुन्दर हथ फूल सजा हुआ है। और मुँदरी रत्न खचित है। अंगुलियों में मुंदरिया शोभायमान है। नखों की पंक्तियाँ मन को मोहित कर रही हैं। यह नख पंक्ति स्वाभाविक रूप से ही अरुणाभ है उस पर भी मेंहदी का रंग और चढ़ गया है। उसी भाँति हथेलियाँ भी स्वाभाविक लाल है मेंहदी से विशेष लालिमायुक्त हो गई है। चिबुक पर का बिन्दु अत्यन्त उत्कृष्टता से सुशोभित हो रहा है। अधरों की कान्ति भी अति सुहावनी और सुभग है।

अधरों की कान्ती दन्तावलि की दमक और चोका की चमक मन को हरण करने वाली है। कानों में कर्णफूल और कपोलों पर लटकने वाली अलकावली बरबस नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। नासिका पर सुन्दर मोती की वेसर शोभायमान है। आनन्द से परिपूर्ण और चपल चितवन वाले नेत्र अंजन से रंजित होकर चित्त को आकर्षित किए ले रहे हैं। बरोनी की पंक्ति का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता और भौंहें सब सुखों की सृष्टि करने बाली है। भाल पर ईगुंर की लालिमा जड़ाऊ वेंदी और मणिमय लटकनों से सुन्दर आड़ सुशोभित है। यह 'आड़' लाड़ लड़ी की किशोरी ने सौभाग्य का प्रतीक होने के कारण विशेष चाव से बान्धा है।

मांग में लाल और मोतियों से बनी सुन्दर लड़ी शोभा दे रही है। शीश पर

चन्द्रिका और उसके मूल में शीश फूल की छटा हो रही है। श्रीकिशोरी जी चन्द्रवदन के समान ही मनोहर ओढ़नी धारण किए हुए हैं। इस ओढ़नी के दोनों कनारे तो अति ही सुन्दर है। इनकी सुनहरी साड़ी की कसूंभी (लाल) रंग की किनारी बड़ी अच्छी फब रही है। चिकने काले केशों को सजा कर मृगनैनी सखी ने उनकी जो बैनी गुही है। वह अतिशय आनन्द प्रदायिनी है।

॥ अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

कमल नैन कर कमल लियें हिलि मिलि रङ्ग रसाल।
झुलवहिं ललना झूलहीं अति रस रङ्गी लाल॥

॥ पद ॥४८॥

झूलत लाल झुलावत ललना अति रस रङ्ग रह्यो डोल।
अङ्गनि अङ्ग उमङ्ग तरङ्ग अनङ्ग प्रवाह बह्यो डोल॥
कमल नैन कोमल कर सुन्दर कमल लिये डहडह्यो डोल।
श्रीहरिप्रिया हित हिलन मिलन कौ सुख नहिं जात कह्यो डोल।५१

शब्दार्थ

अनुरागिनी विचित्र शोभा मध्याभास=राग विहाग हिलि-मिल=हिल मिलकर अर्थात् श्रीप्रियाजी के अङ्गों से अङ्ग मिलाकर। रङ्ग-रसाल=प्रगाढ़ प्रेम के रङ्ग में डूबे हुए। ललना=श्रीप्रियाजी। अतिरस-रंगी=दिव्यप्रेम-रस में रंगे, निपट-रस-लोभी। डोल=सामान्य अर्थ में डोल को हिण्डोला या झूला कहते हैं जो स्वर्ण का या फूलों का बना होता है, किन्तु यहाँ डोल का रहस्यात्मक अर्थ है।—सुरति विलास रूपी हिण्डोला या झूला जिस पर श्रीप्रियाप्रियतम परस्पर अङ्ग से अङ्ग मिलाकर झूलते हैं। अनङ्ग-प्रवाह=काम (प्रेम) का उद्दीपन या वेग। डह-डह्यौ=प्रफुल्ल मुद्रा।

॥ व्याख्या ॥

॥ दोहा ॥

(सुरति-विलास रूपी डोल में विराजमान) प्रगाढ़ प्रेम के रङ्ग में डूबे कमल नयन श्रीश्यामसुन्दर श्रीप्रियाजी के कर कमल को अपने हाथ में लेकर परस्पर अङ्ग से अङ्ग मिलाकर दिव्य केलि क्रीड़ा में संलग्न हैं। (इस वैपरीत्य-रस-केलि में) श्रीप्रियाजी निपट-रस-लम्पट (किंवा दिव्य-प्रेम-रस-रंगी)श्रीलालजी को—(मन्द-मन्द झोंका देकर)

झुला रहीं हैं और श्रीलालजी झूल रहे हैं।

॥ पद ॥

सुरति-विलास के रङ्ग में रँगे स्वर्ण हिण्डोले पर विराजमान श्रीलालजी श्रीप्रियाजी के साथ झूला झूल रहे हैं और श्रीप्रियाजी [मन्द-मन्द झोंकों से] उन्हें झूला रही हैं। उनके अङ्ग–प्रत्यङ्ग से काम जन्य छटा की दिव्य तरङ्गें फूट रही हैं और डोल में झूलते हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो वे अनन्त-प्रेम के प्रवाह में बहे चले जा रहे हैं। कमल नयन श्रीश्यामसुन्दर श्रीप्रियाजी के सुन्दर सुकुमार-कर कमल को अपने हाथ में लिए [गलबाहीं डाले] प्रफुल्ल मुद्रा में डोल में विराजमान हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं कि [सुरति विलास रूपी] से दिव्य डोल में विराजमान इन श्रीरसिकदम्पति के पारस्परिक प्रेम-केलि से उत्पन्न सुरत का वर्णन नहीं किया जा सकता ! ॥५१॥

॥ अनुरागिनि धन्यभागा मध्याभास ॥

[फूल डोल]

॥ दोहा ॥

रङ्ग रङ्गीले रङ्ग सों लसौ बसौ हिय मोर।
झूमि झूमि दोउ झूलहीं फूले फूल हिंडोर॥

॥ पद ॥

झूमि झूमि दोउ झूलहीं फूले फूल हिंडोरे।
रङ्ग रँगीले रङ्ग सों झूलहीं फूले फूल हिंडोरे॥

अलबेले आनन्द में। फूले० लागि लागि अङ्ग अङ्ग सों ॥झूलहीं फूले०
मोहन मनके भाँवते। फूले० लटकि छबीली भाँति सों ॥झूलही फूले०
ललित लता तापिच्छ सों। फू० लहलहाति लहकाँतिसों ॥झू० फू०
कमल कमल मिलि केलहीं। फू० जुही जुहीनि जुरायकें॥ झू० फू०
चम्पक मधु कुन्द केतकी। फू० रायबेलि चितचायकें॥ झू० फू०
मालति महकति मोगरें। फू० मौलसिरी चम्बेली सों॥ झू० फू०
बिम्बन बिम्ब बिहारहीं। फू० रहनि निवारी नवेली सों॥ झू० फू०
करना करनाभरन में। फू० फबे फूल फूल फाल सों॥ झू० फू०
बोलत कोकिल कलरवा। फू० कोमल कंठ रसालसों॥ झू० फू०

चकित चकोरी सहचरी । फू० निरख बदन-बिबि-चंद्रमा ॥झू० फू०
बंक बिलोकनि रसभरी । फू० तैंसिय रसभरी तन्द्रमा ॥ झू० फू०
लाड़लड़ीले लाड़िले । फू० लाड़ लड़ावत लाड़सों ॥ झू० फू०
हितू बसौ मेरे हियें । फू० श्रीहरिप्रिया चित चाड़सों ॥ झू० फू० ॥५२

॥ शब्दार्थ ॥

अनुरागिनी धन्यभागा मध्याभास=रागधनाश्री रँग-रँगीले=प्रेम के रङ्ग में रङ्गे । लसौ=शोभायमान । रंगीले=रसिक, प्रेमी । फूले-फूल हिंडोरे=फूल-डोल पर प्रफुल्ल मुद्रा में । अलबेले=बाँके, छैल छबीले । ललित-लता=सुन्दर लतिका । तापिच्छ=श्याम तमाल लहकाँति सों=प्रफुल्ल मुद्रा में या उमंग के साथ । कमल कमल मिलि=परस्पर मुख कमल या हृदय कमल मिलकर, केलहीं=क्रीड़ा करते हैं । जुही-जुहिनि जुराइकें= जुही का अर्थ है जुहा का पौधा या जुही का फूल जो चमेली के फूल के समान होता है । जुहानि=जोहनि या जोहना जिसका है अर्थ देखना 'जोहनि जुही मानिये सही' [महा०] जुराइकें=मिलाकर या जोड़कर । चम्पक=चंपा का पेड़ या फूल जो हल्के पीले रङ्ग का होता है पर यहाँ इसका प्रतीकार्थ 'चंप बरन पुनि नासा लहिये' [महा०] अर्थात् चंपा का फूल नासिका या उसके वर्ण [रंग] के अर्थ में प्रयुक्त होता है । मधु=मकरन्द या मधुक-पुष्प जिसकी उपमा कपोलों से दी जाती है 'मधुक सुमन संज्ञा कपोल की' [महा०] कुन्द=एक प्रकार का पौधा जिसके पुष्प जुही के समान होते हैं [छोटे-छोटे पुष्प होते हैं] काव्य में दन्तपंक्ति से इसकी उपमा दी जाती है—'रद-कुंदहि जानो' [महा०] केतकी= केवड़ा । महावाणी में केतकी की उपमा श्रीप्रिया-प्रियतम की पिंडरियों से दी गई है । 'कही केतकी पिंडुरी रूप [महा०] । रायबेलि=एक पौधा या उसकी लता जिसमें सुगन्धित पुष्प आते हैं पर यहाँ यह शब्द श्रीप्रियाप्रियतम की 'रुचि' के लिए प्रयुक्त हुआ है—'रायबेलि सोई रुचि मानों ।' [महा०] चितचाय=मन की अभिलाषा । मालती= एक प्रकार की सुगन्धित फूलों वाली बेल पर यहाँ 'आलिगन' के अर्थ में प्रयुक्त है । जैसे 'मल्लि मालती संज्ञा लही ।' [महा०] 'आलिंगन चुम्बन जोवहीं ।' मोगरा=एक प्रकार का सुगन्धित पुष्प जो आकार प्रकार में रायबेल के पुष्प से कुछ बड़ा होता है, उसे बड़ा बेला भी कहते हैं । यह भी उपर्युक्त अर्थ में ही यहां प्रयुक्त हुआ है । मौलसिरी=एक प्रकार का बड़ा सदाबहार पेड़ जिसमें छोटे-छोटे सुगन्धित पुष्प आते हैं पर यहाँ यह 'भाल' या ललाट के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—'मौलसिरी सो भालहि जानों' [महा०] चमेली=एकलता जिसमें सफेद सुगन्धित फूल लगते हैं । पर यहाँ 'पदाग्र' की सुन्दरता

के लिए आया है—'चारु पदाग्र चमेली कही' [महा०] बिंब=एक फल जिसे कुँदरु कहते हैं, लाल-पका हो जाने पर बड़ा सुन्दर दिखाई देता है पर स्वाद में बड़ा ही कड़ुवा होता है। बीच से चीर देने पर दोनों फाँकें बड़ी ही सुन्दर लगती हैं—इसी लिए इसकी उपमा यहाँ श्रीप्रियाप्रियतम के 'अधरों' से दी गई है 'अधर बिम्ब' निवारि=निवाड़ी, यह जूही की जाति का एक पौधा होता है, जिसमें सुगन्धित पुष्प लगते हैं, किन्तु यहाँ यह श्रीप्रिया प्रियतम के सुरति-समय में उनके मुख कमल से निकले नाना प्रकार के नये नये वर्णों के उच्चारण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—'नाना बरन उचारन जोई। कही निवारि- नवेली सोई।' (महा०)। करना भरना=अङ्क या क्रोड़ में लेना। फले=शोभायमान। फूल-फूल-फालसो=अनेक प्रकार के फूलों के गुच्छों से युक्त पर यहाँ प्रतीकार्थ में इच्छित काम हो जाने से प्रफुल्ल मुद्रा में विराजमान। अर्थात् उनके अङ्ग-प्रत्यंग ही मानो नाना प्रकार के फूल हैं जो अनेक प्रकार की उमंगों [आभा] से युक्त हैं। कोकिल-कलटवा=कोयल की मीठी आवाज। रसाती=रसीले–रसभरे। चकोरी=तीतर की तरह का एक पक्षी जो चन्द्रमाकी ओर एकटक दृष्टि से देखता रहता है। बिबि=युगल। बंक बिलोकनि=बाँकी चितवन। रसभरी=प्रेम युक्त। तंद्रमा=तंद्रिल अवस्था अर्थात् अर्ध-निद्रा युक्त आलस्य से भरे। चाड़=चाल या प्रेम।

प्रस्तुत पद में 'फूल डोल' का वर्णन किया गया है। फूल–डोल फूलों से बना होता है, जिस में श्रीप्रियाप्रियतम नाना प्रकार के सुगन्धित फूलों से अपने अङ्ग-प्रत्यंगों का शृंगार कर विराजमान होते हैं। रहस्यात्मक अर्थ में 'फूलडोल' सुरति रूपी हिण्डोले को कहते हैं।

व्याख्या :—

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम प्रफुल्ल मुद्रा में [सुरतिरूपी[फूलडोल पर सगर होकर [परस्पर झोंका देते हुए) झूम-झूम कर झूला झूल रहे हैं। वे प्रेम के रङ्ग में डूबे हुए प्रेम की ही प्रतिमूर्ति के समान शोभायमान लग रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरि कहती हैं कि यह युगल रस मूर्ति सदा मेरे हृदय में बसी रहे।

॥ पद ॥

(सुरति रूपी) फूलडोल में विराजमान श्रीप्रियाप्रियतम प्रेम के रङ्ग में रंगे प्रफुल्ल मुद्रा में झूम-झूम कर झूला झूल रहे हैं। वे बांकी अदा से एक-दूसरे के अङ्ग प्रत्यंगों से लिपट-लिपट कर झूमते हुए झूला झूल रहे हैं। श्रीप्रियाजी के मन की बात को जानने वाले श्रीलालजी भावभीनी मुद्रा में श्रीप्रियाजी का अवलम्ब लेकर लटके हुए बड़े ही

शोभायमान लग रहे हैं। जिस प्रकार स्वर्णलता श्यामतमाल से लिपट कर शोभित होती है, ऐसे ही ये श्रीप्रिया प्रियतम एक दूसरे से लिपटे हुए अपने अङ्ग-प्रत्यंग की अपूर्व कान्ति से जगमगा रहे हैं। उनके इस अपूर्व मिलन में कमल के समान उनके सुन्दर हृदय, जुही की मदमाती गन्ध के समान हृदय का वेधन करने वाली उनकी दृष्टि,चंपाके समान उनकी सुन्दर नासिका, मकरन्द के समान उनके सुन्दर कपोल, कुन्द के समान उनकी सुन्दर दंतावली, बिंबफल के समान उनके सुन्दर अधर, मौलसिरी के समान उनके सुन्दर ललाट, केतकी के समान उनकी सुन्दर पिंडरियां, तथा चमेली के समान सुन्दर उनके पदनख परस्पर मिलकर बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। वे अपने मनकी अभिलाषा की पूर्ति हेतु मालती और मोगरा की महक के समान परस्पर मिलकर एक हो जाते हैं, फिर भी उनकी मिलन-रुचि रायबेल की सुगन्ध के समान बढ़ती ही जाती है। इस प्रेमालिंगन की मुद्रा में वे कभी चटकती हुई निवाड़ी की कली के समान सुरति समयके नये सुन्दर वर्णों का उच्चारण करने लगते हैं, तो कभी प्रेमावेश में आकर एक दूसरे को अपना गोद में भर लेते हैं। इस प्रकार उनका अङ्ग-प्रत्यंग नई-नई उमंगों से भरकर प्रफुल्लित दिखाई दे रहा है। झूला झूलते वे अपने सुन्दर सुकुमार कण्ठ से कोयल की मधुर ध्वनि के समान रसभरी सुरीली तान छोड़ने लगते हैं। इस विचित्र प्रेमालाप के समय श्रीयुगलवर के मुखचन्द्र की छटा का चकोरी की भांति निर्निमेष दृष्टि से पान करती हुई सखी-सहचरियां आश्चर्य से भर जाती हैं। इस प्रकार-श्रीलाड़िलीलाल प्रेममयी अलसायी मुद्रा में प्रेमभरी बाँकी चितवन से पुनः पुनः एक दूसरे को निहारते हुए मानो परस्पर प्रेम का आदान–प्रदान कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं श्रीलाड़िलीलाल की यह बाँकी छवि परम प्रेम से मेरे हृदय में सदैव बसी रहे ॥५२॥

॥ दोहा ॥

झूलें झूलें फूल कें श्रीहरिप्रिया लिय सङ्ग।
नवरङ्गी लाला दोऊ तन बन रगमग रङ्ग ॥

॥ पद ॥५२॥

रङ्गरङ्गीले रगमगे नवरङ्गी लाला।
दोऊ रूपनिधान रगमगे एरी ए नवरंगी लाला ॥

नवतन वृन्दाविपिन में। नव० बिहरत बितन बिधान ॥ रगमगे ए०
सहज सलोने सोहने। नव० सुन्दरवर सुकुँवार ॥ रगमगे ए०

उमंग अङ्ग अङ्ग रङ्गभरे। नव० उर आनन्द अपार ॥ रगमगे ए०
फूल हिंडोरें झूलहीं। नव० कह्यौ न परत हिय हेत ॥ रगमगे ए०
लटकें ललित-लता लियें। नव० लचनि लंक छबि देत॥ रगमगे ए०
मत्त सुधारस पान कैं। नव० तन मन रहि न सँभार ॥ रगमगे ए०
पुलकत प्रेमानन्द में। नव० विचलत बिपुल विचार ॥ रगमगे ए०
मध्यदेस के वेस कौ। नव० बन्धन भयो बिमोच ॥ रगमगे ए०
छके सदा छबि छाकमें। नव० सहरत नहिंन सँकोच ॥ रगमगे ए०
यह झूलो है फूलकौ। नव० याकी रीतिहिं और ॥ रगमगे ए०
दिन दिन राज करौ दोऊ। नव० झूल झूल इहिं ठोर॥ रगमगे ए०
हितू बसौ मेरे हियें। नव श्रीहरि-प्रिया सँयोग ॥ रगमगे ए०
ये नैनन हू नित करो। नव० सुरतसुधा कौ भोग ॥ रगमगे ए० ॥५३

॥ शब्दार्थ ॥

श्रीहरिप्रिय=श्रीलालजी और श्रीप्रियाजी, श्रीहरिप्रियासहचरीजी। नवरंगी= सुन्दर नवल प्रेम से युक्त। तनवन=शरीररूपी वन (धाम और धामी) रगमगे=सराबोर। वितन=कामदेव, (दिव्यप्रेम) विधान=अनुष्ठान, व्यवस्था । सलोने–सोहने=सुन्दर सुहावने। ललित=सुन्दर । लचनि=वलखाती, टूटती। लंक=कटि, कमर। मत्त= उन्मत्त। सुधारस=प्रेमरस या अधरामृत। मध्यदेस=जघन और कटिभाग (जंघा से लेकर कमर से ऊपर नाभि तक का भाग मध्यदेश कहलाता है)। विमोच=खुल जाना। सहरत=विहरत या विहार करना। सुरत सुधा=संभोगरस (प्रेमरस)।

व्याख्या :—

॥ दोहा ॥

परस्पर प्रेम के रङ्ग में रङ्गे (तनरूपी) श्रीवृन्दावन में (सुरतिरूपी) फूल डोल पर सवार होकर श्रीलालजी श्रीप्रियाजी के सङ्ग प्रफुल्ल मुद्रा में झूला-झूल रहे हैं। इस प्रकार (धाम और धामी) दोनों ही नित्य नवीन प्रेम से अनुरञ्जित हो एकमेक दृष्टि गोचर हो रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—'अरी सखी ! अपने अङ्ग-प्रत्यँग में नित्य नवीन

प्रेम को धारण करने वाले, रूप की राशि ये श्रीलाड़िलीलाल नित्य नवल श्रीवृन्दावन में दिव्य प्रेम की अनेकानेक लीलाओं का अनुष्ठान करते हुए कैसे शोभायमान लग रहे हैं ! ये श्रीप्रियाप्रियतम स्वभाव से ही परम कोमल, परम सुकुमार और परम सौंदर्य की सीमा हैं। इनके अङ्ग-अङ्ग नित नई उमंगों से ओतप्रोत रहते हैं और इनका हृदय तो सदैव अपार आनन्द से उमड़ता ही रहता है ! (सुरतिरूपी) हिण्डोले पर झूलते हुए इन श्रीयुगल में परस्पर जो प्रीति बढ़ रही है, वह कही नहीं जाती। सुन्दर लतिका के समान कृषकाय श्रीप्रियाजी का अवलम्ब लेकर जब श्रीलालजी लटक-लटक कर झूला झूलते हैं तो लटकन की इस विशेष मुद्रा में उनकी लचकती-बलखाती हुई कटि बड़ी ही सुन्दर दिखाई देती है। और सखी ! देख तो सही !! परस्पर अधर-सुधारस का पान कर ये दोनों कैसे मदमाते होकर झूम रहे हैं। इन्हें अपने तन-बदन की भी कोई साज-सम्हाल नहीं रही है ! प्रेमातिरेक की अवस्था में ये बार बार पुलकायमान हो रहे हैं। साथ ही अनेक प्रकार की क्रीड़ाएं करते हुए विहार कर रहे हैं। इस (सुरति-समर) में इनके नींवी-बन्धन ढीले पड़ जाने से इनका कटिभाग खुलकर कैसा शोभायमान लग रहा है ! अरी सखी ! ये परस्पर सौन्दर्य-रस का पान करते हुए प्रेम-रस से सदैव परिपूर्ण रहते हैं, फिर तभी निस्संकोच रूपसे विहार करने के लिए निरन्तर लालायित ही बने रहते हैं। श्रीहरिप्रियाजी आगे कहती हैं—हे सखी ! यह श्रीप्रियाप्रियतम का (सुरतिरूपी) फूल हिण्डोल है, इसकी रसरीति कुछ निराली ही है। (मेरी तो बार बार यही कामना है कि) ये श्रीलाड़िलीलाल इस (दिव्य वृन्दाबन) भूमि में इस (सुरतिरूपी) हिण्डोले पर दिन-प्रतिदिन झूम-झूम कर झूलते ही रहें और (एकछत्र) राज्य करते रहें।

श्रीहितूसहचरीजू की मनुहार करती हुई श्रीहरिप्रिया सहचरीजी पुनः कहती हैं कि-श्रीप्रियाप्रियतम का यह संयोग सुख और उनका दिव्य प्रेम सदैव मेरे हृदय में बसा रहे तथा मेरे नेत्रों के समक्ष ही ये इसी प्रकार केलि-क्रीडा का सुख लूटते रहें।

॥ अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

फूल सदन श्रीहरिप्रिया झुलवहिं हिय हुलसाय।
झूलत फूले फूले दोऊ फूलडोल सरसाय ॥

॥ पद॥५४॥

झूलत फूलडोल दोउ प्यारे फूले फूले फूलसदन में।

फूले फूले मुख अम्बुज की फूली सुखमा फूल सदन में ॥
फूली फूली सहचरि गावति सरस राग मिलि फूलसदन में।
फूली फूली श्रीहरिप्रिया लखि हिय हुलसावत फूलसदन में ॥५४॥

॥ शब्दार्थ ॥

अनुरागनि विचित्र शोभा मध्याभास=राग विहागरौ। मुख अम्बुजानि=मुख। कमल। फूली=फैली हुई। सुखमा=सुषमा, शोभा। फूलसदन रंगमहल। श्रीहरिप्रिया= श्रीप्रियाप्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी। हुलसावत=प्रसन्न।

॥ व्याख्या ॥

॥ दोहा ॥

फूलों से सुसज्जित फूल-सदन (रंगमहल) के (सुरतिरूपी) फूल-हिण्डोले में विराजमान श्रीप्रियाप्रियतम उल्लसित हृदय हो परस्पर (झोंका देकर—एक—दूसरे को झुलाते) झूला झूल रहे हैं।

॥ पद ॥

फूलों से सुसज्जित फूल-सदन (रंगमहल) की (सुरति-सेज रूपी) सरस फूल डोल में विराजमान श्रीप्रियाप्रियतम दोनों प्रफुल्ल मुद्रा में (परस्पर झोंका देते हुए) झूम-झूम कर झूला झूल रहे हैं। खिले हुए कमल के समान उनके मुख की शोभा सारे फूल-महल में फैली हुई दिखाई दे रही है। सहचरियाँ उनकी इस अपूर्व शोभा का निकट से दर्शन कर फूली नहीं समा रही हैं। और फूलमहल में एकत्र होकर सबकी सब सुन्दर रसीले गीत गाती हुई उन्हें प्रसन्न कर रही हैं। इन सब सखियों के साथ श्रीहरिप्रिया सहचरी भी फूल-महल में श्रीप्रियाप्रियतम को प्रफुल्ल मुद्रा में फूल डोल पर झूला—झूलते देख प्रसन्न हृदय हो फूली नहीं समा रही हैं ॥५४॥

विशेषः—प्रस्तुत पद में 'अम्बुजन' शब्द श्रीप्रियाप्रियतम के अङ्ग-प्रत्यंगों के उपमान के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे—'श्रीप्रियाप्रियतम अपने हृदय-कमल, मुख-कमल, नेत्र-कमल, करकमल और चरण-कमलों को परस्पर मिला मिलाकर झूला झूल रहे हैं।

॥ दोहा ॥

झूलत फूली लाड़िली किये फूल सिंगार।
प्रीतम फूल झुलावहीं करि करि बहु मनुहार ॥

॥ पद ॥५५॥

झूलत फूली फूली प्यारी प्रीतम फूले फूल झुलावत।
फूलडोल पर फूलभई-सी फूल सिंगार-
सिंगारी यह सुख देखें ही बनि आवत ॥
फूल कमल-कर लियें लाड़िली पिय मनुहार मनावत।
श्रीहरिप्रिया निरखि न्यौछावरि करत फूल-
बलिहारी ज्यों ज्यों फूल न अङ्ग समावत ॥५५॥

॥ शब्दार्थ ॥

मनुहार=खुशामद, विनय। फूलडोल=(सुरतिरूपी हिण्डोला) फूलों से सजा डोल या झूला। फूलभईसी=फूल के समान सुन्दर-सुकुमार। सिंगारी=शृङ्गारी अर्थात् शृंगार करने वाला या जिसका शृङ्गार किया गया हो! बलिहारी=न्योछावर। फूल=प्रसन्नता।

॥ व्याख्या ॥

॥ दोहा ॥

(सुरतिरूपी) फूलडोल पर विराजमान लाड़-लड़ेंती श्रीप्रियाजी फूलों का शृङ्गार करके प्रफुल्ल मुद्रा में झूला झूल रही हैं और लाड़लडैंते प्रियतम नाना प्रकार से श्रीलड़ैंतीजू की खुशामद कर (उनकी आज्ञा प्राप्तकर) उन्हें झूला झुला रहे हैं।

॥ पद ॥

(सुरतिरूपी) फूल-हिण्डोरे में विराजमान श्रीप्यारीजू प्रफूल्ल मुद्रा में झूला झूल रही हैं और प्यारे श्याम सुन्दर बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक उन्हें झुला रहे हैं। इतना ही नहीं, झूला झूलती हुई श्रीप्रियाजी के फूल के समान सुन्दर और सुकुमार श्रीअङ्गों को श्रीलाल जी नाना प्रकार के फूलों के शृंगार से सजा भी रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि शृंगार-समय की यह बाँकी झाँकी तो देखते ही बनती है, कहने में नहीं आती। जब श्रीप्रियाजी श्रीलालजी को अपने सुन्दर-सुकुमार अङ्गों में फूलों का शृंगार करते समय उनका स्पर्श करने से रोकती हैं तो श्रीलालजी श्रीलड़ैंतीजू के सुन्दर-सुकुमार कर कमल को अपने हाथ में लेकर बार-बार उनकी खुशामद करते, मनाते हैं। श्रीप्रियाजी के फूल-शृंगार के समय श्रीलालजी द्वारा की गई इस मान-मनुहार का निकट से दर्शन कर श्रीहरिप्रिया सहचरीजी उन पर नाना प्रकार के पुष्प न्योछावर करती हैं और उनकी बलैया लेती हुई स्वयं बलि-बलि जाती हैं, फूली अङ्ग नहीं समाती हैं। कहने का आशय

यह है कि जैसे-जैसे श्रीहरिप्रिया सहचरीजी अपनी प्रसन्नता (फूल) को उनपर न्योछावर करती हैं, वैसे–ही-वैसी वे और भी फूलती जाती हैं ॥५५॥

॥ अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

फूलमहल फुलवारिमें फूल-सिंगार किये।
श्रीहरिप्रिया बैठे दोऊ फूले फूल हिये ॥

॥ पद ॥५६॥

देखो सखि ! फूलन की फुलवारी।
फूले फूलमहल में बैठे फूलि फूलि पिय प्यारी ॥
फूलन को सिर मुकट बिराजै फूलन माँग सँवारी।
फूलन की किलँगी जगमगि छबि फूलन की चन्द्रिका री ॥
फूलन के आभूषन पहिरें फूलन कंचुकि सारी।
फूलन की अँगिया उपरैना फूलइजार लहँगा री ॥
फूलन सिखर फूलन कौ मंडप फूलन के छाजा री।
फूलन के छबि देत झरोखा अरु फूलनकी जारी ॥
फूलमई सब ठौर ठौर फबि फूलि रही फुलवारी।
फूल चौक में फूल फूल की छूटत फूल फुहारी ॥
फूल सिंहासन आसपास ठाढ़ी फूलि सबै सहचारी।
फूल फूलकी सौंज लिये कर फूलन फूल सिंगारी ॥
फूलन चमर ढुरावति फूली लै फूलन विजना री।
ब्यारत ब्यार सुगन्धन की लपटैं मन हरत महा री ॥
कहा कहौं कछु फूल फूल की सोहैं अति सोभा री।
श्रीहरिप्रिया फूल फूलनपर फूल करौं बलिहारी ॥५६॥

॥ शब्दार्थ ॥

फूल मण्डली=फूलों का समूह, जहाँ फूल ही फूल दिखाई दे रहे हों। अनुरागनि विचित्र सोभा मध्याभास=रागविहागरी। फुलवारि=फूलों की क्यारी। श्रीहरिप्रिया=

श्रीप्रिया–प्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी। फूले=प्रसन्न। किलँगी=कलँगी=मोर के सर पर की चोटी। चंद्रिका=चाँदनी, सरपर धारण करने का एक आभूषण। कंचुकी=अँगिया या चोली। उपरैना=ओढ़ना। फूल इजार=फूल की जाली छाजा=छज्जा। झरोखा=छोटी जालीदार खिड़की, गवाक्ष। जारी=जाली। फुहारी=छोटा फव्वारा। सौंज=सामग्री। चमर=सुरागाय की पूँछ के वालों का चँवर। विजना=पंखा। व्यारत=उड़ाना, डुलाना। व्यार=हवा। सोहें=शोभायमान। बलिहारी=न्योछावर।

॥ व्याख्या ॥

॥ दोहा ॥

फूल महल में फूली हुई फुलवारी के बीच फूल सिंहासन–पर श्रीप्रियाप्रियतम फूलों का शृंगार किए प्रफुल्ल मुद्रा में विराजमान हैं।

॥ पद ॥

श्रीप्रियाप्रियतम के फूल बँगले की शोभा का वर्णन करती हुई श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं :—

'अरी सखी! देख तों सही! ये श्रीप्रियाप्रियतम फूलों का शृङ्गार किए फूल महल की फूली हुई फुलवारी में फूल सिंहासन पर विराजमान कैसे प्रसन्न हो रहे हैं। श्रीलालजी ने अपने सर पर फूलों का सुन्दर मुकुट धारण कर रखा है, जिसमें लगी हुई फूलों की कलगी बड़ी ही शोभायमान लग रही है। उसी प्रकार श्रीप्रियाजी ने भी फूलों से अपनी माँग सम्हाल कर उस पर फूलों की ही चन्द्रिका धारण कर रखी है, जो बड़ी ही सुन्दर लग रही है। साथ ही उनके श्रीअङ्गों पर धारण किए गए फूलों के बने भाँति-भाँति के आभूषण भी बड़े ही सुहावन–मनभावन लग रहे हैं। और सखी, देख तो सही! श्रीजी का जालीदार फूलों की लहँगा, फूलों की कंचुकी और फूलों से ही बनी साड़ी की शोभा तो कहने में ही नहीं आती! इसी प्रकार श्रीठाकुर जी का फूलों का जामा और फूलों का अँगोछा भी बड़ा ही सुन्दर लग रहा है। इतना ही नहीं, सखि, देख तो–फूल महल का शिखर, मंडप और छज्जे भी सब फूलों के ही हैं। इसकी दीवालें भी फूलों की हैं और दीवालों में फूल की जालियों से बने फूलों के झरोखे कितने सुन्दर लग रहे हैं! जिस ओर देखो उसी ओर फूलों ही फूलों की शोभा बिखरी पड़ी है। इसे देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो फूलों की कोई फुलवारी ही फूल रही हो! फूल–महल का आँगन भी फूलों का ही बना हुआ है और इस में बने फब्बारे भी फूलों के ही

हैं जिससे फूलों की ही फुहारें छूट रही हैं। श्रीप्रियाप्रियतम का सिंहासन भी सुन्दर फूलों का बना हुआ है, जिस पर फूलों का शृङ्गार किए श्रीप्रियाप्रियतम प्रसन्न मुद्रा में विराजमान हैं। उनके सिंहासन के आसपास सभी सखी–सहचरियाँ खिले हुए फूलों की भाँति प्रफुल्ल मुद्रा में खड़ी हुई हैं। वे सब की सब अपने हाथों में शृङ्गारोचित फूलों की सब प्रकार सामग्री लिए हुए हैं। उनमें से कोई फूलों का बना चँवर ढुला रही है तो कोई फूलों के बने पंखे से हवा कर रही हैं। पंखे की हवा के साथ उड़ती हुई सुगन्धित फूलों की महंक से सारा वातावरण महं–महं महक रहा है और सखी! इस की महंक के साथ मेरा तो मन ही उड़ा जा रहा है!

अरी सखी! आज की इस अपूर्व शोभा और अपूर्व आनन्द का वर्णन मैं नहीं कर सकती। यह फूल महल और इसकी फुलवारी में फूलों के सिंहासन पर फूलों का ही शृङ्गार कर विराजमान श्रीप्रियाप्रियतम और उनकी यह मनोहारी छटा का भला कैसे वर्णन करूँ? मैं भी बार–बार इन पर अपने फूलों को न्योछावर करती हूँ अर्थात् हे सखी! मेरी प्रसन्नता तो इन श्रीप्रियाप्रियतम की ही प्रसन्नता में है। मैं अपनी प्रसन्नता का बार–बार इन पर न्योछावर करती हूँ।' ऐसा कहकर श्रीहरिप्रिया सहचरीजी प्रमुदित हो उठती हैं ॥५६॥

॥ अनुरागिनि कन्दर्प कामा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

फूल सिंहासन पर दोऊ बनि बैठे अनुकूल।
फूले गरबहिंयाँ दिये अङ्ग अङ्ग फूले फूल ॥

॥ पद॥५७॥

फूले फूल सुभग आसन पर ठनि बैठे बनि री बनि दोउ जन।
फूल समात न गात बात बतरात जात बनि री बनि दोउ जन ॥
फूल-बसन में लसन फूल अनुकूल रहे बनि री बनि दोउ जन।
फूल सरोज वदन के चोजन चढ़े बढ़े बनि री बनि दोउ जन ॥
फूल सकल सुख मूल परस्पर करत केलि बनि री बनि दोउ जन।
श्रीहरिप्रिया निहारि फूल फबि छबि पावत बनि री बनि दोउ जन ॥५७

अनुरागिनि कन्दर्पकामा मध्याभास=राग केदार। अनुकूल=उपयुक्त, सही।

फूले फूल=फूल या पुष्प के समान प्रफुल्ल मुद्रा में। सुभग=सुन्दर। वनिरीवनि= साजश्रृङ्गार करके, वनठन के अथवा दुल्हा-दुलहन की भांति सजे हुए। फूल=प्रसन्नता। गात=शरीर। बतरात जात=वार्तालाप करते हुए फूल वसन=फूल रूपी वस्त्र। लसन= शोभायमान। सरोजवदन=कमलमुख। चोजन=उमंगों। चढ़-बढ़े=भरेपूरे। केलि= क्रीड़ा श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रियाप्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी। फवि=शोभायुक्त सुन्दरता।

॥ अर्थ ॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम दोनों अपनी रुचि अनुसार अपने अपने अङ्ग प्रत्यंगों को उपयुक्त फूलों से सजा कर परस्पर गलबाही दिए प्रसन्न मुद्रा में फूल-सिंहासन पर विराजमान हैं।

॥ अर्थ ॥ पद ॥

अरीसखी ! देखतो सही !!

ये श्रीप्रियाप्रियतम दोनों दूल्हा-दुलहन बनकर फूलों से सजे बजे फूलों के सुन्दर आसन पर प्रफुल्ल मुद्रा में बैठे हुए कैसे शोभायमान लग रहे हैं। ये दोनों परस्पर मीठी मीठी बातें करते हुए बड़े प्रसन्न हो रहे हैं। मधुर प्रेमालाप में फूले अङ्ग नहीं समा रहे हैं। इन दोनों ने अपनी अपनी रुचि अनुसार फूलों के वस्त्र धारण कर रखे हैं जिनमें अङ्ग-अङ्ग की शोभा को बढ़ाने वाले उपयुक्त फूलों को लगाया गया है। अपने ऐसे मन-भाँवत रूप का दर्शन कर दोनों बड़े प्रसन्न हो रहे हैं। उन दोनों के मुखकमल नई-नई उमंगों से भरे हुए कमल के फूल की भाँति खिले हुए बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी आगे कहती हैं—अरी सखी ! इन श्रीयुगलकिशोर की प्रसन्नता ही तो सकल सुखों की मूल है। इनकी परस्पर की केलि-क्रीड़ा और उससे उत्पन्न होने वाली प्रसन्नता ही इनके लिए सारसर्वस्व है। ये श्रीप्रियाप्रियतम दुलहा-दुलहन की भाँति नित-नवीन श्रृङ्गार से युक्त हो (सुरतिरूपी) सुन्दर फूलों की सेज पर परस्पर अङ्ग-प्रत्यंग की शोभा का दर्शन करते हुए सदैव प्रफुल्लित वदन हो शोभायमान बने रहते हैं। इनका यह नित्यविहार निबधि गति से निरन्तर चलाता ही रहता है।

॥ दोहा ॥

फूल बसन पहिरें प्रिया गोरे तन सुख दैन।
दबि दबि खुलि खुलि जात हैं निरखि लाल के नैन ॥

॥ पद ॥५८॥

फबी फूलन की फरिया गोरी कें गोरे गात।
तैसोई लहँगा लहि लावनि लौं ललित लंक लहकात॥
फूलन की अँगिया उरजन पर फूल न अङ्ग समात।
श्रीहरिप्रिया निरखि फूलन छबि दबि दबि दृग खुलि जात॥५८

॥ शब्दार्थ ॥

फूल-बसन=फूलों से निर्मित वस्त्र। पहिरे=धारण किये। गोरे=गौरवर्ण। दवि-दवि=बार-बार बन्द होना। फवी=शोभायमान। फरिया=चुनरी। गात=अङ्ग शरीर। लहि=लहलहाना। लावनि=लावण्य, सौंदर्य। ललित=सुन्दर। लंक=कटि। लहकात=लचकना। अंगिय=चोली। उरजन=उरोज, कुच। फूल=पुष्प, प्रसन्नता। श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रियाप्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाजी ने (श्रीलालजी को) परम सुख प्रदान करने वाले अपने गोरे अङ्ग पर फूलों से बने हुए वस्त्रों को धारण कर रखा है। श्रीलालजी प्रियाजी के ऐसे सुन्दर दर्शन करके अह्लादित हो रहे हैं। आनन्दातिरेक से उनके नेत्र बार-बार खुल रहे हैं और बंद हो रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखी! देख तो सही !! श्रीप्रियाजी के गोरे अङ्ग पर फूलों से बनी चूनरी कैसी फब रहो है! जैसी चूनरी है वैसा ही फूलों से बना लहलहाता हुआ सुन्दर लहंगा श्रीप्रियाजी ने धारण कर रखा है जिससे उनकी सुंदर कटि भी लचकती हुई सी दिखाई देती है। अरी सखी! इतना ही नहीं, श्रीप्रियाजी ने अपने सुन्दर उरोजों को ढकने के लिए सुन्दर फूलों की बनी चोली भी धारण कर रखी है। जिस प्रकार उनका बाह्य अङ्ग फूलों से भरा हुआ है, वैसे ही उनका अन्तर हृदय भी फूलों से फूल रहा है। उनके हृदय की यह फूल (प्रसन्नता) हृदय में समाती नहीं है और मानो वह अङ्ग-अङ्ग से प्रस्फुटित हो रही है।

श्रीहरिप्रिया सहचरीजी आगे कहती हैं कि फूल शृङ्गार से युक्त श्रीप्रियाजी के अङ्ग-अङ्ग की बाँकी-झाँकी कर श्रीलाल के नेत्र बार-बार बन्द हो रहे हैं और खुल रहे हैं। अर्थात् वे अपने नेत्रों में श्रीप्रियाजी की सुन्दर छबि को भरकर बन्द कर लेते हैं,

ताकि कहीं कोई चुरा न ले जाय !

॥ अनुरागिनि आनन्दा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

फूलमई बन लखि गइ तन मन की सब सूल ।
फूलभई उर फूल हौं कहा कहौं सुख मूल ॥

॥ पद ॥५६॥

हौं कहा कहौं सुख फूलमई ।
फूलहिं फूल फबी सब बन में तन मन की सब सूल गई ॥
फूल दिसनि विदिसनि में फूली छिति अम्बर में फूल छई ।
फूल लता द्रुम सरित सरन में खग मृग सब ठां फूल ठई ॥
फूलनिकुंज निलय निकरनि में बरन बरन में फूल नई ।
श्रीहरिप्रिया निरखि नैनन छबि फूलन के उर फूल भई ॥५६॥

॥ इति फूल मण्डली ॥

अनुरागिनि आनन्दा मध्याभास=राग आसावरी । फूलमई=फूलों से युक्त । लखि=देख कर । सूल=पीड़ा फबी=शोभायमान । छित=अंबर=पृथ्वी और आकाश । द्रुम=वृक्ष । सरन=सरोवर । निलय=घट, भवन । निकरनि=समूहों ।

॥ दोहा ॥

फूल-हिंडोरे के समय सर्वत्र फूलों का दर्शन कर श्रीहरिप्रिया सहचरी भी प्रसन्नता भर उठती हैं । वे अपनी प्रसन्नता का वर्णन करती हुई कहती हैं—

हे सखी ! फूलों से भरे श्रीवृन्दावन की शोभा का दर्शन कर मेरे तन-मन की सारी पीड़ा नष्ट हो गई है ! मेरे हृदय में प्रसन्नता छा गई है, अङ्ग-अङ्ग फूला नहीं समा रहा है, मैं अपने हृदय के सुख का, उसकी प्रफुल्लता का कुछ भी वर्णन नहीं कर सकती ।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरीजी आगे कहती हैं :—

अरी सखी ! श्रीप्रियाप्रियतम के फूल-हिण्डोरे और फूल-मण्डली का निकट से दर्शन कर मेरे हृदय में जो सुख की स्थिति बनी है और मेरा हृदय जिस प्रकार से

प्रफुल्लित हो उठा है, उसके सम्बन्ध में भला मैं कैसे-क्या कहूँ ? श्रीवन में जिधर भी दृष्टि जाती है, सर्वत्र फूलों की ही शोभा का दर्शन हो रहा है, जिससे तन मन की सारी पीड़ा समाप्त हो गई है। श्रीवन, में उपवनों में, दिशा विदिशाओं में, पृथ्वी और आकाश में अर्थात् ऊपर-नीचे चारों ओर फूलों का ही सौन्दर्य विद्यमान है। श्रीवन के गुल्म-लता, वृक्ष, सरिता एवं सरोवरों तथा खग-मृग आदि पशुपक्षियों में भी प्रसन्नता का ही साम्राज्य दृष्टि गोचर हो रहा है—मानो सभी श्रीप्रियाप्रियतम के फूलहिण्डोरे का दर्शन कर फूल-फूल कर झूम रहे हों। निकुञ्ज-भवनों के समूह के समूह फूलों से शोभायमान हैं तथा वहाँ के कण-कण में एक नवीन ही प्रकार की प्रफुल्लता का दर्शन हो रहा है। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं कि ऐसे फूल भरे वातावरण में श्रीप्रिया प्रियतम की फूल छबि का अपने नेत्रों से दर्शन कर मेरा हृदय प्रफुल्लता से भर गया है। प्रसन्नता हृदय में नहीं समा रही है।

॥ अथ चन्दन शृङ्गार वैशाख सुदी तीज ॥

॥ अनुरागिनि सुरगांगा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सहचरि सुहृद स्वरूपिनी श्रीहरिप्रिया कें हेत।
चन्दन अङ्ग सिंगार करि बनि बैठे छबि देत॥

॥ पद॥६०॥

कुंजबिहारिनि कुंजबिहारी बनि बैठे चन्दन चित्रसारी।
चंदन अंग सिंगार कियें हियें चंदन सम सीतल सुखकारी॥
घसि चंदन घनसार सुहृदनी करि अरचन चरचे पिय प्यारी।
श्रीहरिप्रिया प्रसन्न बदन की बार बार छबि ऊपर वारी॥६०

अनुरागिनि सुरंग अँगा मध्याभास=राग सारङ्ग। सुहृद=स्नेहशील, स्वरूपिणी= सुन्दर (स्वरूपवान), श्रीहरिप्रिया श्रीप्रियाप्रियतम। चित्रसारी=चित्रशाला। घसि= घिसना। घनसार=कपूर, अर्चन=पूजन, चर्चे=चर्चित, रचित।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम के स्नेह सौजन्य से भरी-पूरी सुन्दर-स्वरूपवान सहचरियों ने [वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया) के दिन] श्रीप्रियालाल की प्रसन्नता के लिए उनके श्रीअङ्गों पर चंदन का शृंगार कर दिया है। इस प्रकार चंदन का शृंगार कर बने-ठने दोनों बड़े ही सुन्दर दिखाई पड़ रहे हैं।

॥ पद ॥

नित्य निकुञ्ज विहारिणी श्रीप्रियाजी और नित्य निकुञ्ज विहारी श्रीलाल (अक्षय तृतीया के दिन) अपने श्रीअङ्गों पर चंदन का शृंगार कर चन्दन से निर्मित चित्र शाला में बने-ठने विराजमान हैं। वे परस्पर चंदन के समान परम सुखदाई एवं शीतलता प्रदान करने अपने हृदय से हृदय लगाकर आनन्दित हो रहे हैं! परम स्नेहशीला सखियों ने कपूर-मिश्रत चंदन घिस कर श्रीप्रियाप्रियतम के श्रीअङ्गों का शृंगार किया है और उसी से उनका पूजन भी किया है। श्रीहरिप्रिया सहचरीजी चंदन का शृंगार कर प्रफुल्ल मुद्रा में विराजमान श्रीप्रियाप्रियतम की मनोहारी छटा का दर्शन कर बार-बार बलिहारी जाती हैं।

॥ दोहा ॥

रद रस चन्दन चित्र करि लेत मदन मन मोहि।
श्रीहरिप्रिया अङ्ग अङ्ग की अद्भुत छबि रहे जोहि॥

॥ पद ॥६१॥

सुन्दरबर बिबि दिवि चंदन के अङ्ग अङ्ग अद्भुत चंदन सोहैं।
चित्रित चित्र विचित्र रदन रस मदन कोटि मन को मन मोहैं॥
तन मन सकल भये सीतल तउ कल नहिं परत हैं परत विछोहैं।
श्रीहरिप्रिया की केलि कलावलि हरखत निरखि सखीजन जोहैं॥६१

रदरस=रतिचिह्न(दंत क्षत)। मदन=काम। श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रियाप्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी। जोहि=देखना। बिबि=युगल, दोनों। दिवि=दिव्य। रदन-रस=दन्त-क्षत रूपीरस। कल=शान्ति। केलि=क्रीड़ा। कलावलि=कौतुक। जोहैं=देखना।

॥ दोहा ॥

दंत-क्षत (रतिचिन्ह) रूपी चंदन से चित्रित श्रीप्रियाप्रियतम का अङ्ग-प्रत्यंग अपूर्व शोभा से जगमगा रहा है। उनके इस दिव्य रूप का दर्शन कर कामदेव का मन भी मोहित हो रहा है।

॥ पद ॥

सुन्दर-शिरोमणि श्रीप्रियाप्रियतम द्वारा चंदन के समान परम शीतल व सुखदाई अपने दिव्य अङ्ग-प्रत्यंगों पर परस्पर किया गया दंत-क्षत रूपी चन्दन का शृंगार अपूर्व एवं अद्भुत लग रहा है। इस प्रकार के चंदन से चर्चित विचित्र शोभा से युक्त हो वे

परस्पर अधररस का पान करते हुए कोटि-कोटि कामदेवों के मनों का भी मन्थन कर रहे हैं। केलि-क्रीड़ा करने से उनके तन-मन सभी शीतल हो गये हैं। अर्थात् मन की सभी अभिलाषाएं पूरी हो गई हैं फिर भी क्षण भर का वियोग भी इन्हें सह्य नहीं हैं। बिछोह की कल्पना मात्र से ये श्रीयुगल वर विकल हो उठते हैं। श्रीप्रियाप्रियतम के इस नित्य केलि विलास का अत्यन्त निकट से दर्शन कर श्रीहरिप्रिया और सहचरीगण परम प्रसन्न हो रही हैं॥

॥ दोहा ॥

आदि अखै तृतीया जु तिथि पूजत ह्वै दोउ आज।
चंदन अङ्ग सिंगार कियें सोहत संग समाज॥

॥ पद॥६२॥

सोहत आज सरस चंदन कौ सुभग सिंगार किये तन में री।
रंगमहल के रायआँगन बिचि विलसत जुगल सखीगन में री॥
आदि जुगादि अखय तृतीया करि पूजत ह्वै दोउ मुदि मनमें री।
श्रीहरिप्रिया की अंग अंग छबि बरनै जो को कवि जनमें री॥६२

सोहत=शोभायमान। सरस=प्रेमयुक्त। सुभग=सुन्दर। रङ्गमहल=केलिकुंज। राय=राज। आदि-युगादि=सर्वोपरि, सर्वाग्रगण्य। अखै=जिसका कभी क्षय न हो। मुद=प्रसन्न। श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रियाप्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी।

॥ दोहा ॥

वैशाख-शुक्ल-तृतीया की तिथि का कभी क्षय नहीं होता है। श्रीप्रियाप्रियतम के नित्य विहार की भाँति यह भी आदि-अन्त से परे है—अक्षय है। अतः श्रीयुगलवर दोनों आज के दिन अपनी मनोकामना की पूर्त्ति कर रहे हैं। वे अपने अङ्ग–प्रत्यंगों पर सुन्दर-सरस-चन्दन का शृंगार कर सखी-समाज से परिसेवित हो बड़ ही शोभायमान लग रहे हैं।

॥ पद ॥

अक्षय तृतीया के दिन श्रीप्रियाप्रियतम अपने–श्रीअङ्गों में चन्दन का सुन्दर शृंगार कर शोभायमान हो रहे हैं। वैसे तो ये युगलवर रंगमहल के राजा हैं अर्थात् नित्य निरन्तर अपने रङ्गमहल में ही क्रीड़ा करते हैं किन्तु आज अपनी अङ्ग–सहचरियों को सुख प्रदान करने के लिए रङ्गमहल के आँगन में ही सखी–जनों के बीच परस्पर नाना प्रकार से विलास कर रहे हैं।

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—हे सखी ! ये श्रीयुगलवर युग-युगों से अर्थात् अनादिकाल से अक्षय तृतीया के दिन इसी प्रकार से विलास करते हुए हम सभी को परम आनन्द प्रदान करते हैं। हे प्रिय सखी ! इन श्रीप्रियाप्रियतम के—अंग—प्रत्यंग की छवि कैसी अपूर्व है। आज तक ऐसा कोई कवि नहीं जन्मा जो इनकी इस छटा का वर्णन कर सके। सखी ! बलिहारी है इनके साज-श्रृंगार की !!

॥ दोहा ॥

अंकमाल दिये लाल दोउ चलत मत्त गज-चाल।
चंदन बिचि बिचि अङ्ग की लहरें उठत रसाल ॥

॥ पद ॥६३॥

जुवजन मनफंदन जगबंदन चंदन ही चंदन तन पहरें।
बिचि बिचि उपजत अतिहीं अनूठी गौर साँवरे अङ्ग की लहरें ॥
अङ्कमाल दियें लाल दोऊ कहुँ चले चलत कहुँ ठमकत ठहरें।
श्रीहरिप्रिया मत्त गजवर ज्यों राखे हैं बाँधि गुनन करि गहरें ॥६३

॥ इति चन्दन श्रृंगार ॥

अङ्कमाल=गलबाँही देकर आलिंगन बद्ध होना। मत्त=मतवाला। गजचाल=हाथी की चाल। रसाल=रसभरी। युवजन=युवती जन। मन-फंदन=मन को फाँसने वाले। अनूठी=अनोखी। ठमकत=ठुमकते हुए। गजवर=गजराज। गुणनकर=हरत कमल रूपी-रस्सी से। गहरें=भली प्रकार कस कर।

॥ दोहा ॥

श्रीलाड़िली लाल परस्पर गलबाँही देकर आलिंगन-बद्ध हो मतवाले हाथी की चाल से चल रहे हैं। चन्दन-चर्चित उनके अंग प्रत्यंगों से काँति की रसभरी तरंगें फूट रही हैं।

॥ पद ॥

युवतिजनों के किंवा सखी भागे पातक रसिक जनों के मन को फाँसने वाले जगत्-वन्दनीय श्रीप्रियाप्रियतम अपने सुन्दर सुकुमार शरीर पर चन्दन ही चन्दन का श्रृंगार धारण किए हुए हैं। उनके गौर, श्याम शरीर पर किए गए चन्दनी श्रृंगार के कारण जहाँ-तहाँ अंग अंग से अपूर्व एवं अनुपम कान्ति की तरंग उठ रही हैं। ऐसे अद्भुत

शोभा से युक्त श्रीलाड़िली लाल दोनों परस्पर गलबहियाँ दिए आलिंगन बद्ध हो, मतवाली चाल से चल रहे हैं। इस प्रकार चलते हुए कहीं–कहीं रुक जाते हैं और ठुमक–ठुमक कर नृत्य करने लगते हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं कि–अरी सखी ! नित्य-विहार रस में लीन यह प्रिया प्रियतम मत्त गजराज की भान्ति निरन्तर मतवाले ही बने रहते हैं। यह तो अच्छा है कि इन श्रीयुगलवर ने अपने हस्त कमल रूपी रस्सी से एक–दूसरे को, भली-भाँति बाँध रखा है। अन्यथा अलग अलग होने से तो ये बेहाल हो जाते और हम सभी को भी बेहाल कर देते।

॥ अनुरागिनि सुरगांगा मध्याभास ॥

(जल विहार)

॥ दोहा ॥

केलि सरूप-सरोर में कंत कामिनी जोर।
वनविहार मिलि जूझहीं नहिं सूझहिं निसि भोर॥

॥ पद ॥६४॥

बन बिहरत कंता कामिनी।
केलि–सरूप–सरोवर में महामत्त मनोहर भामिनी॥
कमलन मार परस्पर जूझत नहिं जूझत दिन जामिनी।
श्रीहरिप्रिया हरषि हिय में ज्यों रस बरषत घन दामिनी॥६४

अथ सुरगांगा मध्याभास=राग सारंग। जलविहार=रसक्रीड़ा। केलि सरूप सरोवरि=क्रीड़ा रूपी सरोवर। जोर=जोड़ी। कान्त कामिनी=श्रीप्रियाप्रियतम। वन-विहार=शरीर रूपी विहार। जूझहीं=सुभट योद्धा की भाँति जोरा–जोरी करते हैं। महामत्त=महामतवाले। भामिनी=श्रीप्रियाजी। कमलन मार=कमल रूपी बौछार (हृदय कमल, मुखकमल, करकमल, पद कमल, आदि को मिलाकर युद्ध करते हैं)। जामिनी=रात्रि। श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रियाप्रियतम अथवा श्रीहरिप्रियासहचरी। घन=मेघ। दामिनी=विद्युत। जलविहार=श्रीप्रियाप्रियतम का सुरत समुद्र में स्नान करना ही जलविहार कहलाता है।

॥ दोहा ॥

क्रीड़ा रूपी सुन्दर सरोवर में कामिनी श्रीप्रियाजी और कान्त श्रीलालजी दोनों परस्पर तन से तन मिलाकर विहार करते हुए सुभट योद्धा की भाँति जूझ रहे हैं। इस

नित्य विहार क्रीड़ा में संलग्न रहने के कारण उन्हें दिन और रात का भी कुछ पता नहीं चलता है।

।। पद ।।

जल विहार (रस-क्रीड़ा) के उद्देश्य से कामिनी श्रीप्रियाजी और कान्त श्रीलाल जी तन रूपी वन के केलिरूपी सुन्दर सरोवर में महामतवाले होकर अपने-अपने मन की अभिलाषा पूरी कर रहे हैं। वे मनोहरभामिनी एक-दूसरे के मनकी भावना को जानते हुए परस्पर हृदयकमल, मुखकमल, करकमल और चरणकमल मिलाकर मानो एक दूसरे पर कमलों की बौछार करते हुए जूझ रहे हैं। इस जोरा-जोरी में उन्हें निशि-भोर का भी कुछ पता नहीं चलता है।

श्रीहरिप्रिया सहचरीजी घन दामिनी स्वरूप श्रीप्रियाप्रियतम के नित्य रस-वर्षण से सिंचित हृदय हो हर्षोल्लास से भर उठती हैं। तत्सुखसुखित्व की भावना से भरा हुआ उनका हृदय इस वर्षा से हरा-भरा हो जाता है।

।। दोहा ।।

जल क्रीड़ा रस रचे दोउ सहज सुभग उर लाग।
सुरत–सरित श्रीहरिप्रिया अतन अङ्ग अनुराग ।।

।। पद ।।६५।।

दोउ जल क्रीड़ा—रस रचे।
स्यामा स्याम सुरत—सरिता में मगन अतन तनक न बचे।
सोहत सहज सुभग उर लागे मरकत कंचन मनि खचे।
श्रीहरिप्रिया विमल वन बरषत निरखत खग मृग मद मचे ।।६५

जलक्रीड़ा=जलविहार या रसक्रीड़ा। रसरचे=प्रेमपगे। सुभग=सुन्दर। सुरत-सरित=विलास रूपी सरोवर। मगन=संलग्न। अतन=तनरहित, कामदेव। सोहत=शोभायमान। मरकतमनि=नीलमणि। खचे=जड़ित। श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रियाप्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी। विमल=निर्मल। बरषत=वर्षत। मदमचे=मदोन्मत्त।

।। दोहा ।।

श्रीप्रियाप्रियतम दोनों सुरत विलास रूपी सरोवर में सहज-स्वाभाविक रूप में अपने हृदय से हृदय मिलाकर रसकेलि संलग्न हो मानो जल विहार कर रहे हैं। इनका

अङ्ग-अङ्ग प्रेमरस से इतना सराबोर है कि वह परस्पर मिलकर एकमेक हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है मानों वे अशरीरी हो गए हों !

॥ पद ॥

श्रीप्रियाप्रियतम दोनों सुरत-विलास रूपी सरिता में रसकेलि करते हुए मानों जल-क्रीड़ा कर रहे हैं। वे इस रसकेलि में इतने मग्न हैं कि उन्हें अपने शरीर की भी कोई सुधि नहीं रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानों इस प्रेमकेलि में उनका अङ्ग अङ्ग मिलकर एकमेक हो गया हो और मात्र एक प्राण ही शेष रह गया हो ! वे सहज स्वाभाविक रूप में अपने गौर-श्यामल सुन्दर हृदय से हृदय मिलाकर परस्पर ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो मर्कतमणि कंचन से जड़ दी गई हो।

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं कि इस प्रकार सुरम्य श्रीवृन्दावन में श्रीप्रिया-लाल के दिव्य-प्रेम-रस की वर्षा देखकर खग-मृग आदि पशुपक्षी भी मतवाले होकर झूमने लगते हैं।

॥ दोहा ॥

तैसिय अङ्ग संगिनि सखी लिये सङ्ग सचि सैल।
छिरकत छबि सों भरे जल केलि करत दोउ छैल ॥

॥ पद ॥६६॥

जलकेलि करत दोउ छैल री।
तैसिय छैलछबीली अङ्ग अङ्ग सङ्ग सहचरी सैल री ॥
कर सों पूर चलावत हैं नहिं पावत हैं गहि गैल री।
श्रीहरिप्रिया प्रबल पुलकारत जुरि जोवन कें फैल री ॥६६

सचि=यथा अनुरूप बनाकर। सैल=सैर, भ्रमण। जलकेलि=रसकी। छिरकत=छिड़कना। छैल=सजीले। पूर=बहाव, बाढ़। श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रियाप्रियतम। पुलकारत=पुलकित, रोमांचि। फैल=हठी। श्रीहरिप्रिया सहचरी श्रीप्रियालाल के जलविहार का रहस्यात्मक वर्णन करती हुई आगे कहती हैं—

॥ दोहा ॥

जैसे श्रीप्रियाप्रियतम हैं वैसी ही उनकी अङ्ग संगिनी सखी—सहचरियां हैं जो सदैव उनकी सेवा-परिचर्या में लगी रहती हैं। जल-विहार के समय भी वे उनके सङ्ग में रहती हैं। श्रीप्रियालाल दोनों सर्व प्रकार से बने-ठने छवि रूपी अगाध सरोवर में

अपने अङ्ग-प्रत्यंग से परस्पर छवि—सीकरों की बौछार करते हुए रसकेलि (जलकेलि) कर रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरी सखी! श्रीप्रियाप्रियतम सब प्रकार के साज शृङ्गार से बने-ठने रसक्रीड़ा कर रहे हैं। रूप-लावण्य और वय में उन्हीं के समान उनकी अङ्ग-सङ्गिनी छैल-छबीली सखी सहचरियां भी विहारोचित सामग्री से युक्त हो उनको घेरे खड़ी हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी आगे कहती हैं—अरी सखी, देख तो सही! अपनी-अपनी मनोभिलाषा की पूर्ति करने के लिए ये श्रीयुगलवर अपने कर-कमलों से परस्पर अङ्ग-प्रत्यंग का स्पर्श करके रसकेलि की परिपूर्ति हेतु कैसी जोरा-जोरी कर रहे हैं, फिर भी राह नहीं पा रहे हैं। हे सखी! यौवन के ये हठी यौवन-रस का भरपूर पान करते हुए बार-बार प्रबल रूप से पुलकित हो रहे हैं, फिर भी तृप्त नहीं होते!

॥ दोहा ॥

झकझोला झकझोल अरि रहे टरत पल नाहिं।
मनहुँ मराल किलोलहीं सुधासिंधु जल माहिं॥

॥ पद ॥६७॥

जल माहिं भरे रस डोलहीं।
मानहुँ सुधा सरोवर माँही मत्त मराल किलोलहीं॥
छिरकत छींट परस्पर पुलकत मुलकत मुख सो बोलहीं।
श्रीहरिप्रिया अरि रहे टरत नहिं झकझोला झकझोलहीं॥६७

झकझोला-झकझोल=धक्का-धक्की, झूले के समान झोंका देना। अरि=हठपूर्वक। मराल=हंस। कलोलहीं=क्रीड़ा करते हैं। सुधासिंधु=रसार्णव। छिटकत=छिड़कना। छींट=छींटे, कण। पुलकत=आनन्दित। मुलकत=मुस्करान श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रिया-प्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम जल (रस) केलि कर रहे हैं। जिस प्रकार हंस निश्चिन्त भाव से जल में क्रीड़ा करते हैं ऐसे ही ये दोनों रसके सरोवर में सराबोर परस्पर काम-केलि जन्य झोंका देने में ही अनुरक्त हैं। इन्हें पल भर का भी विछोह सह्य नहीं है।

॥ पद ॥

प्रेम-रस से भरे हुए श्रीप्रियाप्रियतम प्रेम-सरोवर में जल (रस) केलि कर रहे हैं। इन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो दो हंसों का जोड़ा उन्मत्त भाव से मानसरोवर के जल में क्रीड़ा कर रहा हो श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं अरी सखी ! जल (रस) केलि में मग्न ये दोनों परस्पर रस–सीकरों की बौछार करते हुए परम पुलकित हो रहे हैं। साथ ही मन्द-मन्द मुस्कराते, सीतकारादि काम-प्रेम जन्य अव्यक्त शब्दों का उच्चारण करते हठपूर्वक परस्पर झकझोली कर रहे हैं। ये दोनों इस प्रेमकेलि में इतने तन्मय हैं कि पल भर के लिए भी विलग नहीं होना चाहतें।

॥ इति जलविहार ॥

॥ अनुरागिनि सुरगांगा मध्याभास ॥

(रथारोहण)

॥ दोहा ॥

बनी ठनी सजनी सबै सेवत तन मन दीय।
देखहु री छबि सों दोउ रथ आरोहन कीय ॥

॥ पद ॥६८॥

देखहु री देखहु छबि सों दोउ मनमंथ रथ आरोहन कीयें।
आवत अति मनभावत सम्पथ प्रीतम प्रिया प्रेमरस पीयें ॥
कोउ सखि बिमल बीजना बीजत कोउ सखि चारु चमर कर लीयें।
कोउ सखि जय जय शब्द उचारत सुमन उछारत उमगति हीयें ॥
बनी ठनी छट छटी कटी की नटी चटी चहुँ ओरनि छीयें।
श्रीहरिप्रिया बदन—बिधु—बानिक निरखत हैं हरखत मन दीयें ॥६८

अनुरागिनि सुरगांगा मध्याभास=रागसारंग। दीय=देकर। मनमथ=कामदेव मनका मन्थन करने वाला संपथ=सममार्गी। वीजना=पंखा। वीजत=डुलाना चारु=सुन्दर। उछारत=ऊपर फेंकना। उमगत=उल्लसित। छट=छटा। छटी=क्षीण, सांचे में ढालकर छाँटी हुई। कटी=कमर। नटी–चटी=कलावलि (केलिक्रीड़ा)। छीयें=से श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रियाप्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी। बदन–विधु=मुख-चन्द्र। वानिक=शोभा। दीयें=देकर। रथारोहन=श्रीप्रियाप्रियतम जब सुरत क्रीड़ाके

समय मञ्जु-मनोरथ में प्रवेश करते हैं, उसे यहाँ रथारोहन कहा गया है ।

॥ दोहा ॥

सुरत-सरोवर में डूबे श्रीप्रियाप्रियतम दोनों रथारोहण (मञ्जुमनोरथ में प्रवेश) कर रहे हैं । सभी सखी सहचरियाँ साज-शृङ्गार से युक्त हो तन-मन से उनकी सेवा कर रही हैं । श्रीहरिप्रियासहचरी जी बार बार युगल की इस अपूर्व छवि का दर्शन करने का संकेत कर रही हैं ।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरी सखियों ! देखो तो, ये श्रीप्रियाप्रियतम दोनों मंजु-मनोरथ रूपी रथ पर सवार होकर कैसे शोभायमान लग रहे हैं । प्रेमरस का पान किए ये दोनों रथमें बैठे अपने मनभावते मार्ग पर आ पहुँचे हैं । इस रथारोहण में शोभायमान उनकी बनी ठनी क्षीण कटि चारों ओर से लचकती हुई अनेक प्रकार से केलि-कलावलि कर रही है । इस अपूर्व छटा का दर्शन कर कोई सखी उन पर पंखा डुलाती है तो कोई अपने हाथ में चँवर लिए हुए खड़ी है । कोई-कोई सखियाँ अपने मुख से जय-जय शब्द का उच्चारण करती हुई उनपर फूलों की बरसा कर रही हैं । श्रीहरिप्रिया सहचरी समेत सभी सखियाँ मन लगाकर उनके मुख-चन्द्र की बाँकी झाँकी पर हर्षित हो रही हैं ।

॥ दोहा ॥

मनमथ मान हरैं निरखि गौर स्याम छबि जाल ।
प्रभा-पुञ्ज रथ में दोऊ राजत मोहनलाल ॥

॥ पद॥६६॥

मोहनलाल विराजत रथ पर देखत मनमथ मान हरैं री ।
मनहुँ महा मङ्गल की मूरति प्रभा-पुञ्ज बिच केलि करैं री ॥
गौर स्याम अभिराम अङ्ग छबि बरन बरन अंबरनि धरैं री ।
श्रीहरिप्रिया लसनि रँगभीनी हँसनि मनोहर सुमन झरैं री ॥६६

मनमथ=कामदेव । प्रभापुञ्ज=देदीप्यमान । राजत=शोभायमान । अंबरनि=वस्त्र । बरन-बरन=अनेक प्रकार के । लसनि=शोभा । रङ्ग-भीनी=प्रेमभरी ।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम दोनों देदीप्यमान उज्ज्वल रथ पर सवार होकर परम शोभायमान

लग रहे हैं। उनकी गौर–श्यामल छवि के जाल में फँस कर कामदेव का मन भी मोहित हो गया है।

॥ पद ॥

कामदेव के भी मन का हरण करने वाले श्रीलाड़िली लाल रथ में विराजमान बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो परम आह्लाद की मूर्ति ही अपने देदीप्यमान रूप में रस–तरङ्गों में नाना प्रकार से केलि कर रही हो ! ये श्रीप्रिया-प्रियतम दोनों अपने गौर—श्यामल सुन्दर अङ्गों पर नाना प्रकार के सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए अपूर्व छटा विकीर्ण कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं कि दिव्य प्रेम के रङ्ग में रङ्ग—पगे ये दोनों जब परस्पर हंस बतराते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों सुन्दर पुष्पों की बरसा हो रही हो।

॥ अनुरागिनि अर्कविन्दा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सोभा देखत सुख बढ्यौ कहि नहिं आवत पार।
राजत रथ पर रगमगे नवरंगी सुकुँवार ॥

॥ पद॥७०॥

रथ पर राजत रगमगे नवरंग बिहारी।
लाड़ लड़ी के सनमुखें रुख रहें निहारी॥
अङ्ग सहाने साजिके पहिरें पट भारी।
भूषण जटित जराय के जगमगत महा री॥१
पानभरे मुखचन्दकी मुसक्यान उज्यारी।
चटकीली चित चुभ रही एहो टरत न टारी॥२
छोटी छटी छटंकिया सहचरि सुकुँवारी।
फरिया सीस लपेटिकें ऐंचत अगवारी॥३
बोलत बचन सुहावने कोकिल सुर सारी।
लेहु लेहु ललकारहीं नवजोबनवारी॥४
सोभा देखत सुख बढ़्यौ कहि जात न पारी।
श्रीहरिप्रियाकी केलिनी नित आनन्दकारी॥५॥७०

॥ दोहा ॥

अनुरागिनि अर्कविंदा मध्याभास=राग ऐराक । राजत=शोभायमान । रगमगे=सराबोर । नवरंगी=नवलप्रेम सहाने=शाही या राजसी (यह फारसी शब्द 'शहाना' से बना है इसका अर्थ विवाह के समय वर के पहनने का जोड़ा भी होता है) साज=सजावट या ठाट बाट । पट=वस्त्र । भारी=वजनी—यह शब्द 'जरी' के वस्त्रों के लिए आता है । जटित=जड़े हुए । जराय के=सुनहरी (रत्नजटित) । उज्यारी=चन्द्रिका अगवारी=आगे को । सुर=स्वर । सारी=मैना । केलिनी=केलि-क्रीड़ा ।

॥ दोहा ॥

नित नवीन प्रेम में सराबोर सुकुमार श्रीलालजी (मंजुमनोरथ रूपी) रथ पर सवार होकर बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं । इस अनुपम शोभा का दर्शन कर (सखि-जनों को) जो सुख-वृद्धि हो रही है, उसका वर्णन कर पाना संभव नहीं है ।

॥ पद ॥

नवल प्रेम के रंग में रंगे श्रीलालजी रथारोहण कर शोभायमान हैं । वे लाड़-लड़ैंती श्रीप्रिया जी की ओर मुख करके उनके रुख अर्थात् चेष्टा का निरीक्षण कर रहे हैं । वे अपने शरीर पर राजसी जरीदार वस्त्र धारण किए हुए हैं । रत्न–जटिल स्वर्ण के आभूषणों से उनका अङ्ग–अङ्ग जगमगा रहा है । वे पान चवाते हुए अपने मुख-चन्द्र से मंद-मन्द मुस्कराते ऐसे प्रतीत होते हैं मानो चन्द्रिका छिटक रही हो । श्रीहरिप्रिया-सहचरी जी कहती हैं कि उनकी वह मुस्क्यान बड़ी ही चटकीली (आकर्षक) होने से (मेरे) मन में ऐसी चुभ गई है कि किसी प्रकार निकालने से निकलती नहीं है ।

॥ अनुरागिनि धन्यभागा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

उमँग अङ्ग अङ्ग में बढ़ी कोककला रसपूरि ।
ललना रथ लै ललाकौं चढ़ी पला करि दूरि ॥

॥ पद ॥७१॥

ललना रथ लै चढी लला री ।
अधरसुधारस प्याइ पियाकौं करिकें दूरि पला परी ॥
हितू सहेली सों कह्यौ हाँकौ तू सबमें सबला री ।

या मग की पग पग महि रमि हैं अछिये थली थला री ॥
उमँग अङ्ग अङ्गनि में बाढ़ी गाढ़ी कोक-कला री ।
श्रीहरिप्रिया निहारत हैं जे जिनके भाग भला री ॥७१

अनुरागिनि धन्यभागा मध्याभास=रागधनाश्री । कोककल=कामकल । पला=पल्ला, आँचल, आवरण । हितू=हितूसहचरी (श्रीश्रीभट्टजी) । हाँकौ=हाँकना, चलाना । अछिये=भलीप्रकार । थली-थला=नीची–ऊची गड्ढों वाली भूमि । गाढ़ी=गहन । श्रीहरिप्रिया=श्रीलाड़िलीलाल या श्रीहरिप्रिया सहचरी । भागभला=सौभाग्यशाली ।

॥ दोहा ॥

जब श्रीलालजी प्रियाजी के सम्मुख बैठकर उनका रुख देखने लगे तव श्रीप्रियाजी के अङ्ग–प्रत्यंग में उल्लास की लहर दौड़ पड़ी । वे कामकला-रस से भर उठीं और सर्व प्रकार के आवरण दूर कर श्रीलालजी के सङ्ग रथारुढ़ हो गई ।

॥ पद ॥

लाड़-लड़ैती श्रीप्रियाजू–प्यारे श्यामसुन्दर को (वैपरीत्यरतिसुख प्रदान करने हेतु) साथ लेकर रथ पर सवार हो गईं । वे सर्व प्रकार के आवरण दूर कर प्रियतम को अधर सुधा रस का पान कराने लगीं । श्रीप्रियाजी का अङ्ग-अङ्ग उमंगित हो उठा और वे गहन काम-कला से भर उठीं । इसी बीच उन्होंने श्रीहितूसहचरीजी की ओर संकेत करके कहा—'अरी सखी ! [हमारे इस मंजु मनोरथ रूपी रथ को चलाने में एक तू ही सब प्रकार से चतुर है । क्योंकि इस रथ के मार्ग की भूमि साफ–सुथरी नहीं हैं, इसमें पग-पग पर ऊँचे-नीचे बड़े-बड़े गड्ढे हैं । अतः सखी ! हमारे इस रथको तू हाँक ! श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं कि श्रीप्रियाप्रियतम के इस नित्य विहार रस की झाँकी वे ही कर सकती हैं जो सर्व प्रकार से परम सौभाग्य शालिनी है ।

॥ अनुरागिनि मुक्तमाला मध्याभास ॥

(वर्षाऋतु-विहार)

॥ दोहा ॥

टपकि टपकि बूंदें परें पातन तें रस भोउ ।
बाहाँजोटी किये तरु-तरें ठाढ़े भीजत दोउ ॥

॥ पद ॥७२॥

टपकि टपकि बूंदें परत पातन ते ठाढ़े भींजत दोऊ ।

बाहाँ जोटी कीने रसभीने तरुतरें ॥
गौर स्यामल सरीर पहिरें कुसुम्भी चीर ।
चुहचुहैं चुवें नीर मनु अनुराग रङ्ग धुरवा झरें ॥
घन गरजनि दामिनि तरजनि तें डरि भामिनि लपटाति गरें ॥
श्रीहरिप्रियाजूकी रीझनि भींझनि रहसि ।
बहसि लखि मनमथ रति मन मान हरें ॥७२

वर्षाऋतु-विहार=विविध प्रकार से रस-क्रीड़ा करना। अनुरागनि मुक्तमाला मध्याभास=राग सारङ्ग मल्हार। रसभोउ=रस-भीनी। वाहाँ जोटी=बाँह जोड़े, गल बाँही दिए। कुसुंभी=लाल, केसरिया। अनुराग–रंग=प्रेम रूपीरंग। धुरवा=मेघ, बादल। दामिनी=बिजली। तरजनि=तड़कना। भामिनि=श्रीप्रियाजी। रीझनि= प्रसन्नता। मनमथ=कामदेव। रति=कामदेव की पत्नी।

॥ दोहा ॥

वर्षा-ऋतु में भी श्रीप्रियाप्रियतम विहार कर रहे हैं। वर्षा हो रही है। दोनों परस्पर गलबाँही दिए वृक्ष के नीचे खड़े हैं, फिर भी पत्तों पर टप-टप पड़ रहीं वर्षा की बूँदों से भींज-भीज कर प्रेम-रस से भर रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीप्रियाप्रियतम दोनों रस-भरे गल–बाँही डाले वृक्ष के नीचे खड़े हैं। फिर भी वर्षा के कारण पत्तों से टपकती बूँदों से दोनों भीग गये हैं। श्रीयुगल वर ने अपने गौर-श्यामल सुकुमार शरीर पर कुसुंभी रंग के केसरिया वस्त्र धारण कर रखे हैं। वर्षा का जल वृक्ष के पत्तों से वर्षा का जल चू-चू कर वरस रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो श्यामघनों ने प्रेमरस की झरी लगा दी हो ! बीच-बीच में बादलों की गर्जन और बिजली के तड़कर से भयभीत होकर भामिनी श्रीप्रियाजी प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर के गले से लिपट-लिपट जाती हैं।

श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं कि श्रीप्रियाप्रियतम की परस्पर की 'रीझनि' 'भींजनि', 'हँसनि' और 'रसनि' का दर्शन कर साक्षात् कामदेव और उसकी पत्नी रति का मन भी मोहित हो रहा है !

॥ दोहा ॥

स्यामल घन सँग दामिनी विहरत सुरत समाज।

कैसी मनकी मोहनी बनी बिहारिनि आज ॥

॥ पद ॥७३॥

आज बनी नवरङ्ग विहारिनि कैसी मनको मोहैं।
स्यामलघन सँग बिद्युति-सी द्युति अचल अंग अबिछोहैं॥
अति अनूप अम्बरमें बिहरत सुन्दर बर सरसोंहैं।
श्रीहरिप्रिया रसिक रस लम्पट जानति हैं जिय जोहैं॥७३

दामिनी=बिजली। सुरत=रति-विलास। दुति=आभा। अविछोहैं=अपृथक्। अम्बर=आकाश। सरसोंहैं=शोभायमान। रस-लंपट=रस के लोभी। जोहैं=जिस प्रकार हैं।

॥ दोहा ॥

बिजली के समान गोरे अङ्ग वाली श्रीप्रियाजी सजल मेघ के समान श्यामल अङ्ग वाले श्रीलाल जी के साथ रति-विलास के सभी साज–सामान से युक्त हो विहार कर रही हैं। विहारिणीजू की आज की यह केलि-छटा किस प्रकार मन का मोहन कर रही है!

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि नित्य–नवल प्रेम से उच्छलित नित्य-विहारिणी श्रीप्रियाजू की आजकी यह झाँकी कैसी मन को मोह रही है! श्याम घन और विद्युत की अविचल जोड़ी एवं अचल अङ्ग-द्युति के समान सुन्दर शिरोमणि श्रीयुगल वर नित्य एकरस-रूप होकर परस्पर अङ्ग रूपी अनुपम आकाश में नित्य विहार करते हुए परम शोभायमान दृष्टिगोचर हो रहे हैं। श्रीहिरिप्रिया-सहचरी कहती हैं कि नितान्त-रस-लोभी ये श्रीरसिक पर अपने-अपने मन की बात को या एक–दूसरे की मन की बात को भलीभाँति जानने वाले हैं।

॥ दोहा ॥

बतबतात बातनि बहौ अति घातनि रतिराज।
मत्त महारस बिलसहीं कदम कुंज दोउ आज॥

॥ पद ॥७४॥

आज दोउ कदम-कुंज बिचि बसे।
स्यामा स्याम मत्त मादिक रस करन करनमें कसे॥
बातनि बतबतात बहु घातनि गातनि गुनन गसे।
श्रीहरिप्रिया निरखि हरखत मन बरषत बन बिहँसे॥

बतबतात=बात बनाना, वार्तालाप करना। रतिराज=कामदेव घातनि घातों, सूझबूझ के साथ (अवसरानुकूल)। मत्त=मतवाले। करन=करों या हाथों। गातनि=अङ्गों। गस=ग्रसित। गुननि=गुण या रस्सी।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम परस्पर काम-कला की अनेक चेष्टाओं से युक्त हो मधुर प्रेमालाप कर रहे हैं। वे आज दोनों कदम्भ-कुञ्ज की सेज पर प्रेम-मद से छके-पगे उज्ज्वल रस में निमज्जित हो रहे हैं।

॥ पद ॥

आज दोनों श्रीप्रियाप्रियतम कदम कुञ्ज की कुसुमित शैया के बीच बसे हुए हैं। अर्थात् दोनों परस्पर हृदय से हृदय मिलाकर शयन कर रहे हैं। वे प्रेमरस से मतवाले होकर एक—दूसरे के हाथों में जकड़े हुए हैं। अर्थात् प्रगाढ़ आलिङ्गन बद्ध हैं। वे काम कला की अनेक चेष्टाओं से युक्त मधुर प्रेमालाप करते हुए परस्पर अङ्ग से अङ्ग मिलाकर किंवा अङ्ग रूपी रस्सी से एक दूसरे को बाँधकर विलास कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी श्रीश्यामा–श्याम के इस उज्ज्वल रास—विलास का दर्शन कर हर्षित मन हो उठती हैं। उन्हें सम्पूर्ण वन एक अपूर्व रस—वर्षण से युक्त उल्लसित हुआ दृष्टि गोचर होने लगता है।

॥ दोहा ॥

ठाढ़े कदमतर भुजगरें, दिये हिये पन प्रेम।
रिमिझिमि बूँदन बरषहीं, बन घन तजि तन नेम॥

॥ पद ॥७५॥

रिमिझिमि बूँदनि बरषत बन घन ठाढ़े कदमतर दोउ जने।
स्यामास्याम गरबहियाँ दीये भरें हिये प्रेम पने॥
लहलहि ललित चूनरी में मिलि भई दुति दूनादून री तने।
श्रीहरिप्रिया रसरहसि बहसि अङ्ग अङ्ग रगबगे रङ्ग रने॥७५

पन=प्रण। नेम=नियम। पने=प्रण। लहलहि=लहराती। ललित=सुन्दर। दुति=द्युति, आभा। दूना–दून=दुगनी। तने=तन, शरीर। श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रिया-प्रियतम अथवा श्रीहरिप्रियासहचरी। रस-रहसि=प्रेमकेलि। रगमगे=सरावोर। रंगरने=प्रेमभीने।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम हृदय में प्रेमके प्रण को धारणकर परस्पर गलबाँही दिए कदम के वृक्ष के नीचे खड़े हैं। सम्पूर्ण वन रिमझिम–रिमझिम बरसते मेघों से शोभायमान हो रहा है। मंद-मंद बूंदों के स्पर्श से श्रीयुगलवर के शारीरिक नियम अनायास ही छूट गए हैं। अर्थात् दोनों परस्पर रसकेलि में निमग्न हैं।

॥ पद ॥

श्रीवन में मेघ रिमझिम-रिमझिम बूंदों की वर्षा कर रहे हैं, जिनसे बचने के लिए प्रियाप्रियतम ने कदम के नीचे आश्रय ग्रहण कर लिया है। उनका हृदय प्रेम-प्रण से भरा हुआ है और वे परस्पर गलबाँही देकर खड़े हुए हैं। उन दोनों ने लहराती हुई केसरिया रङ्ग की सुन्दर चूनरी से अपने अङ्गों को ढक रखा है, जिससे श्यामल-गौर वर्ण वाली उनकी अङ्ग-कान्ति दुगनी हो गई है। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं अरी सखी ! इस समय श्रीप्रियाप्रियतम का अङ्ग-अङ्ग प्रेम के रङ्ग से सराबोर हो रहा है। वे परस्पर मधुर–प्रेमालाप कहते हुए किस प्रकार रसकेलि की क्रीड़ा कर रहे हैं।

॥ दोहा ॥

अति रति बन बरषत दोऊ तैंसोइ घन गरजंत।
मुखरित मोरी मोर सुर मदमाते उमदंत॥

॥ पद ॥७६॥

बरषत दम्पति अति रति बन री।
तैंसोइ गरजत घनन घनन घन पवन सनन सन सन री॥
मुखरित मोरी मोर मधुर सुर उमदाते महामाते मदन री।
श्रीहरिप्रिया तैंसेई रस भींजत आलापत न न न न री॥७६

रति=प्रेम। गरजत=गर्जना करना। मुखरित=बोलती है। सुर=स्वर। मदमाते=मतवाले। उमदंत=उमंग से युक्त। आलापत=उच्चारण करना।

॥ दोहा ॥

जैसे–जैसे श्रीप्रियाप्रियतम प्रेमकेलि में अनुरक्त हो रहे हैं, वैसे ही वैसे मेघ वृन्दावन में गरज—तरज कर वर्षा कर रहे हैं। मेघों की गड़–गड़ाहट सुनकर मोर–मोरनी भी मद से मतवाले हो उच्चस्वर से बोल रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरीसखी ! देख तो सही ! श्रीवृन्दावन में श्रीप्रिया-प्रियतम के पारस्परिक उज्ज्वल प्रेम-रस की कैसी बरसा हो रही है। घनकार करते हुए घनों का गर्जन और सन-सन की आवाज करते हुए पवन का संचरण मानों प्रियाप्रियतम की अव्यक्त प्रेमकेलि को व्यक्त कर रहा है। इतना ही नहीं मोर-मोरनी तक इस दिव्य केलिका दर्शन कर प्रेमभाव से भरकर मधुर स्वर से बोलते हुए नृत्य करने लगे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती है कि श्रीप्रियाप्रियतम दोनों प्रेमरस से रङ्गे-पगे सुरत क्रीड़ा का वर्द्धन करने वाले अव्यक्त नकारात्मक शब्दों का प्रयोग करते हुए सुरत-क्रीड़ा में रत हो रहे हैं।

॥ दोहा ॥

चहल पहल भई महल में गई अहल तरषाय।
अद्भुत बरषा बरषहीं घन दामिनि हरषाय॥

॥ पद ॥७७॥

आज बन अद्भुत बरषा बरसी।
सजल स्यामघन संग सौदामिनि वरभामिनि हिय हरसी॥
चहलपहल भई सकल महलमें गई अहलनि तन तरसी।
श्रीहरिप्रिया मिलि रही निरन्तर हितू सहेलिनि सरसी॥७७

चहल-पहल=हलचल। अहल=स्तब्धता, सूनापन। तरसाय=ललचाकर, खिन्न होकर। सौदामिनी=बिजली। वरभामिनी=दूलह-दुलहन। अहलनि=तरषी=तरस कर।

॥ दोहा ॥

वर्षाऋतु के आगमन से रङ्गमहल रूपी सम्पूर्ण वन में हलचल मच उठी है। ज्येष्ठ की दुपहरी की नीरवता जो शीतलता के लिए तरसा रही थी, बर्षाके आते ही मानों स्वयं तरस कर चली गई है। मेघ पूर्ण उत्साह में भरकर गर्जन करने लगे हैं, बीच-बीच में बिजली भी चमक कर अपना हर्ष व्यक्त कर रही है। इस प्रकार श्रीवन में आज अद्भुत वर्षा बरस रही है। भाव यह है कि रङ्गमहल में अद्भुत, प्रेम-रस की वर्षा बरस रही है। प्रेमरस लम्पट श्रीलालजी श्रीप्रियाजीके सङ्ग रसकेलि में निमग्न हैं।

॥ पद ॥

आज श्रीवन में अद्भुत वर्षा बरस रही है। जिस प्रकार सजल मेघ श्याम के सङ्ग

विद्युत शोभायमान होती है, वैसे ही दूलह–दुलहन शोभायमान लग रहे हैं। वर्षाॠतु के कारण मेघ गर्जना कर रहे हैं और बिजली चमक रही है—जिन्हें देख-सुनकर श्रीप्रियाप्रियतम के हृदय हर्षोल्लास से भर उठे हैं। ज्येष्ठ की दुपहरी की नीरवता अब समाप्त हो गई है। अबतक भीषण गर्मी जो शरीर को तपा रही थी, वर्षाॠतु के आगमन से स्वयं तरस कर चली गई है। इस प्रकार रङ्गमहल रूपी सम्पूर्ण वन में हलचल मच उठी है। श्रीप्रियाप्रियतम परस्पर गले-से–गले लगकर मिल रहे हैं। उनके अङ्ग प्रत्यंग संयोग सुख रूपी शीतलता से भर उठें हैं। उनके इस नित्य विलास का अति निकटता से दर्शन कर श्रीहितू एवं श्रीहरिप्रिया आदि सहचरियां परम प्रमुदित हो रही हैं।

॥ दोहा ॥

जमुना तट संघट विटप जहँ कोकिल कलबैंन।
ठाढ़े भुज अंसनि दिये देखहु री भरि नैंन॥

॥ पद ॥७८॥

देखौ सखी ! दोउ कदमतर ठाढ़े।
जमुनातीर भीर तरुवनिकी कोकिल कूजित गाढ़े॥
भुजा परस्पर अंसनि दीने अङ्ग अनङ्गनि बाढ़े।
श्रीहरिप्रिया जु रति रस-भीने सुरति-सिंधु तें काढ़े॥७८

संघट=सघन। विटप=वृक्ष। कलबैंन=सुन्दर वचन। अंसनि=कंधे। कूजत=बोलना। गाढ़े=रसभरे। अनंगनि=कामदेव। श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रियाप्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी। रतिरस=सुरत विहार अथवा प्रेमरस। सुरति=सुन्दर रति या प्रेम (नित्य विहार)। सिंधुते=समुद्र से। काढ़े=निकाले।

॥ दोहा ॥

यमुना के सुन्दर तट पर सघन वृक्षावलि शोभायमान है। कोप की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही है। ऐसे रमणीक वातावरण में परस्पर कंधे से कंधा मिलाये गलबाहीं दिये श्रीप्रिया प्रियतम को खड़े देखकर सखियाँ आत्मविभोर हो जाती हैं। वे अपने नेत्रों में उनके दिव्य सौन्दर्य को भरकर एक-दूसरे को दर्शन करने के लिए प्रेरित कर रही हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रियासहचरी कहती हैं—अरी सखियो ! देखो तो सही, ये श्रीप्रियाप्रियतम

कदम्ब के नीचे खड़े हुए कैसे शोभायमान लग रहे हैं। यमुना तट की सुन्दर सघन तरु-राजि में कोयल बार-बार कूज रही है। श्रीप्रियाप्रियतम परस्पर कंधे से कंधा मिलाये गलबाहीं दिए खड़े हैं। उनका अङ्ग-प्रत्यंग काम-जन्य छटा से देदीप्यमान हो रहा है। इस अद्वितीय सौंदर्य रस का पान करती हुई श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि हे सखी! प्रेम-रस से रंगे-पगे श्रीप्रियाप्रियतम की इस दिव्य छटा का किंचित् दर्शन तो कर! ऐसा प्रतीत होता है मानों इन्हें प्रेमरस के समुद्र में डुबोकर बाहर खड़ा कर दिया हो! बलिहारी है इनकी इस दिव्य केलिकी !!

॥ दोहा ॥

अङ्ग अङ्ग रसरङ्ग पर कोटि काम बलिहार।
बिहरें बिपिन बिहार दोउ सुन्दर वर सुकुँवार॥

॥ पद ॥७९॥

बिहरें बिपिन बिहारी बिहारनि।
मानि मानि मन मोद परस्पर तनक न मानत हारनि॥
अङ्ग अङ्ग रसरंग तरङ्गनि कोटि काम बलिहारनि।
श्रीहरिप्रिया अटकि रहे दोऊ निज निज नैंन निहारनि॥७९

रसरंग=प्रेमसौन्दर्य। मानिमानि=बार बार अङ्गीकार करना। तरङ्गनि=लहरें। श्रीहरिप्रिया=श्रीप्रियाप्रियतम अथवा श्रीहरिप्रिया सहचरी।

॥ दोहा ॥

सुन्दर शिरोमणि परम सुकुमार श्रीप्रियाप्रियतम वृन्दाविपिन में विहार कर रहे हैं। दिव्य प्रेम-सौन्दर्य से ओतप्रोत उनके अङ्ग-प्रत्यंग पर कोटि-कोट कामदेव न्यौछावर हैं।

॥ पद ॥

श्रीप्रियाप्रियतम श्रीवृन्दावन में नाना प्रकार से विहार कर रहे हैं। ये श्रीनित्य-विहारी विहारिणी दोनों प्रेमरस से मतवाले होकर एक दूसरे को बार-बार अङ्गीकार करते हुए मानों परस्पर जूझ रहे हैं और किंचित् भी हार नहीं मान रहे हैं। इनके अङ्ग प्रत्यंग से दिव्य प्रेम-रस की तरङ्ग उठ रही हैं जिन पर कोटि-कोटि कामदेव न्यौछावर हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि इस दिव्य क्रीड़ा विलास में पारस्परिक अङ्ग कान्ति की शोभा को अपने-अपने नेत्रों से निरखते हुए ये दोनों स्तब्ध से हो रहे हैं!

॥ दोहा ॥

तन तन सों मन मन मिले भये दोउ इक देह ।
विपिन गेह बन बरषहीं ज्यों ज्यों सरसत नेह ॥

॥ पद ॥८०॥

प्रीतम प्यारी बिराजत बिपिनगेह बरषत मेह ज्यों-ज्यों सरसत नेह ।
तन तनसों मन मन सों मिलाय रहे दोऊजन धनीधन अङ्ग-अङ्ग-
रङ्गमिलि भये एकदेह ॥
उमँगि उमँगि अनुराग अधिक आनन्द उपजावत अतिही अछेह ।
श्रीहरिप्रिया हिय बसौ सुखसम्पति दम्पति सहज अनूपम एह ॥८०॥

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम वृन्दाविपिन के मध्य रंगमहल में विराजमान हैं। सम्पूर्ण वन में जलवृष्टि हो रही है। जैसे–जैसे मेघ वर्षा करते हैं, वैसे ही वैसे श्रीप्रियाप्रियतम प्रेमरस से सराबोर हो रहे हैं। परस्पर तन से तन और मन से मन मिलाकर दोनों एकमेक हो रहे हैं।

॥ पद ॥

विपिन रूपी गेह (महल) में श्रीप्रियाप्रियतम विराजमान हैं। वर्षा से सारा वन सिक्त हो उठा है। जैसे-जैसे मेघ बरसते हैं वैसे ही वैसे दोनों दूलह–दुलहन प्रेमरस से प्रफुल्लित हो रहे हैं। परम धन श्रीप्रियाजी और परमधनी श्रीश्यामसुन्दर परस्पर तन से तन, मन से मन और अङ्ग से अङ्ग मिलाकर मानों दोनों प्रेम के रङ्ग में डूबकर एकमेक हो रहे हैं! वे इतने उमंगित हो उठे हैं कि उनका अनुराग–प्रेम बार-बार उच्छलित होकर अपूर्व आनन्द और उत्साह की सृष्टि कर रहा है। श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं कि श्रीप्रियाप्रियतम की यह अनुपम और उदार जोड़ी ही हमारी सुख–सम्पत्ति व सर्वस्व है। इनका सहज स्नेह सदा ही हमारे हृदय में बना रहे—यही कामना है।

॥ दोहा ॥

ठाढ़े आँगन कुञ्जकें, साँवर गौर किसोर।
रीझत भीजत सहज सुख, रङ्ग रङ्गीली जोर ॥

॥ पद॥८१॥

सहज सुख रङ्गरँगीली जोर सुन्दर नवलकिसोर।

सघन कुंजकें आँगन ठाढ़े मिलि साँवर तन गोर ॥
नैंन्ही नैंन्ही बूंदनि बरषत बन घन गरजत घोर।
श्रीहरिप्रिया रीझत भीजत दोउ दै दै प्रान अकोर ॥८१

रंगरंगीली=प्रेम के रंग में रंगी। जोर=जोड़ी। रीझत=रीझना। भीजत= भींगना। अँकोर=भेंट।

॥ दोहा ॥

श्यामल-गौर श्रीकिशोर किशोर कुञ्जमहल के आँगन में खड़े हुए हैं। सहज सुख व प्रेम के रंग रंगी–पगी किशोर-किशोरी की यह जोड़ी वर्षा में भीगते हुए परस्पर रीझ रही हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं–अरी सखी ! देख तो सही ! सहज-स्वाभाविक सुख में डूबी, प्रेम के रंग में रंगी नवल किशोर–किशोरी की यह जोड़ी कैसी सुहावन मन–भावन लग रही है। ये अपने श्यामल–गौर सुकुमार अंगों को मिलाये निविड़ निकुंज के आंगन में खड़े हुए कैसे शोभायमान लग रहे हैं। सम्पूर्ण वन में वर्षा हो रही है। मेघ जहाँ–तहाँ गम्भीर रूप से गरज–तरज कर नन्हीं-नन्हीं बूंदों से वरसा कर रहे हैं। जैसे-जैसे मेघ घनघोर गर्जना करते हैं, वैसे ही वैसे वर्षा से भीगे ये दोनों परस्पर रीझ-रीझ कर अपने प्राणों को न्योछावर करते हुए एक दूसरे को अपने–अपने अङ्क में भर लेते हैं। अरी सखी ! इनके इस सुख की बलिहारी है।

॥ दोहा ॥

भीजे अम्बर रँग सुही, रहे अङ्ग लपटाय।
कुंज कुटी आँगन दोऊ, लागत परम सुहाय॥

॥ पद॥८२॥

दोउजन लागत हैं अति नीके।
भीजे अङ्ग अङ्ग लपटानें अम्बर रङ्ग सुही के।
गरबहियाँ दिये भरे उमङ्गनि आँगन कुंज कुटी के।
श्रीहरिप्रिया कहाँ लौं बरनौं जो गुन प्यारी पी के ॥८२॥

अम्बर=वस्त्र सुही=लाल । अथवा सुन्दर रंग वाले, सुहावने ।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम दोनों कुंज महल के आँगन में खड़े हुए परम शोभायमान लग रहे हैं । रिमझिम-रिमझिम वर्षा के कारण उनके सुही रंग के झीने वस्त्र भीगकर उनके अंग-प्रत्यंग से लिपट गये हैं ।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरी सखी ! दोनों श्रीप्रियाप्रियतम कैसे सुन्दर लग रहे हैं । मन्द-मन्द वर्षा के कारण भीगे हुए सुही रंग के झीने वस्त्र इन्हीं श्रीयुगल के सुन्दर-सुकुमार श्रीअंगों से लिपटकर कैसे शोभायमान लग रहे हैं । हृदय में नई-नई उमंगों को भरकर ये दोनों परस्पर गलवाहीं डाले कुंजकुटी के आँगन में खड़े हुए हैं । अरी सखी ! इन श्रीप्रियाप्रियतम में जो गुण समाये हुए हैं, उनका कहाँ तक वर्णन करूँ ? अर्थात् इनके गुणों का वर्णन कर पाना कैसे भी संभव नहीं है ।

॥ अनुरागिनि सुष्ठुसुन्दरी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

लूमा झूमा झर लग्यो, उनय घटा इहिं बार ।
कदम सदम की ओट बलि, निधरक रमौ बिहार ॥

॥ पद ॥८३॥

राज लूमा झूमा झर लागौ, भीजै सारी झूमक झूमक बागौ ।
करहु न अरबी जाउँ बलि अहो छबीली छैलि ।
भीजि बसन अङ्ग अङ्ग के जैहैं रङ्गरस फैलि ॥१
उनय उनय ये अरसितें आई घटा जु घूमि ।
चपला चमकनि चहुँ दिसा रही रसा लगि लूमि ॥२
परी सकल सखियाँनि कैं चकचौंधी चखियाँनि ।
ह्वै हैं तन सगबग सबै अबै तजौ यह बानि ॥३
दै दै टेर सुहावनी रटत मेह मेह मोर ।
विनय करत यों बन मही दिखि तुव तनकी ओर ॥४
लेहु बलि ओट कदमकौ आगौ; श्रीहरिप्रिया निधरक ह्वै अनुरागौ ॥८३

अनुरागनि सुष्ट सुन्दरी मध्याभास=राग सोरठा । लूमा-झूमा=घनघोर । झर=वर्षा । सदम=आश्रय । झूमक सारी=झालरदार साड़ी । झूमक बागौ=झालरदार जामा । राज=वनराज वृन्दावन । अरबी=अबेर या हठ । उनय-उनय=उमड़-उमड़कर । घूमि=घुमड़कर । रसा=वर्षा । लूमि=झुकना । चखियानि=आँखों में । सगबग=सराबोर या लथपथ । मही=धरती । ओट=आड़ । अरसि=आकाश ।

॥ दोहा ॥

उमड़-घुमड़ कर घनघोर वर्षा होते देख श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं—हे श्रीप्रियाप्रियतम ! बलिहारी जाऊँ ! चारों ओर से घटा उमड़ पड़ी है और घनघोर वर्षा होने लगी है । आप दोनों कदम्ब का अवलम्ब लेकर उसी की आड़ में निश्चिन्ततापूर्वक विहार करें ।

॥ पद ॥

हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों श्रीवृन्दावन के राजा हैं । अर्थात् वृन्दावन आपके आदेश का सदैव पालन करता है, परन्तु इस समय वृन्दावन भी विवश है, क्योंकि इस समय लूमझूम कर (घनघोर) वर्षा हो रही है, जिससे श्रीप्रियाजी की झालरदार साड़ी और आपका जामा भीग गया है । हे छैल-छबीली, आप दोनों की बलिहारी जाऊँ ! विलम्ब मत कीजिए (हट मत कीजिए) अन्यथा आप के शरीर पर धारण किए गए वस्त्र भीग जायँगे और उनका रङ्ग निचुड़ कर जहाँ-तहाँ फैल जायगा ! अथवा इससे आपके प्रेम-रस-रङ्ग में भी व्यवधान आ जायगा आकाश से उठी हुई काली घटाएँ उमड़-घुमड़ कर पृथ्वी पर जहाँ तहाँ वर्षा करने के लिए आ गई हैं । चारों दिशाओं में बिजली चमकने लगी है और वर्षा की झरी लगगई है । बिजली की चमक से हम सब सखियों की आँखें भी चकचौंधी हो गई हैं । बलिहारी जाऊँ ! अपनी इस हठीली आदत को छोड़ दीजिए अन्यथा आप दोनों के अङ्ग-अङ्ग सराबोर हो जायँगे । उमड़ती-घुमड़ती काली घटाओं को देखकर मोर जहाँ-तहाँ सुन्दर ध्वनि करते हुए 'मेह-मेह' की रट लगा रहे हैं । उन्हें इस प्रकार से रट लगाते देख ऐसा प्रतीत होता है मानों वृन्दावन-भूमि आपके श्रीअङ्गों की सुकुमारता की रक्षा करने के लिए बार-बार आप से अनुनय विनय कर रहे हों । हे पिय-प्यारी बलिहारी जाऊँ ! कदाचित आप दोनों निश्चिन्तता पूर्वक परस्पर प्रेम-रस-रङ्ग में ही डूबे रहना चाहते हैं तो कृपया कदम्ब की आड़ लेकर उसके पीछे छिप जाइए ।

॥ दोहा ॥

श्रीहरि अङ्ग-सङ्ग प्रिया सुख, कैसें बरन्यो जात ।

रङ्ग रह्यौ दोऊ ललन मिलि, खेलत रतिरस घात ॥

॥ पद ॥८४॥

रङ्ग भरी लाड़िली अंग-अंग ललन संग खेलत रङ्ग रह्यौ ।
सुरत-समर जीती नवजुवती सेज-सुहाग लह्यौ ॥
दैंन नैंन चित चैंन मैंन रस उर-अम्बुज उमह्यौ ।
श्रीहरिप्रिया अपरमित सुख सो मुख नहिं जात कह्यौ ॥८४

॥ दोहा ॥

वर्षाऋतु में श्रीप्रियाप्रियतम के पारस्परिक अङ्ग-सङ्ग का सुख भला कैसे कहा जा सकता है ? दोनों लाड़िली लाल परस्पर प्रेम के रंग में रंगे-पगे अनेक प्रकार से रतिरस की घातें करते हुए क्रीड़ा कर रहे हैं ।

॥ पद ॥

श्रीलाड़िली-लाल प्रेम के रङ्ग में रंगे परस्पर अनेक प्रकार से रसकेलि कर रहे हैं । सुहावनी वर्षाऋतु में नवयौवन वाली श्रीप्रियाजू ने प्रियतम श्यामसुन्दर को सुरत-समर में जीत कर सुरत–सेज के सौभाग्य को प्राप्त कर लिया है । श्रीलालजी के नेत्र परम दैन्य के कारण झुक गये हैं, चित्त भी शांत हो गया है फिर उनका हृदय कमल काम-प्रेम-जन्य रस से उमड़ रहा है । श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि श्रीप्रियाप्रियतम का यह सुख सर्वथा अपरिमेय है कोई पार नहीं पा सकता ! मुख से तो उनके इस सुख का वर्णन कथमपि किया ही नहीं जा सकता ।

॥ इति वर्षाऋतुविहार ॥

॥ अनुरागिनि मुक्तमाला मध्याभास ॥

(पहली तीज)

॥ दोहा ॥

रमन तीज सब सहचरी, चली जुगल मिलि संग ।
सावन सहज सुहावनो, अति बढ़ावनो रंग ॥

॥ पद ॥८५॥

सहज सुहावनो दिन आज ।
मास सावन सुख-बढ़ावन पुरवनो मन-काज ॥

कुञ्ज कुञ्जनते चलीं मिलि सहचरी सजि गोल ।
मनहुँ आईं अरसितें ये उतरि पुतरिन टोल ॥
प्रमुदि पद बंदन कियो कल कह्यौ बचन सुभाषि ।
आइ बलि या तीजके त्योहार कौं अभिलाषि ॥१
देखिये जगमगत कैसी लगत प्यारी भूमि ।
हरित रङ्ग सुहावनी पर आवनी छबि ऊमि ॥
सुनत श्रवन सुदेस बैंना चले आनन्द-ऐंन ।
प्रियाजू के अंस भुज दिये लिये सहचरि सैंन ॥२
झुण्डझुण्डनि उमड़ि दामिनि घेरि बिच घनस्याम ।
कोउ आगें कोउ पाछें कोउ दक्षिन वाम ॥
एक एकनितें अधिक उपजावहीं कौतूह ।
लहरि ढार सुढार गावत हंस गवनि समूह ॥३
दृष्टि पथ करि मिथुन मनमथ सकल बनकी बेलि ।
जाय जमुना तट चढ़े नवरङ्ग झूलनि झेलि ॥
देत झोटा सहचरी आनन्द उर न समाय ।
अलक अंचर हारतें हटि रहे कटि लपटाय ॥४
देखि छबि तिन तोरहीं चहुँ ओर खग मृग मोर ।
मिलि परस्पर कहत जय जय जयति जुगलकिसोर ॥
तैसोई घन आय घुमड्यौ दरस दम्पति हेत ।
निरखि सोभा सजल ह्वै तन बदन बुंदनि देत ॥५
चपल चपला चमकि चहुँ दिसि वारहीं निज प्रान ।
रमक झमकनि देखि अपनौ परिहर्यौ अभिमान ॥
त्रिबिधि सीतल मन्द सौरभ पवन गवन सुदेस ।
चरन बन्दन करन कौं बलि कियो आनि प्रवेस ॥६
सरब रितु की सम्पदा रितु रूप पावस धारि ।
आइ बलि छबि देखिबे कों हरषि हीय मझारि ॥

देहु इनहिं दयानिधे कछु कामना फल जोय।
भजत भाव अनन्य ह्वै ह्वै सुद्ध अन्तः सोय ॥७
सहज सुख उत्साह सेवा सुरति संपति सार।
बिलसहीं दोउ हुलसि हिय में तीज कौ त्यौहार ॥
धन्य जिनिके भाग हैं जे निरखहीं भरि नैंन।
हितू श्रीहरिप्रिया कौ सुख सदा आनन्द दैंन ॥८॥८५

॥ दोहा ॥

अति सुहावन-मन-भावन श्रावण का महीना लग गया है। अंग-अंग प्रेम से पुलकित हो उठा है। सभी सहचरियाँ श्रीयुगल किशोर को संग लेकर हरियाली तीज का उत्सव मनाने के लिए चल पड़ीं।

॥ पद ॥

श्रावण का महीना परम सुख दायक व मन के मनोरथों का पूर्ण करने वाला है। हरियाली तीज का यह दिन तो और भी सुहावना लग रहा है। अपनी-अपनी कुंजों से निकलकर सभी सहचरियां वृत्त बना कर चल पड़ी हैं। उन्हें देखने से ऐसा लगता है मानों आकाश से अप्सराओं की टोली पृथ्वी पर उतर आई हों। श्रीयुगलकिशोर श्रीश्यामाश्याम के समीप पहुँच कर बड़े आनन्द से उनके चरणारबिन्दों में नमस्कार कर सुन्दर–सुखदायक मधुर वचन बोलने लगीं। श्रीहरिप्रिया सहचरीजी बोलीं—'हे श्रीप्रिया प्रियतम ! बलिहारी जाऊँ ! सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाला तीज का त्योहार आ गया है। किंचित निहारिये तो सही, आज वृन्दावन की भूमि कैसी जगमगाती हुई कितनी प्यारी लग रही है। सर्वत्र हरियाली छाई हुई है। इस सुन्दर हरियाली से पृथ्वीकी शोभा द्विगुणित हो गई है और उससे छबि की तरङ्गें उठ रही हैं।' सखी-जनों के समयानुसार ऐसे सुन्दर वचन सुनकर आनन्द के केन्द्र श्रीलालजी श्रीप्रियाजी की गलबाही देकर सखियों के साथ उनके द्वारा संकेतिक मार्ग की ओर चल पड़े।

झुंड की झुण्ड सखियों के बीच में चलते हुए श्रीश्यामसुन्दर ऐसे लगते हैं मानों चारों ओर से बिजलियों ने उमड़ कर श्यामल मेघ को घेर लिया हो। सखियों का एक झुण्ड उनके आगे, एक पीछे, एक दाहिने और एक बाएँ इस प्रकार चारों ओर से वे घिरे हुए हैं। वे सब एक से एक बढ़कर हैं और अपनी-अपनी शोभा से अधिक से अधिक कौतूहल उत्पन्न कर रहे हैं। सभी सखी–सहचरियाँ हंसिनी के झुण्ड की चाल से चलती

हुई स्वर में स्वर मिलाकर सुन्दर ढंग से लहरी गीत गा रही हैं। सभी सहचरियाँ मानों वन की वल्लरियाँ थी जो रति व काम स्वरूप श्रीश्यामाश्याम युगल जोड़ी का मार्ग में अपनी आँखों के सामने कर के चल रही थीं। इस प्रकार यमुना-तट पर पहुँच कर नव रंगी झूले पर सवार होकर श्रीप्रियाप्रियतम झूल झूलने लगे। सखी—सहचरियाँ उन्हें मंद-मंद झोका दे कर झुलाने लगीं, उनके हृदय में उल्लास का पारावार नहीं है।

झोटों के साथ झूलते समय श्रीप्रियाजी की वेणी, अञ्चल और हार अपने-अपने स्थानों से हटकर कटि से लिपट-लिपट जाते हैं। इस बाँकी-झाँकी को निरख कर सखियाँ तृण तोड़ने लगती हैं और चारों ओर से मृग–मयूरादि पशु–पक्षियों की भीड़ लग जाती है। सखियाँ परस्पर मिल–मिलकर श्रीयुगलकिशोर की जय–जयकार करती हैं। श्रीरसिक दम्पति की इस अपूर्व शोभा को निरखने के लिए उन्हीं के समान सुन्दर मेघ विद्युत के साथ उमड़ पड़ा और उनकी अद्भुत शोभा का दर्शन कर स्वयं अपने तन–वदन से सराबोर होकर रस की बूंदों की वर्षा करने लगा।

बिजली अपने चंचल स्वभाव के कारण चारों ओर से चमक-चमक मानों अपने प्राण न्योछावर कर रही है। श्रीप्रियाप्रियतम की झलमलाती हुई दिव्य अङ्गकान्ति का दर्शन कर उसने अपना सारा अभिमान त्याग दिया और स्वयं हर्ष से बार-बार चमकने लगी। शीतल-मन्द-सुगन्ध तीनों प्रकार का सौरभ संयुक्त पवन जो अपने देश (मलयाचल) गया हुआ था, वह भी मानों श्रीप्रियाप्रियतम की चरण-बन्दना कर अपने आपको न्योछावर करने के लिए इस रस देश में आ पहुँचा है। आज वर्षाऋतु भी मानो सभी ऋतुओं की सामग्री एकत्र कर, सुन्दर रूप धारण कर, हृदय में हर्षोल्लास से भरकर, श्रीप्रियाप्रियतम की बाँकी झाँकी का दर्शनकर उन पर स्वयं को न्योछावर करने के लिए यहाँ आ पहुँची हो। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—हे दयानिधान श्रीप्रियाप्रियतम जू ! इन सब सखी-जनों की कामनानुसार फल अवश्य दीजिए। क्योंकि ये सभी अपने हृदय में अनन्य भाव रखकर विशुद्ध अन्तःकरण से आपके नाम की रट लगाये रहती हैं। श्रीहरिप्रियाजी कहती हैं—श्रीप्रियाप्रियतम का सेवा एवं उत्साह सुख स्वाभाविक सुरत विहार रूपी संपत्ति का सार सर्वस्व है। हरियाली तीज के इस सुन्दर त्यौहार पर तो दोनों श्रीप्रियाप्रियतम परम उल्लास से भरकर विलास करते हैं। धन्य हैं वे रसिक जन और उनका भाग्य जो श्रीयुगलकिशोर के सेवा एवं उत्साह आदि सुखोंका निकट से नेत्रभर दर्शन करते हैं। श्रीहितू सहचरी जी आदि हम सभी को तो इन श्रीयुगल का नित्यविहार सदैव सुख व आनन्द का देने वाला है। ॥ इति पहली तीज ॥

॥ अनुरागिनि मुक्तमाला मध्याभास ॥

(हिंडोरा)

॥ दोहा ॥

उमँगभरे अङ्ग अङ्ग में, सङ्ग सहचरी-जाल ।
झूल फूलमें बैठे दोउ, झूलत लाड़िली लाल ॥

॥ पद ॥८६॥

झूलत लाड़िली लाल हिंडोरें, झुलावें सखि थोरें थोरें ।
झूल फूलमें बैठे दोऊ उमँग अङ्ग अङ्ग सोहैं ।
तैंसिय रंगरँगीली सहचरि सखी संग मन मोहैं ॥
लाड़ लड़नकौं लाड़ लड़ावत कहि कहि बचन लड़ोहैं ।
सुनि-सुनि पुनि-पुनि भीजि-भीजि रस रीझनि रीझि रीझोहैं ॥१
गौर साँवरे गात मनोहर सुहे रङ्ग पट पहरें ।
लहलहाति लावनि लावनि में लावनिता की लहरें ॥
मंजुल मुकुट चन्द्रिका चटकनि छुटे छबिन की छहरें ।
नाना बरन बसन आभूषन आभूषित गुन-गहरें ॥२
इक इक करन गहें डाँडी दूजें कर दै गरबहियाँ ।
उरन भरे आनन्द मधुर मुख मन्द मन्द मुसकहियाँ ॥
बर कपोल पर किरनि कचन की सनी सनेह सुमहियाँ ।
अति रसभीनी चखियनि की चितवनि में चित्त चुरहियाँ ॥३
उमड़ी घुमड़ि घटा सब दिसितें लागत परम सुहाई ।
जैसिय दामिनि की कलकौंधनि चकाचौंधनि छिति छाई ॥
हरीभरी हरेभरे द्रुमन प्रति हरी लता लपटाई ।
तैसिय चट चातिक सुक पिक रट मोरनि सोर मचाई ॥४
बहत सहज सुखदायक सीतल मन्द सुगन्ध समीरें ।
परसतही सरसत अङ्ग अङ्ग में अति अमृत की सीरें ॥
खिसनि कुसुम अंचर की फहरनि श्रमकन समन सरीरें ।

सुरभित सुभग सकल बन–सम्पति मधुलिट मत्त सभीरें ॥५
उमगि उमगि अनुरागिनि गावत मुक्तमालिनी अलियाँ।
बाजन की बाजनि सुरसाजनि रतिराजनि रँगरलियाँ॥
तान तरङ्गनि नृत्य सुगन्धनि कौतुक बढ़्यौ अतुलियाँ।
तन मन मगन महासुख-सरवर सोहत मुख म जुलियाँ॥६
कोउ सखी कर लियें बीजना कोउ चँवर कर ढोरें।
कोउ सखी कर लियें मोरछल झुकि झुकि झूमि झकोरें॥
कोउ सखी मुखबास डबा लियें कोउ झारी भरि सोरें।
अपनी अपनी सौंजनि सजि सजि सब ठाढ़ी सब औरें॥७
जुगलचन्द्र आनन्द उजागर नागरता की रासी।
नित नव कुंज-भवन सुख विलसत नित्यबिलास बिलासी॥
लगी रहत नित सङ्ग चकोरी सहचरि खास खवासी।
श्रीहरिप्रिया प्रमोद प्रमोदहिं निरखि निरन्तर दासी॥८॥८६

॥ दोहा ॥

सहचरियों के झुण्ड रूपी जाल से घिरे हुए अङ्ग प्रत्यंग से उमंगित होकर श्रीलाड़िलीलाल दोनों फूल हिंडोरे पर बैठकर झूला झूल रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीलाड़िलीलाल फूल हिंडोर पर सवार होकर, झूला झूल रहे हैं और सखियाँ धीरे-धीरे उन्हें झुला रही हैं। फूल डोल में बैठे दोनों श्रीप्रियाप्रियतम के अङ्ग-अङ्ग उमंगित होकर शोभायमान हो रहे हैं। उन्हें देखकर उन्हीं के समान प्रेम के रङ्ग में रंगी नित्य सखी-सहचरियों के मन भी मोहित हो रहे हैं। 'लाड़िली लाल को लाड़ लड़ाओ' ऐसे सुन्दर वचन परस्पर बोलती हुई सखियाँ श्रीप्रियाप्रियतम को लाड़लड़ा रही हैं। वे पुनः पुनः एक दूसरे के ऐसे सुन्दर वचन सुन-सुनकर रस से सराबोर हो रही हैं। श्रीप्रियाप्रिग्रतम के प्रेमरस में निमग्न होकर उन्हें बार-बार रिझा रही हैं। श्रीप्रिया प्रियतम के गौर-श्यामल सुन्दर अङ्गों पर धारण किए गए लाल रङ्ग के सुन्दर वस्त्र शोभायमान हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों लावण्य की लहरें उठती हुई लह-लहारही हों। श्रीलालजी के सुन्दर मुकुट की मटकन और श्रीप्रियाजी की सुन्दर चंद्रिका

की चटकन से मानों छटा की फुहारें छूट पड़ रही हों। इस पर भी नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर वे और भी गहन गम्भीर गुणों से युक्त दिखाई दे रहे हैं।

श्रीप्रियाप्रियतम एक-एक हाथ से हिंडोले की डण्डी पकड़े हैं तथा दूसरे हाथ से एक दूसरे को गलबाही दिए हुए हैं। रस माधुरी का यह आनन्द उनके हृदय में नहीं समाता है और उनकी मंद-मंद मुस्कान के रूप में मानों उनके मुख से प्रकट हो रहा है। उनके सुन्दर श्रेष्ठ कपोलों पर पड़ती हुई स्नेह और सौन्दर्य से सनी घुंघरालो अलकावलो की लट बड़ी ही शोभायमान लग रही है। उनकी रस-भरी आँखों की चितवन सहज रूप में चित्त को चुरा रही है। ॥३॥ दशों दिशाओं से उमड़ती-घुमड़ती घटाएँ बड़ी ही सुहावन-मन भावन लग रही हैं। जैसे-जैसे घटाएँ घुमड़ती हैं, वैसे-ही-वैसे बिजली की सुन्दर चमक से सारी भूमि में चकचौंध सी छा जाती है। घन-दामिनी की इस गर्जन और चमकन से मानों हरी-भरी वल्लरियाँ भयभीत हो हरे-भरे वृक्षों से लिपट कर रह गई हैं। चकवा, चातक, शुक, पिक भी भय से भयभीत हो (मानो रक्षा के लिए)पुकारने लगे हैं, मयूर भी जोर-जोर से शोर मचाने लगे हैं ॥४॥ सहसा सुखदायक शीतल-मंद-सुगन्ध पवन बहने लगा है। उसका शरीर से स्पर्श होते ही ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो किसी ने शरीर पर अमृत की शीतल बौछार कर दी हो। अङ्ग-अङ्ग हर्षातिरेक से पुलकित हो उठा है। पवन के स्पर्श से सुरत-सभर के कारण श्रीप्रियाप्रियतम के शरीर पर पड़े हुए श्रम-बिन्दु सूखने लगे हैं, श्रीप्रियाजी का अञ्चल उड़ने लगा है और गले में पड़े हुए हारों से पुष्प झरने लगे हैं। इस प्रकार वन की सारी सुन्दर सम्पत्ति सुरभित (सुगन्धित) हो उठी है, जिसके कारण मतवाले मधुपों (भौंरों) की भीर एकत्र होने लगी है ॥५॥

मोतीयों की माला धारण किए सहचरियाँ अनुराग प्रेम से उमङ्ग-उमङ्ग कर मधुर गीत गा रही हैं। उनके द्वारा बजाये जा रहे बाजों की मधुर झंकार व गाई जा रही सुरीली तान को सुनकर ऐसा प्रतीत होता है मानो साक्षात् रतिराज (कामदेव) ही अनेक रूप धारण कर प्रेमकेलि कर रहा हो। उनकी सुरीली तान की तरङ्गों तथा नृत्य की नाना मुद्राओं से एक अतुलनीय कौतूहल सा सर्वत्र व्याप्त हो गया है। उन्हें अपने शरीर की भी सुध नहीं है। श्रीप्रियाप्रियतम के महामधुर रस सुख का आस्वादन करती हुई वे निमग्न हो रही हैं। उनके मुख मधुरिमा से शोभायमान हो रहे हैं ॥६॥ कोई सखी अपने हाथ में पंखा लेकर तो कोई चमर लेकर श्रीयुगल किशोर पर डुला रही हैं। कोई सखी अपने हाथ में मोरछल लेकर उनके समक्ष झुक-झुक, झूम-झूमकर उसे झकोर

रही हैं। कोई सखी मुख की सुगन्धित सामग्री का डिब्बा लिये खड़ी हैं, तो कोई जल से भरी झारी लेकर खड़ी हैं। इस प्रकार सभी सखियाँ अपनी अपनी सामग्री सजाकर हाथों में लिए चारों ओर से उन्हें घेरकर सेवा में खड़ी हैं।

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि ये श्रीयुगलकिशोर दोनों उज्ज्वल आनन्द रस के चन्द्रमा और चातुर्य की राशि हैं। ये दोनों नित्यनव कुञ्ज भवन में नित्य सुख-विलास विलसते ही रहते हैं। इन श्रीयुगल चन्द्र की छटा का पान करती हुई चकोरी के सदृश नित्य रस रसी सहचरियाँ भी इनकी खास खवासी (सेवा–अर्चन) में नित्य प्रति लगी ही रहती हैं। नित्य सेवा में रत इन दासियों को श्रीप्रियाप्रियतम भी अपनी आनन्दमयी मंद मुस्कान व कृपा दृष्टि से सदैव आनन्दित करते रहते हैं ॥८॥८६॥

॥ दोहा ॥

नवल निलय नीरज महा, आँगन अङ्ग रसाल।
नवल हिंडोरें झूलहीं, आली री नवलाल॥

॥ पद ॥८७॥

आली री ! झूलत हैं नवलाल नवल हिंडोरना।
नवल वृन्दाविपिन अवनी सहज सुखद रसाल।
ललित लतिका लपटि रहि लहलही तरुन तमाल॥
फूल फल दल बिमल झलमल बरन बरन बिसाल।
भयो सुरभित सकल बन घन मुदित मधुकर माल॥१॥
नवल कुंज निकुंज प्रति प्रति रही अति छबि छाइ।
उमड़ि उमड़ि सुघाट घट सों घटा झुमड़ी आइ॥
बकनि पाँति सुभाँति दमकनि दामिनी दरसाइ।
त्रिविधि पवने गवन की मनरवन लेत रमाइ॥२॥
नवल निरमल नीर जमुना बहत तरल तरङ्ग।
तहँ कमलकुल डहडहे अङ्ग अङ्ग रङ्ग सुरङ्ग॥
जुगतटी नगजटी सुमन सुअटी सौरभ सङ्ग।
तीर तीरनि तरुन की छबि भीर उदित उतङ्ग॥३॥
नवल चातिक सुक पिकन की मधुर धुनि सुनि मंद।

कुहुक कै कै केकि केकिनि नृत्य करत सुछन्द ॥
बजनि बाजनि बिबिध आली सुमिलि चाली चंद ।
तैसिय रमकनि झमक गतिमें बढ़त अति आनन्द ॥४॥

नवल नीरज निलय आँगन रच्यौ रङ्गहिंडोर ।
तहाँ झूलत फूल फूले उभय नवलकिसोर ॥
पुलक प्रेमानन्द में सुख बढ़्यौ नाहिंन थोर ।
अङ्ग सङ्गनि सहचरी छबि भरी लेत हिलोर ॥५॥

नवल लचकनि मचनि में मुरि उरनिकी उरझानि ।
कचनि की छबि कटि निकट सो लटकि अटकी आनि ॥
अरुन बरन पटम्बरनि की फबि रही फहरानि ।
चपल चख चितवनि लसी हिय बसी मृदुमुसकानि ॥६॥

नवलडाँडी कर गहें दोउ झूमि झुकि रस लेत ।
मृदुल अङ्ग मनोज मोहन सुरत संग निकेत ॥
चंद्रिका की चटक मंजुल मुकुट अति छबि देत ।
किरत कबरी कुसुम रञ्जन गिरत गुलिक उपेत ॥७॥

नवल केलि कला कुतूहल रमत रहसि उमाहिं ।
रुख लिये दोउ रसिक सनमुख सुख न बरन्यो जाहिं ॥
सखि सहेली सहचरी छबि निरखि दृग न अघाहिं ।
हितू श्रीहरिप्रिया बिलसत हुलसि हीय न माहिं ॥८॥८७॥

॥ दोहा ॥

हे सखी ! नव निकुञ्ज महल के कमलों से भरे विशाल आँगन में रसीले अङ्गों वाले श्रीनवल किशोर किशोरी नवल हिंडोरे में विराजमान होकर झूला झूल रहे हैं ।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—'अरीसखी ! श्रीनवल किशोर-किशोरी नवल हिंडोरे पर सवार होकर झूला झूल रहे हैं । नवल वृन्दावन की यह नवल भूमि भी सर्व प्रकार के सहजसुख से भरी हुई रसवन्ती हो रही है और सखी, देख तो सही ! यह सुंदर

(स्वर्ण) बेल श्यामतमाल वृक्ष से लिपट कर कैसी लह-लहा रही है। यहाँ के तरह-तरह के विशाल वृक्षों में लगे नये–नये फूल फल और पत्ते अपनी निर्मल कान्ति को विकीर्ण करते हुए कैसे झिलमिला रहे हैं। सम्पूर्ण सघन वन महँकते हुए फूलों के सौरभ सुगन्धित को हो उठा है और उन पर मतवाले भौंरों की पंक्तियाँ मँडरा रही हैं। प्रत्येक नवल कुञ्ज--निकुञ्ज में नई–नई छवि छाई हुई हैं। चारों ओर से सुन्दर सघन घटा भी उमड़-उमड़ कर घुमड़ उठी है। बगुलों की पंक्ति आकाश में उड़ती हुई बड़ी ही शोभायमान लग रही है। चपला भी बीच-बीच में चमकती-दमकती दिखाई दे रही है। शीतल-मन्द–सुगन्ध पवन का संचरण मन्मथ के भी मन को मोहित कर रहा है ॥२॥

श्रीयमुना का नवल-निर्मल जल उत्ताल तरल तरङ्गों के साथ प्रवाहित हो रहा है। उस जल में खिले हुए अनेक प्रकार के कमलों को देखकर अङ्ग-प्रत्यंग सुन्दर प्रेम के रङ्ग से अनुरञ्जित हो रहे हैं। यमुना के दोनों तट सुगन्धित पुष्पों से भरे हुए होने के कारण रत्नजटित से दिखाई दे रहे हैं। किनारों से सटी हुई सघन तरुराजि की छटा फूट फूट कर चारों ओर बिखर रही है ॥३॥ नित्य नवल प्रेम से ओतप्रोत शुक, पिक, और चातकों की मन्द मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही है। मोर और मोरनियों के झुण्ड के झुण्ड 'कै' 'कै' की आवाज करते हुए स्वच्छन्द रूप से नृत्य कर रहे हैं। विविध प्रकार के बजते हुई बाजों की ताल में अपने पैरों की चाल मिल कर सखियां चल रही हैं। जब वे रमक-झमक कर आगे बढ़ती हैं तो अति आनन्द की सृष्टि होती है ॥४॥ नवल-निकुञ्ज भवन के कमलों से निर्मित आँगन में नवरंगी हिंडोला बना हुआ है जिस पर दोनों श्रीनवल किशोर प्रफुलित हृदय हो झूला झूल रहे हैं। उनका अङ्ग-अङ्ग प्रेमानन्द से पुलकित हो रहा है—सुरत का कोई पारावार नहीं हैं। उनके अङ्ग-सङ्ग की नित्य-रसरसी सहचरियाँ उनकी बाँकी छटा को हिलोर-हिलोर कर अपने हृदय में समेट रही हैं ॥

श्रीप्रियाप्रियतम जब बार बार नये-नये ढंग से लचक-मचक कर व मुड़-मुड़कर झूला झूलते हैं तो उनके हृदय परस्पर में उलझ जाते हैं। इस उलझन में कटि के पास लटक कर अटके हुए उनके केशों की छवि देखते ही बनती है! झूला झूलते समय फहरा कर उड़ते हुए उनके लाल वर्ण के वस्त्रों शोभा भी निराली ही दिखाई देती है। मन्द-मन्द मुस्कराते हुए जब वे अपने चंचल नेत्रों से देखते हैं तो उनकी वह मृदु मुस्कान बाँकी चितवन शोभा हृदय में बस जाती है ॥६॥ दोनों नवरंगी लाल नवल हिंडोले की डंडियों को अपने हाथों से पकड़ कर झूम-झूम कर झूलते हुए रस ले रहे हैं। इस प्रकार सुरत निकेत (रङ्गमहल) में परस्पर सुकुमार अङ्गों से केलि करते हुए वे काम के मन का भी

मन्थन कर रहे हैं। श्रीप्रियाजी की चन्द्रिका की चटक और प्रियतम श्यामसुन्दर के मंजुल मुकुट की लटकन बड़ी ही सुन्दर लग रही है। झूला झूलते समय श्रीप्रियाजी की वेणी अपने अग्रभाग में गुंथे फूलों के गुच्छे के साथ जब लहराती हुई (कटि पर) गिरती है तो बड़ी ही सुन्दर लगती है। नवल रसिक और रसिकनी दोनों रस से उमंगित हो कौतूहल पूर्वक नई-नई केलि क्रीड़ा करने में रम रहे हैं। वे परस्पर एक दूसरे के सम्मुख मुख करके रसास्वादन कर रहे हैं—उनके इस सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि सखी-सहेली-सहचरियाँ श्रीप्रियाप्रियतम की इस बाँकी-झाँकी का दर्शन कर तृप्त ही नहीं होती हैं। श्रीहितू सहचरीजू तो उनके इस नित्य-विलास-रस का दर्शन कर हर्ष-उल्लास से पूरित हृदय हो जाती हैं।

॥ दोहा ॥

खम्भ अनूपम स्वरन के, डाँडी चार सुढार।
झूलत रङ्गहिंडोरना, प्रीतम परम उदार॥

॥ पद ॥८८॥

प्रीतम झूलत रङ्गहिंडोरें मदन-सदन कें द्वारें।
उभय अनूप खम्भ कंचनके डाँडी चार सुढारें॥
मचकि मचावत अति मनभावत गावत राग मलारें।
श्रीहरिप्रिया निरखि हरषत हिय बरषत प्रेम अपारें॥८८॥

॥ दोहा ॥

स्वर्ण के दो अनुपम खम्भ हैं। सोने की ही चार सुन्दर डंडिया हैं, जिनमें लगे हुए रङ्ग-बिरङ्ग हिंडोले में परम उदार श्रीप्रियाप्रियतम विराजमान होकर झूला झूल रहे हैं।

॥ पद ॥

रङ्ग-महल के द्वार पर (आङ्गन में) श्रीप्रियाप्रियतम रङ्ग-रङ्गीले हिंडोले पर सवार होकर झूला झूल रहे हैं। दो बड़े ही अनोखे सोने के खम्भ तथा चार सोने की ही सुन्दर डंडियों से हिंडोला बना हुआ है। मल्हार राग गाते हुए मचक-मचक कर जब श्रीप्रियाप्रियतम झूला झूलते हैं तो मन को बड़े ही सुन्दर लगते हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं उनकी इस प्रेमकेलि का दर्शन कर सखियाँ हृदय में हर्षित हो रही हैं। इस प्रकार श्रीवन में प्रेम की अपार वर्षा बरस रही है।

॥ दोहा ॥

अछित दियें मुक्ता रुचिर, रोरी तिलक रसाल।
बाल झुलावें रङ्गसों, झूलत मोहन लाल॥

॥ पद॥८६॥

झुलावें नवल छबीली बाल हिंडोरें रङ्ग सों।
झूलत मोहन स्याम सलोनों सोहन मोहनलाल॥
रोरी तिलक अछित मोतिन के अमल कमल की माल।
श्रीहरिप्रिया प्रान के प्रीतम सरस प्रेम प्रतिपाल॥८६॥

॥ दोहा ॥

मोती रूपी सुन्दर अक्षत धारण किए हुए मस्तक पर सुन्दर–सरस रोली का तिलक लगाये मन का मोहन करने वाले श्रीलालजो श्रीप्रियाजी के सङ्ग झूला झूल रहे हैं और सखियाँ उन्हें प्रेम से झुला रही हैं।

॥ पद ॥

मन का मोहन करने वाले श्याम–सलोने श्रीलालजी श्रीप्रियाजी के सङ्ग झूला झूलते हुए बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। स्वर्ण हिंडोरे में विराजमान दोनों रसिक दम्पति को नवल छबीली बालाएँ (सहचरियाँ) प्रेम पूर्वक झोटा दे–देकर उन्हें झुला रही हैं। उनके मस्तक पर रोली का टीका मोतियों के असत (चावल) तथा गले में निर्मल कमल की माला शोभायमान हो रही है। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि ये श्रीप्रिया-प्रियतम एक–दूसरे के लिए अपने प्राणों से भी परम प्यारे लगते हैं। प्रेम के प्रतिपाल (रक्षक) होने से इनका हृदय रस–प्रेम से सदैव उद्वेलित हो बना रहता है।

॥ अनुरागिनि अर्कविन्दा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

रङ्गमहल कें आँगने, अङ्ग भरे छबि जाल।
झूलत रङ्गहिंडोरनें, रङ्गरँगीले लाल॥

॥ पद ॥९०॥

झूलत रङ्गहिंडोरना नवरङ्गरँगीले।
रङ्गमहलकें आँगने छबि भरे छबीले॥

रङ्ग कसोंभी चीरमें अति लसैं सरीरा।
मनु अनुराग बिवेकसों सेवत सुखसीरा ॥१॥
जगमग जगमग जोति के आभरन उदारी।
मनहु देह धरि आये हैं कौतिक दुति धारी ॥२॥
अलबेली अलकावली बहु वेष विराजें।
घुरवा मनहु सिंगार के छूटे छबि छाजें ॥३॥
मन्द मन्द मुखचन्द की मुसकानि सुहाई।
सहज चकोरी सखिन कें हिय करत सिराई ॥४॥
नैंन अनी की कोरसों चितवें तिहिं ओरी।
मनहु कृपारस वृष्टिसों भरि देत सरोरी ॥५॥
इक इक कर डाँडी गहैं इक इक अंस दियें।
झूलत फूले फूलसों प्रेमामृत पियें ॥६॥
झोटा देत अली भली मदगजगति लोलें।
देखि-देखि मुख दुहुनकौ सुख बढ्यौ अतोलें ॥७॥
या मृदु रसकें माहिं रमी सोई भल जानें।
श्रीहरिप्रिया लड़ाय कें पौषें निज प्रानें ॥८॥९०॥

॥ दोहा ॥

नव-निकुञ्ज-महल के आँगन (चौक) में रङ्ग-रङ्गीले झूले पर झूला झूलते हुए रङ्ग-रङ्गीले श्रीलाड़िलीलाल के अङ्ग-अङ्ग से छवि की तरङ्गे फूट रही हैं।

॥ पद ॥

रङ्गमहल के आँगन में छवि से भरे हुए नवल छबीले श्रीलालजी नवल छबीली श्रीप्रियाजी के साथ रङ्ग-रङ्गीले हिंडोरे पर झूला झूल रहे हैं। उनके शरीर पर धारण किए गए कुसुंभी रङ्ग के वस्त्र बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो साक्षात् अनुराग, विवेक के साथ मिलकर सेवा सुख का सार पाने के लिए सेवा में प्रस्तुत हो गया हो ॥१॥ श्रीप्रियाप्रियतम ने जगमगाती ज्योति के समान जगमग-जगमग करते सुन्दर आभूषण धारण कर रखे हैं, जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों स्वयं कौतुक ही अनेक प्रकार के देदीप्यमान शरीर धारण कर उपस्थित हो गया हो! उनके

मुखमण्डल के आसपास छिटक रही घुंघराली बाँकी अलकावली ऐसी शोभायमान हो रही हैं। मानों साक्षात् शृङ्गार रस ही छोटे-छोटे मेघ शावकों का रूप धारण कर अपनी छवि विकीर्ण कर रहे हों। उनके मुखचन्द्र से फूटती हुई मन्द-मन्द सुन्दर मुस्कान चकोरी के सदृश सखियों के हृदय को स्वाभाविक शीतलता प्रदान कर रही है ॥४॥

जब वे अपने नेत्रों की कोर से सखियों की ओर देखते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है मानों कृपा रसकी वृष्टि से वे उनकी झोली भर रहे हों ॥५॥ वे अपने एक-एक हाथ से हिंडोले की डंडी ग्रहण किए हुए हैं और एक-एक हाथ से परस्पर गलबाही दिए हुए हैं। इस प्रकार प्रेम-रस का पान करते हुए प्रफुल्लित हृदय हो झूला झूल रहे हैं ॥६॥ प्रेम-रस-रसी सहचरियाँ जब मन्द-मधुर गति से झोंटा दे-देकर उन्हें झुलाती हैं तो उसे देखकर मतवाले गजराज की चाल भी फीकी पड़ जाती है। दोनों श्रीप्रियाप्रियतम के मुखचन्द्र को देख-देख कर उनका हृदय अपार सुख से भर जाता है ॥७॥ श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि जो श्रीलाड़िलीलाल के इस महामधुररस में रंगेपगे (सखीभावोपासक) रसिक जन हैं, वे ही भलीभाँति इस रस-रहस्य को समझ सकते हैं, वे एकमात्र श्रीलाड़िलीलाल को लाड़ लड़ा कर ही अपने प्राणों का पोषण करते हैं—इसके अतिरिक्त जीवित रहने का उनके पास कोई साधन नहीं है ॥८॥९०॥

॥ अनुरागिनि सुरङ्गमाला मध्याभास ॥

(लूहरि)

॥ दोहा ॥

सुभग भूमि घुमड़ी घटा, अति अनूप अभिराम।
सोहत रङ्ग बढ़ावनों परम सुहावनों धाम॥

॥ पद॥९१॥

सखी ! वृन्दावन निज धाम परम सुहावनों।
सखी ! सोहैं अति अभिराम रङ्ग बढावनों॥
सखी ! लह लह ललित तमाल बेली लपटि रही।
सखी ! सरस प्रेम कें जाल आनन्द महमही॥१॥
सखी ! फूली हैं रूप अपार कोमल कनक तनी।
सखी ! भरी हैं गुनन कें भार मोहनी सुरति बनी॥२॥

सखी ! सुभगभूमि छबि देत सब दिसि हरी हरी।
सखी ! ह्रदनी हिय हरि लेत निर्मल भरी भरी ॥३॥
सखी ! मध्य सरोज सुदेस रङ्ग रङ्ग फूलि रहे।
सखी ! सारस हंस बिसेस बोलत गहगहे ॥४॥
सखी ! घुमड़ि घटा चहु ओर दामिनि दमकहीं।
सखी ! मुखरित मोरी मोर झींगुर झमकहीं ॥५॥
सखी ! बक आवलिकी पाँति राजति भाँति भली।
सखी ! निरखत नैंन सिराँति किलकत अधिक अली ॥६॥
सखी ! रमकि-रमकि मदमत्त सहचरि डोलहीं।
सखी ! सङ्ग किसोरीकंत केलि किलोलहीं ॥७॥
सखी ! बरन बरन बहुरङ्ग अम्बर बर पहरें।
सखी ! गौर साँवरे अङ्ग उपजत छबि लहरें ॥८॥
सखी ! जगर मगर जग जोति व्यापि रही बन में।
सखी ! बरनत लघुमति होत अति आभा तन में ॥९॥
सखी ! स्यामा स्याम सुखरासि बहियाँ जोटि कियें।
सखी ! मधुर-मधुर मृदु हाँसि अति अनुराग हियें ॥१०॥
सखी ! चन्द्रबदन चितचोर चन्द्रिका चारु लसी।
सखी ! श्रीहरिप्रिया किसोर मूरति मन में बसी ॥११॥९१॥

॥ दोहा ॥

अति अनुपम सुन्दर घटा उमड़-घुमड़ कर भूमि पर झुक आई है। निज धाम वृन्दाविपिन अपने इस रूप में बड़ा ही सुहावन–मनभावन लग रहा है। उसका यह सौंदर्य प्रतिक्षण बढ़ता ही जा रहा है।

॥ पद ॥

श्रावण के महीने में श्रीवृन्दावन की अनुपम शोभा का दर्शन कर श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—'अरी सखी ! देखो तो, श्रीप्रियाप्रियतम का निजधाम श्रीवृन्दावन कितना सुहावना लग रहा है। इसका अपूर्व सौंदर्य प्रतिक्षण प्रेमको बढ़ाता हुआ परम शोभा को प्राप्त हो रहा है। स्वर्ण बेलि श्याम तमाल से लिपटकर कैसी लहलहा रही

है। वह सरस प्रेम के जाल में पड़कर आनन्द से झूम रही है ।।१।। यह सुकुमार स्वर्ण बेलि फूलों से लदी हुई अपार शोभा से भर रही है। प्रियतम श्याम तमाल से लिपट कर सुरत-सुख लूटती हुई, अपने गुणों के भार से दबी हुई यह बल्लरी बड़ी ही शोभायमान लग रही है ।।२।। हे सखी ! वृन्दावन की सुभग भूमि सभी दिशाओं में हरी-भरी होकर कैसी छविमान लग रही है ! और सखी ! देख तो सही ! निर्मल जल से भरी हुई यह ह्लदिनी (सरिता) तो मानो हृदय का ही हरण कर ले रही है ।।३।।

इसके सुन्दर मध्यदेश रङ्गविरंगे कमल खिल रहे हैं। इसके जलमें सारस हंस व रसभरी गम्भीर वाणी बोलते हैं क्रीड़ा कर रहे हैं ।।४।। चारों ओर से घटा घुमड़ रही है, बिजली भी चमक रही है। मोर-मोरनी प्रसन्न मुद्रामें बोल रहे हैं। झींगुर की झीनी झन्कार सुनाई पड़ रही है ।।५।। आकाश में भलीभाँति उड़ती हुई बगुलों की पंक्ति (वकावलि) बड़ी ही शोभायमान लग रही है। हे सखी ! ये उड़ते हुए कैसी क्रीड़ा कर रहे हैं—देखकर नेत्र शीतल हो जाते हैं ।।६।। सभी सहचरियाँ हर्षातिरेक से मतवाली होकर रमक–झमक करती झूमती चल रही हैं। इनके मध्य कंत-कामिनी नाना प्रकार से केलि क्रीड़ा करते हुए कैसे शोभायमान लग रहे हैं ।।७।। इन्होंने अपने अङ्गों पर वर्ण वर्ण के विविध रङ्ग वाले सुन्दर श्रेष्ठ वस्त्र धारण कर रखे हैं। जिनके मध्य झलकते हुए इनके गौर श्यामल अङ्गों से छबि की तरङ्गे फूट रही हैं ।।८।। हे सखी ! इन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो विश्व ज्योति ही जगमगाती हुई वन में फैल उठी हो। इनके अङ्गों से जो अपार आभा विकीर्ण हो रही है उसका वर्णन करने में हमारी मति अत्यन्त हीन पड़ रही है ।।९।। ये श्रीश्यामाश्याम साक्षात् सुख की राशि हैं। परस्पर गलबहियाँ डाले ये कैसे सुन्दर लग रहे हैं ! इनके हृदय अनुराग–प्रेम से उच्छलित हो रहे हैं। मंद-मृदुल मुस्कान विखेरते हुए ये हम सभी का मन मोह रहे हैं ।।१०।। अरी सखी ! चन्द्र-वदन चितचोर श्रीश्यामसुन्दर के साथ चन्द्रवदनी श्रीराधा(चन्द्रिकाकी भाँति छिटकी हुई) कैसी शोभायमान लग रही हैं। श्रीप्रियाप्रियतम (किशोर-किशोरी) की यह मधुर-मञ्जुल मूर्ति सब प्रकार से में मन में बस गई है ।।११।।९१।।

।। दोहा ।।

हिलिमिलि गुन गन गावहीं, प्रमुदित प्रमद समाज।
रँगभीनी रतिरङ्ग सों; झूलें झुलवहिं राज ।।

॥ पद ॥६२॥

राज ! झूलें झुलावें हैं झुलावें हैं।
रँगभीनी रतिरङ्गसों कस हियो है॥
राज ! आवो लहरि लड़ावें हैं लड़ावें हैं।
लाड़लड़ी जू के अङ्ग सों कस हियो है॥१॥
राज ! हिलिमिलि गुन गावें हैं गुनगावें हैं।
नवनागरि जू के नेहसों कस हियो है॥२॥
राज ! निज नैंन सिरावेंहैं नैंन सिरावें हैं।
देखत एकत देह सों कस हियो है॥३॥
राज ! रस रहसि बढ़ावें हैं बढ़ावें हैं।
स्यामाजू के सुहाग सों कस हियो है॥४॥
राज ! हियरे हुलसावें हैं हुलसावें हैं।
अलबेली अनुराग सों कस हियो है॥५॥
राज ! प्रमुदित प्रमुदावें हैं प्रमुदावें हैं।
सहजहिं सङ्ग अभङ्ग सों कस हियो है॥६॥
राज ! छबि पर वलि जावेंहैं वलि जावेंहैं।
श्रीहरिप्रिया उमंग सों कस हियो है॥७॥६२॥

॥ दोहा ॥

सभी सखियाँ अपने सखी-परिकर के हिल-मिलकर प्रसन्न मुद्रा में श्रीलाड़िली-लाल के गुणों का गान कर रही हैं। श्रीव्रजराज कुंवर-किशोरी प्रेम-रस–रङ्ग से युक्त हो झूला झूल रहे हैं और सखियाँ भी प्रेम की रीति से झोटा दे–देकर उन्हें झुला रही हैं।

॥ पद ॥

व्रजराज कुंवर–किशोरी झूला झूल रहे हैं और सखियाँ झुला रही हैं। प्रेम–रस–रङ्ग से दोनों का हृदय भरा हुआ है। लाड़ले किशोरी लाड़लड़ैंती जू के अङ्ग–से–अङ्ग मिलाकर बड़ी ही उमङ्ग से उन्हें–लाड़ लड़ा रहे हैं। श्रीप्रियाजू से हिल–मिलकर लालजी उनके गुणों का गान करते हैं। प्रियाजी का हृदय भी नागर नवलकिशोर के

नेह–प्रेम से ओतप्रोत हो रहा है, जिसे देख–देख कर लालजी के नेत्र तृप्त हो रहे हैं। दोनों परस्पर अंग–से अंग मिलाकर मानो एकमेक हो रहे हैं।

सौभाग्य सीमन्तनी अलबेली श्रीप्रियाजू श्रीश्यामसुन्दर के साथ रस–केलि में निमग्न हैं, उनका हृदय बार बार उल्लसित हो रहा है। यह अनुराग–प्रेम उनके हृदय में समाता नहीं है ॥२॥ श्रीरसिक दम्पति (प्रियाप्रियतम) परस्पर स्वाभाविक रूप से प्रेमालिंगन से युक्त हो एक–दूसरे को आनन्दित करते हुए आनन्दाभिभूत हो रहे हैं। वे एक दूसरे के सौंदर्य को निरख–निरखकर बार–बार एक–दूसरे की बलैया ले रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं कि इस रीति से सुरत–विहार करते हुए श्रीप्रिया–प्रियतम आनन्द विभोर हो रहे हैं ॥९२॥

॥ दोहा ॥

(सखी !) हितू सहेली हरिप्रिया, जाके जाको चाय।
फूल गुलाबी डहडह्यौ, रह्यौ रस झूमि सुहाय॥

॥ पद॥९३॥

सखी ! डहडह्यौ फूल गुलाब कौ, सखी ! रह्यौ सुरँगरँग झूमि।
सखी ! वृन्दावन की कुंज में, सखी ! सरस प्रेम-रस लूमि॥
सखी ! अति कोमल आनन्दभर्यौ, सखी ! रच्यौ रति सुखसंग।
सखी ! महक्यो मोहन महमह्यौ, सखी ! लहलह्यौ लाड़ अभंग ॥१॥
सखी ! सहज सुहायौ सोहनो, सखी ! चिमतकार कौ रूप।
सखी ! सुन्दरबर सुभ दरसनों, सखी ! सींच्यौ अमृत अनूप ॥२॥
सखी ! प्यारो प्राँनहु तें सदा, सखी ! सोहै सरल सुभाव।
सखी ! हितू सहेली श्रीहरिप्रिया, सखी ! जाकें जाको चाव ॥९३॥

॥ दोहा ॥

आज श्रीहितू सहेली व श्रीहरिप्रिया सहचरीजू की मन की अभिलाषा पूरी हो गई है। आज उन्होंने गुलाब के खिले हुए फूल से मकरन्द-रस को अपनी आँखों से झरते हुए देख लिया है ! अर्थात् श्रीप्रियाप्रियतम की रसकेलि का निकुञ्जरन्ध्रों से दर्शन कर दोनों आप्तकाम हो गई हैं !

॥ पद ॥

रसरसी सहचरियाँ परस्पर रस–चर्चा करती हुई कह रही हैं—अरी सखी !

श्रीहितू–हरिप्रिया सहचरीजू की मनकी अभिलाषा आज पूरी हो गई है। क्योंकि आज उन्होंने श्रीवृन्दावन–नव–कुञ्ज में खिले हुए गुलाब की भाँति प्रेम-रस-रंग में मतवाले श्रीप्रियाप्रियतम की सरस-प्रेम-रस केलिका का निकुञ्ज-रंध्रों से दर्शन कर लिया है। संग की सहेलियों की यह मधुर–रस भरी वाणी सुनकर श्रीहितू–हरिप्रिया सहचरी स्वयं मीठे रसभरे वचन सखियों के प्रति कहने लगीं—हाँ सखियो ! तुम ठीक कह रही हो ! आज हम दोनों ने श्रीलाड़िलीलाल की अतिकोमल आनन्दभरी सुरत रस केलि–सुख संग का दर्शन किया है। श्रीमोहन–मोहिनी के परस्पर लाड़ सुख की अभंग छवि सम्पूर्ण रंग महल में मँह–मँह महकती हुई विकीर्ण हो रही थी ! अपने सहज–स्वाभाविक रूप में रसकेलि करते हुए उनका अंग अंग चमत्कृत हो रहा था। हे सखी अनुपम प्रेमामृत से सिंचित होने के कारण उनकी केलि परम सुन्दर–सुहावनी लग रही थी। हे सखी ! प्यारे श्यामसुन्दर और प्रियाजी दोनों ही हमारे लिए प्राणों से भी प्यारे हैं। उनका सहज सुन्दर भोला–भाला रूप हमें बड़ा ही प्यारा लगता है। अरी सखियो ! तुम सबसे विशेष क्या कहें इन श्रीप्रियाप्रियतम का जो जिस रूप में दर्शन करना चाहता है ये उसी रूप में दर्शन देकर उसे कृतार्थ कर देते हैं—बशर्ते उत्कट और लालसा होनी चाहिए ॥९३॥

॥ दोहा ॥

पावस रितु सम्पति सबैं, तन सिंगार सजाय।
प्रानप्रिया के दरस हित, आयो घन घुमड़ाय ॥

॥ पद ॥९४॥

आज घन घुमड़ि आयो है, आज घन घुमड़ि आयो है।
लगे अति परम सुहायो है, लगे अति परम सुहायो है ॥
प्रियाजू कें परसन काजें हैं, प्रियाजू कें परसन काजें हैं।
सकल सिंगार विराजें हैं, सकल सिंगार विराजें हैं ॥१
मुकुट सिर सुरधनु दीये हैं, मुकुट सिर सुरधनु दीये हैं।
माल बगपंकति हीये हैं, माल बगपंकति हीये हैं ॥२
धुरवा ऐसे छबि छाई हैं, धुरवा ऐसे छबि छाई है।
अलक उर ऊपर आई है, अलक उर ऊपर आई है ॥३

गरज अतिहीं छबि पावैं हैं, गरज अतिहीं छबि पावैं हैं।
मधुर मुख बेनु बजावैं हैं, मधुर मुख बेनु बजावैं हैं ॥४
पीतपट विद्युत पहरैं हैं, पीतपट विद्युत पहरैं हैं।
दमक अति दीपति गहरैं हैं, दमक अति दीपति गहरैं हैं ॥५
किंकिनि नूपुर बाजैं हैं, किंकिनि नूपुर बाजैं हैं।
हंसकुल कुनित समाजैं हैं, हंसकुल कुनित समाजैं हैं ॥६
प्रियाजू सों बिनती कीजैं हैं, प्रियाजू सौं बिनती कीजैं हैं।
याहि अंको भरि लीजैं हैं, याहि अंको भरि लीजैं हैं ॥७
तिहारे हित अकुलायो है, तिहारे हित अकुलायो है।
करौ याकौ मनभायो है, करौ याकौ मनभायो है ॥८
स्वेदकन अँग-अँग सरसैं हैं, स्वेदकन अँग-अँग सरसैं हैं।
मन्द-मन्द बुंदनि बरसैं हैं, मन्द-मन्द बुंदनि बरसैं हैं ॥९
भली रितु पावस आई है, भली रितु पावस आई है।
दई इहि भाँति दिखाई है, दई इहि भाँति दिखाई है ॥१०
नेक अब बिलँब न लावो हो, नेक अब बिलँब न लावो हो।
बेगिहिं याहि मिलावो हो, बेगिहिं याहि मिलावो हो ॥११
सदा के सहज सनेही हैं, सदा के सहज सनेही हैं।
आदि मधि अंत में एही हैं, आदि मधि अंत में एही हैं ॥१२
जुगल छबि नैंन निहारे हैं, जुगल छबि नैंन निहारे हैं।
अपनपौ सर्वस वारे हैं, अपनपौ सर्वस वारे हैं ॥१३
सफल जीवन करि जानें हैं, सफल जीवन करि जानें हैं।
भूरि निज भाग बखानें हैं, भूरि निज भाग बखानें हैं ॥१४
बनी या अनूपम जोरी है, बनी या अनूपम जोरी है।
सलोनी साँवरी गोरी है, सलोनी साँवरी गोरी है ॥१५
रहसि के रङ्ग रमावें हैं, रहसि के रङ्ग रमावें हैं।
चरन में सीस नमावें है, चरन में सीस नमावें हैं ॥१६

मदनमोहन सुखकारी है, मदनमोहन सुखकारी है।
रँगीली रूप उजारी है. रँगीली रूप उजारी है॥१७
लहरिया में लहरि लड़ावेंहैं, लहरिया में लहरि लड़ावें हैं।
कमल कल कुंज दिखावें हैं, कमल कल कुंज दिखावें हैं॥१८
जहाँ मिलि रङ्ग बिहारें हैं, जहाँ मिलि रङ्ग बिहारें हैं।
श्रीहरिप्रिया प्रेम तिहारें हैं, श्रीहरिप्रिया प्रेम तिहारें हैं॥१९

॥ दोहा ॥

वर्षाऋतु के सुन्दर उपकरणों से अपने शरीर को भलीभाँति सजाकर उमड़ते-घुमड़ते श्यामल घन के रूप में मानों स्वयं घनश्याम ही अपनी प्राणप्रिया किशोरी जी के दर्शन करने श्रीवन में आ पहुँचे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी श्रीवन में उमड़ते-घुमड़ते मेघ को आया हुआ देखकर कहती हैं—हे सखी! देख तो सही! श्रीवन में आज यह कैसी काली घटा उमड़ पड़ी है! इसका सहज श्यामल प्रेमीरूप कैसा सुहावना लग रहा है! ऐसा प्रतीत होता है सखी! मानो स्वयं घनश्याम ही अपनी प्राणप्रिया श्रीकिशोरीजी के दरस-परस हेतु बड़ी उतावली से इस घुमड़ते घन के रूप में यहाँ आ पहुँचे हों! प्रियतम श्यामसुन्दर का सारा शृंगार ही आज मानों इसने अपने शरीर पर धारणकर लिया है। यह अपने मस्तक पर इन्द्रधनुष (सुरधनु) रूपी सुन्दर मुकुट धारण किए हुए है। इसने अपने वक्षःस्थल पर आकाश में उड़ती हुई वकपंक्ति रूपी सुन्दर माल धारण कर रखी है। इसके साथ-साथ चल रहे मेघखण्ड (घुरवा) ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों उल्लास के कारण इसकी अलकावलि अपने हृदय के ऊपर आ पड़ी हो। मंद स्वर में जब यह गर्जना करता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानों अपने सुन्दर मुख से मुरली की सुन्दर तान छेड़ रहा हो। यह विद्युत रूपी पीताम्बर धारण किए हुए है। चपला की चमक ही मानों पीताम्बर की लहरन है। हंसों के झुण्ड के झुण्ड जब मिलकर ध्वनि (कुनित) करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों उसकी कटि-किंकिनि और नूपुर बज रहे हों। और इस रूप में मानों वह श्रीप्रियाजी की विनती करता हुआ उन्हें अपने अङ्क में भर लेना चाहता है। उमड़-घुमड़ कर मानों वह अपनी मिलन की व्याकुलता प्रकट कर रहा है। सखियाँ भी उसकी ऐसी दशा देखकर श्रीप्रियाजी से उसकी मनोकामना पूरी करने के लिए निवेदन करती हैं।

मन्द-मन्द बूँदे बरस रही हैं—मानों उसके शरीर से पसीना (स्वेद) चू पड़ा है। यह वर्षाऋतु बड़ी ही सुहावनी लग रही है। विधाता ने बड़े भाग्य से इसका दर्शन कराया है। सखियाँ परस्पर चर्चा करती हुई कहती हैं कि ऐसी सुन्दर ऋतु में श्रीश्यामसुन्दर को श्रीप्रियाजी से मिलाने में किंचित् भी विलम्ब करना उचित नहीं है। शीघ्र ही इन्हें परस्पर मिला देना चाहिए। ये सदा-सादा के सहज-स्नेही हैं। आदि–मध्य और अन्त ये श्रीप्रियाप्रियतम ही एकमेक होकर रम रहे हैं।

सहचरियाँ बार–बार श्रीयुगल किशोर की बाँकी-झाँकी का दर्शन कर आनन्द विभोर हो रही हैं। वे उनपर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती हैं। अपने जीवन को सफल मानती हुईं अपने भाग्य की भूरि भूरि प्रशंसा करती हैं। श्रीश्यामल-गौर रङ्ग की यह अनुपम जोड़ी ही सुन्दर लग रही है। रहस्य केलि करने के लिए ये दोनों एक दूसरे के चरणों में अपना मस्तक रख कर एक दूसरे को मनाते हैं। श्रीप्रियाजी का रूप चन्द्रिका के समान छिटक रहा है और मन प्रेत-रस से भरा हुआ है वे अपने इस रस-रूप से श्रीमदनमोहन को परम सुख प्रदान करती रही हैं। ये दोनों सुन्दर कमल-कुञ्ज में परस्पर लाड़ लड़ाते हुए शोभायमान हो रहे हैं। इनके हृदय से आनन्द-रस की तरङ्गे उठ रही हैं। श्रीहितू–हरिप्रिया सहचरी श्रीप्रियाप्रियतम की पारस्परिक प्रेम-केलि का निकुञ्जरन्ध्रों से प्रेम–पूर्वक दर्शन करती हुई आनन्द से भर रही हैं ॥९४॥

॥ दोहा ॥

ठाँ ठाँ सुखसम्पति सबै, दंपति मन भाई जु।
सरस सुहाई है सखी, बरसा रितु आई जु॥

॥ पद ॥९५॥

सखी! सरस सुहाई है बरसारितु आई।
सखी! अति छबि छाई है सबनि के मनभाई॥१॥
सखी! हरित सुअवनी है रवनी मन हरें।
सखी! दुख की दवनी हैं निरखत नैंन ढरें॥२॥
सखी! सघन सुहावन है विपिन झिलिझालि रह्यौ।
सखी! सुख उपजावन है मुख नहिं जात कह्यौ॥३॥
सखी! ठाँ ठाँ सोहत हैं सरवर जल भरे।
सखी! मनको मोहत हैं जलज सुरङ्ग ररे॥४॥

सखी ! नाना पंछी हैं बोलत बहु भँते ।
सखी ! नित्य सुपंछी हैं मोहन मदमते ॥५॥
सखी ! पवन सुगन्धी हैं सीतल मन्द बहैं ।
सखी ! समर सम्बन्धी हैं श्रमतन दूरि दहैं ॥६॥
सखी ! नव नव बेली हैं लपटी तमालन सों ।
सखी ! रति रसरेली हैं झेली झालन सों ॥७॥
सखी ! घन उनयावनि हैं अति गहरावनी ।
सखी ! मन सरसावन हैं बन बरसावनी ॥८॥
सखी ! बकन सुपाँती हैं अम्बर में उडें ।
सखी ! अति मदमाती हैं निरखत नैंन जुडें ॥९॥
सखी ! चपला चमकें हैं चहुँ दिसि चंचली ।
सखी ! अतिरस रमकें हैं राजैं रति रली ॥१०॥
सखी ! सुरधनु सोहें हैं पचरँग रङ्ग कौ ।
सखी ! मनको मोहें हैं उदित अनङ्ग कौ ॥११॥
सखी ! जमुना तट की है अति छबि छाज रही ।
सखी ! सुभग सुघट की है रञ्जनि राज रही ॥१२॥
सखी ! कुँवरि किसोरी हैं गोरी रङ्गभरी ।
सखी ! रतिरसबोरी हैं पहिरैं चूनरी ॥१३॥
सखी ! साँवरवर सोहैं मिलि सुख बिलसहीं ।
सखी ! भुज दियें गर सोहैं अति हियें हुलसहीं ॥१४॥
सखी ! जीवन जोरी हैं श्रीहरिप्रिया दम्पती ।
सखी ! अँखियाँ मोरी हैं बसौ सुख-सम्पती ॥१५॥९५॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं—हे सखी ! सरस-सुन्दर वर्षाऋतु आ गई है । जगह-जगह सुख की सामग्री को विस्तृत देख रसिक दम्पति (श्रीप्रियाप्रियतम) मन-ही-मन मुग्ध हो रहे हैं ।

॥ पद ॥

आगे कहती हैं—अरी सखी ! देख तो सही, वर्षाऋतु कैसी सरस–सुहावनी लग रही है । इसकी बाँकी छबि तो हम सभी के मन में समा गई है ॥१॥ हरीतिमा से भरी सुन्दर भूमि रमणी (नवोढा नायिका) के समान मन को मोह रही है किंवा रमणी श्रीप्रियाजी के मन का भी यह हरण कर रही है। इसके दर्शन मात्र से दुःख का विनाश होकर नेत्र शीतलता से भर जाते हैं ॥२॥ हे सखी ! देख तो, सघन वृन्दावन झिलमिल झिलमिल करता हुआ कैसा सुहावना लग रहा है । इसे निरख निरख कर हृदय में जो सुख प्रकट हो रहा है, वह मुख से कहा नहीं जाता है ॥३॥ जगह जगह जल से भरे सरोवर शोभायमान हैं, जिनमें खिले हुए–रङ्ग–विरंगे नाना प्रकार के कमल मन को मोह रहे हैं ॥४॥ हे सखी ! नाना प्रकार के पक्षी भाँति–भाँति की बोली बोल रहे हैं । इनमें मोहन नामका एक ऐसा सुन्दर पक्षी भी है, जो नित्यप्रति रसभरी (मदमाती) बोली बोलकर मन को मोहित करता रहता है ॥५॥ शीतल मन्द सुगन्ध पवन बह रहा है, जो सुरत-समर के कारण (श्रीप्रियाप्रियतम के) शारीरिक श्रम को दूर कर रहा है ।६

अरी सखी ! देख तो, वर्षाऋतु के कारण श्रीवृन्दावन कैसा शोभायमान लग रहा है । नवेली की नयी नयी लतिकाएँ श्याम तमाल के वृक्षों से लिपट कर झूम–झूमकर सुरत-रस की कैसी-कैसी क्रीड़ाएँ कर रही हैं ! ॥७॥ सखी ! कैसा गहन-गम्भीर मेघ उमड़-घुमड़ कर वृन्दावन में वर्षा कर रहा है, जिसे देखकर मन सरस हो उठा है ॥८॥ आकाश में मदमाती चाल से उड़ रही बगुलों की पंक्ति को देखकर नेत्र शीतल हो रहे हैं ॥९॥ सखी, काले-काले मेघों में चारों ओर से जैसे चंचल चपला चमकती है, वैसे ही वैसे (श्रीप्रियाप्रियतम) नाना प्रकार से सुरत-क्रीड़ा करते हुए शोभायमान हो रहे हैं ॥१०॥ पचरङ्गी छटा विखेरता हुआ इन्द्रधनुष आकाश में शोभायमान हो रहा है, जिसे देखकर काम-रस-संचार के साथ मन मोहित हो रहा है ॥११॥

अरी सखी ! यमुना तट की शोभा तो देखते ही बनती है । उसके सुन्दर घाट मन का रंजन करते हुए कैसे शोभायमान लग रहे हैं ॥१२॥ और सखी ! श्रीप्रियाजी की ओर तो निहार ! गौर वर्ण कुँवरि-किशोरी श्रीप्रियाजी सुरङ्ग चूनरी पहने प्रेम-रस रङ्ग में कैसी सराबोर हो रही हैं ॥१३॥ ये साँवले कुँवर किशोर के सङ्ग मिलकर सुख-विलास विलस रही हैं । प्रियतम श्यामसुन्दर के गले में भुजाएँ डाले उल्लसित हृदय हो कैसी शोभायमान लग रही हैं ॥१४॥ इस प्रकार श्रीप्रियाप्रियतम के सुख विलास का अति निकट से दर्शन करती हुई श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखी ! नव

दम्पति श्रीप्रियाप्रियतम की यह माधुरी जोड़ी तो मेरी प्राण-संजीवनी है। मेरी तो यही हार्दिक अभिलाषा है कि यह युगल जोड़ी और उनका-सुख-विलास सदा मेरी आँखों में ही बसा रहे ! ॥१५॥६५॥

॥ दोहा ॥

चलहु विलम्ब न कीजिये, अँग सँग सेबा काज।
कोमल वन की कुंज कल, कोकिल बोलत आज ॥

॥ पद ॥६६॥

आज कल कोकिल बोलें हैं, कल कोकिल बोलें हैं।
कोमल वन की कुंज में कस हियो है ॥१॥
डहडहे कदमनि ओले हैं, कदमनि ओले हैं।
प्रिय पंछिन के पुंज में, कस हियो है ॥
अँग सँग सेवा काजे हैं, अँग सँग सेवा काजे हैं।
चलहुँ बिलम्ब न कीजिये, कस हियो है ॥२॥
बन्यौ यह बानिक आजें हैं, यह बानिक आजें हैं।
अछन अछन पग दीजिये, कस हियो है ॥
ओढ़ि लेहु अलछित सारी है, अलछित सारी है।
जैसिय अँगिया उरोज की, कस हियो है ॥३॥
तैसोई लहँगा लहकारी है, लहँगा लहकारी है।
कसि तटि नाभि सरोज की, कस हियो है ॥
भूषन निरदूषन पहिरे हैं, निरदूषन पहिरे हैं।
मृदुल मनोहर भाव के, कस हियो है ॥४॥
हार हिये गुहि गुन गहरे हैं, गुहि गुन गहरे हैं।
मञ्जुल मुक्ता चाव के, कस हियो है ॥
सुअङ्ग सुगंध लगावें हैं, सुगन्ध लगावें हैं।
अतर उमंग अमोल को, कस हियो है ॥५॥
चरन इह चाल चलावें हैं, इह चाल चलावें हैं।
होइ न रव रमझोल को, कस हियो है ॥

जाब निज नैंन निहारे हैं, निज नैंन निहारे हैं।
भागभरी जू की भीरि लैं, कस हियो है ॥६॥
जथा रुचि के अनुसारें हैं, रुचि के अनुसारें हैं।
टहल करें उमङ्गी रहैं, कस हियो है ॥
आदर करि निकट बुलाई है, निकट बुलाई है।
जानि सुभट रति केलि में, कस हियो है ॥७॥
सकल मनवांछित पाई है, मनवांछित पाई है।
श्रीहरिप्रिया रस-रेलि में कस हियो है ॥८६॥

॥ दोहा ॥

श्रीवृन्दावन की कोकिल कूजित सुन्दर कुंज की सुकुमार-कोमल शैया पर श्रीप्रिया-प्रियतम सुरत-विहार में निमग्न हैं। उनके अङ्ग-सङ्ग की सेवा करने के लिए श्रीहरि-प्रिया सहचरी जी सखियों से शीघ्र ही सेवा में पहुँचने के लिए कह रही हैं।

॥ पद ॥

वृन्दावन की कोकिल कूजित सुन्दर नव कुञ्ज में (कोमल शैया पर) श्रीप्रिया प्रियतम हृदय से हृदय मिलाकर क्रीड़ा कर रहे हैं ॥१॥ वे सुन्दर सुन्दर पक्षियों के समूह के बीच फूले हुए कदम्ब की ओट लेकर क्रीड़ाशील हैं। श्रीप्रियाप्रियतम का आज का यह स्वरूप तो देखते ही बनता है। सखी! सम्हल-सम्हल कर पग धरो, कहीं ऐसा न हो कि उन्हें हमारे आगमन का आभास मिल जाय! अरी सखियो! ओट ले लो (किंवा अपने मुख को ढक लो क्योंकि श्रीप्रियाप्रियतम निर्द्वन्द्व विहार कर रहे हैं) श्रीप्रियाजी के श्रीअङ्गों पर झालरदार लहँगा, साड़ी और अँगिया कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। कमल के समान सुन्दर उनका नाभि प्रदेश [निर्वस्त्र होने से] कैसा व्यस्त दिखाई दे रहा है! वे सुन्दर-सुकुमार भावरूपी निर्मल आभूषण पहने हैं, गम्भीर गुणों से गुँथे हुए हार हृदय पर धारण किए हैं, लालसा रूपी सुन्दर मोती पहने हैं, शरीर पर सुन्दर अङ्ग रूपी सुगन्ध का लेप किए हैं, उमङ्ग रूपी अनमोल इत्र लगाये हैं, वे अपने चरणों को इस चाल से चलाते हैं ताकि रमक-झमक की आवाज सुनाई न पड़ सके! श्रीहरिप्रिया सहचरी जी सौभाग्यशालिनी सखियों की भीड़ के साथ जाकर अपने नेत्रों से प्रियाप्रियतम की इस अद्‌भुत केलि का दर्शन कर रही हैं। वे उनकी इच्छानुसार सेवा-टहल करती हुई सदैव सेवके उल्लास से भरी रहती हैं। सुरत-समर के योद्धा श्रीप्रियाप्रियतम ने

सेवा–टहल में लगी [श्रीहितू–हरिप्रिया आदि] सखियों को अपने निकट बड़े प्रेमपूर्वक [आदर देकर] बुला लिया है। श्रीप्रियाप्रियतम की रस–केलि का अतिनिकट से दर्शन कर श्रीहरिप्रिया सहचरी जी आप्तकाम हो जाती हैं, उनकी मनोभिलाषा पूर्ण हो जाती है ॥९६॥

॥ दोहा ॥

मदमाते गजराज ज्यों, अरि रह्यो टरत जु नाहिं।
इत आवो अलियो अहे, कहा खरी उत माहिं ॥

॥ पद ॥९७॥

कहा कहौं उत क्यों खरी, इत आवो री अलियो।
सुख देखें या सजन कौ पुरवें मन रलियो ॥१॥
मदमाते गजराज ज्यों अरि रह्यौ अटलियो।
हारि न माने नेकहूँ रस झूमन झलियो ॥२॥
अति गाढ़े गुन में गह्यौ तउ रहें न सचलियो।
छूटी लट पट झर भयौ डोलैं रलबलियो ॥३॥
सुनत बचन सहचरि सजी नवरङ्ग नवलियो।
झेल्यो वन में जाय के सनमुख साँवलियो ॥४॥
स्यामाजू के अङ्ग सङ्ग में मिलि भामिनि भलियो।
रिझयो रसिक रसाल को अनुगतिय अतुलियो ॥५॥
बरस सिराने मेघ ज्यों अङ्ग-अङ्ग सिथिलियो।
मुकुट नवायो चरन में चितवें भूतलियो ॥६॥
ज्यौं-ज्यौं प्रिया ललकारहीं, यह छाड़ो छलियो।
अजौं मन में रह जायगी, कछु कसर कुटलियो ॥७॥
अब पाछें भये क्यों बने फिर जाउ सँभलियो।
ये आई या सुख लिये मोरी मुतसलियो ॥८॥
अतन अलीसों मिलि चलौ ज्यों परें सफलियो।

रंग बढ़ावें चौगुनौं दीजितु हैं अकलियो ॥९॥
उर धरि बच अलबेली के मद हथिया हलियो।
कंचन बन की अवनि में विहरें बरबलियो ॥१०॥
फूल झरीसी लतानि कों करी भरी भतलियो।
स्वेद सलिल तन सिलसिल्यौ सोहैं मंजुलियो ॥११॥
मनबांछा पूरन भई सुरतरु कें तलियो।
श्रीहरिप्रिया ढिग आइकें ओढ़त अंचलियो ॥१२॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी अतिनिकट से श्रीप्रियाप्रियतम की रसकेलि दर्शन करती हुई सखियों को अपने पास बुलाती हुई कहती हैं—अरी सखियो ! तुम सब वहाँ खड़ी-खड़ी क्या कर रही हो ? यहाँ आकर तो देखो ये श्रीश्यामसुन्दर मतवाले गजराज की भाँति कैसे सुरत–समर में डटे हुए हैं, कि वहाँ से हटने का नाम ही नहीं लेते, हटाये हटते ही नहीं !

॥ पद ॥

अरी सखियों ! तुम सब की सब वहाँ क्यों खड़ी हो ? यहाँ मेरे पास आओ ताकि हम सब मिलकर श्रीप्रियाप्रियतम के केलि–सुख का निकट से दर्शन कर अपने मन की अभिलाषाएँ पूरी कर सकें। देखो तो सही प्रियतम श्यामसुन्दर मत्त गजराज की भाँति किस प्रकार अचल भाव से अड़ रहे हैं और सुरत हिंडोले पर मचक-मचक कर झूलते हुए क्षणभर के लिए भी नहीं थकते। गहन-गम्भीर गुणों से ओतप्रोत होने पर भी उनमें स्थिरता नहीं है, अधीर होकर नाना प्रकार से केलि करते हैं। इस अद्भुत केलि में उनका अलकावलि बिखर गई है, वस्त्र ढीले पड़ गये हैं फिर भी रणवीर की भाँति (सुरत समर) में जूझ रहे हैं ॥३॥

श्रीहरिप्रिया सहचरीजी की ऐसी मधुर वाणी सुनकर नवल रङ्ग-भीनी नवेली सहचरियाँ सज धज कर उनके साथ चलदीं और वन में जाकर साँवले किशोर को (रंगे हाथों उन्मत्तावस्था में) पकड़ लिया। अथवा वनमें साँवले किशोर के समक्ष पहुँचकर सखियों ने स्वयं से जूझने के लिए उन्हें (प्रियतमको) ललकारा। किंवा प्रियाजी को श्रमित जान सखियाँ (प्रियाजी को जिताने के लिए) स्वयं सुरत समर में कूदकर श्यामसुन्दर से जूझने लगीं ॥४॥ इस प्रकार सहचरियों ने श्रीश्यामाजू की रसकेलि (अङ्गसङ्ग)

में भली भाँति सम्मिलित होकर केलि की अनेकानेक अतुलनीय गतियों से रसिक रसाल प्रियतम श्यामसुन्दर को रिझा लिया ॥५॥ तब तो, जिस प्रकार मेघ मूसलाधार वर्षा करके ठंडे पड़ जाते हैं, उसी प्रकार (सुरत समर में हुए कठोर परिश्रम के कारण) प्रियतम श्यामसुन्दर का अङ्ग-अङ्ग शिथिल पड़ गया। वे सहस्त्रों सखियों से आवृत श्रीप्रियाजी के चरणारविंदों में अपना मुकुट रखकर [मस्तक टेककर] नीचे निगाहें कर भूमि की ओर ताकने लगे [मानों उन्होंने अपनी हार स्वीकार कर ली हो] ॥६॥ श्रीश्यामसुन्दर को ऐसा करते देख श्रीप्रियाजी उन्हें बार-बार ललकारती हुई कहती हैं—हे प्यारे! हे कुटिल !! अब छल-बल से काम नहीं चलेगा। आज मन में कोई कसर बाकी मत छोड़ना जो तुम्हारे मन में भरी हो, उसे आज पूरी कर लो। मैं कहती हूँ, अभी मौका है, फिर सम्हल जाओ और युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ! अब पीछे हटने से काम नहीं चलेगा। देखते नहीं हो, मेरे सुख में हाथ बँटाने के लिए ये मेरी सहयोगिनी अंगरक्षिकाएँ यहाँ आ पहुँची हैं ॥७॥८॥ हे प्यारे श्यामसुन्दर! कदाचित् आज इस कामकेलि में सफलता चाहते हैं, तो इन सहचरियों को भी इसमें सम्मिलित कर लीजिए। इनके सहयोग से आपको चौगुना आनन्द प्राप्त होगा और भलीभाँति केलि करना भी ये आपको सिखादेंगी (अर्थात् आपकी अक्ल ठिकाने लगा देंगी) ॥९॥

इस प्रकार अलवेली श्रीप्रियाजू के मधुर वचनों को धारण कर प्रियतम श्यामसुन्दर मतवाले गजराज के समान पुनः सक्रिय हो उठे और श्रीवृन्दावन की कंचन भूमि में अपने श्रेष्ठ बल के साथ (सुरतसमर में कूदकर) बिहार करने (जूझने) लगे ॥१०॥ उन्होंने फुल-झड़ी लतिकाओं के समान कृशांगी सहचरियों (के अङ्ग-प्रत्यङ्ग] को अपनी हथेलियों में भरकर मसल डाला। इस परिश्रम के कारण स्वेद-बिन्दुओं से भरा हुआ उनका शरीर बड़ा ही शोभायमान लगने लगा ॥११॥ इस प्रकार कल्पवृक्ष के नीचे पहुँचने से सभी सहचरियों की मनोकामना पूरी हो गई। श्रीहरिप्रिया सहचरी के समीप पहुँच कर सभी ने अपने सर पर आँचल ओढ़ लिया अथवा सुरत सेज पर श्रमित-थकित लेटे हुए श्रीप्रियाप्रियतम के श्रीअङ्गों को [निकट जाकर] श्रीहरिप्रिया सहचरीजी ने अपने आँचल से ढक दिया ॥१२॥९७॥

॥ अनुरागिनि मुक्तमाला मध्याभास ॥

[पवित्रा]

॥ दोहा ॥

अति प्रवीन मुख रुख रही, निरखि बदन सुखदाय।

परम पवित्रा बाल ये, उर पवित्र पहिराय ॥

॥ पद॥६८॥

पहिरावत रचि परम पवित्रा परम प्रबीन पवित्र बाल ए।
मुख रुख रही निहारि बदन छबि मदनमोहन नवरङ्गी लाल ए॥
तिलक रचाय रुचिर रोरी के अछित लगाये ललित भाल ए।
श्रीहरिप्रिया बिलोकि बिवस भई अङ्ग-अङ्ग रई रूपजाल ए॥६८॥

॥ दोहा ॥

सेवा-कार्य में परम प्रवीण निर्मल स्वभाव वाली सहचरियाँ श्रीप्रियाप्रियतम के हृदय में पवित्रा धारण कर उनके सम्मुख खड़ी हो उनकी सुन्दर मुख छटा को बार-बार निरख रही हैं।

॥ पद ॥

श्रीहितु-हरिप्रिया आदि–सेवाकार्य में परम प्रवीण पवित्र चरित्र वाली सहचरियाँ सुन्दर पवित्रा रखकर के श्रीप्रियाप्रियतम को धारण करा रही हैं। मदन मोहन नवरंगी लाल के सम्मुख खड़ी होकर उनकी सुन्दर मुख-छवि का निर्निमेष दृष्टि से पान कर रही हैं। उनके सुन्दर मस्तक पर रोली का सुन्दर तिलक लगाकर अक्षत [चावल] लगा रही हैं। इस प्रकार श्रीहरिप्रिया आदि सहचरियाँ श्रीप्रियाप्रियतम के अङ्ग-प्रत्यंग के सौन्दर्य-जाल में फँसकर बार-बार उनकी मुख छटा का पान करती हैं [फिर भी तृप्त नहीं होतीं] ॥६८॥

॥ दोहा ॥

प्रान त्रान हित जुगल कें, लै आई सब तीय।
रच्यौ पवित्रा पाटकौ, पहिरें प्यारी पीय॥

॥ पद॥६९॥

पवित्रा पहिरें प्रीतम प्यारी।
पचरँग पाट जरी बर फौंदा सोभा बढ़िय महा री॥
सखिन सौंज रचि कनक थार बिचि पूजा-विधि बिसतारी।
प्रानप्रियन के प्रान-त्रान हित पहिराये सुखकारी॥

यह सुख देखि देखि अनुरागहिं भागभरी सहचारी।
श्रीहरिप्रिया की या छबि ऊपरि करि तन मन बलिहारी ॥९९॥

॥ दोहा ॥

जुगल किशोर श्रीश्यामाश्याम के प्राणों की रक्षा के लिए सभी सहचरियाँ रेशम की सुन्दर पवित्रा [माला] बनाकर लाई हैं, जिसे प्रियतम-प्यारी प्रेम पूर्वक धारण किए हुए हैं।

॥ पद ॥

श्रीप्रियतम-प्यारी सुन्दर पवित्रा धारण किए हुए हैं जो पँचरङ्गी रेशमी धागे की बनी है तथा सुनहरी तारों के बने सितारों से जिसकी शोभा द्विगणित हो गई है। सहचरियों ने शृंगार की सभी प्रकार की सामग्री से सजे सोने के थार में पूजा की सामग्री भी विधि पूर्वक सजाकर रख ली है। शृंगार-पूजा आदि कर लेने के पश्चात् श्रीप्रियाप्रियतम के प्राणों की रक्षा के लिए सखियों ने सुखकारी पवित्रा धारण करा दी है। पवित्रा धारण कराने से बढ़े हुए सुख को निरख-निरखकर परम सौभाग्यशालिनी सहचरियाँ अनुराग से भर रही हैं, और उनकी इस झाँकी छवि पर अपने तन और मन से बार-बार बलिहारी जाती हैं ॥९९॥

॥ दोहा ॥

सावन मास सुहावनों, रसिक लाड़िली लाल।
रंग हिंडोरें झूलहीं, पहिरि पवित्रा-माल ॥

॥ पद ॥१००॥

आजु की सोभा बनी है बिसाल।
रङ्ग हिंडोरें झूलत फूलत पहिरि पवित्रा माल ॥१॥
झोटा देत पवित्र सहचरी भरी प्रेम हिय आल।
जुगल चंद अरविंद बदन छबि निरखति नैंन निहाल ॥२॥
चहुँ ओरी गोरी रसबोरी गावत गीत रसाल।
मृदु बाजित्र बजाय विविध विधि एक संच सुर ताल ॥३॥
राग रङ्ग रह्यौ छाय विपिन में बरने को कविजाल।
रीझि रीझि राते मदमाते रसिक लाड़िली लाल ॥४॥

सावन मनभावन कौ सुख यह अति पावन प्रतिपाल।
श्रीहरिप्रिया परम धन जोरी सदा बसौ मम भाल ॥५॥

॥ दोहा ॥

श्रावण के सुहावने-सुन्दर महीने में श्रीरसिक लाड़िलीलाल रेशम की सुन्दर माला धारण कर सुन्दर हिंडोले पर झूल रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरी सखी ! आज की शोभा बड़ी विशाल है, देखते ही बनती है। पँचरङ्गी रेशम के धागों से बनी सुन्दर माला धारण कर श्रीप्रिया-प्रियतम सुरङ्ग हिंडोले पर झूलते हुए कैसे प्रसन्न हो रहे हैं। निर्मल मन वाली सहचरियाँ अपने हृदय की झोली को प्रेम से भरकर के झोटा दे देकर झुलाती हुई श्रीयुगल चन्द्र के मुखकमल की सुन्दर छबि को बार-बार निरख-निरख कर परम प्रसन्न हो रही हैं ॥२॥ प्रेमरस रसी गौरांगी सहचरियाँ चारों ओर से एकत्र होकर सुन्दर रसीले गीत गा रही हैं। वे सब इकट्ठी होकर सुन्दर स्वर-ताल के साथ विविध प्रकार के मधुर बाजे बजा रही हैं ॥३॥ संगीत के साज-बाज से वृन्दाविपिन में ऐसा राग-रंग छा गया है कि कवि-गण भी जिसका वर्णन नहीं कर सकते। प्रेम के रङ्ग में रंगे श्रीरसिक लाड़िलीलाल परस्पर रीझ-रीझ कर प्रेम से मतवाले हो रहे हैं ॥४॥ श्रावण का यह मन भावन सुख निश्चय ही प्रेमी-जनों के पवित्र प्रेम की रक्षा करने वाला है। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं कि श्रीप्रियाप्रियतम की यह परम धन जोड़ी नित्य प्रति मेरे मस्तक पर विराज-मान रहे अर्थात् मैं नित्यप्रति प्रणति पूर्वक इनके चरणार विन्दों की ही सेवा-परिचर्या करती रहूँ ॥५॥१००॥

॥ अनुरागिनि सुरंगांगा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

चित्रमई-सी ह्वै गई, महा मनोभव बाम।
अद्भुत पहिरिनि पेखि कें, गौर पवित्रा स्याम ॥

॥ पद ॥१०१॥

गौर पवित्रा पहिरें स्याम।
सोभा देखि छकी रति सजनी बिसरि गई पति काम ॥

कहति मनहिं मन महा मगन ह्वै यह जु दाम किधौं बाम।
कबहुँ न देखी सुनी अलौकिक अद्भुत छबि अभिराम ॥२॥
तीन लोक में जितनी सम्पति सो सब मेरे धाम।
याकौ रचनहार जो विधना है कोउ याही ठाम ॥३॥
सावन सुकल पक्ष एकादसि दिवस पाछिले जाम।
श्रीहरिप्रिया लखि चित्रमई ज्यों भई मनोभव भाम ॥४॥१०१॥

॥ दोहा ॥

अपने श्यामल शरीर पर गौर वर्ण की पवित्रा धारण कर लेने से श्रीश्यामसुन्दर का वेश बड़ा ही विचित्र लग रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो काम की पत्नी रति ही चित्रमयी पवित्रा का रूप धारण कर यह आ पहुँची है।

॥ पद ॥

श्रीश्यामसुन्दर अपने श्यामल शरीर पर सुन्दर गौर वर्ण की पवित्रा धारण किए हुए हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी उनके इस अद्भुत सौंदर्य का दर्शन कर अन्य सखी से कहती हैं—अरी सखी! ऐसा प्रतीत होता है मानों साक्षात् रति ही श्रीश्यामसुन्दर की बाँकी छटा का छक करके दर्शन करती हुई अपने पति काम का भी विस्मरण कर गई है। सभी सखियाँ मन-ही-मन बड़ी ही मग्न हो रही हैं और सोचती हैं कि यह माला [पवित्रा] है या कोई स्त्री! क्योंकि ऐसी दिव्य, अद्भुत एवं सुन्दर छवि तो पूर्व में कभी देखने-सुनने में ही नहीं आई ॥२॥ मुझे तो सखी, ऐसा लगता है कि त्रिलोक की सारी सम्पति (मानों) मेरे ही घर में आ बसी है और इसका निर्माणकर्ता जो विधाता है, वह भी इसी स्थान पर आ बसा है ॥३॥ श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन चतुर्थ प्रहर में श्रीप्रियाप्रियतम को चित्रमई [पंचरङ्गी] पवित्रा धारण किए देखकर श्रीहरिप्रिया सहचरी को उसके रूप में कामदेव की पत्नी रति का भ्रम हो जाता है ॥४॥१०१॥

॥ दोहा ॥

सुकलपक्ष एकादशी, सावन परम उदार।
आजु पवित्रा दिन बड़ो, गावो मङ्गलचार॥

॥ पद ॥१०२॥

सखी री ! गावो मङ्गल चार ।
प्रीतम दोऊ पवित्रा पहिरें आज बड़ौ त्यौहार ॥१॥
सुकल-पक्ष पावन सावन की एकादशी उदार ।
जुगलचन्द्र छबि देखि देखि कें लेहु सबैं सुखसार ॥२॥
विविध भाँति मेवा अरु मिश्री दार्यो दाख छुहार ।
कनक थार भरि भोग लगावो आनन्द लहौ अपार ॥३॥
बीरी रचि-रचि देहु कमल मुख करिकें तिलक लिलार ।
करौ आरतौ श्रीहरिप्रिया कौ जाओ अलि बलिहार ॥१०२॥

॥ दोहा ॥

परम रमणीक श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी का दिन बड़े भाग्य से प्राप्त हुआ है । श्रीहरिप्रिया सहचरी इसे पवित्रा-दिवस के रूप में मनाने के लिए सहचरियों को मङ्गल गीत गाने की प्रेरणा देती हैं ।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरी सखियों ! मङ्गलाचरण के सुन्दर गीत गाओ । क्योंकि प्राण-प्यारे और प्राणप्यारी दोनों पवित्रा धारण किए हुए हैं । सचमुच ही आज का दिन बड़े उत्सव-त्योहार का दिन है ॥१॥ श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की परम पवित्र आज एकादशी तिथि है, जो पवित्रा एकादशी के नामसे ही जानी जाती है । ऐसे पुण्य दिवस पर सर्वस्व सुख के सार श्रीयुगलचन्द्र की बाँकी छटा को निरख-निरख कर जीवन का परम लाभ ले ले ॥२॥ स्वर्ण के थालों में अनार दाना, किसमिस, छुहारा, मिश्री आदि विविध प्रकार के मेवा भर-भर कर श्रीप्रियाप्रियतम को भोग लगाकर अपार आनन्द प्राप्त कर लो ॥३॥ उनके मस्तक पर सुन्दर (रोली का) टीका करके उनके सुन्दर कमल-मुख में ताम्बूल लगा-लगाकर खिलाओ । हे सखी ! तत्पश्चात बड़े थाल में आरती सजाकर नवदम्पति की आरती उतारो और इन पर बार-बार बलिहारी जाओ ॥४॥१०२॥

॥ दोहा ॥

लसत सुभग उर स्याम कें, मन मोहन सब ठाट ।
देखहु री पचरङ्ग कौ, बन्यो पवित्रा पाट ॥

॥ पद ॥१०३॥

देखौ री आज पवित्रा पहिरें प्रीतम पचरँग पाट कौ।
सोहत सुभग स्याम उर ऊपर अतिहिं सलोनें घाट कौ॥
अछत सहित राजत रोरीकौ र.जन तिलक ललाट कौ।
श्रीहरिप्रिया निरखि यह सोभा मन मोह्यौ सब ठाट कौ॥१०३॥

॥ दोहा ॥

अरी सखियों ! देखो तो सही, प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर ने पचरङ्गी (लाल, हरा, नीला, पीला और गुलावी) रेशमी धागों से बनी पवित्रा धारण कर रखी है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों श्रीश्यामसुन्दर के वक्षःस्थल पर मन का मोहन करने वाली सारी सामग्री शोभायमान हो रही है।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरी सखियो, देखो तो सही आज प्रियतम श्यामसुन्दर पचरङ्गी रेशमी पवित्रा धारण कर रखी है। वह उनके सुन्दर श्यामल वक्षःस्थल पर तलवार की सुन्दर (चमकीली) धार की सदृश शोभायमान हो रही है।१। उनके मस्तक पर अक्षत (चाँवल के दानों के) सहित आनन्दकारी रोली का टीका शोभायमान हो रहा है। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि इस प्रकार तड़क–भड़क की सारी सामग्री से युक्त श्रीप्रियाप्रियतम का दर्शन कर मन मोहित हो रहा है॥२॥१०३॥

॥ दोहा ॥

रच्यौ अली विधिसों भली, परम पवित्रा चार।
रङ्गरली कर लेइ कें, पहिराये सुकुंवार॥

॥ पद॥१०४॥

पवित्रा रच्यौ सुरङ्ग सुढार।
बीचि-बीचि चौबीस ग्रन्थि सुठि साठि तीन सत तार॥
मंत्रित करि कर लेय रँगीली पहिराये सुकुंवार।
कहा कहों सोभा तिहिं छिनकी भयो विमोहित मार॥
गावहिं अली मिली सुर मङ्गल करि जय सब्द उचार।
श्रीहरिप्रिया प्रानप्रीतम की जाय जाय बलिहार॥१०४॥

॥ दोहा ॥

अरी सखी ! प्रेम के रङ्ग में रङ्गी श्रीरङ्गदेवीजी विधि पूर्वक बनाई गई परम पावन सुन्दर पवित्रा को अपने होथों में लेकर सुन्दर श्रीकुँवर जी को धारण करा रही हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं—हे सखी ! देख तो, यह पवित्रा मिलते-जुलते रङ्गों से बनी हुई कितनी सुन्दर लग रही है। इसके बीच-बीच में पाँच रङ्ग के दश रेशमी तारों [धागों] से सुन्दर-सुन्दर गाँठें बनाई गई हैं ॥१॥ ऐसी सुन्दर पवित्रा को अभिमंत्रित कर रंगरंगीली श्रीरंगदेवीजू अपने हाथों में लेकर सुकुमार श्रीकुँवरजी को धारण करा रही हैं। अरी सखी ! इस समय की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। साक्षात् काम भी इस शोभा का दर्शन कर विमोहित हो गया है ॥२॥ अन्यान्य और सखियाँ भी परस्पर मिल–जुलकर मधुर स्वर से जय-जय कार करती हुई मङ्गल गीत गा रही हैं। इस प्रकार श्रीहरिप्रिया आदि सहचरियाँ श्रीप्राणप्रियतम जय-जयकार करती हुई बलिहारी जाती हैं ॥३॥१०४॥

॥ अनुरागिनि मुक्तमाला मध्याभास ॥

(राखी)

॥ दोहा ॥

रतनसुन्दरी जतन रचि, अतन रहस्य रमाय।
राखी रङ्गीली छबि निरखि, पल-पल लेति बलाय॥

॥ पद ॥१०५॥

रङ्गीली राखी रहसि रमाय।
अतन जतन रचि रतन सुन्दरी कर बन्धन करवाय॥
बैठे हैं दोउ सुभग सिंहासन अद्‌भुत छबि रही छाय।
श्रीहरिप्रिया निरखि नैनन भरि पल-पल लेति बलाय॥१०५॥

॥ दोहा ॥

यत्न पूर्वक बनाई गई रत्न जटित सुन्दर राखी काम की रहस्यमयी लीला कर रही है। वह प्रिया–प्रियतम की छवि का दर्शन कर अनुराग से भर जाती है और (उनके हाथों में लिपट कर) क्षण-क्षण में उनकी बलैया लेने लगती है।

॥ पद ॥

राखी के दिन श्रीप्रियाप्रियतम ने अपनी कलाईयों में रत्नजटित सुन्दर राखी बाँध रखी है। उसी का वर्णन करती हुई श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं।

रङ्गभरी राखी रसकेलि कर रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानों स्वयं कामदेव ने यत्नपूर्वक सुन्दर रत्नों से जड़कर उसे श्रीप्रियाप्रियतम के हाथों में बाँध दिया हो। राखी बँधन करवाकर श्रीयुगल किशोर सुन्दर सिंहासन पर बैठे हुए अद्भुत शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी बार-बार अपने नेत्रों से निरखती हुई उनकी बलैया ले रही हैं ॥१०५॥

॥ अनुरागिनि सुरंगांगा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सावन पून्यौं सलून्यौं, धरि दूनौ छबि हीय।
रक्षाबन्धन करति हैं, कर श्रीफल दै तीय ॥

॥ पद ॥१०६॥

सावन सुकल सलोनी पून्यौ।
रक्षाबन्धन करत सहचरी धरति हियें छबि दून्यौ ॥
कर पकराय सुरङ्गित श्रीफल पढ़त मन्त्र तजि मून्यौ।
देत असीस सदा सुख बिलसौ श्रीहरिप्रिया सलून्यौ ॥१०६॥

॥ दोहा ॥

श्रावण की सुन्दर पूर्णिमा के दिन सभी सहचरियाँ अपने हृदय में श्रीयुगल वर की छवि धारण कर, उनके कर–कमलों में श्रीफल समर्पित करती हुई उन्हें राखी-बाँध रही हैं।

॥ पद ॥

श्रावण शुक्ल पक्ष की सुन्दर पूर्णिमा के दिन सखियाँ श्रीप्रियाप्रियतम को रक्षा बन्धन करती हुई उनकी बाँकी झाँकी को अपने हृदय में धारण कर रही हैं। आज वे मौन को त्याग कर (प्रेम) मन्त्र पढ़ती हुई उनके कर कमलों में (प्रेम) रङ्ग रंजित श्रीफल समर्पित कर रही हैं। वे सब की सब मिलकर यह आशीष दे रही हैं कि श्रीप्रियाप्रियतम इस सलोने दिवक की भाँति सदा-सर्वदा इसी प्रकार सुख–विलास करते रहें ॥१०६॥

॥ अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

प्यारी कर पकराय कें, कह्यो लेहु बलिहारि।
रक्षा बाँधति रतन की, बहुत जतन बिस्तारि॥

॥ पद ॥१०७॥

रतन की राखी सखी बाँधति जतन सों।
प्यारीजू कें कर पकराय कह्यौ लेहु बलि,
नेह गुन पोई अति आभा है अतन सों॥
सुन्दर सलोनी अनहोनी औ अपूरब है,
बहुत विचित्रता कै नीपजी न तन सों।
श्रीहरिप्रियाजू कें लायक बिराजै यह,
छाजै छबि जाकी जब राजै भुजलतन सों॥१०७॥

॥ दोहा ॥

सखी–सहचरियाँ बहुत यत्न पूर्वक रत्न–जटित सुन्दर राखी को श्रीप्यारीजू के कर कमल में समर्पित करती हुई बलिहारी जाती हैं।

॥ पद ॥

सुन्दर रत्नों से जटित राखी को सहचरियाँ बड़े ही यत्न से बाँध रही हैं। वे श्रीप्रियाजी की बलैया लेती हुई उनके हाथ में पकड़ाकर उसे स्वीकार करने की प्रार्थना करती हैं कि उसे उन्होंने प्रेम रूपी धागे में पिरोया है और काम (प्रेम) की आभा देकर उसे चमकाया है। आगे कहती हैं—हे प्यारीजू ! यह राखी बड़ी सुन्दर-सुहावनी है, यह न तो पहले कभी थी और न ही भविष्य में कभी होगी। इसकी प्राकट्य (निर्माण) गाथा बड़ी विचित्र है-यह अदृश्य (भाव) से उत्पन्न हुई है। हे प्यारीजू ! हम सत्य प्रतीति पूर्वक कह रही हैं कि यह केवल आप दोनों प्रियाप्रियतम के ही धारण करने योग्य है। जब यह आपकी भुजाओं रूपी लताओं में विराजमान होती है तो इसकी छबि बड़ी सुहावनी–मनभावनी लगने लगती है ॥१०७॥

॥ अनुरागिनि अर्कविन्दा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

गजगवनी रवनी सबैं, सजि पूजा कौ साज।

राखी बाँधनकों चली, रङ्गमहल में आज ॥

॥ पद ॥१०८॥

रङ्गमहल में आज री दोउ लाल बिराजें।
राखी बाँधन सहचरी मिलि चली समाजें ॥१॥
जगमगात गजगामिनी पग नूपुर बाजें।
पहिरें बसन सुहावने नग भूषन राजें ॥२॥
थार भरी सब सौंज की कर कंजनि भ्राजें।
गावत गीत सुरीति सों मधुरे सुर साजें ॥३॥
अरचे आय उमंग सों अति ही छबि छाजें।
श्रीहरिप्रिया प्रसन्न ह्वै पुरये मन काजें ॥४॥१०८॥

॥ दोहा ॥

गजगामिनी सभी रमणियाँ पूजा की सारी सामग्री सजाकर आज रक्षाबन्धन-हेतु श्रीप्रियाप्रियतम के रङ्ग महल की ओर चल पड़ीं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं अरी सखी ! श्रीलाड़िलीलाल दोनों आज रङ्ग-महल में विराजमान है। सभी सखी सहचरियाँ झुण्ड की झुण्ड मिल-जुल कर राखी बाँधने के लिए रङ्गमहल में पहुँच रही हैं। उन गजगामिनियों ने अपने अङ्गों पर सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कर रखे हैं। उनके शरीर पर रत्न जटित आभूषण जगमग-जगमग कर रहे हैं और पैरों में धारण किए गए नूपुर बज रहे हैं ॥१॥ उनके कर कमलों में पूजन की सामग्री से भरे हुए थाल शोभायमान हो रहे हैं। वे स जबाज के साथ मधुर स्वरों में सुन्दर ताल गीत गाती जा रही हैं ॥२॥ रंगमहल में पहुँच कर बड़ी उमङ्ग से भरकर वे श्रीप्रियाप्रियतम का पूजन करती हुई बड़ी ही शोभायमान लग रही हैं। श्रीप्रियाप्रियतम ने उनकी इस अद्भुत प्रीति की रीति से प्रसन्न होकर उनकी सारी मनोकामनाएँ पूरी कर दी हैं ॥१०८॥

॥ अनुरागिनि मुक्तमाला मध्याभास ॥

(पाछली तीज)

॥ दोहा ॥

पुलक दोउ अङ्ग अङ्ग में, नवजोवन समतूल ।
तीज हिंडोरे झूलहीं, कालिन्दी के कूल ॥

॥ पद ॥१०६॥

तीज हिंडोरे झूलत फूले नवजोवन समतूले ।
पुलक परस्पर दोउ सुंदरबर गहि डाँडी भुजमूले ॥
उदित अनंग अङ्ग अङ्गनि में खग मृग सब सुधि भूले ।
श्रीहरिप्रिया प्रसन्न बदन क्रीड़त कालिंदी कूले ॥१०६॥

॥ दोहा ॥

पिछली तीज पर श्रीप्रियाप्रियतम दोनों समवयस्क अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग से पुलकायमान हो कालिन्दी के कमनीय कूल (किनारे) पर हिंडोला झूल रहे हैं ।

॥ पद ॥

समान आयु वाले नव युवक श्रीलालजी और नवयुवती श्रीप्रियाजी दूसरी तीज पर (यमुना किनारे) हिंडोला झूलते हुए पुलकायमान हो रहे हैं । वे परस्पर भुजाओं से भुजाएँ मिलाकर हिंडोले की डंडी पकड़े हुए हैं । श्रीहरिप्रिया-सहचरी कहती हैं कि कालिन्दीकूल पर प्रफुल्ल वदन श्रीप्रियाप्रियतम को क्रीड़ा करते देख वन के खग-मृग आदि पशु-पक्षियों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्रेमानुराग से भर उठते हैं और वे आत्म-विस्मृत हो जाते हैं ॥१०६॥

॥ लालजू की बधाई ॥

॥ दोहा ॥

कर कंचन की थार धरि, भरि पूजा को साज ।
बजत बधाई महल में, आई सखी-समाज ॥

॥ पद ॥११०॥

महल में बाजत आज बधाई, बनि-ठनि सखी सब आई ।
बरन बरन सारी तन पहिरें लागत परम सुहाई ॥१

सकल सौंज भरि-भरि थारिन में कर कंजनि धरि लाई।
प्रानप्रियन कों पूजि परस्पर करत केलि मन भाई ॥२॥
सुरत समुद्र झकोरी गोरी अङ्ग-सङ्गिनि सरसाई।
लहलहाति रङ्गभीनी भामिनि दामिनि-सी दरसाई ॥३॥
उमँगि उमँगि अनुरागनि रागनि तान तरङ्ग बढ़ाई।
ना ना न न न न न न न न ना ना अति अद्भुत छबि छाई ॥४॥
सुनि सुनि परम प्रसंसत दोऊ आदर निकट बुलाई।
श्रीहरिप्रिया सकल जुवतिनि की मन अभिलाष पुराई ॥११०॥

॥ दोहा ॥

श्रीकृष्णजन्माष्टमी के पावन पर्व पर सखीसहचरियाँ रङ्गमहल में श्रीलालजी को उनके जन्मदिन की बधाई देने पहुँच रही हैं। उसी का वर्णन प्रस्तुत पद में किया गया है) रङ्गमहल में नौबत बजती देख सखी-सहचरियाँ पूजा की सामग्री से भरे हुए थालों को अपने हाथों पर रखकर श्रीलालजी को बधाई देने पहुँच रही हैं।

॥ पद ॥

श्रीरङ्गमहलं में जाज़ नौबत (बधाई) बज रही है। सभी सखियाँ बन-ठन करके श्रीलालजी को उनके जन्म की बधाई देने पहुँच रही हैं। उन सखी ने अपने शरीर पर रङ्ग-विरङ्गी साड़ियां धारण कर रखी हैं, जो बड़ी ही सुन्दर लग रही हैं। वे बड़े-बड़े थालों को पूजा की सामग्री से भर-भर कर अपने कर कमलों पर धर लाई हैं। श्रीप्रिया-प्रियतम का अर्चन वन्दन करके वे परस्पर मनचाही क्रीड़ा (नृत्यादि) कर रही हैं। अङ्ग-संगिनी वे सहचरियाँ सुरत-समुद्र के झोंकों से जूझती हुई रस से सराबोर हो रही हैं। वे गौरांगनाएँ प्रेम के रङ्ग में डूबकर हिलोरें लेती हुई बिजली के समान दिखाई दे रही हैं। उनका हृदय अनुराग-प्रेम से उमङ्गित हो रहा है। सुन्दर-राग-रागिनियों में वे अपनी तान छेड़ रही हैं। जब वे प्रेम-केलि करती हुई 'न न न न' की तान छेड़ती हैं तो उनके मुखों पर अद्भुत शोभा छा जाती है। श्रीप्रियाप्रियतम उनकी इस सुन्दर तान को सुनकर उनकी बड़ी ही प्रशंसा करने लगते हैं और उन्हें अपने निकट बुला लेते हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं कि इस प्रकार श्रीलाड़िलीलाल सभी सखियों की मनोभिलाषा पूरी कर रहे हैं ॥११०॥

॥ अनुरागिनि धन्यभागा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

प्रान वारि बलिहारि लै, सुधि बुधि सकल विसारि !
बदन सुधानिधि निरखि कें, फूली तन सहचारि ॥

॥ पद ॥१११॥

सहचरि फूली अङ्ग न माई ।
बदन-सुधानिधि निरखि स्याम कौ सब मिलि मोद बढ़ाई ॥१॥
बारत प्रान लेत बलिहारी तन मन सुधि बिसराई ।
गावत गीत पुनीत महल में धुनि अम्बर छिति छाई ॥२॥
भरि भरि मोतिन थार परस्पर डारत अति छबि पाई ।
परम प्रेम रस बोरी गोरी निरखत नैंन सिराई ॥३॥
छूटत पट आभूषन टूटत सुख लूटत अधिकाई ।
जय जय जय रव करि करि बोलत डोलत डोल सुहाई ॥४॥
भादों-कृष्ण-रोहिनी आठें अर्द्धनिसा जब आई ।
प्रगटे श्रीहरिप्रिया प्रान धन भई सबन मनभाई ॥१११॥

अनुरागनि धन्यभागामध्याभास=रागधनाक्षी वारि=न्योछावर । बिसारि=भूल कर । सुधानिधि=चन्द्रमा । फूली=प्रफुल्लित । माई=समाना । मोद=प्रसन्न । वारत=न्योछावर करना । अम्बर=आकाश । छिति=पृथ्वी । रव=ध्वनि ।

॥ दोहा ॥

सखी–सहचरियाँ श्रीप्रियाप्रियतम के मुख चन्द्र का दर्शन कर परम प्रफुल्लित हो रही हैं । वे अपनी सारी सुध-बुध खोकर उनकी बलैया लेती हुई अपने प्राणों को न्योछावर कर देती हैं ।

॥ पद ॥

श्रीप्रियाप्रियतम के चन्द्रमुख का दर्शन कर सहचरियाँ फूली अङ्ग नहीं समाती हैं । वे परस्पर मिलकर के प्रसन्नता व्यक्त कर रही हैं । उन्हें अपने तन-मन की सुध नहीं है । श्रीप्रियाप्रियतम की बलैया लेती हुई उन पर न्योछावर जाती हैं । परम पुनीत रंगमहल उनके द्वारा गाये गये गीतों की ध्वनि सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाश मण्डल में छा गई है ।१।

वे हर्षोल्लास में मोतियों से भरे हुए थालों को एक दूसरे पर उँडेलती हुई परम शोभायमान लग रही हैं। वे दिव्य प्रेम–रस से ऐसी सराबोर हो रही हैं कि उनके दर्शनमात्र से नेत्र शीतल हो जाते हैं। नृत्य-गान की मुद्रा में उनके शरीरांगों पर धारण किए गए वस्त्र खुल पड़े हैं, आभूषण टूट गए हैं फिर भी वे अधिक से अधिक मात्रा में सुख लूट रही हैं। जय-जय कार की ध्वनि के साथ इधर से उधर घूमती हुई बड़ी सुन्दर लग रही हैं। भाद्रपद मास की कृष्णपक्ष की अष्टमी की अर्द्धरात्रि के समय रोहिणी नक्षत्र में प्राणधन श्यामसुन्दर को प्रकट हुआ देख श्रीहरि प्रियासमेत सभी सहचरियाँ सफल मनोरथ हो गईं ॥१११॥

॥ दोहा ॥

देहु हमें मन मानती, तो सी त्रिभुवन नाहिं।
नवल लाल के सोहिलें, हम आईं सब चाहि ॥

॥ पद ॥११२॥

लालजू के सोहिलें हम आईं सब चाहिं।
देहु बधाई मनकी मानी जाकों देखि सिहाहिं ॥
भाग सुहागनि भरी सहचरी तोसी त्रिभुवन नाहिं।
श्रीहरिप्रिया प्रानधन जीवन सदा रहैं उर माहिं ॥११२॥

सोहिलें=सोहला (जन्म के समय गाये जाने वाले मङ्गल गीत)। सिहाहिं ललचाती हैं।

॥ दोहा ॥

सभी सहचरियाँ श्रीप्रियाजी से निहोरा करती हुई कहती हैं—'हे श्रीप्रियाजी ! आपके सदृश सम्पूर्ण त्रिभुवन अन्य कोई नहीं है। हम सब नवल–लाड़िले लाल की जन्म-बधाई के मङ्गल गीत गाने यहाँ आई हुई हैं। हमारी मनोकामना पूरी करिए।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखियो ! हम सब यहाँ श्रीलालजी का सोहला मनाने के लिए आई हुई हैं। जिन्हें हम देख–देखकर सदा सिहाती रहती हैं ऐसे श्रीलालजी को (उनके जन्मोत्सव पर) अपनी अपनी मन की मान्यता के अनुसार बधाई दो। भाग्य–सौभाग्य से भरी सहचरियाँ श्रीप्रियाजी की सराहना करती हुई कहती

हैं—कि श्रीप्रियाजी के समान तीनों लोकों में कोई अन्य सौभाग्य सीमंतिनी नहीं हैं जिनके हृदय में प्राण-धन जीवन श्रीश्यामसुन्दर सदैव विराजमान रहते हैं ॥११२॥

॥ दोहा ॥

करहु अलंकृत महल कों, महामहोत्सव पाय ।
बरष गाँठ बिलसाइये, सब मिलि मङ्गल गाय ॥

॥ पद ॥११०॥

बरषगाँठि मोहन की, सब मिलि मङ्गल गावौ ।
रंगमहल के राय आँगन में मोतिन चौक पुरावौ ॥टेक॥
द्वार-द्वार प्रति ध्वजा पताका बन्दनमाल बँधावौ ।
सींकनि सहित साँथिया रचि-रचि बिच-बिच लूम लगावौ ॥१॥
हरे पातकी कदली रोपौ पटह निसान बजावौ ।
यथारीति अन्हवाय ललनकों पीताम्बर पहिरावौ ॥२॥
रतनजटित कंचन-सिंहासन पर दम्पति पधरावौ ।
तिलक रचाय रुचिर रोरी के ऊपर अछत चढ़ावौ॥३॥
स्वस्तिवाचिनी अलियनिसौं मिलि विमली बेद पढ़ावौ ।
सुनि सुनि बानी उनके मुखकी पुनि पुनि हिये सिहावौ ॥४॥
सब मङ्गल कौ मूल महोत्सव प्रति भादों प्रमुदावौ ।
श्रीहरिप्रिया प्रानप्रीतम कों नव नव नेह लड़ावौ ॥५॥११३॥

अलंकृत=सुशोभित । राय अङ्गन=बड़ाचौक । सांथिया=स्वस्तिक । लूम=पूंछ, दुम । कदली=केला । पटह=नगाड़ा, मृदङ्ग । अछत=पूजा के चावल । स्वस्ति-वाचन=मङ्गलस्तुति । अलियनि=सखियों । विमली=निर्मल । प्रमुदावौ=प्रसन्न होना ।

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं—अरी सखियो ! आज महामहोत्सव का अवसर है ? रङ्गमहल को खूब सजा दो । सब मिलकर मङ्गल गीत गाओ और (श्रीलालजी की) वर्षगाँठ का आनन्द प्राप्त कर लो ।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—'अरी सखियो ! आज प्रियतम श्यामसुन्दर

की वर्षगाँठ है। अतः रङ्ग महल के विशाल आँगन में मोतियों के चौक पूरो और सब मिलकर (जन्म के) मङ्गल गीत गाओ। रङ्ग महल के प्रत्येक दरवाजे पर ध्वजा पताका और बंदनबार बाँधकर दोनों ओर सींकों के साथ स्वस्तिक बनाकर उनके बीच-बीच में लूम लगाओ। हर पत्तों से युक्त कदली स्थापित करो और नगाड़ा मृदङ्ग आदि बाजे बजाओ। फिर यथानुसार सुन्दर रीति से श्रीलालजी को स्नान कराकर पीताम्बर धारण कराओ। तत्पश्चात् श्रीप्रियाजी के समेत उन्हें रत्न जटित स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान करो। उनके मस्तक पर रोली का सुन्दर तिलक बनाकर उसके ऊपर अक्षत चढ़ाओ। फिर जो स्वस्तिवाचन करने में पारंगत हों ऐसी सखियों से वेद की सुन्दर ऋचाओं का पाठ पढ़वाओ। उनके मुख से निकलते हुए मंगल मय वचनों को पुनः पुनः सुन कर अपने हृदयको आनन्द से भर लो। इस प्रकार श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं–अरी सखियो! जन्माष्टमी का यह महोत्सव सभी मंगलों का मूल है। इसे प्रत्येक भाद्रपद मास में बड़े ही हर्षोल्लास पूर्वक मनाना जाहिए। प्राणधन प्रियतम को नित्य नया-नया लाड़ लड़ाओ, यही जोवन का सार है ॥११३॥

॥ दोहा ॥

मानहुँ परसन प्रेमनिधि, उमँगी सलिता पाँति।
बजत बधाई श्रवन सुनि, अली चली भली भाँति ॥

॥ पद ॥११४॥

बजत बधाई आज भली री।
छिति अम्बर दिसि छाय रही धुनि सुनि सुख होत अली री ॥१॥
कर लियें थार सकल जुवतीजन सजि सिंगार चली री।
गावत गीत पुनीत रीति सों सोहत कुंज-गली री ॥२॥
आनन्दसिन्धु बढ्यौ अङ्ग अङ्ग में बाढी रङ्गरली री।
प्रीतम उदै प्रसन्न होत हैं जैसे कुमुदकली री ॥३॥
ठौर ठौर मङ्गलमय ओपी रोपी कल कदली री।
मञ्जुलमुक्ता चौक पुराये थरपित कलस थली री ॥४॥
पहुँची आय राय आँगन में ज्यों सुखसलित ढली री।
श्रीहरिप्रिया प्रेमनिधि परसन इत उत डग न टली री ॥५॥११४॥

परसन=स्पर्श करने। प्रेमनिधि=प्रेम के सागर। सलित=सरिता। पांति=पंक्ति। छिति=पृथ्वी। अम्बर=आकाश। कुमुदकली=कमलिनी। रोपी=स्थापित। ओपी=प्रकाशित, आभायुक्त। कल–कदली=सुन्दरकेला। थरपित=स्थापित। राय–आङ्गन=बड़े आङ्गन।

॥ दोहा ॥

भादों कृष्ण अष्टमी के दिन रंगमहल में बजती हुई बधाई को सुनकर सखी-सहचरियाँ सज धज कर बड़ी उमंग के साथ प्रेमधन श्यामसुन्दर से मिलने चल पड़ीं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो उमड़ती हुई सरिता समुद्र से मिलने के लिए प्रवाहित हो उठी हो।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखी! रंगमहल में बजती हुई बधाई आज कितनी सुन्दर लग रही है। उसकी मधुर ध्वनि पृथ्वी-आकाश में सर्वत्र भर गई है जिसे सुनकर बड़ा ही सुख मिल रहा है। सभी युवतियाँ सज-धजकर अपने हाथों में (पूजा के) थाल लेकर बड़े सुन्दर–पवित्र ढंग से कुञ्जगली में गीत गाती हुई शोभायमान हो रही हैं ॥१॥ उनके अंग-अंग में आनन्द का समुद्र प्रवाहित हो उठा है। प्रेम के रंग से वे सराबोर दिखाई दे रही हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण के [उषःकालीन सूर्य की भाँति] प्राकट्य-पर्व का दर्शन कर वे कुमुदिनियों की भाँति खिल उठी हैं अर्थात् प्रसन्न हो रही हैं ॥२॥ उन्होंने प्रसन्न होकर (रंगमहल में) जगह-जगह मंगल–दीप और केले के खंभ स्थापित कर दिये हैं। मोतियों के सुन्दर–सुन्दर चौक पूर कर कलश-स्थली पर मंगल कलश स्थापित कर दिया है ॥३॥ इस प्रकार सभी सहचरियाँ सुख रूपी सरिता की भाँति उमड़ती हुई रंगमहल के राय आँगन (बड़े चौक) में जा पहुँचीं और प्रेमरस के सार समुद्र श्रीलाड़िलीलाल का संस्पर्श प्राप्त अपनी सारी सुध-बुध खो बैठीं—एक कदम भी इधर-उधर न चल सकीं ॥११४॥

॥ दोहा ॥

जित देखौं तितहीं तितें, दूनी दुति सब ठौर।
मुख प्रसन्न लखि लालकौ, भई ओप कछु और॥

॥ पद ॥११५॥

आजु कछु औरें ओप भई।
जित देखौं तितहीं तित दीखत मङ्गल मोद मई ॥१

जस धारा नीको महिमावलि दिसि बिदिसान छई।
आनन्द के आनन्द उदै भयो दूनी दमक दई ॥२
बनबेली बिमली अनुकूली फूली फूल नई।
श्रीहरिप्रिया प्रसन्न बदन लखि तन मन सूल गई ॥३॥११५॥

ओप=आभा, प्रकाश। दुति=द्युति, आभा, शोभा। मोदमई=प्रसन्नता से भरी। नीकी=सुन्दर। महिमावलि=महिमा की अवलि (पंक्ति या सरिता)। दमक=चमक। विमली=निर्मल। नई=झुकी या नवीन।

॥ दोहा ॥

[जन्मोत्सव पर] जहाँ भी दृष्टि जाती है उसी स्थान की शोभा दुगुनी दिखाई देती है। श्रीलालजी के प्रफुल्ल मुख का दर्शन कर मानो प्रत्येक स्थान की आभा कुछ की कुछ हो गई अर्थात् बढ़ गई।

॥ पद ॥

श्रीलालजी की जन्मगाँठ के अवसर पर बजती हुई बधाई से रङ्गमहल की जो शोभा बढ़ गई है, उसी का वर्णन करती हुई श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखी! आज तो रंगमहल की शोभा कुछ और ही हो गई है। जहाँ भी दृष्टि जाती है, वहीं आनन्द-मंगल का वातावरण दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो [श्रीलालजी की] महिमारूपी सरिता की सुन्दर धारा उमड़ कर दशों दिशाओं में चारों ओर छा गई हो। आनन्द से आनन्द का प्राकट्य होने से सर्वत्र दुगनी शोभा बढ़ गई है। आनन्द का ऐसा अनुकूल अवसर प्राप्त कर वन की निर्मल लता-वल्लरियां भी फूलकर नवीन उमंग से भरी हुई दिखाई दे रही हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं-कि श्रीलाल जी के प्रफुल्ल मुखका दर्शन कर सभी सखियों के तन-मन सारी पीड़ा ही समाप्त हो गई है।११५

॥ अनुरागिनि बिलासावली मध्याभास ॥

[प्रियाजू की बधाई]

॥ दोहा ॥

नखत बिसाषा रुचिर में, अरुनोदय सुखदाय।
भादों सुकला अष्टमी, प्रिया जनम जस गाय ॥

॥ पद ॥११६॥

भादों सुकला अष्टमि आई, अरुनोदय बिरियाँ सुख दाई।
नखत बिसाखा रुचिर महा री, प्रिया जनम उत्सव अति भारी॥
भारी अति उत्सव प्रियाजू कौ जनम मंगल गावहीं।
निरखि सोभा हरषि हिय में परम प्रीति बढ़ावहीं॥
रचहु रचना विविध विधिसौं चारु आङ्गन चरचिये।
बाँधि बन्दनमाल द्वारनि ध्वज पताका सुरचिये॥१

धरहु साँथिये सींक जुरावौ, मञ्जुल मुक्ता चौक पुरावौ।
विधिवत कलस थरपना करिये, मधि अक्षत पुङ्गीफल धरिये॥
धरिये पुङ्गीफल जु अक्षत वेद बच उचराइये।
मधुर दुग्ध न्हवाय प्रिया कौं कनक-पट पधराइये॥
पीत सारी लाल लहँगा स्याम अङ्गिया अतलसी।
आडकेसरि नाक बेसर निपट सादी मुखससी॥२

अङ्ग अङ्ग की अमित गुराई, निरखि लाल जीवनि सी पाई।
आनन्दित उर माँहिं उमाहैं, सुन्दरि भुज भरि भेंट्यौ चाहैं॥
चाहैं भेंट्यौ भरि भुजनि सों सहचरी तन चितवहीं।
एक छिन बिन परस पियकौं बरस बरसनि बितवहीं॥
अति विचछिन जानि जिय में दया रस भींजीं भली।
स्याम के अङ्ग सङ्ग सुन्दरि करी आरोपित अली॥३

लटकि दियौ अधरामृत प्यारी, भरि लीनी प्रीतम अँकवारी।
जुगल किसोरी जोरी सोहैं, देखत कोटि काम रति कोहैं॥
कोहैं रति अरु काम कोटिक सकल जन मन को हरैं।
महा मोहन रूप अद्भुत स्वइच्छा क्रीड़ा करैं॥
लेहु री! निज नैंन को फल धन्य भाग मनाइये।
अब अजन्मा प्रियाजू कौ जन्म मङ्गल गाइये॥४

सखी सहेली सहचरि बोली, वे आईं मिलि अनगन टोली।

एक एकतें अधिक अनूठी, तिनहिं प्रियाजू सब निधि तूठी ॥
तूठी निधि सब तिनहिं प्रियाजू प्रेमपुलकि न मावहीं।
बिबिध बाजे साजि सुरसों कण्ठ कोकिल गावहीं ॥
बढ्यौ अति उत्साह कौतिक सुनि श्रवन अति सुखभरें !
मँदुलरा कौं बाज कहि कहि जुगल को जस बिस्तरें ॥५

॥ पद ॥

आज बड़ो दिन आइयो बाजि बाजि मँदुलरा।
पिय प्यारी गुन गाहु अरे बाजि बाजि मँदुलरा ॥५

प्रकट भई जोरी भली, बाजि० लखि लखि लेहु लाहु अरे। बाजि० ॥६
रसिकन के हितकारने, बाजि० लीलारचत अनेक अरे। बाजि०।
जिनके गुन को बरनहीं, बाजि० चहिये बड़ो बिबेक अरे। बाजि ॥७
ये आईं सब सहचरी, बाजि० गावन तेरे सङ्ग अरे। बाजि०।
तू सब को सिरताज है, बाजि० तो बिन होत न रङ्ग अरे। बाजि० ॥८
या राय आँगन महल कें, बाजि० माच्यौ मङ्गलचार अरे। बाजि०।
आनंद अहलादिनि दोउ, बाजि० प्रगट कियो सुखसार अरे। बाजि० ॥९

श्रीरँगदेवी अति रँगभीनी, मनभाँवती बधाई दीनी।
जो जो जिनके जियकी बाधा, सो सो सबकी पुरई साधा ॥
साधा पुरई सबकी सो सो उनत रहैं कहो काइये।
कलपवृक्ष समीप चितामनी जो जब पाइये ॥
दैं असीस प्रसन्न ह्वै मुख कहत कामित सुख लहौ।
नित्य अविचल राज श्रीहरिप्रिया कौ राजत रहौ ॥१०॥११६

अनुरागनि विलासावली मध्याभास=रागविलावल। चरचिये=सुसज्जित करना! साँथिये=स्वस्तिक। अक्षत=चावल। पुङ्गीफल=सुपाड़ी। अङ्गिया=चोली। अतलसी=गहरे रंगकी। आड़=आड़ाटीका मुखससी=चन्द्रमुखी। विचछिन=विचक्षण, चतुर, विद्वान्। आरोपित=स्थान। तूठी=प्रसन्न। मंदुलरा=एक प्रकार का बड़ा बाजा (मृदङ्ग)। कामित=इच्छित। राजत=शोभित।

॥ दोहा ॥

प्रस्तुत पद में भाद्रपद शुक्ल अष्टमी के सुखप्रद उषाकाल एवं सुन्दर विशाखा नक्षत्र में श्रीप्रियाजी की जन्म-बधाई का गायन किया जा रहा है।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि जन्माष्टमी के व्यतीत होते ही भाद्रपद शुक्ला अष्टमी अपनी सुखदाई अरुणोदयी बेला को लेकर सहसा प्रकट हो गई। उस समय विशाखा नक्षत्र अपने सौंदर्य और माधुर्य से जगमगा उठा, क्योंकि श्रीप्रियाजी के विशाल जन्मोत्सव के सान्निध्य का लाभ आज उसे प्राप्त हुआ है। सखी सहचरियाँ श्रीप्रियाजी के दिव्य भव्य जन्मोत्सव पर मङ्गल–बधाई गायन कर रही हैं। वे श्रीप्रियाजी की अपूर्व शोभा का दर्शन कर हर्षोल्लास से भरकर अपने परम प्रेम को प्रकाशित कर रही हैं। इस पुण्य अवसर को पाकर श्रीहरिप्रिया सहचरी जी सखियों को सम्बोधित करती हुई कहती हैं—अरी सखियो ! विधि-विधान से उत्सव मनाने की तैयारी करो, आँगन को सुन्दर रीति से सुसज्जित कर द्वारा-द्वार पर बंदनवार बांधकर ध्वजा-पताका रोप दो। दरवाजे के दोनों ओर स्वस्तिक (चिन्ह) बनाकर उनमें सींकें लगा दो, मोतियों का सुन्दर चौक पूरो उसके मध्य में अक्षत (चावल) और पुङ्गीफल (साबुत सुपाड़ी) रखकर उसके ऊपर विधि पूर्वक कलश-स्थापन करो। अक्षत-पुंगीफल रखते समय सुन्दर वेद-मंत्रों का उच्चारण करो। फिर श्रीप्रियाजी को सुन्दर दुग्ध से स्नान कराकर उन्हें स्वर्ण पटल पर विराजमान करो। तत्पश्चात् उन्हें लाल रंग का लहँगा, गहरे श्याम रंग की अंगिया (चोली) और पीले रंग की साड़ी धारण कराओ। ललाट पर केशर का आड़ा टीका लगाओ, नासिका में चन्द्रमा के समान–सरल स्वाभाविक रूप से चमकती हुई बेसर धारण कराओ।

अरी सखियो ! देखो तो सही, श्रीप्रियाजी के अंग-प्रत्यंग की गुराई [गौर-आभा] को निरख कर श्रीलालजी कैसे प्रमुदित हो रहे हैं, मानों संजीवनी बूटी उन्हें हाथ लग गई हो। उनके हृदय में आनन्द उमड़ पड़ा है और वे अपने सुन्दर बाहुओं में भरकर उनसे भेंट करना चाहते हैं। किन्तु संकुचित हो सखियों की ओर देखने लगते हैं–श्रीप्रिया जी के आलिंगन के बिना उनका एक-एक क्षण एक एक वर्षके समान व्यतीत हो रहा है। वे चतुर सहचरियाँ अपने मन में प्यारे श्याम सुन्दर को इस प्रकार से आतुर जान भली प्रकार दयार्द्र हो उठी हैं और सुन्दर अंग वाली श्रीप्रियाजी को श्यामसुन्दर का अंगसंग कराकर उन्हीं के पास विराजमान कर देती हैं। अंगसंग होते ही श्रीप्रियाजी बाँकी लटक

से प्रियतम को अधरामृत पान कराती हैं और प्रियतम श्यामसुन्दर भी उन्हें अपने हृदय में भर लेते हैं।

श्रीयुगल किशोर-किशोरी की मधुर जोड़ी बड़ी ही शोभायमान लग रही है–उसके समक्ष कोटि कोटि काम और रति भी फीके पड़ जाते हैं। ठीक भी है जो सम्पूर्ण जन-मानस का हरण करने वाले हैं उनके समक्ष रति और काम भला किस गिनती में हैं ? वस्तुतः ये मनमोहन ही सर्वोपरि हैं। ये अपनी इच्छानुसार ही अद्भुत रूप धारण कर सदैव क्रीड़ाशील रहते हैं।

अरी सखियो ! आज अपने नेत्रों का सही लाभ ले लो और अपना धन्यभाग मनाओ जो आज श्रीप्रियाजू के जन्मोत्सव का दर्शन हुआ है। अब तुम सभी का कर्तव्य यह है कि उत्साह पूर्वक कभी न जन्म लेने वाली [अजन्मा] श्रीप्रियाजू के जन्म के मंगल गीत गाओ। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी की इस प्रकार की मधुर वाणी सुनकर सब की सब अपनी अनगिन टोलियों में मिलकर वहाँ आ पहुँची। वे सभी एक से एक बढ़-कर परम अनोखी थीं। वे सर्वस्व निधि श्रीप्रियाजी को पाकर बड़ी अह्लादित हो उठीं। वे प्रेमातिरेक से इस प्रकार पुलकित हो रही थीं कि वह पुलक उनके हृदय में नहीं समा रही थी। वे विविध प्रकार के बाजों से सुसज्जित हो स्वर से स्वर मिलाकर अपने कोकिल कण्ठ से मङ्गल गीत गाने लगीं।

श्रीप्रियाप्रियतम के सुन्दर यश को गाकर और सुनकर उनका हृदय परम उत्साह और कौतूहल से भर उठा। वे मृदङ्ग को बजा-बजाकर श्रीयुगल किशोर का गुणानुवाद करती हुई परम प्रसन्न हो रही हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी सखियों के हृदय में उत्साह भरती हुई कहती हैं–अरी सखियो ! आज का दिन बड़े ही भाग्य से प्राप्त हुआ है। अतः ताल-लय के साथ मृदङ्ग को बजा-बजाकर श्रीप्रियाप्रियतम का गुणगान कर लो। यह कैसी सुन्दर जोड़ी प्रकट हुई है, इसका दर्शन कर–जीवन का परम लाभ प्राप्त कर लो। रसिक जनों के हित अनेक प्रकार का लीला-विधान करने के लिए यह जोड़ी प्रकट हुई है। इन श्रीयुगल किशोर के गुणों का वर्णन करने के लिए भी बड़ा ज्ञान चाहिए होता है।

मृदङ्ग को सम्बोधित करती हुई श्रीहरिप्रियाजी कहती हैं—अरे मंदुलरा ! वे सब सहचरियाँ तेरे संग गाने के लिए ही यहाँ एकत्र हुई हैं अतः तू पुनः पुनः प्रेम पूर्वक बज। तू सब बाजों का शिरोमणि है, तेरे बिना समा ही नहीं बँधता है। आज रंगमहल के बड़े आँगन में मंगलाचरण का दौर मचा हुआ है। आनन्दकंद श्रीश्यामसुन्दर और

उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा दोनों ने मिलकर सुख का सार [नित्यविहार रस] प्रकट कर दिया है—इसके उपलक्ष्य में ओ मंदुलरा ! तू पुनः पुनः बज ।

इस प्रकार परम प्रेम के रंग में रंगी श्रीरंग देवी जू ने अपने मन की भावना के अनुसार श्रीप्रियाजू को जन्म-गाँठ की मंगल बधाई दी । और भी जिन–जिनके मन की जो-जो साध अथवा कमी थी उस–उसको भली भाँति पूरा किया । और उनसे कहने लगीं कि जब कल्पवृक्ष के नीचे चिन्तामणि प्राप्त हो गई है, फिर अन्यत्र जाने से क्या लाभ ? अर्थात् यहीं बास करो। श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं कि इस प्रकार श्रीरंगदेवीजू सभी सखियों का प्रसन्न मुख से आशीर्वाद देती हुई बोलीं कि तुम सबकी सारी इच्छाएँ पूरी हों और तुम सभी इसी प्रकार श्रीप्रियाप्रियतम के नित्य–अविचल-राज्य का सुख प्राप्त करती रहो ।।११६।।

।। दोहा ।।

करणा सब दुख चूरणा, मम सरणा सुकुंवारि ।
श्रीराधे प्राणाधिके, जयति कृष्ण सुखकारि ।।

जयति श्रीराधिका कृष्णसुखसाधिका सुगुण आगाधिका मम शरण्यं ।
जयति हरिभामिनी कृष्णघनदामिनी मत्तगजगामिनी मम शरण्यं ।।१
जयति रतिबर्द्धिनी सौभगरसर्द्धिनी प्रीतमसमर्द्धिनी मम शरण्यं ।
जयति रसदायिका पियसयनसायिका नित्यनवनायिका मम शरण्यं ।।२
जयति नवनागरी सर्वसुखसागरी दिव्यगुणआगरी मम शरण्यं ।
जयति दिव्यंगिनी स्यामनिजसंगिनी प्रेमरसरंगिनी मम शरण्यं ।।३
जयति मृदुहासनी नीलबरवासनी परमपरकासिनी मम शरण्यं ।
जयति मनमोहनी सर्बतनसोहनी दयासंदोहनी मम शरण्यं ।।४
जयति मृगलोचनी दृष्टिदुखमोचनी कृष्णमनरोचनी मम शरण्यं ।
जयति आनन्दनी गुह्यगुणछंदनी पीयमनफंदनी मम शरण्यं ।।५
जयति निधिरूपिका अद्भुतानूपिका भागवतिभूपिका मम शरण्यं ।
जयति कलकेलिनी रङ्गरसरेलिनी मदनमदपेलिनी मम शरण्यं ।।६
जयति जनपालिनी लोचनबिसालिनी रसिकारसालिनी मम शरण्यं ।
जयति जनतूरणा सर्बदुखचूरणा परानन्दपूरणा मम शरण्यं ।।७

जयति श्रियश्रेष्टिनी महारसवेष्टिनी परापरमेष्टिनी मम शरण्यं।
जयति मणिमालिका मंजुरससालिका प्राणपतिपालिका मम शरण्यं॥८
जयति पियपोषिका नित्यतनतोषिका सोकसरसोषिका मम शरण्यं।
जयति सुउदारिनी प्रियवदाचारिनी चरितचितहारिनी मम शरण्यं॥९
जयति जगजितुपमा नितम्बनिमनरमा बर्तुलस्तनसमा मम शरण्यं।
जयति पद्मानना बेणिवरबंधना केसमनरंजना मम शरण्यं॥१०
जयति श्रुतिगोचरा सरसकरुणाकरा रासरसतत्परा मम शरण्यं।
जयति नगभूषणा पियजलजपूषणा स्यामसंतूषणा मम शरण्यं॥११
जयति हरिकामिनी मनहरानामिनी प्रियाअभिरामिनी मम शरण्यं।
जयति बरलालिता लालहितसंहिता कृष्णहृदयस्थिता मम शरण्यं।१२
जयति छबिछाजिता कृशकटिबिराजिता नित्यसुखसाजिता मम शरण्यं
जयति भवभंजनी भक्तमनरंजनी सर्बसुखसंजनी मम शरण्यं॥१३
जयति सुभसुन्दरी महारसमंजरी विश्वगुणबल्लरी मम शरण्यं।
जयति हेमांगदा स्यामसेब्यासदा रतिरहसिरंगदा मम शरण्यं॥१४
जयति हितआलया नेहिनीनिर्भया मञ्जुलमहाशया मम शरण्यं।
जयति रसरासिनी कादिकउपासिनी बिपिनपतिवासिनी मम शरण्यं।१५
जयति हरिधीमता रसमयारसरता कृष्णअन्तरगता मम शरण्यं।
जयति मृदुलाकृता स्नेहनिसुधाधृता सौरभासावृता मम शरण्यं॥१६
जयति बरसर्विता ताम्बूलचर्बिता गोरीगुनगर्विता मम शरण्यं।
जयति पियतल्पगा निर्मलाकल्पगा रङ्गरतिशिल्पगा मम शरण्यं॥१७
जयति बिम्बाधरा कृष्णचुम्बितबरा सर्बसुखबिस्तरा मम शरण्यं।
जयति पियपूजिता कलस्वरकूजिता कोकिलचमूजिता मम शरण्यं।१८
जयति मणिकुंडला कामिलाकोमला कुंजकौतूहला मम शरण्यं।
जयति रुचिरारमा रसभरासंगमा निगम गुप्तागमा मम शरण्यं॥१९
जयति पीयूषदा प्रेयसीपारदा सौहृदाशारदा मम शरण्यं।
जयति रसबर्षनी चित्तआकर्षनी नित्यहियहर्षनी मम शरण्यं॥२०

जयति गुणआवली कुटिल अलकावली सुभ्रसोभावली मम शरण्यं ।
जयति हरिजल्पिता चारुतिलकांकिता कृष्णपरिबंदिता मम शर० ॥२१
जयति गुणअर्णवा किंकिणीकलरवा नित्यनवउत्सवा मम शर० ।
जयति सौभागिनी प्रीतिप्रतिपागिनी कृष्णअनुरागिनी मम शर० ॥२२
जयति जनआर्तिहा इन्दिरासुस्पृहा पीयमुख मधुलिहा मम शर० ।
जयति कृष्णस्तुता कृष्णगुणगणरता कृष्णमनबंछिता मम शर० ॥२३
जयति सुखसद्मनी पियमधुपपद्मिनी अंतह अछद्मिनी मम शर० ।
जयति हरिभर्तिनी भर्तुबसबर्तिनी स्यामसंधर्तिनी मम शर० ॥२४
जयति दुखखंडनी चारुकलगंडनी कृष्णउरमण्डनी मम शर० ।
जयति प्राणाधिके कृष्णआराधिके हरिप्रिया राधिके मम शर० ।११७

॥ दोहा ॥

सर्व दुःखों का नाश करने वाली, श्रीकृष्ण के लिए परम सुखदायिनी, शरणागत-पालिका प्राणप्यारी, सुकुमारी श्रीराधिका किशोरी की सदा ही जय हो ।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी श्रीराधिका किशोरीजू का गुणगान करती हुई कहती हैं— श्रीकृष्ण को सुखप्रदान करने वाली, सुन्दर अगाध गुणों वाली, मुझे शरण देने वाली श्रीराधिका किशोरी की जय हो ! श्रीहरि की वल्लभा, श्रीकृष्ण घन के लिए दामिनी स्वरूपा, मतवाले गजराज के समान चाल चलने वाली श्रीप्रिया जी की जय हो !! प्रेम, सौभाग्य एवं रस का वर्द्धन करने वाली, प्रियतम के लिए समृद्धि स्वरूपा, रस का दान देने वाली, प्रियतम की सेज पर शयन करने वाली नित्य नवलता को प्राप्त होने वाली, नवल नागरी, सर्व सुखों एवं दिव्य गुणों की खानि, दिव्य अङ्गों वाली श्यामसुन्दर की निज सहचरी, प्रेम-रस के रंग से अनुरञ्जित मन्द मुसकान वाली, श्यामसुन्दर के साथ निवास करने वाली, परम प्रकाश स्वरूपा, मन का मोहन करने वाली, सम्पूर्ण अङ्गों से शोभायमान, दया की सागर, मृगनयनी, दृष्टिमात्र से दुःख का मोचन करने वाली, श्रीकृष्ण के मनको आनन्दित करने वाली, आनन्दकन्दिनी, गोपनीय गुणों से भरी हुई, प्रियतम के मन को फँसाने वाली, परमनिधि स्वरूपा, परम अनूपा, भाग्यवतियों में सर्व-श्रेष्ठ सुंदर क्रीड़ा करने वाली,प्रेमके रंगमें सराबोर, कामके भी मदका मोचन करने वाली, निज जन पालिका, विशाल नेत्रों वाली, रसिकजनों को परम रसस्वरूपा, सर्व दुःखों का

नाश कर अपने जनों की रक्षा करने वाली, परमानन्द से परिपूर्ण, परम श्रेष्ठा, महा उज्ज्वल रस से आवेष्टित, परापरमेष्टिनी, मणिमालिका (श्रेष्ठमणि स्वरूपा), सुन्दर-रस से भरी हुई, प्राण प्यारे के रक्षिका, प्रियतम का पालन करने वाली, नित्य आनन्द से भरे हुए शरीर वाली, शोक रूपी सरोवर का शोषण करने वाली, सुन्दर उदर वाली, प्रिय वचन बोलने वाली, अपने चरित्र से चित्त का हरण करने वाली, जगत को जीतने वाली, सुन्दर नितम्बों वाली, गोल और समान स्तन वाली, कमल से मुखवाली, सुन्दर वेणी धारण करने वाली, मनको प्रसन्न करने वाले सुन्दर केशों वाली, श्रुतिगोचरा, सरस-करुणा की खानि, रास-रस में तत्पर, रत्नों में श्रेष्ठ, कमल स्वरूप प्रियतम का पोषण करने वाली उन्हें हर प्रकार से संतुष्ट करने वाली, श्रीहरि की प्रिया, मनहरा नाम से जानी जाने वाली परम सुन्दरी, लाड़लड़ैती, श्रीलालजी की प्रेम–सहचरी, उनके हृदय में निवास करने वाली, छवि से मण्डित, क्षीणकटि से शोभित, नित्य सुख-साज से युक्त, सांसारिक बाधाओं को नष्ट करने वाली, भक्तजनों के मन को प्रसन्न करने वाली, सर्व सुखों को जोड़ने वाली, सुन्दर-शोभा से युक्त, उज्ज्वल रस रूपी कुसुम को प्रस्फुटित करने वाली कलिका, विश्वगुणों की वल्लरी, स्वर्ण सी देहवाली, श्यामसुन्दर की नित्य सेवया, रति–रहस्य का दान देने वाली, हितालया, निर्भय प्रेम से भरी हुई, सुन्दर उच्चविचार वाली, रस की राशि, वृन्दावन राज में निवास करने वाली, प्रेम-रस की उपासिका, श्रीकृष्ण के हृदय में वास करने वाली, रास-रस से ओत प्रोत श्रीहरि की धन्या, मधुर आकृति वाली, स्नेहिलता से परिपूर्ण, अमृत धारण करने वाली, सौरभ से आवृत, सर्व श्रेष्ठा, ताम्बूल (वीरी) चबाने वाली, गोरे अङ्गों वाली, गुणों से गर्वीली, प्रियतम श्याम-सुन्दर की एकमात्र आश्रया, कल्पवृक्ष के समान निर्मल, रतिरङ्ग की रचना करने वाली, बिम्बफल के समान सुन्दर अधरों वाली, श्रीकृष्ण से चुम्बित, सर्वसुखों का विस्तार करने वाली, प्रियतम से पूजित, सुन्दर वचनों का उच्चारण कर कोयल के समूह को भी जीत लेने वाली मणियों में श्रेष्ठ काम के सौकुमार्य से भरी हुई, कुंज में कौतूहल का वर्द्धन करने वाली, परम सुन्दर एवं रमणीक, रस से भी गुप्त निगमागमों की संयोजिका, अमृत मयी, परम प्रेयसी, शरद् ऋतु के आकाश की भाँति अच्छे हृदय वाली, प्रेमरस का वर्षण करने वाली, चित्त को चुरालेने वाली, नित्य हर्ष से पूरित हृदय वाली, गुणों की लड़ी वाली, घुँघराली अलकों वाली, धवलता से शोभित, श्रीहरि के द्वारा रटी जाने वाली, सुन्दर तिलक धारण करने वाली श्रीकृष्ण की परम वन्दनीया, गुणों की अर्णवा (सागर), किंकिणी की सुन्दर ध्वनि से युक्त, नित्य नवीन उत्साह से भरी हुई, सुन्दर भाग्य वाली,

प्रीति और प्रतीति से भरी हुई, श्रीकृष्णानुराग से पूरित हृदयवाली अपने जन के दुःख का हरण करने वाली, साक्षात् लक्ष्मी के लिए भी सुस्पृहणीया, प्रियतम के मुख के लिए माधुर्य से भरी हुई, श्रीकृष्ण द्वार स्तुत्य, उनके गुण गुणों के गान में अनुरक्त, उनके द्वारा सदैव वांछित, सुख की केन्द्रा, मधुप सदृश प्रियतम के लिए कमलिनी, हृदय से निर्मल स्वभाव वाली, श्रीहरि की प्रिया, प्रियतम को वशीभूत कर उनके संयोग करने वाली, दुःखों का भंजन करने वाली, सुन्दर कपोलों वाली श्रीकृष्ण के हृदय की शोभा बढ़ाने वाली, ऐसी प्राणाधिका श्रीकृष्ण की परमाराध्या किशोरी श्रीराधिका ही मुझे एकमात्र शरणदात्री हैं, मैं सर्वतोभावेन उनकी शरण हूँ, उन श्रीप्रियाजू की सदा ही जय हो, जय हो, जय हो ! ॥११७॥

॥ दोहा ॥

कृष्णसरोवर हंसनी, कृष्णतरोवर वेलि ।
राधे राधे राधे जय, श्रीराधे रसरेलि ॥

॥ पद ॥११८॥

राधे राधे राधिके जय राधे राधे राधिके ।
राधे राधे राधिके श्रीराधे राधे राधिके ॥
कृष्ण कान्तमनोहरा, जय राधे० सर्वगुणगणतत्परा । श्रीराधे०
कृष्ण मनमधुकरहिता, जय राधे० मालतीवन महकिता । श्रीराधे०
कृष्ण आनँददायिका, जय राधे० नित्य नौतम नायिका । श्रीराधे०
कृष्ण सुखदासागरी, जय राधे० अमित रूप उजागरी । श्रीराधे०
कृष्ण चितआकर्षनी, जय राधे० सदा रस घन वर्षनी । श्रीराधे०
कृष्ण पंकज पोषनी, जय राधे० समरहियदुखसोषनी । श्रीराधे०
कृष्ण हियसर हंसनी, जय राधे० सकललोकप्रसंसनी । श्रीराधे०
कृष्ण तरुवरबल्लरी, जय राधे० सदाअमृतरसभरी । श्रीराधे०
कृष्ण मनमृगडोरिका, जय राधे० वशीकरनकिसोरिका । श्रीराधे०
कृष्ण प्राण कपूरहित, जय राधे० महागुंजा मंजुलित । श्रीराधे०
कृष्ण अलिमनरंजनी, जय राधे० सहज सुरभितकंजनी । श्रीराधे०
कृष्ण चातिकस्वातिकी, जय राधे० जीवजीवनि थातिकी । श्रीराधे०

कृष्ण कनकसुहागनी, जय राधे० द्रवकराबड़भागनी। श्रीराधे०
कृष्ण जलचरजलाशय, जय राधे० अर्हनिसआधारमय। श्रीराधे०
कृष्ण रस आस्वादिनी, जय राधे० उरसदाउन्मादनी। श्रीराधे०
कृष्ण सम्पति सर्वसा, जय राधे० प्रेयसी प्रीतमबसा। श्रीराधे०
कृष्ण तनघनदामिनी, जयराधे०श्रिया हरिप्रिया स्वामिनी। श्रीराधे० ११८

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाजी की जन्म गाँठ पर उनका गुणगान करती हुई श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ कहती हैं—

श्रीकृष्ण रूपी सरोवर में हँसनी के समान विहार करने वाली, श्रीकृष्णरूपी वृक्ष की वल्लरी, रसकेलि में निमग्न श्रीराधिका किशोरीजी की जय–जयकार हो।

॥ पद ॥

श्रीराधिका किशोरी की जय-जयकार हो! श्रीकृष्ण के लिए मनोहर कान्तिवाली, सर्व गुण समूहों की धात्री, श्रीकृष्ण रूपी भ्रमर के लिए परम हितकारिणी, श्रीवन में मालती के समान महकने वाली, श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करने वाली, नित्य नवल नायिका, श्रीकृष्ण के लिए सुख की सागरी, अनन्त उज्ज्वल रूप धारिणी, श्रीकृष्ण के मन को आकृष्ट करने वाली, रस रूपी घन की वर्षा करने वाली, श्रीकृष्ण रूपी कमल का पोषण करने वाली, सुरत-समर से उत्पन्न श्रमका परिमार्जन करने वाली, श्रीकृष्ण के हृदय रूपी सरोवर के लिए रस रूप हंसनी के समान, सम्पूर्ण लोकों में प्रशंसनीय, श्रीकृष्ण रूपी वृक्ष की वल्लरी, नित्य अमृत रस से परिपूर्ण, श्रीकृष्ण के मन रूपी मृग को बाँधने के लिए डोर के समान, वशीकरण करने में प्रवीण किशोरी, श्रीकृष्ण के प्राण रूपी कपूर की रक्षा करने वाली, धवल गुंजा के समान निर्मल कान्ति वाली, श्रीकृष्ण के भ्रमर रूपी मन रञ्जन करने वाली, कमलिनी के सहज स्वाभाविक सौरभ से युक्त, श्रीकृष्ण रूपी चातक के लिए स्वातिनक्षत्र (की बूँद) के समान, जीव के भी जीवन को धारण करने वाली, श्रीकृष्ण रूपी स्वर्ण के लिए सुहागा के समान (उज्ज्वल बनाने वाली), सहज में ही द्रवीभूत होने वाली परम सौभाग्यवती, श्रीकृष्ण रूपी जल-जीव के लिए सरोवर के समान, दिन और रात की एकमात्र आधार, श्रीकृष्ण के प्रेमरस का आस्वादन करने वाली, रसोन्माद से पूरित हृदय वाली, श्रीकृष्ण की सर्वस्व सम्पत्ति प्रियतम को वश में करने वाली प्रेयसी, श्रीकृष्ण के तनरूपी मेघ की दामिनी और श्रीहरिप्रिया सहचरीजू की

स्वामिनी किशोरी श्रीराधिकाजू की सदा ही जय हो, जय हो, जय हो।।११८।।

।। अनुरागिनि विलासावली मध्याभास ।।

।। दोहा।।

जदपि सकल सिरमौर तउ, तेरिय आस निदान।
अहो ! प्रिया प्रतिपाल दै, अधरसुधारस दान।।

।। पद ।।११९।।

दै अधरसुधा रस दान प्रिया, है तेरिय आस निदान प्रिया।
इनकौ इतनौइ उनमान प्रिया, करि सज्जनकौ सनमान प्रिया।।
इह तो तिहरेइ आधीन प्रिया, जैसे जल जीवन मीन प्रिया।
रसिया रसके रसलीन प्रिया, छिनहीं बिछुरे तन छीन प्रिया।।
लै उरसों(उर)लपटाय प्रिया, कमलन सों कमल मिलाय प्रिया।
प्रिय प्रान रहे शिर नाय प्रिया, चले नैनन नीर चुचाय प्रिया।।
नेक सदय सुदृष्टि निहारी प्रिया, तू ही जीवनि-आधार प्रिया।
पिय प्राननको प्रतिपारि प्रिया,अब अपनो विरद सँभारि प्रिया।।
करसों कर जिनि झटकार प्रिया, वलि बितन विथा निरवारि प्रिया।
रसढरवाको रस ढारि प्रिया, दुख दव तें देहु उबारि प्रिया।।

।। दोहा ।।

श्रीप्रियाजी की वर्ष गाँठ पर मङ्गल-गीत गाती हुई श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ कहती हैं—हे श्रीप्रियाजू ! यद्यपि प्रियतम श्यामसुन्दर सर्व शिरोमणि हैं फिर भी वे एक मात्र तुम्हारे ही आश-विश्वास में जीते हैं।। बलिहारी जाऊँ ! (आज के इस पावन पर्व पर) उन्हें अधरसुधारस का पान कराकर उनके जीवन की रक्षा कीजिए।

।। पद ।।

हे श्रीप्रियाजू ! श्रीप्यारे श्यामसुन्दर तो एकमात्र आपके ही आश-विश्वास पर जी रहे हैं। आपके द्वारा अधरसुधारस का दान ही इनका एक मात्र उपचार है। ये बड़े ही सज्जन हैं और प्रेमरस से सदैव उन्मत्त रहते हैं, हे प्रियाजी इनका सम्यक् मान अवश्य ही रखिये। जिस प्रकार मछली का जीवन जल के ही अधीन होता है, वैसे ही

इनका जीवन आपके अधीन है। ये बड़े ही रसिया (प्रेमी) हैं, सदैव रस (प्रेम) में ही डूबे रहते हैं, क्षणभर का वियोग भी इन्हें कृश बना देता है। हे श्रीप्रियाजी इनके हृदय को अपने हृदय से लिपटा लीजिए। और अपने मुख कमल को उनके मुख कमल से मिला दीजिए। आपके क्षणिक वियोग को न सह सकने के कारण प्राणप्रियतम अपना सर झुकाये बैठे हैं और उनके नेत्रों से जल बह रहा है। आप किंचित् कृपा दृष्टि से उनकी ओर निहार लीजिए, क्योंकि एकमात्र आप ही तो उनके जीवन का अवलम्ब हैं। हे श्रीप्यारी जू! अपने विरद (स्वभाव-संकल्प) की स्मृति कर प्राण-प्यारे श्रीश्यामसुन्दर की रक्षा कीजिए। वे आप का हाथ पकड़ते हैं तो उनके हाथ को इस प्रकार झटकारिये मत, बलिहारी जाऊँ, उनकी काम-प्रेम-जन्य व्यथा का निवारण कीजिए। ये सदा रस के ही भूखे रहते हैं, इन्हें रस का दान कर इनका दुःख के दावानल से उद्धार करिए। तुम्हारे बिना इनकी अन्य कोई गति हो नहीं है, आप अपने सूर्य के समान प्रखर तेज से प्रियतम रूपी कमल को विकसित कर उसका पोषण करिए। यह तो दिन-रात तुम्हारे गुण-गानामृत का पान करके ही जीवित रहते हैं।

तुम बिनु गति नाहिन आन प्रिया, पोषिये पंकज पति भान प्रिया।
निसिदिन तुव गुनगन गान प्रिया. पीवत पीयूष समान प्रिया॥
कबके मुखरुख रहे जोय प्रिया, छिन सकत न इत उत होय प्रिया।
कछु बनत उपाय न कोय प्रिया, राखे हैं रोम रोम नोय प्रिया॥
तिनसों इतनी करिये न प्रिया, अपने पनते टरिये न प्रिया।
अति की मति आचरिये न प्रिया, उपजीविन संहरिये न प्रिया॥
हौ सब बातनि सुखदैन प्रिया, यामें कछु अचरज है न प्रिया।
महामंगल मूरति मैन प्रिया, करिये करुनारस ऐन प्रिया॥
कल कुञ्ज कमल बिलसाय प्रिया, हितुरूप हिये हुलसाय प्रिया।
मानिनी मनोज मनाय प्रिया, पिय परत तिहारे पाँय प्रिया॥
इन्हें ज्यौं जानें ज्यौं जिवाय प्रिया, गयो बदन महा कुम्हिलाय प्रिया।
रहे साँस उसास समाय प्रिया, मनरमने लेहु रमाय प्रिया॥
गई फैलि अङ्ग पियराई प्रिया, भई स्वेद कंप सियराई प्रिया।
यह उचित नहीं निठुराई प्रिया, प्रतिपारे हैं प्रान सदाई प्रिया॥

प्रतिपाल प्रिया प्रतिपाल प्रिया, तुम करुणासिंधु कृपाल प्रिया।
पल पल पिय औरहिं हाल प्रिया, पहिरावौ मरगजी माल प्रिया ॥
करिये मनपूरन काम प्रिया, ज्यों छिन पावे विश्राम प्रिया।

हे श्रीप्रिया जू ! ये श्रीश्यामसुन्दर कब से आपके मुख की ओर निहार रहे हैं, एक क्षण के लिए भी इधर-उधर हो पाना भी इन्हें संभव नहीं है । आपका दर्शन करते करते इनका सारा शरीर रोमांचित हो उठा है, मानो प्रत्येक रोम आपकी कृपा की प्रतीक्षा कर रहा है, अब दूसरा कोई भी उपाय दिखाई नहीं दे रहा है । कम-से-कम अपने प्रियजन से तो इस प्रकार का व्यवहार मत करिए । आपको अपने (प्रणत जनों को शरण देने के) प्रण से हटना शोभा नहीं देता है । आप अति की मति (अर्थात् हठ) मत कीजिए, कृपया अपने आश्रय पर रहने वाले (उपजीवी) का इस प्रकार से परित्याग मत कीजिए । आप तो सब तरह से सुख प्रदान करने वाली हैं—इसमें किंचित् भी संदेह की गुंजाइश नहीं है । आप तो स्वयं काम की प्रिया रति के समान महामङ्गल स्वरूपा हैं । अतः इस वियोग-जन्य अवस्था को अपनी अहैतुकी करुणा और प्रेम-रस से भर दीजिए । आप परम हित रूप प्रियतम श्यामसुन्दर के हृदय को उल्लसित करने के लिए सुन्दर कमल कुंज में विलास कीजिए । हे प्यारी जू ! प्रियतम श्यामसुन्दर तुम्हारे पैरों पड़ते हुए ऐसे लग रहे हैं मानों साक्षात् काम ही अपनी रूठी हुई प्रिया (रति) को मना रहा हो । तुम्हारे मान करने से इनका मुख कमल कैसा मुरझा गया है, अब तो जैसे भी हो इन्हें जीवन दान दीजिए । अब तो ये व्याकुलता के कारण बड़ी गहरी साँस भरने और छोड़ने लगे हैं, इन मनरमण को शांति प्रदान कीजिए । उनके सारे अङ्ग में पाण्डुरता छा गई है, पसीना और प्रकम्पन से उनका शरीर ठंडा पड़ता जा रहा है । ऐसी निष्ठुरता उचित नहीं होती है, इनके प्राणों का सदा प्रतिपाल करने वाली तो एकमात्र आप ही हो । आप परम करुणा की सिंधु हैं,इनके प्राणों की रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए । देखिये तो सही,क्षण-क्षण में इनका क्या हाल हो रहा है, उन्हें शीघ्र ही मरगजी और अपनी माला धारण कराइये । इनकी मनो कामना पूर्ण कर दीजिए, ताकि इन्हें क्षणभर के लिए विश्राम मिल सके । इनका शरीर कदम्ब की माला की तरह कैसा रोमांचित हो उठा है, अब तो प्रसन्न होइए और रङ्गमहल में दोनों सुख पूर्वक मिलकर विलास कीजिए । हे श्रीप्रियाजू ! प्रियतम श्यामसुन्दर ने अपने मुकुट को आपके चरण प्रान्त में रख दिया है, फिर भी आप उसे ठुकरा रही हैं । आप रस का मेघ बनकर बरसिए, आपके किंचित्

प्रसन्न होने से उन्हें परम प्रसन्नता हो जाएगी ।

भई देह कदमकी दाम प्रिया, दोउ मिलि बिलसौ सुखधाम प्रिया ॥
रह्यौ मुकुट चरनतर लूठि प्रिया, एते पर देति हो पूठि प्रिया ।
रसको वन बारिद बूठि प्रिया, तिन्ह तोषि तनक तो तूठि प्रिया ॥
उरकौ अभिलाष पुराय प्रिया, करुनामय नाम कहाय प्रिया ।
इन्हैं देहु महल मुकुलाय प्रिया, ये रहे अतिहीं अकुलाय प्रिया ॥
इनकौ नाहीं कछु दोष प्रिया, करि रही कौन विधि रोष प्रिया ।
पिय प्राननिको परिपोष प्रिया, ज्यों लहैं परम सन्तोष प्रिया ॥
बलिहारि प्रिया बलिहारि प्रिया, बलि बलि जाऊँ सुकुंवारि प्रिया ।
भरि ले भरि ले अँकवारि प्रिया, रिझि लै रीझि लै रिझवारि प्रिया ॥
लै सज्जन सेज सुधारि प्रिया, अलबेली यह उनहारि प्रिया ।
मिलि अङ्ग सँग रंग बिहारि प्रिया, पट पीताम्बर औछारि प्रिया ॥
अपने धनसों धरि नेह प्रिया, सब भाँति सचाइ सनेह प्रिया ।
लीजे कबहूँ नहिं छेह प्रिया, दीजे सुख निरसंदेह प्रिया ॥
इन्हैं देहु प्रिया इन्हैं देहु प्रिया, जगजीवनकौ फल देहु प्रिया ।

हे श्रीप्रियाजू ! प्रियतम श्यामसुन्दर के हृदय की अभिलाषा को पूर्ण कर अपने करुणामयी नाम को सार्थक कर लीजिए । ये बहुत आकुल-व्याकुल हो रहे हैं, इन्हें शीघ्र ही मुकुलित रंगमहल का आश्रय दीजिए अर्थात् इनके साथ रंग महल में विलास विलखिये । हे प्यारी जू ! इनका तो कुछ ही नहीं है, फिर आप किस कारण से इन पर कोप कर रही हैं ? इनके व्यथित प्राणों को परिपालन कीजिए, ताकि इन्हें परम संतोष प्राप्त हो जाए । हे सुकुमारी जी ! बलिहारी है ! बलिहारी है ! मैं आपकी बार-बार बलैया लेती हूँ—प्राणप्यारे को अपने अङ्क में भर लीजिए, भर लीजिए । परम रिझवार श्यामसुन्दर को रिझा लीजिए, रिझा लीजिए । इन्हें शैया पर ले जाकर शीतलता प्रदान कीजिए । हे अलबेली जू ! यह भी आप के ही समान अलबेले (छैल छबीले) हैं । इनके पट-पीताम्बर को 'औछारि' कर इनके साथ अङ्ग-सङ्ग विलास विलसिए । हे प्रियाजी ! आप प्रेम-घन श्यामसुन्दर से स्नेह करिए, ये तो सर्व प्रकार से प्रेम के ही साँचे में ढले हुए हैं । इन्हें कभी भी किंचिन्मात्र दुःख मत दीजिए, निःशंक होकर इन्हें

सुख का दान कीजिए, दीजिए, दीजिए और इसके बदले इस जागतिक जीवन का फल ले लीजिए।

रति रसकौ चसकौ देहु प्रिया, सुनि ससकौ सुख किनि देहु प्रिया ॥
मेरे दृग आवत नीर प्रिया, लखि लखि पियके तन पीर प्रिया।
धरकत हियरौ तजि धीर प्रिया, चित होत अत्यंत अधीर प्रिया ॥

॥ दोहा ॥

सुनि सहचरिके बचन पुनि, देखि लालकौ हाल।
करुणाभरी कृसोदरी, ढरी बाल ततकाल ॥

पिय लियो है लगाय उरोज प्रिया, अम्भोज मिलाय अम्भोज प्रिया।
विलसावति रतिके चोज प्रिया, मन मुदित मनोज मनोज प्रिया ॥
उर उमगि मिली अभिलाष प्रिया, अपनो सर्वस चस चाषि प्रिया।
कियौ आदर सत सम्भाषि प्रिया, रङ्ग रली भली रस राखि प्रिया ॥
रसिया रस लीनों लाय प्रिया, निज अङ्ग सों अङ्ग मिलाय प्रिया।
बिहरत अन्तरगत भाय प्रिया, अपने सुख सहज सुभाय प्रिया ॥

सुरत-विहार रस के आस्वादन का ऐसा सुन्दर अवसर पुनः नहीं प्राप्त होगा। अतः गम्भीरता से सुन–समझकर ऐसा सुख क्यों नहीं प्राप्त कर लेती हैं ? हे श्रीप्रियाजी ! प्रियतम के तन की पीर को देख-देख कर मेरे नेत्रों से अश्रु प्रवाह हो उठा है, धैर्य का बाँध तोड़कर हृदय धड़कने लगा है, चित्त नितान्त ही व्याकुल हो उठा है।

॥ दोहा ॥

इस प्रकार श्रीहरिप्रिया सहचरी के मार्मिक वचनों को सुनकर और प्रियतम श्रीलालजी(के हाल)को 'बेहाल' देखकर कृशोदरी श्रीप्रियाजी करुणा से भर कर लालजी की ओर द्रवीभूत हो उठीं।

॥ पद ॥

श्रीप्रियाजी अत्यन्त व्याकुल जान प्रियतम श्यामसुन्दर को अपनी छाती से लगा लिया और परस्पर हृदय कमल एवं मुख कमल को मिलाकर सुरत–विहार की उमङ्ग से भर उठीं। रतिरूपा श्रीप्रियाजी प्रसन्न मुद्रा में कामरूप श्रीलालजी को प्रसन्न करने लगीं। वे अभिलाष भरे हृदय से उमंग पूर्वक प्रियतम से मिलकर उन्हें सर्वोपरि (अधर)

रस का आस्वादन कराने लगीं। सुन्दर वचन बोलकर उन्होंने प्रियतम का सम्मान किया और उन्हें भली प्रकार केलि-रस का आस्वादन कराया। अपने अङ्ग से प्रियतम का अङ्ग मिलाकर रस से सराबोर कर दिया। वे अन्तर्भाव से उनसे मिलकर सहज-स्वाभाविक रूप से उन्हें सुख प्रदान करने लगीं। गह्वर-वन में वे प्रियतम के साथ अनेक प्रकार से क्रीड़ा-विलास करने लगीं, नव्यवासादि सहचरियाँ भी उनकी केलि में उनका सहयोग करने लगीं। अलबेली श्रीकिशोरी जी अपने अङ्ग-को झूला के समान झुलाकर उमंग और उत्साह से भरकर सुरत-केलि करने लगीं। आनन्द और अनुराग से उनका हृदय सरस हो उठा, प्रेम–सुख से ओतप्रोत हो गईं। लाड़–लड़ैते मनमोहन के हृदय से लगकर प्रेमकेलि में ही सारी रात्रि व्यतीत कर दी। निःसंदेह श्रीप्रियाजी अद्भुत स्वर्ण बेलि, परम रसिका रस-स्वरूपा हैं।

गहवर बन बिलसत रंग प्रिया, नवबासादिक सब सङ्ग प्रिया ॥
अलबेली झेली अङ्ग प्रिया, रतिरेली उमँग उमंग प्रिया।
सरसी आनन्द अनुराग प्रिया, सुख सुन्दरि प्रेमा पाग प्रिया ॥
रति बनी जोवनी जागि प्रिया, मनमोहन लाड़ें लागि प्रिया।
अति अद्भुत कनकाबेलि प्रिया, रसिका रसरूपा रेलि प्रिया ॥
चित चिमतकार वनबेलि प्रिया, गौरांगी गर्बगहेलि प्रिया।
सुभ सुभग सुदरसनि भाम प्रिया, ये आई मिलि अभिराम प्रिया ॥
इनकौ पुरवौ मनकाम प्रिया, ये सदा सुचिंतक बाम प्रिया।
महाराज प्रिया महाराज प्रिया, सबहीं विधि सब सिरताज प्रिया ॥
ये तुमहीं लायक साज प्रिया, इन्हैं करहु अलंकृत आज प्रिया।
मैं मन बच यही मनाऊं प्रिया, नित उठि तिहरोई गुन गाऊं प्रिया।
यह सुख देखत न आघऊं प्रिया, श्रीहरिप्रिया बलिवलि जाऊं प्रिया ।११९

वे चित्त को चमत्कृत कर देने वाली वन-वल्लरी किंवा गौराङ्गी स्वर्णलता के सदृश (सभी सुन्दरियों के) गर्व को ढहाने वाली हैं। वे सुन्दर—सौभाग्य से युक्त "सुदर्शनी" हैं। उन्हीं के समान सुन्दर-सौभाग्य से भरी 'सुदर्शनी' सहचरियाँ भी हैं जो परम सुन्दरी प्रियाजी को सदा-सर्वदा घेरे रहती हैं। श्रीहरिप्रियासहचरी कहती हैं—हे श्रीप्रियाजी! कृपया अपनी इन अङ्ग सङ्गिनी सखी–सहचरियों की मनोकामना पूर्ण कर दीजिए। ये

तो सदा–सर्वदा आपकी शुभचिंतका हैं। हे श्रीप्रियाजी ! आप तो महाराजाओं की भी महाराजा (सम्राज्ञी) हैं, आप सर्व प्रकार से सर्व शिरोमणि हैं। ये श्यामसुन्दर सब प्रकार तुम्हारे स्वरूप के अनुकूल व योग्य हैं आज इन्हें अपनाकर इन्हें अलकृत (शोभायमान) कर दीजिए। मैं तो अपने मन–वचन से सदा-सर्वदा यही मनाती रहती हूँ कि नित्य-प्रति उठते ही आप (दोनों) का गुण गान करती रहूँ, आपके इस क्रीड़ा-विलास-सुख का दर्शन बार-बार करके भी कभी तृप्त न होऊँ। हे श्रीप्रिया प्रियतम ! मैं आप दोनों पर बलिहारी जाऊँ ॥११९॥

॥ अनुरागिनि चित्रमुखी मध्याभास ॥

(साँझी)

॥ दोहा ॥

चित्र विचित्र बनाव के, चुनि चुनि फूले फूल।
साँझी खेलहिं दोऊ मिलि, नवजोवन समतूल ॥

॥ पद ॥१२०॥

साँझी साँझ मिलि खेलहीं दोउ नवजोवन समतूल हो।
चित्र विचित्र बनाव के बहु चुनि चुनि फूले फूल हो ॥
पहिरें बागे तन सुखी अति लागे मन रुचिदाई हो।
बरन बरन आभरन की कछु कहि नहिं जाति निकाई हो ॥
गौर स्याम अभिराम रङ्गभरे अङ्ग अङ्ग छबि देत हो।
बदनचंद्रकी चन्द्रिका चित—बितहिं चुराये लेत हो ॥
नव नव पल्लव प्रीति के सखी देत कमल कर आय हो।
अति सौरभ सों सोहने मनमोहन सहज सुभाय हो ॥
गावत गोरी गुनभरी सहचरी सकल कलकूजि हो।
रङ्गरह्यौ न कह्यौ परै प्रति प्रति प्रतिमाकों पूजि हो ॥
महल महल में धुनि छई सुनि श्रवन भई गति गंज हो।
चकित थकित सब ह्वै रही लखि अद्भुत सुख मनरंज हो ॥
रतन जटित रति मञ्जरी कर लै कंचन को थाल हो।
आरति वारति दुहुन की लखि लखि छबि नैन बिसाल हो ॥

हिरनी हारिनी हीण हरिता मुग्धादि मनोहर बेस हो।
इनकौ सुख इनहीं बनै मुख बरनै कहा विसेस हो ॥
यह साँझी को सुखसमै समझै जे समझनहारि हो।
हितू सहेली श्रीहरिप्रिया जीवत नित नैन निहारि हो ॥

॥ दोहा ॥

[श्रीप्रियाप्रियतम की साँझी लीला की अद्भुत झाँकी करके सखी-सहचरियाँ आनन्दित हो रही हैं] रङ्ग-बिरङ्ग नाना प्रकार के फूले हुए सुन्दर फूलों को चुन-चुन कर समवयस्क श्रीप्रियाप्रियतम परस्पर मिलकर साँझी-लीला कर रहे हैं।

॥ पद ॥

संध्याकाल में श्रीप्रियाप्रियतम की साँझी लीला का दर्शन कर श्रीहरिप्रिया सहचरी अन्य सखी-सहचरियों को सम्बोधित करती हुई कहती हैं—अरी सखी, देख तो सही ! संध्याकाल के इस सुरम्य वातावरण में नवयौवन सम्पन्न समवयस्क श्रीप्रिया-प्रियतम परस्पर मिलकर किस अद्भुत रीति से साँझी-क्रीड़ा कर रहे हैं। वे रङ्ग-बिरङ्ग नाना प्रकार के फूले हुए फूलों को चुनते हुए कैसे फूल [प्रसन्न] रहे हैं। उन्होंने शरीर के सुख प्रदान करने वाले ऐसे सुन्दर बागे धारण कर रखे हैं जिनका दर्शन करते ही मन प्रसन्न हो जाता है। वे मन को बड़े ही रुचिकर लग रहे हैं। जो नाना प्रकार के आभूषण उन्होंने अपने अङ्गों पर धारण कर रखे हैं, उनकी सुन्दरता तो कुछ कहने में ही नहीं आ रही है। सुन्दर गौर–श्यामल रङ्ग से भरी होने के कारण उनके अङ्ग प्रत्यंग की छटा देखते ही बनती है। उनके मुखचन्द्र पर धारण की गई चन्द्रिका तो हमारे चित्त रूपी धन को बलात् चुराये ले रही है। साँझी खेलते हुए ये दोनों अपने कर कमलों से प्रीति रूपी पल्लवों [कोमल किसलयों] की परस्पर बौछार करते हुए कैसे शोभायमान लग रहे हैं। अपने सहज स्वाभाविक रूप में सुन्दर सौरभ से भरे हुए होने के कारण हमारे मन का मोहन कर रहे हैं। नाना गुणों से भरी हुई सभी सखी सहचरियाँ सुन्दर कुञ्ज में गौरी-गीत गा रही हैं। इस सुन्दर अवसर पर जो प्रेम रङ्ग उमड़ रहा है। वह कथमपि कहने में नहीं आता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों साक्षात् प्रेम ही इन प्रेमिका सहचरियों के रूप में भिन्न भिन्न रूप धारण कर पुञ्जीभूत हो गया हो। रङ्ग-महल के प्रत्येक भाग में [छोटे बड़े सभी महलों में] सङ्गीत स्वरों की जो मधुर ध्वनि छाई हुई है उसे सुनकर तो मानो कान ही बहरे हुए जा रहे हैं। सभी सखी

सहचरियाँ ऐसे अद्भुत एवं मनोनुकूल राग रङ्ग का दर्शन कर आश्चर्य से भरकर मानो शिथिल सी पड़ गई हैं। रत्नाभूषणों से सुसज्जित प्रेम रसरसी सहचरियाँ अपने हाथों में धारण किए गए स्वर्ण के थालों में आरती सजाकर दोनों श्रीप्रियाप्रियतम की आरती उतार रही हैं और अपने विशाल नेत्रों से उनकी बार-बार बांकी-झाँकी कर रही हैं। हरिणी, हारिणी, ह्रीण, हरिता, मुग्धा आदि सभी सहचरियाँ सुन्दर वेश धारण किए हुए हैं। इस समय जो सुख इन्हें प्राप्त हो रहा है, उसका वैशिष्ट्य मुख से कुछ कहा नहीं जा सकता है—देखते ही बनता है।

इस प्रकार श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि श्रीप्रियाप्रियतम की साँझी लीला का यह सुख सहज में ही किसी की समझ में न तो आता है और न ही प्राप्त हो सकता है। इसे तो कोई विरला समझदार (रसिक अनन्य) ही समझ सकता है। श्रीहितूसहचरी जू तो श्रीप्रियाप्रियतम के इस नित्य विहार रस का ही नित्य प्रति दर्शन करके जीवित रहती हैं ॥१२०॥

॥ दोहा ॥

बहुभायन हिय जिय भरे चुनि चुनि सुमन सुरंग।
साँझी खेलत साँझ मिलि पिय प्यारी दोउ सङ्ग ॥

॥ पद ॥१२१॥

पिय संग बिहारिन लाड़िली मिलि खेलत साँझी साँझ हो।
चूँटत सुमन सुचाय के बहु भाय हिये जिये माँझ हो।
इन्दीवर कल कली लली वर कोकनदन कर लीनी हो।
सुभग गोद में दवटि मोद सौं नारि नवाय नवीनी हो ॥
पियबासे सुमसुही सेवती सदा सुहाग वसन्ती हो।
चुनि चुनि चारु चंवेलि नबेलि सुझेलि लडेलि लसंती हो ॥
सौन सुगन्धी जाय राय पिय कर पकराय प्रवीना हो।
सरस गुलाल गुलाब मौलिसरि मेल भई लवलीना हो ॥
लै लै फूल दुकूलन में अनुकूल अलौकिक नीके हो।
मधुक मालती जाति जूथ की करबीरन हर हीके हो ॥
अन अन भाँति रङ्ग रङ्गन के सकल सुगन्ध सुहाये हो।

चतुर चौंप चित चाढे बढ़ि बढ़ि गाढे मदन मनाये हो ॥
चहल पहल निज महल कुंज कोरनि कल भीत लिपाई हो।
रची सँवारि सहेलिन संमत मन अभिलाष पुराई हो ॥
पूजी परम प्रीति सचि स्यामा स्याम सम्पूरन साधा हो।
स्वरन थार भरि भोग धरति ढरि हरन वितन तन वाधा हो॥
देय दृगंचल रहे तनक तजि चंचलता सजि मौना हो।
पुनि पीयूष पिवाय पुलक तन दै बीरी रुचिरौना हो ॥
नीराजन करि चरनन सिर धरि कहत उचरि मृदुबैना हो।
देवी सदा प्रसन्न बदन अये महा अनुग्रह ऐना हो ॥
सुफलप्रदा बिसदा जसदा रसदा दवनी दुख-दंदा हो।
त्रिभुवन अधिपति ईश्वरी अति बितरन उर आनन्दा हो ॥
सुखविलास विलसत साँझी साँझी माँझी सुख सानी हो।
श्रीहरिप्रिया निहारि नवल छबि वारि वारि पीवैं पानी हो।१२१

॥ दोहा ॥

संध्याकाल में श्रीप्रियाप्रियतम दोनों परस्पर-मिलकर साँझी खेल रहे हैं। अनेक प्रकार के (केलि कौतुकरूपी) साधन जुटा कर उन्होंने (भावनारूपी) सुन्दर रंगों के फूल चुन-चुन कर अपने हृदय व प्राणों में धर लिए हैं, जिनके अनुसार वे क्रीड़ाकर रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि आज सभी सखी सहचरियों ने भलीभाँति सज-धज कर अपने-अपने मन की अभिलाषा पूर्ण कर ली है। वे सम्पूर्ण साधनों से युक्त होकर परम प्रीतिपूर्वक श्रीश्यामाश्याम की सुन्दर रीति से पूजा कर रही हैं। स्वर्णथाल में सुन्दर भोग भरकर उनके समक्ष रखती हुईं वे अपने शरीर की काम जन्य वेदना को दूर कर रही हैं। भोग लगाते समय वे मौन धारण कर क्षण भर के लिए नेत्रों की चंचलता त्यागकर पलकों की ओट देकर उन्हें बन्द कर लेती हैं। भोजनोपरान्त वे पुलकित अङ्ग हो (प्रेमामृत रूपी) निर्मल जल पिलाकर उन्हें सुन्दर (रुचिरूपी) बीरी अर्पित करती हैं। फिर वे [अपने कज्जल मिश्रित जल अर्थात् प्रेमाश्रुओं से] नीरांजन [जल उतार] कर उनके चरण कमलों में मस्तक धर कर अति मृदुल वचनों से कहने लगती हैं—हे

श्रीप्रियाजू ! आप तो दैवी गुणों से युक्त सदा प्रसन्न मुख रहने वाली, कृपा की महा खानि, सुन्दर फल देने वाली, विपुल रस–यश से युक्त, दुःख-द्वन्द्वों का नाश करने वाली, त्रिभुवनाधिपति की भी परमेश्वरी, हृदय को आनन्द का वितरण करने वाली हैं। संध्या-के समय सुख विलास से भरी हुई आप दोनों को यह साँझी-लीला हम सभी के लिए परम सुख से सनी हुई होने के कारण परम सुखदायी लगती है। इस प्रकार मृदुवचन बोलकर श्रीहरिप्रिया सहचरी श्रीप्रियाप्रियतम की नित्य नवल का दर्शन कर बार-बार उस पर जल न्योछावर कर उसका पान करती हैं ॥१२१॥

॥ अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास ॥

[विजयदशमी]

॥ दोहा ॥

अँगसंगनि सँग लै सखी लेहु सबै सुख लूटि।
आजु बिजयदसमी निसा बिजय करौ जुग जूटि ॥

॥ पद ॥१२२॥

आजु बिजयदसमी उजियारी।
बिजय करो पिय सों मिलि प्यारी नवजोवन सुकुंवारी ॥
अँगसंगनि सँग लै सहचारी सुख लूटौ अति भारी।
श्रीहरिप्रिया जाउं बलिहारी बारम्बार तिहारी ॥१२२॥

॥ दोहा ॥

विजय–दशमी की रात्रि को विजय का पर्व आया जान श्रीहरिप्रिया सहचरी जी सभी सखियों को सम्बोधित करती हुई कहती हैं—अरी सखियो ! आज विजय-दशमी की रात्रि है। और तुम सब जानती हो कि श्रीप्रियाजी प्रियतम श्यामसुन्दर की नित्य अङ्ग सहचरी हैं। उन्हें अपने साथ ले जाकर प्राण प्यारे से उनका अङ्ग-सङ्ग कराओ। सुरत-समर में उन्हें भली प्रकार जुटा कर उससे उत्पन्न होने वाले सुख को तुम लोग लूट लो।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरीजी सखियों को सम्बोधित करती हुई कहती हैं—अरी सखियो ! देखो तो सही, विजयदशमी की इस रात्रि में कैसी चन्द्रिका छिटक रही है। यह घड़ी बार-बार आने की नहीं है अतः नवयौवन सम्पन्न सुकुमारी श्रीप्रियाजी को

आज की रात प्रियतम श्यामसुन्दर से मिलाकर विजय पताका अपने हाथ में क्यों नहीं ले लेती हो ! अङ्ग-संगनी श्रीप्रियाजी को साथ में लेकर निःसंदेह आज तुम लोग बड़ा भारी सुख लूट सकती हो । श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखियो ! मैं बार-बार तुम सबकी बलैया लेती हूँ, तुम सब शीघ्र ही श्रीप्रियाजू को साथ में ले जाकर श्रीश्यामसुन्दर से मिला दो ॥१२२॥

॥ दोहा ॥

सुभग सेज रनधीरकौ, बरविहार बलि आज ।
देखों द्दगभर लथोपथ लथे जोर जुगराज ॥

॥ पद ॥१२३॥

आजु बलि बिजै नैंन भरि देखों ।
सुभग सेज रनधीर बीर कौ बरबिहार अवरेखों ॥
जोबन जोर किसोर मनोहर लथे लथोपथ लेखों ।
श्रीहरिप्रिया प्रबल कौ संगम प्रमुदित ह्वै हिय पेखों ॥१२३॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखियो ! आज (विजयदशमी की रात्रि में) सुभग शैया पर पौंढ़े हुए रणधीर बाँकुरे श्रीकुँवर किशोरी के सुरत समर का नेत्र भर कर दर्शन कर लो ! बलिहारी जाऊँ ! देखो तो सही ! ये दोनों परस्पर सुरत समर में जूझते हुए (परिश्रम के कारण) कैसे श्रमित थकित दिखाई दे रहे हैं, फिर भी जोरा-जोरी करते ही जा रहे हैं !!

॥ पद ॥

आगे कहती हैं—अरी सहचरियो ! बलिहारी जाऊँ !! आज की रात श्रीप्रिया-प्रियतम के विजय-पर्व का नेत्र भर दर्शन तो कर लो ! ये रणधीर बाँकुरे कुँवर किशोरी [रङ्गमहल की] सुन्दर शैया पर किस प्रकार सुरत समर में जूझ रहे हैं ! देखो तो सही, मन का हरण करने वाले, यौवन से मतवाले ये किशोर किशोरी परस्पर सुरतसमर में जूझते हुए कैसे लथपथ [शिथिल-थकित] हो रहे हैं । इन सुभट-योद्धाओं के इस जोरा जोरी मिलन को प्रसन्न होकर अपने नेत्रों के माध्यम से अपने हृदय में धारण कर लो ।

॥ दोहा ॥

सब तिय सम्पति जीति मन मुदित अंस भुज दीनि ।
बिलसत लाड़िली लाल दोऊ विजय विपिन रस भीनि ॥

॥ पद॥१२४॥

लाड़िली लाल बिजै बन में विलसें हुलसें अतिही रसभीने ।
कौन टरें पनतें रनधीर धरें पग सामुहिं संक-विहीने ॥
दम्पति सम्पति जीति सबै मन मोद भरे हद बेहद कीने ।
राजत राजसिंहासन पर श्रीहरिप्रिया दोउ अंसन भुज दीने ॥१२४

॥ दोहा ॥

विजय-दशमी की रात्रि में वृन्दाविपिन में श्रीलाड़िलीलाल दोनों रस में सराबोर होकर विलास [क्रीड़ा] कर रहे हैं। वे सखी-सहचरियों की सारी सम्पत्ति जीतकर परस्पर गलबाहीं दिए परम प्रसन्न हो रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं--अरी सखियों ! देखो तो सही, विजयदशमी की उजयाली रात्रि में, श्रीवृन्दावन के रङ्गमहल में श्रीलाड़िलीलाल रस में सराबोर होकर अति उल्लास से भरे किस प्रकार विलास [क्रीड़ा] कर रहे हैं। सुरत समर के ये सुभट-योद्धा प्राणप्रण से परस्पर जूझ रहे हैं। वे [मानो लाल ठोककर] एक दूसरे के समक्ष निःशंक भाव से कदम बढ़ा-बढ़ा कर जूझ रहे हैं। पीछे हटने का तो वे नाम ही नहीं लेते।

अरी सखियो ! इन श्रीरसिक दम्पति ने (रसकी) सारी सम्पत्ति जीत ली है। विजय पताका प्राप्त कर वे इतने प्रसन्न हो रहे हैं, जिसकी कोई सीमा ही नहीं है। (विजय प्राप्त कर) वे दोनों परस्पर गलबाही दिए सिंहासन पर विराजमान होकर कैसे शोभायमान लग रहे हैं ॥१२४॥

॥ दोहा ॥

अहल महलनी सहचरी भई चित्र अवरेखि ।
दसहीं दिसि दम्पति बिजै छई देखि री देखि ॥

॥ पद ॥१२५॥

देखि री देखि आजु दसही दिसि दम्पति बिजै छई छई।
कटकी सहित धारि उर खटकी हारि जु हारि गई गई॥
चितवति सकल अहलनी महलनि ह्वै मनु चित्र मई मई।
श्रीहरिप्रिया पदाम्बुज आश्रय उमगति अभय भई भई॥१२५॥

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम के निज रङ्गमहल की सखी सहचरियां श्रीरसिकदम्पति की दसों दिशाओं में फैली हुई विजय का दर्शन कर चित्रलिखी सी हो जाती हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी सखियों का इस अद्भुत विजय का दर्शन कराती हुई कहती हैं--

॥ पद ॥

अरी सखियो! देखो-देखो, आज दशों दिशाओं में छाई हुई रसिक दम्पति श्रीप्रियाप्रियतम की विजय कैसी शोभायमान लग रही है। साहस और उत्साह के साथ दलबन्दी होने पर भी हृदय में जिस हार का खटका लगा हुआ था, वह हार भी (इन सुभट योद्धाओं को उनके कटक-दलके साथ देखकर स्वयं हार मान कर चली गई। एक-टक दृष्टि से निहारती हुई निज महल की अङ्ग-सङ्गनी सहचरियाँ तो मानो चित्रलिखी हुई सी दिखाई दे रही हैं। वे सभी श्रीप्रियाप्रियतम के चरणकमलों का उमङ्ग पूर्वक आश्रय) ग्रहण कर सर्व प्रकार से अभय प्राप्त कर चुकी हैं॥१२५॥

॥ अनुरागिनि कर्णकान्ता मध्याभास ॥

(रासोत्सव)

॥ दोहा ॥

बिबिध भेद गति जति सहित सकल कला सिरमोर।
अतिरस बरसत सरद की सरवरि जुगलकिसोर॥

॥ पद ॥१२६॥

सरद सरवरी अति रस बरसत नवल जुगल मंडल में।
बिबिध भेद गति तान मान बंधान गान कल उघटत ताथंडलमें॥
रीझि भीजि वन वेलि डहडही रही दृष्टि दे आखंडलमें।
श्रीहरिप्रिया निरखि नैंनन सुख वारि प्रान पलपलमें, उमगी उर मंडलमें १२६

॥ दोहा ॥

शरद की रात्रि में सर्व शिरोमणि श्रीयुगलकिशोर विविध प्रकार की गति-यति से युक्त रास क्रीड़ा करते हुए मधुर रस की वृष्टि कर रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं--अरी सखी ! देख तो सही, श्रीनवलकिशोर किशोरी की सुंदर जोड़ी शारदीय रात्रिमें रासमण्डल में मधुर(शृंगार)रसकी कैसी वृष्टि कर रहे हैं। त त थेई की विविध प्रकार की गतियों में स्वर-लय के साथ समा बाँधकर सुन्दर गायन कर रहे हैं, जो सर्वत्र व्याप्त हो गया है। उनकी दिव्य रास-क्रीड़ा का दर्शन कर वन की सभी लता-वल्लरियाँ (सखी सहचरियाँ) प्रेम से भींज एकटक दृष्टि से निहारती हुई फूल (प्रफुल्लित) हो उठी हैं। श्रीहरिप्रियादि सहचरीगण श्रीप्रियाप्रियतम की दिव्य रास-क्रीड़ा का दर्शन करती हुई पल-पल में अपने प्राणों को न्योछावर कर रही हैं। अपने नेत्रों से इस सुख को निहारती हुई वे उमंगित हृदय हो रही हैं।

॥ दोहा ॥

उघटत ता धित्ता धी त त, तं तं तं त त कीन।
नागरि नागर रास में निर्तत नव गति लीन॥

॥ पद ॥१२७॥

नागरी नागर निर्तत रास में नई नई गति लीने।
हस्तक भेद विभेद-परायन पायन बरजति बीने॥
उघटत ता धित्ता धित्ता धे त त तं तं त त कीने।
श्रीहरिप्रिया निरखि तन मन धन न्यौछावर करि दीने॥१२७

॥ दोहा ॥

नागरी-नागर श्रीश्यामाश्याम नई-नई गतियों में डूबकर ता धिता त त आदि मृदङ्ग की थाप पर (रासमण्डल में) नृत्य कर रहे हैं।

॥ पद ॥

नागरी-नागर श्रीश्यामाश्याम नई-नई गतियों में डूबे हुई रासमण्डल में नृत्य कर रहे हैं। वे अनेक प्रकार से हाथ मटकाते हुऐ, नृत्य की विविध मुद्राओं को अपनाकर ताल की संगति में पैरों को पटकते हुए वीणा की झंकार को भी मात दे रहे हैं। वे पैरों

से 'ता धिता धिता धे तं तं' की ध्वनि निकालते हुए बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ श्रीप्रियाप्रियतम की इस विशेष भाव-मुद्रा एवं नृत्य-कौशल का दर्शन कर अपना तन-मन-धन सर्वस्व न्योछावर कर देती हैं।

॥ दोहा ॥

अति अद्भुत देखो न दृग सुनी न काहू ठाउं।
तो गति पर प्यारी अहो वारी वारी जाउं॥

॥ पद॥१२८॥

वारी वारी एहो जाऊं तिहारी गति पर प्यारी।
अति अद्भुत देखी न सुनी कहु जो जो तो पै कला री॥
सब गुन-सींव सरूप शिरोमनि नागरि निपुन महा री।
श्रीहरिप्रिया सदा हिय नैननि बसि रहिये बलिहारी॥१२८॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी श्रीप्रियाजी की नृत्य-गान कला का दर्शन करती हुई कहती हैं—हे प्यारीजू ! आपकी (नृत्य सम्बन्धी) चाल पर मैं बलि-बलि जाऊँ ! अहा ! आपकी ऐसी अद्भुत गति न तो कहीं देखने को मिली, न सुनने को। पुनः कहती हैं—

॥ पद ॥

हे प्यारी जू ! आपकी बाँकी गति पर मैं बलि–बलि जाऊँ। जैसी अद्भुत कला में आप प्रवीण हैं, वैसी कला न तो कहीं देखी और न सुनी। सचमुच ही आप सर्व गुणों की सीमा, सुन्दरियों में शिरोमणि, महा चतुर और निपुण (नायिका) हैं। मैं बलिहारी जाऊँ ! आप तो सुन्दर श्यामकिशोर सहित सदा मेरे नेत्रों में और मेरे हृदय में कृपापूर्वक बसी ही रहिए॥१२८॥

॥ अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

कला जितिक जग नृत्यकी रंचक बची न कोउ।
ललित मृदुल गति रास में खेलत लालन दोउ॥

॥ पद॥१२९॥

खेलत लालन ललना रासे। ललित मृदुल गति मिलवति लासे॥

श्रीवृन्दावन सरद जामिनी। संग लियें सत कोटि कामिनी॥
बाजा अनअन भाँतिनु बजवति। एक सुरनि कल सुन्दरि सजवति॥
गावति सुघर संगीत सुढारा। सुनि सुनि रीझत दोउ सुकुँवारा॥
नृत्य कला जितनी जग माहीं। कोउ न बची रंचक इनि पाहीं॥
भृकुटि बिलासन विहँसि बढ़ावें। कोटि कोटि कन्दर्प लजावें॥
लाग दाट में कुसल किसोरी। अद्भुत गति उपजावत गोरी॥
रीझि रीझि प्रीतम तृन तोरें। यह छवि सदा बसौ उर मोरें॥
इतनी मानि बिनती लीजें। श्रीहरिप्रिया चरन-रज दीजें॥१२९॥

॥ दोहा ॥

संसार में जितनी भी नृत्य सम्बन्धी कला है, उसमें से किंचित मात्र भी नहीं बची है। श्रीलाड़िलीलाल (ऐसी सम्पूर्ण नृत्य कला के साथ) सुन्दर-सुकुमार गति के साथ रास क्रीड़ा कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरीजी आगे कहती हैं—

॥ पद ॥

श्रीलाड़िलीलाल रासमण्डल में नृत्य कर रहे हैं। वे सुन्दर सुकुमार गति से परस्पर मिलते हुए मुस्करा रहे हैं। श्रीवृन्दावन में शरद की धवल रात्रि में सखी-सहचरियों वृन्द के वृन्द उनके साथ शोभायमान हो रहे हैं। अनेक भाँति के बाजे बज रहे हैं। सखियाँ एक स्वर से सुन्दर-सुरीली तान छोड़ रही हैं। वे चतुर बालाएँ स्वरके सुन्दर उतार चढ़ाव के साथ गीत गा रही हैं, जिन्हें सुन-सुन कर दोनों कुँवर किशोरो प्रसन्न हो रहे हैं। जितनी भी प्रकार की नृत्य कला संसार में हैं, उसमें से रंच मात्र भी इन श्रीयुगल किशोर से नहीं बची है। नृत्य करते समय जब वे मन्द-मन्द मुस्कराते हुए परस्पर भृकुटियों का संचालन करते हैं तो उसे देखकर कोटि-कोटि कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं। गौरांगी श्रीकिशोरी जी तो नृत्य की लाग-दाट (गति-यति) में इतनी कुशल हैं कि उसे देखकर महान् आश्चर्य होता है। प्रियाजी की इस विशेष नृत्य कला का दर्शन करते हुए रसिक शिरोमणि श्रीश्यामसुन्दर भी रीझ-रीझ कर तृण तोड़ने लगते हैं। ये प्रियाजी की ऐसी बाँकी झाँकी को सदा सदा के लिए अपने हृदय में बसाने की कामना करने लगते हैं। इस सुख का दर्शन करती हुई श्रीहरिप्रिया सहचरी जी भी हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती हुई कहती हैं—हे श्रीप्रियाजी ! इतनी विनती मेरी भी सुन लीजिए,

कि मैं सदैव आप दोनों की चरण शरण में ही पड़ी रहूँ।आपकी चरणरज उड़-उड़कर मेरे मस्तक पर पड़ती रहे—यही मैं चाहती हूँ ॥१२९॥

॥ अनुरागिनि कन्दर्पकामा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

थेइ थेइ रट उघटहीं सुघट सुगति गति लीय।
रास मध्य रस-भरे दोउ निर्तत प्यारी पीय॥

॥ पद ॥१३०॥

निर्तत रास में रसभरे।
अति प्रवीन पिय प्यारी दोऊ, रास में रस भरे।
कुकुझां कुकुझां झनकत थुंग थुंग तकित धकित॥
धी धी कत तत्त थेई थेई उघटत रास में रसभरे।
निरखि बदन पर बलि श्रीहरिप्रिया रास में रसभरे ॥१३०॥

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम रस में डूबे हुए रासमण्डल में नृत्य कर रहे हैं। वे अपने मुख से त त थेई की रट लगाए हुए सुन्दर-सुकुमार चाल से नृत्य कर रहे हैं।

॥ पद ॥

नृत्य कला में परम प्रवीण श्रीप्रियाप्रियतम रस भरे भाव से रास (नृत्य) कर रहे हैं। कुकुझाँ-कुकुझाँ, थुंग-थुंग, त त थेई आदि का मृदङ्ग की थाल पर उच्चारण करते हुए रसभरी रीति से रास (नृत्य) कर रहे हैं। रात के समय उनके सुन्दर सुकुमार मुखचंद्र का दर्शन कर श्रीहरिप्रिया सहचरी बलिहारी जाती हैं ॥१३०॥

॥ दोहा ॥

अति रस रास उलास भरि विविध बिकट गति लीन।
प्रानप्रितम सङ्ग रमति श्रीराधा सुघरि प्रवीन॥

॥ पद ॥१३१॥

सुघरि श्रीराधिका प्रवीन प्रानप्रीतम के संग।
उरसि भरि उलास रमति रुचिर रासरङ्ग॥

धी धी धी धी धी धिलङ्ग बजति जति मृदङ्ग ।
उघटत मुख त त्त त्त थेई तकत थुंग थुंग ॥
मृदु पद विन्यास बिसद बिकट गति सुधंग ।
लाग दाट उरप तिरप भौंह भृकुटि भङ्ग ॥
मचनि मुरनि लंक लचनि उचनि कुच उतंग ।
सचनि सुरनि कण्ठ कीनी कोकिला कुल पंग ॥
अति प्रसन्न वदन सदा स्वामिनी सुअङ्ग ।
रीझि लाय लई हिये श्रीहरिप्रिया उमंग ॥१३१॥

॥ दोहा ॥

रास–विलास के उल्लास से भरे हुए प्राण प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर प्राण प्रियतमा परम प्रवीणा श्रीप्रियाजी के संग नृत्यकला की अति विकट (कठिन) गतियों के साथ नृत्य करते हुए रमण कर रहे हैं ।

॥ पद ॥

सुन्दरियों में परम प्रवीणा श्रीराधिका किशोरी प्राण प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर के संग हृदय में परम-हर्ष व उल्लास से भरकर रुचि पूर्वक रास-विलास की क्रीड़ा कर रही हैं । मृदङ्ग की 'धी धी' की थाप के साथ वे अपने मुख कमल से 'त त त तेई की मधुर शब्दावली का उच्चारण कर रही हैं । बड़ी ही विकट गति के साथ वे मधुर-मृदुल ढंग से पद–विन्यास (संचालन) कर रही हैं । नृत्य की अनेक भाव मुद्राओं को वे अपनी भृकुटियों को मटका कर प्रकट कर रही हैं । जब वे झटके के साथ मुड़ती हैं, उस समय उनकी क्षीण कटि की 'लचक' तो देखते ही बनती है, जब वे कूद-कूद कर नृत्य करती हैं उस समय उनके उन्नत कुचों का कम्पन भी देखते ही बनता है । जब वे पञ्चमस्वर से सुरीले तान छेड़ती हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है मानो कोयलों के कुल समूह ही यहाँ आकर एकत्र हो गये हों । स्वामिनि श्रीप्रियाजी को इस प्रकार अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में अपने सुन्दर अङ्गों के संचालन के साथ नृत्य करते देख श्रीश्यामसुन्दर रीझ जाते हैं और उमङ्ग से भरकर उन्हें पकड़कर अपने हृदय से लगा लेते हैं ॥१३१॥

॥ दोहा ॥

वृन्दावन आनन्दघन नवनित कुंज निवास ।
निर्तत मोहन मोहनी मुद भरि मंडल रास ॥

॥ पद ॥१३२॥

रासमण्डल मध्य निर्तत मोहनी मोहन,
वृन्दावन नव निकुञ्ज सुन्दर आनन्दघन।
लाग दाट उरप तिरप उघटत संगीत सुलप,
राग रङ्ग तान मान गान सुघर सप्त सुरन॥
निपुन हस्तक भेद भास भ्रू विलास मन्द हास,
हियें हुलास भरे दोऊ गौर साँवर तन।
रीझि रीझि भीजि भीजि सुरत रङ्ग अङ्ग अङ्ग,
उर उमङ्ग माधुरी तरङ्ग मथत कोटि मदन॥
अति प्रवीन प्रीतम निज पीताम्बर पानि आनि,
प्रान प्यारी श्रमित जानि पोंछत हैं श्रमकन।
करत जहाँ खवासी श्रीहरिप्रिया दासी दम्पति की,
वारि वारि आपनपौ धन फूली तन मन ॥१३२॥

॥ दोहा ॥

आनन्द घन श्रीवृन्दावन की नित्य-नवल-निकुंज के नित्य नवल रासमण्डल में नित्य निकुञ्ज निवासी श्रीमोहनीलाल और श्रीमोहन लालजी प्रसन्नता से भरकर नृत्य कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं।

॥ पद ॥

सुन्दर आनन्द घन श्रीवृन्दावन के नित्य-नव-निकुञ्ज के नित्यरास मण्डल में मोहन मोहनी नृत्य कर रहे हैं। वे संगीत की अनेक प्रकार युक्तियों, आरोह-अवरोह (उतार-चढ़ाव एवं राग-रंग के साथ सप्त स्वरों में अपनी सुन्दर तान छेड़ रहे हैं। मन्द-मन्द मुस्कराते हुए नाना प्रकार से अपनी भौंहों का संचालन कर रहे हैं, अनेक प्रकार से हाथों को मटका रहे हैं। दोनों श्यामल-गौर शरीर हर्षोल्लास से भरे हुए दिखाई दे रहे हैं। रास करते हुए प्रेम रस में निमग्न होकर वे एक-दूसरे के प्रति रीझ-रीझ उठते हैं। उनका अङ्ग-प्रत्यंग सुरत-रंग से रंग कर देदीप्यमान हो रहा है। हृदय प्रेम-रस से उच्छलित हो रहा है, जिसकी रसमयी तरंगें कोटि-कोटि कामदेवों के भी मन का मन्थन करने में समर्थ हैं। नागर-शिरोमणि रसिक सिरमौर प्रियतम श्यामसुन्दर

अपने पीताम्बर को अपने हाथ में लेकर प्राणप्रिया श्रीकिशोरी जी थकित श्रमित जान उनके मुख कमल पर पड़े हुए स्वेद बिन्दुओं को पोंछने लगते हैं। ऐसे रसिक सिरमौर दम्पति श्रीप्रियाप्रियतम की खास–खवासी (सेवाकार्य) में श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ सदैव सावधान होकर खड़ी रहती हैं और उनकी बाँकी छटा की बार-बार झाँकी कर अपना सर्वस्व न्योछावर कर तन-मन से फूली-फूली फिर रही हैं ॥१३२॥

॥ दोहा ॥

त त थेई उघटत सुगति अति अङ्ग अङ्ग रङ्गररी।
श्रीरसिकनिजू गावहीं रास मध्य रस भरी॥

॥ पद ॥१३३॥

रास में रसभरी रसिकनिजू गावें।
सरिगमपधनि प नि ग म प ध नी न न न,
न न न न न अन अना सुगति उपजावें।
ग्रिगडदा ग्रिगडदा त त त त त त थेई थेई यत त,
बहुत गति भेदजुत परनि समुझावें।
द्रुमकि द्रं द्रं द्रनन द्रनन द्रुं द्रुं द्रुमकि मृदङ्ग,
श्रीहरिप्रिया सहचरि बजावें॥१३३॥

॥ दोहा ॥

त त थेई की थाप के साथ रसिकनि श्रीप्रियाजू का अङ्ग-प्रत्यंग रास-रंग से सरावोर होकर नृत्य की नाना प्रकार की गति से युक्त दिखाई दे रहा है। वे रासमंडल में रससिक्त हृदय हो गीत गा रही हैं।

॥ पद ॥

रास के समय नृत्य करती हुई रसिकनी श्रीप्रियाजू रसभरे हृदय से गीत गा रही हैं। वे संगीत की अनेक ताल-लय की ध्वनियों के साथ सुन्दर गति से नृत्य कर रही हैं। वे अपने चरणों को अनेक प्रकार से गति देकर 'ग्रिगडदा–ग्रिगडदा' जैसे नृत्य के अनेकानेक भेदोपभेदों का जन्म दे रही हैं। जैसे-जैसे श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ 'द्रमकि द्रं द्रं द्रं' 'द्रमकि द्रं द्रं द्रं' की थाप दे-देकर मृदंगबजाती हैं वैसे-वैसे ही वैसे श्रीप्रियाजू नई-नई गति से नृत्य करती जाती हैं ॥१३२॥

॥ दोहा ॥

रंगभरे गुन रसभरे साँवर गौर सहास।
दोउ रसिक मनमोहने सरस निर्तत रसरास॥

॥ पद ॥१३४॥

निर्तत रसरास रसिक मनमोहन दोउ बहियां जोरें।
रंगभरे रसभरे गुन भरे सोहत साँवर गोरें॥
कुकुकुझुकुकुझुकुझननझननझीमांझीमांद्रीमांद्रीमांमृदङ्गघोरें ।
ध ध म फ ध फ फ ध धं मफधां धां तां तां तानन तोरें॥
मुकुट लटक अरु चटक चंद्रिका भृकुटि मटक चित चोरें।
श्रीहरिप्रिया प्रसन्न वदन पर रीझि रीझि सिर ढोरें॥१३४॥

॥ दोहा ॥

प्रेम के रंग में रंगे, रस और गुणों से भरे, मंद-मुस्कान से युक्त श्यामल-गौर रसिक दम्पति रासमंडल में सरस भाव से नृत्य करते हुए मन को मोहित कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती हैं :

॥ पद ॥

अरी सखी ! देख तो सही, रसिक मन मोहन मोहनी दोनों परस्पर गलबहियां डाले रास मण्डल में नृत्य कर रहे हैं। ये श्यामल-गौरांगी रंग, रस व गुणों से भरे हुए होने के कारण कैसे शोभायमान लग रहे हैं। मृदङ्ग से निःसृत 'कुं कुं झुक झनन' की गंभीर आवाज के साथ 'ध ध म फ ध' आदि–संगीत स्वरों की तान छेड़ रहे हैं। नृत्य–गायन की इस विशेष मुद्रा में श्रीप्रियाजी की चंद्रिका की चटक, श्रीलाल के मुकुट की लटक और दोनों की भृकुटियों की मटकन चित्त को चुराये ले रही है। इस प्रकार श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ श्रीप्रियाप्रियतम के प्रफुल्लित मुख चन्द्र का दर्शन कर रीझ–रीझ पड़ती हैं और बार–बार उनके चरणारविन्दों में मस्तक झुकाने लगती हैं।

॥ दोहा ॥

गति में सुगति अगाध लै जति मृदंग साधे जु।
ए दोउ निर्तत रास में रसिक रु श्रीराधे जु॥

॥ पद ॥१३५॥

ए दोउ निर्तत रास में रसिक श्रीराधे।
अति ही आनन्दभरे उघटत त त्त त्ताधे॥
नाग्रिदा दा तं ताग्रिदी दी तं ध ध ध धध ध ध ध ध धीतं।
थुङ्ग थुङ्ग थुं तुङ्गविद्या बजावति धे धिना धे॥
जय जय श्रीहरिप्रिया प्रवीन नृत्य-कला कोटि कुसल अलग।
लग ग ग ग ग ग ग ग गति में गति अति अगाधे ॥१३५॥

॥ दोहा ॥

मृदङ्ग की प्रत्येक थाप को साधकर अगाध एवं सुन्दर गति से रसिक–रसिकनी दोनों रास मण्डल में नृत्य कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी आगे कहती हैं :—

॥ पद ॥

अरी सखी ! देख तो सही, रसिक श्रीश्यामसुन्दर और रसिकनी श्रीराधिकाजी दोनों 'ता ता त्ता धे' का उच्चारण करते हुए आनन्द से भरकर रास मण्डल में कैसे नृत्य कर रहे हैं ! श्रीतुङ्गविद्याजी जैसे जैसे 'ताग्रिदा–ताग्रिदा थुंग थुंग' की ध्वनि के साथ मृदङ्ग बजाती हैं वैसे ही वैसे नृत्य कला में परम प्रवीण श्रीप्रियाप्रियतम कोटि–कोटि प्रकार से कभी परस्पर मिलकर तो कभी अलग होकर अति अगाध गति से चलते हुए अपनी नृत्य कला दिखा रहे हैं। श्रीहरिप्रियादि सहचरियां उनकी जय–जयकार करती हुई आनन्द विभोर हो जाती हैं ॥१३५॥

॥ दोहा ॥

देखौ देखौ री सखी चिदानन्दघन रूप।
प्यारी राधे को बन्यौ वृन्दाविपिन अनूप॥

॥ पद ॥१३६॥

प्यारी राधे को वृन्दावन देखौ देखौ री चिदानन्दघन।
तैंसिय सरद उजियारी राका रुचिकारी,
तैंसोइ त्रिविध वहै पवन सनन सन।
कुञ्ज कुञ्ज द्रुमवेलि प्रफुल्लित अलबेली,
झेली रस झूमि झूमि रहि रति रेली तन।

तहाँ श्रीहरिप्रिया हुलास भरे रच्यो रास,
रसिक प्यारे लाल तत्ता थेई थेई उघटत नन नन ॥१३६॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखियो ! देखो तो, देखो तो प्राण प्यारी श्रीराधिका किशोरीजू का यह श्रीवृन्दावन अपने चिदानन्द घन स्वरूप कैसा अनुपम लग रहा है। आगे कहती हैं।

॥ पद ॥

अरी सखियो ! प्रियाजी श्रीराधिका किशोरीजू के चिदानन्दघन स्वरूप श्रीवृन्दावन का किंचित् दर्शन तो कर लो। जैसा श्रीवृन्दावन है वैसी ही शारदीय पूर्णिमा पर अत्यन्त रुचिकारी पूर्ण ज्योत्स्ना भी छिटक रही है और उसीके अनुरूप शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन भी सन-सन करता हुआ प्रवहमान हो रहा है। इतना ही नहीं, कुञ्ज-प्रतिकुञ्ज में द्रुम वल्लरियाँ भी रस में झूम-झूम कर परस्पर प्रेमकेलि करती हुई कैसी प्रफुल्लित हो रही हैं ! ऐसे परम रमणीक श्रीवृन्दावन के दिव्य रास मण्डल में रसिक दम्पति श्रीप्रिया प्रियतम हर्षोल्लास से भरे रास-रस की लीला कर रहे हैं। वे अपने मुख से 'त त थेइ' और 'न न न न' जैसे सुन्दर स्वरों का नृत्य की गति के साथ उच्चारण करते जा रहे हैं।

॥ अनुरागिनि खंजनाक्षी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

करन चिबुक लिये चरन में नइ नइ गति उपजाय।
निर्तत प्रेम उमङ्ग सों ए दोऊ छबि पाय॥

॥ पद ॥१३७॥

ए दोऊ निर्तत छबि पावैं।
करे करन में चिबुक चरन में नइ नइ गति उपजावैं॥
हँसनि लसनि दसननि की दमकनि चितवनि चित्त चुरावैं।
भृकुटि विलास चपल आयत अति अँखियन मार मचावैं॥
रीझि रीझि रसभीजि परस्पर प्रेम उमँग उमगावैं।
श्रीहरिप्रिया निसंक अंक भरि लै लै लंक लगावैं॥१३७॥

॥ दोहा ॥

रास मण्डल में उमंगित हृदय हो श्रीप्रियाप्रियतम दोनों नृत्य करते हुए परस्पर एक-दूसरे की ठोड़ी को अपने-अपने हाथ से पकड़े हुए अपने चरणों में नई-नई गति उत्पन्न कर नृत्य करते हुए बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं।

॥ पद ॥

अरी सखी! देख तो, ये दोनों श्रीप्रियाप्रियतम परस्पर नृत्य करते हुए कैसे शोभायमान लग रहे हैं। ये अपने हाथों से एक–दूसरे की ठोड़ी पकड़कर खड़े होने पर भी चरणों में नई-नई गति उत्पन्न करते हुए नृत्य कर रहे हैं। इस भाव मुद्रा में उनके हँसने का स्वरूप, दन्तावली की चमक एवं बाँकी चितवन तो हमारे चित्त को ही चुराये डाल रही है। वे बड़ी ही चपलता से परस्पर भृकुटियों का संचालन करते हुए नेत्रों से कटाक्ष कर रहे हैं। इससे वे स्वयं ही रस से भीगकर एक-दूसरे पर रीझ-रीझ पड़ते हैं और पारस्परिक प्रेम की उमङ्ग से भर उठते हैं। कभी कभी वे एक दूसरे को अङ्क में भरकर अपने अपने हृदय से लगा लेते हैं। श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ उनकी इस अद्भुत रास क्रीड़ा का दर्शनकर आत्मविभोर हो जाती हैं ॥१७३॥

॥ दोहा ॥

सुघट सुरनि संघट उघट भीदी वीली झीन।
रूप उज्यारे रास में निर्तत री रस भीन॥

॥ पद ॥१३८॥

रास में निर्तत री रस-भीने।
प्यारी प्यारे रूप उज्यारे दोउ गरबहियाँ दीने॥
थेई थेई रट सुघट उघटहीं सुर संघट परवीने।
उपर तिरप में तृवट सुलप थट अलग लाग दट लीने॥
थुंकट थुंकट अपट झपट झट झ्ाँ झ्ाँ झुकुटत झीने।
श्रीहरिप्रिया भीदी वीली झीन न न न न न न न कीने॥१३८॥

॥ दोहा ॥

सौंदर्य से जगमगाते हुए श्रीप्रियाप्रियतम रस में सराबोर होकर रास मण्डल में नृत्य कर रहे हैं। वे संगीत वाद्य कला के भेदों के अनुसार सुन्दर-मधुर एवं सुरीली तान

छेड़ रहे हैं। आगे श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं।

॥ पद ॥

अरी सखी ! देख तो सही, रूप सौंदर्य से जगमगाते श्रीप्रियाप्रियतम दोनों रस-भीने हृदय से परस्पर गलबहियाँ दिए रास-मण्डल में कैसे नृत्य कर रहे हैं। वे नृत्य-गान की अनेक मुद्राओं को बनाकर सुन्दर अलापचारी कर रहे हैं। वे मृदङ्ग की थाप के साथ कभी परस्पर झपट कर मिलते हैं, तो कभी अलग हो जाते हैं। कभी बैठ जाते हैं, तो कभी उठ कर पुनः नाचने लगते हैं। इस प्रकार श्रीप्रियाप्रियतम का ताल से ताल व लय से लय मिलाकर नृत्य गायन करते हुए परम सुहावन-मन भावन लग रहे हैं।।१३८।।

॥ अनुरागिनि ललितानना मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया जु परस्पर करि करि निपट निहोर।
मुख सों मुख जोरे दोउ नित॑त नवल किसोर॥

॥ पद ॥१३९॥

एरी नित॑त री नवल किसोर किसोरी, जोरी मुख सौं मुख जोरें जोरें।
उरप तिरप गति लेत सुलप तानन, न न न न न तोरें तोरें॥
बजत मृदंग ताक थुंग्रदा थुंग्रदा थ थ थां,थ थ थां थां थ नननन थोरें थोरें
श्रीहरिप्रिया प्रवीन परस्पर, करि करि निपटि निहोरें होरें॥१३९॥

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम नवल किशोर–किशोरी दोनों परस्पर मिलने के लिए एक दूसरे का निपट निहोरा कर रहे हैं। वे परस्पर हाथों को पकड़ झुक-झुक कर मुख-से-मुख जोड़कर नृत्यकर रहे हैं। उनकी इस मुद्रा का दर्शनकर श्रीहरिप्रिया सहचरीजी कहती है।

॥ पद ॥

अरी सखी ! देख तो सही, श्रीनवल किशोर किशोरी की यह सुन्दर जोड़ी परस्पर मुख से मुख जोड़कर कैसी नृत्य कर रही है। वे उलट पलट कर अनेक प्रकार से गति लाते हुए मुख से नाना प्रकार की तान छेड़ रहे हैं। मृदङ्ग 'ताक थुं ग्रदा' की थाप के साथ धीरे-धीरे बज रहा है, जिसकी संगति मिलाकर नृत्य कला में परम प्रवीण श्रीप्रिया-

प्रियतम नृत्य करते हुए परस्पर मिलने के लिए एक-दूसरे का निहोरा कर रहे हैं। अर्थात् हस्तकमलों की अनेक मुद्राएँ बनाकर वे मानों परस्पर मान-मनुहार कर रहे हैं ।।१३९

।। अनुरागिनि रत्नकला मध्याभास ।।

।। दोहा ।।

मदनमोहन न न न न करत सोहन वदन विकास।
अति रति मृदु गति मोहनी रमति आजु रसरास ।।

।। पद ।।१४०।।

रमति रसरास मन मोहनी मृदुल गति,
मदनमोहन बदन न न न न न न न करत।
उघट परिरम्भ रट कटि निकट अघट अट,
सुघट सांगीत थट अपट झट सुर भरत ।।
ग्रि ग्रिदा ग्रि ग्रिदा ग्रिद ददद ददद ददद द द,
ध ध ध ध ध ध ध ध ध ध मृदङ्ग धुंधु धरत।
कला कोटिक निपुन नृत्य श्रीहरिप्रिया,
ततत ततत ततत तत्तत थेई उच्चरत ।।१४०।।

।। दोहा ।।

आज रास मंडल में श्रीमदन मोहन-मोहिनी अपने सुन्दर मुख चन्द्र से 'न न न न' की प्रेम-रस भरी मधुर वाणी बोलते हुए नृत्य कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं :

।। पद ।।

श्रीमन मोहन–मन-मोहिनी 'न न न न' की ध्वनि करते हुए सुन्दर सुकुमार गति से रास रस भरे रास मण्डल में नृत्य कर रहे हैं। कभी वे परस्पर कटि पकड़कर आलिङ्गन करते हुए नाचते हैं तो कभी झटके के साथ घूम कर सुन्दर संगीत के सुरीले शब्दों का उच्चारण करते हैं। मृदङ्ग की 'ग्रि ग्रिदा ध ध धु' की थाप के साथ वे कोटि प्रकार से नृत्यकला का 'त त थेई' के उच्चारण के साथ प्रदर्शन करते हुए बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं ।।१४०।।

॥ अनुरागिनि खंजनाक्षी मध्याभास ॥

(ब्याह)

॥ दोहा ॥

श्रीराधा कृष्ण बिबाह सुख सरबस मङ्गल-मूल ।
नित नित रचत सहेलियाँ भरी प्रेम परफूल ॥१॥
भरी प्रेम परफूल सब हित की अलि अलबेलि ।
व्याह बिनोदनि सुख सच्यौ हिलि मिलि सबै सहेलि ॥२॥
सबै सहेलि सहेलियाँ राची रङ्ग रसाल ।
सर्बस तिनकें सम्पती दम्पति पति प्रतिपाल ॥३॥
दम्पति संपति सहज सुख दुलहिन दूलह लाल ।
तदपि ब्याह बिधि बिरचहीं बिबिध बिनोदनि बाल ॥४॥
बाल लाल सुख में सचे रचे सहेलिन संग ।
अद्भुत ब्याह बिनोद में भीजि रहे रसरंग ॥५॥
भीजी ब्याह बिनोद-रस सरस सहेलिन बाल ।
कहत सबै आवौ अली लड़वैं दोऊ लाल ॥६॥

॥ पद ॥

दोउ लालन ब्याह लड़ावौ री, छबि निरखत नैन सिरावो री ।
फूलन को मंडप छावौ री, सुचि सरस सथम्भ सचावौ री ॥
रँगभीने को बना बनावौ री, सब मङ्गल मोद बढ़ावौ री ।
सुख तेल फुलेल लगावौ री, बहु बाजे विविध बजावौ री ॥
उबटना अङ्ग उबटावौ री, केसरि कें नीर न्हवावौ री ।
अङ्ग अङ्गनि सिरी चढ़ावौ री, जु सहाने हट पहिरावौ री ॥
रोरी को तिलक रचावौ री, मोतिन के अछित चढ़ावौ री ।
सेहुरा सीस बँधावौ री, हँसि हँसि बीरीजु खवावौ री ॥
सब सोभा निरखि सिहावौ री, प्रेम कें पाग पगावौ री ।

॥ दोहा ॥

प्रेम पगे निरखें दोऊ देखें सब मिलि हेलि ।
आवौ री अलबेलि बलि बाढ़े रस रँग रेलि ॥
रँगरेली हेली लियें करन लगीं गुन गान ।
बना बनी जु बनाय कें बाने दोऊ बान ॥

॥ पद ॥

बाने बान रँगीली रंगीले, दूलह दूलहनि रसिक रसीले ।
बिमला बारिज-बदनी बाला, बिधिसों बाँधत बंदनमाला ॥
फूलनकौ मंडप छबि छायौ, रच्यौ मोहनी महा सुहायौ ।
कनकलता ज्यों लटकत डोलैं कलबैनी कोयल ज्यों बोलैं ॥
गरबभरी मङ्गल बहु गावैं, भाँति भाँति दोउ लाल रिझावैं ।
कोऊ रतन चौकी लै आई, रङ्गमहल में आनि बिछाई ॥
बना बनी दोऊ बैठाये, निरखि निरखि उर नैंन सिराये ।
कोउ रँगरेलिनि तेल चढ़ावैं, बेलि मेलि रसरेलि लगावैं ।
बड़भागिनि बड़भाग मनावैं, श्रीहरिप्रिया निरखि बलि जावैं ॥१४१

प्रस्तुत पद में श्रीराधाकृष्ण के विवाहोत्सव का सुन्दर वर्णन किया गया है । सखी–सहचरियाँ प्रेम से अभिभूत हृदय हो नित्य प्रति श्रीप्रियाप्रियतम का विवाह रचते हैं । उनके लिए श्रीराधाकृष्ण का यह विवाह-सुख सर्व मङ्गल का मूल है । वे सबकी सब अपने हितमय अनोखे रूप से परस्पर हिलमिलकर श्रीप्रियाप्रियतम के विवाह को संयोजन कर रही हैं । वे परम रसभरे स्वरूप से सदैव रची-पची रहती हैं । उनकी सारी सम्पत्ति रसिक दम्पति ही हैं, जिनकी वे प्रतिक्षण साज-सम्हाल करती रहती हैं । वैसे ये श्रीरसिक दम्पति सदा-सर्वदा अपने नव दूलह-दुलहन रूप में ही शोभायमान रहते हैं फिर भी प्रेमिका बालाएँ तत्सुख–सुखित्व के भाव से भरकर पुनः पुनः विविध प्रकार से श्रीप्रियाप्रियतम का विवाहोत्सव मनाती हैं । कैशोर वाले श्रीकिशोर किशोरी सखी-सहचरियों के साथ अद्भुत विवाह के प्रेम-रस-रंग में निमज्जित हो रहे हैं । विवाहोत्सव की उमङ्ग में भरी हुई सहचरियाँ श्रीलाड़िलीलाल को लाड़ लड़ाने के लिए एक-दूसरे को प्रेरित कर रही हैं ।

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी आगे कहती हैं, अरी सखियो ! श्रीप्रियाप्रियतम के विवाह को लाड़ पूर्वक रचाकर अपने दोनों नेत्रों को शीतल कर लो। फूलों का सुन्दर मंडप आच्छादित करो, केले के सुन्दर-पवित्र खंभे रोपो, रंग-रंगीले श्यामसुन्दर को बन्ना (दूलह)बनाओ और इस अवसर पर सभी प्रकार के मङ्गलमय वातावरण का सृजन करो। उनके सुन्दर शरीर पर सुख पूर्वक तेल-फुलेल का मर्दन करो, भाँति-भाँति के बहुत से बाजे बजाओ, उनके सुन्दर अङ्गों पर उबटन कर केशर मिश्रित जल से उन्हें स्नान कराओ, उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर श्रीलगाओ, सुन्दर रेशमी वस्त्र धारण कराओ, मस्तक पर रोली का तिलक लगाकर मोतियों के अक्षत चढ़ाओ, सर पर सुन्दर सेहरा (मुकुट) धारण कराओ, इस प्रकार सर्व शृंगार कर हँस हँस कर उन्हें बीरी (ताम्बूल) खिलाओ। फिर सबकी सब उनकी सुन्दर छटा का दर्शन कर उनका स्तवन करो और अपने आपको प्रेम के पाग (चासनी) में पाग (बाँध) लो। प्रेम में रंगे-पगे श्रीयुगल किशोर एक-दूसरे को प्रेम भरी दृष्टि से निरख रहे हैं। उनकी इस 'निरखन' को सभी सखियां परस्पर हिल-मिल कर रेख रही हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी सभी सखियों को प्रेरित करती हुई कहती हैं—अरी सखियो ! बलिहारी जाऊँ। जल्दी से जाकर श्रीप्रियाप्रियतम की इस प्रेम-रस-रंग-लीला की उत्तरोत्तर वृद्धि का किंचित् दर्शन तो कर लो। उनकी ऐसी बात सुनकर सभी सखियाँ उनके समीप पहुँच जाती हैं और फिर सबकी सब मिल-कर श्रीप्रियाप्रियतम को दुलह-दुलहन के वेश में सजाकर उनकी प्रेमकेलि का दर्शन व गुणगान करने लगती हैं।

॥ सोहिलौ ॥

श्रीप्रियाप्रियतम दूलह दुलहन का वेश धारण किए परम रसिक-रसीले, रंग-रंगीले व छैल-छबीले दिखाई दे रहे हैं। कमल मुखी विमला सखी विधि पूर्वक द्वार पर वंदनवार बाँध रही हैं। फूलों का सुन्दर मंडप बनाया गया है। उसकी रचना बड़ी ही मन मोहक व सुन्दर लग रही है। गौरांगी सभी सखियाँ हर्षोल्लास से भरी होने के कारण स्वर्णलता की भाँति हिलती हुई सी इधर-उधर डोल रही हैं। वे कोयल जैसी सुरीली आवाज में बोल रही हैं। श्रीप्रियाप्रियतम के गर्व-गरूर से भरी हुई मंगल गीत गा-गा कर अनेक प्रकार से लाड़ लड़ाकर उन्हें रिझा रही हैं। इसी बीच कोई सखी रत्न-जटित चौकी लाकर उसे रंग-महल में बिछा देती है, सखियाँ दोनों बन्ना-बन्नी (दूलह दुलहन) को उस चौकी पर बैठा देती हैं और बार बार उनका दर्शन करती हुई अपने हृदय व नेत्रों को शीतल कर रही हैं। उनमें से कोई-कोई रंगीली सखियाँ उन पर

तेल चढ़ाकर सुगन्धित इत्र-फुलेलादि लगा रही हैं। इस प्रकार श्रीप्रियाप्रियतम की प्रेम केलि का अति निकट से दर्शन करती हुई वे अपने भाग्य की सराहना करती हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरीजी तो उन्हें बार-बार निरख-निरख कर बलिहारी जा रही हैं ॥१४१॥

॥ दोहा ॥

बलि जाऊं चौकी चतुर, बैठे रङ्ग रली।
सोंधे सरस न्हवावहीं, अतिहिं बिचित्र अली ॥

॥ पद॥१४२॥

अली अतिही विचित्र चित चोंप भारी, मोद मद दुहुनके मत महारी।
कोउ अतिहि अलबेलि उरमें उमाहीं, सबैं अहलमहली फिरैं महल माहीं ॥
कोऊ कुमकुमा घोरि अँगराग लावैं, कोऊ रँगरेली जु अङ्ग रङ्ग चढ़ावैं।
कोऊ अङ्ग उबटाय अन्हवाय ल्याई, रुचिर मुकुट रचि मौर मौरी बनाई ॥
सुरङ्ग रङ्ग बागे बिराजैं रँगीले, जु आभरन अङ्ग अङ्ग छाजैं छबीले।
सु आई जु सब सिमिटि इकठौर सोभा, चढ़ी देखि सिरसिरी दृग भयेलोभा

॥ सोहिलौ ॥

हो स्यामा स्याम सिर सिरी चढ़ी।
रोरीको तिलक अछित मोतिन के तिनसों मिलि कल कांति बढ़ी ॥
बडरे नैंन ऐंन अनहोने कानन कोने कोर कढ़ी।
श्रीहरिप्रिया प्रानप्रीतम की परमा परत न परत पढ़ी ॥१४२॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखियो ! बलिहारी जाऊँ ! देखो तो नव दूलह-दुलहन नागरी-नागर दोनों प्रेम के रङ्ग में रंगे चौकी पर विराजमान कैसे शोभायमान लग रहे हैं। सेवा-कार्य में चतुर सखियाँ बड़ी ही अद्भुत रीति से उन्हें सुगंधित द्रव्यों से स्नान करा रही हैं। आगे कहती हैं—

॥ पद ॥

अरी सखी ! देख तो सही, श्रीप्रियाप्रियतम दोनों जैसे जैसे प्रेम के मद में मतवाले हो रहे हैं,वैसे ही वैसे सखियों के चित्तमें भी(दर्शन की)अद्भुत उमङ्ग उठ रही है।

और सखी ! देख तो, किसी किसी अलवेली सखी का तो हृदय ही उमड़ा पड़ रहा है ! सभी सखियाँ सेवा–टहल करती हुई रङ्गमहल में इधर उधर घूम रही हैं। कोई सखी कुमकुम घोलकर अङ्गराग बनाकर उसका श्रीअङ्गों पर लेप कर रही है तो कोई प्रेम के रङ्ग में रङ्ग कर प्रेमकेलि को बढ़ा रही है। कोई सखी श्रीअङ्गों में उबटन लगाकर उन्हें स्नान करा रही है और मौर व मौरी नामक सुन्दर मुकुट धारण करा रही है। कोई सखी उन्हें सुन्दर रंग-रंगीले बागे धारण करा रही हैं जो उनके अंग-अङ्ग पर बड़े ही सुन्दर सुहावने लग रहे हैं। उन्हें इस वेश में देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो संसार की सारी शोभा सिमिट कर एक स्थान पर ही एकत्र हो गई हो। उनके मस्तक पर धारण की गई श्री की शोभा देखकर तो नेत्र ही लुभा रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जो कहती हैं—अरी सखी ! देख तो सही, श्रीश्यामाश्याम के मस्तक पर धारण की श्री कैसी शोभायमान लग रही है। साथ ही मोतियों के अक्षत से युक्त रोली के तिलक से मिलकर उनकी अङ्गकान्ति कितनी सुन्दर लग रही है। उनके कानों के कोनों तक खिचे हुए बड़े-बड़े विशाल–नुकीले नेत्र तो मानो काम के सदन से ही प्रतीत हो रहे हैं। सचमुच ही प्राणप्रिया और प्राणप्रियतम की परंपरता (प्रेममाधुर्य) का वर्णन कर पाना संभव नहीं है ॥१४२॥

॥ दोहा ॥

पढ़ी परत कहौ कौन पै परमा परम पराज।
अङ्ग अङ्ग बानी बढ़ी सजे सहाने साज॥
साज सहाने सेहुरें सोहत नैन बिसाल।
अङ्ग अङ्ग उमँग भरे दोउ लाड़लड़ीले लाल॥

॥ पद॥१४३॥

लाड़लड़ीले दोऊ लाल, सोहत सुन्दर नैन बिसाल।
अलबेले अङ्ग अङ्ग रहे फबि, भूषन के भूषन छबिकी छबि॥
सदा सलोने सहज सनेही, एक प्रान दीपति द्वै देही।
सीस सेहुरे जगमग जोती, जरे जराय महामणि मोती॥
सजे सुरङ्ग सहाने बागे, बैठे दम्पति अति रति पागे।
मुख तँबोल रँग भीजि रहे लसि, बात करत कछु मंद मंद हँसि॥

सोभा के सरवर में मानौ, हुलसत हंस हंसनी जानौ।
रसरङ्ग भीने दोऊ लाला, सोहत उर मोतिन की माला॥
दूलह दुलहनि नखसिख सोभा, श्रीहरिप्रिया निरखि चित चोभा १४३

॥ दोहा ॥

परम परमेश्वरों के भी परमेश्वर श्रीश्यामाश्याम के विवाहोत्सव का वर्णन भला कौन कर सकता है ? विवाह के अवसर पर धारण किए गये शाही जोड़े से उनके अङ्ग-प्रत्यंग की शोभा बढ़ गई है। राजसी पोशाक के साथ सर पर धारण किए गए सुनहरी तारों से मिश्रित फूलों के मुकुट से लटकती हुई लड़ियों के बीच उनके विशाल नेत्र बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। श्रीलाड़िली लाल दोनों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग उमङ्ग से भरे हुए दिखाई दे रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी आगे कहती हैं—

॥ पद ॥

अरी सखी ! देख तो सही !! श्रीलाड़िली-लाल दोनों अपने सुन्दर विशाल नेत्रों के साथ कैसे शोभायमान लग रहे हैं। इनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अलबेली शोभा से शोभायमान हो रहे हैं। ये दोनों स्वयं अपने आप में आभूषणों के भी आभूषण और छवि की भी छवि हैं ! ये साँवले–सलोने सहज-स्वाभाविक प्रेम से युक्त होने के कारण सदैव 'एक प्राण द्वै देही' के रूप में ही भास्वरित रहते हैं। इनके मस्तक पर धारण किया गया विशाल मणियों और मोतियों से जड़ा हुआ मुकुट जगमगाता हुआ ज्योति विकीर्ण कर रहा है। सुन्दर रंग का शाही बागा धारण कर विराजमान ये रसिक दम्पति परस्पर रसभरी बातें कर रहे हैं। पान चबाने के कारण रँगा हुआ इनका मुख बड़ा ही शोभायमान लग रहा है। प्रेम की बातें करते हुए ये बीच–बीच में मन्द-मन्द मुस्कान भी बिखरते जा रहे हैं। इन दोनों के क्रीड़ा–विलास को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों शोभा के सरोवर में हँस और हँसनी परस्पर केलि कर रहे हैं। प्रेम के रंग में रंगे-पगे श्रीलाड़िलीलाल के हृदय पर मोतियों की माला शोभायमान हो रही है। इस प्रकार दुलह–दूलहन के नख से शिख तक की शोभा का दर्शन कर श्रीहरिप्रिया सहचरी का चित्त ही चोवा बन गया है ॥१४३॥

॥ दोहा ॥

चित चोभा गोभा भयौ नखसिख रूप निहार।
चंदमुखी चहुँ ओर ते गावत मङ्गलचार॥

मङ्गल गावहिं विबिध बिधि बिधुबदनी चहुँ कोद।
छयौ कुलाहल बिपिन में भयो सबन मन मोद ॥
मोद बढ्यौ मन रँग चढ्यौ आनन्द उमग्यो हीय।
सोभा सरस सुहावनी प्रीतम श्रीहरिप्रीय ॥
प्रीतम श्रीहरिप्रिया कौ प्रति अङ्गनि अभिराम।
दिन दूल्है देखौ सखी लाल भाँवतौ भाम ॥

॥ पद॥१४४॥

देखौ री ! दिन दूल्है लाल भाँवती कौ भाँवतौ।
नवल किसोरी गोरी सँग लियें हिय में हरष बढ़ावतौ ॥
सुन्दर स्याम कमलदल-लोचन अङ्ग अङ्ग छवि पावतौ।
रसिक सिरोमनि रसिक लाड़िलौ रसबरषा बरसावतौ ॥
माथे मुकुट मनोहर सोहै मनि मोती झलकावतौ।
छैलछबीलौ गर्वगहीलौ रङ्गरँगीलौ सुहावतौ ॥
लाड़लड़ीकौं अचल सुहाग हमारें भाग जगावतौ।
अति अनुराग भर्यौ अलबेलौ लोयन लाग लगावतौ ॥
श्रीवृन्दाबन नवनित्य कुंज में नित बिलास बिलसावतौ।
श्रीहरिप्रिया प्रानको प्रीतम नव नव सुख सरसावतौ ॥१४४॥

॥ दोहा ॥

दूलह-दुलहन के वेश में नख से शिख तक श्रीप्रियाप्रियतम के रूप सौंदर्य का दर्शन कर सखियों का चित्त शान्त व प्रसन्न हो जाता है। वे चन्द्रमुखी सखियाँ चारों ओर से मंगल गीत गाती हुई दिखाई दे रही हैं। चन्द्रवदनी सखियाँ चारों ओर से विविध प्रकार से मङ्गल गीत गा रही हैं। सम्पूर्ण वन कोलाहल छाने से सभी के मन प्रसन्न हो रहे हैं। प्रसन्नता का वातावरण हो जाने के कारण मन प्रेम के रंग में रंग गया है, हृदय आनन्द से उमड़ने लगा है। श्रीप्रियाप्रियतम की शोभा परम सरस व सुहावनी लग रही है श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखियो ! देखो तो सही। दूलह-दुलहन वेश में श्रीप्रियाप्रियतम का अङ्ग-प्रत्यङ्ग कितना सुन्दर लग रहा है। ऐसा लगता है कि इन्हें प्रतिदिन दूलह-दुलहन वेश में देखती ही रहूँ।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरीजी आगे कहती हैं—अरी सखियों ! (श्रीप्रियाजी) के भामते (प्रियतम श्यामसुन्दर) लालजी के दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए इस दूलह वेश का किंचित् दर्शन तो करो ! ये श्रीनवल किशोर अपने सँग में नवल किशोरी गोरी श्रीप्रियाजी को लिए हुए हैं जिनके दर्शन से हृदय में हर्ष बढ़ रहा है। कमलदल के समान सुन्दर नेत्रों वाले श्रीश्यामसुन्दर का अङ्ग–प्रत्यंग सौंदर्य से मण्डित हो रहा है। ऐसे रसिक शिरोमणि रसिकों के लाड़ लड़ैंते श्रीश्यामसुन्दर रस की वर्षा कर रहे हैं। उनके मस्तक पर सुन्दर मुकुट शोभायमान हो रहा है जिसमें जड़े हुए मणि माणिक्य जगमगा रहे हैं। वे अपने छैल–छबीले, रङ्ग–रङ्गीले और गर्व–गहीले वेश में बड़े ही सुन्दर लग रहे हैं। निश्चय ही वे लाड़ लड़ैंती श्रीप्रियाजी के अचल सौभाग्य का वर्धक करने वाले और हमारे भाग्य को जागृत करने वाले हैं। वे अलवेले (बाँके) छैल छबीले इतने अनुराग–प्रेम से भरे हुए हैं कि जिन्हें देखने से नजर लगती है। श्रीवृन्दावन निजधाम की नित्य नवल कुञ्ज में वे प्रियाजी के साथ नित्य–विलास लीला विलसते रहते हैं। इस प्रकार श्रीप्रियाजी के प्राणप्रियतम नित्य प्रति नये–नये सुख की सरस वर्षा कर रहे हैं ॥१४४॥

॥ दोहा ॥

नव नव सुख सरसावतौ तन मन प्रानधना।
लाड़लड़ीलो लाड़िली बनरी सङ्ग बना॥
बना बनी के व्याह के रसमय मङ्गलचार।
श्रीरँगदेवी सङ्ग सहचरी गावंत परम उदार॥
परम उदार सहेलियाँ फूली फिरत फबैं।
रङ्गनि रङ्ग रँगावहीं सेवति सखी सबैं॥
सबैं सखी सब सेवमें फूली फिरत उमाहिं।
रङ्गरँगीली अली को रङ्ग सोहिलौ चाहिं॥

॥ सोहिलौ ॥१४५॥

रङ्गसोहिलौ रङ्गरली कौ, रङ्गरँगीली रंगअली कौ।
श्रीरँगदेवीजू नववासा, बिस्वाभा उत्तमा विलासा॥
रँग रँग भीनी रङ्गरङ्गीली, नवल जुगल सेवा-गरबीली।
सरस सरूपा मधुरा भद्रा, पद्मा स्यामा सुरस सारदा॥

एक डार तोरी-सी गोरी, जिनकें जीवन एही जोरी ॥
किरपाला देवदेवी सुन्दरि, पद्मास्या अरु ऐन्द्रा सहचरि ।
एकहिं साँचे माहिं ढरी-सी, छबिकी छरी जराय जरी-सी ॥
रामा बामा कृष्णा कामिनि, पद्माभा श्रुतिरूपा नामिनि ।
कुन्दनकी-सी बेली सोहैं, महामोहनी मनकों मोहैं ॥
गौरांगी केसीरु पवित्रा, कुमकुम देवी हितू बिचित्रा।
कलकंठी ससिकलाअरु कमला, कंदरपा हितसुन्दरि नवला॥
भागवतिका माधवि असिता, गुनकी आकरि बलभा लसिता।
सबैं सखी सब सेवा माहीं, फूली-फूली फिरत उमाहीं ॥
भाँति-भाँतिके लाड़ लड़ावैं, लाड़लड़ीले अति सुख पावैं ।
रङ्ग रँगी हिये रङ्गनि भारी, श्रीहरिप्रिया निरखि सुखकारी॥१४५

॥ दोहा ॥

लाड़लड़ैंती श्रीप्रियाजी दुलहन बनी हैं और लाड़लड़ैंते श्रीश्यामसुन्दर दूलह बने हैं। दूलह-दुलहन के वेश में इन दोनों के दर्शन से शरीर, मन और प्राणों में नित्य ही नये-नये सुख का संचार हो रहा है। श्रीरंगदेवी के सङ्ग सहचरियाँ मिलकर बड़ी ही उदारता के साथ श्रीप्रियाप्रियतम के विवाह के सरस मङ्गल गीत गा रही हैं। परम उदार हृदयवाली सखी-सहचरियाँ परम प्रफुल्ल मुद्रा में इधर-उधर घूमती हुई बड़ी ही शोभायमान लग रही हैं। वे प्रेम के रङ्ग में रंगी-पगी सबकी सब प्रेमपूर्वक सेवा-टहल कर रही हैं। वे सर्व प्रकार की सेवा-टहल करती हुई उमंगित हृदय से फूली-फूली फिर रही हैं। प्रेम के रङ्ग में डूबी श्रीरङ्गदेवी सहचरीजू बड़े उत्साह पूर्वक श्रीप्रियाप्रियतम का 'सोहिला' मना रही हैं।

॥ पद ॥

श्रीप्रियाप्रियतम का 'सोहला' (मधुर मिलनोत्सव) मनाती हुई प्रेम के रङ्ग में रंगी-पगी रङ्गीली सहचरियाँ परम प्रसन्न हो रही हैं। श्रीरङ्गदेवीजू, नववासाजू, विस्वाभाजू, उत्तमाजू, विलासाजू आदि सबकी सब प्रेम के रङ्ग में डूबी हुई श्रीजुगल किशोर की सेवा-टहल करती हुई मतवाली हो रही हैं। इनके अतिरिक्त सरसाजू, सरूपाजू मधुराजू, भद्राजू, पद्माजू, श्यामाजू, सुरसाजू, शारदाजू आदि सबकी सब गौर-अङ्गों

वालीं ऐसी लगती हैं मानो एक ही डाल से टूटी हुई हों। ये सब की सब एकमात्र श्रीयुगल जोड़ी को देख-देख कर ही जीवित रहती हैं। ऐसे ही कृपालाजू, देवदेवीजू, पद्मास्याजू, इन्दिराजू आदि सब जरी के समान जड़ी हुई, छवि की छड़ी सी एक ही साँचे में ढली हुई सी दिखाई दे रही हैं। इसी प्रकार रामाजू, वामाजू, कृष्णाजू, कामिनीजू, पद्माभाजू, श्रुतिरूपाजू आदि भामनियाँ स्वर्ण लतिका के समान मन का मोहन करती हुई परम शोभायमान लग रही हैं। गौर अङ्गोंवाली पवित्र-विचित्र चरित्र वाली केशीजू, पवित्राजू, कुमकुमाजू, सुदेवीजू, हितूजू, कलकण्ठीजू, शशिकलाजू, कमलाजू, कंदर्पाजू, नवलाजू, हित सुन्दरीजू, भागवतिकाजू, माधवीजू, असिताजू, लसिताजू, बल्लभाजू ये सब की सब अनेक गुणों की खानि सेवा–टहल में उमङ्ग से भरकर फूली–फूली फिर रही हैं। ये अनेक प्रकार से श्रीप्रियाप्रियतम को लाड़ लड़ा रही हैं जिसके कारण लाड़िलीलाल भी परम सुख प्राप्त कर रहे हैं। हृदय में प्रेम–रङ्ग से रङ्गी-पगी श्रीहरिप्रिया सहचरीजू नव दूलह-दुलहन को निरख-निरख कर परम प्रसन्न हो रही हैं ॥१४५॥

॥ दोहा ॥

सुखकारी सबके सदा, प्रानन के प्रतिपाल।
सर्बस जीवन सखिन की, नवल लाड़िली लाल॥
नवल लाड़िली लालको, अद्भुत ब्याह अनूप।
अलि मिलि गीतहिं गावहीं, बिमली मङ्गलरूप॥
मङ्गल बिमली अली सब, मङ्गल ब्याह बिहार।
मङ्गल सखी सुदेविका, गावत मङ्गलचार॥

॥ सोहिलौ ॥

सखी सुदेवी कें मंगलचार, गावत बिमली बिमल बिहार।
सखी सहेली अरु सहचरी, मिली मञ्जरी और सुन्दरी॥
काबेरी मंजुकेसी कवरा, केसी कंठीहार मनहरा।
महाहीरा अरु हीरा हारा, हितप्रदायका परम उदारा॥
चटकभरी जहाँ चारु चमेली, सुखमा-सनी महा अलबेली।
अहली महली फूली फूली, फिरत जुगल सेवा अनुकूली॥
नीरजनैंनी नेह नवीना, नागरि नवला नवरङ्ग–भीना।

भवनसुन्दरी भावप्रकासा, सुखसरूपिका सहज सुहासा ॥
मंजुलमाला केलि कलावलि, रतिरसालिका रसरतनावलि ।
मंजुमोदनी मौजमनोजा, मानमंजुला सरद सरोजा ॥
सुखदा सुखद सरूपा सरसा, सानुरक्तिनी बाला बरसा ।
महामोद मङ्गल गुन गावैं, मौज मनोजनि मन उपजावैं ॥
जूथ जूथ मिलि जुगल रिझावैं, नृत्य करैं गावैं रु बजावैं ।
रंगमंजरी रङ्ग बढ़ावैं, चारुचोंपनी चोंप चढ़ावैं ॥
आनन्द भरी उर में न समावैं श्रीहरिप्रिया निरखि सुख पावैं ॥१४६॥

॥ दोहा ॥

नित्य नवल प्रेम से भरे श्रीलाड़िलीलाल सभी सखी-सहचरियों के प्राण-धन जीवन, परम सुखकारी और सदा-सर्वदा प्राणों की रक्षा करने वाले हैं। इन श्रीनवल लाड़िलीलाल का विवाह भी परम अनूठा व अद्भुत है। सभी सखियाँ मिल जुलकर मधुर मिलन के मंगल मय गीत गा रही हैं। श्रीप्रियाप्रियतम का विवाहोत्सव परम मंगलमय है सभी सहचरियाँ भी मंगल रूपिणी हैं, सुदेवीजू मंगलमय भाव से विवाहोत्सव पर मंगलाचरण के मंगलमय गीत गा रही हैं।

॥ पद ॥

श्रीप्रियाप्रियतम के विवाहोत्सव पर सुदेवी जू आदि सखियाँ मिलजुल कर 'विमली' गीत गाकर मंगलाचरण कर रही हैं। उनके साथ कावेरीजू, मंजुकेशीजू, कवराजू, केशीजू, कंठीहाराजू, मनहराजू, महाहीराजू, हीराजू, हाराजू आदि सखी हित-प्रदायिका एवं परम उदारा सुन्दरी सखी सहचरियाँ मंगल गीत गा रही हैं। ये सभी रचवेली की भाँति चटक-मटक से भरी, सुषमा से सनी अलवेली सुन्दरियाँ श्रीयुगलकिशोर के रंगमहल में फूली-फूली फिरती हुई सेवा टहल कर रही हैं। ये नित्य नवल प्रेम से भरी हुई, कमल के समान नेत्रों वाली, परम नागरी और रंगभीनी हैं। ये सभी रङ्गमहल में मंद-मंद मुस्कराती हुई अपने सुन्दर स्वरूप और भावमय रूप का प्रकाशन करती रहती हैं। ये सुन्दरियें माला के समान श्रीप्रियाप्रियतम को सदैव घेरे रहती हैं और उनकी केलि-कला में प्रेम-रस का संचार करती रहती हैं। शरद कालीन कमल के समान ये परम सुन्दर और काम के भी मन का मोहन करने वाली सुख स्वरूपा हैं। ये अपने एक

रसरूप में श्रीप्रियाप्रियतम के विवाहोत्सव पर मंगल गीत गा-गाकर मन में प्रेम का भाव जागृत कर रही है। झुण्ड की झुण्ड मिलकर नृत्य गायन और वादन के साथ ये श्रीयुगल किशोर को रिझाती रहती हैं। जब ये उमङ्ग में भरकर नाचती–गाती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों प्रेम ही मूर्तिमान होकर उच्छलित हो रहा हो! ये सब आनन्द से इस प्रकार भरी हुई हैं कि आनन्द इनके हृदय में समाता नहीं है। श्रीहरिप्रिया सहचरी उनके इस आनन्दमय रूप का दर्शन कर परम सुख प्राप्त कर रही हैं ॥१४६॥

॥ दोहा ॥

सुख पावैं सुनि गान गुन, हितू अली मन मानि।
कामन गावत पीयकों, कामिनिकौ हित जानि॥

॥ कामन ॥

कामन करैं जु कामिनि रङ्गनि रँगाऊँ लाल।
सुन्दर सरूप करि स्यामता मिटाऊँ लाल॥
श्रीराधा राधा राधा प्यारी जपनि जपाऊँ लाल।
डोरीको डोरो पीय हियकें पुवाऊँ लाल॥
पाननके पान पीय आनन भराऊँ लाल।
लाल लाल मुनि करि लरन झुलाऊँ लाल॥
प्यारी पद कमल में भ्रमर भ्रमाऊँ लाल।
तौ हितूकी सहेली श्रीहरिप्रिया की कहाऊँ लाल॥

॥ दोहा ॥

श्रीहितू सहचरी जू श्रीप्रियाप्रियतम का गुणगान सुनकर मन बड़ी प्रसन्न हो रही हैं। सखियाँ भी कामिनी श्रीहितू सहचरीजू के हित को ध्यान में रखकर प्रियाप्रियतम के गुणगान की ही कामना कर रही हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरीजू कहती हैं कि कामिनी श्रीहितू–सहचरीजी जिस प्रकार की कामना कर रही हैं, उसी प्रकार मैं श्रीलालजी के प्रेम के रङ्ग में अपने को रंग दूंगी। उनका सुन्दर शृङ्गार करके अपने हृदय की श्यामता मिटा दूंगी। प्राणप्रिया श्रीराधिका किशोरीजू के 'श्रीराधा' नाम की माला जप कर ही रहूँगी। इतना ही नहीं हृदय में

श्रीप्रियाजी की (मानरूपी) डोरी के साथ प्रियतम के नाम रूपी डोरे को पोकर ही रहूँगी। प्राण प्रियतम श्यामसुन्दर और श्रीप्रियाजी के नाम रूपी पानों से भरकर अपना मुख रचा लूँगी अर्थात् प्रेमरंजित कर लूँगी। इस प्रकार लालजी के नामों को प्रेम की डोर में गूँथकर सुन्दर लड़ी बनाकर श्रीलालजी को उस पर झूला झुलाऊँगी। इतना ही नहीं श्रीलालजी के नाम का उच्चारण करती हुई श्रीप्रियाजी के चरण कमलों की परिक्रमा लगाऊँगी। यदि मैं ऐसा कर सकूँगी तभी मैं श्रीहितू सहचरी जू को सहेली हरिप्रिया सहचरी कहलाऊँगी, अन्यथा नहीं ।।१४७।।

।। दोहा ।।

लाल पीयकी चितवनी, टोनाभरी बिसाल।
गवर रूप अंजन अँजों, नैननि में रहैं बाल ।।

।। कामन ।।

सुन्दर स्याम सलौने पिय की चितवन माँहीं टोना जू।
गौर रूप चितवनिमें रँगि ह्वै करूँ कामन रस लोना जू।।
प्रिया पदन को होय महावर नख पदतरी रँगाऊं जू।
कुँवरि चरन आभा को नूपुर होय चरन चिहुटाऊं जू।।
कंचन तन में मन पगिया करि जामें अङ्ग लपटाऊं जू।
वाही के पटकौ पटुका ह्वै करि कें कटि जकराऊं जू।।
रूप गुनन गूँथन की सूथन ह्वैके तन लगि जाऊं जू।
नैनन में पिय ऐननि करिकें गाढ़े गहनि गहाऊं जू।।
रूपजाल कटि किंकिनि ह्वैकें हिलग हार हिये लाऊं जू।
कुँवरि-मनोरथ माला ह्वैकें चौकी चित्त कराऊँ जू।।
अति सुकुँवार भुजनि दुति ह्वैकें बाजूबन्ध बँधाऊं जू।
प्यारी पद छबि पहुँची ह्वैकें पहुँचनि में पहुँचाऊं जू।।
अंगुरिन छबि ह्वै मुँदरी अँगुरिन नख अनुराग रँगाऊं जू।
कर कमलनि की प्रभा होय कें हस्तकमल मिलि जाऊं जू।।
करको करपर फूल लगाऊं निरखि निरखि सुख पाऊं जू।
सिरैं पेच तन जोति जगमगें जगमग जोति जगाऊं जू।

किलँगी में मधि नायक हीरा तेज पुंज झलकाऊं जू।
करननि दुति ह्वै कुण्डल करननि नगन सुजटित जडाऊं जू ॥
बेसरि कौ मोती मन करिकें नासा मनि मंडाऊं जू।
बंकचितवनी होय प्रिया की नैनन माहिं समाऊं जू ॥
तिलक भाल मोतिन के अछित प्रिया हँसनि दुति लाऊं जू।
अधर दसन में अरुन पीक ह्वै अँग अँग माहिं रमाऊं जू ॥
हेमांगी हिय माहिं धारिकें पिय प्राननि रलि जाऊं जू।
जकरि तकरि प्रिया के उर लाऊं सुखसों तहाँ बसाऊं जू ॥
अदन पान मधुसुधा कराऊं मनबंछित सब द्याऊं जू।
श्रीहरिप्रिया निहारि रूप छबि-छकि छबि माहिं छकाऊं जू ॥१४८॥

॥ दोहा ॥

प्रियतम श्रीलालजी की बंक विलोकन में अवश्य ही कोई जादू भरा हुआ है तभी तो वे श्रीप्रियाजी के सुन्दर गौर रूप को अञ्जन में आँज कर अपने नेत्रों में ही धारण किए रहते हैं। अर्थात् श्रीलालजी द्वारा श्रीप्रियाजी को एकटकी लगाकर देखने से श्रीप्रियाजी का प्रतिबिम्ब उनके नेत्रों की श्याम पुतलियों में झलकने लगता है, उसी को देखकर आश्चर्य में भरी हुई श्रीहरिप्रिया सहचरी ज्जू आगे कहती हैं।

॥ पद ॥

अरी सखी ! सांवले–सलोने प्रियतम श्यामसुन्दर की बाँकी चितवन में अवश्य ही कुछ जादू भरा हुआ है। अर्थात् उनकी बंक विलोकन में श्रीप्रियाजी के गौर स्वरूप की झाँकी करते हुए मुझे तो ऐसा लग रहा है कि मैं अञ्जन बनकर उनके नेत्रों में अँज जाऊं। किंवा श्रीप्रियाजी चरणों का महावर बनकर उनके नखों और चरणतलों को रङ्ग दूँ। अथवा कुँवरि किशोर ज्जू के चरणों की आभा के सदृश नूपुर बनकर उनके चरणों से चिपट जाऊँ। ऐसी इच्छा होती है सखी, कि उनकी स्वर्ण ही अङ्गकान्ति में अपने मन को पागकर उनके श्रीअङ्गों से ही लिपटी रहूँ। अथवा उनके श्रीअङ्गों में धारण किए गए श्रीअङ्गों के वस्त्रों का रूप धारण कर उनके अंग-अंग को एक दूसरे से जकड़ दूँ। अथवा उनके स्वरूप के अनुरूप धागों से गुँथा हुआ पायजामा बनकर उनके शरीर से ही लगी रहूँ। अपने नेत्रों में प्रियतम को बन्दकर प्रगाढ़ भाव से उन्हें ग्रहण किए रहूँ।

उनकी सुन्दर कटि की करधनी बनकर उनसे हिलगी रहूँ अथवा हार बनकर हृदय से लिपटी रहूँ। श्रीप्रियाजी के मनोरथों की माला बनकर उनके चित्त रूपी चौकी पर ही चढ़ी रहूँ। अथवा उनकी सुकुमार बाहों की आभा बनकर बाजू बन्द की भाँति सदैव उनसे बँधी रहूँ। किंवा श्रीप्यारीजू के चरणों की छबि बनकर उनसे लिपट जाऊँ अथवा उनके पहुँचों (हथेलियों का ऊपरीभाग) की पहुँची (एक प्रकार का आभूषण) बनकर अपने आपको उनके हाथों में सौंप दूँ।

अथवा ऐसा मन करता है सखी! उनकी अँगुलियों की छवि बनजाऊँ, मुद्रिका बन जाऊँ, नखों की लाली बनकर सदा सर्वदा उनके प्रेमरंग में रंगी रहूँ। उनके कर कमलों की दीप्ति बनकर उनके कर कमलों में ही समा जाऊँ। अथवा हथफूल बनकर उनके हाथ से लिपट कर उसकी सुन्दरता का दर्शन करती हुई सुख प्राप्त करती रहूँ। जिस सिरपैंच के धारण करनेसे उनके शरीर की ज्योति जगमगा रही है,वही सिरपैंच बन कर उनकी अङ्गकान्ति को ज्योतिष्मान बनाए रखूँ। किंवा उनकी मुकुट की कलंगी के मध्य का बड़ा हीरा बनकर उनके तेज-पुञ्ज को प्रकाशित करती रहूँ। कानों की शोभा बनकर कानों में धारण किए गए कुण्डलों के नग-रूप में जटित होकर शोभा बढ़ाती रहूँ। नासिका में धारण की गई वेसर का मोती बनकर नासिका की शोभा बढ़ाऊँ। अथवा श्रीप्रियाजी की बाँकी चितवन बनकर उनके नेत्रों में ही सदा-सर्वदा समाई रहूँ। किंवा उनके मस्तक पर धारण किए गए तिलक पर मोती के अक्षत के रूप में बैठकर उनकी मन्द मुस्कान को प्रकाशित करती रहूँ। अथवा उनके ओठों और दाँतों के मध्य की पीक (लालिमा) बनकर उनके अंग-प्रत्यंग में रम जाऊँ। स्वर्ण अँगी श्रीप्रियाजी को हृदय में धारण कर प्रियतम के प्राणों को भी रिझा लूँ और जैसे-तैसे भी हो प्रियतम श्यामसुन्दर को श्रीप्रियाजी के हृदय से मिलाकर उनके साथ ही बसा दूँ और उन्हें अधरामृत रस का पान करा कर अपनी सभी प्रकार की मन वांछित साध पूरी कर लूँ! इस प्रकार हे सखी! मेरी तो यही हार्दिक अभिलाषा है कि श्रीप्रियाप्रियतम की इस मधुर मिलन की बाँकी-झाँकी करती ही रहूँ और उसी में सदा-सर्वदा छकी रहूँ ॥१४८॥

॥ दोहा ॥

छबि छबि माहिं छकाय कें, निरखूँ रूप अपार।
भेद भरे गुन गायकें, लड़ऊं दोउ सुकुँवार॥
दोउ सुकुमार लड़ायहूँ, अद्भुत रूप बनाइ।

नील पीत रस रंग के, नव नव रग कराइ ॥

॥ पद ॥१४६॥

नील पीत रंग सूत रँगाऊं नखसिख अङ्गम पाऊं जू।
डोरा करि करि उर पहिराऊं मधुकर करि रस पाऊं जू॥
लोयन को अंजन लै-लै कै कञ्जन माहिं अँजाऊं जू।
मनरञ्जन कूं हंजन करिकें कुञ्जन माहिं बसाऊं जू॥
बाम चरन प्रिया आभा लैहूँ छबि जल माहिं मिलाऊं जू।
श्रीराधा मंत्रनि मंत्राऊं नैननि ह्वै कें प्याऊं जू॥
मानसमुद को हंस बनाऊं मोतिन-थार चुगाऊं जू।
नवल महल में बास कराऊं प्रेम-सुधा सरसाऊं जू॥
रूप-सरोवर में सपराऊँ कञ्चन बरन बनाऊँ जू।
सब रस सुखद बसन पहिराऊँ हित अँगराग लगाऊं जू॥
कंचनमनि मर्कतमनि ल्याऊं भूषन-प्रेम जड़ाऊँ जू।
रचि रचि तन सिंगार सजाऊं सरस किलोल कराऊँ जू॥
कल कदम्ब-छाया बैठाऊँ अमृतफल अँचवाऊँ जू।
श्रीहरिप्रिया-पद-रूप रराऊं हंस हंसनि हुलसाऊँ जू॥१४६॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—श्रीप्रियाप्रियतम के अंग-प्रत्यंग की अपार शोभा का दर्शन करती हुई उसी में छकी-पगी रहूँ और उनके रहस्य भरे गुणों को गा-गाकर दोनों सुकुमार किशोर-किशोरी को लाड़ लड़ाऊँ। प्रेम के नीले और पीले अनेक प्रकार के रंगों से उनका नित्य-नवीन व अद्भुत शृंगार करती रहूँ—यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है। आगे कहती हैं—

॥ पद ॥

अरी सखी ! मेरी तो हार्दिक अभिलाषा यही है कि मैं नीले-पीले रंग के धागे रंगकर नख से शिख तक श्रीप्रियाप्रियतम के अंग-प्रत्यंग का शृंगार करूँ। एक एक डोरा चुन चुन कर उनके हृदय में धारण कराऊँ और मधुकर श्यामसुन्दर को कलि के रसका पान कराऊँ। श्रीप्रियाजी के नेत्रों से अंजन ले लेकर उससे प्रियतम श्यामसुन्दर के मुख

कमल को आंज दूँ। (यहाँ उपर्युक्त पंक्तियों में आए हुए 'मधुकर करि-रस' और 'अंजन-कंजन' में रहस्यात्मकता समाई हुई है, जिसका भाव श्रीप्रियाप्रियतम के परस्पर आलिङ्गन चुम्बन और परिरंभन से ही स्पष्ट हो पाता है, सामान्द रूप से नहीं) और इस प्रकार हे सखी ! प्रियाप्रियतम दोनों को मनोरथ की पूर्त्ति हेतु परस्पर मिलाकर कुञ्ज महल में बसादूँ। वहाँ श्रीप्रियाजी के बाएँ चरण की आभा लेकर उसे श्रीश्यामसुन्दर की श्यामल छवि रूपी जल में मिला दूँ। फिर 'श्रीराधा राधा' नाम मंत्र का उच्चारण करती हुई नेत्रों के माध्यम से उसे पी जाऊँ। फिर प्रियतम श्यामसुन्दर को मान सरोवर का हंस बनाकर श्रीप्रियाजी के हृदय रूपी थाल में भरे प्रेम रूपी मोतियों को चुगाऊँ। दोनों रसिक दम्पति को नये रंगमहल में बास कराकर प्रेमामृतरस से सराबोर कर दूँ। रूप के सरोवर में उन्हें स्नान कराकर कंचन वर्ण बना दूँ। शरीर पर सुन्दर अङ्गराग का लेप कर सब प्रकार से आनन्द प्रदान करने वाले सुन्दर वस्त्र धारण कराऊँ। इस प्रकार कंचन मणि रूपी श्रीप्रियाजी और नीलमणि रूप श्रीश्यामसुन्दर को परस्पर मिलाकर आभूषण रूपी प्रेम से जड़ दूँ। उनके शरीर पर सुन्दर शृंगार की रचना कर उन्हें रस केलि कराऊँ। फिर कदम्ब की सुन्दर छाया में बैठालकर उन्हें अमृतफल का पान कराऊँ। इस प्रकार श्रीप्रियाप्रियतम के सुन्दर चरण-कमलों अपने को अनुरक्त कर उन्हें हंस-हंसनी की भाँति रसकेलि के लिए सदैव उत्साहित करती रहूँ ।।१४६।।

।। दोहा ।।

हुलसाये हंस हंसनी, अब–करूँ और बनाव।
तेजपुंज तन नैन-भरि, भूषन अङ्ग लगाव ।।

।। पद।।१५०।।

तेज पुंज तन लै तरुनाई बंक बिलोकनि लाऊँ जू।
कोकिल सुरनि मिलाऊँ ता में मधुक अम्ब रस राऊँ जू ।।
कचकपोल-लट-रंग रचाऊँ नैननि माहिं भराऊँ जू।
बरन बरन के बेस बनाऊँ ललना लाल लड़ाऊँ जू ।।
कबहूँ करूं महावर प्रियके पदनख लगि ज्यौ ज्यावें जू।
कबहूँ बिछिया अनवट कबहूँ पदसोभा बनि आवें जू ।।
नूपुर पद परिपानन ह्वैकें जेहरि चित्त लगावें जू।

कबहुँक लहिंगहिं मध्य देसमें केतकि केलि ललावें जू ।।
कबहूँ किंकिनि करूँ छीन कटि कोकिल कलरव मोहैं जू ।
कबहूँ चौक हियेकें अङ्गियनि कमल-निकु जनि जो हैं जू ।।
कबहूँ बाहु निहारि वारिकें बाजूबन्ध सुधारें जू ।
कबहूँक चूरा चूरी पहुँची ह्वै करि हैं रस सारें जू ।।
करपर कल करफूलन कबहूँ अँगुरिन मुन्दरा मुंदरी जू ।
अन्तर के अनुराग रङ्गसों रँगै हस्तनख-हथरी जू ।।
कबहूँ हार माल करि हिय में करि हूँ दुलरी तोलरी जू ।
चौकी चम्पकली चौलररी मोतिन पोतिन बररी जू ।।
चम्पबरनि तरननि करि सारी चम्पानि चम्पक मोती जू ।
कँवल कमोद सुगन्ध मनोहर लेत होत जग जोती जू ।।
करनन में आभरन कँवल के झूमक मधुक हलावें जू ।
लोयन में ह्वै अञ्जन लगि हैं खञ्जन अङ्ग लजावें जू ।।
सीसफूल लगि माँग मोतिलर राजचौक दरसाउँ जू ।
कचन मिलाय लटनि लटकाऊँ झूलनि सुख बिलसाऊँ जू ।।
झूलत फूलत फूल फूल ह्वै कँवल कँवल सरसावैं जू ।
श्रीहरिप्रिया निहारि रीझिकें रूप रङ्ग परसावें जू ।।१५०।।

।। दोहा ।।

श्रीप्रियाप्रियतम हंस-हंसनी के समान हर्षोल्लास से भरकर क्रीड़ाकर रहे हैं। सखी-सहचरियाँ उनके तेज पुंज से देदीप्यमान शरीर की शोभा को अपने नेत्रों में भरकर उनके अङ्ग-प्रत्यंग पर विशेष प्रकार के आभूषण धारण कराकर उनका विविध प्रकार से शृंगार कर रही हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरीजी आगे कहती हैं।

।। पद ।।

अरी सखी ! मेरी तो यही साध है कि मैं श्रीप्रियाप्रियतम की तेजपुञ्ज-युक्त अङ्गकान्ति को सदैव अपनी बंक विलोकन से निरखती ही रहूँ। उनके महामधुर उज्ज्वल प्रेमरस का गान पंचम स्वर में सदैव गाती ही रहूँ। श्रीप्रियाजी के उन्नत उरोजों, कपोलों

और लहराती लटों को नाना प्रकार से सजाकर अपने नेत्रों में उनकी शोभा को सदैव धारण किए रहूँ। नाना प्रकार से उनका वेश विन्यास करती हुई दोनों लाड़िलीलाल को लाड़लड़ाती रहूँ। कभी यह इच्छा होती है कि चरणों में महावर देने के बहाने उनको पद-नखों के सौन्दर्य को निरखती रहूँ। अथवा विछिया और अनवट बनकर उनके चरणों की शोभा बढ़ाती रहूँ। कभी उनके चरणों में नूपुर और परिपान के रूप में बँधकर रुनझुन की आवाज करती हुई श्रीलालजी को चित्त का हरण कर लूँ। अथवा जेहरि आभूषण बनकर रह जाऊँ। कभी इच्छा होती है कि उनके शरीर के मध्यभाग में चित्त को रमा कर उनकी अनुपम केलि का दर्शन करती रहूँ। कभी करधनी (किंकिणी) बनकर उनकी क्षीण कटि-में लिपट जाऊँ और उसकी क्षुद्र घंटिकाओं की सुन्दर ध्वनि से कोयल की ध्वनि को भी मात कर दूँ। कभी उनके हृदय रूपी आंगन में आसन लगाकर कमल-कुञ्ज की केलि को निहारती रहूँ। कभी बाजूबन्द बनकर उनकी सुन्दर भुजाओं में बँध जाऊँ और उनकी सुन्दरता को निहारती रहूँ। कभी ऐसी इच्छा होती है सखि, कि उनकी चूड़ा और चूड़ी का रूप धारण कर उनकी कलाइयों का रसास्वादन करती रहूँ।

कभी हस्त फूल बन कर उनके सुन्दर हाथ पर बँध जाऊँ तो कभी उनके अँगूठे की आरसी और अँगुलियों की अँगूठी बनकर रह जाऊँ। कभी हृदय के प्रेमरङ्ग का रूप धारण कर उनके हस्तनखों और हथेलियों को रङ्ग-विरङ्गा कर दूँ। कभी माला अथवा दो-तीनलरों का हार बनकर उनके हृदयको शोभायमान करती रहूँ। कभी काँच की मणियों और मोतियों से बरी हुई चारलड़ की माला बनकर चम्पकली के समान सुन्दर उनके वक्षःस्थल पर झूलती रहूँ। कभी चम्पा के सदृश वर्ण वाले मोतियों और सितारों से जड़ी उस चम्पक वर्णी साड़ी बनकर उनके मुखकमल और हृदयकमल की सुगन्धि लेती रहूँ जिसकी ज्योति से सारा संसार जगमगा रहा है। कभी कमल के कर्णाभूषण बनकर उनके कानों में झूमती हुई मधुर रस का पान करती रहूँ। कभी उनके नेत्रों का अंजन बनकर उन्हीं में रम जाऊँ और खंजन के नेत्रों को भी लज्जित करती रहूँ। कभी शीश फूल बनकर मोती की लड़ के साथ उनकी माँग में लटक कर राजचौक को देदीप्यमान बनाए रखूँ। कभी केशों के लटकन बन कर लटकती हुई झूलाझूलने का सुख विलसती रहूँ। और झूल-झूलकर इतनी फूल जाऊँ कि मुझे देखकर श्रीप्रियाप्रियतम के मुख कमल भी सरस हो उठें। इस प्रकार श्रीप्रियाप्रियतम को निहारती हुई रीझकर उनके रूप-रङ्ग का स्पर्श करती रहूँ—यही मेरी हार्दिक कामना है ॥१५०॥

॥ दोहा ॥

रूप रङ्ग परसाय कें, मुकुट बनावत भाल।
मुरलीधर धरि निर्तही, तरु कदम्ब मिलि बाल॥

॥ पद ॥१५१॥

प्रिया कोकनद मुकुट बनावें मुरली अधर बजावें जू।
नव नव कला लला गुन गावें तत थेई तान सुनावें जू॥
चरन चरन पर नृत्य दिखावें बंक चितै बलि जावें जू।
लंक लचनि लचकें लचकावें रीझि महारस पावें जू॥
गौरांगी कौ रंग लगावें उज्जल ज्योति करावें जू।
अङ्ग अङ्ग में चौंप चढ़ावें प्यारी पद सिर नावें जू॥
नैंन सैंन में ऐंन करावें रजरञ्जित पद ध्यावें जू।
श्रीहरिप्रिया प्रिय रूप बनावें लखि सोभा बलि जावें जू॥१५१॥

॥ दोहा ॥

श्रीलालजी ने श्रीप्रियाजी के सुन्दर रूप रङ्ग का स्पर्श प्राप्त कर अपने मस्तक पर सुन्दर मुकुट बना लिया है। अधरों पर मुरली धारण कर श्रीप्रियाजी के साथ मिलकर कदम्ब के नीचे नृत्य कर रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखी, देख तो सही ! श्रीप्रियाजी के सुन्दर रूप रङ्ग का स्पर्श प्राप्त कर श्रीलालजी ने अपने मस्तक पर कैसा सुन्दर मुकुट बना लिया है। अधरों पर मुरली धारण करके बजा रहे हैं। वे त त थेई की तान सुनाकर नई–नई नृत्य कला दिखाते हुए श्रीप्रियाजी का गुणगान कर रहे हैं। पग–पग पर नृत्य दिखाते हुए बाँकी चितवन से श्रीप्रियाजी की ओर निहारते हुए उनकी वलैया ले रहे हैं। श्रीप्रियाजी के साथ नृत्य करते हुए अपनी कमर को बार-बार लचका-लचका कर श्रीप्रियाजी से भी कमर लचकवा रहे हैं। दोनों ही परस्पर रीझ–रीझ कर महा आनन्द की प्राप्ति कर रहे हैं। नृत्य करते हुए श्रीलालजी गौर अङ्गों वाली श्रीप्रियाजी को अपने अङ्ग से लगा-लगाकर मानों अपनी अङ्ग कान्ति को उज्ज्वल कर रहे हैं। कभी–कभी नाचते हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग से इतने उमङ्गित हो जाते हैं कि श्रीप्रियाजी के चरण–कमलों में

सर नवाने लगते हैं। अपने नेत्रों से संकेत कर श्रीप्रियाजी के रजरंजित चरणों का ध्यान करते हुए उनकी शरण की याचना कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी श्रीलालजी की ऐसी सुन्दर बानक को निरख–निरख कर बलिहारी जाती हैं ॥१५१॥

॥ दोहा ॥

बलि जाऊँ श्रीहरिप्रिया, यह सुख अब मोहि दीज।
रूप अनूपम लाड़िली, निरखि निरखि सुख लीज ॥

॥ पद ॥१५२॥

निरखि निरखि प्रिय रूप अनूपम अतन रतन गुन गावैं जू।
नखनि तरुनि अरुनाई लखि लखि कुमुदनि कुवज भिरावैं जू॥
भालनि नैननि मधुक चम्पकें लाली लाल लगावैं जू।
बार बार अङ्ग अङ्ग परि लावत बिछुर न नेक सुहावैं जू॥
प्रिया उरनि आरोपित धर छबि पद सम करि परसावैं जू।
सम नहिं जानि कुमुद कलकमलनि मसरि-मसरि सरसावैं जू॥
देखि वौरता बिहँसि बिहारिनि निज रद रङ्ग ररावैं जू।
श्रीहरिप्रिया की लै बलिहारी रूप यहै भल पावैं जू ॥१५२॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—हे श्रीप्रियाप्रियतम! बलिहारी जाऊँ अब यह सुख मुझे भी दीजिए। श्रीप्रियाजी के अनुपम रूप लावण्य को निरख-निरख कर सुख प्राप्त करती रहूँ, यही मैं चाहती हूँ। अथवा श्रीलालजी स्वयं श्रीप्रियाजी से कह रहे हैं हे श्रीप्रियाजी! बलिहारी जाऊँ (आपके मिलन का) अद्भुत सुख अब मुझे भी प्रदान कीजिए। मैं तो आपके अनुपम रूप–सौंदर्य को निरख-निरख कर ही सुख प्राप्त कर रहा हूँ। आगे श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं:--

॥ पद ॥

अरी सखी! देख तो सही, प्रियतम श्यामसुन्दर श्रीप्रियाजी के अनुपम रूप लावण्य का दर्शन कर उनकी प्रेमकेलि का कैसे गुणगान कर रहे हैं। अथवा कामदेव स्वयं उनके गुणों का गान कर रहा है। उनके पद नख की नवीन लालिमा का दर्शन कर कमलिनी भी लज्जित होकर छिप गई है। उनके मस्तक और नेत्रों की शोभा को देखकर ऐसा

प्रतीत होता है मानो चंपा और मधुक पुष्प ही यहाँ आकर रम गये हों। श्रीलाड़िलीलाल अपने मस्तकों और नेत्रों को बार परस्पर स्पर्श कराते मिला रहे हैं, उन्हें क्षण भर के लिए बिछुड़ना सुहाता नहीं है। वे परस्पर हृदय से हृदय को मिलाकर चरणों से चरणों का स्पर्श करते हुए बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। वे सुन्दर कमल और कमलिनी की भाँति परस्पर केलि करते हुए बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। अथवा कमल रूप श्रीलालजी सुन्दर कमलिनी स्वरूपा श्रीलाड़िली जी के साथ रमक-झमक के साथ विहार कर रहे हैं, उन्हें समय का भी कोई ध्यान नहीं है। श्रीलालजी के इस उन्मत्त रूप को देखकर श्रीविहारिणी श्रीप्रियाजी भी मुस्कराती हुई अपने प्रेमरङ्ग को प्रदर्शित करने लगती हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर श्रीप्रियाजी के इस अलबेले रूप का दर्शन कर उनकी बलैया लेने लगते हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी भी कहती हैं कि मैं भी श्रीप्रियाप्रियतम के इस दिव्य स्वरूप का ही निरन्तर दर्शन-पान करना चाहती हूँ ॥१५२॥

॥ दोहा ॥

रुप यहै भल पाय कें, भाग मानि हौं आजि।
चरनकमल की अरुनता, रहौ सरोजनि साजि ॥
चरनकमल की अरुनता, कमल कुमुद रँगाय।
कहैं मधुक केतकि कमल, कलसनि बास बसाय॥
बास बसै तबहीं लहै, सोभा परम रसाल।
सीसफूल तरु राज बड़, बन्यो सुनहरी भाल ॥

॥ पद ॥१५३॥

सीसफूल तर भाल सुनहरी नैननि नैन रँगावौ जू।
भृकुटी भौंह लटनिकी लटकनि भिरि कपोल परसावौ जू ॥
बिबस भयें न्यारो नहिं कीजै एही वर मोहि द्यावौ जू।
बाहु सुमूलनि कूलनि कंवलनि कुञ्जनि माहिं रखावौ जू॥
केतकि केलि रहूँ ह्वै लगि कें रहौ कहौ सु कहावौ जू।
छिन छिन जीऊँ पाय सुधाधर या जीवनि मोहि ज्यावौ जू॥
नवमंडल तरु रतन मनोहर रसनि सुबास बसावौ जू।
कमल-कंज की छाया करि करि रस बरसा बरसावौ जू॥

श्रीनित्यकिसोरी राधा गोरी स्यामा सरस सुहावौ जू।
श्रीहरिप्रिया रसरूप सहेली यह सुख नित बिलसावौ जू ॥१५३॥

॥ दोहा ॥

श्रीलालजी श्रीप्रियाजी के रूप सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—हे सखी ! देख तो श्रीप्रियाजी का रूप कितना सुन्दर लग रहा है। कदाचित् आज भलीभाँति मुझे उनके इस रूप सौंदर्य का संस्पर्श प्राप्त हो जाय तो मैं अपना बड़ा भाग्य समझूँगा। आज मैं उनके चरणकमलों की लाली को सुन्दर कमलों से सजाना चाहता हूँ (भाव यह है कि श्रीलालजी उनके चरण कमलों को अपने हृदय कमल पर धारण करना चाहते हैं, और उनकी अरुणिमा (लाली) को सुन्दर लाल कमलों के रंग से रंग देना चाहता हूँ (भाव यह है कि श्रीलालजी श्रीप्रियाजी के चरण कमलों का अपने मुख कमल से चुम्बन करना चाहते हैं।) इतना ही नहीं, हे प्रिय सखी ! यदि वे आज्ञा करें तो मैं उनके अङ्ग-अङ्ग को मधुक, केतकी, कमल आदि सुन्दर पुष्पों से सजा दूँ (भाव यह है कि श्रीलाल जी अपने मुख कमल से श्रीप्रियाजी के मधुक रूप कपोलों, केतकी रूपा पिंडरियों और कलश रूप कुचों का चुम्बन करना चाहते हैं।) जिस प्रकार शीश फूल धारण करने से श्रीप्रियाजी का मस्तक अपने सुन्दर सुनहलेपन से देदीप्यमान हो रहा है वैसे ही केतकी आदि नाना प्रकार के फूलों के सौन्दर्य और सौरभ से श्रीप्रियाजी के अङ्ग-अङ्ग की शोभा अत्यन्त सरस हो जायगी।

॥ पद ॥

श्रीलालजी सखियों के प्रति कह रहे हैं—अरी सखियो ! कदाचित तुम सब की सब मुझे दिल से चाहती हो, मेरा ध्यान करती हो तो सबसे पहले मेरे ही समक्ष श्रीप्रियाजी का सुन्दर शृंगार करो। उनके मस्तक पर सुन्दर शीशफूल धारण कराओ, उसके नीचे के मस्तक को सुनहलेपन से सजा दो, नेत्रों में माखन का लेप कर उन्हें सुन्दर रंग से रंग दो। उनकी भृकुटियों को धनुष की तरह सँवार कर उनके ऊपर से लटों के गुच्छे बनाकर गालों तक उनका स्पर्श कराओ। श्रीप्रियाजी के इस अनुपम रूप सौंदर्य का दर्शन करते हुए जब मैं बेसुध हो जाऊँ तो मुझे उनसे दूर मत करना वरन् अपनी बाहुओं में भर अपने कंधे पर रखकर यमुना पुलिन की कमल कुंज में पहुँचा देना। वहाँ मैं श्रीप्रियाजी के साथ अनुरक्त होकर कितना ही केलि क्रीड़ा क्यों न करता रहूँ—फिर भी तुम लोग मुझे उनसे अलग मत करना, चाहो मुझे जो कुछ कह लेना। मुझे यदि

वास्तव में जीवित देखना चाहती हो तो में पल–पल श्रीप्रियाजी के अधरामृत का पान करती रहने देना। जब हम परस्पर केलि करते–करते अचेत हो जायँ तब हमें सुन्दर एवं नवीन रत्न मण्डप के नीचे (अर्थात् शृङ्गार रस रूपी वृक्ष के नीचे) सरस–सौरभ सम्पन्न वातावरण में शयन करा देना और हमारे ऊपर नई-नई लता-पता-कुञ्जों की छाया करके प्रेम-रस की बरसा करती रहना। हे सखियो! फिर 'नित्य किशोरी श्रीराधाजी का सुन्दर सरस गायन करती हुई इस सुख विलास का नित्य निभाती रहो इस प्रकार रस रूप सहेली श्रीहरिप्रियादि सहचरियों से मनुहार कर प्रियतम श्यामसुन्दर मौन हो जाते हैं ।।१५३।।

।। दोहा ।।

बिलसावो श्रीहरिप्रिया, देखूँ सहचरि होय।
सरबस तन मन सखिन के, प्यारी प्यारौ सोय ।।
प्यारौ हरिप्रिया प्रान कौ, सुखदा सबहीं कौ जु।
लाड़लड़ीली बनीको, बना बन्यौ नीकौ जु ।।

।। सोहिलौ ।।

लाड़िलौ बना बन्यौ अति नीकौ लाड़लड़ी बनरी कौ।
सुही पाग सिर पेच सुनहरी और मौर मोती कौ ।।
उज्जल अछित सहित सोहैं बर दियें तिलक रोरी कौ।
कञ्जन खञ्जन गञ्जन अङ्गियाँ अञ्जन रंजन जी कौ ।।
चितवनि चारु महा मनमोहें को है कांत रती कौ।
सुन्दर बदन रदन रस राचे छियें छोर उतरी कौ ।।
बागौ अङ्ग लागौ रङ्गभीनौ पटुका हरी जरी कौ।
रङ्ग रङ्गीलौ छैलछबीलौ ओपति एंन अमी कौ ।।
श्रीहरिप्रिया प्रानधन सरबस सुखदायक सबहीं कौ ।।१५४।।

।। दोहा ।।

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि जो श्रीप्रियाप्रियतम के नित्य विलास का दर्शन करना चाहे, उसे सर्व प्रथम सहचरी रूप धारण करना होगा। सहचरी बनकर ही श्रीप्रियाप्रियतम को नित्य विलास विलसाते हुए उनकी विलास लीला का दर्शन किया

जा सकता है। ये श्रीप्रियाप्रियतम सखियों के तन-मन–प्राण सर्वस्व हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर केवल श्रीप्रियाजू के ही प्राण नहीं हैं,वरन् सबके ही लिए परमसुखदायी व प्राणवत हैं। आज लाड़लड़ैंती श्रीप्रियाजू दुलहन रूप में है तो प्रियतम दूलह रूप में सजे हुए बड़े ही सुन्दर दृष्टि गोचर हो रहे हैं।

॥ बना ॥

श्रीप्रियाप्रियतम के विवाह अवसर पर सखियाँ सोहिला-गायन कर रही हैं। लाड़लड़ैंती श्रीप्रियाजी बनटी बनी हैं तो लाड़लड़ैंते प्रियतम श्यामसुन्दर उनके लिए सुन्दर बनरा (दूलह) का रूप धारण किए हुए हैं। दूलह वेश में उन्होंने सर पर सुन्दर शाही कपड़े की सुनहली पाग, सरपेच और मोतियों का मौर धारण कर रखा है। अञ्जन से रंजित उनके सुन्दर नेत्र नील कमल और खंजन (पक्षी के नेत्रों) का भी गंजन (विनाश) करने वाले हैं। उनकी बाँकी चितवन बड़ी ही सुन्दर लग रही है, मन को मोह रही है, उसके सामने कामदेव भी फीका लग रहा है। उनके सुन्दर मुख में रसभरी दंतावली की शोभा तो मानो हृदय की गहराई का स्पर्श कर रही है। उन्होंने अपने शरीर पर सुन्दर रंग–रंगीला बागा धारण कर रखा है जिसपर हरी हरी जरी का पटुका शोभायमान हो रहा है। रंग–रंगीले, छैल-छबीले श्याम सुन्दर दूलह वेश में अमृत के घर को भी प्रकाशित कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि ये श्रीप्रियतम श्यामसुन्दर सबके लिए परम–सखदायक एवं प्राणधन सर्वस्व हैं ॥१५४॥

॥ दोहा ॥

सबही के सुखदा दोउ, बना बनी बिबि रूप।
चित लगाय चित चोपसों, चौंरी रच्यौ अनूप॥

॥ पद॥१५५॥

दोउ लालन ब्याह लड़ावौ री, छबि निरखत नैंन सिरावौ री।
चौंरी रचि रङ्ग रमावौ री, बिहँसन की बेदी बनावौ री॥
सुख आसन पर पधरावौ री, हितको गठजोर जुरावौ री।
भाँवरि में मन भरमावौरी, सु विधोकत वेद पढ़ावौ री॥
जूवा जुग जोरि खिलावोरी, हठडोरन छोर छुरावौ री।
गुनभरी जु गारी गावौ री, छबि देखि देखि बलि जावौ री॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—ये श्रीदूलह-दुलहन दोनों युगल रूप में सभी के लिए परम सुखदायी हैं। अतः हे सखियो! उमङ्ग भरे चित्त से, मन लगाकर उनके लिए सुन्दर अनुपम चौंरी (विवाह के अवसर पर चँवर की जगह दुलाई जाने वाली की रचना करो। आगे कहती हैं–

॥ पद ॥

अरी सखियो! दोनों श्रीलाड़िलीलाल के विवाह रूप को भली भाँति लाड़ लड़ाओ और उनकी बाँकी-झाँकी करते हुए अपने नेत्रों को शीतल कर लो। चौंरी बनाकर उनके सुन्दर रंग में अपने को भी रमा दो, हँसन की वेदी बनाओ और फिर परस्पर प्रेम का गठबन्धन कर उन्हें सुखासन पर विराजमान करो उनकी भाँवरी में अपने मन को भी मिला दो, विधि के अनुसार वेद-पाठ करो, दोनों को आमने-सामने करके उन्हें चौपड़ खिलाओ, श्रीलाल जी से हठपूर्वक श्रीप्रियाजी के हाथ का बन्धन छुड़वाओ, इस अवसर पर उनका गुणानुवाद करती हुई सुन्दर गारी गाओ और उनकी सुन्दर छवि का दर्शन कर बलिहारी जाओ ॥१५४(ख)॥

॥ दोहा ॥

बलि जाऊँ या रूप की भांवरि लेहु फिराय।
साहौ सुभग सुहावनौ सबहीं कों सुखदाय॥
सबहीं कों सुखदा दोऊ महा मनोहर मीत।
चौंरी लै कर चालिये मङ्गल गावत गीत॥
गावत गीत सुहावने आगे ह्वै सहचारि।
लै आई दोउ लाल कौं चौंरी चतुर बिचारी॥

॥ पद ॥१५५॥

चारुमति चंदनी रची चौंरी, लूमि रहि ललित छबि झूमि झौंरी।
मधि बिराजे दोउ बना अरु बनी, देखि छबि छकि रही सुरति सजनी॥
आस पासनि बिलासिनि उलासनि, गावें मिलि गीत मंगल हुलासनि।
करसों कर जोरि कर हिये सिरावें, लाड़लड़े दोउन को लाड़ लड़ावें॥
ब्याह की सकल रसरीति नीकी, करत भई भाँवती भाँवती की।

आरती साजि श्रीरंगभीनी, जुगलपर वारि बलिहारि कीनी ॥
मंद मुसक्यात भुज अंस धारैं, अहल सुखगहल श्रीहरिप्रिया निहारैं ॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरी सखियो ! श्रीप्रियाप्रियतम के इस रूप की बलिहारी जाऊँ। ये दोनों भाँवरी लेते समय कैसे सुन्दर लग रहे हैं। इनकी सुन्दर शाही पोशाक सभी के लिए परम सुखदायी व सुन्दर लग रही है। ये दोनों 'मीत' सभी को परम सुन्दर व सुख देने वाले हैं। मङ्गल गीत गाती हुई, चँवरी हाथ में लेकर इनके साथ ही साथ चलो। श्रीहरिप्रिया सहचरी की ऐसी बात सुनकर सखियाँ सुन्दर गीत गाती हुई आगे आगे चलकर बड़ी चतुराई से चँवरी डुलाती हुई दोनों श्रीलाड़िलीलाल को ले आईं।

सोहिलो (उत्सव, आनन्द)

सभी सहचरियाँ मिलकर श्रीप्रियाप्रियतम का सोहिला (विवाहोत्सव) मना रही हैं। सुन्दर बुद्धिवाली उन सखियो ने चाँदनों के समान धवल रंग की चँवरी बनाई जो देखने में लूमती-झूमती सी झौंर वाली बड़ी ही सुन्दर लग रही थी। रत्नमंडप के मध्य दोनों बनरा-बनरी विराजमान हैं, जिहि प्रेमभरी सहचरियाँ निहार रही हैं। वे परस्पर हर्षोल्लास से भरकर क्रीड़ा—विलास के मङ्गल गीत गाती हुई उच्छलित हृदया हो रही हैं। वे अपने हाथ से हाथ जोड़कर अपने हृदय का स्पर्श करती हुई अपना हृदय शीतल कर रही हैं और लाड़ पूर्वक दोनों लाड़लीलाल को लाड़ लड़ा रही हैं। वे भाँमते श्रीलाल जी और भामनी श्रीप्रियाजी के विवाह की सभी प्रकार की रसरीति को भली भाँति निभा रही हैं। प्रेम के रंग में सरावोर होकर आरती सजाकर श्रीयुगल किशोर पर उसे न्योछावर कर रही हैं। श्रीप्रियाप्रियतम परस्पर गलबाही दिए मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं, उनके इस अहल-महल के सुख को श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ सुख पूर्वक निहार रही हैं ॥१५५॥

॥ दोहा ॥

निहारैं श्रीहरिप्रिया कौं बाढ़ी अद्भुत कांति।
रचना रचत बितान की सहचरि बिधि बिधि भांति ॥
बिबिध भाँति रचना रची लियें ललन कौ रुख।
सहज सँवारी सौरभा बेदी सरस जु सुख ॥

॥ पद ॥१५६॥

सुख बेदी सौरभा सँवारी, बिबिध भाँति रचना रचि भारी।
बना बनी दोउ बने बनाये, सुखद सहेलीजू पधराये॥
चारुमुखी चहुँओरनि ठाढ़ी, अलबेली अनुरागनि बाढ़ी।
रङ्ग सुदेवी चौंर ढुरावें, ललित बिसाखा लाड़ लड़ावें॥
चंपलता चित्रात छबि निरखें, ब्याहबिनोदनि बरषा बरखें।
तुंगविद्या इंदुलेखा तनमें, उमँगी आनन्द मात न मनमें॥
नित प्रति नेह नवीनी जोरी, श्रीहरिप्रिया किसोर किसोरी॥१५६॥

॥ दोहा ॥

दूलह-दुलहन वेश धारण किए श्रीप्रियाप्रियतम को सखी-सहचरियाँ निरख रही हैं। बना-बनी की अङ्गकान्ति चारों ओर विकीर्ण हो रही है। सहचरियाँ विविध प्रकार से विवाह मंडप की रचना कर रही हैं। वे लाड़िली-लाल के रुख के अनुसार ही विविध प्रकार से वितान रचना में निरत हो रही हैं। उनके द्वारा सजाई-सँवार गई विवाह की वेदी सरस-सौरभ से युक्त बड़ी ही सुखदायी लग रही है।

॥ पद ॥

सखी–सहचरियों ने विविध प्रकार से विवाह-मंडप की तैयारी करके सुख व सौरभ से युक्त विवाह की वेदी को भलीभाँति सजा-सँवार दिया है। दोनों दूलह-दुलहन को बना-ठना कर सुखद सहेलु जू विवाह मंडप में पधरा रही हैं। सुन्दर मुखवाली अलबेली सखियाँ उन्हें चारों ओर से घेर कर खड़ी हैं, उनके हृदय में अनुराग उमड़ रहा हैं। श्रीरंगदेवीजी और सुदेवी जी दोनों चँवर ढुला रही हैं, श्रीललिताजी और विशाखा जी लाड़ लड़ा रही हैं। श्रीचंपक लताजी और चित्राजी पास में खड़ी होकर उनकी छवि निहार रही हैं। विवाहोत्सव के आनन्द की झरी लग रही है। श्रीतुङ्गविद्याजी और इंदुलेखाजी के तन-बदन में इतना आनन्द उमड़ पड़ा है कि समा नहीं रहा है। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं–अरी सखियो श्रीप्रियाप्रियतम की यह जोड़ी नित्य नवल प्रेम से पूरित रहती है, ये किशोर किशोरी सदैव नित्य विहार रस में ही निमग्न रहते हैं।

॥ दोहा ॥

कुंवरि किसोरी रंगरली दिव्य सुललित बिसेख।
चंपक तन चित्रात इन्दू तुंगविद्या बरबेख॥

तुंगबिद्या बिद्यानिपुन भाँवरि-भेद-प्रवीन।
रसिक भाँवते ब्याह के चार करत सुखलीन ।।
रसिकभाँवते दुहुन कौं रिझवत रचि बिधि ब्याह।
बिदित सकल बिद्या भली अली तुङ्गबिद्याह ।।

।। पद।।१५७।। सोहिलौ ।।

तुंगबिद्या बिदित सकल बिद्या भली, भाँवते दुहुनकी रसिक भाँवतीअली।
रचे सिर मौर मौरी वितन जतनकें, तिलक दै रोरि अछित लगाये ।।
ब्याह बिधि बिस्तरत बेदी बैठाय दोउ बना अरु बनी बनेई बनाये।
ह्वै पुरोहित रुचिर रिचा उचारत सखि एक गठजोर भाँवरि फिराये ।।
सकल सुर साछि करि करन रचवाय रँग छोर हथरेव सब सुख कराये।
मंजुमेधा सुमेधारु तनमेधिका मधुरेछना सखी मधुस्यंदा ।।
गुननिचूड़ा बरांगदा मधुर माधुरी मोदमदनालसा रसानन्दा।
चहूँओरनि खरी निज प्रिया सहचरी भरी अनुराग अति रङ्ग बोरी ।।
हिये उमदात कोउ आतपत्रें लियें चौंर ढोरें कोऊ गात गोरी।
कोउ बीरी बिरचि देत मुख जुगलकें कोउ बिथुरीन अलकें सँवारें ।।
कोऊ दृग अंजि करकंज अँगुरीन करि कोउ मनरंजनी छबि निहारें।
चंद्रिका चारु चूड़ा चतुरि चित्रनी चंद्रकांता चंचला चकोरी ।।
कोमला केतकी कामरसकन्दला केलि कस्तूरी कामा किसोरी।
कोउ लै मुकर ठाढ़ी सखी सनमुखें कोउ निज नैंन के फलहिं लेखें ।।
कोउ अनुरागिनी बाल के भाल पर ललित लालहिं लखैं रहि निमेखैं।
मगन मन प्रेम आनन्द के उदधि में मुदित मुखकंज अति उदित ओपैं ।।
निरखि श्रीहरिप्रिया बदनबरचंद्रमा चारु चहलें न कहि जात मोपैं ।।१५७

।। दोहा ।।

सुन्दर एवं दिव्य दुलहन वेश में कुँवरि-किशोरी श्रीप्रिया प्रेम-रंग से भरी हुई बड़ी ही शोभायमान लग रही हैं। चंपकलता, चित्रा, इन्दुलेखा, तुङ्गविद्या, आदि सभी

सखी–सहचरियों ने उनके शरीर पर सुन्दर वेश रचना कर दी है। तुंगविद्याजी वेद-विद्या में निपुण होने से 'भाँवरि' के रहस्य को भी भलीभाँति जानती हैं। वे रसिकभामते और रसिक भामती के विवाहाचार को सुख पूर्वक सम्पन्न कर रही हैं। उन दोनों के विवाह को विविध प्रकार से रचाती हुई रीझ-रीझ पड़ रही हैं। इस प्रकार श्रीतुङ्गविद्या सहचरी जी विवाह की सभी प्रकार की रीति-नीति की ज्ञाता हैं।

॥ पद ॥

श्रीतुङ्गविद्या सहचरीजू सेवा-कार्य में सकल-विद्या से युक्त होने के कारण भामती श्रीप्रियाजी और भामते श्रीलालजी दोनों की परम प्रिय सहचरी हैं। श्रीतुङ्गविद्याजू ने बड़े यत्न पूर्वक श्रीप्रिया के सर पर मौरी और श्रीलालजी के सरपर मौर धारण कर-कर भाल पर रोरी का टीका और अक्षत लगाये। बना-बनी को खूब बना ठना कर विवाह की सम्पन्नता हेतु विवाह की वेदी पर विराजमान कर रही हैं। वे स्वयं पुरोहित बनकर वेद-मन्त्रों का उच्चारण कर रही हैं, एक सखी श्रीप्रियाप्रियतम की गाँठ जोड़कर वेदी की परिक्रमा करा रही है। फिर सभी देवताओं को साक्षी कर हाथों में प्रेमरूपी जल के साथ संकल्प करते हुए, अपने ही हाथों से जल छोड़ते हुए विवाह की सभी सुखद क्रियाएँ करवाईं। मंजुमेधा, सुमेधा, तनमेधा, मधुरेछना, मधुर यदा आदि गुणगणों से युक्त, रस-भरी–मधुरमाधुरी से पूर्ण मद और मोद सम्पन्ना सखी-सहचरियाँ अनुराग-प्रेम से पूरित हृदय हो स्वामिनी श्रीप्रियाजी को घेरे खड़ी हैं।

कोई-हृदय में उल्लसित हो रही हैं,कोई पंखा हाथ में लिये हैं, कोई चँवर ढुला रही हैं, कोई गौर वर्ण वाली बीरो बनाकर श्रीयुगलवर के मुख में दे रही हैं तो कोई बिखरी हुई अलकावली को सँवार रही हैं। कोई अपने हस्तकमल की सुन्दर अँगुलियों से उनके नेत्रों में अंजन आँज रही हैं, तो कोई मुग्ध होकर उनकी सुन्दर छवि का दर्शन कर रही हैं। चंद्रिका, चारुचूड़ा, चतुर चित्रनी, चंद्रकांता, चंचला, चकोरी, कोमला, कामा, केतकी, रसकंदला, केलिकामा, कस्तूरी किशोरी आदि इन सभी सखियों में से कोई दर्पण लेकर श्रीप्रियाप्रियतम के सम्मुख खड़ी हैं, तो कोई कोई दर्शन करती हुई अपने नेत्रों को सफल बना रही हैं। कोई प्रेमानुरागिनी सहचरी उनके मस्तक की सुन्दर लालिमा को देखकर क्षणभर के लिए अपलक नेत्र हो जाती है, दोनों श्रीप्रियाप्रियतम प्रेमानन्द के साथ में निमज्जित होकर अपने मुखकमल की आभा को प्रकाशित कर रहे हैं। श्रीप्रिया-प्रियतम के श्रेष्ठ मुख चन्द्र का सुन्दर दर्शन करती हुई श्रीहरिप्रिया सहचरी जी की वाणी

मूक हो जाती है। वे स्वयं कहती हैं कि दूलह-दुलहन का यह सौंदर्य वर्णन मुझ से नहीं किया जा सकता है ॥१५७॥

॥ दोहा ॥

मौपै जात न कहि कछू, भाँवरि भेद सुहाय।
बना बनी राजें दोऊ, मङ्गल मोद मुहाय ॥
मङ्गल भाग सुहाग के, चंदमुखी चहुँओर।
गावत रैनि सुहावनी, सुखको नाहिंन छोर ॥
छोर न ओर न अमित सुख, अति आनन्द छयौ।
मङ्गल बरषत रैनि रस, सब मन मोद भयौ ॥

॥ पद ॥१५८॥

भयो सबनि मन मोद।
आजु की मङ्गल रैनि सुहाई, रस बरषत चहुँकोद ॥
अति आनन्द उछाह, उमगे उरनि उमाह।
श्रीहरिप्रिया रँग भरे, मनबंछित सब सरे ॥१५८॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी श्रीप्रियाप्रियतम की 'भाँवरि' के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करती हुई कहती हैं—हे सखी ! श्रीप्रियाप्रियतम दूलह-दुलहन के वेश में परम प्रसन्न मुद्रा में कैसे शोभायमान लग रहे हैं। उनकी विवाह-वेदी की परिक्रमा का रहस्य तो मुझ से कुछ कहा ही नहीं जा सकता, वह तो देखते-समझते ही बनता है। परम मङ्गलमय सौभाग्य से सम्पन्न इन नवदम्पति को चारों ओर से घेर कर चन्द्रमुखी सहचरियाँ रात्रि में सुन्दर गीत गा रही हैं, इस समय के सुख का कोई ओर-छोर ही नहीं है। चारों ओर से मानो सुख की झरी लग गई है, आज की यह रात्रि परम मङ्गल से भरी होने के कारण सर्वत्र आनन्द-रस ही छाया हुआ है।

॥ पद ॥ मङ्गल ॥

आज की यह रात्रि मङ्गलमय रूप धारण कर परम सुहावनी मनभावनी लग रही है। सभी सखी-सहचरियों के मन में प्रसन्नता उमड़ पड़ी है। चारों ओर से मानो रस की वर्षा हो रही है। इस आनन्द मङ्गल की अतिशयता में सबके हृदय आनन्द-रस से

उमड़ पड़े हैं। श्रीप्रियाप्रियतम के विवाह की इस रंग-भरी रात्रि ने केवल नव दम्पति के ही नहीं वरन् सभी के मनोरथ को पूरा कर दिया है। सब आनन्द विभोर होकर आप्त-काम हो रहे हैं ॥१५८॥

॥ दोहा ॥

सरै सबै बंछित सुफल, सोभा सहज सुहाहिं।
अलकलड़े दोउ लाड़िले, महामुदित मनमाहिं ॥
मुदित महारस रँग रह्यो,सो सुख कह्यौ न जाय।
मङ्गलमनि राजें जहाँ, बाजै क्यों न बधाय ॥

॥ पद ॥१५९॥

मङ्गलमनि मोहन राजें जहाँ क्यों न बधाई बाजें री।
दोउ साँवरे दोउ गोरे दोउ एक छबि छाजें री॥
एकहि बैस प्रान मन एकहि एकहि सुख सुख साजें री।
बने बनाये बना बनी अति लखि रतिपति मति लाजें री॥
प्रिया प्रसन्नबदनी को बैभव भाँतिन भाँतिन भ्राजें री।
रँगबेदी में रङ्गभरे दोउ श्रीहरिप्रिया बिराजें री ॥१५९॥

॥ दोहा ॥

रंगभरी रैन में नव दम्पति की मनोकामना फलवती हो गई है। श्रीलाड़िलीलाल मन में महा आनन्द से भरे हुए अपनी सहज स्वाभाविक शोभा से शोभायमान हो रहे हैं। महाकेलि क्रीड़ा में छके–पगे होने से जो सुख बढ़ रहा है, वह कहा नहीं जा सकता। मङ्गल बधाई बज रही हैं। ठीक ही तो है, जहाँ मङ्गल की साक्षात् प्रतिमा ही विराजमान हो वहाँ मङ्गल बधाई भला क्यों न बजेगी ?

॥ पद ॥ बधाई ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं–अरी सखियो ! आज की मङ्गलमयी रजनी में कैसी सुन्दर मङ्गल बधाई बज रही है। ठीक ही तो है, जहाँ साक्षात् मङ्गल की मूर्ति विराजमान हों वहाँ मङ्गल बधाई भला क्यों नहीं बजेगी ? ये नव दम्पति श्रीप्रिया-प्रियतम दोनों एकही (समान) आयु, एक ही रूप, एक ही रङ्ग एक ही छवि, एक ही प्राण, एक ही मन और एकही सुख से सदा शोभायमान रहते हैं। और तुम्ह से क्या कहूँ

सखी, ये दोनों ही तो साँवले हैं और दोनों ही गोरे हैं। ये बना और बनी का रूप धारण कर बने-ठने कैसे सुन्दर लग रहे हैं। उन्हें देखकर तो रति के पति कामदेव की भति भी लज्जित हो रही है। प्रफुल्ल वदनी श्रीप्रियाजी की ऐश्वर्यमयी लीला विविध प्रकार से प्रकट होती हुई शोभायमान हो रही है। ये दोनों परस्पर प्रेम से भरे प्रेम के वेदी में विराजमान हैं। इनकी इस समय की शोभा का कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता है।१५९

॥ दोहा ॥

राजें री दोउ रँगभरे, दूल्है श्री दुलही।
सोभा सरस निहारिकें, अलबेली उलही॥
उलही बेलि अनंद की, अद्भुत सोभा पेखि।
दूलह दूलहिनि लालकी, रङ्गभरी छबि देखि॥

॥ पद ॥१६०॥

देखि देखि छबि दूलह दुलही, उर में आनन्द-बेली उलही।
भाँति भाँति दम्पतिहि रिझावैं रसरङ्गनि बरषा बरषावैं॥
नाना रीति भाँति विस्तारें, सुभगा साखाचार उचारें।
चिमतकारिनी चित्त चुरावें, प्रेममञ्जरी प्रेम पुरावें॥
वृन्दारिका बधाई देत, नवल जुगल दूलह कें हेत।
रसिका राई लोन उतारें, आनन्दा जू आरती वारें॥
भद्रसौरभा भाग मनावें गुण गरबीली गारी गावें।
आवो री मिलि गारी गावें सुन्दर स्याम रिझावैं री॥
स्यामसुन्दर के नैंन सलोने लखि निज नैंन सिरावैं री।
कहत तुम्हें सब स्यामसुन्दर तुम कैसे सुन्दर स्यामजू।
जानत हैं हमतौ तुम्हें नीके लीन्हें हौ बिन दाम जू॥
बेद पुरान भेद कहा जाने कहत तुम्हें गुनजालजू।
सोतो एक दिना हम देखे पहिरे बिनु गुन माल जू॥
होय निरञ्जन मनरञ्जन आँखिन में अंजन द्यायौ जू।
प्यारीजू को प्याय सुधाधर जगजीवन हम ज्यायो जू॥

मोहन होय मुहायो मन होय कृष्ण कहाये लाल जू।
दीखत के सूधे सुलटे पर सब अङ्ग उलटी चाल जू॥
जैसे हो तैसे कहा कहिये श्रीहरिप्रियाजू के सङ्ग जू।
रङ्गमहल के रति-बिहार में हारि रहे निज अङ्ग जू॥१६०॥

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम दूलह-दुलहन वेश में प्रेम के रङ्ग में रंगे होने के कारण बड़े ही शोभायमान लग रहे हैं। उनकी इस रसभरी शोभा का दर्शन कर सर्वत्र आनन्द ही आनन्द उमड़ पड़ा है। दूलह-दुलहन की प्रेम भरी अद्‌भुत शोभा का दर्शन कर सर्वत्र आनन्द की बेलि फूट पड़ी है।

॥ पद ॥ सोहिलौ ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं कि दूलह-दुलहन के वेश में श्रीप्रियाप्रियतम की बांकी झाँकी कर हृदय में आनन्द की लता फूट पड़ी है। सखी सहचरियाँ विविध प्रकार से नव दम्पति को लाड़ लड़ाकर रिझा रही हैं और प्रेम-रसकी वर्षा कर रही हैं। वे रसरीति का नाना प्रकार से विस्तार कर रही हैं। श्रीसुभग सखीजू वेद मंत्रों का सुन्दर रीति से उच्चारण कर रही हैं। चमत्कारिनी सखी सेवा करती हुई उनके चित्त को चुरा रही हैं। प्रेममंजरी जू प्रेम की पूर्ति कर रही हैं। नव दम्पति के रूप में श्रीयुगल किशोर का दर्शन कर वृन्दारिका सखी जू नाना प्रकार से बधाई दे रही हैं। रसिका सखी जू राईलोन उतार रही हैं। आनन्दा सखी आरती उतार रही हैं। गुण गर्वीली भद्रसौखा सखीजू सुन्दर गीत गाती हुई अपने भाग्य की सराहना कर रही हैं। वे सुन्दर 'गारी' गाती हुई कह रही हैं—अरी सखियो! प्रियतम श्याम सुन्दर को रिझाने के लिए आओ हम सब मिलकर 'गारी' गावें। उनके सुन्दर सलोने नेत्रों का दर्शन कर हम अपने नेत्रों को शीतल कर लें। फिर प्रियतम श्यामसुन्दर के प्रति कहती हैं—हे प्यारे! सभी लोग तुम्हें श्यामसुन्दर कहते हैं, भला तुम कैसे श्यामसुन्दर हो? हम तो तुम्हें भली प्रकार जानते हैं कि तुम बिना दाम के लिए गये हो। तुम तो गुणों के ऐसे जाल से भरे हुए हो कि जिसका रहस्य वेद-पुराण भी नहीं जान सके हैं। किन्तु हमने अवगुणों की माला धारण किए हुए भी तुम्हें एक दिन अपनी आँखों से देख लिया है (कि तुम कितने छलछंदों से भरे हुए हो)। हे प्यारे! हमारी तो यही इच्छा है कि तुम निरंजन (निराकार) होकर भी (जैसा) वेद तुम्हें निर्गुण निराकार भी कहते हैं)

हमारे नेत्रों में अंजन की भाँति सदैव छाये रहो। श्रीप्रियाजू को अपने अधरामृत का पान कराते हुए हमें जगजीवन का दान देते रहो। हे लाल! वैसे तो सभी तुम्हें कृष्ण (काला) कहते हैं और मोहन भी कहते हैं। हमारी इच्छा है कि तुम मोहन का रूप धारण कर हमारे मन को सदैव मोहित बनाए रखो। वैसे हे प्यारे! तुम देखने में तो बड़े ही सीधे-सुलझे हो, पर तुम्हारा अङ्ग अङ्ग टेढ़ा है, सदैव उल्टी ही चाल चलने की सोचते हो। अस्तु, आप जैसे हैं वैसे अकेले भले ही बने रहें, किन्तु श्रीप्रियाजू के सङ्ग में रङ्गमहल में सुरत विहार के समय में तो तुम सब प्रकार से पराभूत हो जाते हो, तुम्हारे प्रत्येक अङ्ग का टेढ़ापन निकल जाता है ॥१६०॥

॥ दोहा ॥

निज निज अङ्ग लड़ाय कें सहचरि गावत गारि।
कहत सबै गोरे तुमहिं देखौ मुकर निहारि ॥

॥ पद॥१६१॥

तुम गोरे हो मोहन गोरे, कोउ स्याम कहैं ते भोरे।
सो तौ यह दोष हमारौ, आँखिन में अञ्जन कारौ ॥
तुम्हें जाने हो मोहन जाने, अब नेकु रहौ क्यों न(किन) छाने।
नातर कहि हैं वा दिन की, बोलनि प्यारीजू बिनकी ॥
तुम आछे हो मोहनै आछे, को परे तिहारे पाछे।
अहो अधरसुधा-अनुरागे, प्यारीजू के पाँयन लागे ॥
तुम प्यारे हो मोहन प्यारे, कहा कहिये कर्म तिहारे।
कहौ यामें कहा बड़ाई, हम देखत हा हा खाई ॥
तुम लोने हो मोहन लोने, आगे भये न अब कोउ होने।
क्यों नीचे नीचे झाँखें, ये लाज-लपेटी आँखें ॥
तुम कैसे हो मोहन कैसे, हमरे गुन देखो ऐसे।
पहिराय कमल की माला, करि दिये लाड़िले लाला ॥
तुम्हें गारि कहा अब दीजै, मुख पर पानी वारि पीजै।
सँग गोरी हो सँग गोरी, बनी श्रीहरिप्रियाजू की जोरी ॥१६१॥

॥ दोहा ॥

अपने-अपने अंग से लाड़ लड़ाकर सहचरियाँ विवाह के अवसर पर 'गारी'(व्यंग्य भरे गीत) गा रही हैं। वे श्याम सुन्दर से कहती हैं—हे प्यारे श्यामसुन्दर ! सभी लोग यही कह रहे हैं कि तुम गोरे(उज्ज्वल)हो। यदि उन्हें विश्वास न हो तो दर्पण में अपना मुख देख लो।

॥ पद ॥

सखियाँ कहती हैं—हे मन मोहन ! तुम वास्तव में गोरे (उज्ज्वल मन वाले) हो, जो कोई तुम्हें श्याम (काला) कहते हैं वे वास्तव में भोले ही हैं। वस्तुतः यह दोष तो देखने वाले का ही है (कि जिसका जैसा मन होता है, उसे वैसा ही दिखाई देता है) हमने अपनी आँखों में काला अंजन धारण कर रखा है, अतः जहाँ भी ये आँखें कुछ देखती हैं, इन्हें काला ही दिखाई देता है। हे मनमोहन तुम्हें तो वास्तव में वही जान–समझ सकता है जिसका मन भावना की तरह मोहन (निर्मल) है। हमने भी तुम्हें भली प्रकार से जान लिया है। अब तुम भले ही हम से कुछ छिपाओ, मगर हम तुम्हें अच्छी तरह से जान गई हैं। कदाचित तुम तीन-पाँच करोगे तो तुम्हारी उस दिन सारी पोल-पट्टी हम खोलकर रख देंगी जिस दिन तुमने प्यारी जू के सामने(हाथ जोड़ कर)जो कुछ कहा था। हे प्यारे ! तुम्हें सब लोग अच्छा बतलाते हैं। सो तो हम भली भाँति जानती हैं कि तुम कैसे भले हो ! हम व्यर्थ में तुम्हारे पीछे नहीं पड़ना चाहती हैं (वरन् सब पोल पट्टी खोलकर रख देंगी) उस दिन की भूल गये जब श्रीप्यारीजू का अधरामृतपान करने के लिए प्रेम से कनोड़े हुए जा रहे थे और उनके पैरों में गिर-गिर पड़ रहे थे। हे प्यारे ! जैसे तुम प्यारे मोहन हो, हम भली भाँति जानती हैं। तुम्हारा कोई भी धर्म-कर्म हम से छिपा नहीं है। अब हम तुम्हारे कर्मों के सम्बन्ध में कुछ कहना नहीं चाहती हैं, क्योंकि इसमें न तो तुम्हें बड़प्पन मिलेगा और न हमें ही। हमने जो कुछ तुम्हें करते-धरते देखा है, बस हम तुम्हारे हा–हा खाती हैं, कुछ कहते नहीं बनता। हे प्यारे ! तुम्हें लोग सुन्दर कहते हैं। जैसे तुम 'सुन्दर' हो हम अच्छी तरह से जानती हैं। तुम्हारे जैसा 'सुन्दर' न तो आज तक हुआ और न होगा। अब नीची निगाह करने से क्या होगा ? तुम्हारी आँखें लज्जा से लिपटी हुई अलग दिखाई दे रही हैं। हे मोहन ! तुम कैसे हो, जरा अपने आपको भी देख लो, और हम कैसी हैं, जरा हमारे गुणों की ओर भी देख लो (कि सदैव तुम्हारे लिए जान देती रहती हैं)। हम फिर भी तुम्हें कमल पुष्पों का हार धारण करा कर (अर्थात् अपना हृदय समर्पित कर) तुम्हें लाड़ लड़ाती रहती

हैं। अब (इस मङ्गल पर्व पर) हम तुम्हें 'गारी' क्या दें। अच्छा तो यही लग रहा है कि तुम्हारे भोले-भाले मुखड़े पर जल न्योछावर करके उसे पी जायँ। तुम्हारे साथ गौरांगी श्रीप्रियाजी का दर्शन कर तो (हम तुम्हारी सारी करतूत को ही भूल गई हैं) और निहाल हो गई हैं। यही चाहती हैं कि अपनी आँखों से सदा सर्वदा तुम्हारी इस जुगल जोड़ी का ही दर्शन करती रहें ॥१६१॥

॥ दोहा ॥

जोरी गोरी रङ्गभरी, सहचरि सब सुख देत।
भाँवरि भरि गुन गारि गथ, बदन बलैया लेत ॥
लेत बलैया बदन की, फूली मात न अङ्ग।
रहसि बधाई गावहीं, ललिता भीनी रङ्ग ॥

॥ सोहिलौ ॥

ललिता ललित रङ्गरसभीनी गावत मंगल रहसि बधाई।
मंगल रसरङ्गनि अनुकूली फूली फूली अङ्ग न माई ॥
सुन्दर सुभग सुखासन सोहन बैठे रसिक सिरोमनि राई।
बदन निहारति लेत बलैया मानि मानि निज भाग बड़ाई ॥
रतनप्रभा रतिकला सुभद्रा भद्ररेखिका अति मन भाई।
सुन्दरमुखी धनिष्टा हंसी केलि कलापनि परम सुहाई ॥
तानमती तारावलि तरला तानतरङ्गा तन तरुनाई।
लाख लाख अभिलाख उरनिके पुरवति तउ मति तृपति न पाई ॥
सुखसहेलि रुचि पान खवावत मुख प्रसन्न रुख लै चितचाई।
प्रीति-पगी रगमगी जगमगी नवजोवनि जगजोति जुन्हाई ॥
अति उदार दोऊ अलबेले रीझि रङ्ग बरषा बरषाई।
जीवन जोरी श्रीहरिप्रिया की भाँति भाँति सबकों सुखदाई ॥१६२॥

॥ दोहा ॥

विवाह के अवसर पर फेरे पड़ते समय गौरांगी एवं प्रेम भरी सहचरियाँ श्रीयुगल जोड़ी का गुण-गान करती हुई सुन्दर गाली दे रही हैं। वे सब प्रकार से प्रमुदित

॥ दोहा ॥

पांय परै से ही भये अर क्यों तजत अरैल ।
लाजभरे कहि सकत नहिं छल करि हारे छैल ॥

॥ पद ॥

छैलबर रहे लजाय, लालन डोरना दृष्टि चरनतर लाय । ला०
श्रीरँगदेवी दियो छोर, लालन० भई निरखि महारस वोर ॥ ला०
आनँद बढ्यौ अपार, लालन० श्रीहरिप्रिया लै बलिहार । ला०।१६३

॥ दोहा ॥

सखियों की ऐसी बात सुनकर भी हठीले श्यामसुन्दर अपनी हठ तो नहीं छोड़ पाये (क्योंकि हठीला स्वभाव जो ठहरा) पर श्रीप्रियाजी के पाँव-पड़े से अवश्य हो गये । छैल-छबीले छलबल कर हार गए पर डोरना नहीं छोड़ पाये । तब तो लज्जा से भरकर (नीची निगाह करके) रह गये, कुछ कहते ही नहीं बना ।

॥ पद ॥

छैल-छबीले श्रीश्याम सुन्दर (डोरना न छुड़ा सकने के कारण) लज्जित होकर श्रीप्रियाजी के चरणतल में दृष्टि झुकाकर रह गये । इस प्रकार उन्हें श्रीप्रियाजी के चरणकमलों में गिरा हुआ सा ही देखकर श्रीरंगदेवीजू महाप्रेम में डूब गईं और(दयाकर) डोरना छुड़ादिया । डोरना छूटता देख श्रीलालजी के हृदय में अपार आनन्द उमड़ पड़ा। श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ भी परम हर्षित हो श्रीप्रियाप्रियतम की बलैया लेने लगती हैं ॥१६३॥

॥ दोहा ॥

लै बलिहारी श्रीहरिप्रिया डोर छोर मनमत्त ।
कहत चलौ लै महल में कीजै रँगरस रत्त ॥

॥ पद॥१६४॥ सोहिलौ ॥

दोउ लालन ब्याह लड़ावौ री, छबि निरखत नैन सिरावौ री ।
रस रंगमहल पधरावौ री, पैसारें पद परसावौ री ॥
साजित्र बाजित्र बजावौ री, बहु बिबिध बधावौ बधावौ री ।
नवकुंज में केलि किलावौ री, नैननि भरि भरि रस पावौ री ॥

सुख सेजको सुख बिलसावौ री, रंगीले के रंग रचावौ री।
रंग स्याम सु गौर रँगावौ री, उज्जल तन तेज करावौ री॥
मुख जय जय सबद सुनावौ री, अति आनन्द में उमगावौ री।

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाजी के हाथ का डोर छूट जाने पर प्रियतम श्यामसुन्दर (उनसे मिलन के लिए) मतवाले हो उठे। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी उनके इस मतवाले रूप की बलैया लेने लगीं और संग की सहेलियों से उन्हें प्रेम-केलि करने के लिए रंगमहल में ले चलने का आग्रह करने लगीं।

॥ सोहिलौ ॥पद॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं--अरी सखियो! इन दोनों लाड़ली लाल के विवाहोत्सव को जीभर कर मनाओ। इनकी विवाह की झाँकी कर अपने नेत्रों को शीतल कर लो। अब इन्हें शीघ्र से शीघ्र रङ्गमहल में प्रवेश कराकर सुरत सेज पर पधराकर (प्रेम केलि के लिए) इनके चरण स्पर्श करो। साज-बाज के साथ खूब गाओ-बजाओ और विविध प्रकार से (मधुर मिलन की परस्पर) बधाई दो। इन्हें नवल निकुञ्ज में रस केलि-क्रीड़ा कराओ और अपने नेत्र संपुटों से भर-भर कर उस रस का पान करो। इन्हें शीघ्र ही सुरत–सेज का सुख-विलास विलसाओ और प्रेम की रंग-विरंगी झाँकियाँ सजाओ। श्याम को गौर रंग से और गौर को श्याम रंग से हरा रङ्ग बना दो। अर्थात् साँवले किशोर का गौरांगी श्रीकिशोरी जी से और गौरांगी श्रीकिशोरीजी को साँवले किशोर से मिलाकर परम आह्लाद से ओतप्रोत कर दो। जब ये दोनों परस्पर मिलकर एकमेक हो जायँ तो आनन्दातिरेक से उच्छलित हो हृदय जय-जयकार की ध्वनि करने लगे।

॥ दोहा ॥

आनन्द में उमगाय कें भरी सबै सुख रंग।
लै आई अलि महल में फूली सब अङ्ग अङ्ग॥
अङ्ग अङ्गनि रस रँग रँगी आनन्द अवधि परी जु।
लाल लड़ावैं चंपलता चित में चोंप भरी जु॥

॥ सोहिलौ ॥

चंपलता चित चोंप भरी, अँग अंगनि रस रँग ररी ॥
मृगलोचनि सुभचरिता चंद्रा चंद्रिलत्तिका प्रिय सहचरी ।
मणिकुण्डला मंडली कंदुकनैंनि सुमंदिरा मनमंजरी ॥
मणिमाला मेधा मधुमालती मदनमञ्जरी मनोरमा ।
महाबिचित्रा मित्रामोदा अनुरागिनि अनोपमा ॥
आनन्दलता अद्भुता आभा अमितप्रभा आनन्दभरा ।
लाड़लड़न कों लाड़ लड़ावत लाड़ लड़ी सब लाड़ परा ॥
मधुरा मधुर मृदङ्ग बजावति गरबीली गावत गुन गीत ।
चंदमुखी मुखचंग बीनवर बाला सुरसाला जु पुनीत ॥
रङ्ग रह्यौ कछु कह्यौ परत नहिं उमह्यौ आनन्दसिंधु अपार ।
तन मन मगन भये सबहिन के अति रसलीन रही न सम्हार ॥
बना बनी बैंठे बनि बानिक राजति छबि छाजति अनहोनी ।
श्रीहरिप्रिया किसोर किसोरी जोरी गोरी स्याम सलोनी ॥१६४॥

॥ दोहा ॥

इस प्रकार प्रेम सुख से भरी हुई आनन्द से उच्छलित हृदय हो सभी सखियाँ नव दूलह दुलहन को रंग महल में लेजाकर फूली अङ्ग नहीं समाईं। उनका अङ्ग-अङ्ग आनन्द की इस दुर्लभ घड़ी में प्रेमरस-रंग से परिप्लावित हो उठा। श्रीचंपकलता जी तो उमंगित चित्त से श्रीप्रियाप्रियतम को लाड़ लड़ाने लगीं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं--अरी सखी ! देख तो सही !! नव दूलह-दुलहन को देखकर श्रीचंपकलता जी का चित्त कैसा उमंगित हो रहा है। प्रेम-रस रंग से उनका अङ्ग-अङ्ग सराबोर हो उठा है। मृगनयनी, सुन्दर चरित्रवाली, चंद्रिका के समान छिटकी हुई (विकसित) परम प्रिय श्रीचन्द्रलता सहचरी जू, मणिजटित कुण्डल धारण करने वाली सखी-मण्डली में श्रेष्ठ, कंदुक के समान सुन्दर गोल नेत्रों वाली, सुन्दर अङ्गवाली श्रीमणि-मञ्जरी जू, मणियों की माला धारण करने वाली, मधुमालती के समान सुन्दर अङ्गों वाली श्रीमदन मञ्जरी जू आदि सभी सहचरियाँ चित्र-विचित्र चरित्रवाली, परस्पर मैत्री भाव से परिपूर्ण अनुपम प्रेम व अनुराग से ओत प्रोत, आनन्द रूपी लता के समान

विचित्र एवं अपरिमेय आभा से युक्त, आनन्द व प्रेम में मतवाली सभी सहचरियाँ लाड़-चाव से भरी हुई लाड़ लड़ेंती श्रीप्रियाजी एवं लाड़ लड़ैते श्रीश्यामसुन्दर का लाड़ लड़ा रही हैं।

मधुरा सखी जी प्रेम के भाव से भरकर सुन्दर रीति से मृदङ्ग बजाती हुई मधुर गीत गा रही हैं, मुख-चंग और वीणा बजाने में परम प्रवीण श्री चन्द्रमुखीजी प्रेमरस से ओतप्रोत दिखाई दे रही हैं। इस प्रकार प्रेमरस के कारण आनन्द का सागर अनन्त रूप धारण कर उमड़ पड़ा है, जिसका कुछ वर्णन ही नहीं किया जा सकता। इस आनन्द सिन्धु में सभी के तन-मन निमज्जित हो उठे हैं किसी को अपने शरीर की किंचित् भी सुध नहीं है। बन्ना और बन्नी सज सँवर कर सिंहासन पर विराजमान हैं। वे सर्वथा अनहोनी शोभा से शोभायमान हो रहे हैं। श्रीकिशोर किशोरी की यह गौर-श्यामल साँवरी-सलोनी जोड़ी श्रीहरिप्रियादि सखी-सहचरियों को परम-सुहावनी-मन-भावनी लग रही है ॥१६४॥

॥ दोहा ॥

जोरी सलोनी महल में राजत रङ्गभरी।
गान-कला नृत्तत अली रिझवत रसनि ररी॥
रिझवत श्रीहरिप्रिया को रति रस घात जनाय।
सब बातनि में चतुर अति चित्रा सखी सुहाय॥

॥ पद ॥१६५॥

चित्रासखी चतुर सब बातनि, जानति अति रति रस की घातनि॥
तिलकनि सौर सुगन्धिक बैंनी कामिलका गुनभरी रसाला।
कामनागरी नागरबेली सुसोभना मृगनैंनी बिसाला॥
जया जयन्ती बिजया बिरजा बीना बालमती बन बेली।
बिधु बदनी सुखसदनी स्यामा रम्या रदनी अङ्ग अलबेली॥
सजे सिंगार सिंगार सुन्दरी रचि आभरन जथारुचि के।
रायबेलि-माला पहिरावत लाय प्रसून सुमन सुचि के॥
दरपन लै दिखरावति दरपा कंदरपा किये तिलक सँवारि।
अछित लगाय लड़ाय ललन कूँ पीवत पानी वारि निहारि॥

कोउ सखी रति मङ्गल गावति चोप लगावति उरन उमाहि।
कोऊ सखी सैननि समुझावति अति सोहन मोहन तनचाहि॥
रीझि रीझि भींजत दोउ प्यारे देखि देखि रस-बरषा-पुंज।
महाप्रेम रसमत्त श्रीहरिप्रिया कीनौ आय प्रवेस निकुंज॥१६५॥

॥ दोहा ॥

प्रेम-रस की बातों में परम चतुरा श्रीचित्रा सखी नव-दूलह-दुलहन को प्रेमरस किंवा सुरत-क्रीड़ा की नाना प्रकार की युक्तियाँ बता-बता कर रिझा रही हैं। श्रीयुगल वर की जोड़ी प्रेम के रङ्ग में रंगी-पगी रंगमहल में शोभायमान हो रही है। गान-कला में प्रवीण सखी-सहचरियाँ प्रेम—रस में सराबोर होकर नृत्य कर रही हैं।

॥ पद ॥

प्रेम-रस की बातों को भली भाँति जानने एवं अन्य सभी प्रकार की बातों में चित्रा सखी बड़ी चतुर हैं। विविध भाँति से वे श्रीप्रियाजी का श्रृङ्गार कर रही हैं। श्रीप्रियाजी की वेणी को सुन्दर-सुगन्धित फूलों के साथ गूँथकर उसे अनेक गुणों से भरकर सरस बना दिया है। उनके नेत्र मृगनेत्रों के समान विस्तृत हैं, वे केलि क्रीड़ा करते समय नागरी लतिका के समान परम शोभायमान लगती हैं। सुन्दर दन्तावली से युक्त, चन्द्र वदनी, सुख की केन्द्र व सुन्दर अङ्गों से युक्त श्रीश्यामा जी प्रियतम श्यामसुन्दर का मन मोह रही हैं। जया, जयन्ती, विजया, विरजा, वीणा बालमती आदि सखियों ने उनके शरीर को उनकी रुचि अनुसार सुन्दर सुन्दर आभूषणों से श्रृंगारित कर दिया है। वे सुन्दर मन भावते पुष्पों के साथ रायबेल के फूलों की माला धारण करा रही हैं। दर्पा सखी अपने हाथ में दर्पण लेकर उन्हें दिखा रही हैं कंदर्पा सखी उनका तिलक सँवार रही हैं। तिलक सँवार उस पर अक्षत लगाकर लाड़िली लाड़ को लाड़ लड़ाती हुई अपलक दृष्टि से पानी न्योछावर कर के पी रही हैं। कोई सखी रति मंगल (संभोगसुख) के गीत गा-गाकर श्रीप्रियाप्रियतम के हृदयों को मिलन सुख की चाह से उमंगित कर रही हैं। कोई—कोई सखी संकेतों के माध्यम से ही प्रेम केलि की बातें समझाती हुई दोनों के मन का मोहन कर रही है। रंगमहल में चारों ओर से रस की अजस्र वर्षा होती हुई देखकर दोनों श्रीप्रियाप्रियतम परस्पर रीझ-रीझ कर रस में भीग रहे हैं। इस प्रकार महान् प्रेम रस से उन्मत्त नव दूलह—दुलहन निकुञ्ज महल में प्रवेश कर रहे हैं॥१६५॥

॥ दोहा ॥

करि प्रवेस निज कुंजवर राजत बना बनी।
रसरंगनि रस बिलसहीं मोहत मुकुटमनी ॥
मुकट मनी धन धनी दोउ दूलह दुलहिनि बाल।
मंजु कुंज में बिलसहीं मोहनि मोहन लाल ॥

॥ पद ॥१६६ ॥

बना बनी की जोर बनी।
नित नवकुंज मंजु मंदिर में दूलह रसिक रसिक दुलहनी ॥
मोहन मोहन मेंन मुकुटमनी मुकुटमनी स्यामा धन-धनी।
श्रीहरिप्रिया प्रति प्रतिछिन प्रमुदित निरखि निरखि सोभासुखसनी।१६६

॥ दोहा ॥

नव दूलह–दुलहन (श्रीप्रियाप्रियतम) श्रेष्ठ रंग महल में प्रवेश शोभायमान हो रहे हैं। वे मुकुट की मणि सदृश शोभा प्राप्त करते हुए प्रेम-रस-रङ्ग की क्रीड़ा कर रहे हैं। ये दोनों रस केलि के अतुलित धनी किंवा शिरोमणि हैं। दोनों मोहन-मोहिनी मंजुल निकुञ्ज में विलास विलस रहे हैं।

॥ पद ॥

नव दूलह-दुलहन की जोड़ी बड़ी ही शोभायमान लग रही है। ये रसिक–रसिकिनी दोनों नित्य नवल निकुंज के सुन्दर रंगमहल में रस–केलि में निमग्न हैं। ये मोहन–मोहिनी काम–कला के परम ज्ञाता मणियों में मुकुटमणि सदृश रस–केलि के अतुलित धनी हैं। श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ नित्य प्रति प्रतिक्षण इन्हें निरख–निरख कर प्रसन्न होती हुई सुख की शोभा से भर जाती हैं ॥१६६॥

॥ दोहा ॥

सरस निकुंज बिराजहीं, उपजत सुख के पुञ्ज।
बना बनी रसरँग रँगे, गुंज करत निज कुञ्ज ॥
कुञ्ज बधाई गावहीं, गोरी सुभग सुजान।
ललना लाल लड़ावहीं, गावें सब सुखदान ॥
सुख श्रीराधा कृष्ण कौ, सेवें सदा सुवेख।

ब्याह-बिनोदनि सँग लिये, गुन अगाध इँदुलेख ॥

॥ सोहिलौ ॥

सखी इंदुलेखा अमित गुन अगाधा, सेवैं सुख सदा श्रीकृष्ण राधा।
संग सहचरि भरी रंग राजें, तुँगभद्रा रसातुङ्ग छाजें॥
चित्रलेखा चित्रांगी सुसंगा, रङ्गबाढ़ी उमङ्ग अङ्ग अङ्गा।
मोहनी मोदनी मैंनकारी, सुन्दरी सोहनी सोभना री॥
रागरँगी रँगीली रङ्गावलि, रसिक रंजनि रसीली रसावली।
अपनि अपनी लियें सौंज ठाढ़ी, रूपसागर ते मथि मनहुँ काढ़ी॥
लागि रही सबनि कें एक डोरी, जुगल-मुख-चंद्रमा की चकोरी।
जगर जगमग रही जोति लोनी, फैली मनु बिपिन सुखमा सलोनी॥
श्रीहरिप्रिया कुञ्ज सुख-पुंज सोहैं, कोटि कंदरप की कला मोहैं॥१६७

॥ दोहा ॥

नव दूलह-दुलहन प्रेम रस में रँगे-पगे अपने रङ्ग महल में रस भरी बातें कर रहे है। सरस निकुञ्ज में विराजमान होने से उनके हृदय में सुख-पुञ्ज की वर्षा हो रही है। गौर वर्ण वाली गान-कला में चतुर सखियाँ रङ्ग महल की बधाई गा रही हैं। प्रिया—प्रियतम को लाड़ लड़ाती हुई वे सर्व प्रकार से उन्हें सुख प्रदान कर रही हैं। वे प्रियाप्रियतम श्रीराधाकृष्ण की (नव दूलह-दुलहन वेश में) सरा सेवा करती हुई परम सुख देती हैं। वे प्रियाप्रियतम के विवाह की उमंग में उमङ्गित हृदय हो चन्द्र ज्योत्स्ना की गहन-गम्भीर गुणों से भरी हुई सेवासुख में डूबी रहती हैं।

॥ पद ॥

अमित गुणों की खानि इंदुलेखा जी श्रीराधाकृष्ण के विवाह सुख का सदा सेवन करती रहती हैं। वे तुङ्गभद्रा आदि रस-रसी सहचरियों की भीड़ के साथ सदैव शोभायमान रहती हैं। चित्र-विचित्र अङ्गों वाली चित्रलेखा सहचरी जू के अङ्ग-प्रत्यंग में नई-नई उमङ्ग उठ रही है। इनके अतिरिक्त मोहिनी, सोहिनी, मैंनकारी, मोहिनी, सुन्दरी, सौभाग्य-शालिनी, राग रंगिणी, रंग-रङ्गी, रङ्गावली, रसिक रसरसी रसावली आदि विशेषणों से युक्त सभी सहचरियाँ अपनी-अपनी सेवा की सामग्री लेकर खड़ी हुई हैं। वे सब ऐसी लग रही हैं मानों रूपसागर का मंथन करके उन्हें निकाला गया हो। उनके मन

में बस लालसा की एक यही डोर लगी हुई है कि वे श्रीयुगल किशोर के मुखचन्द्र के लिए सदैव चकोरी ही बनी रहें। सम्पूर्ण वन सुन्दर जग-मग ज्योति से जगमगा रहा है। सर्वत्र सुख-शांति छा गई है। श्रीप्रियाप्रियतम नव दूलह-दुलहन वेश में नवल निकुञ्ज में सुख पूर्वक शोभायमान हो रहे हैं। वे अपने सौंदर्य से कोटि-कोटि कामदेवों की कला को भी तिरस्कृत कर रहे हैं ॥१६७॥

॥ दोहा ॥

मोहें बने निकुञ्ज में, दंपति रति झूल्हैं।
हास बिनोदनि रँग रँगे, श्रीदुलहिनि दूल्हैं ॥
दूलह दुलहिनि जुगल कौ, रूप अनूप सिंगार।
निरखि निरखि सुख बरनहीं, बिधिवत अमित अपार॥
अति अपार को कहि सकै, अद्भुत आभाऊप।
को मर्कतमनि दामिनी, सहजानन्द स्वरूप॥
सहजानन्द स्वरूप की, अहलादिनि अवतारि।
विद्युतबरनी लाड़िली, मृगनैनी सुकुँवारि॥

॥ सोहिलौ ॥१६८॥

विद्युतबरनी हो मृगनैनी, रूप अनूपम सब सुखदैनी।
चंद्रबदन नैना अनियारे, रतनारे मधि चंचल तारे॥
अञ्जन मनरञ्जन रेखा-जुत गंजन कंजन खंजन गारे॥
भोंह बनी नासा नकबेसरि अधर दसन रसना अरुनाई।
ठोड़ी गाड़ कपोल अलक अरु करन कुसुम कानन छबि छाई॥
बरबेंदी बेंना अरु बेंनी मनहरि लेनी माँग सुहाई।
मोतिन-लर सोभा सुन्दर सखि लखि लखि लोचन रहत लुभाई॥
कंठाभरन उतंग कुचन पर कसी कंचुकी अतलस गाढ़ी।
बाजूबंध चूरी कंकन गजरा करपान सुछबि (अति) बाढ़ी॥
अँगुरिन में मुंदरी मनि-मंडित नखन-पाँति करतली सुरंग।
उदर सुदेस सुबेस नाभि-सर बरनत अति मति होत जु पङ्ग॥

कटि किंकिनि लहँगा लहकारी सारी तनसुख जेहरि पायन।
पायल बिछिया नखन महावर अनवट गजगति चलत अदायन ॥
खाये पान मुसक्यात मनोहर जगमगाति नवजोवन जोति।
अमित अनूप रूप श्रीहरिप्रिया चितै चखनि चकचौंधी होति ॥१६८॥

॥ दोहा ॥

श्रीरसिक दम्पति निकुञ्ज महल में सुरत केलि करते हुए परस्पर मोहित हो रहे हैं। वे प्रेम के रंग में रंगे हुए हास परिहास कर रहे हैं। नव दूलह-दुलहन वेशधारी श्रीयुगल किशोर अनुपम रूप शृंगार से शोभायमान हो रहे हैं, जिन्हें निरख-निरख कर सखियाँ विधिवत अपार सुख प्राप्त कर रही हैं। उनके अति अद्भुत रूप और अपार आभा का कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। वे नीलमणि और विद्युत की सहज स्वाभाविक शोभा से सदैव शोभायमान रहते हैं। श्रीश्यामसुन्दर सहज आनन्द स्वरूप हैं तो श्रीप्रियाजी उनकी आह्लादिनी शक्ति के रूप में अवतरित हैं। वे चपला के वर्ण के समान गौर वर्ण वाली मृगनयनी एवं परम सुकुमारी हैं॥

॥ पद ॥

सहचरियाँ रंगमहल की मङ्गल बधाई गाती हुई श्रीप्रियाजी का गुणगान कर रही हैं—

'विद्युत के समान वर्ण वाली, मृगनयनी, अनुपम रूप लावण्य से युक्त, सुख प्रदायिनी श्रीप्रिया जी की जय हो। चन्द्रमुखी एवं रतनारी (कुछ लाली लिए हुए) चंचल पुतलियों से युक्त नुकीले (तीखे) नेत्रों वाली, मन को प्रसन्न करने वाली अंजन-रेख से युक्त उनके नेत्र कमल और खंजन पक्षी का भी गंजन (तिरस्कार) करने वाले हैं। सुन्दर भौंहों वाली, वेसर से युक्त सुन्दर नासिका वाली, दाँतों एवं जिह्वा पर अधरों की लालिमा से युक्त ठोड़ी और कपोलों पर सुन्दर गाड़ (गड्ढे) वाली, घुँघराले केशों वाली, कानों में कर्णफूल से युक्त, श्रेष्ठ बेंदी, वेणी और मन को हरने वाली सुन्दर माँग से युक्त, गले में पड़ी हुई मोतियों की माला की शोभा को देख-देख कर सखियाँ बार-बार आकृष्ट हो रही हैं। गले में पहने आभूषणों एवं उन्नत उरोजों पर सुन्दर गहरे रङ्ग की कंचुकी कसी हुई है, बाहों में बाजूबन्ध, हाथों में चूड़ी, कंगन, गजरा एवं हथफूल की शोभा तो देखते ही बनती है। अँगुलियों में मणि जटित अँगूठी धारण कर रखी है, नखों की पंक्ति हथेली के रंग से रंगी हुई बड़ी सुन्दर लग रही है। उदर की सुन्दरता एवं नाभि-सरोवर की

गंभीरता का वर्णन करने में तो बुद्धि ही पंगु हो जाती है। कटि में किंकिणि, लहलहाता हुआ लहँगा, शरीर को सुख प्रदान करने वाली सुन्दर साड़ी, पाँवों में जेहरि (एक सुन्दर आभूषण), पायल, बिछिया, नखों में महावर, अनवट (एक प्रकार का आभूषण) आदि सुन्दर आभूषण धारण कर जब वे बड़ी अदा से हथिनी की चाल से चलती हैं, तो सभी सखियाँ अपलक दृष्टि से उन्हें निहारती ही रह जाती हैं। पान खाने से जब वे मन्द-मन्द मुस्कराती हैं, तो उनकी वह मुस्कान बड़ी ही सुन्दर लगती है, उनके नव यौवन की ज्योति उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर जगमगाती दिखाई दे रही है, उनके अमित एवं अनुपम रूप सौंदर्य का दर्शन कर श्रीहरिप्रिया सहचरियों के नेत्रों में चकचौंधी छा जाती है ॥१६८॥

॥ दोहा ॥

चकचौंधी नैनन लगी, देखत दुलहिनि रूप।
अब दूलह देखौ सखी, सुन्दर अतिहिं अनूप ॥
अति सुन्दर तन सोहने, मनमोहन अभिराम।
बरनत बैंन बनैं न सखी, कमलनैंन घनस्याम ॥

॥ सोहिलौ ॥

घनस्याम बरन तन कमलनैंन बरनत बैंन बनैं न सखी।
अति सुन्दर सोहन मन मोहन मूरति मङ्गलमैंन सखी ॥
सुही पाग सिरपेच सुनहरी छोंगा अति छबि देत सखी।
लहलह मुक्त लरनि सँगि बिलगी किलँगी हिय हर लेत सखी ॥
तिलक भाल तिरछोंहीं भोंही बिलसोंही चखि लोल सखी।
अलक रलक श्रुति कुंडल सों मिलि झकलत ललित कपोल सखी ॥
नासा अग्रमुक्ता मंजुल की उज्जल दुति रहि दमकि सखी।
अधर अरुन रस भीनी रसना रदचौका रह्यौ चमकि सखी ॥
सुखदैंनी रससनी मनोहर मृदु मुख हँसनि रँगीली सखी।
चिबुक दिठौनी अति लौनी की रहि छबि छाय छबीली सखी ॥
कंठी कंठ कसिब कञ्चुकि पर बर मुक्ता मणि-माल सखी।
सह आभरन अंस अवतंसी अद्भुत बाहु बिसाल सखी ॥

कटि तट पटुका हरित जरी अति लसि अतलस निज बसन सखी।
पटी पुरट सुघटी जटी जतननि निर्मित रतननि रसनि सखी ॥
चरन चारु आभूषन भूषित नख पदतर अरुनई सखी।
श्रीहरिप्रिया प्रान की सोभा पर मैं बलि बलि गई सखी ॥१६९॥

॥ दोहा ॥

नव दुलहन के जगमगाते हुए सुन्दर एवं अनुपम स्वरूप का दर्शन कर सखी सहचरियों के नेत्र चकचौंधिया जाते हैं। अब वे सब की सब निर्निमेष दृष्टि से नव दूलह कमल नेत्र धारी श्रीघनश्याम के मनोहारी अभिराम रूप का दर्शन कर अवाक् हो जाती हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखियो ! नव दुलहन के सुन्दर स्वरूप का दर्शन तो हम सभी ने भली भाँति कर लिया है, अब किंचित् नव दूलह वेशधारी प्रियतम लालजी को भी तो निहारो ! हे सखी ! समल मेघ के समान वर्ण वाले, श्रेष्ठ कमल के समान नेत्रों वाले प्रियतम श्यामसुन्दर की शोभा का तो कुछ वर्णन ही नहीं किया जा सकता। ये देखने में बड़े ही सुन्दर लग रहे हैं, मनको बलात् अपनी ओर खींच रहे हैं, वे अपने मङ्गलमय रूप में साक्षात् काम देव के सदृश दिखाई दे रहे हैं। हे प्रिय सखी ! इन्होंने अपने सर पर कैसी सुन्दर शाही पगड़ी बाँध रखी है, उस पर लगा हुआ सुनहले रंग का सरपेच और छोंगा तो बड़ा ही सुखदाई लग रहा है। पाग की दोनों ओर झूलती हुई मोतियों की लड़ी कैसी लहलहा रही है और उसके ऊपर खिली हुई कलँगी की शोभा तो मानो हमारे हृदय का ही हरण कर रही है। माथे का तिलक, तिरछी भौंहें और चंचल नेत्रों की चंचलता तो देखते ही बनती है। घुँघराली अलकावली कर्ण कुण्डलों से मिल कर जब उनके कपोलों पर प्रतिबिम्बित हो उठती है। उस समय उनका सौंदर्य तो देखते ही बनता है। उनकी नासिका के अग्रभाग में धारण किया गया मोती की सुँदर एवं उज्ज्वल आभा कैसी दमक रही है। उनके अधरों की लाली से भीगी हुई रसना (जिह्वा) और दंतचौकी की चमक तो सखी, देखते ही बनती है। जब वे अपने रसयुक्त सुकुमार मुख से मन्द-मंद मुस्कराते हैं तब उनकी वह रंगीली हँसी मन को बड़ी ही सुख दाई लगती हैं। अरी सखी ! दिठौना लगी हुई प्रियतम लालजी की ठोड़ी पर जो छवीली शोभा छाई हुई है, उसके सम्बन्ध में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता। उनके

गले में पड़ी हुई कंठी और कसे हुए वक्षःस्थल पर पड़ी हुई मोतियों की माला भी बड़ी ही सुन्दर लग रही है। उनकी अद्भुत एवं विशाल भुजाएँ हैं, जिन पर धारण किए गए आभूषण सूर्य के अंशावतार सदृश दिखाई दे रहे हैं। उन्होंने कटि प्रदेश में सुनहरी जरी से जड़ा हुआ हरे रंग का वस्त्र धारण कर रखा है, जो बड़ा ही शोभायमान लग रहा है। उस पटी (वस्त्र) में रत्न जटित जो पुरट (स्वर्ण) के सितारे यत्न पूर्वक जड़े गए हैं, उनकी शोभाका वर्णन तो रसना से किया ही नहीं जा सकता। श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं कि प्राण प्रियतम की इस अनूठी एवं अद्भुत शोभा पर हे प्रियसखी ! मैं बार-बार बलिहारी जाती हूँ ॥१६९॥

॥ दोहा ॥

बलि-बलि गई सखी सबै, देखि दुहुन को हेज।
सबै चारु करि ब्याह के, बैठाये सुखसेज ॥
ब्याहि बिराजे सेज पर, श्रीहरिप्रिया लियें संग।
हुलसि हुलसि हियें बिलसहीं, बाढ्यौ अति रति रंग॥

॥ पद ॥१७०॥

सेज पर बाढ्यौ अति रति रंग।
दूलह दुलहिनि अलकलड़ीले अलबेले अङ्ग अङ्ग ॥
नित्यनवीन किसोर लाल दोउ नित्य नवीन अभंग।
बिलसत बिबिध बिलास बितन के श्रीहरिप्रियाजू कें संग ॥१७०॥

॥ दोहा ॥

दोनों नव दूलह-दुलहन के अनुपम स्वरूप का दर्शन कर सभी सखियाँ बलिहारी जाती हैं। विवाहाचार करके वे उन्हें सुख पूर्वक शैया पर विराजमान करती हैं। विवाह करके श्रीलालजी श्रीप्रियाजी को साथ में लेकर शैया पर विराजमान हैं। वे हृदय में बार-बार हर्षोल्लास से भरकर केलि कर रहे हैं, उनके हृदय में प्रेम-केलि की तीव्र भावना उमड़ पड़ी है।

॥ पद ॥

विवाहोपरान्त रंग महल का शैया पर नव दूलह-दुलहन विराजमान हैं। उनके मन में रस-केलि की तीव्र भावना बढ़ने लगी है। दोनों अलक लाड़ले के अङ्ग-प्रत्यङ्ग

प्रेम के रंग में सराबोर होने से अलबेले (बाँके) दिखाई दे रहे हैं। ये श्रीनवल किशोर किशोरी लाड़िलीलाल नित्य नवल हैं। इनकी यह रसकेलि भी अभङ्ग होने से नित्य है। ये दोनों हर्षोल्लास से भरकर परस्पर काम की अनेक क्रीड़ाएँ करते हुए विविध प्रकार से लीला विलास करते रहते हैं ॥१७०॥

॥ दोहा ॥

संग प्रिया पिय बिलसहीं, रस रँग बरखि बरखि।
बड़भागिनि बलि जायँ अलि, सोभा निरखि निरखि ॥
निरखि निरखि श्रीहरिप्रिया, हिल मिलि हियें हरषंत।
नवल बिसाखा सहचरी, नवल रङ्ग बरषंत ॥

॥ सोहिलौ ॥

नवल रंग बरषें बिसाखा सहेली नवल बर महल की चहल लागी।
अतिहि आनंद उत्साह में रगमगी जगमगी उरनि अनुराग रागी ॥
नवल कमलासनासीन दोउ लाड़िले केलि कलबेलि अङ्ग अङ्ग बाढ़े।
झेलि रस झूलि रहे फूल मधुमहमहे डहडहे गहगहे गुननि गाढ़े ॥
माधवी मालती चंद्रलेखा चपल कुंजरी सुरभि सुख आनना हरनी।
एकतें-एक मंगल सनी अनगिनी बरतनी बनी नहिं जाति बरनी ॥
मंजरी सुन्दरी सखी अरु सहचरी अहल पहली फिरें फूलि फूली।
गीत गावें बिहँसि रहसि रस रीति सों प्रीतिनिधि मगन सुधि सकलभूली
फैलि रह्यौ बितन तन बिपिन सौरभ सु मिलि,
हितन हिलि मिलि रली बिमल बिमली।
निरखि श्रीहरिप्रिया हरखि बारति तनैं,
को गनैं भाग महिमा फलीअली ॥१७१॥

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम उमँग-उमङ्ग कर रस-विलास विलस रहे हैं। बड़भागिनी सहचरियाँ उनकी शोभा का दर्शन कर बलिहारी जा रही हैं। श्रीविशाखा सहचरी जू श्रीरसिकदम्पति की इस अद्भुत रस-केलि का दर्शन कर नये-नये प्रेम-रङ्ग की वर्षा करने लगती हैं।

॥ पद ॥

नवल-निकुंज महल में नवल वर श्रीप्रियाप्रियतम का रस–विलास की नवल क्रीड़ा का दर्शन कर नवेली श्रीविशाखा सहचरी जू नित्य नवल (प्रेम) रंग की वर्षा कर रही हैं। अत्यानन्द-अनुराग से उनका हृदय भर कर प्रेम–ज्योति से जगमगा उठा है। दोनों नवल किशोर किशोरी नित्य नवल कमलासन में विराजमान होकर केलि कर रहे हैं। उनके अङ्ग-प्रत्यंग में केलि उमड़ पड़ी है। रसकेलि करते हुए वे हर्षोल्लास से भर कर झूम रहे हैं। गहन-गम्भीर गुणों से युक्त हो विल स विलस रहे हैं। माधबी, मालती, चन्द्र लेखा, चपला, कुञ्जरी, सुरभि, शुभामना, हरणी आदि एक से एक बढ़कर मङ्गल–मोद से भरी हुई अनगिनती सखी सहचरियाँ परम प्रफुल्लित हो, सेवा की सामग्री लिए रंगमहल में फूली–फूली फिर रही हैं। वे हँस–हँस कर रस-रहस्य के गीत गाती हुई प्रेम में मग्न होकर अपनी सुध, बुध खो बैठी हैं। सम्पूर्ण वन में रस–केलि की आभा विपिन के सौरभ से मिलकर सम्पूर्ण वन में व्याप्त हो गई है। जिसके परिणाम स्वरूप सभी सखी–सहचरियाँ हृदय में प्रे की भावना से उमंगित होकर एकमेक हो रही हैं। श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ प्रियाप्रियतम की इस अद्‌भुत एवं अनुपम रसकेलि का दर्शन कर हर्षित हृदय हो अपने तन को ही न्योछावर कर देती हैं। ठीक ही तो है, सौभाग्य ही जब फलित हो उठा है, तब उसकी महिमा को कौन दबा सकता है ? ॥१७१॥

॥ दोहा ॥

अली निरखि नव सेज-सुख, मत्त मुदित रस पिज्ज।
कहत परस्पर प्रेममय, निरखौ भावनि निज्ज॥
निज निज भावनि सों सबैं, नैननि निरखौ रीय।
कैसी बिराजति आज की, सुन्दर बर जोरीय॥

॥ सोहिलौ ॥

निज निज भावन सों निरखौ (री) कैसी बिराजत सुन्दर जोरी॥
करन कामना पूरन मन की जन जीवन तन धन गोरी।
सहज सलोनी सोभा सरसत बरसत रंग अनङ्गन को री॥
अनियारी अंजन जुत अँखिया चंचल चितवनि चितचोरी।
दोउ दोउन के प्रीतम प्यारे न्यारे होत न इक छिन होरी॥

नित्य नवीन किसोर लाड़िलौ नित्यनवीनी नित्य किसोरी।
कोटि कोटि कन्दर्प दर्प की कोटि कोटि रति की मति मोरी ॥
भुजा परस्पर अंसन दीने रसभीने छबि फबी न थोरी।
निरखि नैन श्रीहरिप्रिया सहचरि दंपति पर डारति तृन तोरी ॥१७२

॥ दोहा ॥

सखियाँ नव निकुंज महल में श्रीरसिकदम्पति की रसमयी जोड़ी का दर्शन कर प्रमुदित हो रही हैं। सुरत सेज पर रस-पान से उन्मत्त श्रीप्रियाप्रियतम के पारस्परिक प्रेम भाव के अवलोकनार्थ सखी सहचरियाँ एक दूसरी को प्रेरित कर रही हैं। उसी प्रसंग में श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—

॥ पद ॥

अरी सखियो ! अपनी अपनी भावना से किंचित् निहारो तो सही, सुन्दर वर किशोर-किशोरी की यह जोड़ी कैसी शोभायमान लग रही है। गौर-श्यामल अङ्ग की यह जोड़ी मन की कामना को पूर्ण करने वाली व अपने जनों को जीवन दान देने वाली हैं। इनकी सहज स्वाभाविक शोभा का दर्शन करते ही काम-रस रंग की सरस वर्षा आरम्भ हो जाती है। इनके अंजन से अँजे हुए तीखे–नुकीले नेत्र और उनकी चंचल चितवन चित्त को चुरा रही है। अरी सखी ! ये दोनों एक–दूसरे के लिए परम प्राण प्यारे हैं, एक क्षण के लिए भी ये पृथक् नहीं होते हैं। ये लाड़-लड़ेंते किशोर और लाड़लड़ेंती किशोरी जी दोनों नित्य नवीन बने रहते हैं। इन दोनों का दर्शन कर कोटि-कोटि कामदेवों का दर्प चकनाचूर हो जाता है और इतनी ही रति रानियों की मति बौरा जाती है। ये परस्पर गलबाही दिए रस–सिक्त हो रहे हैं, इनकी इस समय की शोभा की कुछ वर्णन हो नहीं किया जा सकता है। श्रीहरिप्रिया सहचरी रसिक दम्पति श्रीप्रियाप्रियतम की बाँकी-झाँकी कर उन पर तृण तोड़कर न्योछावर करने लगती हैं ॥१७२॥

॥ दोहा ॥

तृन तोरति गावति गुननि, प्रभा निरखि जोऊज।
कहत प्रान के प्रान ए, रँगभीने दोऊज ॥
दोउ रसिक दोउ सरस सुख, दोउ रूप के धाम।
दोउ दोउन के अङ्ग अङ्ग, भीने हो रङ्ग स्याम ॥

॥ सोहिलौ ॥

रँगभीने हो अँग अंग स्याम, दोउ रसिक दोउ रूपधाम।
दोउ सरस दोउ सुख सहेलि, दोउ प्रेम-आनन्द-बेलि॥
दोउ दोउन के उरनि-हार, दोउ दोउन के चिमत्कार।
दोउ दोउन के लड़े लाड़, दोउ दोउन के चितें चाड़॥
दोउ दोउन के रति मनोज, दोउ दोउन के चित के चोज।
दोउ दोउन के जीवन जीय, दोउ दोउन के प्यारी पीय॥
दाउ दोउन के कमलनैन, दोउ दोउन के चैन ऐन।
दोउ दोउन की बनी बाल, दोउ दोउन के ललित लाल॥
दोउ दोउन के कवन अंग, दोउ दोउन के सहज संग।
दोउ श्रीहरिप्रिया एक प्रान, दोउ दोउन के सहज त्रान॥१७३॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ श्रीप्रियाप्रियतम की अनुपम आभा का अवलोकन कर तृण तोड़ती हुई उनका गुणगान करने लगती हैं। वे परस्पर कहती हैं, कि ये दोनों एक दूसरे के प्राण हैं और पारस्परिक प्रेम के रङ्ग में ही रँगे रहते हैं। दोनों रसिकन रूप के धाम हैं और सरस सुख में डूबे हुए हैं। दोनों के अङ्ग-प्रत्यंग परस्पर कामोद्दीपन करते हुए रस में सराबोर रहते हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी आगे कहती हैं।

॥ पद ॥

श्रीश्यामाश्याम दोनों रसिक और रूप के धाम हैं। इनके अङ्ग-अङ्ग प्रेम के रङ्ग में डूबे रहते हैं। दोनों रस युक्त व सुख के साथी हैं, दोनों प्रेम व आनन्द की बेल हैं। दोनों एक-दूसरे के लिए हृदय के हार हैं। तथा अपनी भाव भंगिमा से एक–दूसरे को चमत्कृत करते रहते हैं। दोनों एक–दूसरे के लिए लाड़-लड़ैते, परस्पर चित्त को चुराकर उमङ्गित करने वाले, दोनों ही परस्पर काम और रति हैं, दोनों ही दोनों केलि जीवन का दान करने वाले, एक दूसरे के लिए प्राण प्यारे हैं, दोनों एक दूसरे के लिए कमल नयन, चैन के ऐन (शान्ति के केन्द्र), दूलह-दुलहन, लाड़िलीलाल हैं। दोनों के अङ्ग एक–दूसरे के सुखोपभोग के लिए बने हुए हैं, सहज स्वाभाविक रूप से दोनों एक दूसरे की जीवन–साथी हैं। वस्तुतः दोनों 'एक–प्राण दो देह' हैं और स्वाभाविक रूप से एक–दूसरे के रक्षक भी हैं।।१७३॥

॥ दोहा ॥

प्रान त्रान दोउ दोउन के सखियन सुख अमितू ।
सबैं मिलि रस रँग रिली, हिली झिली निज हितू ॥
हितू अलिन के उरनि में, अति आनन्द प्रकास ।
नव किसोर सुखरासि जय, नवनित कुञ्जनिवास ॥

॥ पद ॥१७४॥

नित नव-कुंज-निवासी जय जय ।
नवल किसोरी गोरी श्रीराधे नवकिसोर सुखरासी जय जय ॥
नवल नागरी नागर दोऊ नवल-बिहार बिलासी जय जय ।
नवल हितू श्रीहरिप्रिया हिय में नव आनन्द प्रकासी जय जय ॥१७४

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम दोनों ही एक–दूसरे के प्राणों के रक्षक हैं, यह जानकर सभी सखियाँ अमित सुख से भर जाती हैं। वे सबकी सब श्रीहितूसहचरी जी के संग मिलकर रससिक्त हो उठती हैं। उनके हृदय आनन्दातिरेक से भर उठते हैं वे सुख की राशि नित्य–नवल–निकुंज निवासी श्रीनवल किशोर–किशोरी की जय–जयकार करने लगती हैं।

॥ पद ॥

नित्य नवल-निकुंज निवासी श्रीप्रियाप्रियतम की जय-जयकार हो ! गौराङ्गी नवल किशोरी श्रीराधा और सुख की राशि नवल किशोर श्रीकृष्ण सदा की ही जय हो। ये दोनों नागरी–नागर नित्य नवल रूप में विराजमान रहते हैं। इनका विहार भी नित्य नवल होने से ये नित्य-नवल–विहार–विलासी कहे जाते हैं—इनकी जय जयकार हो। नवेली श्रीहितू–हरिप्रियादि सहचरी-गण का हृदय भी इन नित्य नवल विलासी के आनन्द विलास से सदा प्रकाशमान होता रहता है—ऐसी युगल जोड़ी की सदा ही जय-जयकार हो ॥१७४॥

॥ दोहा ॥

जय जय कहि सहचरि सबैं, अबैं देहु सुख एह ।
बना बनी गति अंक पुनि, निरखैं नैनन नेह ॥
बना बनी की जोरि वर, बनी जु अद्भुत नीय।
हरिजु बनी श्रीभामिनी, भामिनि हरि जु बनीय ॥

॥ पद ॥१७५॥

हरि बने भामिनी भामिनी हरि बनी जोरि अद्भुत बनी बना बनी की।
बिसदबर धाम वृन्दाविपिन नित्य नव कुंज में केलि कमनीय नीकी॥
मुकुट रचि मौर सिर मोहनी के लसै मदनमोहन के सिरमौरी सोहै।
अङ्ग छबि जगमगै कौन घन चंचला कामरति की कला कोटि मोहै॥
हार हिय लाल कें बाल कें माल उर मौक्तिकी मंजु मनि पट सहाने।
अमल उद्योतकर आभरन हरन मन माधुरी मदन तन लहलहाने॥
पीय को सुरङ्ग उतरीय लै उमङ्ग सों रङ्गदेवी रुचिर गाँठ जोरी।
चपल चखि चितवनी तिरछिकरि अति लसी मंद मुसकें हँसी नवकिसोरी
गारि गावें सहेली सखी सहचरी सुन्दरी सुरमिली टोल टोलें।
नूत नवमञ्जरी चाखि नवरितु मनो कंठ कल कोकिला बोल बोलें॥

नवरङ्गी हो नवरङ्गी तुम न्याय दोउ नवरङ्गी॥
श्रीवृन्दावन की कुंजगलिन में गरबहियाँ दै डोलौ।
आपस में अनुरागे तत्ता थेई थेई बोलौ॥
जाने जात न गात साँवरे गोरे आँखिन आगे।
प्यारी तें पिय पिय प्यारी तें बदलत बार न लागे॥
जीते-से जगमगत जगत में कौन कहे तुम हारे।
हारे कहैं सोई हारे हैं कहि कहि कर्म तिहारे॥
अलकलड़ैतीजू अलबेली अलकलड़ौ अलबेलौ।
प्रिया प्रसन्नवदनी के पाछे मनभावै ज्यौं खेलौ॥

परम रमनीय दोऊ रसिक राजीव मुख सकल सुख सींव सौभाग्य सीवाँ।
भाग अनुराग चित चोंप रसरँगभरे सुरति रति ररे दिये भुजा ग्रीवाँ॥
साँवरी दुलहनी गौर दूलह निरखि हरखि हिय में हितू प्रान वारैं।
धन्य जिय में धरें सुमन बरषा करें मुद भरें शब्द जय जय उचारैं॥
सन्धु सब सुखन के मूल मंगल महा मान जित मैंन के श्री श्रिया की।
छबीलि छबि पावती सुरस बरषावती रहसि मनभावती श्रीहरिप्रिया की॥

॥ दोहा ॥

श्रीप्रियाप्रियतम विपरीत वेश धारण कर वृन्दाविपिन में क्रीड़ा कर रहे हैं। नव-दूलह-दुलहन इस विपरीत गति की शोभा को निरख कर सभी सहचरियाँ जय-जयकार करने लगती हैं। भामिनी श्रीप्रियाजी में प्रियतम श्रीकृष्ण का वेश धारण कर रखा है और प्रियतम श्रीकृष्ण ने भामिनी श्रीप्रियाजी का। श्रीयुगलवर की यह जोड़ी बड़ी ही अद्भुत लग रही है। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी आगे कहती हैं।

॥ पद ॥

अरी सखियो ! देखो तो, श्रीप्रियाप्रियतम युगलवर की जोड़ी विपरीत वेश धारण कर कैसी सुन्दर लग रही है। श्रीकृष्ण ने भामिनी श्रीप्रियाजी का वेश धारण कर रखा है और भामिनी श्रीप्रियाजी ने श्रीकृष्ण विपरीत वेश धारण कर वे विशाल एवं वृहत् श्रीवृन्दावन धाम की नित्य नवल निकुंज में कमनीय केलि की निकाई देखते ही बनती है। सुन्दर ढंग से बनाया गया मोरमुकुट मोहिनी श्रीप्रियाजी के मस्तक पर शोभायमान हो रहा है और चन्द्रिका श्रीलालजी के मस्तक पर उनकी गौर-श्यामल अङ्गछवि ऐसी जग-मगा रही है कि जिसके समक्ष कोटि-कोटि दान-दामिनी और काम-रति की कला भी फीकी पड़ रही है। श्रीलालजी ने अपने हृदय में हार धारण कर रखा है तो श्रीप्रियाजी ने मंजु मणि जटित मोतियों की माला अपने हृदय में धारण कर रखी है, वे सुन्दर शाही वस्त्र भी पहने हुए हैं। उनके अङ्ग-प्रत्यंगों पर धारण किए गए विविध प्रकार के आभूषण अपनी निर्मल आभा विकीर्ण करते हुए सम्पूर्ण शरीर में काम का संचार कर मन को प्रसन्नता प्रदान कर रहे हैं। श्रीरङ्गदेवी सहचरीजी प्रियतम श्यामसुन्दर का सुरङ्ग उत्तरीय लेकर बड़ी उमंग पूर्वक श्रीप्रियाजी के साथ गठ बन्धन कर देती हैं। श्रीरंगदेवी जी के ऐसा करते समय नवल किशोरी श्रीप्रियाजी अपने चपल-चंचल नेत्रों की बाँकी चितवन से दृष्टि डालती हुई मुँह छिपाकर हँसने लगती हैं। उनके साथ चलने वाली यूथ-की यूथ सखी सहेलियाँ हिलमिलकर सुरीलीतान से मधुर गालियों से भरे गीत गा रही हैं। उनकी सुरीटन आवाज सुनकर ऐसा प्रतीत होता है मानो नवल (वसन्त) ऋतु में कोकिल पंचमस्वर से सुन्दर बोली बोल रही हो।

सभी सखी सहचरियाँ मधुर गालियों से भरे गीत गाती हुई कह रही हैं—"हे श्रीप्रियाप्रियतम तुम दोनों नवल रंग से रंगे—पगे हो तभी तो श्रीवृन्दावन की कुञ्जगलियों में गलवाही डालकर डोलते रहते हो। परस्पर अनुराग प्रेम से भर कर 'तत्ता थेई' का

मुँह से उच्चारण करके नाचते हो। हे प्यारे श्यामसुन्दर ! तुम्हारे काले अङ्गों की लीला भला हमारी गोरी आँखें कैसे जान सकती हैं। तुम दोनों को परस्पर वेश बदलने में भी विलम्ब नहीं लगता। हे प्रियाप्रियतम ! वास्तविकता तो यह है कि चित्त भी तुम्हारी है और पट्ट भी तुम्हारी है। तुम दोनों जहाँ–तहाँ विजेता के समान ही जगमगाते दिखाई देते हो,हारा हुआ तो तुम्हें कोई कह ही नहीं सकता है जो तुम्हें हारा हुआ कहता है, वस्तुतः वही हारा हुआ है, हम तो तुम्हारे कर्मों का बखान करते करते ही हार गई हैं। हे श्रीप्रियाजी तुम अलक लड़ैती हो तो प्रियतम श्यामसुन्दर अलक लड़ैते अलबेले (बाँके) हैं। हे प्रियतम श्यामसुन्दर ! श्रीप्रियाजी तुम्हें देख-देखकर प्रसन्न मुख बनी रहती हैं, तभी तो तुम उनके पीछे लगे रहते हो और अपनी भावनानुसार उनके साथ क्रीड़ा करते रहते हो। हे श्रीप्रियाप्रियतम ! निसन्देह तुम परम रसिक–रमणीय कमल-नयन, सुख–सौभाग्य की सीमा भाग्य-अनुराग और चित्त की उमङ्ग से तुम दोनों सदैव परिपूर्ण रहते हो, सुरत-समर में गलबाहीं जोड़े सदा जूझते रहते हो ! श्रीहितु सहचरीजू तो साँवली दुलहन और गौरांगी दूलह की बाँकी छटा की अद्भुत झाँकी कर अपने प्राणों को भी न्योछावर कर देती हैं। अपने जी में विधाता को बार–बार धन्यवाद देती हुई सुन्दर पुष्पों की वर्षा करती हैं और प्रसन्न वदन होकर जय-जयकारी शब्दों का उच्चारण करती हैं।

ये श्रीप्रियाप्रियतम सर्व सुखों के सिन्धु और महामङ्गल के भी मूल हैं, काम के मान को जीतने वाले और श्री को भी शोभा प्रदान करने वाले हैं। उनकी बाँकी (छबीली) शोभा सरस वर्षण करती हुई श्रीहरिप्रियादि सभी सहचरियों के मन की भावना को पूरा कर रही है।।१७५।।

।। दोहा ।।

दिन दूलह दिन दुलहनी, दम्पति चित चाड़िले।
काम रूप रतिधाम, अङ्ग रङ्गभीने लाड़िले।।

।। सोहिलौ ।।

लाड़िले रँगभीने नवीने, दोउ गरबहियाँ दीने नवीने।
स्यामा स्याम बरन तन सो हैं गौर बरन तन स्याम नवीने।।
कामरूप रतिधाम रङ्गीले राजत अति अभिराम नवीने।
बडरे नैन मैंन मदमाते बंक-बिलोकनि नेह नवीने।।

हास बिलास हुलास भरे हियें बरसत अमृत मेह नवीने।
सदा सरबदा सब सुखदायक नायक नित्य किसोर नवीने ।।
परम रसिक सुकुँवार सिरोमनि सहजहि सुन्दर जोर नवीने।
दिन दूलह दिन दुलहिनि दम्पति श्रीवृन्दावन केलि नवीने ।।
श्रीहरिप्रिया बिलोकि बदन छबि उलहत आनँद-बेलि नवीने ।।१७६

।। दोहा ।।

श्रीरसिक दम्पति नित नव दूलह-दुलहन वेश में चित्त को सदैव उमङ्गित करते रहते हैं। ये लाड़िली लाल दोनों काम-रूप-रति धाम होने से परस्पर प्रेम के रङ्ग में ही रंगे रहते हैं।

।। पद ।।

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरी सखियो ! ये दोनों लाड़िलीलाल परस्पर गलवहियाँ दिए नित नवल प्रेम के रङ्ग में ही डूबे रहते हैं। श्रीश्यामसुन्दर अपने श्याम वर्ण रूप में और श्रीप्रियाजी अपने गौर वर्ण रूप में सदैव नवीनता को धारण किए रहते हैं। ये काम-रूप रति-धाम होने से अत्यन्त ही सुन्दर और शोभायमान लग रहे हैं। काम के मद में उन्मत्त रहने के कारण इनके विशाल नेत्र परस्पर प्रेमभरी बंकिम दृष्टि से एक दूसरे को निरखते ही रहते हैं। नित-नवल अमृत-मेघ की वर्षा से भीगते रहने के कारण उल्लसित हृदय हो ये मन्द-मन्द मुस्कराते रहते हैं। ये श्रेष्ठ नायक अपने नित्य नवल कैशोर रूप से सदा-सर्वदा सब प्रकार का सुख प्रदान करते रहते हैं। यह जुगल-जोड़ी अपने परम रसिक एवं सुकुमार-शिरोमणि सुन्दर रूप में नित्य प्रति नवल ही बनी रहती है। ये रसिक दम्पति नित-नव दूलह-दुलहन वेश में निज धाम श्रीवृन्दावन में नई-नई केलि-क्रीड़ा करते रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सहचरी इनके मुख की बाँकी छवि को निरख-निरखकर नित नई आनन्द वेलि से उमंगित होती रहती हैं।।१७६।।

।। दोहा ।।

नव नव आनँद नित करैं, प्रेम-प्रकास सदीव।
जय जय दूलह दुलहिनी, पौढ़ावौ दोउ पीव ।।

।। पद ।।१७७।।

दोउ लालन ब्याह लड़ावौ री, छबि निरखत नैन सिरावौ री।

दूलह दुलहिनि पौढ़ावो री, दुरि दुरि दृग देखि सिहावौ री ॥
रसरङ्ग में रैनि बिहावौ री, बहु मनबंछित फल पावौ री।
धनि धनि निज भाग मनावौ री, श्रीहरिप्रिया की बलि जावौ री ॥

॥ दोहा ॥

विवाहोपरान्त सहचरियाँ नवल दम्पति को नवल रंगमहल की नवल शैया पर शयन कराने के लिए परस्पर कह रही हैं कि प्रेम प्रकाश के पुंज ये नव दूलह-दुलहन नित्य नवल आनन्द मनाते रहें। इन्हें यत्न पूर्वक नवल सेज पर पौढ़ाओ और इनकी सदा जय जयकार बोलो। श्रीहरिप्रिया सहचरीजी आगे कहती हैं।

॥ पद ॥

अरी सखियो ! अब शीघ्र ही दोनों लाड़िली लाल का वैवाहिक मिलन कराकर अपने नेत्रों से निरख-निरख कर उन्हें शीतल कर लो। दोनों दूलह-दुलहन को विवाह शैया पर शयन कराओ और फिर छिप-छिप कर देखती हुई अपने नेत्रों की सराहना करो। आज की रात रस-रंग (प्रेम-सौभाग्य) की रात है। इसे रस लूटते ही व्यतीत कर दो और (भोर होते होते) अपनी मनोकामना को फलीभूत बना लो। अपने-अपने भाग्य को धन्यवाद देती हुई श्रीप्रियाप्रियतम की बलिहारी जाओ। इससे बड़ा जीवन का और कोई सुख नहीं हैं ॥१७७॥

॥ दोहा ॥

बलि जावैं सहचरि सबै, तन मन पदन लगाय।
पौढ़ाये रस रङ्ग में, मिली सरस सुखदाय।
पौढ़े रसिक सुलाड़िले, बना बनी मन भाय।
श्रीहरिप्रिया रसरूप ह्वै, तन मन रहे समाय ॥

॥ अनुरागिनि विलासावली मध्याभास ॥

(सुपठौनी)

॥ दोहा ॥

सुख स्वरूपिका आदि सब सजि सजि सौंज सलोनि।
रची जुगलबर की महा सुखदैनी सुपठोनि ॥

॥ पद ॥१७८॥

सुख स्वरूपिका सखी सलौनी, रची जुगलबर की सुपठौंनी।
सकल सोंज भरि भरि सहचारी, धरि धरि कंचन कोपर थारी॥
कोपरथारी कंचन की छबि भरी चहुँ ओरन धरी।
रतनकुण्डी जतन की मणि कलस पंकति बिस्तरी॥
चन्द्रकांतामय सुचौकी रचित चारु चुनीन की।
गङ्गसागर तुङ्ग बानिक बनी बर तसरीनि की॥
बस्त्र बिचित्र कपिस कौसेई, कनकतार पूरे छबि देई।
रचि रचि राखे बेस सुबेसा, बहुबिधि रँगे सुरङ्ग सुदेसा॥
सुरङ्ग सुदेश रँगे बहु बिधि भरे छबि-छावनि भरे।
बरन बरन बनाय चुनि चुनि उपरि छादनि औछरे॥
सुच्छ गुलिक अमोल लै लै ललित गहने-गुन-गुहे।
डबे भरि भरि धरे सुथरे कनक मनि नग के जुहे॥
मधुर मिठाई अन अन अलियाँ, सब दिसि राखी भरि भरि डलियाँ।
मेवा दाख बदाम छुहारी, पिस्ता नुहची गिरी रुचारी॥
गिरी रुचारी सुपारी श्रीफल चटक रङ्गन के लछे।
थैली में भरि धरे सुहरे पत्र मँहदी के अछे॥
भरी धरि इँगुरोटियाँ मथनोटियाँ कजरोटियाँ।
बनी ककही विद्रुमी मखतूलि मंजुल चोटियाँ॥
ये सब सौंज धरी चहुँ ओरा, कोरन्ना के भरे कमोरा।
केसरि मृगमद मलय कपूरा, पुरे सुगन्धनि धरे सपूरा॥
धरे सपूरा पुरे सुगन्धनि अतर सीसी अतिलसी।
भरी सुमन सनेह कुमकुम सुरँग रङ्गनि सों रसी।
आदि अन अन भाँति अद्भुत सकल सौंज दहेज की।
चहुँओरनि चौंप सों लै धरी सहचरि सेज की॥
सेज सुबरनी बरनि न जाई, पटी पाट पचरङ्ग बुनाई।

अछी बिछी नवरङ्ग निहाली, कसना सों कसि राखी आली ॥
राखी आली कसना सों कसि सची सौरि सुपेसली ।
गिलम सुहें गेंदुवनिकी बनी छबि अतिहीं भली ॥
बैठे स्यामा स्याम दोउ रहसि रङ्ग भरे हियें ।
अपनि अपनी सुखदनिधि कौ सुचित ह्वै सन्मुख लियें ॥
केलि-कला कौतिक-रस-भीनी, बहु बिलास बितरन में बीनी ।
बाजे बिबिध भाँति बजवाये, मनहर मङ्गल गीत गवाये ॥
गीत गवाये मनहर मङ्गल फूली फूलि सहेलियाँ ।
सूहे पट पहिराय अभरन रचे अङ्ग अलबेलियाँ ॥
तिलक दै अच्छित लगाये लै बलैया बदन की ।
सौंज सब समुख्याय सारति करि दई सुख सदन की ॥
रङ्गरङ्गीली सहचरि मुखिया, सब बातनि में ततपर सुखिया ।
उचित रीति जो जो सब कीनी, निज निज रुचि पहिरावनि दीनी ॥
दीनी पहिरावनि सबनि कों पुलक अङ्ग न मावहीं ।
प्रानवल्लभ ललन सों कछु बिहँसि बिनय सुनावहीं ॥
तुम हो परम प्रवीन सब गुन प्रियाजू गुन-भोरी है ।
निपट लाज सुभाव इनिकौ निबहुगे बलि तोरी हैं ॥
ए हैं जू जीवनि हम जीकी, ए हैं जू सम्पति सबहीं की ।
ए हैं जू आनन्द की दाता, इनहिं देखि जीवें दिन राता ॥
जीवें दिन राता इनहिं देखि नाहिं अवलम्बन बिये ।
बहुत कहाँ लौं बरनिये जू प्रान दे हम तुम लिये ॥
बिलसौ श्रीहरिप्रिया दोउ हमें अनुचरि जानिये ।
महामोहन महल की निज टहलनी करि मानिये ॥१७८॥

॥ दोहा ॥

श्रीरसिक दम्पति को सखियाँ रंग-महल की सरस शैयापर पौढ़ा कर परस्पर सरस भाव से मिलती हुई तन-मन-वदन से जुगल गोड़ी के सुख-विलास पर बलिहारी

जाती हैं। दोनों दूलह-दुलहन रसिक-रसीले अपने अपने मन की इच्छानुसार तन से तन और मन से मन मिलाकर एक रसरूप हो गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों वे एक दूसरे में समाविष्ट हो जाने की चेष्टा कर रहे हैं।

॥ सुपठौनी ॥

रंगमहल की नवल सेज पर नव दूलह-दुलहन को पौढ़ा कर सुख स्वरूपकादि सभी सहचरियाँ उनके लिए विवाह की पठौनी (सामग्री) जुटाने में तत्पर हो जाती हैं। वे शीघ्र ही श्रीप्रियाप्रियतम के सुख स्वरूपानुसार सुन्दर सामग्री सजा सजाकर विवाह मण्डप के नीचे रख रही है। श्रीजुगलवर श्यामाश्याम की महासुखदाई सुन्दर पठौनी को वे शीघ्र ही तैयार कर देती हैं। कंचन की सुन्दर थालियों और बड़े बड़े कोपरों में पठौनी सजा-सँवार कर रख दी गई है। उनकी जगमगाहट चारों दिशाओं में छा गई है। एक ओर गोलाकार में मणि-रत्न आदि से जड़ी हुई स्वर्ण कलशों की पंक्ति शोभायमान हो रही है। उनके बीच में सुन्दर छोटे नगों के बीच चन्द्रकान्त मणि से जड़ी हुई स्वर्ण चौकी शोभायमान हो रही हैं। वैसी ही पंक्ति ऊँचे आकार के गङ्गासागरों की बनाई गई है। नाना प्रकार के मटमैले (कपिश), कोसा के रंग के सोने के तारों से जड़े हुए चित्र-विचित्र प्रकार के वस्त्रों की वेशभूषा बनाई गई है, जो अनेक प्रकार के रङ्गों से रँगे हुए हैं। देश-कालानुसार (ऋतु-अनुसार)रंग-विरंगे विविध प्रकार के सुन्दर सुन्दर वस्त्रोंकी पोशाकों से पेटियाँ भरी हुई शोभायमान लग रही हैं। उन्हें नाना प्रकार से सजा सजा कर रखा गया है, जिन पर सुन्दर झीने रेशमी वस्त्रों के आवरण पड़े हुए हैं। नाना प्रकार की मणियों और रत्नों से जटित सुन्दर स्वर्णाभूषणों के बड़े-बड़े डिब्ब भर कर रखे गए हैं।

अनेक प्रकार की सुन्दर-सुगन्धित मिठाई की बड़ी-बड़ी डलियाँ चारों ओर भर कर रखी गई हैं। उन्हीं के पास द्राक्षा, बादाम, छुहारा, पिस्ता, नुहजी, गिरी, सुपाड़ी, श्रीफल आदि नाना प्रकार के मेवा और फलादि सुन्दर थैलियों में भर कर रखे गए हैं जिनके चारों ओर मेहँदी के पत्र लगाये गये हैं। ईंगुर, काजल आदि से भरी हुई अनेक प्रकारकी ईंगरोटियाँ, कजरोटियाँ और मथनोटियाँ रखी हुई हैं। उनकी ढिबरियाँ मूँगों की बनी हुई थीं और उनकी चोटियाँ सुन्दर मखमल बनाई गई थीं। यह सारी सामग्री चारों ओर रखी हुई थी और एक ओर कोरे (साबुत) अन्न से भरे हुए मिट्टी के कमोरे (बड़े बड़े चौड़े मुँहवाले घड़े) रखे हुए थे। साराचौक केशर, कस्तूरी, चंदन, कपूर आदि

सुगन्धित द्रव्यों से पूरा गया था। सुगन्धित इत्र का भी छिड़काव किया गया था और इत्र की शीशियाँ भर कर रखी गई थीं दहेज की सारी सामग्री प्रेम-रङ्ग से भरे सुन्दर मन से सजा-सजा कर रखी गई थी। वह सारी सामग्री विवाह शैया की चारों ओर सहचरियाँ ने सजा-सँवार कर रखी थी।

विवाह-शैया का तो कुछ वर्णन ही नहीं किया जा सकता है। वह वर्ण-वर्ण के पचरंगी रेशमी धागों से बुनकर बनाई गई है। उस पर सुन्दर नवरंगी रजाई (निहाली) बिछी हुई थी जिसे सखियों ने चारों ओर से पलँग पर कस कर बाँध दिया था। पलंग के सरहाने की ओर सुन्दर गोल तकिए रखे हुए थे जिन पर चढ़ी हुई सुन्दर कालीन बड़ी ही शोभायमान लग रही थी। उनसे टिक कर श्रीश्यामाश्याम दोनों प्रेम-रस रङ्ग से भरे हुए हृदय से बैठे हुए हैं। वे अपनी-अपनी सुख-निधि को बड़े ही शान्त चित्त से अपने-अपने समक्ष किए हुए हैं। अर्थात् दोनों आमने-सामने की ओर मुख करके एक दूसरे को बार-बार निरख रहे हैं।

सभी सहचरियाँ नव दम्पति के केलि-कल कौतुक रस में डूबी हुईं उसी का परस्पर आदान प्रदान कर रही हैं। वे नाना प्रकार के बाजे बजवा रही हैं, सुन्दर-सुन्दर मङ्गल गीत गा-गवा रही हैं, हृदय में प्रफुल्लित होकर सखियाँ श्रीप्रियाप्रियतम को निर्मल रेशमी वस्त्र धारण कराकर उनके अङ्ग-प्रत्यंग को सुन्दर आभूषणों से सजा देती हैं। फिर उनके मस्तक पर तिलक लगाकर उस पर अक्षत् लगाती हैं, और उनके सुन्दर मुखारविन्द का दर्शन करती हुई उनकी बलैया लेने लगती हैं। वे पठौनी की सारी सामग्री को सुख स्वरूप श्रीप्रियाप्रियतम के ऊपर न्योछावर कर देती हैं।

सभी सहचरियों में जो विशेष प्रेमरंग से रंगी हुई मुखियाँ सहचरी थी, जो वैवाहिक कार्यों में बड़ी दक्ष व तत्पर थी, उसने उचित रीति से सभी आवश्यक कार्य सम्पन्न किए। तत्पश्चात् सभी सखियों ने भी अपनी अपनी रुचि अनुसार श्रीप्रियाप्रियतम को वस्त्राभूषण भेंट किए। इस प्रकार भेंट देकर वे सब की सब पुलकित हो उठीं, वह पुलक उनके अङ्ग में नहीं समा रही थी। फिर वे सबकी सब मुस्कराती हुई प्राण प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर से प्रेमामृत से सने मधुर वचन कहने लगीं 'हे प्यारे! तुम तो सब बातों में परम प्रवीण (चतुर) हो और सर्व गुणों से भी भरे हुए हो, किन्तु हमारी प्यारी जू गुणभरी होने पर भी बड़ी ही भोलीभाली हैं। हे लालजी! हम अपनी बलिहारी जाती हैं, आपको इनके सुन्दर सुकुमार स्वभाव को निभाना ही पड़ेगा।

हे लाल जी ! ये श्रीप्रियाजी हमारे प्राणों को जीवन दान देने वाली हैं। हम सभी की सारी सम्पदा एकमात्र यही हैं। हमें इन्हीं की कृपाकोर से आनन्द प्राप्त होता है। हम सब इन्हीं को देख–देखकर दिनरात जीवित रहती हैं। हमारे जीवित रहने का अन्य कोई आधार नहीं है। हे प्यारे ! हम आपसे बहुत बनाकर क्या कहें, आप बस यह समझ लीजिए कि हमने अपने प्राणों को देकर आपको लिया है ! अर्थात् ये श्रीप्रियाजी हमारी प्राण स्वरूपा हैं, इन्हें सौंपकर ही हमने आपको लिया है। हे श्रीप्रियाजी ! हे श्रीलालजी ! हम सबकी तो एक मात्र यही हार्दिक इच्छा है कि आप दोनों दिन–दिन लीला विलास करते रहें और हम सभी को महामोहन महल की टहलनी परिचारिका मानकर के सदा सर्वदा अपनी चरण शरण में ही रखे रहिए ! ॥१७८॥

॥ दोहा ॥

भाँति भाँति अति रति लियें हितू जिमावत हेत।
भोग भाँवते लाल कौ देखें ही सुख देत॥

॥ पद ॥१७९॥

भोग भाँवते लाल दुहुनि कौ देखेहीं बनि आवै री।
भाँति भाँति के अति रति रुचि सौं हित करि हितू जिमावैं री॥
मनसिज-महल सुभग सुख-आसन रसिक सिरोमनि राजैं री।
चौकी चोंप थार धरि ता पर प्यार महा छबि छाजैं री॥
कुटिल कटाछनि कोंर कटोरनि षटरस बिंजन सोहैं री।
फूलका फूल सूप ससकरिका भाव-भात घृत गोहै री॥
परसनि करसनि मरसनि सरसनि बरसनि चारि प्रकारैं री।
भक्ष्य भोज्य आदिक अति स्वादिक मादिकरस विस्तारैं री॥
कहिये कहा कहाँ लगि कहिये सामगिरी की सामा री।
जो जो चहत लहत सो सोई रची रसोई रामा री॥
बिचि बिचि अँचवत अधर सुधारस अलबेले अनुरागे री।
हास बिलास बिनोदनि बितरत किंकिनि कौतुक लागे री॥
जेंवन होइतौ जेंइ चुके इनकें तो निसि दिन ऐसेंइ री।
भूख प्यास के मनहु मुकुटमनि तृपति होत नहिं कैसेंइ री।

लसौ बसौ नैननि में यह सुख संपति सहज सुभावै री।
श्रीहरिप्रिया प्रानधन-जीवनि बिना कृपा को पावै री ॥१७९॥

॥ दोहा ॥

श्रीहितू सहचरी जी विविध प्रकार के प्रेम भाव से भरकर श्रीप्रिया प्रियतम को भोजन करा रही हैं। भोग लगाते हुए श्रीलाड़िलीलाल का सुख तो देखते ही बनता है। श्रीहरिप्रिया सहचरी जी आगे कहती हैं।

॥ पद ॥

अरी सखियो ! श्रीप्रियाप्रियतम को किंचित् भोग आरोगते हुए तो देखो ! इनका भोग तो देखते ही बनता है। श्रीहितु सहचरी जी बड़े ही प्रेम-भाव से हित पूर्वक उन्हें जिमा रही हैं। दोनों रसिक शिरोमणि रंग-महल की शुभग-सुखासन पर शोभायमान हो रहे हैं। नाना प्रकार के व्यंजनों से भरा हुआ थाल उमंग पूर्वक श्रीहितु सहचरी ने चौकी पर रख दिया है, जो प्रेम से भरा होने के कारण परम छविया लग रहा है। थाल के स्वर्ण कटोरों में षड् रस व्यंजन भरे हुए हैं। श्रीप्रियाप्रियतम परस्पर कुटिल कटाक्ष करते हुए ग्रास ग्रहण कर रहे हैं। घृत में डूबी हुई रोटी दाल में डुबा कर आरोग रहे हैं। सखियाँ चारों प्रकार से परोसगारी कर रही हैं। अर्थात् वे हँसकर, मुस्कराकर, आकृष्ट कर, भोज्य सामग्री की प्रशंसा कर बड़े सरस भाव से श्रीप्रियाप्रियतम को भोजन करा रही हैं। वे भक्ष्य, भोज्य, लेह, चोष्य आदि मद भरे सरस व्यंजनों को विस्तार पूर्वक परोस रही हैं।

अरी सखी ! श्रीप्रियाप्रियतम के इस भोग राग की शालीनता एवं सौंदर्य का कहाँ तक वर्णन किया जा सकता है। रसोई इतनी सुन्दर और विस्तृत रूप से तैयार की गई है, कि श्रीप्रियाप्रियतम जो इच्छा करते हैं, वही-वही प्राप्त कर लेते हैं भोजन करते हुए वे बीच-बीच में परस्पर अधरासव का पान करते हैं। परस्पर हास–विलास करते हुए वे प्रेम-रस की अनेक क्रीड़ाएँ भी करते जाते हैं। जो कुछ उन्हें आरोगना था वह सब कुछ आरोग चुके हैं। अरी सखी ! इनका आरोगना क्या है, ये तो नित्य प्रति इसी प्रकार से रस भोग करते रहते हैं। भूख-प्यास के तो ये मानो मुकुटमणि ही हैं, अर्थात् नित्य प्रति रस-भोग करते रहने पर भी ये कभी तृप्त नहीं होते हैं। अरी सखी ! हमारी तो एकमात्र यही हार्दिक इच्छा है कि श्रीप्रियाप्रियतम की यह सुख–सम्पत्ति इसी सहज स्वाभाविक रूप में हमारे नेत्रों में ही शोभायमान होती रहे। किन्तु (श्रीप्रियाप्रियतम

का) यह रस–यश बिना प्राणधन जीवन श्रीलाड़िलीलाल की कोर कृपा के बिना भला कौन प्राप्त कर सकता है ? ।।१७६।।

विशेष—उपर्युक्त पद सं० १७६ में श्रीप्रियाप्रियतम के भोगराग के माध्यम से सुरत–केलि का विशेष रूपक बाँधा गया है, किन्तु नितान्त गोपनीय होने से व्याख्या में उसकी अभिव्यक्ति परोक्षरूप में ही की गई है।—टीकाकर।

।। दोहा ।।

कनकलता तापिच्छ सों, लहलह रहौ सुहेज।
सरस सुन्दरी सोहनी, पौढ़िय जू सुख-सेज ।।

।। पद ।। १८० ।।

पौढ़िये सुख-सेज स्यामा सरस सुन्दरि सोहनी जू।
महा आनन्द रूप की निधि रची मनमथ मोहनी जू ।।
चिमतकारिनि लाड़ प्रेमा भरी रतिरस भामिनी जू।
श्रीहरिप्रिया तापिच्छ लहलह कनकलतिका कामिनी जू ।।१८०।।

।। दोहा ।।

सुरस सुन्दरी श्रीश्यामा जू सुख शैया पर पौंढ़ी हुई हैं। वे श्याम सुन्दर के साथ आवेष्टित होकर ऐसी लगती हैं मानो कोई स्वर्णलता-श्याम-तमाल से लिपट कर लह-लहा रही हो।

।। पद ।।

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं—अरी सखियो ! देखो तो, सरस सुन्दरी सोहनी श्रीश्यामाजी सुख-सेज पर पौंढ़ी हुईं कैसी शोभायमान लग रही हैं। ये मानों महा-आनंद रूप की साक्षात् निधि हैं जिन्हें काम को मोहित करने के लिए बनाया गया है। ये भामिनीजू चमत्कारी प्रभाव से युक्त, लाड़-प्रेम से ओतप्रोत, रति-रस की बातों परम प्रवीण हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर से आवेष्टित होकर तो ये ऐसी लगती हैं मानों कोई स्वर्णलता श्याम-तमाल से लिपट कर प्रसन्नता से लहलहा रही हो ।।१८०।।

॥ अनुरागिनि केलिकौमुदी मध्याभास ॥

(दिवारी)

॥ दोहा ॥

आजु दिवारी की निसा, नीकी जगमग जोति ।
कोटि कोटि राकानि की, देखि मंद दुति होति ॥

॥ पद ॥ १८१ ॥

आजु दिवारी की निसि नीकी ।
कोटि कोटि राका रजनी की देखि भई दुति फीकी ॥
ठाँ ठाँ दिपति दीप-मालावलि रंजन मंजुमनी की ।
जगर जगर रहि बगर बगर में ओप अनोपमई की ॥
रतनसिंघासन बैठे दम्पति सजि सम्पति सबही की ।
चिपी जाति चंचलता चितकी निरखत काम रती की ॥
आसपास ठाढ़ी छबि बाढ़ी सहचरि प्यारी पीकी ।
मन भावत जु जुवा जुरावत लै लै दिस पिय तीकी ॥
बाजी बदत जु राजी ह्वै ह्वै अप अपनी रुचि हीकी ।
मुकरि जात जब दाव न आवत सौंह दिवावत जीकी ॥
मन अनुसारनि हितू सहेली ह्वै दिस अलबेली की ।
हार डारि दीनों पिय गर में जानि बिबसता धीकी ॥
बहु मेवा पकवान मिठाई सजी सोंज हटरी की ।
करि व्यौपार केलि बिसतारत काम कला कमनी की ॥
अङ्गसङ्गनि नवब्रासा आदिक सहचरि रङ्गदेवी की ।
श्रीहरिप्रिया सकल मनबंछित पुरइ आस सबही की ॥१८१॥

दिवारी ॥ दोहा ॥

दीपावली की रात्रि ज्योति से जगमगाती हुई बड़ी सुन्दर लग रही है । इस ज्योति का दर्शन कर कोटि कोटि पूर्ण ज्योत्स्नाओं की गति भी मन्द पड़ जाती है ।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरी सखी !(जगमग–जगमग करती हुई) दीपावली की यह रात कितनी सुन्दर लग रही है। इस दिव्य ज्योति का दर्शन कर कोटि-कोटि पूर्णिमा की रात्रियों की आभा भी फीकी पड़ रही है। जगह-जगह चमकती हुई सुन्दर मणियों की दीपमालाएँ बड़ा ही आनन्द प्रदान कर रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई अनूठी एवं अनुपम आभा ही जहाँ–तहाँ बिखर कर जगमगा रही हो। ऐसे दीपावली के अवसर पर श्रीरसिक दम्पति सर्व प्रकार की सामग्री से सजधत कर रत्न सिंहासन पर विराजमान हैं। इन्हें निरख कर साक्षात् काम और रति के चित्त की चपलता भी दबी जा रही है। श्रीप्रियाप्रियतम के आसपास खड़ी हुईं सखी सहचरियाँ भी बड़ी सुन्दर दिखाई दे रही हैं। वे अपनी इच्छानुसार श्रीप्रियाप्रियतम को पकड़–पकड़ कर (यौवन की परख हेतु या सुरत समर के हेतु) परस्पर जोहती (मिलाती) हैं। दोनों श्रीप्रियाप्रियतम अपनी अपनी रुचि–अनुसार विजय प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से सुरत समर में कूद पड़ते हैं। सुरत समर में जूझते हुए जब दोनों में से एक का भी दाँव नहीं लगता तब एक–दूसरे को अपनी–अपनी सौगन्ध दिलाकर आना–कानी करने लगते हैं। श्रीप्रियाजी को अन्यमनस्कता में देखकर और उनके मनकी बात को ताड़कर श्रीहितु सहचरीजू अलबेली श्रीप्रियाजी का पक्ष ग्रहण कर लेती हैं और सुकुमार अङ्गो वाली श्रीप्रियाजी की विवशता को लक्ष्य कर प्रियतम श्यामसुन्दर के गले में हार डाल कर मानो सुरतसमर रोक देती हैं। तत्पश्चात् सभी सखियाँ विविध प्रकार के मेवा, पकवान, मिठाई आदि की सामग्री सजा–सजा कर उनके समक्ष रख देती हैं। इस प्रकार उत्साह-वर्धक सुन्दर सामग्री सजाकर मानो वे श्रीप्रियाप्रियतम के हेतु कामकला की विविध केलि का विस्तार कर देती हैं। इस प्रकार श्रीनव्यवासादि श्रीरंगदेवीजू की अङ्ग संगिनी सखी-सहचरियाँ श्रीहरिप्रियादि सभी की मनोकामना पूरी हो जाती है ॥१८१॥

॥ दोहा ॥

जैसिय नगमनि जोति तन, जगमगात सुखराज।
तैसिय निसि दीपावली, विलसत दंपति आज॥

॥ पद ॥१८२॥

विलसत आज दिवारी दंपति।
तैसिय नगमनि जोति जगत तन तैसेइ सुमन बेलि तरु संपति॥

जैसिय कृष्ण निसा नीलाम्बर उडगन से मुक्ता-लर कम्पति।
मंगलचार उचार कमलमुख मधुर मधुर बानी बर जंपति॥
हावभावजुत करत कटाक्षैं मानहु मन्द दीप सिख लम्पति।
श्रीहरिप्रिया निरखि छबि रीझि मंदमुसकि किधों दामिनि चंपति॥१८२

॥ दोहा ॥

जिस प्रकार शरीर पर धारण किए रत्न-मणि जटित आभूषणों की ज्योति जगमगाती हुई सुख प्रदान करती है, उसी प्रकार आज दीपावली की रात्रि में रसिक दम्पति विलास विलस रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी कहती हैं—अरी सखियो ! देखो तो आखा दीपावली की रात्रि में नवदम्पति कैसे विलास कर रहे हैं। जिस प्रकार रत्नजटित मणियों की ज्योति शरीर पर जगमगाती है, स्वर्णलता श्यामतमाल लिपटकर जगमगाती है, उसी प्रकार श्रीप्रियाजी, प्रियतम श्यामसुन्दर साथ मिलकर शोभा विकीर्ण कर रही हैं। अथवा ऐसा प्रतीत होता है मानो काली अँधेरी रात्रि में नील गगन में तारागण मोतियों की लड़ी के समान प्रकम्पित (हिलते-डुलते) दिखाई दे रहे हैं, इसी प्रकार श्रीप्रियाप्रियतम परस्पर केलि करते हुए शोभायमान हो रहे हैं। वे दोनों बीच-बीच में अपने कमल सदृश मुख से अत्यन्त आनन्दकारी मधुर शब्दों का उच्चारण करते हुए अपनी सुन्दर वाणी से मानो कोई जाप कर रहे हों। जब वे परस्पर हाव-भाव से युक्त कटाक्ष करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो टिमटिमाते हुए दीपक की शिखा लप-लप कर रही हो। अथवा ऐसा प्रतीत होता है मानों मन्द घन में दबीहुई दामिनी बार-बार चमक रही हो। श्रीहरिप्रियादि सहचरियाँ प्रियाप्रियतम की इस बाँकी छवि को देखकर रीझ उठती हैं॥१८२॥

॥ दोहा ॥

पहिरें चीर सु जरकसी, जैसिय तन दुति बाल।
तैसिय दीपति है महा, दिबि दीपन की माल॥

॥ पद ॥१८३॥

आजु दीपति दिबि दीपमालिका।
पहिरें चीर जरकसी तन दुति कंचन-सी मिलि नवल बालिका॥

तैसिय जोति जगी दीपनिकी जैसिय जुगल किसोर जालिका।
श्रीहरिप्रिया निरखि छबि हरषति नगमुक्तनि की माल आलिका॥

॥ दोहा ॥

जैसी श्रीकिशोरीजी की तन की मति है वैसे ही सुनहरी जरी से जड़े वस्त्र उन्होंने धारण कर रखे हैं और वैसी ही आज दीपों की माला देदीप्यमान हो रही है।

॥ पद ॥

श्रीहरिप्रिया सहचरी जी कहती हैं अरी सखी ! देख तो सही, आज के दिन दीप मालिका कैसी देदीप्यमान हो रही है। आखा नवल किशोरी श्रीप्रियाजी ने स्वर्ण सदृश तन-द्युति पर सुनहरी जरी से जड़े वस्त्र धारण कर रखे हैं। जिस प्रकार यह श्रीजुगल किशोर-किशोरी की जोड़ी जगमगा रही है, उसी प्रकार दीपों की ज्योति जगमग—जगमग कर रही है। श्रीहरिप्रियादि सहचरी-गण रत्न जटित मोतियों की माला के समान जग-मगाती श्रीप्रियाप्रियतम की छवि को निरख कर प्रमुदित हो रहा हैं ॥१८३॥

॥ दोहा ॥

इहिविधि यह उत्साह सुख, अति रसभर्यौ अनन्त।
प्रथम बसन्तहिं आदि दै, दीपदान परजंत॥
समय समय नैमित्ति कृति, महल वृत्ति रति भाय।
भक्ति परा जो पावहीं, ध्यावहिं मन वच काय॥

॥ कुण्डलिया ॥

इष्ट भजन रसरीति मन मिलै जाहिं मिलि देहु।
नातर परिहैं ठीक यह निश्चै उर धरि लेहु॥
निश्चै उर धरि लेहु एहु सर्वोपरि होई।
यातें पर जे कहें महा प्रतिवायी सोई॥
श्रीहरिप्रिया को रहसि रस मधुर मिष्टतें मिष्ट।
परमहंस आचार्य को अद्भुत हृदगत इष्ट॥

॥ दोहा ॥

अब फल स्तुति करते हुए महावाणीकार श्रीहरिप्रिया सहचरी रूप श्रीहरिव्यास

देवाचार्य जी कहते हैं कि इस प्रकार अनन्त उज्ज्वल रस से भरा हुआ श्रीप्रियाप्रियतम का यह उत्साह सुख सम्पन्न होता है। ऋतु अनुसार वसन्तोत्सव से आरम्भ कर दीपदान पर्यन्त इसका वर्णन किया गया है। बीच-बीच में समयानुसार श्रीप्रियाप्रियतम के रङ्ग महल की सरस-रस-रीति का भी सेवा भावानुसार उल्लेख किया गया है। जो इस उत्साह सुख का मन-वचन व कर्म से ध्यान करता है, उसी को श्रीप्रियाप्रियतम की परमाभक्ति प्राप्त होती है।

॥ कुण्डलिया ॥

अन्त में श्रीप्रियाप्रियतम के उत्साह-सुख के प्रेमी रसिक जनों को सावधान करते हुए श्रीहरिव्यास देवजी कहते हैं कि जब जहाँ अपने इष्ट के भजन और रसरीति का दर्शन हो तथा जहाँ जिससे अपना मन मिल जाय वहाँ उसी के समक्ष इस उत्साह सुख का वर्णन करना चाहिए यदि ऐसा नहीं किया तो साधना-पथ से गिरते देर नहीं लगेगी। इस बात को निश्चय पूर्वक अपने हृदय में धारण कर लेना चाहिए। श्रीप्रियाप्रियतम का यह रस-जस सर्वोपरि है, इससे परे और कुछ भी नहीं है। यदि कोई इससे बड़ा किसी अन्य (रस) को बताता है, तो उससे बड़ा कोई प्रतिवादी (विरोधी) नहीं है।

श्रीप्रियाप्रियतम का यह रस-रहस्य महा मधुर और मीठा से भी मीठा है। यह रस परमहंस वंशाचार्यों के हृदय में अद्भुत इष्ट के रूप में सदैव समाविष्ट रहता है।१८४

॥ दोहा ॥

इक श्लोक दोहा जु द्वै, पद सत उपर त्रयासि।
जुताभास पुनिद्वै दोहा, इक कुण्डलिया तासि॥
सब सत ऊपर नौ असी, सुख उत्साह प्रमान।
प्रति-प्रति उत्सव पदनकौ, इहिं विधि समुझि सुजान॥

॥ कवित्त ॥

चौदह बसन्त चौंतीस होरी तीन डोल चार फूलमण्डनी कही।
चंदनसिगार चार चारहीं विहार-जल रथहू के चार त्रयोदस बरिसा मही॥
एकतीज पाँच हैं हिंडोरे सात लूहरि पवित्राके सात राखीचार इक तीजही।
षट अरु तीन लाललाड़िलीबधाई रसदान एकसाँझीदोइजानियेयही सही॥
विजैदसमीके चार पंचदस रासके हैं ब्याहके सेंतीस सुपठौनीतीनजानिये।

तीनिही दिवारीके विसद हद याहीलौंहै सब एकसौ त्रयासी बखानिये ॥
महा निज रहसि प्रकासी हैं महलकेलि रसिक अनन्यनिकें हेत उनमानिये।
चाहत हौ जो पै पद परम प्रवेसकियौ तौ तौ यह मन वच प्रीतिकें प्रमानिये॥

इति श्रीपदविलास निकुञ्जरहस्य श्रीमहादिव्य महाराजेश्वरप्रवर परमहंस वंशाचार्य्य
॥ श्रीमद्धरिव्यासदेवजू कृत महावाणी उत्साहसुख सम्पूर्णम् ॥

॥ दोहा ॥

अन्त में उत्साह सुख में आए हुए द्वंदों की संख्या और वार्षिक उत्सवों से परिचय कराते हुए महावाणीकार कहते हैं—'उत्साह सुख' के आरम्भ में एक श्लोक, दो दोहे और तत्पश्चात् एकसौ तेरासी पद हैं। अन्त में आभासयुक्त दो दोहा और एक कुण्डलिया का वर्णन किया गया है। इस प्रकार एक सौ नवासी छन्द उत्साह सुख में वर्णित हैं। इसका प्रत्येक पद श्रीप्रियाप्रियतम के सेवा उत्सव से भरा हुआ है—यह बात चतुर साधक जनों को भलीभाँति समझ लेना चाहिए। सभी पदों में उत्सवों का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है।

चौदह पद वसंतोत्सव के हैं, चौंतीस पदों में होली-महोत्सव का वर्णन है, तीन पद डोलोत्सव और चार पद फूलमण्डली के हैं : चन्दनोत्सव (चन्दन भृङ्गार) के चार पद, जल विहारोत्सव के भी चार और चार ही पद रथयात्रा के वर्णित हैं तेरह पदों में वर्षाऋतु का वर्णन किया गया है। एक पद हरियाली तीज का, पाँच पद हिंडोले (झूलनोत्सव) के सात पद लुहरी के, सात पद पवित्रा के, चार पद रक्षा बंधन के और एक पद दूसरी तीज का वर्णित है। नौ पद श्रीलाड़िलीलाल की बधाई के, एक पद रस दान का और दो पदों में सांझीलीला का वर्णन किया गया है। चार पद विजय दशमी के, पन्द्रह पद रासलीला के, सैंतीस पद विवाहोत्सव के और तीन पद पठौनी के वर्णित हैं। तीन पदों में ही दीपावली उत्सव का वर्णन किया गया है। सब पदों की विशेषता श्रीप्रियाप्रियतम के दीपावली उत्सव में ही समाविष्ट हो गई है। इस प्रकार कुल पदों की संख्या एकसौ तैरासी है।

इस उत्साह–सुख में श्रीप्रियाप्रियतम के निजमहल की उज्ज्वल रस केलि का वर्णन केवल अनन्य रसिक जनों के निमित्त ही किया गया है। यदि कोई इसमें अपना पैर रखकर प्रवेश करना चाहता है, तो उसे मन-वचन और कर्म से प्रीति-प्रतीति पूर्वक इसकी साधना अर्थात् रसिक जनों का संग करना चाहिए ॥१८५॥

सुरत सुख

॥ भूमिका ॥

"सुरत सुख" किसे कहते हैं ?—प्रथम "सुरत" को लीजिये। "वात्सायन काम सूत्र" (सम्प्रयोग अधिकरण सूत्र ६४) सम्प्रयोग, रतम्, रहस्यरायनम्, मोहनम्, सुरत-पर्यायाः। सुखः––उल्लासात्मको ज्ञान विशेषः सुखः। मुत–प्रमद–हर्ष आनन्दादि पर्य्यायः सुख मुच्यते (संदर्भ पृः ७१८) अर्थात् रसिक दम्पति के सम्भोग संयोग जनित उल्लास–आत्मिक ज्ञान विशेष को "सुरत सुख" कहते हैं। श्रीमहावाणीकार सुरत सुख की समाप्ति में स्वयं कहते हैं:—

"नेम प्रेम तें परे जो अति दुर्लभ अधिकार।
रीझि देत जिहिं युगल जू सुमरित सुरत विहार" ॥१॥

दोहा––"श्रीश्यामा श्रीश्याम को यह सुख सुरत विहार।
वसहु सदाहिय सदन में सकल सार को सार ॥२॥

कुण्डलिया––महा मृदल महा मधुर मधु महा रहसि रस रासि।
महा सुखद सर्वेश को महा मनोभव भासि ॥"

प्रायः सभी वैष्णव सम्प्रदाय धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की अपेक्षा पञ्चम पुरुषार्थ "प्रेम"को ही सबसे ऊँचा साध्य वर्णन करते हैं। श्रीमहावाणीकार "नेम" अर्थात् साधन भक्ति "प्रेम" अर्थात् प्रेम लक्षणाभक्ति से भी किसी उच्चतम प्रेम की ही कोई अवस्था विशेष को उच्चतम साध्य कहते हैं। वह कई स्थानों पर वर्णन करते हैं यथा "रहिगयो मारग उरे नेम और प्रेम को पर चल्यो परा को परम पर पन्थ"। "नेम प्रेम तें परे पन्थ जहाँ तुरत पहुचिये अलि अक्लेश" इत्यादि। इसी प्रकार यहाँ भी कहते हैं "नेम प्रेम ते परें अति दुर्लभ अधिकार।" नेम प्रेम ते परे क्या है ? उसको दूसरे पद तथा दोहे में कहते हैं––"श्रीश्यामा श्रीश्याम को यह सुख सुरत विहार। वसहु सदा हिये सदन में सकल सार को सार।" सुरत सुख विहार को सकल सार का सार बतलाते हुए कहते हैं:—"महा मृदुल महा मधुर मधु महा रहसि रस रासि। महा सुखद सर्वेश को महा मनुभव भासि ॥" अर्थात् दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रसों में प्राय से भी

रसिक सबसे अधिक मधुर रस का उत्कर्ष वर्णन करते हैं। ग्रन्थकार मधुर रस की भी चरम अवस्था महा, मृदुल महा मधुर इत्यादि विशेषणों द्वारा जनाते हैं। श्रीरसिक दम्पति को महासुख प्रदान करने वाला रस "महामनोभवभास" अर्थात् युगल की काम केलि हैं। इसी को "सुरत सुख" कहते हैं। यह सुरत सुख प्रेम की ही उच्चतम अवस्था हैं। सुरत सुख को ही सम्भोग कामकेलि, मैथुन, संयोग, संप्रयोग, रतिवन्ध तथा काम क्रीड़ा आदि नामों से कहा जाता है। यदि कोई कहे "काम एष क्रोध एष रजोगुण समद्भवो" इत्यादि "श्रीभगवद्गीता" में काम को रजो गुण से उत्पन्न कहा गया है। सो श्रीगीता में संसारिक प्राकृतिक "काम" को रजोगुण से समुद्भव कहा गया है यहां तो साक्षात् मन्मथ मन्मथः महामनोभवभास का वर्णन है जो कि रजो गुण तो क्या बल्कि "तूर्य" अवस्था से भी परे की अवस्था है यथाः—

"पूर्णहन्तामयिभक्तिस्तूर्याति तानिगद्यते" (संदर्भ पृः ७०३) वृहद्गोतमीय तन्त्र ३२ अनुच्छेदः श्रीमहावाणी में भी वर्णन हैः—"जैनमो प्रगलभ भक्तिदा "जै नमो" तूर्य बिरक्तदा" (सेवा सुख) अर्थात् रसिक दम्पति की प्रगल्भ-भक्ति ही जब तूर्य अवस्था से विरक्ति पैदा करने वाली है। फिर श्रीप्रिया प्रीतम में रजोगुण आत्मक "काम" कैसे सम्भव हो सकता है।

श्रीउज्ज्वल नील मणि में भी वर्णन हैः—(२१७)

"व्यतीत्य तूर्यामपि संश्रितानाम् तांपञ्चमीं प्रेम मयीमवस्थाम्।
न सम्भत्येव हरि प्रियाणाम् स्वप्नः रजो वृत्ति विजृम्भितः यः॥"

श्रीप्रिया प्रीतम की पञ्चम पुरुषार्थ मयी "प्रेम" की वह "काम केलि" तूर्य अवस्था से भी ऊँची अवस्था है। रजोगुण की वृत्ति नहीं हैं।

श्रीप्रिया प्रीतम के "सुरत सुख" अर्थात् काम केलि को "प्रेम" से भी ऊँचा क्यों कहा गया है ?

इसलिये क्योंकि "प्रेम" और "काम" के अनुभाव पृथक पृथक हैं। "प्रेम" की अपेक्षा "काम" की अनुभाव युगल को अधिकतर सुख प्रदान करने वाले हैं

प्रेम के अनुभावः—"ते स्तम्भ स्वेद रोमाञ्चाः स्वरभेदोऽथवेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः॥ (भः रः सिः पृः २११)

जड़ता, पसीना, रोमाञ्च, गदगद कण्ठ, काँपना, शरीर का रंग बदल जाना, असूँ और मृत्यु यह प्रेम के अष्ट सात्विक कहलाते हैं।

काम के अनुभावः--"अलिङ्गन-चुम्वन-नख छेद-दशन छेद सम्वेशन-सीतकृत,-पुरुषायित औपरिष्टि कानां अष्टानां अष्टधा इति वाभ्रवीयाः।"

(वात्सायनकाम सूत्र सम्प्रयोग अधिकरण २ अध्याय ५ सूत्र) श्रीवात्सायन ऋषि कहते हैं कि वाभ्रवी ऋषि का यह मत है कि काम के अनुभाव "आलिङ्गन," "चुम्वन", "नखछेद," "दशनछेद," "रतिविलास" सीतकार, "विपरीतरति" और परस्पर हाथापाई आदि अष्ट अनुभाव हैं।

"प्रेम" और "काम" के पृथक २ अनुभाव होने से ही श्रीमहावाणी कार ने श्रीप्रियाप्रीतम की काम केलि को प्रेममयी लीलाओं से भी ऊँचा स्थान दिया है। क्योंकि "प्रेम" के अनुभाव उच्चतम प्रेम अर्थात् "काम केलि" में कहीं कहीं विघ्न रूप हो जाते हैं, क्योंकि श्रीनायक नायिका अश्रुकम्प पुलक आदि के होते हुए परस्पर के मिलने के सुख को पूर्णतया आस्वादन नहीं कर सकते हैं। इसलिये रसिक दम्पति को सुख प्रदान करने के लिये "काम" के अनुभाव उनको अधिकतर सुख पोंहचाते हैं। मन से एक हुए बगैर तो "प्रेम" भी नहीं हो सकता है परन्तु देह से दोनों एक सुरत सुख में ही होते हैं इसलिये श्रीचण्डीदासजी कवि कहते हैं:--

" न स रमण न हम रमणी दुहु मन मनोभव पेशल जानि ॥"

पुनः यथाः—"सखी न स रमणो नाहं रमणीतिभिदाऽवयोरास्ते।
प्रेम रसेनोभय मन इवमदनोनिष्पिपेष वलात्॥ (युः तः पृः १५४)

अर्थात् सुरत केलि में ही विग्रह से विग्रह मिलकर एक ऐसी अवस्था हो जाती है जिसमें रमण और रमणी का अभेद हो जाता है, जिसे प्रेम विलासाविवर्त कहते हैं और लीलाओं में जहाँ देह पृथक पृथक रहते हैं यह अवस्था नहीं होती है। इसलिये सुरत सुख को ही अन्तिम सुख कहा गया है श्रीध्रुवदासजी कहते हैं:--

"रस की अवधि जहाँ लों माई। विवि तन मिल एकहिं हो जाई॥"

रसिक दम्पति सर्वात्मभाव से सुरत केलि में ही मिलत है, इसीलिये सुरत सुख को ही रस की अवधि कहा गया है। श्रीमहावाणी कार उत्सव सुख की समाप्ति में कहते हैं, "निश्चैउर धरिलेहु एहु सर्वोपरि होई। या ते पर जे कहैं महा प्रति वाई सोई॥"

अर्थात् सुरत केलि ही प्रेम की लीलाओं से सर्वोपर है इससे भी परे जो कहे वे महा प्रतिवायी हैं अर्थात् महा दोशी हैं।

सुरत केलि के सम्बन्ध में श्री१०८ बाबाजी श्री दीनशरण जी का नोट इसी भाति हैं:--(१) " व्रजपुर वनितानां वर्धयन् कामदेवम् । भा० (१०-६०-४८)

वृहद्भागवतामृत टीका पृष्ठः १०२७—१०२८

यद्यपि तदानीं.........

यद्वा नानाविधि कामेषु मध्ये यः किल स्थिर चराणां इत्यादि

अब मंगलाचरण के श्लोक को लीजिये:--

राधाकृष्णावहं वन्दे रसरूपौ रसायनौ।
वृन्दावननिकुंजेषु नित्यलीलासमाश्रितौ ॥
गौरश्यामौ महारम्यौ कोटि-कन्दर्प-मोहनौ ।
रंगदेवी-सेव्यमानौ पराभक्ति प्रदायनौ ॥

यह वस्तु निदेशात्मक मंगला चरण है। इस में कहते हैं हम उन श्रीराधाकृष्ण की वन्दना करते हैं जो रस रूप तथा रसायन अर्थात् रस के आलम्बन स्वरूप है। जो श्रीवृन्दावन की कुन्जों में नित्य लीला अर्थात्-सुरत विहार करते रहते हैं। जिन की गौर श्याम कान्ति है। जो अपनी अत्यन्त सुन्दरता से क्रोड़ों कामदेवों को मोहन करने वाले हैं। जो परा भक्ति प्रदान करने वाले हैं और जिन की सेवा में श्रीरङ्गदेवी आदि सखियाँ उपस्थित रहती है। "रस रूपौ"

"रसो वै सः। रस ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति ।"

"दैवं ह्येतन्मिथुनं परमोह्येषआनन्दः "। (छा० ३) (यु: तः २४२)

श्रीप्रिया प्रीतम रस स्वरूप हैं जिनको प्राप्त करके यह जीव आनन्द लाभ करता हैं। "रसायनौ ।"

"नायक नायिका दुई रसेर आलम्बन ।
सेइ दुई श्रेष्ठ राधा व्रजेन्द्र नन्दन ॥" (चैतन्य चरितामृत)

पुनः यथा:--"विभवोऽपि स्वयं श्रीरसतां गता" (स्तोत्रावली)

रसायन अर्थात् रस का आधार अथवा आलम्बन। श्रीरसिक दम्पति ही रस के आधार स्वरूप हैं। यथा:--"अतो राधा च कृष्णश्च दम्पती तु सनातनौ ।
रसस्य परमं रूपं यत्परं मधुरं सुखम् ॥ (यु: तः २३६)

श्रीराधाकृष्ण ही सनातन दम्पती है यही रस के परम आधार स्वरूप हैं और यही मधुर सुख अर्थात् नित्य विहार में नित्य निमग्न रहते हैं।

" नित्य लीला समाश्रितौ "

नित्य सुरति विहार करते रहते हैं। यथा:—

"शृङ्गार रसस्य स्थायिभावो रतिरिति रस शास्त्र प्रसिद्धः। यथा:—

"विभावैरनुभावै श्चव्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादि स्थायि भावः स चेतसाम् ॥" (पुः तः पृः १६६)

यह मङ्गलाचरण सुरत सुख सम्बन्धी है। इसलिये नित्य लीला समाश्रितौ का अर्थ यहां सुरत केलि सम्बन्धनी लीला करना पड़ेगा। शृङ्गार रस का स्थायी भाव "रति" है यह बात रस शास्त्र में प्रसिद्ध है। क्योंकि रस शास्त्र में वर्णित हैं। भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी आदि ि लकर ही जैसा स्थायी भाव होता है वैसा ही रस बनता है। यहां स्थायी भाव रति है इसलिये रसिक दम्पति के भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी आदि मिलकर रति सम्बन्धी ही रस वनगा हैं। इसलिये यहाँ नित्य लीला से सुरत विहार जन्य लीला ही अर्थ समीचीन है।

"परा भक्ति प्रदायनौ"

इसी "सुरत सुख" की भूमिका में वर्णन कर चुके हैं:—

"पूर्ण हन्तामपि भक्ति तूर्यातितानिगद्यते।" (वृहद्गोतमीयतन्त्र)

तथा श्रीमहावाणीकार स्वयं कहते हैं "जै नमो प्रगल्भ भक्तिदा। "जै नमो तूर्य विरक्तदा" इत्यादि।

इसीलिये "सुरत सुख" के अनुशीलन से "पराभक्ति" प्राप्त होती है।

॥ दोहा ॥

जय जय श्रीहितु सहचरी, भरी-प्रेम-रस-रङ्ग।
प्यारी प्रीतम के सदा, रहत जु अनुदिन संग ॥
कृपा पाय तिनकी कहौं, महावाणी सुख सार।
प्रीतम स्यामा स्याम कौ, अद्भुत सुरत बिहार ॥

अब श्रीग्रन्थकार अपने श्रीगुरुदेव श्रीश्रीभटजी जिनका सखी नाम श्रीहितुसहचरी जी हैं उनका अभिवादन करते हुए कहते हैं।

"मेरी गुरुपाद सखी श्रीहितु सहचरी जी" अहर्निश सुरत केलि में भी श्रीप्रिया-प्रीतम के निकट रहकर सब लीलाओं का अवलोकन करती रहती हैं। इसलिये उनका

हृदय प्रेम से द्रवीभूत, रस से सब इन्द्रियां चमत्कृत सुख से व्याप्त तथा रसिक दम्पति की सुरत केलि जन्य रंग से वे रञ्जित हैं । इनकी कृपा मनायके मैं श्रीप्रिया प्रीतम का वह अद्‌भुत सुरत विहार वर्णन करने लगा हूँ, जो श्रीमहावाणी ग्रन्थ के पाँचों सुखों का सार स्वरूप है ।

"प्रेम"

"सम्यङ् मसृणित स्वान्तो ममत्वाति शयाङ्कितः ।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधै प्रेमानिगद्यते ।।" (भक्तिरसामृतसिन्धु)

भाव की उस गाढ़ अवस्था को विद्वान् लोग "प्रेम" कहते हैं जिसमें चित्त पूर्ण रूप से पिघल जाता है और श्रीकृष्ण में अतिशय ममता हो जाती है ।

"रस"

"वहिरन्तः करणया व्यापारन्तर रोधकम् ।
स्व कारणादि संश्लेषि चमत्कारि सुखं रसः ।।" (अलङ्कार कौस्तुभ)

जब किसी चमत् कृत सुख से वाहिर की सब इन्द्रिया रुद्ध हो जाती हैं और उस सुख के कारण से अन्तः करण संश्लेष्ट भाव अर्थात् उस सुख से एकीकरण हो जाता है उस को रस कहते हैं ।

"रंग"

"सदानुभूतमपियः कुर्वन्नव नव प्रियम् ।
रागो भवन्नव नवः सो अनुराग इतीर्यते ।।" (उज्ज्वल नीलमणि)

रञ्जधातु से रंग शब्द बनता है जिसका अर्थ प्रेम में अनुरक्त होता है । यहां रंग से प्रेम की ही एक अवस्था विशेष अर्थात् अनुराग से तत्पर्य है । जिसके लक्षण ऊपर श्लोक में वर्णन हैं । श्लोक का अर्थ यह है:—

प्रेम की एक अवस्थाविशेष का नाम राग है । जिसमें अत्यन्त दुख भी पराकाष्टा का सुख प्रतीत होता है । उस राग की गाढ़ अवस्था का नाम ही अनुराग है जिसमें श्रीरसिक दम्पति के दर्शन क्षण क्षण में नवीन प्रतीत होते हैं ।

अथवा कुट्टनीमत नामक काव्य ग्रन्थ की टीका में "रंग" की व्यतिपत्ति इस प्रकार की गई है। रंग—स नृत्यो, रणे, रागे अर्थात् "रंग" शब्द का प्रयोग नृत्य, युद्ध और अनुराग में होता है । यहाँ श्रीहितु सहचरी जी नृत्य कला श्रीप्रिया प्रीतम की सुरत केलि युद्ध और इनके अनुराग में पगी हुई हैं ।।

॥ अनुरागिनि रत्नकला मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

चित्ताकर्षनि चंचला, वर्षनि-घन-रस-प्रेम ।
जयति नित्यनागरि निपुन, रसिकमनी तन-हेम ॥

॥ पद ॥१॥

जयति नवनित्य नागरि निपुन राधिके रसिक-सिरमौरि मन्मोहनी जू ।
चारु छबि चंचला चित्त आकर्षनी वर्षनी प्रेम-घन मोहनी जू ॥
सहज सिद्धा प्रसिद्धा प्रकासिक प्रभा दिव्य बर कनक-तन मोहनी जू ।
स्वामिनी सुखद श्रीहरिप्रिया बिसद जस प्रान की परम धन मोहनी जू १

नागरि=चतुरा । चंचला=विद्युत, बिजली । प्रेम घन=गाढ़ प्रेम । विशद यश=बड़ा भारी जश । (अनुरागिणी रत्नकला मध्याभास=राग राम कली) १-१९ जब बिजली घन से संघर्ष करती है । तब जल की वर्षा होती है । इसी रूपक से श्रीग्रन्थकार रस वर्षा रूपी बस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण करते हुऐ कहते हैं:--

॥ दोहा ॥

श्रीलाल जू के चित्त को आकर्षण करने वाली उन विद्युत स्वरूपा श्रीस्वामिनी जी की जय हो, जो रसघन स्वरूप श्रीलाल जू को पिघला कर (द्रवीभूत) कर प्रेम की बर्षा करती हैं । जो नित्य नागरि चतुर तथा रसिक मणि स्वरूपा हैं । जिनके अङ्ग की कान्ति स्वर्ण सरीखी है ।

॥ पद ॥

श्रीस्वामिनी जी नित्य नव नागरी रसविदग्धा और पूर्ण चातुर्य युक्ता हैं । इसी लिये रसिक सिरमौर श्रीलाल जू के भी मन को मोहन करने में समर्थ हैं । आपके अङ्ग की छटा विद्युत वर्णा है । इसलिये रसघन स्वरूप श्रीलाल जू के चित्त को खेंच कर आप प्रगाढ़ प्रेम की वर्षा करती हैं । आप स्वभाविक प्रसिद्ध श्रीप्रीतम की प्रभा को प्रकाश करने वाली हैं । दिव्य श्रेष्ठ स्वर्ण सरीखी आपकी कान्ति है । आपका विशद यश विख्यात है । श्रीहरि प्रिया सखी को आप सुख प्रदान करने वाली प्राण धन के समान हैं ।

॥ दोहा ॥

ललित बलित उरपर दलित, कलित कमल की माल।
लाल बालकें बस बसे, बसी बाल बस लाल॥

॥ पद ॥२॥

लाल बस बाल कें बाल बस लाल।
सुरत-सुख-सेज पर हेज-भरे बिलसहीं,
हुलसि चितचाड़िले लाड़िले लाल॥
कमल-माला कलित ललित उर पर बलित,
दलित अङ्ग अङ्ग रति-रलित दोउ लाल।
श्रीहरिप्रिया सुमिलि झिलि रहे रस झूमि,
उमि ऊमि चुमि चूमि विधुबदन बिबि लाल॥२॥

ललित=सुन्दर। बलित=लपटी हुई। दलित=दलमली हुई, भोड़ी हुई। कलित=खिली हुई। हेज=उस प्रकार का प्रेम जो गउ अपने वत्स पर करती है। चित चाडिले=चितपर चाव चढ़ना। रति रलित=रति विहार में परस्पर मिले हुए। ऊँमि ऊँमि=उमड़ उमड़ कर॥ विधु वदन=मुख चन्द्रमा।

प्रस्तुत विषय को प्रारम्भ करते हुए ग्रन्थकार पद नं० २, ३ और ४ से प्रातः कालीन सुरति कालीन केलि का दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं:—पद न० १ में उभय सङ्गम से प्रेम की वर्षा का वर्णन किया गया है। हृदय को द्रवीभूत करना प्रेम का स्वाभाविक धर्म है। अतः रसिक दम्पति इस समय द्रवीभाव को प्राप्त होकर एक दूसरे के आधीन हो रहे हैं।

॥ दोहा ॥

सुरति केलि श्रमित श्रीस्वामिनीजू श्रीलालजू के उर से प्रसन्न चित्त होकर इस प्रकार गाढ़ आलिङ्गन किये हुए हैं, मानों कोई कोमल कमलों की माला किसी प्रकार से दलमली हो जाने पर भी खिले हुए फूलों सदृश श्रीलालजू के वक्षस्थल पर सुशोभित हो रही हो।

॥ पद ॥

रसिक दम्पति परस्पर आधीन होकर सुरत सुख सेज पर हेज भरे विलास कर

रहे हैं । गऊ का अपने वत्स के प्रति जो प्रेम होता है उसको हेज कहते हैं । यद्यपि यह दृष्टान्त वात्सल्य सा प्रतीत होता है तो भी प्रथम तो मधुर रस में प्रायः सभी रसों का समावेश है, दूसरे ग्रन्थकार इस समय के जिस प्रकार के प्रेम को जनाना चाहते हैं वह प्रेम और किसी प्रेम के पर्य्याय: शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं हो सकता है अतः हेज शब्द का प्रयोग किया गया है । श्रीकेलिमाल में भी श्रीस्वामिनीजू के हेज सम्बन्ध में यह पद दिया गया है ।

"आओ लाल एसो मद पोजे तेरौ झगा मेरी अँगया धरि ।
कुच की सुराही नैननि के प्याले दारु ओ देऊँगी अँकों भरि ॥
अधरनिच्वाइ लैउ सिगरोरस तन कन जानि देऊँ इत उत ढरि ।
श्रीहरिदास के स्वामी श्यामा कुञ्जविहारी सोहुबात असर जहाँ अपनुहरि ॥"

इन दोनों के चित्तों में परस्पर लाड़ लड़ाने का चाव उल्लास सहित चढ़ा हुआ है । श्रीस्वामिनीजी प्रफुल्लित कोमल कमलों की माला सदृश श्रीलालजू के वक्षस्थल पर सुशोभित है । रति क्रीड़ा विहार में इन दोनों के अङ्गों से अङ्ग मिले हुए हैं जिस के श्रम से इन दोनों के दिव्य मङ्गल विग्रह दलमले से हो गये हैं । श्रीहरि श्रीप्रियाजू को अपने उर पर झेल रहे हैं । यह दोनों उमड़ उमड़ कर झूँम झूँम कर परस्पर मुख चन्द्रमाओं को चूँम चूँम कर रस अस्वादन कर रहे हैं ।

॥ दोहा ॥

ओढ़ि एक पट पौढ़े दोउ श्रीहरिप्रिया प्रवीन ।
सघन कुंजघन बन जु में बिहरत अति रसलीन ॥

॥ पद ॥ ३ ॥

सघन-घन-कुंज बन बिहरें दोऊ ।
परम परवीन रसलीन मृदु भुज भरें,
गरें लगि बितन तन बिहरें दोऊ ॥
एक पट ओढ़ि पौढ़े प्रमुदि प्राणधन,
महा मत्त गज मगन मन बिहरें दोऊ ।
श्रीहरिप्रिया हरषि हिये सेज-सुख बरषहीं,
सन्मुख रुख लियें ललन बिहरें दोऊ ॥३॥

सघन घन कुञ्जवन=गहवर कुञ्ज सोहियो कहावे (तालिका) अर्थात् हृदय से हृदय लगा कर। घन विहार से तात्पर्य है। वितन तन=कामातुर।

एक पट=अर्थात्=एकभाव रुचि एक ही एक चाव इक रंग सु: सु: पृ १६

॥ दोहा ॥

श्रीप्रिया प्रीतम एक पट ओढ़ कर शयन कर रहे हैं। आप दोनों कोक कला में अति चतुर हैं। अतः अति रस में निमग्न हो कर अति रहस्य विहार कर रहे हैं।

॥ पद ॥

काम कला में परम प्रवीन रस लीन रसिक दम्पति परस्पर हृदय से हृदय अङ्ग से अङ्ग मिला कर काम क्रीड़ा परायण अति रहस्य विहार कर रहे हैं। दोनों प्राणधन अति प्रसन्नचित्त एक पट ओढ़े शय्या पर शैन कर रहे हैं। इस समय यह अत्यन्त प्रसन्न हैं और इनके अङ्ग प्रति अङ्ग रतिविहार के आनन्द से जगमग जगमग कर रहे हैं। श्रीहरिप्रिया अर्थात् रसिक दम्पति मुदित होकर शय्या सुख अर्थात् सुहाग सुख की वर्षा कर रहे हैं। इस समय श्रीलालजू श्रीप्रिया जू के रुख को लेकर विहार कर रहे हैं और श्रीलड़ैतीजू श्रीलालजू को अनेक प्रकार से लाड़ लड़ा रही है। एवं प्रकार से उभय विलास कर रहे हैं।

॥ दोहा ॥

अङ्ग अङ्ग रस वृष्टि करि, पुष्ट परसि पद भाल।
चलत प्रान प्रतिपाल कें, सनमुख रुख लियें लाल॥

॥ पद ॥ ४ ॥

सनमुख रुख लियें ललन चलत नव बाल कें।
एक आज्ञाहिं अनुकूल आनन्द उर,
रहत ज्यों चहत त्यों प्रान प्रतिपाल कें॥
दृष्टि-रस-वृष्टि करि पुष्ट अङ्ग अङ्ग सकल,
सुष्ट संतुष्ट पद परसि निज भाल कें।
श्रीहरिप्रिया सहज सुख सुखी सेवत,
सुरत जुरत जिय में न इतनी धनी लाल कें॥४॥

धनी=युवा कुमारिका (कोष) धनी लाल=श्रीप्रियाप्रीतम मैन=कामदेव।

॥ दोहा ॥

श्रीस्वामिनी जी के अङ्ग अङ्ग की रस बृष्टि ने लालजू को अङ्ग अङ्ग को पुष्ट बना दिया फिर वह रस पिपासू अति अधीन होकर अपने मस्तक को उनके चरण कमल से स्पर्श कराने लगे। इसके पश्चात वह लालजू अपनी प्राण जीवन-धन के रुख को देख कर विहार में प्रवर्त हुऐ।

॥ पद ॥

श्रीलालजू एक मात्र श्रीप्रियाजू के रुख देख कर ही विहार में प्रवर्त होते हैं। उनके हृदय का आनन्द आपकी प्राण जीवन धन श्रीस्वामिनी जी की एक मात्र आज्ञा पालन करने में ही है। ज्योंही श्रीप्रिया जी ने रस–भरी दृष्टि से लालकी ओर देखा, त्योंही श्रीलालजू के प्रति अङ्ग पुष्ट हो गये। और वह लालजू सुष्ट प्रकार से संतुष्ट हो कर उनके चरणार विन्दों को अपने मस्तक से स्पर्श करने लगे। धनीलाल अर्थात् श्रीप्रिया प्रीतम के जिसमें मैंन की इतनी अधिकता हुई कि वह सहज अर्थात् स्वाभाविक सुख का सेवन करते हुए सुरत सुख में प्रवर्त हो गये अर्थात् महा मन्मथ की उपासना करने लगे।

॥ दोहा ॥

मृदुल-कमल जिमि नमि गये, श्रमित महा-रस-मैंन।
करत केलि दोउ लाल के, लगे नैंन सुख-सैंन॥

॥ पद ॥५॥

लगि गये नैंन सुख-सैंन दोउ लाल के।
करत ही करत कल केलि कोमल कुँवर,
कमल जिमि नमि गये श्रमित-रस-जाल के॥
सकल सहचरि मिली पाँय सहरावहीं,
चाय चित चढ़ि रहे जिनहिं नित ख्याल के।
तिनहिं हित रचन के बचन श्रीहरिप्रिया,
जिनि जगावौ कहत सोये इहिं काल के॥५॥

रस मैंन=काम क्रीड़ा। जिमि=जैसे। निमि=नव जाना। झुक जाना।

॥ दोहा ॥

काम क्रीड़ा से श्रमित रसिक दम्पति के नेत्र कमल निद्रा के भार से या सुरत

खुमारी इस प्रकार लग गये, जैसे कोमल कमल किसी भार से झुक जाते हैं ।

॥ पद ॥

सुख शैया पर शयन करते हुऐ सुरति केलि जन्य श्रम से आविष्ट होकर श्रीप्रिया प्रीतम के नेत्र कमल इस प्रकार लग गये जैसे भृमर आदि के भार से कोमल कमल नव जाते हैं । प्रातःकाल होने से सब सखियाँ मिल कर आपको जगाने के लिये आईं । वे शैया के निकट जाकर रसिक दम्पति के चरण कमलों को सहराने लगी । वे चाव भरी सखियां आपको खेल में प्रवर्त करने के लिये जगाना चाहती हैं । श्रीहरिप्रिया सखी ऐसा देख कर श्रीप्रिया प्रीतम के सुख के लिये उनक[illegible]नना करती हुई यह कहने लगी "अरी ये अभी सोये हैं । इनको मत जगाओ" ।

॥ दोहा ॥

सरस परस्पर अरसबस, रगमग अङ्ग सङ्ग हेज ।
जिनि जगाउ एरी इन्हें, सोये श्रमित सुख-सेज ॥

॥ पद ॥६॥

एरी इन्हें जिन जगावो ये सोये सुख-सेज दोउ श्रमित सुख-सदन ।
परस्पर सरस रस अरस-बस बिबिस बिबि बिपुल लस बिलस-मन्द-मदन ॥
रगमगे रङ्ग अङ्ग अङ्ग सुन्दर सुघर सगबगे सङ्ग लग लगबगे बदन ।
श्रीहरिप्रिया हियसोंहिय जियसोंजिय तनसोंतन मनसोंमन मगन छदछदन ॥

सुख सदन=सुख के स्थान अर्थात् सुख स्वरूप । विविविपुल लस=दोनों ने अत्यन्त अभिलाषा से । मद मदन=मद युक्त काम केलि । सग वगे=गीले (स्वेद आदि से) छद छदन=अधरों से अधर ।

॥ दोहा ॥

ये सुरति क्रीड़ा जन्य प्रेम से रंजित श्रमित होकर अभी सुख शेज में सोये हैं । इसलिये हे सखियो ! इनको मत जगाओ ।

॥ पद ॥

सुख सदन स्वरूप रसिक दम्पति ने परस्पर के सुरस रस में विवश होकर अत्यंत अभिलाषा से काम केलि आश्वादन की है । इसीलिये इन दोनों सुन्दर तथा अति चतुरों के वदन से वदन अङ्ग से अङ्ग परस्पर आलिङ्गन चुम्बनादि करने से सगबगे हो रहे हैं ।

इस समय ये दोनों हिये से हिये जीये से जीये तन से तन मन से मन अधरों से अधर मिलाये हुऐ अत्यन्त प्रसन्न होकर सोये हुऐ हैं । इनको मत जगाओ ।

॥ दोहा ॥

छबि पावत कैसे अहो, किये सेज सुख-सैन ।
निरखौ नेंक निहारि तौ, निसा उनीदे नैंन ॥

॥ पद ॥७ ॥

निसि के उनींदे नैंना नीद जनावें, ये तुमकौं जगिबोई सुहावें ।
कौतुकियनि कौं कौतुक भावै, न्याय बिलासनि बाल कहावें ॥
नेक तो निहारि देखो कैसे छबि पावें, पीछे तो करोगी जो तिहारेउर आवें ।
श्रीहरिप्रिया कों अब नेक जक लावें, साबधान भये तें रमेंगे ज्यों रमावें ॥७

॥ दोहा ॥

ये दोनों सुख पूर्वक सोये हुऐ कैसे सुन्दर लगते हैं, नेक तू रात्रि के उनीदे नयनों की शोभा देख तो सही ।

॥ पद ॥

इनके नेत्र कमलों के देखने से ऐसा प्रतीत होता है, कि ये उनीदे हैं । रात्रि में सोये नहीं हैं । हे सखियो ! तुम कौतुकी हो । इसीलिये तुम लोगों को इनको खेल में प्रवर्त करने के लिये जगाना अच्छा लगता है । ठीक है इसीलिये तुम बिलासिनियों को "बाल" की संज्ञा दी गई है । किन्तु तुम लड़कपन कर रही हो । (बाल अभोरि बुद्धि को भी कहते हैं) नेक ठहरिये ! इस समय इनकी रूप माधुरी के दर्शन तो करौ सोये हुऐ कैसे सुन्दर लगते हैं । पीछे जो तुम्हारे मनमें आवेगी सो तो करौ ही गी । श्रीप्रिया प्रीतम को इस समय आराम करने दो । जिस समय ये स्वयं सावधान हो जायेंगे । उस समय जैसे तुम इनको रमाओगी तैसे ही यह रमण करेंगे । "न्याय विलसनि वाल कहावे" दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है (१) बाल अर्थात् हमारी स्वामिनी उचित विलास को ही विलसने वाली हैं । इस समय जो शयन कर रही हैं, यह इस समय का इनका उचित विलास है इसलिये इनको न जगावें ।

॥ दोहा ॥

नैंन उनीदे रैंन के, सोये सैंन सुहाय ।
काहे कों इनकों अहो, लगी जगावन आय ॥

॥ पद ॥८॥

काहे कों जगावो इन्हें सोवन देउ सबहीं,
निसि के उनीदे नेंक सोये हैं ये अबहीं।
ऐसी अलबेली छवि याही छिन फबहीं,
फिर तौ सुचेत भयें भये जात ढबहीं॥
तरनि किरनि आनि परें तेज तबहीं,
सहज सुभाव तें रहेंगे जागि जबहीं।
श्रीहरिप्रिया कों सुखदायक सबहीं॥
ऐसो अपरत काम कीजिये न कबहीं॥८॥

ढवहीं=मिट जाना। तरनि किरन=प्रातः कालीन सूर्य नारायण की किरणें। अपरत=असन्तोष जनक।

॥ दोहा ॥

इनके नयन रात्रि के उनीदे हैं। ये अभी सुखपूर्वक सोये हैं। इनको अभी क्यों जगा रही हो।

॥ पद ॥

आप लोग इनको सोने दें। अभी जगावें नहीं, ये रात्रि के जगे हुए अभी सोये हैं। इन सोये हुयों की अलबेली छवि इसी समय सुन्दर लगती हैं। जग जाने से सचेत होने से इस समय की रूप माधुरी के दर्शन नहीं रहेंगे। जब प्रातः कालीन सूर्य नारायण की किरणों का तेज इनकी शैय्या पर पड़ेगा ये सहज स्वभाव से स्वयं ही उठ बैठेंगें। आप सब श्रीलाल ललना को सुख देने वाली हैं। इसलिये आप लोगों को ऐसा असंतोष जनक काम नहीं करना चाहिये।

॥ दोहा ॥

सुरत-समर के रङ्ग में, अङ्ग अङ्ग रहे समोय।
ज्यों कल पावें लाड़िले, करहु नेक बिधि सोय॥

॥ पद ॥ ६ ॥

जगि हैं तौ वेही लौ लगि हैं नेक लड़ैतेन कों कल देहु।
सुरत संग अंग अँग श्रमित भये रङ्गढंग कछु दीखत एहु॥

बीते आनि सही तें जबहीं जानि परैं ऐसो है नेहु।
श्रीहरिप्रिया धन्य धनि इनिकों नितप्रति उमगेइ रहत अछेहु ॥९॥

दोहा—इन दोनों के अङ्ग अङ्ग सुरति क्रीड़ा रूपी युद्ध में श्रमित हैं। अतः ये लाड़िले जिस प्रकार से भी सुखी हों हमें वही कार्य करना चाहिये।

पद—इन लाड़िलों के जग जाने से वही धुन लग जायेगी इसलिये इनको आराम करने दें। श्रीहरि प्रिया सखी मधुर भर्त्सना करती हुई कहती हैं, तुमको इनका इस समय का कुछ रङ्ग रूप दीखता है कि नहीं ये सुरति केलि जन्य श्रम से इनके अङ्ग अङ्ग शिथिल हो रहे हैं "जब अपने प्राणों पर बीतती है तब ही सही सही जान पड़ती है कि स्नेह ऐसा होता है।" रसिक दम्पति के स्नेह को धन्य है, जो एक रस होती हुई भी क्षण क्षण में बढ़ता रहता है।

दोहा—लटकि रहे यूंके युहीं, श्रमित दोऊ सुकुंवार।
नेंक सु जक दै परन तूं, अहै इन्हैं इहिं बार॥

पद—दै री दै तू जक नेंक परन।
सब निसि बीती बिलसत इनिकों कामकेलि-जगरन॥
यूं के युंही लटकि रहे अबहीं दियें भुजसों भुज गरन।
श्रीहरिप्रिया श्रमित दोऊ मृदु मूरति मन के हरन॥१०॥

दोहा—ये दोऊ प्यारे अत्यन्त सुकुमार हैं। श्रमित होकर यों के यों ही लटक रहे हैं। इस समय इनको नेक भली प्रकार से आराम करने दो।

पद—ये दोनों काम केलि जन्य आनन्द में सारी रात्रि जागते रहे हैं। अभी तक ये उसी अवस्था में परस्पर भुजा से भुजा गले से गला मिला कर यों के यों ही लटक रहे हैं। इनकी अभी आँख लगी है। इस समय की श्रमित मृदु मूर्त मनको हरने वाली हैं। इनको सुख पूर्वक सोने दो।

दोहा—सेज-सुहाग जगे निसा, रागे रंग अङ्ग अङ्ग।
लगे मोहनी के अरी, इहिं बिरियाँ बिबि संग॥

पद—लगें नीके मोहिं अरी इहिं बिरियाँ।
उरझि-रहे अँग अंग न सुरझत पट परिहरि पुहुपिरियाँ॥
सेज-सुहाग सकल निसि जागे रागे रङ्ग रुचिरियाँ।
श्रीहरिप्रिया निरखि न्योछावरि करौं प्रान फिरफिरियाँ॥११

दोहा—सुहाग सेज पर रसिक दम्पति मुझको इस समय बहुत अच्छे लगते हैं, जिनके अङ्ग अङ्ग सुरति केलि जन्य आनन्द से रज्जित हैं। और जो सारी रात्रि इसी सुख में जागते रहे हैं। जिनके सुरतान्त समय भी अङ्ग से अङ्ग मिले हुऐ हैं।

अन्यार्थ—रसिक दम्पति जिनके अङ्ग अङ्ग सुरति केलि जन्य रंग से रंगे हुए हैं। और ये सारी रात सुहाग शय्या पर विलास करते हुए जगते रहे हैं। हे सखी इसी समय की झाँकी मुझको बहुत प्यारी लगती है।

पद—अरी यह पीरी फटने के समय मुझे बहुत सुन्दर लगते हैं। इनके अङ्ग प्रति अङ्ग विगत वास इस प्रकार से परस्पर उरझे हुऐ हैं जो कि यत्न करने से भी नहीं सुरझाये जा सकते हैं। अपनी अपनी रुचि के अनुसार सुहाग सैया पर इन्होंने शेज सौभाग्य सारी रात्रि जाग कर विलसी है इनके अङ्ग प्रति अङ्ग सरति रङ्ग से रंजित हैं। श्रीहरि प्रिया जी कहती हैं इस समय इनकी रूप माधुरी देख देख कर मैं अपने प्राणों को बार-बार इन पर न्यौछावर करती हूँ।

दोहा—विमद मदन मद होत लखि, सहज रदन रस रङ्ग।
जगे सेज प्रिया लाल दोउ, बिलसि सकल निसि सङ्ग॥

॥ पद ॥

सकल निसि बिलसि प्रिया लाल जागे।
सुरत-सुख-सेजपर उमँगि बैठे दोऊ अङ्ग अङ्ग सहज अनुराग रागे॥
बिमद मद मदन लखि होत बिधु-बदन छबि रदन रसरङ्ग दिबि दाग दागे
श्रीहरिप्रिया सहज सुन्दर सुघर रसिकबर परस्पर प्रेमकें पाग पागे॥१२

दोहा—जब श्रीप्रिया प्रीतम शैय्या से उठे। जिन्होंने सारी रात्रि परस्पर सुरति विलास में विताई थी, तो उनके अधर सुधा चुम्बनादि आदि से स्वभाविक चिह्नित अङ्ग

अङ्गों को देख कर वह कामदेव जिसको अपने रूप सौंदर्य पर गर्व था, लज्जित एवं तिरस्कृत हो गया।

पद--सारी रात्रि सुरति केलि विलस कर वे श्रीलाल ललना जिनके अङ्ग-अङ्ग स्वाभाविक अनुराग से रंजित हैं ज्योंही शैय्या पर उमग कर उठ बैठे त्योंही उस समय की उनकी वह सुरतान्त रूप माधुरी जिस में उन दोनों के मुख चन्द्रमा अधर सुधा तथा पान आदि के पीक से रंग से रंजित व दन्त क्षत दिव्य जिन्हों से चिन्हित थे देख कर उस कामदेव का अभिमान खंडित हो गया जिसको कि अपने रूप सौंदर्य पर अत्यन्त गर्व था। इस समय वे श्रीप्रिया प्रीतम जो स्वाभाविक सुन्दर, चतुर तथा रसिक शिरोमणि हैं, परस्पर प्रेम में निमग्न हैं।

दोहा—अङ्ग अङ्ग अति रतन रति, रङ्ग रहे छबि छाजि।
फूल सकल सुख मूल मिलि, रसिक सेजपर राजि॥

॥ पद ॥१३॥

रसिकनी सेज पर रसिक राजैं।
अङ्ग अङ्ग अतन रति-रतन-रस-रगमगे महा-मद-मत्त मोहन बिराजैं॥
फूल फूले बिमल बिपुल झलझलझलत ढलढलत भव्य भलभलत भ्राजैं।
श्रीहरिप्रिया सकल सुखमूल मिलि बिलसहीं हुलसहीं हिय भरे सुछबि छाजैं

दोहा—श्रीरसिक दम्पति जिनके अङ्ग अङ्ग अति काम रति से रंजित हैं, शेज पर सुशोभित हैं। और जिनके अङ्ग उस सुरति केलि के आनन्द से फूले हुऐ हैं। जो सब सुखों के मूल स्वरूप हैं।

पद--रसिकनी शेज अर्थात् श्रीप्रिया जी के दिव्य मङ्गल विग्रह पर वह श्रीलाल जू जिनके अङ्ग अङ्ग काम रति से रंजित हो रहे हैं, और जो इसी आनन्द में उन्मत्त से हो रहे हैं, सुशोभित हैं। और वह लालजू जिनके अङ्ग प्रति अङ्ग में इसी आनन्द के फूल झलमला रहे हैं, बड़े प्रकाश मान हो रहे हैं। इस समय आपकी दीनता और श्रीस्वामिनी जी की कृपा की ढलन सुन्दर प्रकार से सुशोभित है। श्रीप्रिया प्रीतम का उपरोक्त विलास ही सब सुखों का मूल स्वरूप है। दोनों इसी विलास को विलस कर हृदय में अत्यंत उल्लसित होते हैं। इस समय की रूप माधुरी की छवि ही आपकी वास्तविक छवि है।

दोहा—करत रहौ निसि दिन दोऊ, अद्भुत रसकौ मेह।
देखि देखि जीऊँ सखी, मुखकी सोभा येह ॥

॥ पद ॥ १४ ॥

कहि न परै सोभा या सुख की।
मेरे नैननि कौ सरबस धन जीऊँ देखि-देखि दुति मुख की ॥
और कछू भावत नहिं जियमें लगी रहौ लग इक याही रुख की।
श्रीहरिप्रिया करत रहौ निसिदिन अति अद्भुत बरिषा पीयूष की ॥१४॥

"प्रिया प्रीतम का परस्पर सुरति केलि विहार ही सखियों का आहार है"। इसी को प्रार्थना करती हुई सखियां कहती हैं।

दोहा—हे सखी ! मेरी यह प्रार्थना है कि ये लाल ललना उपरोक्त इसी अद्भुत रस की बर्षा करते रहें। और हम सब इनके मुखारविंदु की रूप माधुरी को देख देख कर जिया करें।

पद—इन दोनों की इस समय की सुख की शोभा मैं क्या वर्णन करूँ। मेरे नेत्रों का तो यही सर्वस्व धन है। मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि इनके मुखार विन्दों की शोभा देख देख कर ही जिया करूं। इसके अतिरिक्त मेरे हृदय में और कोई अभिलाषा नहीं है। मैं एक मात्र यही चाहता हूँ कि इनके रुख को ही देख कर इनकी सेवा में लगी रहूँ। और ये दोनों सुरति जन्य अद्भुत अमृत रस की बर्षा निशिदिन करते रहें।

दोहा—प्रवर-प्रेम-सरवर परी, परी हरबरी होय।
निरखि सुरत-सागर मगन, रही सखी मुख जोय ॥

॥ पद ॥१५॥

निरखि सुख रही सखी सकल मुख जोय।
सुरत-सागर-मगन मदनमोहन दोऊ अनंग अङ्ग अङ्ग रँग रंग रस भोय ॥
चकी चक चकी-सी जकी जक जकी-सी थकीथकथकी-सी टकीटक-टकोय।
श्रीहरिप्रिया प्रवरकें प्रेम-सरवर परी परी ज्यों लरबरी हरबरी होय॥१५

दोहा—श्रीप्रिया प्रीतम सुरति केलि रूपी सागर में निमग्न हैं। सखियों ने उस समय के आपके मुखार विन्दों का ज्यों ही दर्शन किया तो वे प्रवल प्रेम रूपी सरवर में

इस प्रकार से गिर गईं मानों कोई बड़ा भारी हड़वड़ाहट हो रहा हो।

पद—सुरति केलि रूपी सागर में दोनों लाल ललना निमग्न हैं। और उनके अङ्ग अङ्ग काम के रङ्ग से रंगे हुऐ तथा रस में भीगे हुऐ हैं। उस उमय के आनन्द से आनन्दित आप दोनों के मुखारविन्दों की शोभा को सखियां देखने लगीं तो वे चकित सी होकर आश्चर्य में डूबकर जहाँ की तहाँ थकित सी होकर टकटकी बांध कर आपकी रूप माधुरी को ज्यों ही देखने लगीं त्यों ही वे श्रीप्रिया प्रीतम के सर्वोत्कृष्ट प्रेम रूपी सरवर में इस प्रकार से गिर गईं मानो कोई हड़बड़ाहत युक्त बड़ा भारी हडबड़ाहट हो रहा हो।

दोहा—तुमहिं बनत जो बनत नहिं, अनत सनत किहि ठाउँ।
अब तौ अति गति भई सब, दरस देहु बलि जाउँ॥

॥ पद ॥१६॥

नेक दरसाईये दरस बलि जाउँ।
अब तौ अति गति भई निरखि नैनन,
नई दई जो दई सो लई बलि जाउँ॥
तुमहिं जो बनत जो बनत और न कहूँ,
अनत नहिं सनत सुनि बिनै बलि जाउँ।
श्रीहरिप्रिया जिनहिं लखि जीजियतु हैं,
जगत दीजियतु हैं दृगहिं हरष बलि जाउँ॥१६॥

इस पद से पहिले पद में उस सुरति केलि का वर्णन किया गया है। जबकि श्री लालजू श्रीप्रियाजी का प्रगाढ़ आलिंगन किये हुये हैं। जिसके फल-स्वरूप प्रेम-(१) वैचित्तो होना रस शास्त्र का नियम है। यद्यपि श्रीप्रिया जू उनके अङ्ग में विराजमान हैं, तो भी श्रीलालजू को यह भान होने लगा कि प्रिया जू उनके समीप नहीं हैं।

अतः उपरोक्त पद नं० १६ तथा इससे अगला पद नं-१) में श्रीलालजू की विरह भरी हुई वाणी का वर्णन करते हुए श्रीग्रन्थकार कहते हैं।

दोहा—हे स्वामिनी जी! मैं आपकी बलिहारी जाऊं। मेरे हृदय की वेदना सीमा को उल्लंघन कर चुकी है। मेरी अभिलाषाऐं आपके सिवाय और किसी से पूर्ण नहीं हो सकती हैं। मेरे को आपके अतिरिक्त और कोई जगह नहीं है। अब आना कानी से काम

नहीं चलेगा। अतः आप कृपा करके शीघ्र दर्शन दें।

पद--मैं आपकी बार बार बलैया लेता हूँ। अब मेरे हृदय की वेदना की गति सीमा को उल्लंघन कर चुकी हैं। इस समय के विरह ने मेरी एक नई अवस्था कर दी है। आप आंख उठाकर उसको देखो तो सही। विधाता ने जो मुझको आपके दर्शन रूप सम्पत्ति दी थी वह शीघ्र ही लौटा लीं। आपके अतिरिक्त मुझको और कहीं सुख शान्ति ठौर नहीं है। आपके अतिरिक्त मेरे प्राण कहाँ? हे प्रियाजू! मेरी विनय सुनिये। अन्यत्र सुनने की जगह नहीं है। आपके दर्शन से ही यह श्रीवृन्दावन निकुंज विश्व जीवित हैं। अतः आप हर्ष पूर्वक कृपा दृष्टि से मेरो ओर निहारें।

टिप्पणीः—प्रेम वैचित्ती सुरत केलि में ही होता है प्रमाणः--

"वैचित्वम्"— अनुरागे क्वचित् बुद्धिवृतेः तथा सूक्ष्मत्वं स्यात् यथा सा (वृद्धि-वृत्तिः) श्रीकृष्ण तद्यीय गुण गणे माधुर्य च युग पत न विषयी करोति। यथा काचित् अति सूक्ष्माशुची वस्त्रस्युतौ अतिसूक्ष्ममपि एकं सूत्रं एव विध्यति, न तु सूत्र द्वय सन्धि इति, तथा एव सम्भोगाख्ये रसे कान्तः-अयं मां सम्भुक्तें यस्य सुरत लाम्पट्य वाक चातुर्य गीतवाद्य नृत्यादयः गुणा अपारा इति गुणेषु प्रविष्टायां बुद्धि वृत्यौगुणान् अपित्यकत्वा तन्मार्गेण प्रविष्टा विरहं एव अनुभावयन्ति, पुरः स्थितं अपि तं न विषयं करोति॥

(विश्वनाथ चक्रवर्ती)

"प्रेम वै चित्वम्"-- प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्ष स्व भावतः। या विश्लेषधि यार्ति स्तत् प्रेम वैचित्वं उच्यति॥१॥　　(उज्ज्वल नील मणि शृङ्गार भेद १ श्लोक)

कभी कभी प्रेमी के प्रेमास्पद् अत्यन्त नजदीक होते हुए भी प्रेम अपने स्वाभाविक धर्म से इतना बढ़ जाता है कि प्रेमी को यह पता नहीं रहता कि उसका प्रेमास्पद उसके नजदीक ही है। प्रेम की उस विरही अवस्था को "प्रेम वैचित्ती" कहते हैं।

कभी कभी अनुराग में बुद्धि वृत्ति इतनी सूक्ष्म हो जाती है कि वह श्रीकृष्ण और उनके गुणों को एक साथ में ग्रहण नहीं कर पाती है। जैसे अत्यन्त सूक्ष्म सुई के नाके में एक बार में एक ही धागा परोया जा सकता है दो धागे नहीं परोये जा सकते हैं। इसी तरह सम्भोग अवस्था की अत्यन्त आनन्द निमग्न अवस्था में प्रेमी यह समझता है कि जो मुझ को भोग रहा है उसके सुरत लाम्पट्य, वाक चातुरी, गीत वाद्य तथा नृत्यादि में विशारद अनन्त कोटि गुण हैं उन अनेक गुणों में जब प्रेमी की बुद्धि वृत्ति जाती है तो वह वृत्ति युग पत सब गुणों को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाती है। इसलिये उस समय

में प्रेमी को प्रेमस्पद नजदीक होते हुए भी विरह प्रतीत होने लगता है उसी को "प्रेम वैचित्ती" कहते हैं। (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती)

यहाँ भी सुरत केलि सम्भोग अवस्था में श्रीलाल ललना अत्यन्त निमग्न हैं जो पद न० १५ में वर्णन कर चुके हैं। इसके फल स्वरूप "प्रेम वैचित्ती" होना स्वभाविक है। इसलिये श्रीलालजू सुरत केलि जन्य आनन्द को और श्रीप्रियाजू के अनन्त कोटि गुणों और उनकी रूप माधुरी के आनन्द को युगपत नहीं सम्हार सके। इसीलिये वह विरही सरीखे अलाप करने लगे जो कि पद न० १६–१७ में वर्णन किया जा चुका है।

दोहा——तुव पद प्रापति लालसा, लगी रहत उर मोर।
अहो आनँद-निधि स्वामिनी, हौं बलिहारी तोर।

॥ पद ॥१७॥

हौं बलि बलि आनन्दनिधे अब।
तुव पद प्रापति की रहै लालस बाल कहौ यह कौन विधे अब ॥
जानि परी जिय में न कछू यह बानि सदा सुखदानि रिधे अब।
श्रीहरिप्रिया अहो स्वामिनि तो बिन नाहिंन सूझत सर्बसिधे अब ॥१७॥

दोहा—हे आनन्द निधि स्वामिनी ! मैं आपकी वलिहारी जाऊँ। मेरे हृदय में, आपके चरणार विन्दु प्राप्ति की अभिलाषा हर समय लगी रहती है।

पद—हे आनन्द निधि प्रिया जू ! मैं आपकी वलैया लेता हूँ। आपके चरणार विन्दु प्राप्ति की जो अभिलाषा मेरे हृदय में लगी रहती है, उसको मैं किन शब्दों में वर्णन करूँ।

हे प्रिया जू ! आपकी आदत तो सदा सुख सम्पति प्रदान करने की है। इस समय क्यों इतनी देरी हो रही है। कुछ समझ में नहीं आता है। हे सर्व सिद्धियों को प्रदान करने वाली स्वामिनी जू ! आपके अतिरिक्त मेरे को और कोई ठौर नहीं सूझती है।

दोहा—लगत ललित कैसी अहो, लसनि हँसनि मुखचन्द।
देखहु देखहु री सखी, दम्पति छबि सुखकन्द ॥

॥ पद ॥१८॥

देखौ देखहु री छबि लाड़िली लाल की।
लगत कैसी ललित लसनि मुखचन्द की,

हँसनि मन्द मन्द मनहरनि इहि काल की ॥
छूटि रहि अलक श्रमबून्द बन झलक तन,
पलक ग्रीवाँ ढलक रलक उर माल की।
श्रीहरिप्रिया सुरत रसरङ्ग अङ्ग अङ्ग,
अलबेलि रहे झेलि रतिरेलि प्रीतपाल की ॥१८॥

पद नं० १५ में सब सखियां श्रीप्रिया प्रीतम के सुरति केलि जन्य सागर के आवर्त में निमग्न हो गई थी अब ज्यों ही वे उस आवर्त्त से निकल कर सावधान हुईं। वे रसिक दम्पत्ति के सुरति विहार की छवि को गायन करती हुई इस प्रकार कहने लगे।

दोहा—हे सखियो ! रसिक दम्पत्ति को सुख प्रदान करने वाली उस अभिलाषा मयी मुस्कराहट युक्त मुखार विन्दों की शोभा को देखो तो सही—कैसी सुन्दर लगती है। यह छवि सब सुखों से अधिक अन्तिम सुख प्रदान करने वाला है।

पद—लाल ललना की छवि देखो तो सही, कैसी सुन्दर लगती है। इस समय इन दोनों के मुखार विन्दों पर अभिलाषा मयी मनको हरने वाली मन्द मन्द मुस्कराहट है, सुरति केलि के श्रम से अलकें कुछ खुली हुईं हैं। तन पर स्वेद की बून्दे झलक रही हैं। पलक और ग्रीवा झुकी हुईं हैं। माला हृदय पर झूल रही है। श्रीप्रिया प्रीतम के अङ्ग अङ्ग सुरति रस रंग में सने हुए हैं। श्रीलालजू श्रीप्रियाजू विपरीत इस रति रेलि युद्ध में जो दोनों को परस्पर पोषण करने वाला है। अपने दिव्य मंगल विग्रह पर झेल रहे हैं।

नोटः—पाठान्तर "रहि" पाठ में यह अर्थ करना चाहिये श्रीलाल श्रीप्रियाजू श्रीलालजू को झेलि रही हैं।

दोहा—अङ्ग अङ्ग नागर नवल, पहरि कमल की माल।
मेरे हिय में सुख—सनें, बिलसौ दोऊ लाल ॥

॥ पद ॥१९॥

बिलसौ दोउ लाल मेरे हिय—सदन सुख—सने।
सुरत—रस—लीग अङ्ग अङ्ग नागर नवल,
कमल की माल लहलही डहडह तने ॥
मुकुट की लटक अरविन्द—पद परसिनी,

सरसिनी समर अद्‌भुत सु आनन्दघने।
श्रीहरिप्रिया ललित उरसौं मिली झिलिमिली,
दिलिमिली दिपति द्युति जोर जोबनजने ॥१९॥

पहले पद की विपरीत रति की छवि को देख कर श्रीहरि प्रिया सखी अभिलाषा करती हुई कहती हैं।

दोहा—श्रीस्वामिनी जी का दिव्य मङ्गल विग्रह जिस समय एक प्रकार की स्वर्ण कमलों की माला होकर श्रीलालजू के अंग अंग में लगी हुई हैं। तब श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं इस समय के सुख में सने हुए और सुरति केलि को विलसते हुऐ उन दोनों की रूप माधुरी मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

पद—यह रसिक दम्पति जो सुख में सने हुये और जिनके अंग अंग सुरति क्रीड़ा में लीन हो रहे हैं, सदा हृदय में रहें। इस समय डहडतें लहलह कमलों की माला स्वरूपा श्रीलड़ैंती जू के दोनों चरण लालजू के अंसों पर इस प्रकार से झूल रही है कि श्रीलाल जू का मुकट श्रीप्रिया जू के चरणार विन्दु से स्पर्श हो रहा है।

उपरोक्त स्मर युद्ध ने दोनों के हृदय को सरस बना दिया और अद्‌भुत प्रगाढ़ आनन्द प्रदान किया। इस समय इन दोनों के हृदय से हृदय, दिल से दिल मिले हुए झिलमिल झिलमिल कर रहे हैं। और इन दोनों के प्रगाढ़ यौवन की द्युति देदिप्यमान हो रही है।

॥ अनुरागिनि ललितानना मध्याभास ॥

दोहा—पिय-चुंबित छबि लसि रही, ऊमि ऊमि अङ्ग अङ्ग।
ललना ललित सुगति रली, मिलि लालनकें संग॥

॥ पद ॥२०॥

ललित गति लसी अहो बलि ललना लालन मिलि बिलसी।
ऊमि-ऊमि रही अङ्ग अङ्ग छबि चूमि चूमि बिलसी॥
सुरत-समर-सुख सनमुख सजनी रजनी रुख बिलसी।
श्रीहरिप्रिया अङ्क अङ्कित ह्वै अति निसंक बिलसी॥२०॥

शब्दः—लसि=सुशोभित होना, अभिलाषा करना, ऊँमि ऊँमि=गर्व युक्त नेति नेति वचन कहना रजनी रुख=सायंकाल, पिछले पद में जिस प्रकार श्रीलाल ललना का विराजमान होना वर्णन किया गया है। उसी विषय को पुनः निरूपण करते हुऐ श्रीग्रन्थकार कहते हैंः—

॥ दोहा ॥

श्रीस्वामिनीजू सुरति विहार में जिस समय श्रीलालजू के अङ्ग से मिली हुई हैं। उस समय श्रीलालजू श्रीस्वामिनीजी के चरणारविन्दों तथा अन्य अङ्गों को बार बार उमङ्ग उमङ्ग कर चुम्बन करते हुऐ सुशोभित हो रहे हैं।

॥ पद ॥

अहो! मैं श्रीलड़ैतीजू की बलिहारी जाऊं, उन्होंने सुरति केलि में कैसी सुन्दर गति ली है। श्रीलाल जू ने उनके उन चरणार विन्दु तथा अन्य अङ्गों को उमङ्ग सहित चूम चूम कर विलास किया है। जिन की छवि ऊँमि ऊँमि अर्थात् अब अङ्गों से प्रस्फुटित हो रही है। हे सजनी! यद्यपि रसिक दम्पति सुरत सुख में आरूढ़ हैं तो भी रजनी सरव अर्थात् कभी रात्रि जल्दी से समाप्त न हो जावे इस भय से पूर्ण विलास आस्वादन किया। यद्यपि निकुञ्ज विश्व में आप समय के आधीन नहीं रहते बल्कि समय ही रसिक दम्पति के आधीन रहता है तथापि माधुर्य विलास में उनको प्रकृति के समय सरीखा मय बना रहा है। श्रीहरि ने श्रीप्रियाजू के अंक में अंकित होकर बहुत निशंक भाव से विलास विलसा है।

॥ दोहा ॥

मृदुरस मत्त मोहन महा, सोहन अति अवदात।
अलकलड़े उरझे दोउ, सुरझि सकात न गात॥

॥ पद ॥२१॥

अलकलड़ी उरझी पिय उरसों पिय रहे अलकलड़ी उरझाइ उर।
मृदुरस मत्त महा मनमोहन सोहन सकत न तन सुरझाइ उर॥
अहल दोऊ अलबेले अङ्ग अङ्ग आढ़े गाढ़े गुन गुरझाइ उर।
श्रीहरिप्रिया निहारि बदन छबि जात मदन मन मद मुरझाइ उर॥२१॥

शब्दः—अवदात=सुन्दर, अलक लड़े=लाड़ करने योग, अहल=जन=आढ़े गाढे=

प्रगाढ़ आलिङ्गन गुण=गांठ=गुरु=भारी ।

॥ दोहा ॥

यद्यपि श्रीलालजू स्वयं अत्यन्त सुन्दर हैं। तो भी सुरति केलि जन्य मृदु रस में मत्त हो रहे हैं। रसिक दम्पति परस्पर इस प्रकार उरझे हुऐ हैं कि चेष्टा करने पर भी नहीं सुरझाऐ जा सकते हैं।

॥ पद ॥

लाड़ करने योग्य श्रीप्रियाजू प्रीतम के हृदय से उरझी हुई हैं। और प्रीतम उनके हृदय से उरझे हुऐ हैं। यद्यपि श्रीलालजू सबके मनों को मोहन करने वाले हैं। तो भी इस मृदु रस अर्थात् सुरति विहार में मत्त होकर श्रीलड़ैतीजू के दिव्य मंगल विग्रह से इस प्रकार उरझे हुऐ हैं कि चेष्टा करने से भी नहीं सुरझाऐ जा सकते हैं। ये दोऊ जन अत्यन्त अलबेले हैं। इनके अंग अंग प्रगाढ़ आलिंगन से इस प्रकार उरझे हुऐ हैं मानों किसी प्रेम रूपी रज्जू ने इन दोनों के हृदयों को बांध कर कोई गुरु गांठ लगा दी हो। इस प्रकार समय की रूप माधुरी को देख कर करोड़ों काम देवों के मन मुरझा जाते हैं। और उनके गर्व खंडित हो जाते हैं।

॥ अनुरागिनी विश्वाभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

उमँग अङ्ग अङ्ग रंग भरे, सुढरे सुभग सुजान।
रसिकरवन मोहन रसिक, रवनी करि रस पान॥

॥ पद ॥ २२ ॥

रसिकरवनी रसिकरवन मोहन मदन बदन रस पान करि मत्त मन।
उमँग अँग अङ्ग रङ्ग भरे सुढरे सुभग सोभा सुदरसनी धनी धन॥
डहडहे सुरत—सर कञ्ज मधु महमहे लहलहे ललित तन।
श्रीहरिप्रिया प्रियाहरि अदलबदल बिपुल पुलक छबिछलक आनंदघन २२

शब्दः—सुभग=सौभाग्य युक्त, सुजान=चतुर, महमहे=सम्मान करते हुऐ, विपुल पुलक=भारी रोमांच।

॥ दोहा ॥

सौभाग्य युक्त चतुर मदन मोहन ने जब श्रीलड़ैतीजू (रमनीजू) के सुरति केलि

जन्य रसको पान किया तब उस उमंग के रंगसे उनके अङ्ग अंग भरकर अत्यंत सुशोभित हुऐ।

पद—रसिक रमनी श्रीलड़ैती जू और रसिक रमन श्रीलालजू साक्षात काम देव के मन को भी मोहन करने वाले हैं। इन दोनों के मन परस्पर अधर रस पान करने से मत्त हो रहे हैं। इन धनीधन अर्थात् प्रिया प्रीतम के उस उमंग के रंग से अंग अंग भरे हुऐ अत्यंत सुशोभित हैं। इस समय ये ऐसे लगते हैं, मानों सुरति केलि रूप सरोवर के ये खिले हुये दो नील पीत कमल हों। जो परस्पर लहलहाते हुए मधु और सौरभ का स्राव कर रहे हों। इस समय ये विपरीति विहार में प्रवंत हैं। इसीलिये श्रीहरि प्रिया स्वरूप से और श्रीप्रिया जी श्रीहरि स्वरूप से अदल बदल गये हैं। दोनों के अंगों में भारी रोमांच हो रहा है। इस समय प्रगाढ़ आनन्द इनके अंगों में समाया नहीं जाता है। इसीलिये वह छलक छलक कर बाहर उझल रहा है।

दोहा—अदलबदल छबि रही फबि, बिपुल पुलक दुति दौन।
राजत रंगरङ्गीले दोउ, रमत रहसि रति रौन॥

॥ पद ॥२३॥

राजत रङ्गीले दोउ रसिक रसीले लाल,
रसमसे रहसि रमति रतिरौन रंग।
अदलबदल छबि अति दुति रही फबि,
उपजत चाव हाव भावनि भरे अभङ्ग॥
गौर स्यामल सरीर सुरत समर धीर,
बिन चीर बिहरत बिपुल पुलक अङ्ग।
श्रीहरिप्रिया लखि हियें हुलसानी होरी,
जोरी सुखसानी सोहैं सरस सुभग संग॥२३॥

शब्दः—दौन=दोनों, रौन=रमण, विहार, रसमसे=रस में भीगे हुऐ, पूर्व पद में विपरीति रति की छवि का वर्णन किया जा चुका है। उसी विषय को फिर निरूपण करते हुये कहते हैं।

दोहा—इस समय इन दोनों की अदल बदल हुई छबि कैसी सुशोभित हो रही है, दोनों के अंगों में रोमांच हो रहे हैं। और ये दोनों रसीले इस समय रति रमण में निमग्न हैं।

पद—ये दोनों रंगीले रसिक रसीले, लाल रस में भीगे हुऐ रह रति रमण विहार में निमग्न हैं। इस समय इनकी अदल बदल अर्थात् विपरीति रति विहार की शोभा देदीप्यमान हो सुन्दर फवि रही है। जो कि चाव हाव भावों को निरंतर रूप से प्रगट कर रही है। ये रसिक दम्पति जिनके दिव्य मंगल विग्रह गौर श्याम है। यह दोनों सुरत समर धीर इस समय विन चीर सुरति युद्ध विहार कर रहे हैं। इनके अंगों में बड़े भारी रोमांच हो रहे हैं।

दूसरी सखी से कहि रही हैं श्रीहरि प्रिया सखी सुख में सनी हुई हे सखी। इस जोरी के दर्शन से मेरे हृदय में अत्यन्त उल्लास है यह चाहती हूँ कि मैं इनके सरस सुभग संग को आस्वादन करती हुई इनकी सेवा में सदा विराजमान रहूँ।

दोहा—जलतरंग ज्यों नैन में, तारे रहे समोय।
प्रेमपयोधि परे दोऊ, पल न्यारे नहिं होय॥

॥ पद ॥२४॥

प्रेमपयोधि परे दोउ प्यारे निकसत नाहिंन कबहुँ रैन दिन।
जलतरंग नैननि तारे ज्यों न्यारे होत न जतन करौ किन॥
मिले हैं भाँवते भाग सुहाग भरे अनुराग छबीले छिन छिन।
श्रीहरिप्रिया लगे लग दोऊ निमिष न रहें ये इन ये इन बिन॥२४॥

शब्दः—तरंग=लहरें, । तारे=पुतलियां। पयोधि=समुद्र लगे लग=चिपटे हुऐ।

दोहा—प्रेम सागर में श्रीप्रिया प्रीतम इस प्रकार से निमग्न होकर एक पल के लिये भी अलग अलग नहीं हो सकते हैं। जैसे-जल से तरंगें और नेत्रों से पुतलियां न्यारी नहीं हो सकती हैं।

पद--ये दोऊ प्यारे प्रेम रूपी सागर में अहरनिशि डूबे रहते हैं उससे क्षण भर के लिये भी बाहर नहीं निकलते हैं। जैसेः—जल से उसकी लहरें और नेत्रों से पुतलियाँ यत्न करने से भी अलग नहीं हो सकती हैं। इसी प्रकार ये दोनों भावते छवीले सुन्दर भाग्य सौभाग्य और अनुराग से भरे हुये मिले रहते हैं। एक छिन (क्षण) के लिये भी अलग अलग नहीं हो सकते हैं। ये दोनों गाढ़ आलिंगन किये हुये परस्पर चिपटे रहते हैं। एक पल के लिये भी श्रीहरि श्रीप्रियाजू से और श्रीप्रिया श्रीहरि से अलग नहीं रह सकते हैं।

दोहा—पागे प्रेम सिंगार में, भींजे सहज सुरंग।
बाग बिसद अनुराग दिबि, अमृत के बिबि अंग॥

॥ पद ॥२५॥

अमृत की बिबि मूरति मोहनी मोहनजू रसरँग भीने।
प्रेमसिंगार में पागे हैं प्रीतम अङ्ग अङ्ग बस रँग भीने॥
अति अनुराग के बागमें बिहरत बितन बिपुल लस रँगभीने।
श्रीहरिप्रिया सु जीवनि जोरी प्रगट बिसद जस रँग-भीने॥२५॥

शब्द:—वितन=कामदेव। लस रंग भीने=अभिलाषामयी रंग से रंजित।

दोहा—प्रिया प्रीतम के दिव्य मंगल विग्रह अम्मृत के हैं। ये दोनों स्वाभाविक सुन्दर, प्रेम, और भृंगार रंग में भीजे रहते हैं। इन दोनों के विहार करने का दिव्य अनुराग ही बगीचा है।

पद—श्रीलाल ललना दोनों के मंगल विग्रह अमृत के हैं। श्रीलाल जू "रस" प्रिया जू "रंग" में भीजी हुई हैं। श्रीप्रीतम "भृंगार" श्रीप्रिया जू "प्रेम" में पगी हुई हैं, श्रीलाल जू के अंग अंग "वश रंग" में भीगे हुऐ हैं। अर्थात श्रीप्रीतम ने अपने आप को सर्वथा प्रियाजू के आधीन कर रखा है। दोनों "अनुराग" के बाग में निरन्तर विहार कर रहे हैं। उभय परस्पर के दिव्य "काम" से अत्यन्त पीड़ित हैं। श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि यह जोड़ी "विशद यश" प्रकट करने के लिये ही प्रकटी है। मेरे प्राणों की जीवन स्वरूप है।

टिप्पणी:—१—"आनन्द रूपम मृतं यद्वि भाति" (मु० उपनिषत्)
"इत्यत्रापि रूप पदं विग्रह समर्पकं।"

जिनके स्वरूप आनन्द अमृत से सुशोभित हैं। यहां 'रूप' पद विग्रह बाची है।

पुनः यथा:— "अमृतांशोऽमृतवपुः" (महाभारत)

श्रीकृष्ण का वपु अमृत का है, स्वर्ग का अमृत आपका अंश-स्वरूप है।

पुनः यथा:— "अखिल रसामृत मूर्तिः प्रसृमर रुचि रुद्ध तारकापालिः"। (भक्ति-रसा-सिन्धौ)

श्रीकृष्ण अखिल रस रूपी अमृत की मूर्ति हैं।

२:—मोहन जू रस में भीजे हुऐ हैं। यथा:—

"रसो वैसः । रस ㆍ ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति ।" (उपनिषद्)

श्रीकृष्ण रस स्वरूप हैं जिनको प्राप्त करके जीव नित्य आनन्द लाभ करता है ।

३:—श्रीमोहिनी जू "रंग" में भीजी हुई हैं । यथा:—

"श्रीराधिके सुरतिं रंगि नितम्ब भागे ।" (श्रीरा. सु. निधी श्लोक १६)

हे सुरत रंग से रंञ्जित नितम्ब वाली श्रीराधिके !

४:—श्रीप्रिया जू "प्रेम" में पगी हुई हैं । यथा:—

"प्रीतिरिव मूर्ति मती" । (श्रीरा. सु. नि. श्लो. ११६)

श्रीप्रिया जू प्रेम की मूर्ति हैं ।

५:—श्रीलाल जू "शृंगार में पगे हुए हैं । यथा:—

"शृंङ्गार रस सर्वस्वं शिखि पिञ्छ विभूषणम् ।

अङ्गीकृत नराकारमाश्रये भुवनाश्रयम् " ।। श्रीकृष्ण करुणामृत

मैं नराकर स्वरूप उन श्यामसुन्दर का आश्रय लेता हूँ । जो शृंगार रस स्वरूप हैं, मोर मुकुट से विभूषित तथा जो सब भुवनों के आश्रय-स्वरूप हैं ।

६:—"प्रीतम अँग अंग वश रंग भीने"

श्री प्रीतम ने अपने आपको सर्वथा श्रीप्रियाजू के आधीन कर रखा है । क्योंकि श्रीलालजू "धीर ललित" नायक हैं अतः ये इनका यह स्वाभाविक ही गुण है । यथा:—

"विदग्धो नव तारुण्यः परिहास विशारदः ।

निश्चिन्तो धीर ललितः स्यात्प्रायः प्रेयसीवशः ।।" (भक्ति र. सि.)

जो रसिक शिरोमणि नव कैशोर हास्य परिहास में चतुर, चिन्ता रहित तथा प्रायः अपनी प्रिया के आधीन रहता है, उसको "धीर ललित" नायक कहते हैं ।

७:—"अति अनुराग के बाग में बिहरत ।"

ये दोनों अति अनुराग अर्थात् प्रेम के बाग में विहार करते हैं । यथा—

"परस्परं प्रेम रसे निमग्नमशेष सम्मोहन रूप केलि ।

वृन्दावनान्तर्नव कुञ्ज गेहे-तन्नील पीतं मिथुनं चकास्ति ।"

(रा. सु. नि. श्लोक १६६)

वह नील पीत रसिक दम्पति वृन्दावन नव कुञ्ज गेह में सुशोभित हैं जो परस्पर प्रेम रूपी रस में निमग्न हैं । जिनके रूप तथा केलि सबको सम्मोहन करने वाली है ।

८:––"वितन विपुल लस रंग भीने"

दोनों परस्पर के "काम" से अत्यंत व्याकुल हैं। यथा:––

"रसावतार विस्तारं वंशी वादन सुन्दरम्।
रति काम मदा क्लांतं राधा कृष्ण भजाम्यहम् ॥" (रास विलास तन्त्र)

मैं उन श्रीराधाभाधव को भजता हूँ। जिनका अवतार ही रस को विस्तार करने के लिये है। जो सुन्दर बंशी बजा रहे हैं और जो परस्पर के दिव्य रति काम मद से अत्यंत पीड़ित हैं।

॥ दोहा ॥

प्रेम-पुहुमि पर अरि रहे, टरत न रन जुरि जोट।
मतवारे घूमत महा, नेह अगड की ओट ॥

॥ पद ॥

नवरंग भीने नेह अगड में नींद घूरे घुमत मतवारे।
निपट निसंक सुरत रन जीते सकल कला संपूरन भारे ॥
झूमि झूमि झपकत झिझिकत दृग सिथिलगात नहिं जात सम्हारे।
श्रीहरिप्रिया प्रेम पुहुमीपर अरि रहे परत टरत नहिं टारे ॥२६॥

शब्द:––पुहुमि=पृथ्वी। रन=सुरति युद्ध। नेह अगड=प्रेम या काम-की वडवाग्नि। समुद्र की आग।

॥ दोहा ॥

श्रीलाल ललना सुरति युद्ध कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनों प्रेम रूपी पृथ्वी पर लड़ रहे हों। ये दोनों प्रेम या काम रूपी वडवाग्नि में मतवारे होकर घूम रहे हों।

॥ पद ॥

ये दोनों नव रंगी लाल प्रेम या काम रूपी वडवाग्नि में मतवारे होकर घूम रहे हैं। ये सुरति केलि जन्य सम्पूर्ण कलाओं से भरपूर हैं। और बिल्कुल निशंक होकर झूम झूम कर सुरति युद्ध कर रहे हैं।

सुरति केलि के श्रम से इनके गात इतने शिथिल हो गये हैं कि संभारे नहीं जा सकते हैं, और नेत्र कमल झिझकते से और कुछ निद्रा की तरह झपकते हुऐ से प्रतीत होते हैं। श्रीहरि प्रिया जी कहती हैं कि ये प्रेम रूपी पृथ्वी पर अड़े हुऐ सुरति युद्ध कर रहे

हैं और इस युद्ध से एक क्षण के लिये भी विराम नहीं होते हैं। प्रेम युद्ध से तात्पर्य है तत्सुख सुखी युद्ध एक दूसरे को अधिक से अधिक सुख प्रदान करने के लिये होड़ा होड़ी युद्ध कर रहे हैं।

॥ अनुरागिनि विलासावलि मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सहज सनेही देहि द्वै, दीपति दिनहिं अपार।
नित्यबिहारी जय हूँ या, बिलसनि पर बलिहार॥

॥ पद ॥२७॥

जय जय श्रीनवनित्यबिहारी, हौं या बिलसनि पर बलिहारी।
सदा सहज सुख सुरत सनेही, एक प्रान दीपति द्वै देही॥
देही द्वै दीपति दिनहिं दिन छिनहिं छिन रतिरंग रँगे।
एक बैस किसोर जोबन जोर अद्‌भुत अङ्ग अँगे॥
सकल निसि बिलसे बितन तउ तृपति तनक न मन रने।
चढ़े चोज मनोज मूरति महामङ्गल रस सने॥
सुभग सेज सुन्दर सुखदाई, मृदुल सुरञ्जु मञ्जु मन भाई।
तापर स्याम निवेसित गोरी, करत बिनय रुख लियें किसोरी॥
लियें रुख सनमुख किसोरी पलक पायन परसहीं।
सदय हृदय निहारि निज उर धरि मधुररस बरसहीं॥
पुलक प्रेम उमंग हिलि मिलि रहसि रँग रलें हितें।
अघट घटना अहह इनकी सुनी हि न देखी कितें॥
कोक कला में कुसल दोऊ ये, अति गति के आधीस कोऊ ये।
कौन सकति आई इनि माहीं, अधिक अधिक अधिकातिहिं जाहीं॥
अधिक अधिकहिं जाति हैं अधिकाति राति न दिन गिनें।
बात सी कोऊ बात है उमगाति अति मति प्रति छिन॥
तैसियै अनुकूल फल दल सुमन संपति सदन की।
झेलि रहि रसरेलि केलि सहेलि अनमित मदन की॥

गरब रोष आहूँसी करहीं, भौंह चढ़ाय नाक सर धरहीं।
श्रमबन बून्द बदन तन झलकें, कबहुँ झिझिकि झपकति हैं पलकें॥
पलकें झपकाति हैं कबहुँ मुरिजाति अलबल बलकि कें।
सिथिल गति सुकुँवारि अति लगि लसति पिय गर ललकि कें॥
मनहुँ मरकत कनकमनि खचि रची रति रागावली।
अहल अलबेले मिथुन आनन्द अहलादिनि अली॥
यद्यपि जुगल सहज सुकुंवारा, तद्दपि रस बस रमत बिहारा।
सुभट सिरोमनि धीर अधीरा, सकत न तनक सम्हारि सरीरा॥
सरीरहिं न सम्हारि सकत मदोन्मत्त महा अचगरे।
सकल जान सयान परिहरि प्रेम-जाला में परे॥
पाग खसि घसि माँग ते रहि लरकि लरबर बालकें।
पीक लीक कपोल अञ्जन अधर महावर भालकें॥
यह छबि सदा बसो हिय मेरें, न्यारे होउ न साँझ सबेरें।
देखि देखि जीऊँ या जोरी, लगी रहो नित अँखियाँ मोरी॥
मोरी अँखियाँ लगी रहौ नित और अभिलाष न चहौं।
धन्य भाग मनाय महलनि टहल में ततपर रहौं॥
अहो करुनामय कृसोदरि अनुग्रह मो पर करौ।
बिसद बर-दातार हद-बन-जात-पद मम हृद धरौ॥
सावधान अब यों नहिं करिये, रुखहीं लै सब सुख बिस्तरिये।
ये महामृदुल मनोहर मूरति, सही परति कैसें इनिपै अति॥
अति परति कैसें सही इनिपै नेक नैननि निरखिये।
आतुरी ते कहा ऐसो होत जो धीरज लिये॥
बदल-सी गई बाल मानहुँ माल-सी मुरझाय कें।
रसबिलासहिं चहत तौ तौ लेहु लाल मनाय कें॥
प्रिया सैन सहचरि समझाई, समझि सैन में चैन सिहाई।
यह रस दुर्ल्लभ हू तें दुर्ल्लभ, बिना कृपा कैसे लहैं सुल्लभ॥

सुल्लभ कैसे लहैं कृपा बिन महा अगम अगोचरा।
सेषहू नहिं लहत जाको पार अपरं परपरा॥
जयति श्रीहरिप्रिया जोरी चिदानन्द प्रकासिनी।
अबिकृता कृति कोटि मनमथ मोहिनी कलभाषिनी॥२७॥

दिनहिं=अहर्निश । वयस=अवस्था । वितन=कामदेव । तऊ=तोभी । चोज मनोज=काम संबन्धी गुप्त रहस्य । सुरंजु=भली प्रकार संतुष्ट करने वाली । शकति=शक्ति । नाकशर=नाक में सलवटे पड़ना । फलदलसुमन सम्पत्ति सदन की । श्रीस्वामिनी जी का दिव्य मङ्गल विग्रह । श्रमवन=स्वेद जल । अलवल=अव्यक्त शब्द कहना । मरकत= नीलमणि । कनकमनि=स्वर्ण (कनक) मणि । रागावलि=रंग रागावली सेवत रंग है । अचगरे=रसास्वाद में अग्रणी । विशद वर दाता । बड़े वर को देने वाले । रहद=रह्+ अद अर्थात् एकान्त स्वादनी । सावधान=खबरदार । अविकृता=अप्राकृत अर्थात् कृति रहित कृति । मन्मथ=कामदेव । उपरोक्त पद में सुरति केलि विहार का वर्णन है । यह विहार अप्राकृत है । पहले पद नं० २४-२५ तथा पद नं० २६ में श्रीप्रिया प्रीतम तथा विहार का स्वरूप विस्तार पूर्वक वर्णन कर चुके हैं । अब विहार में प्रवर्त श्रीलाल ललना के स्वरूप की छवि का वर्णन करते हुऐ कहते हैं:--

॥ दोहा ॥

श्रीलाल ललना स्वाभाविक स्नेही हैं, अतः इनकी प्रीति नित्य अखण्ड है । इनके दो देह केवल दीखने मात्र हैं । वास्तव में ये दोनों एक ही हैं । नित्य विहारी विहारिणी के नित्य बिहार के विलसनि पर मैं बलिहारी जाती हूँ ।

॥ पद ॥

ये दोनों अहर्निश रति रंग में रंगे रहते हैं । इनका एक छिन भी इस विलास के व्यतिरिक्त नहीं व्यतीत होता है । इन दोनों की एक सी किशोर अवस्था है । इनके अंग अंगों में अद्भुत यौवन का वेग व्याप्त है । यद्यपि सारी रात्रि इन्होंने दिव्य काम को विलसा है तो भी इनके मन में तनिक भी तृप्ति नहीं है ।

ये दोनों काम संबंधी गुप्त-रहस्य की मानों मूर्त्ति हैं । उसी महा मङ्गल रस में सने हुऐ हैं ॥१॥

सुभग, सुन्दर, मृदुल, सुखदायी, मनभाई और भली प्रकार संतुष्ट करने वाली

शैय्या पर विनय पूर्वक श्रीलालजू ने श्रीप्रियाजू को पधराया है। ज्यों ही उन्होंने श्रीलड़ैती जू के रुख को देख कर सुरति बिहार के लिये विनय करते हुऐ अपने नेत्र कमलों से श्री किशोरीजी के चरणारविन्दों को स्पर्श किया त्यों ही श्रीप्रियाजू ने आद्री भूत होकर उनको अपने हृदय से लगा कर सुरति केलि जन्य मधुर रस की बर्षा की अर्थात अधरामृत से सीचा। प्रेम की उमंग से पुलकित होकर जब दोनों हिले मिले और परस्पर हित से रंग खेल में प्रवर्त हुये, उस समय उनकी अघट घटना इस प्रकार की हुई जो न तो कहीं सुनी और न कहीं देखी ।।२।।

ये दोनों कोककला में इतने कुशल हैं, मानो अति रति विहार कौशल के कोई नृपति हों। यद्धपि ये अत्यन्त ही सुकुमार हैं। मालूम नहीं कि इस समय कौन शक्ति इनमें आ गई है। जिससे कि इनका विहार संबंधी बेग रात दिन बढ़ता ही जा रहा है। छिन छिन में इनकी उमंगे अधिक होती जा रही हैं। क्या बात है। बुद्धि निर्णय नहीं कर सकती है। इस समय श्रीलालजू की अभिलाषाओं के अनुकूल ही श्रीस्वामिनीजी ने अपने दिव्य मङ्गल विग्रह को कर रखा है। और उस रस रेलि केलि के वेग को श्रीप्रियाजू अनंत मदन सम्बन्धी अङ्ग सङ्गनी सहेलियों द्वारा झेल रही है ।।३।।

वह गर्व रोष युक्त शीतकार शब्द करती हुई नाक पर सलवटें डालकर भोंहे चढ़ाती हैं। श्रीस्वामिनीजी के श्रीअङ्ग और मुखार विंदु पर स्वेद की बून्दे झलक रही हैं। और कभी उनके नेत्र कमल झिझक कर झपक जाते हैं। कभी कभी वह मुड़ कर अलवल– अव्यक्त शब्द कहने लगती हैं। इस समय अति सुकुमार होने से उनकी गति अत्यन्त शिथिल हो गई है। और वे लालजू के गले से लगी हुई इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं मानों नील मणि में स्वर्ण मणि का जड़ाव हो रहा हो। यह सब रति रंग विहार रति रागावलि अन्तरङ्गा अङ्ग सङ्गिनी की करतूत है।(रागा वलिजू सेवति रंग हुँ-तालिका)

वास्तव में आनन्द और अह्लादिनी शक्ति ने ही इन दोनों अलबेले जनों के जोड़ा का स्वरूप धारण कर रखा है ।।४।।

यद्धपि दोनों स्वाभाविक ही सुकुमार हैं। तो भी रस के वशीभूत होकर विहार करते हैं। ये सुरति युद्ध के सुभट, शिरोमणि, धीर, योद्धा होकर भी अत्यन्त अधीर हैं। यहाँ तक कि रस के आवेश से ये अपने शरीरों की भी तनक संभाल नहीं कर सकते हैं। ये दिव्य काम के मद से उन्मत्त हैं। ये दोनों रसास्वादन में महा अग्रणी हैं। इसीलिये दिव्य काम ने इनका सकल ज्ञान और बुद्धिमत्ता को हर लिया और इन दोनों को प्रेम जाल में फंसा दिया।

इस समय ये इस प्रकार से विराज रहे हैं कि लालजू की पाग घिस खिस कर श्रीप्रियाजू की मांग और मोतिन लड़ी से मिली हुई है। प्रियाजू के कपोल लालजू की पीक से, इन्हीं के अंजन से लालजू के अधर और इन्हीं के महावर से लालजू का मस्तक चिह्नित है ।।५।।

सखियाँ यह प्रार्थना करती हैं कि "उपरोक्त छवि हमारे हृदय में सदा विराज-मान रहे। किसी समय सांझ सवेरे भी अलग न हों। इस जोरी को हम देख देख कर जिया करू । हमारे नेत्र नित्य इसी झाँकी को देखते रहा करें। हमारी और कोई भी अभिलाषा नहीं है। केवल प्रिया प्रीतम के महल की टहल करती हुई ही अपना धन्य भाग्य मनावें।"

अब श्रीलालजू विपरीति रति की प्रार्थना करते हुऐ कहते हैं। कि " हे कृशोदरि स्वामिनी जी! मुझ पर यह अनुग्रह करो कि आपके बड़े वर को देने वाले, एकान्त आस्वादनी चरणारविन्दों को मेरे हृदय पर धरो।" ।।६।।

यह सुनकर श्रीहरि प्रियाजू श्रीलालजू को ऐसा करने से रोकती हुई यह कहती हैं:—"खबरदार! आप ऐसा न करें। श्रीस्वामिनी के रुख को लेकर ही सुख का विस्तार करें। इनका अत्यन्त कोमल स्वरूप है। आप इनकी ओर नेंक दृष्टि उठा कर तो देखें—इनसे इतना परिश्रम कैसे सहन हो सकता है। जल्दी करने से क्या लाभ है। नेंक धीरज धारण करिये। इस समय श्रीस्वामिनी जी कोमल फूलों की माला की तरह मुर झाई हुई हैं।

हे लाल! यदि आप विलास रस का आस्वादन करना चाहते हैं तो इनको लाड़ सहित विनय पूर्वक मनाइये ।।७।।

इस समय सहचरी ने अपने नेत्र–इंगित से श्रीप्रियाजू को मान करने के लिये समझा दिया, श्रीप्रियाजू उनके इंगित को समझ कर अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

ग्रन्थकार पद को समाप्त करते हुऐ कहते हैं। "उपरोक्त रस दुर्लभ से भी दुर्लभ है। यह रस बिना श्रीलाल ललना की कृपा के किसी प्रकार भी सुलभ नहीं हो सकता है। यह रस वेद शास्त्र में भी अगोचर है।

यद्यपि श्रीशेषजी पर भगवान शयन करते हैं, तो भी इस अगाध रसको शेष भी नहीं जानते हैं। अप्राकृत–विकार रहित करोड़ों कामदेवों के मन को मोहन करने वाली,

मधुर भाषण करने वाले श्रीहरिप्रिया की उस जोरी की सदा जय हो। जो सत्चित् आनन्द को प्रकाश करने वाली है ॥८॥

यथा:—"जाके पद नख ज्योति की आभा को अणुलेश। जगमगात है जगत में पार ब्रह्म परमेश" (म: सि: सु) निर्विशेष परब्रह्म को आप ही प्रकाश करने वाले हैं।

॥ दोहा ॥

मान मनावत मानिनि, पिय लै लै बलिहारि।
लालबिहारी सेज-सुख, मुख रुख रहे निहारि॥

॥ पद ॥२८॥

बिहरत सेज बिहारिनी सँग लाल बिहारी।
लाल लड़ीली रुख गहें मुख रहे निहारी॥
मान मनावत मानिनी आज्ञा अनुसारी।
श्रीहरिप्रिया पद-पद्म की लै लै बलिहारी॥२८॥

पद पद्म=चरणारविन्दु। अधिक रस वर्धन के हेतु से सखी ने लालजू को विपरीति रति विहार में प्रवर्त होने से रोककर पहले लाड़ चाव से विनय पूर्वक श्रीप्रियाजू को मनाने के लिये उनसे प्रार्थना की थी, उसी के अनुसार श्रीलालजू श्रीस्वामिनी को मनाते हुऐ कहते हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीलालजू विपरीति रति विहार की आकांक्षा से प्रियाजू के मुख की ओर उनका रुख देख कर बार बार बलिहारी ले लेकर मान मना रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीस्वामिनी जी लालजू के साथ सेज विहार में प्रवर्त हैं। श्रीहरि, श्रीप्रियाजू के चरणारविन्दों की बार बार बलिहारी लेते हुऐ सखी की आज्ञा के अनुसार मान मनाते हुऐ श्रीलाड़ली जू के रुख को देख कर उनके मुख की ओर देख रहे हैं। कि कब मेरी प्रार्थना स्वीकार होगी।

॥ दोहा ॥

या अनन्य-ब्रत-पोत के, हौ तुम खेवनहारि।
मोहिं कृपा करि देहु अँग, सँग सेवा सुकुँवारि॥

॥ पद ॥ २९ ॥

मोहि कृपा करि दीजिये अँग-सङ्ग की सेवा।
अहो बिहारिनि लाड़िली मेरें तुम देवा॥
या अनन्य-ब्रत पोत के हौ तुमही खेवा।
श्रीहरिप्रिया जू सौं सौंह दै पूछौ किनि भेवा॥२९॥

पोत=नाव, वेड़ा जहाज। खेवनहार=जहाज को चलाने वाले। पार करने वाले मल्लाह। भेवा=भाव, अभिप्राय॥

दोहा—श्रीलालजू कहते हैं। मेरी एक मात्र आपके अंग संग सेवा करने की ही अभिलाषा है। अतः आप कृपा करके यह सेवा मुझे प्रदान करें। सेवा सम्बन्धी मेरे इस अनन्य वृत रूपी वेडा को आप ही पार लगा सकती हो।

पद—हे विहारिणी लाड़ली! मेरे एक मात्र तुमहीं उपास्य देव हो। कृपा करके अपने अङ्ग सङ्ग की सेवा प्रदान करें। मेरे इस सेवा सम्बन्धी अनन्य वृत रूपी जहाज के तुमहीं पार लगाने वाले मल्लाह हो।

श्रीहरि प्रियाजू सखी से सौगन्द दिलवाकर इसका अभिप्राय क्यों नहीं पूछती हो ?

॥ दोहा ॥

तुम जिन करतें परिहरौ, बिनती सुनि लीजै जु।
श्रीकरुणानिधि लाड़िली, इतनी कहा कीजै जु॥

॥ पद ॥३०॥

श्रीकरुणानिधि लाड़िली इतनी कहा कीज।
नित प्रतिपारे हैं तिन्हें दरसन-दान दीजै॥
तुम जिन करतें परिहरौ तुमहीं तें जीजै।
श्रीहरिप्रिया जन जानिकें बिनती सुनि लीजै॥३०॥

करते=हाथ से। पारे हैं=पाले हैं। पहले पद नं० २९ में अङ्ग सेवा की प्रार्थना की गई थीं। ज्योंही श्रीलालजू ने श्रीप्रियाजू के चरण सहराने की अङ्ग सेवा प्रारम्भ की, त्योंही श्रीस्वामिनीजी ने मना करते हुऐ उनके हस्त कमल पकड़ लिये।

श्रीलालजू उसी प्रसंग में श्रीस्वामिनीजू से विनती करते हुऐ कहते हैं।

दोहा—हे लड़ैंती जू ! आप मेरे हाथों को न हटाओ । हे करुणानिधि ! मेरी विनती तो सुन लीजे ।

पद—हे दया के सागर स्वरूप लड़ैंतीजू ! मेरी इतनी प्रार्थना तो सुन लीजिये । जिनको आपने अपनी कृपा दृष्टि से पोषण किया है । उनको तो दर्श दान प्रदान करिये । आप मेरे हाथों को हटाऐं नहीं । आपको देख कर ही हम जीवित हैं । श्रीहरि प्रिया सखी के जन (टहलवा) समझ कर ही मेरी विनती स्वीकार करें ।

॥ दोहा ॥

प्रानप्रिया सुखदा सदा, श्रीस्यामा सुकुँवारि ।
राधे लाड़ गहेलड़ी, अलबेली रिझवारि ॥

॥ पद ॥३१॥

अहो बलि लाड़गहेलड़ी राधे अलबेली रिझवारि ।
श्रीस्यामा अभिरामा रामा सुखधामा सुकुँवारि ॥
प्रान प्रीतमा प्रिया प्रेयसी प्रेमा परम उदारि ।
श्रीहरिप्रिया सलोनी सुन्दरि साहिबनी सिरदारि ॥३१॥

लाड गहेलड़ी=अत्यन्त प्यारी लड़ैंतीजू । प्रेयसी=प्रिया प्रेम=प्रेम स्वरूपा । जो प्रार्थना लालजू ने पहले पद नं० २७-२८-२६।३० में की थी । मानों जब श्रीस्वामिनी जी ने श्रीलालजू का मनोरथ पूर्ण कर दिया, तब श्रीलालजू अनेक संबोधनों द्वारा श्रीस्वामिनी जी की विरदावलि गायन करते हुऐ कहते हैं ।

पद—हे राधे ! हे अत्यन्त प्यारी लड़ैंती जू ! हे अलवेली रिझवारि ! हे प्राणों से भी अधिक प्रिय ! सदा सुख प्रदान करने वाली सुकुमारि श्रीश्यामा जू !

पद—हे राधे ! आप अलवेली रिझवारि हो । हे अत्यन्त प्यारी लड़ैती जू ! मैं तुम्हारी बार बार वलिहारी जाता हूँ । हे श्यामाजू ! आप मेरे को सुख प्रदान करने वाली हो । हे सुकुमारीजू ! आप ही मेरे सुख के धाम स्वरूपा हो । हे परम उदार प्रियाजू ! आप मुझको प्राणों से भी अधिक प्यारी लगती हो । हे प्यारी जू ! आप ही प्रेम स्वरूपा हो । हे श्रीहरि की प्रिया ! आप ही सुन्दर सलौंनी साहिबनी सिरदारिनी हो ।

॥ अनुरागिनि टहलतत्परा मध्याभास ॥

दोहा—अहल टहल तत्पर सबै, चहल पहल हिलि हेज।
मिलि महलनि बिलसावहीं, लै दम्पति सुख सेज ॥

॥ पद ॥३२॥

बिलसत दम्पति अति सुख संपति मृदुल सेजपर हेज बिहार।
तत्पर अहल टहल में महलनि चहल पहल रस रहस निहार ॥
कोककला कोविद रनधीर न सकत सरीर न चीर सम्हार।
श्रीहरिप्रिया मदन मनमोहन हिलिमिलि बाढ्यौ रंग अपार ॥३२॥

अनुरागिनी टहल तत्परा मध्याभास=टोडी राग। अहल टहल=सेवा करने वाले जन। (यहां पर सेवा करने वाली सखियां से तात्पर्य है)। चहल पहल=भीड़ भाड़। हिलि=स्वेच्छानुसार क्रीड़ा करना। हेज=प्रेम। महलनि=महल में रहने वाली विशेष अधिकार प्राप्त सखियां।

दोहा—सेवा करने वाली सब सखियां सेवा में लगी हुई हैं। जिनकी बड़ी भारी भीड़ हो रही है। उस समय महलों में रहने वाली वे सखियां जिनको सुरति केलि सम्बन्धी विशेष अधिकार प्राप्त हैं। वे रसिक दम्पत्ति को सुख सेज में विराजमान करा कर अपनी इच्छानुसार प्रेममयी विलासों को विलसवा रही हैं।

पद—रसिक दम्पति कोमल शैय्या पर अति सुख सम्पत्ति रूप प्रेम मयी बिहार को विलस रहे हैं। सेवा समाधान करने वाली सखियां सेवा में लगी हुई हैं। और विशेष अधिकार प्राप्त महल में रहने वाली सखियां रहस्य रस भरी लीलाओं को देख रही हैं। जिनकी बड़ी भारी भीड़ भाड़ हो रही है।

श्रीप्रिया प्रीतम जो कोककलाओं में चतुर और सुरति केलि युद्ध के सुभट योद्धा हैं। इस प्रकार से सुरति केलि विलास में लगे हुऐ हैं कि इस समय उनको अपने शरीर और वस्त्रों की भी संभाल नहीं है। मदन के मन को मोहन करने वाले श्रीहरि एवं श्रीप्रिया के परस्पर मिलने से अपार रंग की वर्षा हुई।

दोहा—सम्हरि गात छुरि जात फिरि, मुरि जुरि जात सहेलि।
दम्पति की देखहु अरी, अद्भुत रतिरस केलि ॥

॥ पद ॥३३॥

देखि री देखि आज दंपति की अति अद्‌भुत रति केलि कलोलनि ।
सम्हरि गात छुरि जात जुरत फिरि आनँद उर न समात अतोलनि॥
जाचत राचत माचत मुरि मुरि ढरि ढरि भरि भरि अंक अमोलनि ।
श्रीहरिप्रिया अङ्ग अङ्ग उमँगत अरि अनुसरत करत झकझोलनि ॥३३॥

अतोलनि=अतुलनीय । याचत=मांगना । राचत=प्रस्तुत करना । माचत=अभिमान या गर्व करना । अरि=बैरी या शस्त्रु । झक झोलनि=हाथा पाई करना सुरति विलास की छवि का वर्णन करते हुऐ कहते हैं ।

दोहा—अरी सहेलियो ! रसिक दम्पत्ति की अद्‌भुत रति रस केलि की छवि के दर्शन तो करिये । देखो तो सही ! कभी कभी ये यत्न पूर्वक अपने अङ्गों को संभालते हैं । और कभी संभालते संभालते फिर छूट जाते हैं । ये दोनों कभी कभी मुड़ मुड़ कर फिर जुर जाते हैं ।

पद—अरी सखी आज इन दोनों की अति अद्‌भुत रति केलि कलोल के दर्शन तो करौ । रति विलास के समय संभालते संभालते इनके गात छूट जाते हैं । फिर परस्पर मिलते हैं । इस समय इनका अतुलनीय आनन्द इनके हृदयों में नहीं समाता है । परस्पर आलिंगन करते हुऐ ये सुरति विलास को याचना पूर्वक प्रस्तुत करते हैं । उस आनन्द के प्राप्त होने से गर्व युक्त मुड़ मुड़ कर एक दूसरे को अङ्कों में भरते हैं । श्रीहरि एवं श्रीप्रिया के अङ्ग अङ्गों को इस आनन्द ने उमगा दिया है । ये इस समय इस प्रकार से हाथा पाई कर रहे हैं । जैसे एक मल्ह आखाड़े में दूसरे से करता है ।

दोहा—परतछि जानी परति हैं, सियरानी सिथरानि ।
मनमानी सानी सुखँ रानी रवन रवानि ॥

॥ पद ॥३४॥

सुरति रति रानी री रानी मनमानी रसनिधि रवन रवानी ।
अति अरसानी गति दरसानी सुखसानी सरसानी ॥
परतछि जानी परत सिरानी सिथरानी छबि रहत न छानी ।
श्रीहरिप्रिया बदन की बानी भई अब औरहिं बानी ॥३४॥

परतक्ष=प्रत्यक्ष। सियरानी=सौभाग्य सीमन्तनी लालजू के हृदय को सिराने वाली रानी। सिथरानी=अटल या अचल सौभाग्य युक्त रानी। रवन रवानी=रमण रमाणी=श्रीलालजू को रमाने वाली। सुरति विलास की बर्षा से सखियों की आनन्द लता छिन छिन में बढ़ती रहती है। यह सुरति विलास एक मात्र श्रीस्वामिनी जी की कृपा पर ही निर्भर है। अतः सखियां श्रीप्रियाजू की विरदावलि गायन करती हुई कहती हैं-

दोहा—यह बात प्रत्यक्ष जानी पड़ती है। कि हे सौभाग्य सीमन्तनी रानी। आपका ही अचल सौभाग्य है आपही अपनी इच्छानुसार लाल जू को सुख में रमाने वाली रानी हो।

पद—हे सुरति रति को प्रदान करने वाली रानी! आप ही रसनिधि स्वरूप लालजू को अपनी इच्छानुसार रमाने वाली हो। आप सुख में सनी हुई हो। आपका हृदय रस की वर्षा से सरस हो रहा है। आप इस समय सुरति केलि जन्य श्रम से अत्यन्त आलस्य युक्त प्रतीत होती है। यह बात प्रत्यक्ष है किसी से छुपी हुई नहीं है कि आप ही सौभाग्य सीमन्तनी अटल सौभाग्य सम्पन्ना रानी हो।

श्रीहरि प्रियाजी कहती हैं कि इस विरदावलि को सुन कर श्रीस्वामिनी जी का कृपासे कण्ठ कण इतना गद् गद करने लगा कि अब उनके मुखारविन्दु की बानी इस समय कुछ और ही ढंग से प्रतीत होने लगी।

दोहा—दृष्टि परत जब जब दोऊ, दीखत भरत भरात।
प्रबलब श्रीहरिप्रिया की, अकही आवत बात॥

॥ पद ॥३५॥

बात अब अकही आवत इनकी जानी जात न जात।
जब जब दृष्टि परत भरतइसे सुधि न व कबँ रितात॥
निसिबासर बादर ज्यों दरसत बरसतहूँ न अघात।
श्रीहरिप्रिया प्रबल अभिलाषत सदा क्षेम कुसलात॥३५॥

अकही=कहने में नहीं आता है। प्रवल=बड़ी रितात=खाली होना।

दोहा—श्रीहरि एवं श्रीप्रिया सुरति केलि जन्य विलास की बात बड़ी ही आश्चर्य जनक है। कुछ कहने में नहीं आती है। जब जब हम सखियों की दृष्टि इनकी ओर पड़ती

है । हमको ये परस्पर भरते भराते ही दिखाई देते हैं

पद—क्योंकि ये दोनों बादल की तरह अहर्निश वितन वारि की बर्षा बर्षाते हुऐ ही दिखाई देते हैं । इस कार्य से ये कभी भी नहीं अघाते हैं । अतः इनके रति विलास की बात न तो कहने में ही आती है और न जानी ही जा सकती है ।

जब जब हम सखियों की दृष्टि इनकी ओर पड़ती है । तब तब ये दोनों इस बर्षा से परस्पर भरते भराते ही दिखाई देते हैं । तो भी यह मालूम नहीं होता है कि ये उस बर्षा से किस समय रीते अर्थात् खाली हो जाते हैं । श्रीहरि प्रिया सखी की यह प्रवल अभिलाषा है कि ये दोनों सदा आनन्द से प्रसन्न रहें ।

॥ अनुरागिनि आनन्दा मध्याभास ॥

दोहा—उमँग भरे अङ्ग-अङ्ग में, सङ्ग सगबगे साज ।
बिलसति आनँद-महलमिलि, मदनमोहन दोउ आज ॥
आज सखी आनन्द-महल में मदनमोहन कलकेलैं री ।
उमँग उमंगन घन ज्यों बरषत अरसपरस रसरेलैं री ॥
सुभग सेजपर दोउ सुन्दरबर रसिकपुरन्दर राजैं री ।
रहसि रंग अङ्ग अङ्ग रगमगे सङ्ग सगबगे साजैं री ॥
प्रानप्रिया परसंसि परम पद चढ़े बढ़े मुदि मनमें री ।
सनमुख रुख सुख बिलसत हुलसत अतिआसक्ति अतनमें री ॥
अरुन बरन मनहरन बदन छबि सुधासदन सरसौंहैं री ।
नैंन मैंन रस ऐन दैन चित चैंन चढ़ी धनु-भौंहैं री ॥
मधुर अधर रसना-रस-रसवत चसवत चसकें लागैं री ।
दसन खण्ड गण्डनि मृदु मण्डित पीक लीक परिपागैं री ॥
सुरत-समर रनधीर कुँवर कमनीय कला-कुल-नायक री ।
बितरत बिबिध विनोद मदोन्मत महासुभट सुखदायक री ॥
लथे लथोपथ मिथुन गथोगथ बिहँसि बथोबथ बिहरैं री ।
श्रम-बन-बूँद बदन तन झलकत अलक-रलक छबि छहरैं री ॥
मोतिन-लर रहि तूटि छूटि रहि चिकुर चंद्रिका सिर तें री ।

मृगमद-सनि सिंदुर बिंदु बनि रही भृकुटि तनि भिरतें री ॥
रसबादी रसबाद रहे अरि अधिकत अरस न आवें री ।
श्रीहरिप्रिया अनुकूल किलोलनि निरखि नैन सचुपावें री ॥३६॥

सगवगे=अस्त व्यस्त । आनन्द महल=रंग महल । अतन=कामदेव । सुधासदन=अधरामृत का स्थान अर्थात मुखार विन्दु । रसअयन=रस का स्थान । वितरत=बांटना । मिथुन=दम्पत्ति । चिकुर चन्द्रिका=केश पास । रस वादी=रस के हठीले । अरसन=आलस्य । —:आसावरी:—

दोहा—कामदेव के मन को भी मोहन करने वाले श्रीयुगल किशोर जी उमंग से भरे हुऐ रंग महल में आज रति विलास कर रहे हैं । जिनके अङ्ग प्रति अङ्ग आनन्द में भीगे हुऐ हैं ।

पद—हे सखी ! आज रंग महल में मदन के मन को भी मोहन करने वाले रसिक दम्पत्ति सुरति केलि कर रहे हैं । ये दोनों परस्पर रस में इतने आसक्त हैं कि इनके अङ्ग अङ्गों में उमङ्ग की वर्षा बादल की तरह हो रही है । ये दोनों रसिक शिरोमणि सुन्दर सौभाग्यवती सेज पर सुशोभित हैं । परस्पर के संग से सुरति केलि जन्य रंग से दोनों के अङ्ग अङ्ग भीगे हुऐ हैं । और वस्त्र आभूषण अस्त व्यस्त हो रहे हैं ॥१॥

श्रीलालजू जिनके अङ्ग अङ्गों में दिव्य काम व्याप्त हो रहा है । वे प्राण प्रिया श्रीस्वामिनी जू के चरणारविंदों की प्रशंसा करते हुऐ उनका रुख देख कर प्रसन्न चित्त से उल्लास सहित सुख विलास में प्रवर्त होते हैं ॥२॥

श्रीस्वामिनी जी के गोरे गण्डों की अरुणता, सुधासदन सर रूप मुखारविन्दु और दिव्य काम के रसके स्थान स्वरूप श्रीनेत्र कमल जिन पर धनुष की तरह भोंहें चढ़ी हुई हैं । देख कर उनका मन मोहित हो गया ॥३॥

तब प्रीतम ने वह अधर सुधा रस पान किया जिस के पान से उन की ससक और बढ़ गई । और अधरदंशनकरते हुए अपने तम्बोल से भरे हुऐ मुखारविन्दु से उनके कपोलों को चुम्बन करते हुऐ पीक से चिन्हित किया ॥४॥

श्रीलालजू सुरति युद्ध के सुभट योद्धा तथा कोककला के सुन्दर नायक हैं । अतः उन्होंने महा सुभट की तरह मदोन्मत्त विविध प्रकार के सुरति केलि जन्य सुखों को प्रदान किया ॥५॥

इस समय ये दोनों हाथा पाई करते हुऐ परस्पर लथोपथ तथा गथोगथ होकर

परस्पर एक दूसरे को अंक में ले लेकर विहसि विहसि कर विहार कर रहे हैं। इस समय सुरति केलि के श्रम से दोनों के मुखार विन्दों तथा अङ्गप्रति अंगों में प्रस्वेद की बून्दे झलक रही है, रलकती हुई अलकावलि सुशोभित है ॥६॥

श्रीस्वामिनी जी के मस्तक की मोती लड़ टूट रही है। और केशपास छूटे हुऐ हैं। स्वेदजल से द्रवित होकर कस्तूरी की विन्दनो सिन्दूर विन्दु से मिलकर भृकुटि से आ मिली है ॥७॥ ये दोनों रस के हटीले रस के हट में इतने अड़े हुए हैं कि इनको इस केलि से कभी भी आलस्य नहीं आता है। श्रीहरि प्रिया सखी यह प्रार्थना करती हुई कहती हैं, कि उनके मन के अनुसार इस सुरति केलि विलास को देख देख कर उनके नेत्र कमल सदा सुखी होते रहें।

दोहा—सफल मनोरथ होत सब, आवत हियें जितेक।
मेरे नैंननि को अरी, यह अहार हैं एक॥

॥ पद ॥३७॥

अरी मेरे नैंननि को आहार।
कल न परै पल एक बिना मोहिं अवलोकें सुखसार।
सकल मनोरथ सफल होत तब करत हियें संचार।
श्रीहरिप्रिया प्रान-जीवन-धन कौ यह सुरत बिहार॥३७॥

जितेक=जितना। संचार=प्रवाहित होना। पद नं०३६ की समाप्ति में श्रीहरि प्रियाजू ने सदैव सुरति केलि में आरुढ़ प्रिया प्रीतम की छवि के दर्शन करने की प्रार्थना की थी, उसी बिषय को पुनः प्रारम्भ करते हुऐ ग्रन्थकार कहते हैं।

दोहा—श्रीहरिप्रिया सखी कहती हैं:—हे सखी! मेरे नयनों के लिये एक मात्र यही अहार है, कि सुरति केलि आरूढ़ प्रिया प्रीतम के मैं सदैव दर्शन करती रहूँ। इनके दर्शन से मेरे हृदय के सम्पूर्ण मनोरथ सफल हो जाते हैं।

पद—हे सखी! मेरे नेत्रों को एक मात्र यही अहार है "मुझको सुख सार स्वरूप प्रिया प्रीतम के विहार के दर्शन बिना एक पल भी कल नहीं पड़ती है। जब इस विहार की छवि माधुरी मेरे हृदय में प्रवाहित होती है तब ही मेरे सब मनोरथ सफल हो जाते हैं, ।" श्रीहरि प्रिया जी कहती हैं, रसिक दम्पत्ति का यह सुरत विहार मेरे प्राण जीवन धन स्वरूप है।

॥ दोहा ॥

या अति गति के ओरकों, कैसेइ पावत हौं न।
जब देखों तब जगेसे, लगे चटपटी कौन ॥

॥ पद ॥३८॥

अरी ये कौन चटपटी लागे रहत सदा रतिरागे।
अतिकौ ओर न आवत कबहूँ बहुत जतन करि थागे ॥
निसिबासर जागत अरु सोवत जब देखों तब जागे।
श्रीहरिप्रिया परत नहिं कछु कहि कैसी खगनि में खागे ॥३८॥

खगनि में=आकाश में। खागे=एक प्रकार का पक्षी जो कभी नहीं सोता है।

दोहा—सुरति केलि आरुढ़ श्रीप्रिया प्रीतम की अति गति का कभी भी आर पार नहीं पा सकती हूँ। इनमें कौन ऐसी चटपटी लगी हुई है। मैं जब इनको देखती हूँ। तब ये दोनों दिव्य काम से जगे हुऐ प्रतीत होते हैं।

पद—हे सखी! इनमें ऐसी कौन सी चटपटी लग रही है जो ये सदा रति विहार में लगे रहते हैं। मैं बहुत ही यत्न करके थक गई, तो भी मुझको इनके रति विहार का ओर छोर नहीं मिला जब भी मैं इनको जागते हुऐ या सोते हुऐ देखती हूँ तब मुझ को ये अद्वार्नेश दिव्य काम से जगे हुऐ ही मालूम होते हैं।

जैसे आकाश में रहने वाले खागे नामक पक्षी, जो कभी भी नहीं सोते हैं उसी प्रकार श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं कि रसिक दम्पत्ति भी दिव्य काम से अति क्लांत है, इसी लिये ये भी कभी नहीं सोते हैं।

॥ दोहा ॥

कमल कुमुदिनी वृन्द के, दायक उर आनन्द।
जयति सुरत रनधीर बिबि, बिसद रूप रबि चंद ॥

॥ पद ॥३९॥

जयति सुरति-रनधीर दोउ कुँवर कुल मंडने खंडने दर्प कंदर्प दल के।
बिसद बरवेस रसिकेस सम-बय सुघर, सार-सुख-रूप सिरमनि सकल के॥

अद्भुतानंद के कंद कमनीय कल चंद रबि वृन्द कुमुदिनि कमल के।
श्रीहरिप्रिया प्रानपोषनप्रवर प्रतिदिन छिनछिना दरनदुखपलहिं पलके ३६

कमल कुमुदिनी वृन्द=यहाँ सखियों से तात्पर्य है। रविचन्द=यहाँ पर प्रिया प्रीतम से तात्पर्य है। कन्दर्प दल=काम देवों का समूह। विशद बरवेस=सुन्दर। रसिकेश=रसिक चूड़ामणि। सखियां श्रीप्रिया प्रीतम की विरदावलि गायन करती हुई कहती हैं-

दोहा—सुरति केलि के सुभट योद्धा रसिक दम्पति की जय हो। जैसे-कमल, कुमुदिनी को सूर्य और चन्द्रमा देखकर अह्लाद होता है। उसी प्रकार रविचन्द स्वरूप प्रिया प्रीतम को देखकर कमल कुमुदिनी स्वरूप सखियों के हृदयों में आनन्द होता है।

पद—सुरति केलि विहार में आरुढ़ श्रीप्रिया प्रीतम की जय हो, जो सब प्रकार के नायक नायकाओं कुलों के मण्डन करने वाले शृङ्गार स्वरूप है। और करोड़ों काम देवों के गर्व का चूर्ण करने वाले हैं।

ये दोनों रसिक शिरोमणि बड़ा भारी सुन्दर शृंगार किये हुऐ हैं। इन दोनों की एक सी ही अवस्था है। इनके दिव्य मङ्गल विग्रह सुन्दरता के सार तथा अद्भुत आनन्द के भी सार स्वरूप है। (कुन्द जैसे मिश्री का भी सार होता है इसी प्रकार) ये सब सुखों के शिरोमणि स्वरूप हैं। ये अत्यन्त मधुर रवि चन्द स्वरूप हैं। जो कमल कुमुदिनी स्वरूपा सखी वृन्दों को आनन्द प्रदान करते हैं।

ये दोनों प्रतिदिन श्रीहरि प्रिया सखी के प्राणको पोषण करते हुऐ उनके विरह जन्य दुख को पल पल में दूर करते रहते हैं। यहां सुरति केलि की विरामता ही विरह है।

॥ दोहा ॥

महल महा मोहन सहज, सुभग सेज भरि अंक।
सुख स्वरूप सनमुख रुखे, बिलसत दोउ निसंक॥

॥ पद ॥४०॥

बिलसत दोऊ लाड़िले मिलि मृदु रस-रङ्गबिहार हो।
सहज स्वरूप महल मोहन महा सुभग-सेज सुखसार हो॥
जाचत जतन रतन राजत रति करि करि बहु मनुहारि हो।
भरत अंक अनुसरत लियें रुख सनमुख श्रीसुकुँवारि हो॥
आधीनत अवलोकि अधर मधु अँचवायो अलबेलि हो।

अंग अङ्ग प्रति चढ़ी बढ़ी बर विपुल पुलक कलबेलि हो ॥
परसि चरन कर करसि कृसोदरि रहे कमल पर झेलि हो ।
मानहुँ मदन मनोरथ के गन लीने सकल सकेलि हो ॥
परम उदारि ढरी ढबि सों फबि दबि मरकत अनुकूलि हो ।
देखेहीं बनि आवत यह छबि कहत जाति मति डूलि हो ॥
सौरत सार श्रवत सचुपावत तन मन मुद मुकलाय हो ।
अधिकत जानि तानि भ्रुव चितवत रहत तबै अकुलाय हो ॥
सदय सुदृष्टि पोष संतोषत प्रानेस्वरि परबीनि हो ।
सरबस रस दै रहसि रमावत भावत सो सोई कीनि हो ॥
तृसकृत होत तृषा नैनन की पुरवत उर अभिलास हो ।
निरखि निरंतर श्रीहरिप्रिया कौ निरवधि नित्यबिलास हो ॥४०॥

यावत=प्रार्थना करना। रतन=कामदेव। राचत=प्रस्तुत करना। कर्षि=खींच कर। मरकत=नीलमणि स्वरूपा श्रीलालजू। डूलि=डगमगाना। सौरत सार=सुरति केलि का सरूप। मुकुलाप=खोल कर। तिसकृत=तृषा कृति अर्थात् प्यास का स्वरूप। सुरति विहार का वर्णन करते हुऐ कहते हैं:—

॥ दोहा ॥

मोहन महल में सौभाग्य वती शैय्या पर सुख स्वरूप श्रीलाल ललना परस्पर अङ्क भर भर कर विहार कर रहे हैं श्रीलालजू प्रियाजू का रुख देख कर निशंक विलास कर रहे हैं।

॥ पद ॥

दोनों लाड़िले मधुर रस रङ्ग विहार को विलस रहे हैं। सहज सुन्दर मोहन महल में सुख सार स्वरूप शैय्या पर रसिक दम्पति विराजमान हैं। श्रीलालजू चाटु बचनों द्वारा यत्न पूर्वक काम केलि के लिये श्रीस्वामिनी जी से प्रार्थना करते हैं फिर रति विलास प्रस्तुत करते हुऐ श्रीस्वामिनीजी का रुख देख कर उनको अंक में भर लेते हैं ॥१

श्रीप्रियाजू ने श्रीलालजू को अत्यंत दीन देख कर उनको अधर सुधा पान कराया। जिससे लालजू के अङ्ग प्रति अङ्ग में रोमावलि पुलकित होकर मधुर वेलि की तरह चढ़ गई ॥२॥

फिर लालजू ने श्रीस्वामिनी जी के चरणारविन्दों को स्पर्श करते हुऐ उनको अपनी ओर आकर्षित किया। इससे मानों उन्होंने (प्रीतम ने) अपने सब मनोरथों को पूर्ण कर लिया ॥३॥

परम उदारि श्रीस्वामिनी जी इस समय लालजू के सर्वथा दक्षिणः होकर अनुकूल हैं, मानों कोई कंचन मणि नीलमणि से दबी हुई सुशोभित हो रही हो यह छवि देखे ही बनती है। कहने में मति डगमगा जाती है ॥४॥

इस समय श्रीस्वामिनी जी प्रसन्नचित्त होकर तन मन खोल कर लालजू से मिली हैं। इस सुरति केलि के सार की बर्षा से प्रीतम अत्यन्त प्रसन्न हैं। लालजी की अधिक लता देख कर ज्योंही प्रिया जू ने भौंहें तान कर लाल जू को ओर देखा त्योंही वे अत्यन्त व्याकुल होकर अकुलाने लगे ॥५॥

तब कृपा भरी दृष्टि की वृष्टि से प्रवीन श्रीप्रियाजू ने श्रीप्रीतमजी को संतुष्ट किया और सब प्रकार के रहस्य रस प्रदान करती हुई उनके सब मनोरथों को पूर्ण किया ॥६॥

श्रीहरि एवं श्रीप्रिया के इस निरन्तर निरअवधि तथा नित्य विलास ने यद्यपि सखियों की सब अभिलासाएँ पूर्ण कर दी। तो भी इस समय की रूप माधुर्य को देखने के लिये उन सखियों के नेत्र इतने छटपटा रहे हैं मानों नेत्रों की प्यास ने स्वयं ही प्यास का रूप धारण कर लिया हो ॥७॥

॥ अनुरागिनि सुरंगांगा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

कमलकुञ्ज किसलय सयन, रमत रहसि रतिराज।
प्रेमप्रदा अङ्ग अङ्ग प्रति, रङ्ग रँगे दोउ आज ॥

॥ पद ॥ ४१ ॥

आज कमनीय किसोर किसलय सयन,
करत मिलि कमल-कल-कुञ्ज की केलिनी।
रहसि रति रवन रचि रुचिर रगमग रसिक,
रमत रञ्जन ररे रङ्ग-रस-रेलिनी ॥
परम परिपोष प्रति अङ्ग सुप्रभा-प्रदा,
प्रेम परकासदा आपदा पेलिनी।

अबिकृता कृति क्रिया सार स्वातंत्रिया,
सुखदरूपा श्रिया हरिप्रिया हेलिनी ॥४१॥

अनुरागिनी सुरंगांगा मध्याभास=सारंग राग । कमल कुञ्ज=दिव्य मङ्गल विग्रह । प्रदा=प्रदान करने वाली । किशलय शयन=फूलों की शैय्या । ररे=मिले हुऐ । अविकृता कृति=अप्राकृत अर्थात सच्चिदानन्द । क्रिया सार=लीलाओं के सार स्वरूप । श्रिया=शोभा । हे लिनि=हे सखी ।

॥ दोहा ॥

आज फूलों की शैय्या पर श्रीप्रिया प्रीतम परस्पर दिव्य मङ्गल विग्रह रूप कमल कुञ्ज में वह अति रहस्य सुरति विहार कर रहे हैं । जिसमें दोनों के अङ्ग प्रति अङ्ग रंगे हुऐ हैं । जो विहार परस्पर प्रेम को प्रदान करने वाला है ।

॥ पद ॥

आज फूलों की शैय्या पर मनोहर श्याम सुन्दर, सुन्दर कमल कुञ्ज रूप श्रीप्रिया जू से मिल कर अति रहस्य रति विलास कर रहे हैं । रसिक शिरोमणि श्रीलालजू के अङ्ग प्रति अङ्ग आनन्द में भीगे हुऐ हैं । वह सुन्दर रसिक जिसके अङ्ग प्रति अङ्ग प्रियाजू सम्बन्धी रंग रस विहार से मिलकर रगमगे हो रहे हैं । अपनी रुचि के अनुसार रति रमण कर रहे हैं । यह रति विहार दोनों के अङ्ग प्रति अङ्गों को पुष्ट करने वाला, प्रभा बढ़ाने वाला, प्रेम प्रकाश करने वाला तथा अतृप्ति जन्य दुखों को दूर करने वाला है । हे सखी ! यह रति विहार लीला अप्राकृत अर्थात सच्चिदानन्द मयी सब लीलाओं के सार स्वरूप तथा स्वतन्त्र रूप से श्रीशोभायुक्त श्रीहरि एवं श्रीप्रिया को सुख प्रदान करने वाली है ।

॥ दोहा ॥

बढ़ि बढ़ि बहसि चढ़े दोऊ, रनरावत छबि पाय ।
मनमोहन सोहन महा, श्रम-बन-झलक सुहाय ॥

॥ पद ॥४२॥

श्रम-बन-बूँद बदन तन सोहत मोहत मनमोहन मदमाते ।
बढ़ि-बढ़ि बहसि चढ़े रन-रावत छबि पावत अति लगत सुहाते ॥
सजि बर बस्त्र सस्त्र रुचि रँग के अस्त्र उमंग अङ्ग उमगाते ।
श्रीहरिप्रिया जुरे जङ्ग जोवन जोर किसोर कुँवर लड़काते ॥४२॥

मन मोहन=मन का मोहन करने वाले रसिक दम्पति । रन रावत=सुरति युद्ध के योद्धा । वस्त्र=लड़ाई में पहिने जाने वाला संजोगा कवच आदि । शस्त्र=हथियार । अस्त्र=फेंक कर मारने वाला हथिकार । यहां रति विहार में रुचि, रंग, तथा उमंग से तात्पर्य है । जंग=युद्ध । यहां पर सुरति युद्ध से तात्पर्य है ।

॥ दोहा ॥

इस समय ये दोनों सुरति युद्ध के योद्धा परस्पर होड़ाहोडी विहार करते हुऐ कैसे सुन्दर लगते हैं । सुरति केलि जन्य श्रम से मनको मोहन करने वाले युगल दम्पति के अङ्ग पर प्रस्वेद की बून्दे झलक रही हैं ।

॥ पद ॥

सुरति विहार में मदमाते मनको मोहन करने वाले रसिक दम्पति के अङ्गों पर प्रस्वेद जल की बून्दे अत्यन्त सुशोभित हैं । ये सुरति युद्ध के योद्धा बढ़ बढ़ कर होड़ा होड़ी विहार करते हुऐ कैसे सुन्दर लगते हैं । ये सुरति केलि जन्य रुचि, रंग तथा उमंग के वस्त्र, शस्त्र तथा अस्त्र से सुसज्जित हैं । इस समय इनके अङ्ग प्रति अङ्गों में उमङ्ग झलक रही है । दोनों लाड़िले कुँवर श्रीहरि एवं श्रीप्रिया यौवन वेग रूप सुरति केलि युद्ध लड़ रहे हैं ।

॥ दोहा ॥

मधुर–मधुर नूपुर बजैं, कल-किंकिनी रसाल ।
अलकलड़ी लड़वावहीं, दै अधरामृत लाल ॥

॥ पद ॥४३॥

अङ्गनि अङ्ग उमङ्गनि भरि भरि अलकलड़ी लड़वावति लालहिं ।
लै लै सुखद सुमन-सेज्या पर दै दै अधर-सुधा प्रतिपालहिं ॥
मधुर मधुर सुर नूपुर बाजैं कलकिंकिनि-रव-रुनित रसालहिं ।
श्रीहरिप्रिया प्रेम-रस-लम्पट अछन-अछन उर ऊपर चालहिं ॥४३॥

अलक लड़ी=लाड़ करने योग्य । किंकिनी=कौंदनी । रव=शब्द । रुनित=बजना । अछनअछन=धीरे धीरे ।

॥ दोहा ॥

जिस समय अलक लड़ी श्रीलाड़लीजू श्रीलालजू को अधरामृत प्रदान करती हुई लड़ा रही हैं । उस समय नूपुर कौंदनी का रसीला एवं मधुर शब्द हो रहा है ।

॥ पद ॥

सुख प्रदान करने वाली शैय्या पर अलक लड़ी श्रीलाड़ली जू जिनके अङ्ग प्रति अङ्गों में उमंग भरी हुई है अधर सुधा प्रदान द्वारा श्रीलालजू को लड़ारही है तथा उनके पालन पोषण कर रही हैं। इस समय नूपुर तथा किंकिनी का मधुर एवं रसाल शब्द हो रहा है। श्रीप्रियाजू के प्रेम रस लम्पट श्रीहरि उनके दिव्य मङ्गल विग्रह पर धीरे धीरे विहार कर रहे हैं।

॥ दोहा ॥

कुंजमहल कलकमल जहाँ, रहे फूल चहुँ कोद।
संग बिहारिनि रंगभरि, बिहरत बितन विनोद ॥

॥ पद ॥४४॥

बिहरत आज बिहार बिहारिनि संग बिहारी बितन बिनोदनि।
कुंजमहल एकांत रहस्थल फूलि कमल कल रहे चहुँ कोदनि ॥
झूमि-झूमि झटकत झुकि झपटत सुख दपटत दोउ भरि-भरि गोदनि।
श्रीहरिप्रिया निरखि नैननि छबि पल-पल वारति प्रान प्रमोदनि ॥४४॥

कुंज महल=यहाँ हृदय से तात्पर्य है। (गह्वर कुञ्ज सों हिये कहावे। तालिका)। कल कमल=यहाँ स्वामिनी जी के अङ्गों से तात्पर्य है। (निज तन सुभग रतन मनि कहिये। कमल निकुञ्ज कमल हू लहिये–तालिका।) वितन विनोद—दिव्य काम क्रीड़ा। चहुंकोदनि=चारों ओर। दपटत=प्राप्त करना। प्रमोदनि=सखियां।

॥ दोहा ॥

श्रीस्वामिनी जी के दिव्य मङ्गल विग्रह में श्रीलालजू के विलास उपयोग अनेक प्रकार की कुञ्जें हैं। उनमें श्रीलालजू दिव्य काम क्रीड़ा कर रहे हैं।

॥ पद ॥

आज श्रीविहारी जू उन श्रीविहारिणी जू के साथ-एकान्त स्थल में काम क्रीड़ा कर रहे हैं जिनके अङ्ग प्रति अङ्गों में अनेक प्रकार की कुञ्जे हैं। दोनों झूम झूम कर सुरति केलि युद्ध में झपटत, झटकत अर्थात् हाथा पाई करते हुऐ एक दूसरे को अङ्क में ले लेकर सुख प्राप्त कर रहे हैं।

श्रीहरि एवं श्रीप्रिया की यह छवि देखकर सखियां पल पल में अपने प्राणों को

न्योछावर कर रही हैं।

अथवा एकान्तिक रहस्य विलास विलसने के स्थल में श्रीप्रियाजी के दिव्य मङ्गल विग्रह रूप अनेक प्रकार के कमल खिले हुए हैं।

॥ दोहा ॥

मुदित मनोजनि चोज चढ़ि, सनमुख रुख धरि बाँह।
करत केलि कमनीय दोउ, सीतल तरु की छाँह॥

॥ पद ॥४५॥

सीतल छाँह कदम-तरु की तहाँ करत केलि मनरञ्जन दोऊ।
मुदित मनोज चोज चढ़ि सनमुख सुरति समर सुखसंजन दोऊ॥
बिबिध बिलास हुलास हियन के परकासक दृग-अंजन दोऊ।
श्रीहरिप्रिया प्रवीन परस्पर धरि-धरि गर कर-कंजन दोऊ॥४५॥

मनोजनि=कामदेव। शीतल=सुखद। छांह=कृपा। कंदम्ब तरु=श्रीस्वामिनी जू के चरण कमल। (चरण कंदम्ब कहावत चारु। तालिका) सुख सञ्जन=सुख देने वाले। धरि धरि गर=गल बहिंया रखकर। कर कञ्जन=हस्त कमल।

॥ दोहा ॥

दिव्य काम के चाव से फूले हुए आनन्द में भरकर श्रीलालजू परस्पर गल बहिंयां देकर श्रीस्वामिनीजू के चरण कमलों की छाह में बैठकर होड़ा होड़ी विहार कर रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीस्वामिनी जी के सुखद चरणारविन्दु की कृपा से दोनों मनमाना विहार कर रहे हैं। दोनों दिव्य काम के बेग से होड़ा होड़ी सुरति युद्ध करते हुऐ परस्पर सुख प्रदान कर रहे हैं। श्रीहरि एवं श्रीप्रिया परस्पर गल बहियां दे दे कर बिहार कर रहे हैं। विविध प्रकार के विलासों से जो उनके हृदयों में उल्लास होता रहा है वह उल्लास रसिक दम्पति के नेत्र कमलों से इस प्रकार प्रकाश हो रहा है मानों को अनिर्वचनीय अञ्जन से उनकी आखें आँज दी गई हों।

॥ दोहा ॥

लालन सँग हिलिमिलि रली, कहाँ लगि बरनि सुनाउँ।
अहु अलबेली बाल हौं, बिहरनि की बलि जाउँ॥

॥ पद ॥४६॥

बलि जाऊँ बिहरनि की हौं।
अहु अलबेली बाल, लाल मिलि राख्यो रंग रसाल ॥
करी हमें आजु भलैई निहाल, कंचन बेलि तमाल।
चढ़ि बढ़ि बिरढी जोवन जाल, अति छबि फबिजु रही इहिं काल ॥बलि०
मन्मथ मान मनाय, पिय बस करि लीनो अपनाय।
अपने जी के जतन जनाय, अधर मधुर अँचवाय।
अङ्ग अङ्ग सौरत रस रचवाय, सोहत सन्मुख सुख सचवाय ॥बलि०
करि कल बचन विलास, विलसी पिय सङ्ग प्रेम प्रकास।
पुजई सकल मनन की आस, उर उमगाय उलास।
नागरि नव नागर पिय पास, पौढ़ी अंक निसंक निवास ॥ बलि०
बरसी अमृत धार, सरसी अँग अँग उमँग अपार।
ढरि ढरि अपनी ढरनि सुढार, श्रीहरिप्रिया बलिहार ॥
पिय कों करि राख्यो हिय हार, लै लै ऊरजनि के अगवार ॥बलि० ४६

बिरढी=फैली हुई। सौरत रस=सुरति विहार सम्बन्धी-रस। सचवाय=सम्पन्न होकर। कल बचन विलास=बिहार के उद्दीपन करने वाली मीठी बातें।

॥ दोहा ॥

अहो! हे अलवेली स्वामिनी जू। मैं आपके विहार की बार बार बलिहारी जाती हूँ। इस समय आप श्रीलालजू से हिल मिल कर एकाकार हो रही हो और वह विहार कर रही हो जो कहने में नहीं आ सकता है।

॥ पद ॥

मैं इस विहार की बार बार बलिहारी जाती हूँ। आपने श्रीलाल जू के साथ हिलमिल कर विलास करते हुऐ आज जो रस रंग बरसाया है। उससे आपने हम लोगों को निहाल कर दिया है।

श्रीस्वामिनी जी श्रीलालजू के दिव्य मङ्गल विग्रह पर चढ़ कर यौवन जाल फैला कर इस प्रकार से सुशोभित है मानों किसी स्वर्ण लता ने श्याम तमाल पर चढ़कर फैल

फट कर अपना जाल फैला दिया हो। इस समय के विहार पर जो दोनों की अत्यन्त सुन्दर छवि फबि रही है मैं बार बार बलिहारी जाती हूँ ॥१॥

श्रीलाल जू को दिव्य काम से पीड़ित देखकर श्रीस्वामिनी जी ने कृपा भरी दृष्टि से उनको अपनाया। ज्योंहीं रस पिपासू लाल जू ने अपनी पीड़ा को जनाया। त्यों ही प्रियाजू ने उनकी तृषा शान्ति के लिये उनको अधर सुधा पान कराया फिर उन्होंने उनके अङ्ग अङ्गों में सुरति विहार सम्बन्ध रस से रमिताव में अचवाया। और उन्होंने उनको सब सुखों से सम्पन्न करके अपने संन्मुख विराम विराजमान किया मैं इस विहार की वलिहारी जाती हूँ ॥२॥

फिर वह दोनों विहार उपयुक्त प्रेम को बढ़ाने वाली मीठी मीठी वार्तालाप करने लगे। इस विलास सम्बन्धी वार्ता ने दोनों के हृदय कमलों को उल्लास सहित उमगा दिया फिर रसिक दम्पत्ति एक दूसरे को अङ्क में लेते हुऐ आनन्द पूर्वक शैय्या पर निशंक पौढ़ गये। ऐसा करते हुऐ उन्होंने सब सखियों के मनों की अभिलाषाओं को पूर्ण किया इस प्रकार के विहार पर मैं बार बार बलिहारी जाती हूँ ॥३॥

उस सुरति बर्षा की अमृत धारा ने दोनों के अङ्ग अङ्गों को अपार आनन्द प्रदान किया। उन्होंने अपने अपने भावों में ढर ढर कर अपने अपने भावों के अनुसार रसास्वादन किया। इस समय श्रीप्रिया जू ने श्रीलाल जू को अपने हृदय से लगा कर उनको अपने हृदय का हार बना रखा है। इस प्रकार के श्रीहरि एवं श्रीप्रिया के विहार की मैं बार बार बलिहारी जाती हूँ ॥४॥

॥ दोहा ॥

उलट पुलट छबि फबि रही, उरझनि उर अलबेलि।
देखि देखि जीजै जु यह, नवल जुगलबर केलि ॥

॥ पद ॥४७॥

नवलबर कुँवर की केलि मनभावनी।
देखिही देखि जीजै सखी जुगल छबि,
कैसी अति फबि रही उरनि उरझावनी ॥
अलक कुण्डल करनफूल नकबेसरि जु,
बलय रसना बसन उलट पुलटावनी।

परम पवित्र श्रीहरिप्रिया रति कथा,
कोटि मन्मथन उर बिथा उपजावनी ॥४७॥

बलय=बाजूबन्द । रसना=नाड़ा, कौंदनी । मन्मथन=कामदेव । पूर्व प्रसङ्ग को जारी रखते हुऐ श्रीग्रन्थकार विपरीति रति की छवि का वर्णन करते हुऐ कहते हैं ।

॥ दोहा ॥

इस समय रसिक दम्पत्ति की उलट पुलट छवि है । अर्थात रति विहार में श्रीलाल जू श्रीप्रिया जू के स्थान पर और श्रीप्रिया जू श्रीलाल जू के स्थानापन्न हैं । दोनों परस्पर उरझे हुऐ हैं । युगल वर की इस छवि को देख कर सखियां प्रसन्न चित्त से जय जयकार कर रहीं हैं ।

॥ पद ॥

हे सखियो ! हम यही प्रार्थना करती हैं, कि युगल वर की इसी छवि को देख देख कर हम जीया करें । इस समय इन दोनों के हृदय से हृदय मिले हुऐ कैसे सुशोभित हो रहे हैं । अलकावलि से कुण्डल, कर्ण फूल से नक वेसरि और वाजूबन्द से कौंदनी उरझी हुई है । दोनों के वस्त्र बदले हुऐ हैं । श्रीहरि एवं श्रीप्रिया का यह रति विहार अत्यन्त ही पवित्र है । इस छवि को देखकर प्राकृतिक कोटानि कोटि कामदेव के मनों में भी अपने हीनता की व्यथा उत्पन्न हो जाती है ।

टिप्पणी:—(१) "श्रीजयदेव भणित हरिरमितम् । कलिकलुष जनयतु परिशमितम् श्रीजयदेवजी कहते हैं सुरति केलि विलास के श्रवण तथा (गीतगोविन्द) कीर्तन आदि से कलियुग के पाप नष्ट हो जाते हैं इसलिये परम पवित्र है ।

॥ दोहा ॥

हिलन हेज सुख सेज रस, रेलनि केलि प्रवाहु ।
मेरे नैननि ते छिनहुँ, इत उत जिनि टरि जाहु ॥

॥ पद ॥४८॥

मेरे नैननि तें छिन जिन टरौ ।
सुरत समर रनधीर कुँवरवर जो मोपर करुना करौ ॥
हिलन हेज हिय सुभग सेज को सहज सुढर ढारनि ढरौ ।
श्रीहरिप्रिया रसरेलि केलि कल महल टहल मन संचरौ ॥४८॥

सुरत समर=रति युद्ध । संचरौ=लगना, प्रवाहित होना ।

दोहा—प्रेम में भरे हुऐ सुमेरु के शिखर का नृत्य करते हुऐ परस्पर रस के बढ़ाने वाले सुख शेज पर विराजमान श्रीप्रिया प्रीतम की छवि मेये नेत्रों से एक क्षण काल के लिये भी अलग न हो ।

पद—यदि आप की कृपा मुझ पर है तो मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि ये सुरति युद्ध के योद्धाओं की छवि सुरति युद्ध करते हुऐ मेरे नेत्रों से क्षण काल के लिये भी अलग न हो । श्रीहरि प्रिया सखी यह प्रार्थना करती हैं कि प्रिया प्रीतम के सुभग शेज पर परस्पर मिलन जन्य सहज सुख में मेरा हृदय ढरता रहे । और मेरा मन सुरति केलि जन्य महल की सेवा में अहर्निश लगा रहे ।

॥ दोहा ॥

कछू अटक राखी नहीं, दियो महल मुकलाय ।
मदन मनहिं मोहनि प्रिया, सब दिन सहज सुभाय ॥

॥ पद ॥४९॥

मदन-मन-मोहनी प्यारी पियको दियो है महल मुकलाय ।
कछू अटक राखी न तनकहु लेहु लियो जो जाय ॥
अति उदार सुकुमार-सिरोमनि सब दिन सहज सुभाय ।
श्रीहरिप्रिया अपरमित उपमा कहत रहत सकुचाय ॥४९॥

महल=श्रीस्वामिनी जी का दिव्य मङ्गल विग्रह । मुकुलाय=खोलना ।

॥ दोहा ॥

उन श्रीस्वामिनी जी ने जिनका सहज स्वभाव ही अहर्निश लालजू के मन को मोहन करने का है, निःसंकोच अपने दिव्य मङ्गल विग्रह को उनके समर्पण कर दिया ।

॥ पद ॥

श्रीलालजू के मन को मोहन करने वाली श्रीप्रियाजू ने अपने दिव्य मङ्गल विग्रह को निःसंकोच लालजू के समर्पण कर दिया । सुकुमारि शिरोमणि श्रीस्वामिनी जी का सहज स्वभाव ही सदैव अत्यन्त उदारता का है । अतः उन्होंने प्रीतम से यह कहा "जितना रस तुम पान कर सको निःसंकोच करो ।"

श्रीहरि प्रिया सखी जी कहती हैं कि आपकी उदारता अपरिमित है। इसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती है, उपमा देने में भी संकोच लगता है।

॥ दोहा ॥

लहत न छिन उपरम्यता, सहज रँगे रँग अङ्ग।
बितवत दिन बिलसत सुखहि, इक-रस भरे उमंग॥

॥ पद ॥५०॥

सदा सुख बिलसत ही दिन जात।
लहत नहीं उपरमिता तनकहुँ अधिक अधिक अधिकात॥
सहज रंग रँगि रहे रसिक दोऊ उमगत हूँ न अघात।
श्रीहरिप्रिया प्रकृति अति गतिकी कहि नहिं आवत बात॥५०॥

उपरिमिता=उपरम्यता=अरुचि। अतिगति=वेहद, असीम।

॥ दोहा ॥

श्रीरसिक दम्पति सहज स्वभाव सुरति विहार में इतने संलग्न हैं कि एक क्षण के लिये भी इससे उपराम नहीं होते हैं। इनका रात दिन इसी सुख विलास में बीतता है, ये दोनों एक रस उमंग में भरे रहते हैं।

॥ पद ॥

इन दोनों का रात दिन इसी सुख विलास में बीतता है। इनकी इस सुख से तनिक भी अरुचि नहीं होती है। वल्कि यह क्षण क्षण बढ़ती रहती है। ये दोनों रसिक शिरोमणि स्वभाविक सुरति केलि के रंग से रंगे हुऐ होकर भी इस विलास से कभी नहीं अघाते हैं। वरन्तु उमगाते ही रहते हैं।

श्रीहरि एवं प्रिया का स्वभाव वेहद सुरति केलि विलास का इतना प्रवल है कि जो कहने में भी नहीं आ सकता है।

॥ अनुरागिनि प्रनयप्रचुरा मध्याभास ॥

दोहा—अरुन असित समुझैन कोउ, जिहिं भाये सब एक।
जानौ जानपन्यो जु मैं, जिय कौ है जु जितेक॥

॥ पद ॥५१॥

रावरे जीयकौ जानपन्यौ जान्यौ जु जितेक।

अरुन असित भेद समुझै न कोउ जाके भाये इंदीवर कोकनद येक।
नेक आगें चलि देखौ कैसे सुख ह्वै हैऐ जू मनमें न ऐहैं तौ तौ कीजियौ टेक
श्रीहरिप्रिया हितू हित की कहति कोऊ तिन में कछू तो बिबेक ॥५१॥

अनुरागिणी प्रणय प्रचुरा मध्याभास=पूरबि राग। अरुन=लाल। असित=काला। जान पर्‌यौ=ज्ञान, विवेक। इंदीवर=नील कमल। (यहाँ लालजू के श्याम अङ्गों से तात्पर्य है।) कोकनद=लाल कमल। (यहां लालजू के अधर, हस्त कमलों की हथेलियां और चरणारविन्दों के तलवों आदि से तात्पर्य है)। टेक=हट जाना। पूर्व प्रसंग में रति विलास के आवर्त में जब स्वामिनी जी इतनी निमग्न हो गईं कि उनको लाल जू के अङ्ग प्रति अङ्गों का भी भान नहीं रहा, तब श्रीहरि प्रिया सखी उनको उस आवर्त्त से निकालने के लिये सजग करती हुई कहने लगीं।

दोहा—आपके हृदय में इस समय जितना विवेक है उसको मैं भली प्रकार से समझ गई हूँ। इस समय आपको लालजू के लालमा और श्यामता लिये हुऐ अङ्ग प्रति अङ्गों का भी विवेचन नहीं है। आपके लिये सब अङ्ग एक समान हैं।

पद—आपके हृदय में इस समय जितना विवेक है, उसको मैं भली प्रकार समझती हूँ। आप इस समय इतनी निमग्न हैं कि आपको लालजू के लाल कमल सदृश अधर, हस्त कमलों की हथेलियां और चरणारविंदों के तलुओं आदि लाल अङ्गों का और नील कमल सदृश अन्य अङ्गों का भी कोई बोध नहीं है।

सुरति केलि के विलास से आप उपरम्यता न धारण करें। वरन्तु इस सुख में पगी रहें। आगे चल कर आपको इसका आनन्द मालूम होगा। यदि आपको अच्छा न लगे तो मेरी बात से हट जाना। श्रीहरि प्रिया एवं हितू अली जी को इस आनन्द का विवेक है। अतः ये आपके हित के लिये ही प्रार्थना कर रही हैं।

दोहा—देखत भूली खेल ज्यों, चकित थकित रहिजाति।
प्रकृति तिहारी अहु प्रिया, यह समझी नहिं जाति॥

॥ पद ॥५२॥

प्यारीजू तिहारी प्रकृति कछु समझी न जाति।
यों कियैं यों यों कियैं यों ह्वै ह्वै जाति॥

ऐंन मैंन देखत भूली(के)खेल ज्यों चकि थकि रहि जाति।
श्रीहरिप्रिया न्याय कर लागी ढरि ढरि जाति ॥५२॥

भूली=एक प्रकार के खेल का नाम। प्रकृति=स्वभाव। ऐंन मैंन=ठीक, हूबहू। चकिथकि=चकित थकित=किंकर्त्तव्या विमूढ़। न्याय=ठीक। कर लागी=वशवर्त्ती। श्रीप्रिया जी अभीतक सुरति केलि जन्य आवर्त्त में ही निमग्न हैं। उसी अवस्था का वर्णन करते हुऐ कहते हैं।

दोहा—हे स्वामिनी जी! आपका स्वभाव कुछ समझ में नहीं आता है। आप इस समय "भूली" के खेल ज्यौं किंकर्त्तव्य विमूढ़ा हैं।

पद—हे प्रिया जू! आप इस समय ठीक हूबहू "भूली" के खेल की तरह इतनी किंकर्त्तव्यविमूढ़ा हो गई हैं कि आपको अपने वामा स्वभाव का भी ज्ञान नहीं है। ठीक तो यह है कि इस समय आप लालजू के इतनी वशवर्त्ती हो रही हो कि "यों किये यों, यों कि यों ह्वै ह्वै जात" अर्थात जिस तरह लाल जू चाहते हैं उसी प्रकार आप हो जाती हैं।

दोहा—अबल सबल किन होहु कोउ, सुई नाकैं निकलैंजु।
अदल महा या नगर में, जोरावरि न चलैं जु॥

॥ पद ॥५३॥

जोरावरि न चले या नगर में अदलैं।
कैसोई अबल सबल किन होउ कोऊ सुई नाके निकलैं॥
जानि परैं ऐंड बैंड जो बिन कहै पैंड इत उत हलैं।
श्रीहरिप्रियाजू को राज अविचल ध्रू टलैं तो टलैं॥५३॥

अबल=बलहीन। सबल=बलयुक्त। अदल=इंसाफ, न्याय। ऐंडबैंड=बेतुका, विमूढ। पैंड=कदम। अविचल=अटल। ध्रुव=ध्रुवतारा। सुरति विलास में लालजू के अधिक उधम को देखकर श्रीहरिप्रियाजू एक प्रकार की मधुर भर्त्सना देती हुई कहती हैं।

दोहा—यहां निकुञ्ज में महा न्याय है। यहां किसी की जोरा वरी नहीं चल सकती है। चाहे कोई बलयुक्त हो या बलहीन हो। सबको यहां की मर्यादा रूपी सूई के नाके से निकलना पड़ता है।

पद—यहाँ निकुञ्ज में इंसाफ है। किसी की भी जोरावरी नहीं चल सकती है।

सबको यहां की मर्यादा रूपी सूई के नाके से निकलना पड़ता है।

जो कोई भी श्रीस्वामिनी जी या हम लोगों के बिना कहे एक कदम भी इधर-उधर रखता है तो वह बेतुका विमूढ़ जाना (समझा) जाता है। श्रीप्रिया जू कौ यहाँ अटल राज्य है। चाहे ध्रुव तारा भले ही स्थान से टल जाय परन्तु उनकी आज्ञा कभी भी नहीं टल सकती है।

दोहा—मुख रुख टग टग जोय रहे, देखि प्रिया तन तेज।
भई सिथिल गति लालकी, विकल सकल बंधेज ॥

॥ पद ॥५४॥

देखि भई लाल की गति सिथिल।
डग डगमगत लगत तनक न लग ह्वै अति उथल पथल ॥
टगटग जोय-रहे मुख रुख लैं रग रग सकल बिकल।
श्रीहरिप्रिया तन तेज के आगें अकलनि लागे अकल ॥५४॥

टग टग=टकटकी लगा कर। अकल=बुद्धि। रग रग=नस, नाडी। उपरोक्त प्रसंग में एक मात्र रस को बढ़ाने के लिये ही सखी ने लालजू को अधिक विलास से रोक दिया था, इससे लालजू की अतृप्ति और अधिक बढ़ गई, और वे विकल से हो गये, उसी विषय को निरूपण करते हुऐ कहते हैं।

दोहा—सखी की बात सुन कर श्रीलालजू टकटकी बांध कर प्रियाजी की ओर देखने लगे, और उनके रुख की आकांक्षा करने लगे, इस समय श्रीलालजू को गति अत्यंत शिथिल और अङ्ग अङ्ग विकल से हो गये।

पद—प्रियाजू की ओर देखकर लालजू की गति अति शिथिल हो गई, और उनको प्रिया जू के अङ्ग का तनिक भी स्पर्श प्राप्त नहीं होने से वे डगमगाने लगे और उनके हृदय की गति अति उथल पुथल हो गई। ऐसा होने से लालजू की रग रग अर्थात् समस्त अङ्ग की नसें विकल हो गई और वे प्रियाजू की रुख की आकांक्षा लिये हुऐ टकटकी बांध कर उनके मुख की ओर देखने लगे।

श्रीहरिप्रिया सखी कहती हैं इस समय श्रीप्रियाजू के अङ्ग के तेज को देख कर श्रीलालजू की बुद्धि ऐसी स्थकित सी हो गई है। कि वह कुछ काम नहीं करती है।

दोहा—किहिं मग आऊँ स्वामिनी, सुनहु सकल सुखदाय।
अहल महल चिकनाय में, खिसिल परत मो पाँय॥

॥ पद ॥ ५५॥

किहिं मग आऊँ मेरो पग नाहिं ठहरैं।
प्यारी जू तिहारी मैं तो आज्ञाही कौ अधिकारी,
लग नहिं लागें तहाँ कैसे पग ठहरैं॥
अहल महल की चहल चिकनाई जा में,
खिसिल परत डग पग नाहिं ठहरैं।
श्रीहरिप्रिया सुनहु स्वामिनि सकल सुखदायक,
ह्वै देखो बलि जैसे पग ठहरैं॥५५॥

अहल महल=शरीर रूपी महल। (यहां श्रीस्वामिनी जी के दिव्य मंगल विग्रह से तात्पर्य) चहल चिकनाई=रूप माधुरी की भीड़। दल दल। पूर्व प्रसंग में श्रीलालजू की विकलता का वर्णन कर चुके हैं। अब वे प्रार्थना करते हुऐ कहते हैं—

दोहा—हे सकल सुखों को प्रदान करने वाली स्वामिनी जी! आपके दिव्य मंगल विग्रह की रूप माधुरी की सौंदर्यता में मैं खिसला सा जा रहा हूँ। कृपया कोई रास्ता वतावें जिससे कि मैं आपको प्राप्त कर सकूँ।

पद—हे स्वामिनी जू! मैं किस प्रकार से आपको प्राप्त कर सकूँ। वतलावे? हे प्यारी जू! मैं तो एक मात्र आपकी आज्ञा का ही अधिकारी हूं! आपका स्पर्श तो दूर रहा, इस समय मैं आपकी ओर देखने में भी असमर्थ हूँ।

आपके दिव्य मंगल विग्रह की रूप मधुरता की दल दल में मैं डगमगाता हुआ खिसला सा जा रहा हूँ। हे स्वामिनी जी! मेरी प्रार्थना सुनिऐ! आप सब सुखों को प्रदान करने वाली हैं, आप मुझ पर ऐसी कृपा करें जिससे कि मैं विलास में प्रवर्त्त हो सकूं।

दोहा—श्रीहरिप्रिया अङ्ग सङ्ग लै, सनमुख रुखहिं सिधाय।
सूधे सूधे आव चलि, इत उत पग न डिगाय॥

॥ पद ॥ ५६ ॥

सूधे सूधे चले आवो।
इत उत पग न डिगै डगमग ह्वै ज्यों सबही सुख पावो॥

या वन सब ठहिं राज तिहारौ जिन मन इतै सँकावो।
श्रीहरिप्रिया अङ्ग संगनि सँग लै सनमुख रुखहिं सिधावो ॥५६॥

वन=यहां पर शरीर से तात्पर्य है। ठाँ=ठौर, जगह। श्रीलाल जू की प्रार्थना सुन कर श्रीप्रियाजू कहने लगी।

दोहा—आप अङ्ग प्रति अङ्गों को माधुरी के देखने को जाने दें श्रीहरि प्रिया सखी को साथ ले कर सीधे ही पधारें।

पद—यदि आप सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो इत उत अङ्गों की रूप माधुरी को देख कर डगमगाने को जाने दें। अपितु सूधे ही मेरी ओर पधारें मेरे इस शरीर में सब जगह आप ही का राज्य है। आप इतनी शंका क्यों करते हैं। आप श्रीहरि प्रिया अङ्ग संगिनी को साथ लेकर सीधे ही मेरी ओर पधारें।

दोहा—गहवर कुञ्ज निकुञ्ज तें आगें अद्‌भुत ठौर।
हितू सखी सङ्ग लै चले तहाँ लाल सिरमौर॥

॥ पद ॥५७॥

हितू सखी सङ्ग लै चले लाल।
गहवर-कुञ्ज-निकुंज तें आगे जहाँ बोलति कोकिला रसाल॥
चुनि चुनि कलियन सेज बनाई मृदुल मनोहर निज कर बाल।
श्रीहरिप्रिया हिल मिलें परस्पर उरबर पहरि कमल की माल॥५७॥

१ गह्वर कुञ्ज=हृदय कमल। (गह्वर कुञ्ज सु हियो कहावे—तालिका)
२ कोकिला=सुरति केलि में अव्यक्त शब्द आदि। (कोकिल कलरव कही बोलकी-तालिका)
३ कमल की माल=कर पद बर अंशनि पर ढाल। सोई कही कमल की माल-(तालिका)

दोहा—श्रीहरिप्रियाजी कहती हैं हे लाल शिरमौर! श्रीस्वामिनीजू के हृदय कमल आदि निकुञ्जों से आगे कोई अद्‌भुत ठौर है। वहां श्रीहितू अली सखी के साथ ही आप पहुँच सकते हैं।

पद—हे लाल जू! श्रीस्वामिनी जू के हृदय कमल निकुञ्ज से आगे कोई अद्‌भुत वह निकुंज है। जहां रस प्राप्त कराने के लिये कोई अद्‌भुत अव्यक्त शब्द हो रहा है। और जहां स्वयं श्रीस्वामिनीजी ने अपने हाथों से कोमल फूलों की कलियों के दलों को चुन

चुन कर मनोहर सेज तैयार की है। यहाँ कोई विशेष विलास सम्बन्धी मनोरथ से तात्पर्य है फिर श्रीहरि एवं श्रीप्रिया परस्पर हिल मिल कर विहार करने लगे, श्रीलालजू ने कमल की माला स्वरूप श्रीस्वामिनीजू के पद कमलों को अपने अंशों पर इस तरह धारण कर लिया मानों उन्होंने कोई स्वर्ण कमलों की माला पहन रखी हो। अथवा रसिक दम्पति कोई इस प्रकार के सुरत आसन में विराजमान हुए मानों दोनों ने एक साथ ही कोई कमल की माला धारण कर रखी हो।

।। अनुरागिनि गौरमुखी मध्याभास ।।

दोहा—सुभग सेज सनमुख रुखहिं, सावधान सुर ताल।
गिरा मधुर धुनि गावहीं, गोरी गुन गोपाल ।।

।। पद ।।५८।।

गावत गोरी गुन गोपाल।
सुभग सेज सनमुख सुन्दरवर कहि-कहि कोमल वचन रसाल ।।
सावधान सुर सप्त स रि ग म प ध नि लगाइ धुनि रहे इकताल।
ढुरनि मुरनि ग्रीवा नैननि की अलक-रलक कल कुण्डल हाल ।।
करि-करि नख सिख रूप निरूपन तन करि लियो कदम की माल।
श्रीहरिप्रिया रीझि रस भींजि दियौ अपनौं सरबस ततकाल ।।५८।।

अनुरागिणी गौर मुखी मध्याभास=गौरी राग। गौरी=गौरी राग। गोपाल=गो+पाल=यहां "गो" का अर्थ इन्द्रियाँ और "पाल" का अर्थ पालन करने वाले हैं, अर्थात् श्रीस्वामिनी जी की इन्द्रियों के पालन करने वाले श्रीलालजू। सुर=स्वर। अलक=अलकावलि। रलक=सरक कर। कदम की माल=कदम्ब के फूलों की माला बहुत मोटी होती है, यहाँ पर श्रीलालजू के अङ्ग प्रति अङ्गों से तात्पर्य है, जो आनन्द से फूल गये हैं। पूर्व पद की समाप्ति में श्रीलाल जू ने श्रीप्रियाजू के पद कमलों को स्वर्ण कमलों की माला सरीखी अपने अंशों पर धारण कर रखा है। उसी छवि से आगामी विलास अर्थात् सुमेरु के शिखर के नृत्य कौ वर्णन करते हुऐ कहते हैं।

दोहा—जब श्रीलालजू सुभग शैय्या पर सुख आसन से विराजमान होकर सुरति केलि जन्य नृत्य करते हुऐ मधुर धुन से गौरी राग में श्रीप्रियाजू के गुणों को गाने लगे, तब उनकी किंकिणी तथा नूपुर आदि से इस प्रकार के शब्द होने लगे। मानौं वे सावधानी से सुरताल सहित बज रहे हौं।

पद—सौभाग्य वती शैय्या पर सुख आसन से प्रिया जू के सन्मुख विराजमान होकर जब श्रीलालजू मधुर मधुर स्वरों से उनके गुण गौरी राग में गाते हुऐ नृत्य करने लगे, तब उनकी किंकिणी और नूपुर आदि से इस प्रकार के शब्द होने लगे मानों साव-धानी से स, र, ग, म, प, धि, नि, इत्यादि सप्त स्वर एक ताल से बज रहे हों नृत्य करते समय लाल जू की ग्रीवा की झुकन और नयनों की मुड़न तथा अलकावलियों का हिल हिलकर श्रीप्रिया जू के कुण्डलों से मिलना अत्यन्त सुशोभित हो रहा है।

नृत्य करते हुऐ जब लालजू ने प्रियाजू की रूप माधुरी को नख से शिख पर्यन्त निरूपण किया, तब उस प्रेम आनन्द से पुलकायमान होकर उनका दिव्य मङ्गल विग्रह कदम्ब की माला सरीखा रोमाञ्चित होकर फूल गया। इससे श्री प्रियाजू ने रीझिकर रस में भीज कर अपना सर्वस्व तत्काल ही उनके अर्पण कर दिया।

दोहा—लै रुख श्रीहरिप्रिया की जिहिं छिन जैसिय जोय।
सोई गावत गुन भरे मिथुन मुदित मन होय॥

॥ पद ॥५६॥

भये मुदित मन मिथुन किसोर।
जोई गवावति मावत सोई लै लै सुर मन्दिर कल घोर॥
सकल कला परबीन परस्पर तान तरङ्ग सुधङ्ग न थोर।
श्रीहरिप्रिया सहज सुन्दरवर सुघर सिरोमनि चितबित चोर॥५६

जोय=इंगित करना। मिथुन=दम्पत्ति। सुर मन्दिर=स्वर का शिखर, कल=मधुर, घोर=ऊंचा। थोर=थोड़ा। सुरतान्त गायन का वर्णन करते हुऐ कहते हैं।

दोहा—रति विलास के अन्त में श्रीहरि प्रिया सखी ने जिस प्रकार से इंगित किया, उसी प्रकार से सखी के रुख को देख कर प्रसन्न चित्त होकर सब गुणों से भरपूर रसिक दम्पत्ति मिलकर गाने लगी।

पद—सुरति विलास से प्रसन्न होकर सब कलाओं में प्रवीन रसिक दम्पत्ति ने श्रीहरि प्रिया सखी जी के इंगित जान कर सब स्वरों के शिखर पर मधुर एवं ऊंचा वह राग गाया, जिसमें तान की तरंगे व सुधंगें बहुत प्रकार की हैं। क्योंकि श्रीहरि एवं श्रीप्रिया स्वभाविक सुन्दर हैं। और सब कलाओं में सुघर शिरोमणि हैं। इसलिये उनकी अलापचारी ने समस्त निकुञ्ज विश्व के मन रूपी धन को चोर लिया।

॥ दोहा ॥

एक भाव रुचि एकहीं एक चाव इकरङ्ग ।
नहिं बिछुरत प्रियतम दोउ विहरत मिलि इकसंग ॥

॥ पद ॥६०॥

नहिं बिछुरत पल प्रियतम दोऊ विहरत सङ्ग सँगे रसरंगे ।
एकहिं भाव चाव रुचि एकहिं एकहिं रङ्ग रँगे रसरंगे ॥
एकहिं वैस (वेष) प्रान मन एकहिं एकहिं अङ्ग अँगे रसरंगे ।
श्रीहरिप्रिया हिलिमिले परस्पर ढरि ढरि ढंग ढँगेरसरंगे ॥६०॥

भाव=स्वभाव, अभिप्राय, (तत्सुखसुखी) रुचि=अभिलाषा, इच्छा । चाव= उमंग । रस=आनन्द । रंग=नृत्य गान, अभिनय । वयस=अवस्था । राधां कृष्ण स्वरूपां वै कृष्णं राधा स्वरूपिणम् ॥

तथा—कृष्ण रूप श्री राधिका, राधे रूपा श्याम ।
दर्शन को ये दोय हैं, हैं एकहि सुख धाम ॥ (महावाणी)

इस न्याय से रति विलास के अन्त में पाठक गणों को प्राकृतिक रस से बचाने के लिये एवं उनके सुझाव के लिये श्रीप्रिया प्रीतम के स्वरूप को निर्धारित करते हुऐ श्रीग्रन्थकार कहते हैं ।

॥ दोहा ॥

क्योंकि श्रीप्रिया प्रीतम का "भाव" अर्थात् तत्सुख सुखी अभिप्राय, "रुचि" अर्थात् अभिलाषा, "चाव" अर्थात् उमंग और "रंग" अर्थात् नृत्य गान अभिनय आदि की अभिलाषा तत्सुख सुखीमय एक ही हैं । इसलिये ये दोनों एक साथ ही मिलकर विहार करते रहते हैं । और ये एक क्षण के लिये भी नहीं बिछुड़ते हैं ।

॥ पद ॥

इन दोनों का रस अर्थात आनन्द तत्सुख सुखी और रंग अर्थात् नृत्य गान अभिनय की वृत्ति एक ही है । ये दोनों एक पल भी नहीं बिछुड़ते हैं । अपितु दोनों एक साथ मिल कर विहार करते रहते हैं, इन दोनों का एक ही "भाव" अर्थात् तत्सुख सुखीमय अभिप्राय, "चाव" अर्थात् उमङ्ग, "रुचि" अर्थात् अभिलाषा एक ही है । और इन दोनों की अवस्था, प्राण, मन एक ही हैं, और इन दोनों के अङ्ग प्रति अङ्ग एक ही रस रङ्ग

में निमग्न रहते हैं। इसलिये ये दोनों परस्पर हिल मिल कर रस रङ्ग की ढार में एक अनूठे ढंग सों ढरे रहते हैं।

टिप्पणीः— १ः—"येयं राधायञ्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रोड़नार्थं द्विधाऽभूत।" (श्रीराधिकोपनिषद्)

ये श्रीराधिका जी और श्रीकृष्ण ये दोनों तत्वाश में एक ही स्वरूप हैं। परन्तु रस विलास के लिये अनादि काल से ही दो स्वरूपों से ही विराजमान हैं।

पुनः यथाः—"यः कृष्णः साऽपि या राधा कृष्ण एव स :।" (औदम्बर संहिता)

जो कृष्ण हैं वही श्रीराधिका जी हैं। और जो श्रीराधिका जी हैं। वही श्रीकृष्ण हैं।

पुनः यथाः—"राधा कृष्णयोरेकमासन पद्म एका बुद्धि रेकं मनः एकं ज्ञानमेक आत्मा एकं पदमेका कृतिः एकं ब्रह्मतपाऽसनं हेममुरलिबाद्यं हैमं पद्मम्।"

(पुरुषार्थ बोधिन्यामुपनिषदि।)

श्रीराधा माधव का एक ही पद्म आसन, एक ही बुद्धि, एक ही मन, एक ही ज्ञान, एक ही आत्मा, एक ही पद, एक ही आकृति तथा एक ही ब्रह्ममय उपवेसनि है। इत्यादि।

२ः—एक ही द्वै जु द्वै एक हि दिपहिं दिनकिंहिं संचे निपु नई करि सुढोरि।
श्रीहरि प्रिया दरशं हित दोय तन दर्शवत एकतन एकमन एक दो री॥ (महा०)

॥ दोहा ॥

अँगसङ्गनि सँग लै सबै संध्या समय उदार।
विहरत विबि रुचि हिलि मिले वन-घन कुञ्ज विहार॥

॥ पद ॥६१॥

विहरत वन-घन-कुञ्ज विहार।
संध्या समय सङ्ग अङ्ग सङ्गनि मिथुन मनोहर मन्मथ मार॥
चंपक मधुक केवरा केतकि कदलि कदंबनि अम्ब अनार।
कमल गुलाब कलपतरु चलदल रहे झुकि झूलिफूलि फलभार॥
सदा सुहाग सेवती जूही मुक्तलता मालती अपार।
पियवासे बसि नौल(लौन)सिरी ह्वै मौलसिरी महकी कचनार॥
तरुबेली झेली रसरेली अलबेली आज्ञा अनुसार।
निज निज मन अभिलाषन के गन पाय पाय तन भये उदार॥

सुचि सौरभ बाढ़ी रुचि गाढ़ी हिलिमिलि गोरिनु ढोरि सुढार।
श्रीहरिप्रिया सहज सुखदायक सदा सबनि के प्रानअधार ॥६१॥

(यह गौरी राग सन्ध्या समय ही होता है अथवा सन्ध्या समय मिलन को भी कहते हैं:—यथा:—श्रीरूपगोस्वामी कृत उत्कलिका वल्लरी सन्ध्यारम्भे=मिलन उपक्रमे (श्रीबलदेव विद्याभूषण का टीका) सन्धि+आरम्भे=सन्ध्यारम्भे सन्ध्या समय=सुरति केलि के मिलन समय। वन घन कुञ्ज विहार=घन विहार सोई घन सार। जिंहि सुख मांचे मार अपार। (तालिका) मिथुन=दम्पत्ति। मन्मथ=कामदेव। मार=हनन करने वाला। चम्पक=चम्प वर्ण पुनि नासा लहिये। (तालिका) मधुक=मधुक सुमन संज्ञा कपोल की। (तालिका) केवरा=मन केवर केशर रति रंग। (तालिका) केतकि=कही केतकि पिंडुरी रूप। (तालिका) कदलि=कदलि जंघा जान अनूप। (तालिका) कदम्बन=चरण कदम्ब कहावत चारु। (तालिका) अम्ब=सुधा। अनार=भरे तम्बोल रंग रद जोई। मंजुल मणि सु कहावत सोई। पुनि अनार की उपमा पावैं। (तालिका) गुलाब=फूल गुलावी जो यह कह्यौ। सो समझौ प्रीतम डहडह्यौ। (तालिका) कमल=निज तन सुभग रतन मनि कहिये। कमल निकुञ्ज कमल हू लहिये। (तालिका) कल्पतरु=पारि जाति=पारि जाति परिरम्भण संज्ञा। (तालिका) चलदल=चलदल उदर अनूपम ओभा। (तालिका) सदा सुहाग सेवती=सदा सुहाग सेवती श्यामा। (तालिका) जूही=जोहनि जूही मानिये सही। (तालिका) मुक्त लता=श्रीप्रिया जू। मालती=आलिङ्गन चुम्बन जो वही। मल्ली मालती संज्ञा लही। (तालिका) पियवासें=सदा सुहाग सेवती श्यामा। पाही ते पिय वासा नामा। तालिका) नौलसिरी=नवल श्री=नाना वर्ण उच्चारण जोई। कही निवार नवेली सोई। (तालिका) मौलसिरी=मौलसिरी शोभालहि जानो। (तालिका) कचनार=कचनार का वृक्ष, (यहां श्रीप्रियाजू से तात्पर्य है) तरुवेलि=तरुलता अमित अपार। अङ्ग सङ्ग में सबकौ अधिकार। (तालिका) सुचि सौरभ=पवित्र सुगन्ध।

विविध वृक्ष अङ्ग अङ्ग कहावें। छवि की लता लपटि छवि पावें। इस विलास में प्रिया प्रीतम के अङ्ग प्रति अङ्गों को विविध प्रकार के वृक्ष तथा लता आदि के रूपक से वर्णन किया गया है। उनके सुरति केलि में परस्पर मिलने से जो सुगन्ध उठती है उससे सखियां पोषण होती हैं। इस विषय को निरूपण करते हुऐ कहते हैं।

॥ दोहा ॥

अङ्ग सङ्गनी सखियों को साथ लेकर प्रियाप्रीतम सुरति विलास में गाढ़ आलिंगन

करते हुऐ परस्पर हिल मिल कर विहार करते हैं।

॥ पद ॥

रसिक दम्पत्ति तालिका के शब्दों में "जिहिं सुख मःचे मार अपार" इस प्रकार से अङ्ग संग करते हुऐ गाढ़ आलिङ्गन करते हैं तब उस छबि को देख कर कोटानि कोटि कामदेवों के मन हनन हो जाते हैं जब दोनों की नासिका से नासिका, कपोल से कपोल मिलते हैं, तब उनका मन रति रङ्ग विलास के लिये होता है फिर उनकी पिण्डुरी से पिंडुरी, जंघा से जंघा और चरण कमलों से चरण कमल मिल जाते हैं। और वे चर्बित ताम्बूल व अधर सुधा आदि का परस्पर आदान प्रदान करते हैं।

श्रीप्रीतम, श्रीस्वामिनी जी से गाढ़ आलिंगन करते हुऐ उनके उस उदर अर्थात् उस रूप माधुरी से भरपूर फूला फला दिव्य मंगल विग्रह पर झुके हुऐ झूलते हुऐ विहार करते हैं ॥१॥

सदा सौभाग्यवती श्रीश्यामा जू जिनके अंग प्रति अंग में रूप माधुरी के मुक्ता लगे हुऐ हैं। लालजू की ओर कृपा भरी दृष्टि से देखती हुई जब उनका गाढ़ आलिंगन करती हैं। तब लालजू उनके आधीन होकर नाना प्रकार के दीन वाक्य कहने लगते हैं।

लालजू और प्रिया जू के परस्पर मिलने से एक अद्भुत शोभा हुई और उनके अंग संग से एक अपूर्व महक उठी ॥२॥

अलवेली श्रीस्वामिनी जू की आज्ञा से अंग संगिनी सखियों ने उस परिमल का आस्वादन किया और उन सबके हृदय कमल उस रस से रसायित हो गये। इससे सब सखियों की मन अभिलाषा पूर्ण हो गईं और उन सबकी आनन्द वेलियां फल फूलों से फलित हुईं ॥३॥

उस पवित्र सुगन्ध ने सब सखियों की रुचियों को गाढ़ बना दिया और वे परस्पर हिल मिलकर उसी रस का आस्वादन करने लगीं।

इस प्रकार श्रीहरि एवं श्रीप्रिया समस्त निकुञ्ज विश्व को सहज सुख प्रदान करते हैं, इसीलिये आप सदां सबके प्राण अधार स्वरूप हैं ॥४॥

॥ दोहा ॥

चढ़े बढ़े चित प्रबल गति, श्रीहरिप्रिया अरैल।
रस अचागरे ये अहे, छके रहत नित छैल ॥

॥ पद ॥६२॥

छके रस अचागरे दोऊ छैल।
रहत सदा चित चढ़े चढ़ेई बढ़े बढ़ेई फैल॥
कौन परनि परि रहे अहे ये गहत नहीं छिन गैल।
श्रीहरिप्रिया प्रबल इनकी गति को समझैं बिनि सैल॥६२॥

प्रबल गति=अति अधिक। अरैल= अड़ने वाला। हठीले। रस अचागरे=रस+अच+अगरे=रस आस्वादन में अग्रणी। परनि=नदी। सैल=सैलानी, स्नेही।

॥ दोहा ॥

श्रीहरि एवं श्रीप्रिया सुरति केलि जन्य रस से छके हुए होने पर भी रस के आस्वादन करने में अत्यंत अग्रणी तथा अत्यन्त लाडके कारन से हठीले हैं। इसी लिये इन दोनों के चित्त अत्यधिक इसी रस को प्राप्त करने के लिये अहर्निश लगे रहते हैं।

॥ पद ॥

यद्यपि ये दोनों इस रस से छके हुए हैं तो भी इसको आस्वादन करने में अग्रणी हैं। इसीलिये इन दोनों के चित्त होड़ा होड़ी इसी रस के आस्वादन करने में बढ़े चढ़ रहते हैं।

श्रीहरि प्रिया सखी कहती हैं। कि ये दोनों कोई एक ऐसी अनिरबचनीय नदी में निमग्न हैं जिससे बाहर निकलने का इनको कोई रास्ता नहीं सूझता इन दोनों की गति बिना कोई स्नेही सैलानी के नहीं समझ सकता है।

॥ दोहा ॥

जानि परैं हिय की सबै, आवत इहि मग जोजु।
भावत प्रिया अँग संगकौ, रसकौ चसको सोजु॥

॥ पद ॥६३॥

रसकौ चसकौ मन भावत जू।
जानि परी हियरे की सबैं अब नित उठि इहिं मग आवत जू॥
लालच लागेई लखियत जब तब परबित चित्त चलावत जू।
श्रीहरिप्रिया अँग संग कौ सो सुख बिना सुरुख को पावत जू॥६३॥

मग=मार्ग। चसका=स्वाद। चित्त=धन। सुरति केलि के सुमेरु के शिखर पर नृत्य करते हुऐ श्रीलालजू की अति अधिकता जानकर श्रीहरि प्रियाजू उनको इस क्रीड़ा में कुछ निवारण करती हुई कहती हैं।

॥ दोहा ॥

हे लालजू! आपकी जो इस मार्ग में प्रवृत्ति है हम आपके हृदय की सब समझती हैं। आपको प्रियाजू के अङ्ग संग जन्य रसका स्वाद ही अच्छा लगता है।

॥ पद ॥

हे लालजू! हम आपके हृदय की जानती हैं। आप अहर्निश इसी मार्ग की ओर लालायित रहते हैं जब तब हम देखती हैं आपको श्रीस्वामिनी जी के अङ्ग संग जन्य रस का स्वाद ही अच्छा लगता है। परन्तु आप दूसरे के धन पर वृथा चित्त चलाते हो श्रीप्रियाजू के अङ्ग सङ्ग का सुख बिना उनकी कृपा भरी दृष्टि एवं उनके रुख बिना आपको प्राप्त नहीं हो सकता है।

॥ दोहा ॥

भरि भरि अंक निसंक दोउ, ढुरि ढुरि रसकी रेलि।
मदमाते मिलि करत कल, कुञ्ज सदन में केलि॥

॥ पद ॥६४॥

कुंज सदन में लाल लाड़िली करत मदन रस माते केलि।
भरि-भरि अंक निसंक नवल बर नागर निपट,
निहोरि निहोरत ढोरत ढुरि-ढुरि रसकी रेलि॥
घुरि-घुरि अङ्ग अनङ्ग तरङ्ग बढ़ावत बलकत,
बदन बिरम्य चढ़ावत तरु चित रुचि की बेलि।
श्रीहरिप्रिया सुरत रनधीर सरीर न चीर सम्हारि,
सकत कहुँ अटक रहे हट अटकि सहेलि॥६४॥

बलकत=बोलना। वदन=मुखारविन्दु। विरमा=विराम होना। तरुचित्त=चित्त रूपी वृक्ष। हठ=आग्रह। सुरति क्रीड़ा का वर्णन करते हुऐ कहते हैं।

॥ दोहा ॥

ये दोनों मदमाते परस्पर एक दूसरे को अंक में ले लेकर रस आस्वादन करते हुऐ निशंक भाव से परस्पर मिल कर सुन्दर कुज सदन में केलि कर रहे हैं।

॥ पद ॥

श्रीलाल लड़ैतीजू मदन रस माते कुञ्ज सदन में सुरति केलि कर रहे हैं। श्रीलाल जू अत्यंत आधीनता से चादु बचन कहते हुऐ श्रीप्रियाजू को निशंक भावसे अंकमें लेते हुऐ ढुरि ढुरि कर रस का प्रवाह बहाते हैं। इस प्रकार से जब वे अङ्ग से अङ्ग मिलाकर दिव्य काम की तरङ्गों को बढ़ाते हुऐ केलि करते हैं। तब कभी कभी वे कुच्छ बोलते हैं कभी चुप हो जाते हैं उस समय श्रीस्वामिनीजी के चित्त रूपी वृक्ष पर रुचि की बेलि और अधिक बढ़ जाती है।

और वे सुरति रन योद्धा और अधिक बेग से मदान्ध होकर इस प्रकार से केलि में प्रवर्त्त होते हैं कि उस समय उनको न तो अपने शरीरों का ही और न ही अपने वस्त्रों का ज्ञान रहता है। सहेलियों के आग्रह करने से ही उनके अङ्गों पर वेश भूषा कहीं कहीं ही अटकें रह जाते हैं।

॥ अनुरागिनि केलिकौमुदी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

विमल अङ्ग में झलमलें, तन झाईं तजि पाज।
रसिकरवन की राजनी, देखहु री अहु आज॥

॥ पद ॥६५॥

आज अद्भुत रसिकरवन की राजनी,
देखि री देखि सखी ! सुरतसुख साजनी।
कमल मिलि कमल की विकल छबि छाजनी,
झलकि झाईं रही पेलि पुल पाजनी॥
रुनुनु नूपुर कुनुनु किंकिनी बाजनी,
सुनि श्रवन होत सुख मधुर धुनि गाजनी।
श्रीहरिप्रिया श्रिया अङ्ग अङ्ग प्रति भ्राजनी,
मदन मनमोहनी जोरि अधिराजनी॥६५॥

अनुरागिनि केलि कौमुदी मध्याभास=कल्याण राग। पाज=मर्यादा। कमल मिल कमल=यहां अङ्ग प्रति अङ्गों से तात्पर्य है। पेलि=तोड़कर, पुल पाजिनी=मर्यादा का रास्ता सुरति युद्ध में प्रवर्त्त लाल ललना की शोभा वर्णन करते हुऐ कहते हैं।

॥ दोहा ॥

हेरी सखी ! आज रसिक दम्पत्ति की यह शोभा तो देखो। इस समय इनके स्वच्छ अङ्ग प्रति अंगों में परस्पर वह अंगों की वह झांई जिसने मर्यादा को तोड़ दिया है। कैसी सुन्दर लगती है।

॥ पद ॥

आज रसिक दम्पत्ति की कुछ अनूठी शोभा है। हे सखी देखो तो सही किस प्रकार से सुरति केलि में प्रवर्त्त हैं। इस समय इनके अङ्गों से अङ्ग मिले हुऐ कैसे सुशोभित हैं। एक दूसरे के अङ्गों पर रूप की झांई इस प्रकार से पड़ रही है मानो इस झांई ने मर्यादा का रास्ता तोड़ दिया हो। इस समय इनके नूपुर और किंकिनो शब्दायमान हो रही हैं। इस धुनि की गान ने सबके श्रवणों को अत्यंत सुख प्रदान किया है। इस समय श्रीहरि एवं श्रीप्रिया के अङ्ग अंगों में शोभा बढ़ती जा रही है। कामदेव के मन को मोहन करने वाली यह जोड़ी सब जोड़ियों के चूड़ामणि स्वरूपा है।

॥ दोहा ॥

लसनि भुजनि में कसनिकी, बसि जु रही हिय मोरि।
ये या जोरी उपरि लै, तृनु जु डारियें तोरि॥

॥ पद ॥६६॥

ये री (अरी) या जोरी पर तोरि तृनु डारियें।
रोम रोम निज प्रति होय दृग थोक थिर,
तौऊ या छबिहिं अवलोकत न हारियें॥
लगत कैसी लसनि गसनि अँग अंगकी कसनि,
भुज की बसनि उरते नहिं टारियें।
श्रीहरिप्रिया प्रतिदिना विपुल पुलकनि प्रभादेखि,
अनिमेखि तन मन धन जु वारियें॥६६॥

॥ दोहा ॥

लसनि=आलिंगन करना। दृगथोक=नेत्रों का समुदाय। थिर=स्थिर=बिना पलक लगे। पुलकनि=रोमांच। अनिमेषि=बिना पलक लगे हुऐ। टकटकी बांध कर।

दोहा—हे सखी ! इस समय ये दोनों परस्पर भुजाओं को कस कर गाढ़ आलिंगन

कर रहे हैं। यह शोभा मेरे हृदय में सदा बसी रहे। इस जोरी पर तृन तोड़ कर डाल दीजिये जिससे किसी की दृष्टि न लगे।

पद—हे सखी इस जोरी पर तृन तोड़ कर डाल दीजिये। यदि हमारे रोम रोम में बिना पलक लगे स्थिर भाव से नेत्रों का समुदाय हो तो भी इस छवि को देखने में हमारी तृप्ति नहीं होती है, ये परस्पर गाढ़ आलिंगन किये हुऐ कैसे सुन्दर लगते हैं।

इनकी परस्पर की भुजाओं की कसनने इनके अंग प्रति अंगों को कैसे उरझा दिया है। यह शोभा एक क्षण के लिये भी हमारे हृदय से दूर नहीं होती है। इस प्रकार श्रीहरि एवं श्रीप्रिया के आलिंगन से इनके अंग प्रति अंगों में बडी भारी रोमांच हो रहे हैं। हम अपने तन मन धन सर्वस्व इन पर न्यौछावर करती हुई प्रतिदिन टकटकी बांध कर देखती ही रहती हैं।

॥ दोहा ॥

सकल-कला-कोबिद खरे, भरे उमँग अङ्ग अङ्ग।
श्रीराधा सङ्ग सेज में, रमत रमन रस रंग॥

॥ पद ॥६७॥

रमत श्रीराधिकारमन रसरङ्ग री,
सुभग सुख सेज में हेज सुख सङ्ग री।
करत रस बस रसिक चुम्बनालिंग री,
देत रस ढारि ढरकाय स उढंग री॥
सकल विद्यान में विसद सरवंग री,
अमित रतिपति निरखि होत गति पंग री।
ललित छबि रहि जु लसि हुलसि अँग अङ्ग री,
सो हैं श्रीहरिप्रिया जुरि जुवन जङ्ग री॥६७॥

कोविद खरे=बड़े चतुर। सर्वांग=अंग प्रति अंग। लसि=आलिंगित। अमित=असीम। हुलसि=उल्लसित, आनन्दित। युवन जंग=सुरति युद्ध।

दोहा—शैय्या पर विराजमान श्रीस्वामिनी जी के साथ वह लालजू जिनके अंग प्रति अंगों में उमंग भरी हुई है, रस रंग विहार कर रहे हैं। श्रीलालजू सब कोक

कलाओं में बड़े भारी चतुर हैं ।

पद—सुभग सुख सेज पर प्रेम राहित सुख पूर्वक श्रीराधा एवं श्रीरमण रस रंग विहार कर रहे हैं श्रीलालजू सब कोक कलाओं में अत्यंत चतुर हैं ।

अत: वे अपने सब अङ्गों से रस को अच्छे ढंग से ढरकाते हुऐ इस प्रकार आनन्द प्रदान करते हैं जिसको देखकर असीम कामदेवों की गति पंगु हो जाती है । आलिंगन करते हुओं की ललित छवि कैसी सुशोभित है । इस समय इनके अङ्ग प्रति अङ्गों में आनन्द उमड़ रहा है । श्रीहरि एवं प्रिया दोनों मिल कर सुरति युद्ध करते हुऐ कैसे अच्छे लगते हैं ।

॥ दोहा ॥

दिनारैन सुख सैन-दुति, महा दैन चित चैन ।
हिलनि मिलनि वर जुगलकी, सदा बसौ हिय ऐंन ॥

॥ पद ॥६८॥

नवलवर जुगल की हिलनि-मिलनी ।
सदा हिय सदन में करहु दंपति मदन केलि अलबेलि रतिरेलि रिलनी ॥
दैन चित चैन सुख सैन दिन रैन महामैंन रस ऐंन छबि नैंन झिलनी ।
श्रीहरिप्रिया परम आनन्द उपजावनी रहसि मनभावनी उरसि खिलनी ।

सुख शैन=आनन्द युक्त शयन करना । द्यु ति=शोभा । रस ऐंन=रस+अयन= रस का स्थान । रति रेलि रिलिनी=दिव्य काम के वेग से मिली हुईं । महा मैन= साक्षात कामदेव । झिलिनी=प्रकाश करने वाली ।

दोहा—रसिक दम्पत्ति की आनन्द युक्त शयन करने की शोभा अहर्निश मेरे चित्त को सुख प्रदान करने वाली है । मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि इन दोनों की हिलन मिलन की शोभा मेरे हृदय में सदा विराजमान रहे ।

पद—नवल किशोर की परस्पर हिलन मिलन की यह शोभा सदा मेरे हृदय में बसी रहे । मेरे हृदय में ये दोनों सदा दिव्य काम के वेग से मिली हुई मदन केलि करते रहें । साक्षात मन्मथ के मन को भी मन्मथ करने वाली इन दोनों की आनन्द युक्त शयन करने की शोभा ही रस के स्थान स्वरूपा है ।

मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि यह शोभा अहर्निश मेरे चित्त को सुख प्रदान करती रहे। और इसी छवि को देख देख कर मेरे नेत्र सदा प्रकाशमान रहैं। श्रीहरि एवं प्रिया की यह छवि रहस्य लीला संबन्धी परम आनन्द को उपजाने वाली है। और मेरे मन को भी यही भाती है, और मेरा हृदय इसी छवि को देख देख कर खिलता रहता है।

॥ दोहा ॥

जुरनि मुरनि अँग अंग की, ढुरनि सेज रस रागि।
छुरनि छदनि छबि देखि यहु, रहे उरनि बिबि लागि॥

॥ पद ॥ ६६ ॥

देखि री दुहूनि की उरनि उर लागिनी।
लगत कैसी जुरनि मुरनि अङ्गअङ्गकी ढुरनि सुखसेजमें हेज-रस पागिनी।
हारबर-वार-वेथुरनि छबि देत हरि लेत हिय छदनिकी छुरनि रति रागिनी
श्रीहरिप्रिया प्रवरपरिरहे सरवर-सुरततुरत मनमथन मनमूरछा जागिनी।६६

सेज रस=सुरति रस। हेज रस पागिनो=स्नेह रस में डूबे हुऐ। हिय छदन की छुरनि=कंचुकी का हट जाना अर्थात बन्ध टूट जाना। रति रागिनी=रति सुख से रंजित होना। प्रवर=प्रवल महिमान्वित। सरवर सुरत=सुरति केलि रूपी सरवर। मन्मथन=कामदेव। मूर्च्छा=क्षोभ होना।

दोहा—रसिक दम्पति के इस समय अङ्ग प्रति अङ्ग मिले हुऐ हैं। ये दोनों सुरति रस से रंजित हैं। देखतो सही। इस समय प्रिया जू की कंचुकी उर से हट गई है। और ये दोनों हृदय से हृदय मिले हुऐ कैसे सुन्दर लगते हैं।

पद—देख तो सही! ये हृदय से हृदय लगाये हुऐ कैसे सुशोभित हैं। ये दोनों सुख सेज विहार में आरुढ़, इस समय स्नेह रस में डूवे हुऐ हैं। ये दोनों रति सुख से रञ्जित हैं। इनके हार और अलकावलि की विथुरन और कंचुकी का हृदय से हट जाना हमारे हृदयों को हर रहा है। इस समय श्रीहरि एवं श्रीप्रिया महिमान्वित सुरति केलि रूप सरोवर में निमग्न हैं। इनको देखकर साक्षात् कामदेवों की गर्वरूपी मूर्च्छा तुरत खुल जाती है।

दोहा—रैन दिनहिं छिन छिनहिं प्रति, परनि प्रेम रस हेलि।
जुगल कुँवरवर की अहो, अलबेली यह केलि॥

॥ पद ॥७०॥

केलि अलबेलिनी बिबि कुँवरबर की ।
रैंनदिन छिनहिं छिन इनहिं अवर न रुचिहिं परे पर परनि इहिं प्रेम-सरकी॥
अधिकहीं अधिक अधिकात नितजात हैं बात कहि आत नहिं अपर परकी ।
श्रीहरिप्रिया प्रान पोषन प्रवर मुकुटमनि करतहीं रहत बरसा सुझर की॥

परनि=पड़ना । प्रेम सर=प्रेम रुपी सरोवर । हेलि=सहेली । अवर=और । अपर पर की=अन्य किसी प्रकार की । सुझर=लगातार बरसना ।

॥ दोहा ॥

हे सहेली ! रसिक दम्पति का यह क्या ही अनूठा विहार है । ये दोनों प्रेम रूपी सरोवर में अहर्निश निमग्न रहते हैं । इससे एक क्षण के लिये भी विराम नहीं होते हैं ।

॥ पद ॥

रसिक दम्पत्ति की यह एक अनूठी केलि है । इनको अहर्निश सिवाय प्रेम रूपी सरोवर में गिरने के और कोई खेल पसंद नहीं है । यह केलि हर समय बढ़ती ही रहती है ।

इससे वितरिक्त अन्य किसी प्रकार की बात इनको नहीं रुचती है । सर्व महिमान्वित श्रीहरि एवं श्रीप्रिया अपने नित्य विहार रूपी वर्षा को लगातार वर्षाते ही रहते हैं । जिससे कि समस्त निकुञ्ज विश्व पुष्ट होता है ।

॥ अनुरागिनि कर्णकान्ता मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सुन्दरता सौभाग्य-मनि रूप सील रस रास ।
भुज ग्रीवाँ दिये जुगलवर विहरत हिये हुलास ॥

॥ पद ॥७१॥

विहरत जुगल दिये भुज ग्रीवाँ ।
सुन्दरता-सोभाग्य-सिरोमनि रस की रासि रूप को सीवाँ ॥
हाव भाव आलिङ्गन चुम्बन देत परस्पर प्रीतम प्यारी ।
अति अधीर अनुराग-विवस दोऊ सुरत-रंग रँग रँगे महा री ॥
रसमय रसिक रसीली भामिनि रसमय रसिक रसीली केली ।
रसमय रहसि निरखि हरषत हिये रसिक हितू श्रीहरिप्रिया सहेली ॥७१

अनुरागिणी कर्ण कान्ता मध्याभासः—कासा कानरौ राग—हुलासि=आनन्द। अधीर=व्याकुल, विह्वल। रस राशि=रस के समूह स्वरूप। भामिनी=श्रीप्रियाजू। रसमय=रस स्वरूप रसिक=रस आस्वादी और स्वादिष्ट। रसीली=रस टपकती हुई। रस वर्षाती हुई। इस पद से रसिक दम्पति सखियों और नित्य विहार का रस सम्बन्धी स्वरूप को निर्धारित करते हुऐ कहते हैं।——

दोहा——श्रीप्रिया प्रीतम एक दूसरे के अंशों पर भुज रख कर आनन्द युक्त विहार कर रहे हैं। ये दोनों सुन्दरता, सौभाग्य, रूप और शील में सबसे मुकुटमणि और रस के समूह स्वरूपा हैं।

पद—ये रसिक दम्पति जो सुन्दरता, सौभाग्य और रूप में सबके शिरोमणि और रसके स्वरूपा है। परस्पर भुजाओं को एक दूसरे की ग्रीवाओं पर रखकर विहार कर रहे हैं। ये दोनों परस्पर हाव भाव सहित आलिङ्गन चुम्बन करते हैं।

ये युगल किशोर सुरति रङ्ग से अत्यन्त रंगे हुऐ परस्पर के अनुराग से अत्यन्त विह्वल हो रहे हैं॥१॥ श्रीप्रिया जू रस स्वरूपा, रस आस्वादी तथा रस की बर्षा करने वाली हैं। इसी प्रकार से नित्य विहार भी रस स्वरूप रस स्वादिष्ट तथा रस की वर्षा करने वाला है। इस रसमय रहस्य स्वरूप नित्य–विहार को देख देख कर रसास्वादी श्रीहितू अली जी एवं श्रीहरि प्रिया सखी हृदय में हर्षित होती हैं।

॥ दोहा ॥

कहा कहौं कहत न बने, सोभा अद्भुत सोउ।
अरी जुगल आनन्द की, मूरति मनहर दोउ॥

॥ पद ॥७२॥

रसिक रसिकनी रतिरस-भीने री जुगल आनन्द की मूरति।
कहा कहौं कहत न बनि आवै सोभा सरस सलोनी सूरति॥
कोक-कला-कल-कोविद दोऊ प्रीतम प्रिया प्रेम-रस पूरति।
श्रीहरिप्रिया दम्पति सुख-संपति सदा रहौ हिय माहिं सफूरति॥७२

सलौनीं=लावन्य युक्ता। कुल=समूह। पूरति=भरे हुऐ। सफूरति=स्फूर्ति।

दोहा——हे सखी। हमारे मनों को हरण करने वाले युगल किशोर आनन्द की मूर्ति स्वरूपा हैं। इनकी शोभा मैं क्या वर्णन करूँ कहने में नहीं आती हैं।

पद—ये दोनों रसिक रसिकिनी आनन्द की मूर्ति हैं और रति विलास रस से भीगे हुऐ हैं। इनकी लावन्य युक्त सुन्दर रूप माधुरी का मैं क्या वर्णन करूँ। कुछ कहने की बात नहीं है।

ये प्रिया प्रीतम प्रेम रस से भरे हुऐ हैं। और सब कोक कलाओं के जानने वालों के समूहों में चतुर शिरोमणि हैं। श्रीहरि प्रिया सखी कहती हैं कि ये रसिक दम्पत्ति हम सब सखियों के सुख सम्पत्ति स्वरूपा हैं। हम यह प्रार्थना करती हैं कि इन दोनों की रूप माधुरी हमारे हृदयों में सदा स्फूर्ति होती रहे।

दोहा—अति सुन्दरवर परस्पर, करत प्रान प्रतिपोष।
कल-कलोलनि-कमल की, निरखहु री निरदोष॥

॥ पद ॥७३॥

कमल-निकुञ्ज की नीकी कलोलनि।
देखि री देखि दृगनि भरि दंपति संपति अमल अमोलनि॥
करत परसपर अति सुन्दरबर टकटोलनि झकझोलनि।
मोरि मरोरनि छोरनि छल करि नीबी-बंध-निचोलनि॥
लपटनि उर झपटनि झुक झटकनि अटकनि अतन अतोलनि।
श्रीहरिप्रिया प्रान परिपोषत ढरि ढरि रस की ढोलनि॥७३॥

प्रतिपोष=परस्पर पालन करना। कल=सुन्दर। कलोलनि=केलि। कमल अथवा कमल निकुञ्ज=यहां अङ्ग प्रति अङ्गों से तात्पर्य है। निर्दोष=परम पवित्र। अमल=स्वच्छ। टकटोलनि=अङ्गों को टटोलना। झक झोलनि=हाथा पाई करना। नीवी बन्ध=नाड़ा। निचोलनि=वस्त्र। अतन अतोलनि=अतुलनीय कामदेव।

दोहा—हे सखी! रसिक दम्पत्ति के परस्पर अङ्गों की परम पवित्र केलि को देखो तो सही। ये रति विहार में आसक्त कैसे सुन्दर लगते हैं। इस केलि से हम सखियों और इन दोनों के परस्पर प्राण पोषण होते हैं।

पद—इन दोनों के अङ्ग प्रति अङ्गों की विलास केलि कैसी सुन्दर लगती हैं। हे सखी हमारे लिये श्रीप्रिया प्रीतम के अङ्ग प्रति अङ्ग ही स्वच्छ अमूल्य सम्पत्ति है। इस अपनी संम्पत्ति को तू आंख भर कर देख तो सही।

सुरति केलिमें आसक्त ये दोनों एक दूसरे के अङ्ग प्रति अङ्गों को किस प्रकार टटोलते हुऐ हाथापाई कर रहे हैं। श्रीलाल जू किस मरोर से श्रीस्वामिनी जी के अङ्गों को मरोरते हुऐ छल से उनके नीवी बन्ध और वस्त्र आदि को छुड़ाते हैं। रसिक शिरोमणि अतुलनीय दिव्य कामदेव से पीड़ित होकर किस प्रकार से झपट झपट कर उनका गाढ़ आलिंगन कर रहे हैं। इसी प्रकार रस की बर्षा करते हुऐ श्रीहरि एवं श्रीप्रिया अपने परस्पर और हम सखियों के प्राणों को पोषण कर रहे हैं।

दोहा—छाजनि छाजनि लहलही लखि सब रही अचंभ।
बनिठनि बैठनि बिबिन की रचि रुचि रंभनि खंभ॥

॥ पद ॥७४॥

बैठे बिबि बँगले बनि ठनि री।
चारिहुँ ओर खंभ रचि रंभनि रहि सब सही अचंभनि सनि री॥
छाजनि छाजनि राजनि रति-रंग साजनि सोभा अङ्ग अङ्गनि री।
श्रीहरिप्रिया केलि बेली मिलि रेली झेली झुकि झूमनि री॥७४॥

छाजनि छाजनि=यहां छत स्थानापन्न अङ्गों से तात्पर्य है। लहलही=सुशोभित। रम्भनिखम्भ=यहां जंघा रूप अंगों से तात्पर्य है। (कदली जंघा जान अनूप-तालिका) अच्चभनि सनि=अच्चभा युक्त। साजनि=सजी हुई। केलिवेलि=केलिरूप लता। रसिक दम्पति की परस्पर वैठन को एक सुन्दर बंगला के रूप से वर्णन करते हुऐ कहते हैं।

दोहा—आज रसिक दम्पति के चारों जंघाऐ मानों उस बंगले के खंम्भ हैं। और वह दोनों परस्पर इस प्रकार झुके हुऐ हैं मानों उस बंगला की अपने दिव्य मंगल विग्रहों से उन्होंने छाया कर रखी हो। इस प्रकार से विराजमान होने की रूप माधुरी को देख देख कर सब सखियां अच्चंभायुक्त हो रही हैं।

पद—अपने अंग प्रति अंगों के विराजमान से बंगले की रचना की गई है। जिस में रसिक दम्पत्ति बनठन कर विराजमान हैं। जिसके चारों ओर जंघा रूपी खम्भ सुशोभित हैं। इस प्रकार से विराजमान होने की शोभा को देख देख कर सब सखियां अचंभायुक्त हो रही हैं। इस बंगले की शोभा उन अंग प्रति अंगों से जो रति रंग में रञ्जित हैं सुन्दर प्रकार से सजा कर छाई गई हैं। श्रीहरि एवं प्रिया की केलि ही मानों सुन्दर बेल है। जो उस बंगले पर चढ़ी हुई है। ये दोनों परस्पर आनन्द में मत्त होकर

इस सुख को परस्पर झेलते हुऐ झूम रहे हैं।

॥ दोहा ॥

कोमल किसलय सयन पर सोहत कुँवर किसोर।
मैंन मनावनि देखि सखी मोहत री मन मोर॥

॥ पद ॥७५॥

मोहत री मन मैंन-मनावनि, रसिक कुँवर बर की कुँवरावनि।
कोमल किसलय सयन सुहावनि, ता पर सुढर ढरनि ढरकावनि॥
अति रति रङ्ग अनङ्ग बढ़ावनि, उमगि उमगि उर सों उर लावनि।
अधर-सुधा अँचवनि अँचवावनि, दसन खंड गंडनि मण्डावनि॥
श्रीहरिप्रिया विमल विलसावनि, सदा सबनि को सुख-सरसावनि॥७५॥

किसलय=किशलय, अंकुरों या पुष्पों की। मैंन=कामदेव। दशनखण्ड=दन्तावलि द्वारा चिह्नित। गण्डन=कपोल।

॥ दोहा ॥

श्रीरसिक दम्पति कोमल पुष्पों की सुसज्जित शैय्या पर विराजमान हैं। हे सखी! तू देख तो सही। श्रीप्रियाजू श्रीलालजू को आनन्द प्रदान करने केलि दिव्य कामदेव को किस प्रकार से मना रहीं हैं। यह देख देख कर मेरा मन मोह को प्राप्त होता है।

॥ पद ॥

कोमल पुष्पों की सुसज्जित शैय्या पर श्रीप्रिया प्रीतम विराजमान हैं। जो कि सुन्दर प्रकार से परस्पर रस की बर्षा कर रहे हैं।

रसिक कुँवर वर की कुँवरावनि अर्थात् श्रीस्वामिनी जी किस प्रकार से उनका सुख प्रदान करने के लिये दिव्य कामदेव को मना रही हैं। यह देख देखकर मेरा मन मोह को प्राप्त होता है ॥१॥ ये दोनों अति रति रंग युक्त अनंग को बढ़ाते हुऐ उमंग उमंग कर किस प्रकार से परस्पर हृदय से हृदय मिला रहे हैं ॥२॥

श्रीलालजू अधर सुधा पान करते और कराते हुऐ श्रीस्वामिनी जो के कपोलों को किस प्रकार से अपनी दन्तावलि द्वारा चिह्नित कर रहे हैं ॥३॥

श्रीहरि एवं श्रीप्रिया का यह अत्यन्त पवित्र विलास सब सखियों को सुख प्रदान कर रहा है ॥४॥

॥ दोहा ॥

किहुँ बस के न रुके रहैं बिसद सुजस जग जास ।
अमृत-रस के अचगरे चसे सदा चस चास ॥

॥ पद ॥७६॥

अति अचागरे अमृत रस के, मिथुन मथन मनमथ मजलस के ।
सकल कला कुल केलि निकस के, रुके रहत नाहिंन किहुँ बसके ॥
बिसद बितान प्रगट जग जसके, श्रीहरिप्रिया चसे चस चसके ॥७६॥

विशद=बड़ा भारी । अमृत रस=अधर सुधा । अचगरे=अच+अग्रे=आस्वादन करने में अग्रणी । जसे=चष=चखना । चष चास=चष चास= चखना चखाना । मिथुन= रसिक दम्पत्ति । मथन= मन्थन करने वाले, तिरस्कार करने वाले । मन्मथ=कामदेव । मजलस=सभा । कुल= समूह । निकस=निकस=कसौटी । बितान=पताका । चसके= चषक=मादक द्रव अर्थात अधर सुधा ।

दोहा—रसिक दम्पत्ति स्वतन्त्र हैं । दूसरे किसी के आधीन नहीं हैं । और न किसी के रोके से रुक सकते हैं । इनका यह एक मात्र विशद यश विश्व में विख्यात है कि ये अधर सुधा पान करने में अग्रणी हैं । अतः ये इसी के चखने चखाने में सदां लगे रहते हैं ।

पद—रसिक दम्पत्ति अधर सुधा पान करने में अग्रणी हैं । ये दोनों कामदेव की सभा के मन को मन्मथ करने वाले हैं । सम्पूर्ण कोककला सम्बन्धी कलाओं के समूह के आप कसौटी स्वरूप हैं । अर्थात् सब कोककलाओं की सत्यता और असत्यता आपकी केलि रूप कसौटी पर ही कस कर निर्णय की जा सकती हैं । ये किसी के आधीन नहीं है । और न किसी के रोके से रुक ही सकते हैं । अतः सदां अधर सुधा पान करते हुऐ अपनी स्वचछ कीर्ति की पताका विश्व में प्रगट करते हैं । श्रीहरि एवं श्रीप्रिया अधर सुधा के चखने चखाने में ही ही सदां लगे रहते हैं ।

॥ दोहा ॥

मरकतमनि-मण्डल जु परि, सकल कलानि सुधंग ।
नृत्य करति नवलड़ैतो, अलग लागि पिय संग ॥

॥ पद ॥७७॥

लेति अलागनि लाग लड़ैती ।
नृत्य करति मरकत-मंडल पर अपट अङ्ग पिय संग अड़ैती ॥
तत्त थेई थेई उघटत सकल कला कुल में सुघड़ैती ।
श्रीहरिप्रिया प्रवर प्रगटी कृति बरविद्या बितपन्नि बड़ैती ॥७७॥

मरकतमनि=नीलमणि, यहां लालजू के दिव्य मङ्गल विग्रह से तात्पर्य है। अलागनि लाग=एक प्रकार की नृत्य कला का नाम। अपट=विना वस्त्र। उघटत=प्रगट। सुघडैती=सुघड=चतुर। वरविद्या=शब्द ब्रह्म सम्बन्धी विद्या। व्यतपन्नि=शिक्षा प्राप्त। बड़ैती=बड़ी। सर्वोत्तम। शब्द ब्रह्म का प्रादुर्भाव एकमात्र विपरीति रति विलास में आसक्त श्रीप्रिया जू के नूपुर के शब्द से हुआ है। इसी विषय को वर्णन करते हुऐ कहते हैं।

दोहा—नीलमणि स्वरूप श्रीलालजू के दिव्य मङ्गल विग्रह पर सब कोककलाओं में प्रवीण श्रीप्रियाजू नृत्य कर रही हैं।

पद-विपरीति रति में आसक्त श्रीप्रिया जू श्रीलालजू के दिव्य मङ्गल विग्रह पर उनके अङ्ग प्रति अङ्गों से मिलकर अवस्त्र अलागनि लाग नामक नृत्य कला द्वारा नृत्यकर रही है। आप संपूर्ण कोककलाओं में चतुरा हैं। आपके नूपुरों द्वारा इस विलास से ततत्थेई थेई आदिशब्द प्रगट होते हैं। सर्वोत्तमा विद्या में शिक्षा प्राप्त श्रीप्रिया इस लीला द्वारा शब्द ब्रह्म प्रादुर्भाव रूपा वर विद्या को भली प्रकार से प्रगट करती हैं।

टिप्पणीः—१—श्रीराधा पद कमलते नूपुर कलरव होय ।
निर्विकार व्यापक भयों, शब्द ब्रह्म कहे सोय ॥
२—कृता युगमेन साकेलि महानन्द मयी ध्रुवा ।
नूपुराज्जनितो राव=स एव=ब्रह्म संज्ञिकः ॥
(सनत कुमार संहिता)

दोहा—उरझि पुरझि तन एक ह्वै, रहे अहे सुनि बाल ।
कैसे आज बिराजहीं, नवल लाड़िली लाल ॥

॥ पद ॥७८॥

लाड़िली लालन की बरबानिक देखि री देखि निहारि ।

कैसे बिराजत आज अलौकिक को सम को उनिहारि ॥
उरझि पुरझि ह्वै रहे एक तन जोवन जोरि बिहारि ।
श्रीहरिप्रिया वारि जल पीजिये लीजिये री बलिहारि ॥७८

उरझि पुरझि=उरझना ।

दोहा—हे सखी तू देख त सही । सुरति विलास में आसक्त श्रीनवल लाड़ली लाल परस्पर उरझे हुऐ आज कैसी सुन्दर प्रकार से विराजमान हैं ।

पद—तू लाड़लीलाल के सुन्दर ढंग से विराजने की शोभा देख तो सही, आज कैसे सुन्दर प्रकार से सुशोभित है । और इनकी रूप माधुरी अलौकिक है । अतः किसी से इनकी शोभा की उपमा नहीं दी जा सकती है । ये दोनों मिल कर यौवन के वेग से विहार करते हुऐ इस प्रकार से उरझे हुऐ हैं मानों इन दोनों का इस समय एक ही दिव्य मङ्गल विग्रह हो गया हो । श्रीहरि प्रिया सखी इस समय की शोभा देख देख कर बार बार बलिहारी लेती हुई इन पर बार बार कर जल पी रहीं हैं ।

दोहा—बितैं इन्हें ए री अहे, बिहरत ही दिन रैंन ।
जोरी अति रति रंग रँगी, दै पुट प्रेम सु ऐंन ॥

॥ पद ॥७९॥

अति रति रंग रँगी नव जोरी कुँवर किसोर किसोरी ।
बिहरत हीं दिन रैंन बितैं इन्हैं है समुझावैं सोरी ॥
तबहीं नैंन निहारि हितू अलि भलि सिखये दृग-कोरी ।
श्रीहरिप्रिया प्रेम पुट दै दै सुरत-समुद्र झकोरी ॥७९॥

उत्थान का—सुरति केलि की दो अवस्थाऐं हैं—

(१) सुमेरु के शिखर पर नृत्य विलास आदि ।

(२) प्रेम में अत्यन्त निमग्न होकर विलास से विराम होना ।

यहां दोनों अवस्थाओं का वर्णन करते हुऐ कहते हैं । पुट=बीज । सुऐन=सुअयन=ठीक समय । सोरी=सौरी सखियां ।

दोहा—हे सखी ! रसिक दम्पति का अहर्निश इसी प्रकार विलास करते हुऐ ही व्यतीत होता है । अति अधिकता देख कर सखियां ठीक समय पर प्रेम का सम्पुट दे देकर इनको विराम कराती हैं ।

पद—कुंवर किशोर किशोरी की नव जोरी अति रति रंग से रञ्जित है। ये अहर्निश इसी प्रकार से विहार करते रहते हैं। जब सखियों के समझाने से भी ये नहीं समझते हैं।

तब अति रति रङ्ग की अधिकता देख कर श्रीहितू अली जी इनको नेत्रों के इंगित से शिक्षा देती हैं। और श्रीहरि प्रिया सखी बीच बीच में प्रेम का पुट दे देकर इनको सुरति केलि में फिर प्रवर्त्त करती रहती हैं।

॥ दोहा ॥

अङ्ग-अङ्ग रँग रगबगे, लगबगे सदा लहिये जु।
आज बिराजनि दुहुन की, देखत ही रहिये जु॥

॥ पद ॥८०॥

बनी है आज बिराजनि बिबि की देखत ही रहिये जु।
सुरत रंग अङ्ग अङ्ग रगबगे लगे बगे लहिये जु॥
सदा रहो यह केलि बेलि चढ़ि मनहीं मन महिये जु।
श्रीहरिप्रिया प्रवर अनुकूलनि कहो कहा कहिये जु॥८०॥

रँग वगे=सुरति केलि में आसक्त। लगवगे=आलिगन किये हुऐ। विवि=दोनों। अनुकूलनि=दक्षिणा अर्थात् वामा नहीं।

दोहा—रसिक दम्पति गाढ़ आलिंगन किये हुऐ हैं। इनके अङ्ग अङ्ग सुरति केलि जन्य आनन्द से रंजित हैं। हम यह प्रार्थना करती हैं कि इस प्रकार की विराजने की शोभा को हम सदा देखती रहा करें।

पद—आज इन दोनों की विराजने की शोभा बहुत ही सुन्दर है। हम इसी ही प्रकार से यह शोभा देखती रहा करें। इन दोनों के अङ्ग प्रति अङ्ग आलिंगन किये हुऐ सुरति रंग से रंजित हैं। हम यह प्रार्थना करती हैं कि ये केलि रूपी वेलि हमारे मन ही मन में इसी प्रकार चढ़ती बढ़ती रहे।

इस समय श्रीप्रियाजू श्रीहरि के वामा नहीं हैं। वल्कि पूर्ण रूप से वे दक्षिणा है अतः इस समय के आनन्द को मैं क्या वर्णन कर सकती हूँ।

॥ अनुरागिनि अलबेलि केलि मध्याभास ॥

दोहा—अङ्ग अङ्ग छबि बालकी, लाल हियो हरि लैंन।
देखत ही रहिये सदा, कहिये कहा जु बैंन॥

॥ पद ॥ ८१ ॥

देखतही रहिये कहिये कहा हे मनहरनी लाल बाल छबि ।
अङ्ग अङ्गमें रङ्ग रङ्गमें हिलिमिलि रहि रस-जाल बाल छबि ॥
नखसिख जोरि चसी चटरस चस आकृति कुंडलहाल बाल छबि ।
श्रीहरिप्रिया पहरि उर लीनी मनहु मरगजी जाल बाल छबि ॥८१॥

अनुरागिणी अलवेलि केलि मध्याभास=अण्डानो रस । चसी=चसी=आस्वादन। जोरि=भली प्रकारसे। चट=गिरना। रस चस=रसको आस्वादनकरना। आकृति कुण्डल=कुण्डालाकार, अङ्गों का गोलाकार आकृति में इकट्ठा होना। हाल=अभी। मरगजी=विलसी हुई। किसी पीत रंगके फूल का नाम। सुरतान्त छवि का वर्णन करती हुई कहती हैं।

दोहा—सुरति केलि के अन्त में प्रियाजू के अङ्ग अङ्ग की छवि ने लालजू के मन को हर लिया है। श्रीहरि प्रियाजू सखी कहती है, कि यह छवि कहने में नहीं आ सकती है। अपितु देखने ही योग है।

पद—हे सखी कुछ कहने की बात नहीं है। सुरतान्त की इस छवि ने श्रीलाल जू के मनको हरन कर लिया है। मैं यह चाहती हूँ कि इस छवि को इसी प्रकार सदा देखती रहा करूँ। रस के जाल स्वरूप यह प्रिया जू की छवि लाल जू के अङ्ग अङ्ग में हिल मिल कर रञ्जित हो रही है। इस छवि का लाल जू ने नख से शिख पर्यन्त भली प्रकार आस्वादन किया है। और श्रीप्रियाजू भी लालजू के रस आस्वादन करने इस प्रकार से गिरी हुई हैं। मानों इस समय इनके अङ्ग अङ्गों की आकृति मुड़कर कुण्डालार अर्थात गोल सी हो रही है। श्रीहरि ने यह अवस्था देख कर श्रीप्रियाजू को विलसी हुई पीत रंग के फूलों की माला की तरह अपने गले में धारण कर लिया।

॥ दोहा ॥

सुरत समर रन जीति कें, सोहति प्रिया सुछंद ।
ढरकि भाल बेंदी रही, स्वेद-सलिल कें सन्द ॥

॥ पद ॥८२॥

रही ढरि भाल तें बेंदी बाल कें स्वेद-सलिल कें संद ।
घसि खसि माँग रही सनि मृगमद अरुन अधर मुख चंद ॥

बिथुरि बार गण्डनि पर मण्डित पीक सुलीक अमन्द ।
श्रीहरिप्रिया सुरत-रन जीति छकी छबि देत सुछन्द ॥८२॥

सुछन्द=स्वच्छंद=स्वेच्छाचारी । स्वेद=पसीना । सलिल=जल । संद=कनपटी । मृगमद=कस्तूरी । अमन्द=भलो प्रकार ।

दोहा—सुरति केलि जन्य युद्ध को जीत कर स्वेच्छाचारी श्रीप्रियाजू अत्यन्त सुशोभित हुईं । इस समय केलि के श्रम से इनकी कनपटियों से पसीना वह चला है, जिसने इनके मस्तक की बेंदी को बहा दिया है ।

पद—कनपटियों के पसीना रूपी जल ने श्रीप्रिया जू के मस्तक की वेंदी को बहा दिया है । और लालजू के अरुण अधरों से घसि खसि इनकी मांग इस समय कस्तूरी की आड़ से जा मिली है । जो श्रीलालजू के पान की पीक से भली प्रकार चिन्हित श्रीप्रियाजू के कपोलों पर इनकी अलकावलि विथुरी हुई हैं । स्वेच्छाचारी श्रीप्रियाजू इस समय सुरति युद्ध में जीती हुईं इस आनन्द में छकी हुई अत्यन्त सुशोभित हैं ।

॥ दोहा ॥

प्रिया प्रबल परताप पिय, रहे रीझि रन जूटि ।
सरबस रस कसि लाल को, लयो लुटेरिन लूटि ॥

॥ पद ॥८३॥

लूटेरिनि लाड़िली लाल को लयो सर्बस रस लूटि ।
बाँधि कियो अपने बस कस करि क्योंहू न पावत छूटि ॥
छल बल सकल कला-कुल कृति की गई आस सी टूटि ।
श्रीहरिप्रिया प्रताप प्रबल तें रीझि रहे रन जूटि ॥८३॥

प्रवल परताप=भारी वीरता । जूटि=प्रवर्त्त होकर । कुल=समूह । कृति=क्रिया ।

दोहा—श्रीलालजू श्रीप्रियाजू की सुरति केलि जन्य युद्ध में वीरता को देखकर रीझ रहे हैं । श्रीप्रियाजू ने एक लुटेरनि की भांति लालजू का सर्वस्व रस लूट लिया है ।

पद—एक लुटेरनि की भाँति इस समय श्रीलाड़िली जूने पहिले लालजू का सर्वस्व रस लूट लिया, फिर उनको प्रेम रूपी रज्जू (रस्सी) से कस कर बांध कर अपने आधीन कर लिया कि वह इस बन्धन से कभी भी किसी भी प्रकार न छूट सके ।

यद्धपि लालजू ने छल बल से छूटने के अनेकानेक उपाय किये तो भी उनमें से कोई भी सफल न हो सका। अन्त में उनके छूटने की आश भी सदा के लिये टूट गई।

श्रीलालजू श्रीप्रियाजू के साथ सुरति केलि जन्य युद्ध में प्रवर्त्त होकर और इस युद्ध में उनकी प्रवल वीरता को देख देख कर रीझ गये।

॥ दोहा ॥

झहरनि झूमनि दुहुन की, झकझोरनि दिन रैन।
कुञ्जकुटी की केलिनी, कहा कहों कहि बैन ॥

॥ पद ॥८४॥

कहा कहों केलि निकुञ्ज कुटीकी।
गोरी स्याम सहज रस बोरी जोरी जोर चुटीकी ॥
सदा रहौ ररि अँखियन ऐंनी लैंनी अधर घुटीकी।
रलकि ढलकि अंसन पर झलकनि अलकनि सीस छुटीकी ॥
श्रम-जल-सिथिल सकल अँग अङ्गनि आवनि उचटि चुटीकी।
मोरनि मुरनि ढुरनि रस ढोरनि कोरनि लाह-लुटीकी ॥
झूमनि झहरनि झकझोरनि में मोतिन माल तुटीकी।
श्रीहरिप्रिया प्रेम-बिहरनि में नेम नपाज पुटीकी ॥८४॥

झह+रनि=झः+रण=झुन झुनाहट की आवाज+रुमझुम का शब्द (कोष) झहरनि=झनझनाहट। नुपुर कोंधनी आदि का शब्द। झकझोरनि=हाथापाई। रस बोरी=रस में उन्मत्त। जोर जुटीकी=समर युद्ध में जोर से जुटे हुए। ररि=समाये रहना। अधर घुटी=अधरामृत। रलकि=विथुर के। चुटी बेनी। कोरन=अलिङ्गन। लाह=लाभ। नेम=नियम=मर्यादा। पाज पुटी=अन्तरा। रुकावट।

॥ दोहा ॥

शय्या विहार सुख में सुमेरु के शिखर पर झूमझूम कर हाथापाई युक्त नृत्य करते समय इनके नूपुरों तथा कोधनी आदि से रूम झूम का शब्द अहर्निश होता रहता है। उस समय की रूप माधुरी को में शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर सकती हूँ।

॥ पद ॥

हे सखी ! कुञ्ज कुटी के रति केलि विहार की शोभा मैं तेरे से क्या कहूँ ? इस

समय श्रीरसिक दम्पति रस में उन्मत्त होकर स्मर युद्ध में जोर से जुटे हुए हैं। मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि इनके अधर सुधा पान करने की यह छवि सदा मेरे नेत्रों में झलकती रहे। देख तो सही इनकी नृत्य गति से हिलती हुई अलकावली तथा बेनी बिथुर बिथुर कर इनके अंसों पर झलकती हुई कैसी सुशोभित हो रही है। विहार के श्रम से श्रम जल बूंदें झलक रही हैं और इनके अङ्ग प्रति अङ्ग शिथिल हो गये हैं। रस के आवेश से श्रीलालजू मुड़ मुड़ कर श्रीस्वामिनी जी के दिव्य मङ्गल विग्रह को स्वच्छन्द मोड़कर इस प्रकार आलिङ्गन आनन्द लाभ करते हैं मानों कोई रस की लूट हो रही हो। सुरत केलि जन्य नृत्य के समय इनके नूपुरों तथा कोंधनी आदि से रोम झोम रोम झोम का शब्द हो रहा है। इस समय यह दोनों झूम झूम कर हाथा पाई कर रहे हैं जिससे इनके गले की मोती माला टूट गई है। श्रीहरिप्रिया जी सखी कहती हैं आज के सुरत विहार में "नियम" ने पाज पुटी अर्थात अन्तरा नहीं किया। सुरति केलि विहार का यह नियम है कि अति आनन्द से मूर्च्छा तथा प्रेम वैचित्री का अन्तरा हो जाता है। आज के विहार में इस मर्यादा ने अन्तरा नहीं डाला। "प्रेम" के लक्षण श्रीभक्ति रसामृत सिन्धु में यह है-

"सम्यक् मसृणित स्वान्तोममत्वातिशयाङ्कितः।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधं प्रेमानिगद्यते॥"

अर्थात् भाव की उस गाढ़ अवस्था को विद्वान लोग "प्रेम" कहते हैं जिसमें चित्त अतिशय ममता के कारण पूर्ण रूप से पिघल जाता है। दूसरे सुरति केलि में प्रायः "प्रेम वैचित्ती" हो जाती है जिससे विरह प्रतीत होने लगता है, यहां आज के विहार में "प्रेम" ने न तो अत्यन्त हृदय को गलाकर मूर्च्छा की न प्रेम वैचित्ती जन्य विरह किया अर्थात सावधानी से नृत्य करते रहे। प्रेम वैचित्ती के लक्षण यह हैं—

"प्रियस्यसन्निकर्षेऽपि प्रमोत्कर्षरव भावतः।
याविश्लेषधियार्तिस्तत् प्रेम वैचित्यं उच्यति॥" (उज्ज्वल)

श्रीमहावाणी में:—मूर्च्छा यथाः—कभी शिथिल ह्वै गिर परेरी मदन मूर्च्छा जाय (सहेली)
प्रेम वैचित्ती यथाः—अति की गति सब ह्वैचुकी रीत न धीरज न धराय।
(सोहिल के पश्चात् छोटी सहेली)

॥ दोहा ॥

ग्रीव ढुरनि कटिकी मुरनि, छुरनि कचनि छबि जाल।
अद्भुत बानिक आज बलि, बने त्रिभङ्गी लाल॥

॥ पद ॥८५॥

अद्भुत बानिक बने त्रिभंगी ।
चरन चरन पर धरे अधर मुरली चितवनि भ्रू भौंह बिभंगी ॥
कटिकी मुरनि ढुरनि ग्रीवनि की कचकी छुरनि रुरनि रसरङ्गी ।
श्रीहरिप्रिया बसौ नित हियमें सहज सेज सुख सुरत सुधंगी ॥८५॥

शय्याविहार सम्बन्धी नृत का उल्लेख पद न० ८४ में किया है । उसी सम्बन्ध में श्रीलालजू की नृत्य करती हुई रूप माधुरी का वर्णन करते हुए कहते हैं ।

ग्रीव ढुरनि=ग्रीवा का मुड़ना । छुरनि कचनि=अलका वली का विथुरना । त्रिभगी लाल=श्रीलालजू की रस भार से ग्रीवा, कटि तथा चरणारविन्दों की झुकी हुई रूप माधुरी को ललित तृभंगी कहते हैं । भ्रू भोंह विभङ्गीं=भ्रू+भोंह+विभङ्गीं= परिचर्या+भोंह+टेढी=अर्थात् टेढी भोंह द्वारा परिचर्या करना । सुधंगी=एक प्रकार की नृत्य गति का नाम ।

॥ दोहा ॥

आज ललित तृभङ्गी लाल की कुच्छ अद्भुत शोभा हो रही है । यह सुरति केलि में नृत्य कर रहे हैं, जिससे इनकी ग्रीवा तथा कटि मुड़ी हुई है और इनकी अलकावली विथुरी हुई है । मैं इस शोभा पर बारबार बलिहारी जाती हूँ ।

॥ पद ॥

रास में मुरली बजाते हुऐ त्रिभङ्ग ललित की रूप माधुरी को रास के रूपक से, यहां सुरति नृत्य को वर्णन करते हैं । आज तृभङ्गीलाल की कुच्छ अद्भुत वानिक है । यह चरण पद्म चरण धरे हुए नृत्य कर रहे हैं । यहां अधर सुधा के पान का शब्द ही मुरली वादन है । यह टेढी भौंह चितवनी से नहीं देख रहे हैं अपितु दीनता प्रकट करते हुऐ श्रीस्वामिनीजी की परिचर्या कर रहे हैं । रस रंग के भार से नृत्य करते हुए इनकी कटि तथा ग्रीवा मुड़ी हुई हैं और इनकी अलकावली विथुर गई है । श्रीहरिप्रिया सखी यह प्रार्थना करती है कि सुरत शय्याविहार में नृत्य करते हुऐ, रसिक दम्पति की यह स्वभाविक रूप माधुरी, मेरे हृदय में सदा विराजमान रहे ।

॥ अनुरागिनि विचित्रशोभा मध्याभास ॥

दोहा—अति निसंक लच लंक में, मुख-मयंक मटकंति ।
मिली रसिकबर सों प्रिया, लाड़लड़ी लड़कंति ॥

॥ पद ॥८६॥

देखौ री देखौ लाड़लड़ी की लटक।
सुभग स्याम घन तन तापिछ सों अलबेली की अटक॥
अति निसंक लचलंक अङ्क में मुख-मयंक की मटक।
श्रीहरिप्रिया रसिकबर सों मिलि गटकति रसकी गटक॥८६॥

अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास=विहागरौ (विचित्र शोभा विहागरौ लहिये-तालिका) लचलंक=कमर का लचकना। मुखमयंक=मुख चन्द्रमा। लड़कन्त=लाड़िले (लालजू) तापिछ=श्याम तमाल। रस की गटक=अधर सुधा। पूर्व प्रसंग का ही वर्णन करते हुए सुरति केलि नृत्यमें श्रीस्वामिनी जी की रूप माधुरी अङ्कित करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

सुरति केलि नृत्य में हाथा पाई करते हुऐ, श्रीरसिकवर लडकन्त लाल को जब निशंक भाव से श्रीस्वामिनीजो ने अपने अँक में कर लिया तब वह मुख चन्द्रमा को मटकाती हुई इतनी प्रसन्न हुई मानो सुरति युद्ध की विजय से इतरा रही हों।

॥ पद ॥

सखी तू देख तो सही श्याम तमाल सदृश सौभाग्यवान श्याम घन को अलवेली लाड़ लड़ीजू ने समय पाकर अचानक किस प्रकार निशंक भाव से अँक में ले लिया है मानों स्वर्ण वेलि श्याम तमाल से लटक रही हो। इस विजय को पाकर श्रीस्वामिनी जी का मुख चन्द्रमा किस प्रकार मटक रहा और आनन्द से कमर कैसे लचक रही है। श्री हरिप्रिया सखी जी कहती हैं श्रीरसिकवर सो मिलकर श्रीप्रिया जी किस प्रकार से अधर सुधा रस पान कर रही है ?

॥ दोहा ॥

अङ्ग अङ्ग अनङ्ग अढ़े दोऊ, अनुकूले चित चाड़।
सोहत हैं श्रीहरिप्रिया, सुख-संपति लड़िलाड़॥

॥ पद ॥ ८७ ॥

सोहते हैं लड़लड़े लाड़ आज।
अङ्ग अङ्ग अनङ्ग अढ़े अनुकूले बढ़े बितन चित चढ़े चाड़ आज॥
लसनि दसन मृदु मधुर हँसनि में परत मनोहर गंड गाड़ आज।
श्रीहरिप्रिया सुखसँपति दंपति रतिपति अतिकौं देत आड़ आज॥८७

सुरति केलि जन्य मिलन सुख को अङ्कित करते हुए कहते हैं। अनंग=कामदेव। अडे=बीच में व्याप्त होना। बीच में अड़ना। वितन=कामदेव। चाड=चाव। दशन=दन्तावली। गण्ड=कपोल। गाड=हंसते समय कपोलोंपर जो गढ्ढा सा पड़ता है उससे तात्पर्य है। आड=लड़ाई में बजाने वाली विगुल जो युद्ध का सूचक होती है। चिनोती देना (कोष)

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति के अङ्ग अङ्ग में कामदेव व्याप्त है। इस समय यह दोनों इस प्रकार से विराज रहे हैं जिससे इनके अङ्ग प्रति अङ्ग परस्पर अनुकूल हैं। इसी से इन के चित्तों में अत्यन्त चाव है। श्रीहरिप्रिया सखी की लाड़ लाड़िली को इस प्रकार से विलसाना ही सुख सम्पत्ति है।

॥ पद ॥

आज श्रीलाल लड़ेती जू इस प्रकार से श्रीहरिप्रिया सखीजू से लाड़ लड़ाये जा रहे हैं।—इन दोनों के अङ्ग प्रति अङ्ग में काम छा रहा है। इस समय यह परस्पर अनुकूल भाव से विराजमान हैं। सुरति केलि जन्य चाव से यह अत्यन्त कामातुर हैं। इस समय की मृदु मन्द मन्द हास्य से इनकी दन्तावली सुशोभित है और इससे इनके कपोलों में हास्य जन्य आनन्द से गढ्ढे से पड़ रहे हैं। श्रीहरिप्रिया सखी का इस प्रकार से लाड लड़ाना ही सुख सम्पति है। इस समय श्रीरसिक दम्पति उपरोक्त प्रेम विलास से मानों अनन्त कामदेवों को युद्ध के लिये युद्ध विगुल बजाकर चिनोती दे रहे हैं।

॥ दोहा ॥

यदपि प्रान की बेधिनी, सजी सौंज अङ्ग अङ्ग।
तद्पि नासा में दियौ, सोहत ललित लवङ्ग॥

॥ पद ॥ ८८॥

ललित लवङ्ग नासिका सोहैं।
चढ़ी भौंह तिरछौंही चितवनि अति हीं अन्योही उरकों पोहैं॥
एते पर इंगुर की सुरकी तापर मृगमद विन्दु बिमोहैं।
श्रीहरिप्रिया प्रान-बेधन कों सजी सौंज जा में कजी न कोहैं॥८८॥

यह पद आगामी पद न० ८९ जिसमें विपरीत रति विलास का वर्णन है उसकी उत्थानिका है। सौंज=सामग्री। लवङ्ग=नाक का आभूषण। अन्यौंही=और ही

प्रकार से। पोहैं=बेधती है। इंगुर=हींगलू=एक प्रकार की लाल रंग की मिश्रण। जिसको स्त्रियाँ मस्तक पर लगाती हैं। सुरकी=सुरखी=लाल बेंदी। मृगमद=कस्तूरी। कजी=कमीयुक्त।

जैसे सहज सुख में वर्णन है:—"पुलकि प्रिया लिये लाय हियेसों। ढरकि जुरावन वदन वदन की यह छवि नित रहो लाग जियसों सीचंन सुधा भुजनि की भींचन,निरखनगीचन भावभिये से श्रीहरिप्रिया पोष परिपागे अनुरागे रस दिये लिये सों।। इस पद में "निरख नगीचन भावभियेसों" इस तुक से ही यहां हमारा तात्पर्य है। अर्थात् सुरत झूला का पिछले कई पदों में वर्णन किया जा चुका है। अब अत्यन्त निकट से भाव भरी दृष्टि से जब श्रीलालजू श्रीस्वामिनीजू को देखते हैं तो उनकी विपरीत रति की इच्छा होती है उस समय की आसक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं:—

।। दोहा ।।

यद्यपि श्रीस्वामिनीजी के अङ्ग प्रति अङ्ग में श्रीलालजू के प्राण को बेधन करने की सब सामग्रियां उपस्थित हैं तो भी इस समय उनको अधर सुधा सदन के निकट विराजमान बेसर की लवँग ने वरवश कर लिया है।

।। पद ।।

अधर सुधा सदन के निकट बेसर की लवँग के बड़ भाग को देखकर ज्योंही लालजू उसको चुम्बन करते हैं, त्योंही श्रीस्वामिनी जी की भोहें चढ़ जाती हैं और वह तिरछी चितवन से नेति नेति वचनामृत कहती हुई श्रीलालजू की ओर देखती हैं जिससे वह रसिक शिरोमणि अत्यन्त अधीर होकर और ही प्रकार से बेधित हो जाते हैं। ऐसा होने पर भी श्रीलालजू की दृष्टि जब श्रीलड़ैतीजू की लाल हींगलू की और श्याम कस्तूरी की विन्दनियों पर जाती है तो वह और भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं। श्रीहरिप्रिया सखी जी कहती हैं श्रीस्वामिनीजू के श्रीदिव्य मङ्गल विग्रह में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिस में लालजू को वरवश करने की कम सामग्री हो। उपरोक्त लीला से अधीर होकर वह मरकतमणि श्याम कञ्चन तनी को खेंचकर अपने दिव्य मंगल विग्रह पर नृत्य विलास के लिये उद्यत करते हैं।

।। दोहा ।।

हौलें हौलें महल की, धरनी चरन धरंति।
अति मदमाती लाड़िली, गजगति लिये डोलंति ।।

॥ पद ॥८६॥

लाड़िली लालके मदमाती गज-गति लीये डोलें।
मरकत-मनिके अहल महल में चरन धरति हौलें-हौलें॥
लटकी लट अटकी अंसन पर चटकीली चखि लोलें।
लसनि हँसनि में दसनि-सिखरदुति सुरँगी रङ्ग तँबोलें॥
झुकि-झुकि देत लेत अधरामृत सपरसि पान कपोलें।
श्रीहरिप्रिया निरखि नैनन सुख वारति प्रान अमोलें॥८६॥

पद न० ८८ में वर्णन कर चुके हैं। इस पद में विपरीत रति विलास का विस्तार पूर्वक वर्णन है।

होलें होलें=शनै शनै। महल=यहाँ श्रीलालजू के दिव्य मंगल विग्रह से तात्पर्य है गजगति=हाथी सरीखी मस्त चाल से। मरकत मणि=नील मणि। अहल महल= अहल ऊरदू शब्द है जिसका अर्थ मनुष्य है अर्थात् मनुष्य रूपी महल यहां श्रीलालजू के दिव्य मंगल विग्रह से तात्पर्य है। चख=नेत्र कमल। लोलैं=चञ्चल। लसनि=सुशोभित। दशनि=दन्तावली। शिखर द्युति=अत्यन्त चमकीली। वेहद चमकीली। तमोलैं= ताम्बूल=पान।

दोहा—श्रीलाड़िलीजू अन्यन्त मदमाती हथनी की चाल से श्रीलालजू के दिव्य मंगल विग्रह पर विहार कर रही हैं।

पद—अपने प्यारे लालजू के लाड़ को पाकर श्रीलड़ैतीजू मस्त हथनी की चाल से मरकत मणि सरीखे श्रीलालजू के दिव्य मंगल विग्रह पर नृत्य कर रही हैं। इस समय इनके चटकीले नेत्र कमल अत्यन्त चञ्चल हैं नृत्य करते हुए झुकने से श्रीस्वामिनीजू की अलकावली झूमकर विथुर के श्रीलालजू के कन्धों से आ मिली है। इस समय की मुस्कराहट से उन दन्तावलियों की अत्यन्त शोभा हो रही है, जो पान बीड़ी के रंग से रञ्जित होकर वेहद चमक रही हैं। श्रीस्वामिनी जी झुक झुक कर अधरामृत पान कर रही हैं तथा करा रही हैं। और वे बार बार अपने कोमल हस्त कमलों से श्रीलालजू के कपोलों को छूती हैं। श्रीहरिप्रिया सखी अपने नेत्र कमलों से इस सुख को देखकर अपने अमूल्य प्राणों को उपरोक्त छवि पर बार बार वारि रही हैं।

॥ दोहा ॥

एक पलक बिछुरें न बिबि, लगे टगें सुख साँचि।
ललित-सेज पर ललन मिलि, रमत रहसि रस राँचि॥

॥ पद ॥९०॥

रहसि रङ्ग रस राचे ललना।
ललित सेजपर हेजभरे हियें बिछुरत जियें परत पल कल ना॥
अनुरागे बड़भागे दोऊ टग लागे इक टग नहिं टलना।
श्रीहरिप्रिया प्रान के सनमुख जिहिं सुख चाहत तिहिं रुख चलना॥९०॥

इस पद में भी विपरीत रतिविलास का ही वर्णन है।

बिबि=दोनों अर्थात् रसिक दम्पति। टगे=परस्पर टिकटिकी बान्ध कर देखना। सुख साचि=वास्तिविक सुख। ललित सेज=यहां श्रीलालजू के दिव्य मङ्गल विग्रह से तात्पर्य है इक टग=दृष्टि से दृष्टि मिलाकर=एक दृष्टि से। प्रिया प्रान के सन्मुख= श्रीप्रियाजी के प्राण की गति देखकर।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति विपरीत रति विहार में इतने आसक्त हैं कि उस सुख से एक पलक के लिये भी अलग नहीं होना चाहते हैं। यह दोनों टिकटिकी बान्धकर परस्पर देख रहे हैं। रतिविपरीत विहार ही इनका वास्तिविक सुख है इस समय श्रीस्वामिनीजू श्रीलालजू के दिव्य मङ्गल विग्रह पर नृत्य करती हुई रहस्य सम्बन्धी रस से रची हुई हैं।

॥ पद ॥

श्रीलड़ैतीजू शय्या विहार सम्बन्धी रस से रञ्जित हैं। यह लाल सम्बन्धी ममता से भरी हुई उनकी देह रूपी शय्या पर विहार कर रही हैं। इस समय एक पल के लिये भी इस सुख से बिछुरना नहीं चाहती हैं। यह दोनों बड़भागी अनुराग में विवश हाकर टिकटिकी बान्धकर इस प्रकार परस्पर देख रहे हैं कि एक क्षण के लिये भी इनके नेत्र कमल नहीं झपकते हैं। श्रीलालजू श्रीप्रियाजू के प्राण श्रीहरि की प्रिया अर्थात् श्रीस्वामिनीजू अपने प्राण प्यारे लाल के सन्मुख उनका रुख लिये हुए क्रीड़ा कर रही हैं अर्थात् जिस प्रकार से वह सुखी हों उसी प्रकार से विहार कर रही हैं। यद्यपि प्रायः सभी लीलाओं में श्रीलालजू ही श्रीप्रियाजू के रुख के अनुसार विहार करते हैं परन्तु यहां

क्योंकि विपरीत रति विलास है अतः श्रीस्वामिनी जी यहां नायक हैं इसलिये नायका स्थानापन्न श्रीलालजू के रुख देखकर क्रीड़ा करना समीचीन ही है।

॥ दोहा ॥

कियें पान रस मत्त मन, अँगसंगिनि की सैल।
उमँगभरे मिलि चले दोउ, कुँज-कुटी की गैल॥

॥ पद ॥६१॥

चले मिलि कुंज-कुटी की गैल।
उमँगभरे अँग अंग रँगररे अँगसंगिनि की सैल॥
किये पान रस मत्त परस्पर छकनि छके दोउ छैल।
श्रीहरिप्रिया प्रसन्न बदन अलबेले अलक लड़ैल॥६१॥

इस पद में रति विलास, सम्प्रयोग विहार का वर्णन करते हैं। अङ्ग संगनि कि सैल=अङ्ग संगनि सखीयां जो आपके अंगों में भूषण बसन आदि स्वरूपों से विराजती हैं उनकी सैल अर्थात् उनका आनन्द विलास। कुञ्जकुटी=निज तन सुभग रतन मनि कहिये। कमल निकुञ्ज कमल हू लहिये। (तालिका) गैल=साँकरी गली=निकट नितम्बनि के निज रोरी। कहिये ताहि साँकरी खोरी। (तालिका) रंग ररे=रतिविलास आनन्द में व्याप्त। पान=अधर सुधा पान। अलबेले=बांका पन लिये हुए। अलक लड़ैल=लाड़ करने के योग्य लाड़िले।

॥ दोहा ॥

यद्यपि रसिक दम्पति अधर सुधा रस पान आदि से उन्मत्त दशा को प्राप्त हो रहे हैं, तो भी उन अङ्ग संगनि सखियों के प्रभाव से जो वस्त्र भूषण आदि स्वरूपों से हर समय आपकी सेवा में सावधान रहती हैं, आप दोनों उमंग में भरे हुए कुञ्ज कुटी की गैल—सुमेरु के शिखर पर नृत्य लीला में अथवा सम्प्रयोग विहार में प्रवृत होते हैं।

॥ पद ॥

अत्यन्त लाड़िले श्रीहरि एवं श्रीप्रिया के मुखार विन्द आनन्द से प्रफुल्लित हैं। इन दोनों की हर एक क्रियाओं तथा अङ्ग प्रति अङ्गों में बाँकांपना छाया हुआ है। यह दोनों छैल यद्यपि इस समय अधर सुधा रस पान से छक कर उन्मत्त दशा को प्राप्त हो रहे हैं तो भी इन अंग संगनि सखियों की करतूतों से जो वस्त्र आभूषण स्वरूपों से हर समय

युगल को सेवा करतो रहती हैं रसिक दम्पति उमंग में भर कर सुरत झूला झूलने के लिये कुञ्ज कुटी की गैल जा रहे हैं अर्थात सम्प्रयोग विहार कर रहे हैं ।

॥ दोहा ॥

कमलनि कमल कलोलहीं, बोलहिं बचन रसाल ।
सुभग सेज पर मदमते, राजत मोहन लाल ॥

॥ पद ॥६२॥

मदन मद माते मोहन लाल ।
राजत सुभग-सेज पर दोऊ दियें भुजा अँकमाल ॥
कमल कमल मिलि केलि कलोलत बोलत बचन रसाल ।
श्रीहरिप्रिया सुरत-सरवर में क्रीड़त मिथुन मराल ॥६२॥

पूर्व पद की तरह इस पद में भी रति बन्ध विलास का वर्णन है ।

कमलनि कमल कलोलहीं=युगल के पृथक् पृथक् अंग प्रति अंगों का मिलना:— "हृदय कमल मुख कमल सुहाये । कर–पद–नैन कमल मन भाये ॥ और हु कमल भेद बहु विधि के । भरे सुरंग समर ऋद्धि सिद्धि के ॥" "निज तन सुभग रतन मणि कहिये । कमल निकुञ्ज कमल हू लहिये ॥" (तालिका) मदन मदमाते=कामातुर बोलहि बचन रसाल=रस से सने हुये मधुर मघुर वचनामृत अथवा सीतकारादि अव्यक्त शब्द । सुरत सरबर=सुरति केलि रूप सरोवर । मिथुन मराल=हंस हंसनी का जोड़ा ।

॥ दोहा ॥

सौभाग्यवती शय्या पर केलि जन्य आनन्द में विभोर होकर यह दोनों परस्पर अगों से अँग मिलाकर रति बन्ध केलि करते हुए अव्यक्त सीतकारादि शब्द कर रहे हैं ।

॥ पद ॥

सौभाग्यवती शय्यापर सुरति केलि रूप सरोवर में दिव्य काम के मद से उन्मत्त होकर श्रीलाल लड़ेंतीजू परस्पर अंकमाल दिये हुए पृथक् पृथक् अंगों से अंग मिलाकर अर्थात् हृदय से हृदय, मुख से मुख, कर से कर, पद से पद नेत्र से नेत्र तथा अन्य रहस्य अंगों से रहस्य अंग मिलाकर शीतकारादि अव्यक्त शब्द करते हुए इस प्रकार से रति बन्ध लीला कर रहे हैं मानों कोई दिव्य हंस हंसनी का जोड़ा किसी दिव्य सरोवर में क्वणित क्वणित शब्द करता हुआ तैर रहा हो ।

अनुरागिनि कन्दर्प कामा मध्याभास

दोहा—जोरी गोरी साँवरी, प्रानप्रिया पिय की जु।
सदा सुरस बरसावती, अरु भाँवति जिय की जु।

॥ पद ॥६३॥

जोरी भाँवती जी की।
साँवरी गोरी सलोनी प्रीतमा पी की ॥
सकल सुख सौभाग्य सींवा नित्य नव नीकी।
सुरस बरषावती हितू श्रीहरिप्रिया ही की ॥६३॥

श्रीरसिक दम्पति के उभय संगम से जो प्रेम रस की वर्षा होती है उसका वर्णन करते हुए कहते हैं। सुरत सुख के प्रारम्भ में भी यह भाव प्रकट किया था अब समाप्ति में भी उसी भाव को लाते हैं। प्रारम्भ में यथा:—

"चित्ताकर्षिनि चञ्चला वर्षनिधन रस प्रेम"। इत्यादि अनुरागिणी कन्दर्प कामा मध्यामास=केदारौ राग। सुरस=यहां उभय संगम रस से तात्पर्य है। नित्य नव=जब देखें जब नई। नीकी=सुन्दर ॥ ही=हिय=हृदय ॥

॥ दोहा ॥

श्रीप्रिया प्रीतम की गौर साँवरी जोरी उस उभय संगम रस की सदा वर्षा करती रहती है जो रस सब सखियों का सद्भोग्य तथा भांवता है।

॥ पद ॥६३॥

श्रीरसिक दम्पति की यह सलोनी गौर साँवरी जोरी सब प्रकार के सुखों तथा सौभाग्यों की सीवाँ स्वरूपा है। इनकी सुन्दरता क्षण क्षण में बढ़ती रहती है जब देखते हैं तब ही नवीन सी प्रतीत होती है। इन दोनों के मिलने से सदैव उर संगम रस प्रेम की वर्षा होती रहती है जो कि सब सखियों का भोग्य तथा भांवता है श्री हितु सखी जी एवं श्री हरिप्रिया सखी जी का तो वह रस हृदय का प्राण धन स्वरूप है।

दोहा—रंगरँगीली देखि छबि, लज्जित अति रति काम।
करत केलि गर मेलि भुज, स्यामा अँग सँग स्याम ॥

॥ पद ॥६४॥

रँगीली रँगीलौ बिराजें ।
बलि बलि जाऊँ री हौं आजें ॥
साँवरे अंग संग गुन अभिरामा स्यामा,
देखत छबीली छबि रतिपति लाजें ।
बाहु कंठ मेलि रँगरेलि झेलि करत केलि,
तरु तमाल कनक-बेलि उपमा पराजें ॥
तरु तमाल कनक-बेलि उपमा पराजें ॥
श्रीहरिप्रियाजू को परम पवित्र जसौ,
बसौ लसौ हियें लियें सुरत समाजें ॥६४॥

पूर्व प्रसंग पद न० ६३ में "सुरस वर्षावती" अर्थात उभय संगम रस का वर्णन किया गया था उस रस की परम पवित्रता को वर्णन करते हुए कहते हैं—

रंग रंगीली=सुरत केलि रंग से रञ्जित ।

पराजें=पराजय =जीतना । गुनअभिराम =सब गुणों के आश्रय करने की ठौर स्वरूप । सुरत समाजे=सुरतकेलि सम्बन्धी सब अंग संगनि सखियों सहित ।

॥ दोहा ॥

सुरत केलि जन्यरंग से रञ्जित श्रीश्याम श्यामा परस्पर असोंपर भुजदण्ड रखकर अंग संग कर रहे हैं जिनको देखकर कोटि रति काम लज्जित भाव को प्राप्त होते हैं ।

॥ पद ॥६४॥

हे सखी ! आज काम–केलि रंग से रञ्जित रंगीली व रंगीले की अपूर्वढंग से विराजने की छवि पर मैं बार बार बलिहारी जाती हूं । यावत् मात्र गुण हैं सभी श्रीश्यामाजू के दिव्य मंगल विग्रह में जाकर सुखी होते हैं । इस प्रकार गुणाढ्य श्रीश्यामाजू से श्रीलालजू अंग संग बिहार कर रहे हैं जिसको देखकर कोटि रतिकाम लज्जित होते हैं । इस समय यह दोनों परस्पर अंसों पर भुजदण्ड रखकर काम केलि के बेग को झलते हुए इस प्रकार से गाढ-गाढ आलिङ्गन किये हुए हैं कि इनके सामने कनक वेलिका तरु तमाल से वेष्टन होना पराजय भाव को प्राप्त हो जाता है । श्रीहरिप्रिया सखी जी यह प्रार्थना करती हैं कि श्रीप्रिया प्रीतम का पूर्व पदों में वर्णित सुरत केलि सम्बन्धी सब अंग

संगिनी सखियों की समाज सहित यह परम पवित्र यश सदा मेरे हृदय को अलंकृत करता हुआ इसीमें विराजमान रहे।

टिप्पणीः—"श्रीजयदेव भणित हरि रमितम्।
कलि कलुषं जनयतु परिशमितम्॥"
(गीत गोविन्द)

श्रीजयदेवजी से कथित, श्रीप्रिया प्रीतम की सुरति केलि, कलियुग के पापों को समन करती है। पुनः यथा—

"शृङ्गार माङ्गलिकयोः राधा कृष्णयोः"।
(विदग्धमाधव)

श्रीराधाकृष्ण की शृङ्गार रस सम्बन्धी सब लीलाऐं मङ्गल स्वरूपा हैं इसीलिये परम पवित्र हैं।

दोहा—रहसि बिनोद भरे दोऊ, करत हासि परिहासि।
नागरि नागर सुघरवर, सुंदरता की रासि॥

॥ पद ॥९५॥

नवलवर नागरी नागर दोऊ रूप उजागर,
दोऊ सोभा के सागर दोऊ सुँदरताकी रासि।
आलिंगन चुंबनादि करें हियें उनमादि,
रहसि बिनोद-भरे हासि परहासि॥
मोहनी मन मोहैं सोहनी तिरछोहैं,
सोहैं कुटिल कटाक्ष होहैं भृकुटि बिलास।
निकट निहारें तन मन प्रान धन वारें,
उमँग अपारे श्रीहरिप्रिया निज दासि॥९५॥

श्रीग्रन्थकारने "उभय संगम रस" तथा सुरत बिलास की "परम पवित्रता" वर्णन करके इस प्रकरण को यद्यपि समाप्त सा कर दिया है, तोभी "मधुरेण समाप्यते" इस न्याय से वह फिर समाप्ति में रसिक दम्पति की रहसि विनोद की झाँकी कराते हुए कहते हैं रहसि बिनोद=सुरतिकेलि। उजागर=निधान। सुघरवर=अति चतुर। नवल=

किशोर अवस्था प्राप्त। नागरी नागर=नगर में रहने वाले नागरिक कहलाते हैं अत्यन्त सभ्य ।

॥ दोहा ॥

अति चतुर और अत्यन्त सुन्दर श्रीनागरी नागर सुरत क्रीडा सम्बन्धी आनन्द में विभोर होकर परस्पर हास्य परिहास्य कर रहे हैं ।

॥ पद ॥

किशोर अवस्था प्राप्त रसिक दम्पति जो अत्यन्त श्रेष्ठ, सभ्य,रूप के निधान,शोभा के सागर तथा सुन्दरता की राशि हैं, सुरत क्रीडा सम्बन्धी आनन्द में उन्मत्त होकर परस्पर अलिङ्गन चुम्बन करते हुए हास्य परिहास्य कर रहे हैं मोहिनीजू तिरछी सुन्दर भोहों और कुटिल कटाक्षों द्वारा भृकुट विलास करती हुई श्रीलालजू के मन को मोह रही हैं। श्रीहरिप्रियासखी और इनकी निज दासी यह शोभा पास से ही देख रही हैं। वे अपार उमंग में भरि कर अपने सर्वस्व तन, मन, प्राण और धन को इस झाँकी पर बार-बार वांरिफेरि करि रही हैं ।

अनुरागिनि सुष्ठुसुन्दरी मध्याभास ।

दोहा—सब निसि बिलसी हुलसि हिये, पेलि केलि की कूंदि।
सुखद सेज में सुंदरी, बरषि बितन बन बूंदि ॥

॥ पद ॥९६॥

बरषत बन बिनोद बन बूंदी ।
सारी रैंन सुखदिनी सुंदरि सुखद-सेज में सूंदी ॥
रगमग रंग अनंग अंग अँग संग सुरत रस रूंदी ।
श्रीहरिप्रिया हिलिमिले परस्पर पेलि केलिकी कूंदी ॥९६॥

अनुरागिणी सुष्ठसुन्दरी मध्याभास=सोरठराग ॥

"श्रीमहावाणी" ग्रन्थ के ठीक प्रारम्भ में ही सखी नाम रत्नावली स्तोत्र है उसमें श्रीप्रियाजूकी ८ अंग संगनियों के नामों का उल्लेख है।

"हरिणीं हारिणीं ह्रीणां ह्रीतां च चतुरक्रियाम्
कौमारी सततं वन्दे तप्त चामीकर प्रभाम् ॥१॥

मुग्धां स्निग्धां विदग्धां चासन्दिग्धां च चतुराक्रियाम् ।
वन्देऽरुणि कृपा भासां देवर्षि प्रमदा कृतिम्" ॥२॥

चारों श्रीसनकादिक, श्री हरिणी, हारिणी, ह्रणां और ह्रीतां स्वरूपों से चार क्रिया रूपों से और श्रीदेवर्षि नारद जी मुग्धा, स्निग्धा, विदग्धा और असन्दिगधा चार क्रिया रूप स्वरूपों से श्री स्वामिनी जी की अंग संगनि होकर विराजमान हैं। हरिणी— श्रीलालजू के मन को हरने वाली, हारिणी उनके गले का हार बनाने वाली, ह्रीणा श्रीस्वामिनीजू को लज्जायुक्त करने वाली और ह्रीता जिसके प्रभाव से श्री प्रियाजू विगत लज्जा हो जाती हैं। इसी प्रकार मुग्धा भोरी बनाने वाली, स्निग्धा सरस करने वाली, विदग्धा—चतुरा करने वाली और असन्दिग्धा विरह ताप से पीड़ित करने वाली ये आठ अंग संगनियों का उल्लेख किया गया है। इस पद में "ह्रीता जी" अंग संगनि का प्रभाव वर्णन करते हुए श्री ग्रन्थकार "पेलि केलि की कूँदि" समस्या से उस भाव को वर्णन करते हैं —

पेलि केलि की कूँदि=क्रीड़ा करत सकुच जो होई। कही केलि की कूँदि सोई। (तालिका) सकुच को छोड़कर अर्थात् विगत लज्जा सुन्दरी=श्री प्रिया जी। सुखद सेज=सुख आसन। वितन वनबूँदि=दिव्य काम सम्बन्धी जल की बूँदें। वनविनोद= निकुञ्ज लीला। सूँदी=शयन किया। रूँदी=सुरत विलास=रतिविहार मन्थन से श्रमित।

॥ दोहा ॥

उल्लास सहित सुख आसन से क्रीडा करते हुए श्रीलालजू ने सारी रात विलास किया। श्रीस्वामिनीजी ने भी दक्षिणा भाव से विगत लज्जा होकर दिव्य काम सम्बन्धी रस की वर्षा की।

॥ पद ॥

"क्रीडा करत सकुच जो होई। कही केलि की कूँदी सोई॥" तालिका अर्थात् सुरत क्रीडा में सकुचता ही केलि की कुञ्जी है याने सकुचता ही से रति रस की वृद्धि होती है यथा—

"नेति नेति वचनामृत सुनि सुनि पिय हिय बढ़त मनोज।
त्यों त्यों अतिरन धीर मिलावत असनि अरुण सरोज॥" (सेवा सुख)

पुनः "रस वर्धन यह मान प्रिया कौ।" (युगल शतक)

ऊपर वर्णन कर चुके हैं "ह्लोता जी" अंग संगनी सखी की यह सब करतूत है। आज के विहार में श्रीस्वामिनी जी पूर्ण दक्षिणा हैं इसलिये लालजू को सुख प्रदान करने के लिये उन्होंने सकुच को छोड़कर अपने उन प्रीतम के साथ सारी रात सुख शय्या पर शयन किया जिनके अंग प्रति अंग दिव्य काम के वेग से पीड़ित हो रहे थे इसलिये सुरत रस के आवेश में भरकर उन्होंने श्री लड़ैती जू को रूंद अर्थात् मन्थन करके श्रमित कर दिया। उभय रति विहार संगम से दिव्य काम सम्बन्धी रस की वर्षा हुई।

टिप्पणी—दलमली के सम्बन्ध में "विहारी शतसई" का दोहा चरितार्थ होता है—

"यों दलमल यत निर्दई दई कुसुम सो गात।
कर धरि देखौ धर धरा उर को अजो न जात॥"

दोहा—सिथिल श्रमित नहि गहत मग, रहे टगे टग लाय।
सोभा बिहरनि बिबिन की, निरखत नैंन सिराय॥

॥ पद ॥६७॥

सोभा निरखत नैंन सिराय।
बिबि कंजन बिचि बिधु-मनरंजन श्रवत सुधा सुखदाय॥
मरकतमनि के चारु चौक में राखी चहल मचाय।
भरत जबै डग लगत नहीं लग रहे टगे टग लाय॥
सिथिल श्रमित नहिं गहत गैल पिय छैल परे बे पाय।
श्रीहरिप्रिया प्रसन्न बदन बर कर गहि लिये उठाय॥६७॥

कभी कभी रति विहार में आसक्त रसिक दम्पति को "प्रेम वैचित्ती" के कारण "मदन मूर्च्छा" हो जाती है। यहाँ श्रीलाल जू की इसी प्रकार की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं—जैसे सहेली में वर्णित है—'कबहू शिथिल ह्वै गिर परेरी मदन मूर्च्छा आय। जब ज्यो में ज्यो न रह सखि करिये कहा उपाय।" (सहेली)

टगे टग=टिकटिकी वान्धकर देखना ।
विवि=दोना । सुधा=अमृत ।

मरकत मनि के चारु चोक=श्री लाल जू के दिव्य मंगल विग्रह । यथा:— "मरकत मणि कञ्चन घन दामिनि । सो पिय प्यारी तन संज्ञागनि ।।" (तालिका)

चहल=उथल पुथल । डग=पद (यहां भरत जवे डग अर्थात् जब प्रारम्भ करते हैं गैल=रास्ता । पिय छैल=श्रीलाल जू । बेपाय=अति अधीर होकर ।

।। दोहा ।।

पूर्व प्रसंग वर्णित सुरति केलि जन्य श्रम से दोनों के अंग प्रति अंग शिथिल एवं श्रमित हो रहे हैं । इसलिये अके थके से होकर परस्पर टिकटिकी बांधकर इन दोनों के विहार की शोभा देख देखकर मैं अपने नयनों को सिराती हूँ ।

।। पद ।।

रसिक दम्पति की शोभा देख कर ही मेरे नेत्रों को शान्ति मिलती है । इन दोनों के दिव्य मङ्गल विग्रह कमल से भी कोमल और चन्द्रमा से भी अधिक मन को रञ्जन करने वाले हैं । इसलिये सुरत केलि के श्रम से इनके अंगों में पसीना नहीं है बल्कि वह "प्रेम" और "रस" के संघर्ष से परस्पर सुख प्रदान करने वाला अमृत है जो अंगों से चुचा रहा है। इतना होने पर भी "नियरे ही रहत निपट उर लागे तोऊ अधीर अकुलाय ।" (सहज सुख) श्रीलाल जू की इस समय की अधीरता ने इनके दिव्य मङ्गल विग्रह में उथल पुथल मचा रखी है । क्योंकि उद्योग करने पर भी जब सब चेष्टाएँ निष्फल हो जाती हैं तब वे दीनता से श्रीप्रिया जू के मुख कमल की ओर टिकटिकी बांधकर देखने लगते हैं । शिथिल एवं श्रमित होकर जब आगे बढ़ने का कोई रास्ता नहीं देखते हैं तब वह छैल मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं । ज्यों ही श्रीप्रिया जू ने श्रीलाल जू की यह अवस्था देखी त्यों ही उन्होंने मुस्कराते हुए श्रीहरि के हस्त कमल पकड़कर उनको अपने हृदय से लगा लिया ।

दोहा—तुम बिन स्वामिनि सुखनिधे, को समुझे यह मर्म ।
मोहिं देहु पद परम प्रिय, है जु तुमहिं सब सर्म ।।

॥ पद ॥६८॥

प्रिया मोहिं दीजै हो पद पर्म ।
प्रनतन पाल कृपाल कृसोदरि है तिहरो यह धर्म ॥
तुम बिन अहो सुकुँवारि सिरोमनि को समुझै निज मर्म ।
श्रीहरिप्रिया स्वामिनी सुखनिधि है जु तुमहिं सब सर्म ॥६८॥

फल प्राप्ति के पश्चात् पद न० ६८ और ६६ में श्रीलाल एक प्रकार से श्रीस्वामिनीजू की विरदावली गान करते हुए कहते हैं।

पद परम=चरणारविन्द । अथवा परम पद ऊँचे से ऊँचा विहार सम्बन्धी पद। सुमेरू के शिखर पर नृत्य करने की आज्ञा।

॥ दोहा ॥

श्रीलाल जू अत्यन्त प्रसन्न होकर श्री स्वामिनीजू के चरणारविन्दों को पकड़ कर कहते हैं—हे सुख की निधान श्रीस्वामिनी जू ! आपके बिना इस मर्म को कौन समझ सकता है। जो आपके हैं उनकी रक्षा करने की शरम आपको ही है। मेरी एक मात्र यही अभिलाषा है कि इन चरणों की कृपा मुझ पर सदा बनी रहे।

॥ पद ॥

हे प्रियाजू ! आप मुझको इन चरणारविन्दों की सेवा प्रदान करें। हे कृशोदरी ! जो आपके आश्रित हैं उनकी रक्षा करना आपका धर्म हैं। हे सुकमारशिमणी ! आपके बिना मेरे निज मर्म को बात कौन समझ सकता है। आप ही मेरे सुख की निधान हैं श्रीहरि प्रिया सखी ने आर्तजनों के दुख दूर करने की दीक्षा ले रखी है। आप उनकी स्वामिनी हो। इसलिये मेरी आर्ती दूर नहीं होने से आपको ही शरम लगेगी।

दोहा—चिन्तत फलदैंनी प्रिया, चिंतामनि चिद्‌रूप ।
और न गति तुम विनजु मोहिं अहु स्वामिनि सुखरूप ॥

॥ पद ॥ ६६ ॥

अहो मेरी स्वामिनी सुख-रूप ।
नाहिं गति मोहिं आन तुम बिन सकल सिद्धि स्वरूप ॥
ज्यों-ज्यों चाहत त्यों-त्यों पुरवत परम प्रवर अनूप ।
श्रीहरिप्रिया चिन्तत फलदैंनी चिंतामनि चिद्‌रूप ॥६६॥

श्रीलालजू चरण पकड़े पकड़े विरदावली गान करते हुए कह रहे हैं :—चिन्तित फलदेनी=अभिलाषा के अनुसार फल प्रदान करने वाला। चिन्ता मनि=चिन्तित फल देने वाली मणि। चिदरूप=चित्स्वरूपा=अर्थात् जड़ नहीं। परम प्रवर=महिमान्विता।

॥ दोहा ॥

हे स्वामिनीजू ! आप चित् स्वरूपा चिन्तत फल देने वाला मणि के सदृश मेरे अभिलाषाओं के अनुसार फल प्रदान करने वाली हैं। हे सुख स्वरूपा आपके बिना मेरी और कोई गति नहीं है।

॥ पद ॥

हे मेरी सुख प्रदान करने वाली स्वामिनीजू ! आपके बिना मेरी और कोई गति नहीं है। आप ही मेरी सब अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली सिद्धि स्वरूपा हैं। आपके बराबर और कोई नहीं है। आप ही परम महिमान्विता हैं इसलिये मेरी सब कामनाओं की आप ही पूर्ति करती हैं। हे श्रीहरिप्रिया ! (यह स्वामिनी जी का नाम भी आप ही मेरी अभिलाषाओं के अनुसार चिन्तित फल देने वाली चिदरूपा चिन्तामणि हो। तात्पर्य यह है प्रसिद्ध चिन्तामणि सर्वशक्तिमान होते हुए भी, मणि होने से चैतन्य नहीं है जड़ है। परन्तु आप सत्–चित्–आनन्द स्वरूपा चिन्तामणि हो।

दोहा—नेम प्रेम ते परे जो, अति दुर्ल्लभ अधिकार।
रीझि देत जिहिं जुगल जु, सुमिरत सुरत बिहार॥

॥ पद ॥ १०० ॥

जुगलवर को यह सुरत बिहार।
जो कोउ गावै सुनै सुनावै पावै निज अधिकार॥
नेम प्रेम तें परें परम पद जाको अति विस्तार।
श्रीहरिप्रिया रीझि अपनावें देत न लावें बार॥१००॥

इस पद से "सुरत सुख" की फल स्तुति करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं:—नेम=साधन भक्ति=विधि भक्ति। प्रेम=प्रेम लक्षण भक्ति।

॥ दोहा ॥

जो कोई अधिकारी इस "सुरत सुख" का स्मरण करता है, उस पर श्रीप्रिया प्रीतम रीझ जाते हैं, और उसको सुरत सुख से उत्थित अति दुर्लभ उस काम रस सुख को प्रदान करते हैं जो रस विधि और प्रेम लक्षणा भक्ति से भी परे है।

॥ पद ॥

रसिक दम्पत्ति के इस सुरत विहार को जो कोई गाता है सुनता है अथवा सुनाता है तो वह अति विस्तरित काम केलि उत्थित उस रस को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है जो रस साधन भक्ति अथवा प्रेम लक्षणा भक्ति से भी परे है। उस अधिकारी पर स्वयं श्रीप्रिया प्रीतम रीझ जाते हैं और उसको जल्दी ही अपना लेते हैं।

दोहा—श्रीस्यामा श्रीस्याम को, यह सुख सुरत बिहार।
बसहु सदा हिय सदन में, सकल सार को सार॥

॥ कुण्डलियाँ ॥

महा मृदुल महा मधुर मधु महा रहसि रसरासि।
महा सुखद सर्वस की महा मनोभव भासि॥
महा मनोभव भासि भूलि जिनि देहु सठहिं कोउ।
परम प्रेम परकासि आस पद बास चहौ जोउ॥
परिपक भये भाजन बिना सुरँग ढारि दीजिये कहा।
श्रीहरिप्रिया को सर्व विभव दुर्लभते दुर्लभ महा॥१॥

"सुरत सुख" नहीं अपितु यह "महामनोभव भाष्य" है अर्थात् "साक्षात् मन्मथ मन्मथ" साक्षात् मदन मोहन के मनको मन्मथ करने वाला दिव्य काम सम्बन्धी एक महाभाष्य ग्रन्थ है। फिर ग्रन्थकार इस ग्रन्थ के अधिकारी का निर्वाचन करते हुए कहते हैं:—सकल सार को सार="धर्म", अर्थ, "काम" और मोक्ष" चतुर्थ पुरुषार्थों में "मोक्ष" सार है और इसका भी सार "प्रेम" का सार "दिव्य काम" है।

महा मृदुल=अत्यन्त कोमल। महामधुरमधुर=महा स्वदनीय से भी स्वादनीय शृङ्गार रस। महा रहसि रस रासि=महा गुप्त रस को राशि। रहसि रस का अर्थ कोष में स्त्री मैथुन सम्बन्धी रस भी वर्णन है। महामनोभव भासि=साक्षात् मन्मथ मन्मथः अर्थात श्रीकृष्ण सम्बन्धी कामदेव की व्याख्या स्वरूप शठ=दुष्ट। गुण्डा। बदमास। व्यभिचारी आशु=जल्दी। शीघ्र। परिपकु=परिपक्व। पका हुआ। सर्व विभव=सर्वसम्पत्तियों की

सम्पति अर्थात् "प्रेम"। सर्बेश=सर्वे रसानां ईशः सर्वेशः अर्थात् श्रीप्रिया प्रीतम के विलास में सभी रसों का समन्वय है। यथा भगवत रसिक जी का पद "नव रस नित्य विहार में, नागर जानत नित्य" इत्यादि।

॥ दहा ॥

श्रीग्रन्थकार यह प्रार्थना करते हैं कि प्रिया प्रीतम का यह सुरत विहार जो सब साध्य साधनों का सार स्वरूप है मेरे हृदय मन्दिर में सदा विराजमान रहे।

॥ कुण्डलिया ॥

"शृङ्गार हास्य करुण रौद्रवीर भयानकः।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्येरसाः स्मृताः॥
निर्वेदस्थायिभावोस्ति शान्तोपि नवमोरसः।"

शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत यह आठ रस नाटकों में कहे गये हैं, इनमें शान्त रस जिसका स्थाई भाव निर्वेद है और जोड़ने से रसों की संज्ञा नौ हो जाती है कोई कोई इनमें वात्सल्य रस को भी जोड़ते है फिर रसों की संज्ञा १० हो जाती है। श्री महावाणी ग्रन्थ प्रायः शृङ्गार रस का ही ग्रन्थ है। शृङ्गार रस की यह ६ संज्ञा हैं—

"शृङ्गारो मधुरः शुक्लः शुचिः श्रीरस उज्ज्वलः।
इत्यवं स्वानुरूपाभिः संज्ञाभि सोऽभिधीयते॥"१॥
कटुतिक्तादि सर्वेषु रसेषु परमो रसः।
मधुराख्यो यथाः प्रोक्तः परमास्वाद लक्षणः॥२॥
तथा शान्तादिसर्वेषु रसेषु परमो रसः।
शृङ्गारो मधुरः प्रोक्तः परमाह्लादलक्षणः॥३॥
अतएव हि शृङ्गार रस एव स्वतो रसः।
रसानां सर्व मूर्द्धन्यः प्रथमः परिगरायते॥४॥ (युः तः सः २४१)

शृङ्गार, रस के ही कटु चिरपरादि भेद होने से, शृङ्गार मधुर, शुक्लं, शुचि, श्रीरस और उज्ज्वल रस ये ६ भेद किये गये हैं। इन सबमें "मधुर" रस ही परमास्वाद लक्षण होने से शान्त आदि सब रसों का शिरोमणि रस है। इसलिये श्रीमहाबाणी ग्रन्थ में "मधुर" शृङ्गार रस सम्बन्धी ही सब लीलाएँ वर्णन की गई हैं। कटु, तितिक्त शृङ्गार रसों का इस ग्रन्थ में वर्णन नहीं है यथा— "मान, विरह, भ्रम का न लेश जहाँ रसिक राय को रसमय भौन।" (सिद्धान्त सुख)

मधुर रस में भी इस "सुरत सुख" में "महामृदुल महा मधुर मधुर" रस का ही वर्णन किया गया है अर्थात कोमल से कोमल मीठा से मीठा मधुर रस इसमें वर्णित है। क्योंकि और और सुखों में वसन्त, होली तथा अन्य उत्सवों सम्बन्धी लीलाओं का वर्णन किया गया है परन्तु सुरत सुख न तो केवल शय्या विहार सम्बन्धी ही लीलाएँ हैं इस लिये यह सुख "महामृदुल महा मधुर मधु महा रहिसि रस राशि" कहा गया है।

"महा सुखद सर्वेश की महामनो मनभासि।"

यह सुरत सुख सर्वेश अर्थात सब रसों के ईश श्रीप्रिया प्रीतम को अत्यन्त सुख प्रदान करने वाला है। श्री रसिक दम्पति की लीलाओं में सब रसों का समन्वय है। श्रीभगवत रसिक जी ने इस प्रकार किया है—

दोहा—"नव रस नित्य विहार में, नागर जानत नित्त।
भगवत रसिक अनन्यवर, सेवा मन बुधि चित्त ॥१॥
पाँयन परिविनती करें, सो रस मुख्य शृङ्गार।
मान छोड़ि मृदु वचन कहें करुणा रस निरधार ॥२॥
सेना वेनी हास्य रस, हाथा पाई वीर।
कम्प भयानक जानिये, रौद्र छुड़ावै धीर ॥३॥
रद छद में वीभत्सरस, अद्भुत श्रम को देत।
बूढ़ि रहे सुख सिन्धु में परमशांत रस हेत ॥४॥

"महामनोभाव भासि"

अर्थात यह सुरत सुख नहीं बल्कि साक्षात् मन्मथ मन्मथ श्रीकृष्ण सम्बन्धी महादिव्य काम केलि का मानो भाष्य अर्थात् व्याख्या स्वरूप है।

प्रेम का परम सागर "दिव्य काम" है इसका विस्तार पूर्वक उल्लेख हम इसी ग्रन्थ की भूमिका में कर चुके हैं। काम के आठ अनुभव-अलिङ्गन, चुम्बन, नखछेद, दर्शन छेद, सम्वेशन, सीत कृत, पुरुषायित, औपरिष्ठिकाना है 'सुरत सुख' में इन्हीं अनुभावों की उदाहरण स्वरूप लीलाओं का वर्णन किया गया है इसलिये यह सुरत सुख मानों "महामनो भव भाष्य" अर्थात दिव्य काम क्रीड़ा की व्याख्या स्वरूप है।

अब सुरत सुख के अधिकारी का वर्णन करते हुए कहते हैं—"महामनोभव-भाष्य भूलजिन देहु शठहि कोउ। परम प्रेम प्रकाश आशुपद वास चहो जोउ।"

जिस किसी अधिकारी की "परम प्रेम प्रकाश" अर्थात् प्रेम की भी सार स्वरूप अर्थात सुरत विहार सम्बन्धी लीलाओं की अपने हृदय मन्दिर में शीघ्र प्रकाश करने की अभिलाषा हो और जो सुरत लीला में आरूढ़ श्री रसिक दम्पति के चरणारविन्दों की गन्ध आघ्राण करने का इच्छुक हो, वह इस ग्रन्थ को शठ अर्थात् स्त्रीलम्पट पुरुष को भूलकर भी न देवे, यदि ऐसा करेगा तो उसके हृदय से यह सब लीलाएँ अस्त हो जावेंगी और वह रसिक दम्पति के चरणारविन्दों की सेवा से वहिष्कृत हो जावेगा। जो कोई साधक अपने हृदय में परम प्रेम अर्थात् सुरत विहार सम्बन्धी लीलाओं का प्रकाश करना चाहे और शीघ्र ही श्रीप्रिया प्रीतम के चरणों को निकट निवास करना चाहे वह भूल कर भी इत्यादि अथवा "परिपक्व भये भाजन विना सुरंग ढार दीजिये कहा श्री हरिप्रिया कौ सर्वविभव दुर्लभ ते दुर्लभ महा ॥" अब यदि कोई यह कहे 'शठ' को तो नहीं देना चाहिये साधारण भक्त को तो दे सकते हैं इसके उत्तर में कहते हैं।

श्रीप्रिया प्रीतम की जितनी विभव सम्पत्तियां हैं, यह सुरत सुख सब सम्पत्तियों में महा दुर्लभ से दुर्लभ सम्पत्ति है। इसलिये बिना श्रेष्ठ अधिकारी के यह देना नहीं चाहिये। क्योंकि जैसे बिना पके हुए कच्चे मिट्टी के वर्तन पर रंग करने से वह रँग भी नष्ट हो जाता है और वह वर्तन भी खराब हो जाता है इसी प्रकार यह सुरत सुख परिपक्व अवस्था प्राप्त साधक के लिये ही उपदेश करना चाहिये नहीं तो बर्तन की भान्ति साधक और रँग की भान्ति उपदेशष्ट दोनों की हानि होगी।

अपक्व अवस्था से परिपक्व अवस्था किस तरह प्राप्त हो सकती है इसके लिये श्रीमहावाणी सिद्धान्त सुख में विस्तार पूर्वक निम्नलिखित पद में वर्णन किया गया है—

"विधिनिषेध आदिक जिते कर्म धर्म तजि तासु।
प्रभु के आश्रय आवहीं जो कहिये निज दास ॥ इत्यादि।

(सिः सुः पदः ४१)

दोहा—द्वै श्लोक द्वै दोहा सत, पद आभास सहेत।
पुनि इक दोहा कुंडलिया, यहै सुरत सुख सेत ॥१॥

सत ऊपर षट हैं सबै, अबै कहों जो जानि।
प्रति प्रति अनुरागनि जु पद, इहि विधि सों उनमानि ॥२॥

॥ छप्पय ॥

रत्नकला उनईस दोय ललितानिनिमें गुनि।
विश्वाभा में पाँच विलासावलि में पाँच पुनि॥
टहलतत्परा चारि पाँच आनन्दामें चहि।
दस सुरंगअंगाजु प्रनयप्रचुरा में सप्त कहि॥
गौरमुखी में सप्त पद केलिकौमुदी षट लहे।
कर्नकान्तिका में जु दस और सुनहु जो बचि रहे।
पाँच केलि अलबेलि बिचित्रसोभा में सातहिं।
कंदर्पा में तीन सुष्ठसुंदरि में पाँचहिं॥
ए सब पद सत एक पंचदश अनुरागनि में।
सुने सुनावे याहि जाहि गनि बड़भागनि में॥
तजि बिकार मन भजहिं जो सजि आश्रय निर्गुण सदा।
सो निश्चय पद पावहीं यामें संसय नहिं कदा॥२॥

दोहा—जो पद सबतें श्रेष्ठ हैं, सो पद सो पद देत।
गो पद ज्यों भव-उदधि लँघि, पावै परमनिकेत॥१॥

समाप्ति में ग्रन्थकार इन दोहों द्वारा सब राग रागिनियों का ब्योरा करते हुए कहते हैं।

शत पद =१०० पद। आभास सहेत=आभास दोहों सहित। सेत=हद। अनुरागिनी=राग रागिनी। रतन कला=रतन कला सो रामकली पुनि। (तालिका) ललिता ननि=ललतानना सो ललित रागनि गुनि। विश्वाभा=विश्वाभा विभास कहिये कल।' विलासावलि=विलासा वलि जु विलावल। टहलतत्पर=टहल तत्पर टोड़ी जानो। आनन्दा=आनन्दा आसावरी जानो। सुरंग अंगा=सुरंग अंग सारंग हि मानो। प्रणय प्रचुरा=प्रनय प्रचुर पूर्वि पहिचानि। तालिका। गौरमुखी=गौर मुखी गौरी को जान। केलि कौमिदी=केलि कौमुदी कहि कल्यान। कर्ण कान्तिका=कर्नकान्तिका सो कानरौ। केलि अलवेलि=अलवेलि केलि अण्डानो कहिये। विचित्र शोभा=विचित्र शोभा विहागरौ लहिये। कन्दर्पा=कन्दर्प कामा कहिये केदारौ। सुषु सुन्दरि=सुष्टु सुन्दरि सोरढि सोई। निर्गुण=सत्, रज तथा तम प्रकृतिक गुणों से रहित। गोपद=जितना जल गऊ का खुर कीचड़ में टिकने से जो चिन्ह होता है उसमें समाता है।

भवउदधि=संसार रूपी समुद्र । परम निकेत=श्रीनित्य वृन्दावन ।

॥ दोहा ॥

इस ग्रन्थ में २ श्लोक, २ दोहा और १०० पद आभास दोहों सहित हैं। इसके पश्चात् १ दोहा और एक कुण्डलिया और हैं, यहां तक "सुरत सुख" की हद है। याने दोहे कुण्डलियाँ सब मिलाकर कुल १०६ पद हैं। अब जिन जिन राग रागिनियों में पद हैं उनका ब्योरा कराते हुए कहते हैं :—१९ रामकली, २ ललित रागिनी, ५ विभास, ५ विलावल ४ टोडी, ५ आसावरी, १० सारङ्ग, ७ पूर्वी, ७ गौरी ६ कल्यान, १० कानरौ, ५ अण्डानो, ७ विहागरो ३ केदारौ, तथा ५ सोरठि में हैं। कुल पद १०० है। यह १०० पद उपरोक्त १५ राग रागिनियों में है। जो इनको सुनते सुनाते हैं वह बड़े बड़ भागी हैं। जो साधक काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्यादि मन के विकारों को छोड़कर उन श्रीप्रिया प्रीतम का उत्साह सहित आश्रय लेते हैं जो प्राकृतिक गुणों अर्थात् सत, रज तथा तम से परें हैं वे अवश्य ही श्रीरसिक दम्पति के चरणार विन्दों को लाभ कर लेते हैं इसमें नेक भी संशय नहीं है। सखी भाव प्राप्त अधिकार सबसे श्रेष्ठ पद है आप कहते हैं कि इस सुरत सुख के १०० पदों का अनुशीलन करने से यह अधिकार भी सहज प्राप्त हो सकता है। संसार रूपी सागर को वह साधक इस प्रकार से सहज उलङ्घ कर जाता है जैसे गऊ के खुर से चिन्हित भूमि को हर एक मनुष्य बिना परिश्रम पार कर सकता है। अन्त में वह साधक "परम निकेत" अर्थात श्रीप्रिया प्रीतम के परम धाम श्रीनित्य वृन्दावन को प्राप्त कर लेता है जैसे ग्रन्थकार स्वयं सिः सुः में कहते हैं :—

"या अनुक्रम करि जे अनुसरही, शनै शनैः जग तें निर वरहीं ।
परम धाम परिकर मध्य वसहीं, श्रीहरि प्रिया हितु संग लसहीं ॥"(सिः सुः पदः ४१)

इति श्रीपदविलास निकुञ्ज रहस्य श्रीमहादिव्य महाराजेश्वर प्रवर परमहंस
बंशाचार्य श्रीमद् श्रीहरिव्यास देवजू कृत श्रीमहावाणी
श्रीसुरत सुख सम्पूर्णम् ॥

सहज सुख

– भूमिकाः –

सहज सुख किसे कहते हैं ?

अजन्यस्तु स्वतः सिद्धः भावंः स्वरूप मीश्यते कथ्यते । (उज्ज्वल नीलमणि)

उल्लासात्म को ज्ञान विशेषः सुखम् । (सन्दर्भ)

अर्थात रसिक दम्पति के अजन्य अर्थात नित्य स्वतः सिद्ध स्वभाव सम्बन्धी उल्लासात्मिक ज्ञान विशेष को सहज सुख कहते हैं। इस सुख में सेवा–उत्सव तथा सुरत सुख सरीखी चेष्टाएें नहीं हैं, अपितु श्रीप्रिया प्रीतम के अहर्निश नित्य मिले रहने से भी प्रेम की जो तरंगे क्षण क्षण में उठती रहती हैं उन्हीं तरङ्गों का इस सुख में वर्णन किया गया है। इस बात को ग्रन्थकार इस सुख के मङ्गला चरणमें स्पष्ट करते हुए कहते हैं :–

"वृन्दावन कलानाथौ हृदयानन्द वर्द्धनौ ।
सुखदौ राधिका कृष्णौ भजेऽहं कुञ्ज गामिनौ ।।"

मैं नित्य निकुञ्ज लीला परायण उन श्रीराधा कृष्ण को भजता हूँ जो वृन्दावन के चन्द्रमा स्वरूप हैं, जिनके हृदयों का स्वभाविक आनन्द उल्लास इस प्रकार से बढ़ता रहता है जैसे चन्द्रमा को देखकर समुद्र में बाढ़ आती रहती है। इसी आनन्द बाढ़ से स्वयं आपको और आपके परिकरों को सुख मिलता रहता है।

श्रीराधासुधानिधि ग्रन्थ में "सहज प्रेम" की परिभाषा इस प्रकार की गई है:—

"सा लावण्य चमत्कृति नववयो रूपं च तत् मोहनम् ।
तत् तत् केलि कला विलास लहरी चातुर्यमाश्वाप्यभूः ।
नो किञ्चित कितमेव यत्र न नुति ना गो नवा सम्भ्रमो ।
राधा माधवयोः सकोऽपि सहजः प्रेमोत्सवो पातुवः ।।"

(राः सुः निः श्लोक १०२)

श्रीराधा माधव का कोई एक अनिर्वचनीय वह स्वाभाविक प्रेम उत्सव आप लोगों की रक्षा करे जिसमें दोनों की कोई कृत्य अर्थात चेष्टा नहीं है न हीं जहाँ किसी प्रकार की स्तुति अथवा मान सम्भ्रम आदि लोलाऐं हैं। अपितु उस सहज प्रेम उत्सव में रसिक दम्पति के अङ्ग अङ्गों-से चमत्कार उत्पन्न करने वाली लावण्य, नवीन किशोर अवस्था,

निरूपम मोहन रूप तथा अनन्त रस मयी विलासों की तरङ्गें विलास चतुरता सहित उठ रही हैं।

इस श्लोक में भी अचेष्टित स्वाभाविक प्रेम का नाम सहज प्रेम कहा गया है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती जी स्वाभाविक प्रेम का यह लक्षण वर्णन करते हैं:—

"स्वदृष्टिजनमात्रस्य रति जनकत्वं स्वरूपम्"।

सहज प्रेम उसको कहते हैं जिसमें केवल दृष्टि विन्यास से ही रति उत्पन्न हो जावे। यह बात तो रूप की हुई, इसी प्रकार रसिक दम्पति के शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध आदि से स्वाभाविक अर्थात सहज प्रेम की जो हिलोरें उठती रहती हैं उनका जिस "सुख" में वर्णन किया गया है। ग्रन्थकार की परिभाषा उसी सुख को "सहज सुख" नाम से कहने की है। उदाहरण के लिये सहज सुख के कुच्छ अंशों को यहाँ लिखा जाता है:—

—: शब्द:—यथा:—

"विविध वाक विलास विनि वनि विपिन की वरदायिनी।
विहँसि रहसि विनोद वितरनि विशद पद पर दायिनी॥" सः सुः पद २४ पृः १०
"रस भीनी बतियाँ ललनकी...
श्रीहरिप्रिया हरन हिय लायक दायक बांछित फलनकी॥ (सः सुः पद ५२ पृः २५

—: स्पर्शः —यथा:—

"रोम रोम रस रागहीं जब उर लागे आनि......
रोम रोम रति रस में रागति जब उर लागति आनि॥ (सः सुः पदः ८६ पृः ४३)

"रूप" यथा:—

"पलकान्तर अविलोक विन कल्पान्तर हि विहात।" (सः सुः पदः ३३ पृः१६)
"देखत नैन पावत चैन। प्रियाजू तव वदन की छवि मोहनी मन मैन॥
बढ़त है बलि जाऊ उरमें "सहज सुख" की शैंन॥ (सः सुः पदः ८५ पृः ४२)

"रस" यथा:—

"ढरकि सुधा रस सींचि भुज भीचि किये मन भाय॥"
(सः सुः पदः ५ पृः २॥)

"गन्ध" यथा:—

"तो तन वन मो मन मधुकर मति अति सुन्दर वरगह्वर जामें। रहत सदा

मण्डरानो महाई। कवहूँ कदम्ब अम्ब जम्बुनि पर कवहुँ कदलि केतकी मधुकन कवहूँ कमल पर रहत लुभाई ।। चंपक पर ह्वै सोनजुही केशरि में रंरिकवहुँक रहत है कुञ्ज कुन्द केवर उर झाई। श्रीहरिप्रिया सौरभ समूह के झपट दपट में झूलि निपट ही रहत सकल सुधि भूलि सदाई ।।"

(सः सु पदः ५३ पृः २५)

इस पद में कदम्ब अम्ब जम्बुनि आदि का वर्णन किया गया है यह सब अँग प्रति अँगों के नाम है ऐसा "तालिका" में वर्णन किया गया है। जिनकी स्वाभाविक सुगन्ध से ही रसिक दम्पति विहार में प्रवर्त होते हैं।

श्रीप्रियाप्रीतम के अङ्ग प्रति अङ्गों में जिस प्रकार की परिमल है, उसका श्रीगोविन्द लीलामृत ग्रन्थ में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है उसका वर्णन, यहाँ अप्रसंगिक न समझकर किया जाता है :—

श्रीकृष्ण के अङ्गों से :—

"श्रीकृष्णस्याखिलाङ्गात् मृगमद रस संलिप्ता नीलौत्पलानाम् ।
कक्षभ्र श्रोणि केशाद गुरु रसलसत् पारिजातोत्पलानाम् ।।
श्रीनासा नाभि वक्रात् कर पद नयनात् चेन्दुलिप्तम्बुजानाम् ।
सत् सौरभ्यामृतोर्म्मिः प्रसरति अँगादाप्लावयन्ति समन्तात् ।।"

(गोः लीः अः सर्ग १७ श्लो० ६)

श्रीकृष्ण के सब अङ्ग प्रत्यङ्गों से कस्तूरी रस मिश्रित नील कमल जैसी सुगन्ध आती है, कक्षों, भ्रू श्रोणि तथा केशों से अगुर रस मिश्रित पारिजात पुष्प तथा कमल कैसी परिमल उठती रहती है और नासिका, नाभि, मुख, हस्तों, चरणों तथा नयनों से कपूर मिश्रित अम्बुज की सुगन्ध आती रहती है। यह सब सौरभ रूप अमृत तरङ्गें जगत को प्लावित करती हुई प्रवाहित होती रहती हैं।

श्रीप्रियाजू के अङ्गों से :—

श्रीराधायाः कुमकुमानां परिमलवितर्तिनिजिहीतेऽखिलाङ्गा। न्नाभिभ्र केश नेत्राद गुरु मृगमदलिप्ता नीलोत्पलानाम् ।। वक्षः श्रोत्रास्य नासा कर पद युगला दीन्दुलिप्ताम्बुजानाम्। कक्ष श्रोणि नरवेभ्यो मलयज रस संसिक्त सत्केतकीनाम् ।।"

(गोविन्द लीलामृत सर्ग० ११ श्लो० ११७)

श्रीप्रियाजू के सब अङ्गों से केशर की सुगन्ध आती रहती है। उनकी नाभि, भ्रू,

केश तथा नेत्रों से अगुर कस्तूरी मिश्रित नील कमल जैसी परिमल उठती रहती है। वक्षोज, कान, मुख, नासिका, हस्तों तथा युगल चरणों से कपूर मिश्रित अम्बुज कैसी सुगन्ध आती रहती है। उनकी कक्ष, श्रोणि तथा नखों से चन्दन रस से संसिक्त सत केतकी पुष्प की परिमल की तरंगे प्रवाहित होती रहती हैं।

इसका तात्पर्य यह हुआ रसिक दम्पति के शब्द, स्पर्श रूप, रस तथा गन्ध से सहज प्रेम उद्दीपन होता है। ग्रन्थकार उसी को सहज प्रेम या सहज सुख कहते हैं। किसी ग्रन्थ के आशय को समझने के लिये उसका आदि मध्य तथा अवसान जाना जाता है। इस ग्रन्थ में "सहज" शब्द का बहुत स्थानों पर प्रयोग किया गया है। नीचे कुच्छ अँश उद्धृत किये जाते हैं :—

(१) रंगी सहज सुख रंग। सहज सुख रंग की रुचिरजोरी (पदः १) (२) सहज बतरावनी (पद०२) (३) सहज सुभाव (पद०३) (४) सहज अन्तर्गत (पद०४) (५) सहज ललचोही वानि (पद० ६) (६) सहज स्नेह (पद ११-१६) (७) सहज स्नेह तरङ्ग (पद १३) (८) सहज सुख साने (पद० १४) (६) सहज उजागर (पद १५) (१०) सहज सुखद स्नेहनी (पद० १५) (११) सहज सुकृत (पद० १८)(१२) सहज सुख विहरनि वेलि (पद० २४) (१३) सहज सदा सुख कारी (पद० ३०) (१४) सहज स्नेह स्नेही जू (पद० ३०) (१५) सहज अँग अभंग (पद० ३२) [१६] अङ्ग अङ्ग शोभा सहज सुख [पद० ४०] [१७] सहज ही रहो यह भाव [पद० ४७] [१८] सहज सलोनी हंसिचितवनि (पद० ४८) [१६] सहज सुख साँचे [पद० ५४] [२०] सहज रंग रस रग मगी [पद० ५५] [२१] सहज रस रास विलास विहार [पद० ५७] [२२] सहज उर माल [पद० ६०] [२३] सहज सुख रंग रगे [पद० ६५] [२४] सहज सुख शोभा [पद० ६८] [२५] सहज सुख कारी [पद० ६६[[२६] सहज किशोरी [पद० ७०] [२७] स्वामिनी सहज सदारी [पद० ७६]]२८] सहज सुख सर भरिये [पद० ८०] २६-सहज रंगहि सनी पद० ८२' ३०-सहज सुख सैन, पद० ८५' ३१-सहज स्वयं सिद्धि पद ८७' ३२-सहज सदा रंग रात, पद० ८८' ३३-सहज स्वाभाविक परम प्रेम की दानि, पद० ८६, ३४-सहज सुख कारी, पद० ६०' ३५-सहज छवि, पद० ६०' ३६-सहज सदा सुखदा, पद० ६० ३७-श्यामा सहज स्वरूप, पद० ६१' ३८-सहज सुभाव गहि रहे अनेरे, पद० ६३' ३६-मीने सहज सुभाव सुख, पद० ६४' ४०-सहज स्नेही सैन, पद० ६६' ४१-सहज सदा वसि रहौ' पद० ६७' ४२-सहज सदा सुख साँचे, पद० ६७' ४३-साहज सुख दोनें, पद० १००' ४४-साहज रंग भीने, पद० १०१'

इस प्रकार सहज प्रेम सम्बन्धी भिन्न भिन्न अर्थों में लगभग ४४ या ४५ स्थानों पर इस ग्रन्थ में "सहज" या "सहज सुख" शब्दों का प्रयोग किया गया है।

यद्यपि यह समस्त ग्रन्थ एक रस प्रवाह स्वरूप है ग्रन्थकार ने इसको अध्यायों या सर्गों आदि में विभक्त नहीं किया है तो भी इस ग्रन्थ को दो प्रकार से विभक्त कर सकते हैं १–राग रागिनियों के समय के नियमों के अनुसार २–प्रति पाद्य विशय अर्थात् वाक् विलासों के पार्थिक्य द्वारा। पहिले राग रागिनियों को लीजिये। इस ग्रन्थ की समस्त राग रागिनियां अष्ट कालीन सेवा नियमों के अनुसार हैं। अतः राग रागिनियों के समय के अनुसार इसको ८ हिस्सों में विभक्त कर सकते हैं। यथा:—

१–निशान्त रात्रि ३.३६ से प्रातः ६ तक भैरव-पद न० १ से ६ तक, राम कली पद० न० ७ से १० तक ललित रागिनी, पद न० ११ से १४ तक'

२–प्रातः—प्रातः ६ बजे से ८-२४ तक विभास–'पद न० १५ से पद २० तक' विलावल पद न० २१ से पद न० ३० तक।

३–पूर्वान्ह—प्रातः ८-२४ से १०-४८ बजे तक आसावरी–'पद न० ३१ से पद न० ४० तक'

४–मध्यान्ह—दुपहर १०-४८ से सायं ३–३६ तक धनाश्री–'पद न० ४१ से पद न० ४७ तक सारंग—'पद न० ४८ से पद न० ५४ तक'

५–अपरान्ह—सायं ३–३६ से ६ बजे तक गौरी—'पद न० ५५ से–पद न० ५८ तक'

६–सायं—सायं ६ बजे से ८-२४ तक कल्यान—'पद न० ५९ से पद न० ६५ तक'

७–प्रदोष—रात्रि ८-२४ से १०–४८ तक रात्रि कासौ कान्हरौ–'पद न० ६६ से पद न० ७० तक अण्डानौ–'पद न० ७१ से पद न० ७४ तक।

८–नक्त 'मध्य रात्रि) १०-४८ से ३. ३६ प्रातः तक
विहांगरौ—'पद न० ७५ से पद न० ८१ तक'
केदारौ—'पद न० ८२ से पद न० ८६ तक'
सौरठ—'पद न० ८७ से पद न० ९१ तक'
मारूराग—'पद न० ९२ से पद न० ९५ तक'
परज—'पद न० ९६ से पद न० १०२ तक'

अर्थात राग रागिनियों के समय निर्धारित हैं अतः अष्ट कालीन सेवा पद्धति के अनुसार इस ग्रन्थ को आठ हिस्सों में विभक्त कर सकते हैं।

अब प्रति पाद्य विषय को लीजिये। इसके अनुसार भी इस ग्रन्थ को आठ "वाक् विलासों" में विभक्त कर सकते हैं। जैसे हम पहिले कह चुके हैं सहज सुख में रसिक दम्पति स्वाभाविक प्रेम का वर्णन है। यद्यपि श्रीस्वामिनी जू ने अपना सर्वस्व अपने प्यारे के अर्पण कर रखा है तो भी "नियरे ही रहत निपट उर लागे तोउ अधीर अकुलात।" इस न्याय से रस पिपासू श्रीलालजू की प्यास नहीं बुझती है। वह रस पान के लिये सदा प्रार्थना ही करते रहते हैं। यह दशा देखकर श्रीस्वामिनी जू उन पर ढरती हैं, रस की वर्षा करती हैं। यह देखकर सखियाँ प्रसन्न होकर विरदावली गान करने लगती हैं। बस इस प्रकार से प्रायः हर एक "वाक् विलास" में यही लीला का क्रम है। इस नियम के अनुसार भी इस ग्रन्थ के ८ विभाग हो सकते हैं। यथा:—

१—"मनहु द्रुमन तें सुमन झर परत हरत मन मैन"
पद नं० २ से पद नं० २० तक।

२—"मैं आज्ञा अनुवर्त्ति हौं अहोनिशा आधीन।"
पद नं० २१ से पद नं० ३० तक।

३—"सदा सनातन एक रस सदा वसत सब काल।"
पद नं० ३१ से पद नं० ४० तक।

४—"तो सों कहा दुराव तू हिय हित समझनि हारि।"
पद नं० ४१ से पद नं० ५६ तक।

५—"चिदानन्द घन कुञ्ज में इक रस विवि सुकुमारि।"
पद नं० ५७ से पद नं० ६५ तक।

६—"अहो विहारिनि कहत वलि सौहें तिहारी मौंहि।"
पद नं० ६६ से पद नं० ७६ तक।

७—"अति जकरचौ दृढ फंद में तोरचौ नहिं तूटै जु।"
पद नं० ७७ से पद नं० ८७ तक।

८—"और कछु अभिलाष नहिं अहो कुँवरि सुनिएह।"
पद नं० ८८ से पद नं० १०२ तक।

ग्रन्थ की समाप्ति में अधिकारी निर्णय और ग्रन्थ की फल स्तुति करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं :—

॥ कुण्डलिया ॥

श्रीहरि प्रिया कौ सहज सुख सुनें सहज सुख ताहि ।
कर्म विदूषित हियन के रुचै न रचक ताहि ॥
रुचै न रचक जाहि विकल मन बुद्धिविपर्य्यय ।
तत्व अनिश्चित चित्ततिमर आच्छादित अतिशय ॥
गुरु मारग तें विमुख कलुष हत संतत गत ह्री ।
प्रापति ह्वै किहिं भाँति विन अनुकम्पा यह श्री ॥

॥ दोहा ॥

इहि विधि यह श्रीसहज सुख सदाँ सहज सुख रूप ।
सुनों गुनों बहु यतन करि ज्यों सुखलहौ अनूप ॥

....

यह विधि यह श्रीसहज सुख श्रीमहावाणी सुयश रस ।
गावैं मन वच क्रम जु कोउ पिय प्यारी जिहिं होंय वश ॥

जो कोई इस ग्रन्थ को सुनेगा (पाठ करेगा या मनन करेगा) उसको रसिक दम्पति का सहज प्रेम सहजही प्राप्त हो जावेगा । श्रीगुरु द्वारा श्रीप्रिया प्रीतम के आश्रित होने के बाद भी जिनकी निष्ठा कर्म काण्ड में है ग्रन्थकार कहते हैं, उनको यह "सहज सुख" नेक भी नहीं रुचेगा, क्योंकि उनकी बुद्धि उलटी हो रही है उन्होंने अपने इष्ट को छोड़ दिया है । कर्म काण्ड में अनेक देवताओं की समान बुद्धि से उपासना की जाती है इसलिये उन साधकों ने तत्व को निश्चय नहीं किया है । उनके हृदयों पर अतिशय अन्धेरा छाया हुआ है । वे अपने गुरु के मार्ग से विमुख हैं । इसी पाप से निरन्तर हत होने से उनकी लज्जा चली गई है । अव उनको रसिक दम्पति के चरण कमल बिना श्रीगुरुदेव या श्रीप्रिया जू की कृपा के कैसे प्राप्त हो सकते हैं ?

यह "सहज सुख" जो सदा सहज सुख रूप है उपरोक्त प्रकार से अर्थात् अनन्य होकर सुनो तथा मनन करो जिससे आपको अनुपम सुख प्राप्त हो ।............ अन्त में ग्रन्थकार कहते हैं:—यह "सहज सुख" श्रीमहावाणी ग्रन्थ का सुयश रस है जो कोई इसको मन, वच तथा कर्म से गावेंगे श्रीपिय प्यारी उनके वश में हो जावेंगे ॥ इति ॥

वृन्दावन-कलानाथौ हृदयानन्दबर्द्धनौ ।
सुखदौ राधिकाकृष्णौ भजेऽहं कुंजगामिनौ ॥

"कलानाथौ"=दोनों चन्द्रमा । रसिक दम्पति में से एक रस का आश्रय दूसरा विषय यह बहुतों का मत है । ग्रन्थकार का यह मत नहीं है । वह कहते हैं—"परस्पर दोउ चकोर दोऊ चन्दा" । इसीलिये दोनों को चन्द्रमा कहा गया है । श्रीभगवत रसिक जी के शब्दों में देखिये ।:—

"परस्पर दोऊ चकोर दोउ चन्दा ।
दोउ चातक दोउ स्वाँति दोऊ घन दोउ दामिनी अमन्दा ॥
दोउ अरिविन्द दोऊ अलिलम्पट दोउ लोहा दोउ चुम्बक ।
दोउ आशिक महवूब दोऊ मिलि जुरे ज़ुराफा अम्बक ॥
दोऊ मुदार दोउ मोर दोऊ मृग दोऊ राग रस भीने ।
दोउ मणिविशद दोउ वर पन्नग दोऊ वारि दोउ मीने ॥
भगवत रसिक विहारनि प्यारी रसिक विहारी प्यारे ।
दोउ मुख देखि जियत अधरामृतपियत होत नहिं न्यारे ॥

"हृदयानन्दवर्द्धनौ" :—

यहाँ रसिक दम्पति को चन्द्रमाओं के नामों से कहा गया है अतः परस्पर देखने से उनका हृदय आनन्द इस प्रकार से बढ़ता है जैसे चन्द्रमा को देख कर समुद्र में बाढ़ आती है ।

"कुञ्जगामिनौ ।" :—

प्रिया प्रीतम की लीलाएँ दो प्रकार की हैं । एक व्रज लीला दूसरी निकुञ्ज लीला । इस ग्रन्थ में केवल निकुञ्ज लीलाओं का ही वर्णन किया जावेगा अतः "निकुञ्ज-गामिनौ" शब्द का प्रयोग किया गया है । "श्रीकृष्ण सन्दर्भ" में व्रज लीलाओं को "स्वा रसिकी" और निकुञ्ज लीलाओं को "मन्त्रोपासनामयी" या "ह्रदवत" कहा गया है । यथाः-"ना ना प्रवाह रूपतया स्वा रसिकी गंगेव । एकैक लीलात्म तया मन्त्रोपासना-मयीतु लब्ध तत्सम्भव ह्रद श्रेणीरिव ॥"

"श्रीवृन्दावन कलानाथौ" इत्यादि श्लोक से सर्व प्रथम श्रीग्रन्थकार नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण करते हैं । अब श्लोक के अर्थ को देखिये:—

"मैं नित्य निकुञ्ज लीला परायण उन श्रीराधा कृष्ण को भजता हूँ जो श्रीवृन्दावन के चन्द्रमा स्वरूप हैं, जिनके हृदयों का स्वाभाविक आनन्द उल्लास इस प्रकार से बढ़ता रहता है जैसे चन्द्रमा को देखकर समुद्र में बाढ़ आती रहती है। इसी आनन्द बाढ़ से ये परस्पर स्वयं सुखी होते हैं और अपने परिकरों को सुख प्रदान करते हैं।"

जय जय श्रीहितु सहचरी, भरी प्रेम रस रङ्ग।
प्यारी प्रीतम कें सदा, रहति जु अनुदिन सङ्ग॥
तिनकी कृपा मनाय कें बरनौं जुगल-बिहार।
महाबाणी श्रीसहज सुख, दम्पति-पद दातार॥

श्रीग्रन्थकार सर्व प्रथम अपने गुरुदेव श्रीश्रीभट जी, जिनका सखी नाम हितु सहचरी जी है उनका अभिवादन करते हुए कहते हैं :—

उन हितु सहचरी जी की सदा जय हो जो प्रेम, रस तथा रंग से भरी हुई हैं और जो प्रिया प्रीतम के अहर्निश सदा साथ रहती हैं। इनकी कृपा मनाय के मैं श्रीमहावाणी का वह "सहज सुख" जिसमें युगल विहार का वर्णन है कहने लगा हूँ जो रसिक दम्पति के चरणारविन्दों को सहज में ही प्राप्त करा सकता है।

अब यहाँ यह देखना है "प्रेम"—"रस"—तथा "रंग" से क्या तात्पर्य है।

"प्रेम"

"सम्यङ्मसृणित स्वान्तो ममत्वाति शयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मावुधैप्रेमानिगद्यते ॥" 'भः रः सिः'

भाव की उस गाढ़ अवस्था को विद्वान लोग "प्रेम" कहते हैं जिसमें चित्त पूर्ण रूपसे पिघल जाता है और श्रीकृष्ण में अतिशय ममता हो जाती है।

"रस"

"वहिरन्तः करणयो व्यापारन्तर रोधकम्।
स्व कारणादि संश्लेषि चमत्कारि सुखं रसः ॥" 'अलङ्कार कौस्तुभ'

जब किसी चमत्कृत सुख से वाहिर की सब इन्द्रियां रुद्ध हो जाती हैं और उस सुख के कारण से अंतः करण संश्लेष्ट भाव अर्थात् उस सुख से एकीकरण हो जाता है उसको "रस" कहते हैं।

"रंग"

कुट्टनीमत नामक काव्य ग्रन्थ की टीका में "रंग" की व्यतिपत्ति इस प्रकार की गई है "रंगे, नृत्ये रणें रागे"। अर्थात् रंग शब्द का प्रयोग नृत्य, युद्ध, और अनुराग में होता है यहाँ रसिक दम्पति का सुरति नृत्य, रति युद्ध और परस्पर के अनुराग से तात्पर्य है।

अनुराग के ये लक्षण हैं :—

"सदा नु भूतमपि यः कुर्वन्नव नवं प्रियम् ।
रागो भवन्नवनवः सो अनुराग इतीर्येते ॥" (उज्ज्वल नीलमणि)

(रञ्ज धातु से ही रंग, राग तथा अनुराग आदि-शब्द बनते हैं। प्रेम की एक अवस्था विशेष का नाम राग है जिसमें अत्यन्त दुख भी पराकाष्टा का सुख प्रतीत होता है) उसी राग की गाढ़ अवस्था का नाम "अनुराग" है जिसमें रसिक दम्पति के दर्शन करते करते भी वे दर्शन क्षण क्षण में नवीन प्रतीत होते हैं।

दोहे में हितु सहचरी जी का "प्रेम" "रस" "रंग" से भरी वर्णन करने का यह तात्पर्य है कि श्रीहितु सहचरी जी का हृदय रसिक दम्पति के "प्रेम" से सदा पिघला रहता है। "रस" से उनकी सब वहिर इन्द्रियाँ रुद्ध रहती हैं और उनका अन्तः करण प्रिया प्रीतम के विलास से एकीकरण रहता है। "रंग" से वे अनुराग में पगी हुई उनकी नित्य विहार सम्बन्धी नृत्य रति युद्ध आदि लीलाओं को अहर्निश उनके साथ रहकर देखती रहती हैं।

॥ अनुरागिनि शुभरवा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

एकहि तन मन एक ही, साँचे ढरी सुढंग ।
जोरी अद्भुत दुहुन की, रँगी सहज सुखरंग ॥

॥ पद ॥१॥

सहज सुख रंग की रुचिर जोरी।
अतिहि अद्भुत कहूँ नाहिं देखी सुनी सकल गुन कला कौसल किसोरी ॥
एकहि द्वै जु द्वै एकही दिपहिं दिन किहिं साँचे निपुनई करि सुढोरी।
श्रीहरिप्रिया दरस हित दोय तन दरसवत एक तन एक मन एक दोरी ॥१

अनुरागिनी शुभरवामध्याभास=रागभैरव। सांचे=वस्तु ढालने का यन्त्र विशेष।

ढरी सुढंग=अच्छी प्रकार से ढाली हुई। रंगी=रञ्जित। सहज सुख=स्वाभाविक नित्य स्वतः सिद्ध उल्लासात्मिक ज्ञान विशेष। सकल गुण="ये रस स्यागिनो धर्मा शौयादय इवातमनः। उत्कर्ष हेतवस्तेस्यु रचलास्थि यो गुणा।" (काव्यालङ्कार)

अर्थात् रस सम्बन्धी जितने अगणित धर्म हैं और बीरता आदि जितने गुण हैं और जो जो उत्कर्ष के कारण हैं। ये जिनमें स्थिर भाव से रहते हैं वे उनके गुण कहलाते हैं। कला=कोक कलादि ६४ कलाऐं कौशल=चतुरा। दिपहि दिन=नित्य प्रकाशमान। निपुनई=कारीगरी। दर्शहित=केवल देखने मात्र में दर्शवत=आईना, दर्पण की तरह। एक दो री=अरी! एक ही दो करके।

मङ्गलाचरण ३ प्रकार के होते हैं :—नमस्कारात्मक आशीर्वादात्मक तथा वस्तु निर्देशात्मक। पहिले १ श्लोक तथा २ दोहों द्वारा नमस्कार तथा आशीर्वादात्मक मङ्गला चरण कर चुके हैं अतः इस पद द्वारा वस्तु निर्देशात्मक मङ्गलाचरण करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति की यह अद्भुत जोरी सहज सुख से रञ्जित है और किसी एक अनिर्वचनीय साँचे में इस प्रकार अच्छे ढंग से ढली हुई है जिससे इन दोनों के तन तथा मन एक हो रहे हैं।

॥ पद ॥

सहज सुख रंग से रञ्जित यह जोरी ऐसी सुन्दर और अद्भुत है जैसी न तो कहीं देखी न हीं कही सुनी। इनमें श्रीप्रियाजू रस सम्बन्धी सब गुणों तथा कोक कलाओं में अत्यन्त चतुरा हैं। यह जोरी न जाने किस अनिर्वचनीय साँचे में किस निपुणता से ढाली गई है जिससे यह एक होकर दो और दो होकर सदा एक प्रकाशमान रहते हैं। हे सखी री! श्रीहरि एवं प्रिया के दिव्य मङ्गल विग्रह केवल देखने मात्र में ही दो हैं वास्तव में तो इन दोनों का तन तथा मन एक ही है। इनका एक ही स्वरूप दर्पण के विम्ब तथा प्रतिविम्ब की भान्ति दो स्वरूपों से भान होता है।

यह तो इस पद का शब्दार्थ हुआ अब यह देखना है

१—एक होकर दो और दो होकर एक से क्या तात्पर्य है?

२—अनिर्वचनीय साँचा क्या है?

३—ढालने वाला कारुक कौन है?

४—दर्पण के विम्ब तथा प्रतिविम्ब के भान्ति से क्या तात्पर्य है ?

१—एक होकर दो और दो होकर एक यथा:—

"येऽयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैक क्रीड़नार्थं द्विधाऽभूत" ।

(श्रीराधिकातापिनी उपनिषत्)

श्रीराधा माधव एक ही रस समुद्र स्वरूपा हैं। केवल क्रीड़ा करने के लिये ही दो स्वरूपों से प्रकट हैं।

पुनः यथा :—

"एकात्मनीह रस पूर्णतमेत्यगाधे एका सुसंग्रथितमेव तनुद्वयं नौ ।
कस्मिँश्चदेकसरसोव चकासदेक नालोत्थमब्ज युगलंखलुनीलपीतम् ।।"

(प्रेम सम्पुटः श्लोक० १०८)

श्रीप्रियाजू कहती हैं "जैसे किसी एक सरोवर में एक नाल से उत्पन्न होकर नील और पीत वर्ण के दो कमल विकसित होते हैं ऐसे ही अतिशय अगाध रस परिपूर्ण एक ही आत्मावाले हमारे नील पीत दो शरीर एक हो प्राण में संग्रथित होकर रहते हैं।

(२) अनिर्वचनीय साँचा :—

रसिक दम्पति के रस रंग से भरे हुए दिव्य मङ्गल विग्रह ही साँचे हैं जिनमें सहज सुख ढलता है । यथा:—"ललचोहे लोचन लालके।..................श्रीहरिप्रिया सहज सुख साँचे राचे रंग रसालके।" (सः सुः पद० ५४)

पुनः यथा:—"वसौ मो नैननि में दोऊ लाल। सहज सदा सुख साँचे सजनी राचे रंग रसाल।" (स० सु० पद० ६७) पहिले पद में रस रंग से भरे हुऐ लाल के लोचन दूसरे में रसिक दम्पति के रस रंग से रचे हुए मङ्गल विग्रहों को ही साँचे बतलाया है जिनमें इन दोनों का स्वाभाविक सुख ढलता है। यहाँ प्रधानता रस रंग की ही कही गई है।

(३) ढालने वाला कारुक :—

ढालने वाला दिव्य कारुक भी "रस" ही है यथा: —

"लाड़िली लाल सहज सुख साने।.........श्रीहरिप्रिया परे रस पाने।
तन मन करि राखे इक तानें।" (स० सु० पद० १४)

श्रीलाड़िलोलाल सहज सुख अर्थात् स्वाभाविक प्रेम में इतने रञ्जित हैं जो बखान करने से भी कहते नहीं बनता। बात तो यह है यह "रस" के हाथों पड़ गये हैं जिसने

इनके तन मन को एक सूत्र में बांध दिया है। यहाँ सहज सुख ढालने वाला कारुक भी "रस" ही को बतलाया गया है।

(४) दर्पण के बिम्ब तथा प्रतिबिम्ब की भाँति।

उपरोक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि रसिक दम्पति एक ही रससिन्धु के दो विग्रह हैं। ये दोनों रस रूपी साँचे में ढले हुए हैं और इनको ढालने वाला कारुक भी रस ही है। अब यह देखना है दर्पण के बिम्ब तथा प्रतिबिम्ब की तरह ये सदा एक होकर दो और दो होकर एक प्रतीत होते हैं इसका क्या कारण है ? उत्तर यह है इस का कारण भी "रस" ही है। क्योंकि रस की ही पर से पर परिपाक् अवस्था का नाम ही "रतिविलास" है उसी केलि में ये अहर्निश निमग्न रहते हैं। उसी निमग्न अवस्था में यह दर्पण के बिम्ब प्रतिबिम्ब की भान्ति एक होकर दो और दो होकर एक दिखाई देते हैं। यथा :—

"गौरे अङ्ग में झलमले श्याम वर्नशुभ साज।" (स० सु० पद० ६२)
"श्याम वर्न तै गौर तन ह्वै सोहत रसजाल।" (स० सु० पद० ६३)
"प्रतिनिधि श्रीहरिप्रिया की निरखत नैन सिरात" (स० सु० पद० ६४)
"अलकलड़े...............। गौर साँवरे सहज सुख रंग रंगे सुकुमार (स० सु०६५)

इन चारों पदों की व्याखा आगे की जाएगी।

इसी भाव को श्रीविहरनि देव जी एक पद में इस प्रकार व्यक्त करते हैं :—

"श्याम तन मन गौरे गात में गसेतरी। यद्यपि हुतो न न्यारी कहत हा हा री प्यारी विचित्र विहारी वन्द बाहु सों कसतरी। प्रान प्रानन सो सीर बांटत होत अधीर एकही सुर स्वांस है हंसतरी ॥ श्रीविहारनिदास रोम रोमनि कहाँ त्यौं व्यौरो ताफता की मौज अति ताहू में लसतरी। चोली सी अमोली प्रीति ऐसे सुखमें समात स्याम ॥

॥ दोहा ॥

मनहु द्रुमन तें सुमन झरि, परत हरत मन मैंन।
देखहु री इन दुहुन की, बतरावनि सुख दैन॥

॥ पद ॥२॥

देखि री दुहुँनि की सहज बतरावनी।
मनहु दिबि द्रुमन तें सुमन झरि-झरि परत,

हरत मन परस्पर बरन उच्चरावनी ।।
लगत कैसी रुचिर रदन छबि बदन में,
मदन मनमोहिनी मोद उपजावनी ।
श्रीहरिप्रिया परम रस-प्रेम की परनि में,
परि रहे करि रहे विनय विनयावनी ।।२।।

—: । प्रथम व क् विलास ।

सहज सुख की भूमिका में हम पहिले कह चुके हैं कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से स्वाभाविक प्रेम जागृत होता है। इस पद से ग्रन्थकार शब्द से प्रेम का आविर्भाव वर्णन करते हुए कहते हैं।

दिवि द्रुमन=कल्प वृक्षों। सुमन=फूल। मैन=कामदेव। सहज बतरावनी=स्वाभाविक बातचीत। बर=शब्द। रदन=दन्तावली। परनि=सरिता। नदी। परम रस प्रेम=प्रेम का भी परम रस अर्थात् दिव्य काम। विनय=आधीनता। विनयावनी=विनय + अवनी=पृथ्वी पर लग जाने समान नम्रता। अति आधीनता।।

।। दोहा ।।

हे सखी ! इन दोनों की मीठी मीठी वतियाँ कैसी सुख प्रदान करने वाली हैं मानों दो कल्प वृक्षों से फूल झर झर कर गिर रहे हों। ये वार्तारों कामदेव के मन को भी हरन करने वाली हैं।।

।। पद ।।

हे सखी ! तू इन दोनों की मधुर वार्तालाप को तनिक आस्वादन तो कर। मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानों दो कल्प वृक्षों से फूल झर झर कर पड़ रहे हों, वार्ता उच्चारण मात्र से ही इन दोनों के मन परस्पर मोहित हो जाते हैं। ज्यों ही वर्णों के उच्चारण से ओष्ठ खुलते हैं त्यों ही सुन्दर दान्तों की पंक्तियाँ अत्यन्त शोभायमान होती हैं। हे सखी ! मुख मण्डल पर इन दाँतों की पंक्ति की शोभा कैसी मनोहर प्रतीत होती है जिससे काम देव का मन भी मोहित हो जाता है। और हमारा चित्त भी आह्लादित हो जाता है। श्रीहरि एवं प्रिया प्रेम के भी परम रस अर्थात् दिव्य काम की सरिता में अवगाहन कर रहे हैं। इसलिये ये दोनों एक दूसरे के अति आधीनता प्रकट करते हुए वार्तालाप कर रहे हैं।

दोहा ॥

कल न परै छिन बिन लखे, तो मुख चंद्र प्रभाव ।
अहो प्रिया कछु परिरह्यो, मेरो सहज सुभाव ॥

॥ पद ॥३॥

सहज सुभाव रह्यौ परि मेरौ ।
कल न परें छिन अवलोके विन बदनचन्द्र प्यारी जू तेरौ ॥
पलकन ओट होत सन तें मोहिं कोटत आय अटूट अँधेरौ ।
श्रीहरिप्रिया जोरि करसों कर करत बीनती ह्वै कें चेरौ ॥३॥

श्रीलाल जू विनय पूर्वक कहते हैं :—

कल=चैन । प्रभाव=कान्ति । कोटत=घेरना ।

॥ दोहा ॥ ॥ पद ॥

हे प्रियाजू ! मेरा कुच्छ ऐसा सहज स्वभाव पड़ गया है कि आपके मुख चन्द्र को प्रभा को एक क्षण के लिये भी देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ती । पलक की ओट होने मात्र से ही मेरे लिये ऐसा हो जाता है मानों घनीभूत अन्धकारने मुझे घेर लिया हो । श्रीहरि, श्रीप्रिया जू से सेवक की नाँई होकर हाथ जोड़कर विनती करते हैं (जोकि आगामी पद से सूचित होती है) ।

॥ दोहा ॥

तो पद-पंकज कौ सदा, रहौं जु मधुकर होय ।
मन बच क्रम मेरे न कछु, और कामना कोय ॥

॥ पद ॥ ४ ॥

और कामना मोहिं न कोई ।
मन वच क्रम करि रहों निरंतर तुव पद-पंकज मधुकर होई ॥
अहु बलि जाऊँ विहारिनि मेरी जीवनि निज जिय जानउ जोई ।
श्रीहरिप्रिया सहज सबही कें अंतरगति की समझति सोई ॥४॥

अधर सुधा रस पान के इच्छुक श्रीलालजी, श्रीलड़ैतीजू के चरणारबिन्दों को पकड़कर कहते हैं —

पद पङ्कज=चरण कमल। मधुकर=भौराँ। भ्रमर।

॥ दोहा ॥

हे स्वामिनीजी ! मेरी तो एक मात्र यही अभिलाषा है कि सदा आपके इन चरण कमलों का भ्रमर होकर रहूँ। मन वचन कर्म से मेरी और दूसरी कामना है ही नहीं।

॥ पद ॥

मेरी और कोई कामना नहीं है, केवल इतनी ही वाञ्छा है, कि मन वचन क्रम से निरन्तर आपके इन चरणार विन्दों का मधुकर होकर के रहूँ। मेरी प्राण जीवन स्वामिनीजू ! हे मेरी विहारिणी ! मैं आप पर वलिहारी जाता हूँ। एक मात्र आपके ये चरणारविन्द ही मेरे जीवन स्वरूप हैं। हे श्रीहरिप्रिया—प्यारीजू आप सबके अन्तः करण की जानने वाली हो। इसलिये इस समय मेरे हृदय में जो भाव हैं उसे आप भली भान्ति जानती हो।

॥ दोहा ॥

ढरकि सुधा-रस सीचि भुज, भीचि कियें मन भाय।
पुलकि प्रिया निज पिये कों, लिये हिये सों लाय॥

॥ पद ॥५॥

पुलकि प्रिया लियें लाय हिये सों।
ढरकि जुरांवनि बदन बदन की यह छबि नित रहु लागि जिये सों॥
सीचनि सुधा भुजनि की भीचनि निरखि नगीचनि भाव भिये सों।
श्रीहरिप्रिया पोष परिपागे अनुरागे रस दिये लिये सों॥५॥

ढरकि=करुणा करके। सुधा=अधरामृत। पुलिक=रोमाञ्च आदि अष्ट सात्विक युक्ता। जुरावनि=मिलाना। नगीचनि=अति निकट। पोष=पुष्ट होना। परिपागे=परिपक्व होना।

॥ दोहा ॥

प्यारे के ऐसे करुणादीनता भरे वचनों को सुनकर स्वामिनीजी का हृदय पानी पानी हो गया उनके सर्वांग पुलकित हो गये। उन्होंने प्यारे के हस्त कमलों को अपने चरणों से हटाकर, उनको अपनी भुजाओं से भीचकर उनका गाढ़ आलिङ्गन किया। और उनको अधरामृत से सींचकर उनकी सब अभिलाषाऐं पूर्ण की।

॥ पद ॥

आपने प्यारे के दीनता भरे बचनों को सुनकर प्रियाजू के अङ्ग प्रति अङ्गों में प्रेम के अनुभाव—रोमाञ्चादि हो उठे, और उन्होंने तत्क्षण लालजू को अपने हृदय से लगा लिया। श्रीहरिप्रिया सखी यह प्रार्थना करती हैं कि इस समय की स्वामिनी जी को लाल पर ढरन, उनके मुखार विन्द का उनके मुखारविन्द से मिलना, उनका अधर सुधा से उनको सींचना, भुजाओं से उन्हें भींचना, भावभरी दृष्टि से अति निकट से परस्पर देखना यह छवि नित्य मेरे हृदय में वसी रहें। अन्त में श्रीहरिप्रिया पुनः कहती हैं उपरोक्त प्रकार से अधर सुधा के परस्पर आदान प्रदान से इन दोनों के हृदय पुष्ट, परिपक्व तथा अनुराग से रञ्जित होते हैं।

॥ दोहा ॥

ऐसे रस चस के चसे, लहत न तन तृपतानि।
सहज सदा इन दुहुन की, ललचोई यह बानि॥

॥ पद ॥६॥

सहज सदा ललचोई बानि, बिलसत रहैं इही बिलसानि।
अधर-सुधा अचवनि अचवानि, तृपति न होत चसे चसकानि॥
छिन छिन प्रति उमगनि उमँगानि, ठने रहैं नित याही ठानि।
श्रीहरिप्रिया अपरिमित मानि, संपूरन सब गुन की खानि॥६॥

चसकै चसै=चखने का चसका। पीने का लालच। ठानि=उमंग। उपरोक्त झाँकी के रसास्वादन के सिलसिले में ही श्रीहरिप्रिया सखी पुनः विरदावली गान करती हुई कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति का यह लालच भरा एक स्वभाव सा पड़ गया है कि उपरोक्त प्रकार से रस को चखते चखाते हुए भी इन दोनों के मङ्गल विग्रह तृप्त नहीं होते हैं।

॥ पद ॥

यद्यपि हरि एवं प्रिया ये दोनों अपरमित गुणों की खान और सब प्रकार से परिपूर्ण हैं, तो भी इन दोनों का यह लालच भरा स्वभाव पड़ गया है कि अहर्निश अधर सुधा का पान करते कराते हुए और नित्य विहार को विलसते विलसाते हुए, रस को

चखते चखाते हुए कभी तृप्त नहीं होते हैं। इनके अङ्गों में इसी रस की आस्वादन करने की नित्व उमङ्गें उठती रहती हैं।

॥ अनुरागिनि रत्नकला मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

इहि उरझनि उरझों सदा, छिन न एक सुरझंत।
एक कृपा चितवनि बिना, और न कछु चहंत॥

॥ पद ॥७॥

और कछू न चहत बलि जाऊँ, एक कृपा चितवनि हीं पाऊँ।
इहि उरझनि उरझों उरझाऊँ, छिन न एक सुरझों सुरझाऊँ॥
निरखि निरखि निज नैन सिराऊँ, पदांभोज सों भाल भिराऊँ।
जे लैं अन्तकरन बसाऊँ, निसिवासर ऐसे बितवाऊँ॥
श्रीहरिप्रिया निरन्तर ध्याऊँ, सदा सहज सुख में मन लाऊँ॥७॥

अनुरागिनि रत्नकला मध्याभास=रामकली रागिनी। चितवनि=दृष्टि। जैले= उनको लेकर। सखियों का भोग्य पदार्थ एक मात्र उभय संगम रस ही है इसलिये श्रीहरिप्रिया सखी उसी रस की प्रार्थना करती हुई कहती हैं।

॥ दोहा ॥

यदि रसिक दम्पति की मुझ पर कृपा दृष्टि है, तो मेरी एकमात्र यही प्रार्थना है, कि ये दोनों इसी प्रकार से उलझे रहें। और एक क्षण के लिये भी न सुरझें इन दोनों की उलझन से मैं भी उलझी रहूँ। इसके अतिरिक्त मेरी और कुछ अभिलाषा नहीं है।

॥ पद ॥

मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझ पर यह कृपा करें, कि मैं आप दोनों उलझें हुओं को इसी प्रकार सदा देखती रहूँ। एक क्षण के लिये भी आप दोनों को मैं न सुरझांऊ और मैं भी आप दोनों की उलझन में उलझी रहूँ। आप दोनों को देख देखकर अपने नेत्रों को सिराती रहूँ। इसी दशा में दोनों के चरणारविन्दों से अपने मस्तक को स्पर्श करके पवित्र करूँ। इसी समय की रूप माधुरी वा अहर्निश अपने हृदय में ध्यान करती रहूँ। मेरा रात दिन इसी प्रकार से बीते। श्रीहरि एवं

प्रिया को इसी अवस्था में मैं ध्यान करती रहूँ। मेरा एक मात्र उपरोक्त ही स्वाभाविक सुख है।

॥ दोहा ॥

निसि बासर बीतत इन्हें, मो गुन गातहिं गात।
कहा कहों इनकी अहे, सखी सहज की बात ॥

॥ पद ॥ ८ ॥

सखी री ! कहा कहों इनकी बात।
निसिबासर ऐसेंई बितवत मो गुन गातहिं गात ॥
नीरेंहिं रहत निपट उर लागे तउ अधीर अकुलात।
श्रीहरिप्रिया तिहारेहि देखत अङ्ग बदल से जात ॥८॥

निपट=अत्यन्त। पद न० ३ और ४ में रस पिपासू श्रीलालजू ने जो प्रार्थना की थी उसको श्रीलड़ैतीजू ने पद न० ५ में पूर्ण किया था। बीच में पद न० ६ और ७ में श्रीहरिप्रिया सखी की विरदावली का गान हुआ था। इस पद न० ८ में श्रीस्वामिनीजू पद न० ३ और ४ का उत्तर देती हुई कहती हैं —

॥ दोहा ॥

हे सखी ! मैं इनके सहज स्वभाव की बात क्या कहूँ। इनका रात दिन इसी प्रकार से मेरे गुणों का गान करते हुए ही बीतता है।

॥ पद ॥

हे सखी ! इनके स्वभाव की बात मैं क्या कहूँ। इनका रात दिन इसी प्रकार से मेरे गुणों को गान करते हुए ही बीतता है यद्यपि प्यारे सदा काल मेरे पास रहते हैं तो भी इनके हृदय की अतृप्ति इतनी अधिक है कि ये अधीर होकर अकुलाते ही रहते हैं। हे श्रीहरिप्रिया सखी ! तुम्हारे देखते ही देखते इनके अङ्ग बदल से जाते हैं, याने सहसा मुखपर पियराई आ जाती है और नेत्र डब डबाने लगते हैं।

॥ दोहा ॥

है ऐसेंई जैसेंई कहति, अति सनेह की फांसि।
अहु बलि जाऊँ स्वामिनी, सकल सुखनि की रासि ॥

॥ पद ॥ ६ ॥

अहो बलि स्वामिनी सुखरासि।
है अब ऐसेंई कहति हौ जैसेंई अति सनेह की फांसि॥
पलहु एक पावत नहिं निवरन गसी गरन गुन गांसि।
अपने जिय ज्यों जानि मानिये श्रीहरिप्रिया निज दासि॥६॥

गुणा गाँसि=गोल गाँठ–जटिल बन्धन। यह सुनकर श्रीहरिप्रिया सखी श्रीस्वामिनी जू के चरण कमल पकड़ कर कहने लगी।

॥ दोहा ॥

है सकल सुखों की राशि स्वरूपा मेरी स्वामिनीजी मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ। जहाँ अत्यन्त स्नेह का जटिल बन्धन होता है, वहाँ जैसा आप कहती हैं वैसी ही दशा होती है।

॥ पद ॥

है मेरी सकल सुखों की राशि स्वरूपा स्वामिनीजू जहाँ अत्यन्त स्नेह का जटिल बन्धन होता है, वहाँ जैसा आप कहती हैं, वैसी ही दशा हो जाती है। इस प्रेम बन्धन की ग्रन्थि आप दोनों के गलों में इस प्रकार से गस गई है। कि वह एक पल के लिये भी ढीली नहीं होती है। जैसे मैं आपकी निज दासी हूँ ऐसे ही आप प्यारे को भी अपने हृदय का प्राण समझें।

दोहा—दिन रजनी मेरेंउ उर, एही तरह बितात।
ए सजनी सुनिरी जु तें, साँच कही यह बात॥

॥ पद ॥ १०॥

साँच यह बात कही सजनी।
बीतत हैं मेरेऊ उर में छिन छिन दिन रजनी।
मुहांचुही बिन कल न परैं मनौ होत है तन-तजनी।
श्रीहरिप्रिया तोसों न दुरी कछु जो जियकी जजनी॥१०॥

मुहाँ चुही=मुख दर्शन अथवा अधर सुधा पान। जजनी=जानने वाली। यह सुन कर श्रीस्वामिनीजू कहने लगीं।

दोहा—हे सखि ! तूने यह बात सच कही है। जैसे मेरे प्यारे का हृदय मिलते मिलते भी अकुलाता रहता है, मेरा रात दिन भी इसी प्रकार बीतता है।

पद—हे सखि आपने यह बात सच कही है। मेरा भी रात दिन क्षण २ काल इसी दशा में व्यतीत होता है। एक क्षण के लिये भी प्यारे के मुख दर्शन अथवा अधर सुधा के आदान प्रदान बिना मेरे प्राण व्याकुल होकर छूटने की तरह छट पटाने लगते हैं। हे श्रीहरिप्रिया ! मैं इसीलिये आपसे अपने हृदय के उद्गार प्रगट करती हूँ कि आपसे हम दोनों की कोई भी बात छिपी हुई नहीं है।

॥ अनुरागिनि ललितानना मध्याभास ॥

दोहा—बहुत जतन करिकें थहे, तऊ नहिं आवत छेह।
ऐसो मो उर में बसौ, इनकौ सहज सनेह ॥

॥ पद ॥ ११ ॥

बसौ उर मेरे अरी ये दुहुनि कौ अति-रति सहज सनेह।
देख्यो सुन्यो न कहुँ अब ऐसो अनूप अलौकिक आछौ अछेह ॥
है यह बात सबै कहनेहिं कि एकहिं रूप दिपैं द्वै देह।
श्रीहरिप्रिया थहे बहु थावति तउ पै थाह न आवत एह ॥११॥

अनुरागिनि ललितानना=ललित रागिनी। अति रति=सुमेरु के शिखर का नृत्य। अछेह=अक्षय। यह सुन कर श्रीहरि प्रिया सखि कहने लगी।

दोहा—रसिक दम्पति का यह स्वाभाविक स्नेह जिसकी थाह बहुत यत्न करने से भी नहीं मिलती है सदाँ मेरे हृदय में विराजमान रहे।

पद—मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि यह स्वाभाविक स्नेह जो अति रति अर्थात सुमेरु शिखर के नृत्य बिलास तक रसिक दम्पति को पहुँचा देता है, सदाँ मेरे हृदय में विराजमान रहे। इस प्रकार का अनुपम, अलौकिक, सुन्दर, अक्षय, स्नेह न तो कहीं देखा ही गया है, और न सुना ही गया है। ये सब बातें भी कहने सुनने की ही है, कि ये दोनों तत्वांश में एक है और इनके दिव्य मङ्गल विग्रह अलग अलग हैं। श्रीहरिप्रिया सखि कहती है, वास्तव में इनकी थाह लेने का बहुतों ने यत्न किया और कर रहे हैं तो भी इनकी थाह का पता नहीं लगता है।

॥ दोहा ॥

सदा अनमिले मिले तउ, लागे चहनि चहांनि ।
हौं बलि जाऊँ अहु कहा, परी अटपटी बांनि ॥

॥ पद ॥१२॥

अटपटी बानि परी बलि जाऊँ दुहुन के उर में आंनि ।
सदा अनमिले मिले रहैं तउ लागे चहनि चहांनि ॥
मैं तो निरखि अचंभित ह्वै रहि कहि नहिं परति बखांनि ।
श्रीहरिप्रिया प्रेम की उरझनि उरझी है गुरझांनि ॥१२॥

चहनि चहानि=अभिलाषा । गुरझानि=गोल गाँठ जो खुल न सके । पुनः श्रीहरि प्रिया सखि कहती है ।

॥ दोहा ॥

मैं बलिहारी जाती हूँ । इन दोनों का यह क्या अटपटा स्वभाव पड़ गया है कि ये सदाँ मिले रहते हुये भी अनमिले की तरह प्रतीत होते हैं, और मिलने की अभिलाषा करते रहते हैं ।

॥ पद ॥

श्रीप्रिया प्रीतम का यह क्या ही अटपटा स्वभाव पड़ गया है कि ये दोनों मिले रहते हुये भी अनमिले से रहते हैं और क्षण क्षण में मिलने की अभिलाषा करते रहते हैं । मैं इन दोनों की दशा देखकर आश्चर्य चकित सो रहती हूँ, मुझसे कुछ कहते नहीं बनता है । श्रीहरि एवं प्रिया को प्रेम देव ने उलझाकर ऐसी गोल गाँठ लगा दी है जिससे ये एक क्षण के लिये भी नहीं सुलझ पाते हैं ।

॥ दोहा ॥

अतिहि अनूठे नेह की, तामें उठत तरङ्ग ।
रहत दिनहिं दिन छिनहिं छिन, सहज रगमगे रंग ॥

॥ पद ॥ १३ ॥

रगमगे रँग रहत दिनहिं दिन छिनहिं छिन अँग-अङ्ग ।
अतिहि अनूठि उठत नित तामें सहज सनेह तरङ्ग ॥

मनहुँ मोहकी मूरति कोऊ उलही आनि अभङ्ग।
श्रीहरिप्रिया प्रगट पुहुमी पर कहत होत मति पङ्ग ॥१३॥

उलहि=फलीफूली। अभंग=अखंड। पुहुमी=पृथ्वी। श्रीहरिप्रियाजू पुनः कहती हैं।

दोहा—इन दोनों के हृदय सहज रंग अर्थात सुरत केलि जन्य रंग से रँग कर आर्द्र हो रहे हैं जिनसे अनूठे नेह की तरंगे उठती रहती हैं।

पद—इन दोनों के अङ्ग प्रत्यङ्ग सुरति केलि जन्य रङ्ग से अहर्निश आर्द्र रहते हैं और इनसे क्षण क्षण में अति अनूठी सहज सनेह की तरङ्गे उठती रहती हैं। श्रीहरिप्रियाजी कहती हैं इन दोनों का परस्पर मोह इतना अधिक है मानो ये दोनों साक्षात दिव्य मोह की मूर्तियाँ हैं। इनका मोह कभी भी भङ्ग नहीं होता है, क्षण क्षण में कोई अनिर्वचनीय लता की तरह फैलता फूलता रहता है। श्रीहरि एवं प्रिया जिनकी प्रेम पिपाषा का ऊपर वर्णन कर चुके हैं। ये इस पृथ्वी मंडल पर प्रकट होते हैं। इस आश्चर्यजनक घटना को देख कर मेरी बुद्धि पंगु हो जाती है।

॥ दोहा ॥

कहत न बनत बखान तें, परनि प्रेम रस जाल।
ऐसी किहि ललचनिहिं लगी, ललचे लाड़िलीलाल॥

॥ पद ॥ १४॥

लाड़िली लाल सहज सुख सानें, कहत न बनत हैं एरी बखानें।
ऐसी किहिं ललचनि ललचानें, ललचतहीं छिन रहत न छानें॥
श्रीहरिप्रिया परे रसपानें, तन मन करि राखे इक तानें॥१४॥

परनि=नदी-सरिता। रस पानें=रसपाणि=रस के हाथ में। तानें=सूत्र। पुनः श्रीहरिप्रिया सखि कहती हैं।

॥ दोहा ॥

कोई एक अनिर्वचनीय प्रेम की ऐसी सरिता है जिसमें रस की भँवरियाँ पड़ रही है, जिसका वर्णन करने की किसी की भी सामर्थ्य नहीं हैं। उपरोक्त प्रेम सरिता में लाड़िली लाल निमग्न रह कर भी क्षण क्षण में उस सरिता के रस पान की अभिलाषा करते रहते हैं।

॥ पद ॥

हे सखि ! श्रीलाड़िली लाल स्वाभाविक प्रेम में इतने रंजित हैं जो वखान करने से भी कहते नहीं बनता। ऐसा इनको क्या लालच है जिसके लिये ये अहर्निश ललचाते ही रहते हैं। इस रस की ललक में इतनी तीव्रता है कि सखियों से छिपाने का प्रयत्न करते रहने पर भी वह ललक छिप नहीं पाती। श्रीहरिप्रियाजी कहती है, वास्तविक बात तो यह है कि—इनकी बड़ी विवस स्थिति है, क्योंकि ये रसके हाथों पड़ गये हैं जिसमें इनके तन मन को एक सूत्र में बाँध दिया है।

॥ अनुरागिनि विश्वाभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

विस्व-बिमोहन मोहिनी, सहज उजागरि रूप।
महा मोह पयोधिनी, श्रीसुकुंवारि अनूप ॥

॥ पद ॥ १५ ॥

रूप-उजागरी सुकुंवारि।
विस्वमोहन मोहिनी महामोह उदधि उदारि ॥
सहज सुखद सनेहिनी नवनेहिनी निरधारि।
श्रीहरिप्रिया परिपूरि कामिनि कृसोदरि दुखहारि ॥१५॥

अनुरागिनि विश्वाभा मध्याभास=राग विभास। उजागरि=प्रकाशवान। पाथोधिनी=पाथ+उदधिनि=जल की समुद्रनी। निर्धार=निश्चित। परिपूर=परिपूर्ण सब गुणों युक्त। पद नं० १४ में जिस रस के लिये रसिक दम्पति लालायत है वह रस परस्पर का दिव्य मोही है उसी को वर्णन करते हुये श्रीहरिप्रिया जू कहती है।

॥ दोहा ॥

श्रीस्वामिनीजू नित्य प्रकाशवान स्वरूपा होकर भी किसी अनिर्वचनीय अनूपम दिव्य मोह की समुद्र स्वरूपा है इसलिये वे विश्व को मोहन करने वाले मोहन को भी मोहित कर लेती हैं।

॥ पद ॥

यद्यपि आपका तत्व उपरोक्त है तथापि आप अत्यन्त प्रकाशवान रूप राशि और सुकुमारी है। आप विश्व विमोहन करने वाले मोहन का भी मोहन करती हैं। निश्चित

ही आप लाल जू को सुख प्रदान करने वाली उनके स्नेह नव नेह को बढ़ाने वाली हैं। श्रीहरिप्रिया जू कहती हैं हे कृशोदरी स्वामिनी जू आपसे ही प्यारे की सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। और आप ही इनके अधर सुधा पानकी तृषा आदि दुखों को मिटाने वाली हैं।

॥ दोहा ॥

तू मेरी हितू सहचरी, तो बिन मोहि सरै न।
ताते तोसों कहति हों, सुनहु श्रवन दे बैन॥

॥ पद ॥ १६॥

सखी री ! सुनहु श्रवन दे बैन।
तू मेरी हितू सहचरि हिय की तो बिन मोहिं सरै न॥
लागति है अति प्यारी मो कों जैसें पलकनि नैन।
श्रीहरिप्रिया तोहि ते बिलसत या सुख की बिलसैन॥१६॥

श्रीप्रियाजू हितु सहचरीजू को सम्बोधन करती हुई कहती है।

॥ दोहा ॥

हे हित सहचरी जू तू ही मेरी हित रूपा सहचरी है। मुझे तेरे बिना नहीं सरता। इसीलिये अपने हृदय के उद्गार तुझसे कहती हूँ। तू कान देकर सुन।

॥ पद ॥

हे सखि मेरी बातों को कान देकर सुन। तू ही मेरे हृदय की हित करने वाली सखि है। तेरे बिना मुझे एक क्षण के लिये भी नहीं सरता है। तू मुझे ऐसी प्यारी लगती है जैसे पलकों को नेत्र। हे श्रीहरि की प्रिया हितु सखि जी इस सुख को हम दोनों आपके द्वारा ही विलसते हैं।

॥ दोहा ॥

जो कछु सो तुव चरन बल, नहिं मेरो उपकार।
मोहिं बड़ाई देति हौ, अहु स्वामिनि सुखसार॥

॥ पद ॥ १७ ॥

अहो बलि स्वामिनी सुखसार।
जो कछु सो सब पद प्रताप करि मोहिं देत अधिकार॥

तुम कारन के कारन तुमहीं करता के करतार।
श्रीहरिप्रिया प्रान-जीवन-धन तन मन के आधार ॥१७॥

यह सुनकर श्रीहितू सखिजी श्रीप्रियाजू के चरणों को पकड़ कर कहने लगी।

दोहा—हे सुख स्वरूपा स्वामिनी जू जो कुछ प्रताप है वह इन युगल चरणों का ही है। इसमें मेरा कुछ उपकार नहीं है। आप एक मात्र अपनी उदारता के कारण ही मुझे बड़ाई दे रही हैं।

पद—हे सब सुखों की सार स्वरूपा श्रीस्वामिनीजू मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ। यह जो कुछ निकुञ्ज विलास का रस है ये सब आपके चरणारबिन्दों की कृपा से है। मुझको तो आपने अपनी उदारता से अधिकार प्रदान कर रखा है। दिव्य प्रेम के कारण स्वरूप एवं संचालक आप ही हैं। हे श्रीहरि की प्रिया लड़ैती जू आप ही मेरे प्राण जीवन धन तन मन के आधार स्वरूपा हैं।

दोहा—निरखि निरखि संपति सुखैं, सहजहिं नैन सिराय।
जीजितु हैं बलि जाउँ या, जगमाहीं जस गाय॥

॥ पद ॥ १८ ॥

जुगल जस गाय गाय जीजियें।
या जगमें बलि जाउँ अहो अब जीवन-फल लीजियें॥
निरखि निरखि नैननि सुख संपति सहज सुकृत कीजियें।
श्रीहरिप्रिया बदन पर पानी वारि वारि पीजियें॥१८॥

जीजितु=जीजिये। श्रीहरि प्रिया सखि अपने भाग्य की सराहना करती हुई प्रिया प्रीतम की विरदावलि गान करने लगी।

दोहा—श्रीप्रिया प्रीतम के विलास रूपी सुख सम्पति को देख कर अपने नेत्रों को शीतल करती हुई मुक्त कण्ठ से सखि कहने लगी मैं बलिहारी जाऊँ इस जगत में ऐसे रसिक दम्पति के यश को गाय गाय कर ही जीवन बिताना चाहिये।

पद—मैं बलिहारी जाऊ इस जगत में जीने का फल यही है कि जुगल के यश को गाय गाय कर ही जिया जाय। सुख सम्पति स्वरूपा श्री प्रिया प्रीतम को ही देख कर

सहज सुकृति लाभ करना चाहिये । श्रीहरि एवं प्रिया के मुखारविन्दु पर वार वार कर पानी पीना चाहिये ।

॥ दोहा ॥

मङ्गलदा मन मोद प्रद, दायक सुधा सुमेह ।
राज करौ बलि जाऊँ यह, दम्पति सहज सनेह ॥

॥ पद ॥ १६ ॥

सदा यह राज करौ बलि जाउँ दंपति कौ सुख सहज सनेह ।
सुमंगलदा मनमोद प्रदा रसदायक लाय सुधाको सो मेह ॥
जीवावनि जी उपजीविन के उर आनन्द बेलि बढ़ावन एह ।
श्रीहरिप्रिया मनोरथ के गन कौ सिधि कारन सिंधु अछेह ॥१६॥

मंगल दा=मंगल प्रदान करने वाला । मन मोद प्रद=मन को आनन्द देने वाला । दायक सुधा सुमेह=अमृत की वर्षा करने वाला । जिवावनि जी=प्राणों को जिलाने वाला । उप जीवनि=दासि वर्ग । सिन्धु अछेह=अक्षय समुद्र ।

श्रीहरिप्रिया पुनः विरदावलि गान करती हुई कहती हैं ।

॥ दोहा ॥

मैं बलिहारी जाऊ श्रीप्रिया प्रीतम का सहज सनेह ही सदाँ राज करता रहे क्योंकि हम लोगों के लिये यह सनेह ही मङ्गल प्रदान करने वाला मन का मोद बढ़ाने वाला और प्रेम रूपी अमृत को वर्षाने वाला मेह सरीखा है ।

॥ पद ॥

मैं बलिहारी जाऊ रसिक दम्पति का यह स्वाभाविक सहज सनेह ही सदाँ राज्य करता रहै । क्योंकि हम सखियों के लिये यह मङ्गल देने वाला मनका मोद बढ़ाने वाला, रस देने वाला, प्रेम रूपी अमृत की वर्षा वर्षाने वाला मेह सरीखा है । यह सहज सनेह हम दासियों के जीवन को जिलाने वाला और हमारे हृदयों में आनन्द लता को बढ़ाने वाला है । श्रीहरिप्रिया सखि कहती हैं कि हमारे हृदय में प्रिया प्रीतम को सुख प्रदान करने के लिये जो जो मनोरथ उठते रहते हैं उन सब मनोरथों के पूर्ण करने वाला यह सहज सनेह अक्षय समुद्र सरीखा है ।

दोहा—दिनहिं लड़ैबो दुहुनि कौं, धरि उर और न ओष।
परिचर्य्या ही करि अहो, हमें बड़ो है पोष॥

॥ पद ॥ २० ॥

हमें बलि बड़ौ यही है पोष।
दम्पति की परिचर्या ही करि पावें परम संतोष॥
दिनहिं लाड़िली लाल लड़ैबो धरि उर और न ओष।
श्रीहरिप्रिया सुछीकृति आगें तुच्छीकृति सब मोष॥२०॥

ओष=अभिलाषा। पोष=पालन पोषण। सुछी कृति=पवित्र सेवा रूप कृति। तुच्छी कृत=तृस्कृति सब मोष=मोक्ष। श्रीहरिप्रिया जी फिर कहती हैं।

दोहा—मेरी अन्य कोई अभिलाषा नहीं है मैं एक मात्र यह चाहती हूँ कि अहर्निश इन दोनों को ही लाड़ लडाती रहूँ। इनकी परिचर्या करके ही हमें बड़ा पोषण प्राप्त होता है।

पद—मैं बलिहारी जाऊ हमारे लिये एक मात्र यही पोषण है कि रसिक दम्पति की सेवा करके ही हम परम सन्तुष्ट होती रहें। अहर्निश हम लाड़िली लाल को ही लड़ाती रहें। इसके अतिरिक्त हमारे हृदयों में और कोई अभिलाषा न उठने पावे। श्रीहरिप्रिया जी कहती है, इस सेवा रूपी सुकृति के सामने हमें सब प्रकार की मोक्ष भी तुच्छ सी प्रतीत होती हैं।

॥ अनुरागिनि विलासावलि मध्याभास ॥

दोहा—मैं आज्ञा-अनुवर्त्ति हों, अहो-निसा आधीन।
करत बिहारीलाल यों, बिनय बाल-रस-लीन॥

॥ पद ॥ २१ ॥

विनय यों करत बिहारीलाल।
मैं तिहरौ आज्ञा-अनुवर्ती हे मन-हरनी बाल॥
जिहिं जिहिं भाँति चलावति हो मोहिं चालत सोई चाल।
श्रीहरिप्रिया स्वामिनी तुम मम प्रानानि की प्रतिपाल॥२१॥

—:द्वितीय वाक् विलासः—

अनुरागिनि विलासावली मध्याभास=राग विलावल। सखियों की विरदावली गान के अनन्तर फिर लालजू विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगे :—

दोहा—श्रीलालजू श्रीलड़ेंतीजू से रस—अधर सुधारस आदि की प्राप्ति के लिये विनय पूर्वक कहने लगे "हे प्यारीजू मैं तो आप की आज्ञा ही का अनुवर्ती होकर अहर्निश आपके आधीन रहता हूँ।"

पद—श्रीलालजू इस प्रकार प्रार्थना करते हैं कि "हे मन को हरने वाली प्रिया ! मैं आपकी आज्ञा का अनुवर्ती हूँ। जिस जिस तरह से आप मुझको आज्ञा करती हो उसी प्रकार मैं उसका अनुसरण करता हूँ।" श्रीहरि कहते हैं "हे मेरी स्वामिनी तुम्हीं मेरे प्राणों की पालन करने वाली हो।"

दोहा—मैं हूँ जानति हौं जिये, जो वीतति दिन रैन।
अहो प्रानप्रीतम इहै, सत्य कहे तुम बैन॥

॥ पद ॥ २२ ॥

अहु अहु प्रान प्रीतम यह बात।
तुम जु कहत हौ है यह ऐसेंई अति सनेह की घात॥
मैं हूँ जानति हौं अपने उर जो बीतत दिन रात।
कछू कहत में आवत नाहीं छुये कहति हौं गात॥
लाख लाख अभिलाषन के गन रोमन में रमि जात।
श्रीहरिप्रिया पूछियें इनकों सोंह दिवाय प्रभात॥२२॥

घात=प्रहार। प्रभात=सवेरे। यह सुनकर श्रीलड़ेंतीजू कहने लगीः—

दोहा—अहो मेरे प्राण प्यारे ! आपने मेरे हृदय की सच्ची वात कही है। मेरे हृदय में भी रात दिन जो वीतती है उसको मैं ही जानती हूँ।

पद—अहो मेरे प्राण प्रीतम ! जो आपने बात कही है यह ऐसे ही है। जिनके हृदय पर अति स्नेह का प्रहार होता है उनके हृदयों की ऐसी ही दशा हो जाती है। इसी प्रकार मेरे हृदय पर भी रात दिन वीतती है। मैं इस बात को अछी प्रकार अनुभव

करती हूँ। मैं आपके अङ्ग छूकर अर्थात आपकी सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मेरे हृदय पर जो बीतती है उसको मैं वाणी द्वारा वर्णन नहीं कर सकती हूँ, आपके प्रति जो मेरी अनन्त अभिलाषाएँ हैं वे मेरे रोमकूपों में समाई हुई हैं। हे श्रीहरिप्रिया ! मेरे इन रोम कूपों से तुम सवेरे ही सवेरे सौगन्ध दिवाकर पूछ लो (क्योंकि सवेरे सवेरे कोई झूठ नहीं बोलता) कि यह बात सत्य है अथवा नहीं।

॥ दोहा ॥

दिन-दिन छिन छिन प्रति इनहिं, यों ही करत बिहात।
यह सुख ये इन दुहुनि कौ, अवलोकत न अघात॥

॥ पद ॥२३॥

यह सुख सहज सनेह दुहुनि कौ अवलोकत अखियाँ न अघावत।
दिन्हीं-दिन छिनहीं-छिन प्रति प्रति बिपुल पुलक उर में न समावत॥
रसिक सिरोमनि रति रस-रंगी बतरसहीं में रस उपजावत।
श्रीहरिप्रिया निरन्तर इनिको यही कथा करतेहि बिहावत॥२३॥

न अघात=तृप्ति नहीं होती। विपुल पुलकि=अतिशय प्रेम के अनुभाव रोमाञ्चादि। बतरस=बात चीत। विहावत=व्यतीत होना। यह सुनकर श्रीहरिप्रिया सखी कहने लगी।

दोहा—इनका रात दिन क्षण क्षण काल इसी प्रकार कहते सुनते तथा करते व्यतीत होता है। हम सखियाँ इन दोनों के इस प्रकार के लीला विलासों को देखती रहने पर भी तृप्त नहीं होती हैं।

पद—हम सखियों की आँखें इन दोनों के इस प्रकार के स्वाभाविक स्नेह को देखकर तृप्त नहीं होती हैं। रात दिन क्षण क्षण में इन लीला विलासों को देख देख कर हमारे हृदयों में प्रेम के अष्ट सात्विक रोमाञ्चादि इतने प्रकट होते हैं जो हमारे हृदयों में समाते नहीं हैं ये दानों रसिक शिरोमणि इतने रति रस रंग में रञ्जित हैं कि केवल बात चीत करते करते ही इन दोनों के हृदयों में रस का उद्रेक होने लगता है श्रीहरि एवं प्रिया का समय निरन्तर इसी प्रकार की बात चीत करते हुए ही व्यतीत होता है।

॥ दोहा ॥

सकल सुलोक प्रसंसिनी, जोरी अतिहिं अनूप।
हौं बलि जाऊं निरखि कें, आनन्दसिन्धु स्वरूप ॥

॥ पद ॥२४॥

हों बलि जाय हों आनन्द उदधि उदार अपार।
हिय हुलसाय हों करि मन मगन महा मधु धार ॥
महा मधु-धारहिं मगन करि मनहिं हियौ हुलसाय हौं।
अति उदार अपार आनन्द-उदधि हौं बलि जाय हौं ॥
सकल लोक प्रसंस जोरी जुगल अवतंसनि-मनी।
अमित रूप अनूप अद्‌भुत मृदुल मृदु रस सों सनी ॥
मन्मथ-मोहिनी पटतर दीबे कों कहो कौन।
सब अङ्ग सोहिनी सोहैं सुन्दर सुभग सुठौन ॥
सोहैं सुन्दर सुभ सुठौनी सरस अङ्ग अङ्ग सोहनी।
कहा पटतर दीजिये कहौ महा मनमथ मोहिनी ॥
गौर स्याम किसोर मूरति मधुर मोद प्रकासिनी।
नित्यनौतन नेह निरवधि नवनिकुञ्ज निवासिनी ॥
नैन सिराय हौं निरखि-निरखि छबि रसकी रेलि।
उरहिं बढ़ाय हौं सदा सहज सुख बिहरनि बेलि ॥
सहज सुख बिहरनि सु बेली सदा उरहिं बढ़ाय हौं।
रैन दिन यह रेलि रसकी निरखि नैन सिराय हौं ॥
बिबिध बाक बिलास बिनवनि बिबिन की बरदायनी।
बिहँसि रहसि बिनोद बितरनि बिसद पद परदायनी ॥
श्रीहरिप्रिया नित बसौ मेरे हिय में हिलिमिलि दोऊ।
याही रस मन रसौ और न अभिलाषत उर कोऊ ॥
और न अभिलाषत कोऊ उर याही रस में मन रसौ।
नित्य मेरे हियें हिलिमिलि दोऊ श्रीहरिप्रिया बसौ ॥

यह अनुग्रह महल की निज टहल में ततपर रहौं।
अहो करुनासिन्धु अतपर कछु मैं अवर न चहौं ॥२४॥

उदधि=समुद्र । अवतंसनि मनि=मुकुट मणि । निरवधि=अवधि रहित। विहरनिवेलि=विहार सम्बन्धी लता । विनवनि=विनय युक्त=अधीनता युक्त। वितरनि=देने वाली विशदपद=सुरति विहार सम्बन्धी ऊँचे से ऊंचा पद अर्थात सुमेरु के शिखर के नृत्य । श्रीहरिप्रिया सखी विरदावली गान करती हुई कहती हैं —

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति की यह जोरी अत्यन्त ही अनुपम है। इसकी समस्त दिव्य धाम भी प्रशंसा करते हैं। मैं बलिहारी जाऊँ! हमारे लिये तो यह जोरी आनन्द की सिन्धु स्वरूपा है।

॥ पद ॥

मैं बलिहारी जाऊँ! यह जोरी आनन्द के उस गम्भीर समुद्र के सदृश है जिसका कोई वारा पार नहीं है। मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि अपने हृदय को इस समुद्र की मधुर धाराओं में निमग्न करके उल्लसित होती रहूँ। युगल किशोर की यह जोरी समस्त दिव्य लोकों द्वारा प्रशंसित है और सब जोरियों की मुकट मणि स्वरूपा है। इसका रूप अतुलनीय, अनुपम, तथा अद्भुत है और यह मधुर से भी मधुर रस से रञ्जित है ॥१॥

इस जोरी की और किससे उपमा दें? इसने साक्षात् मन्मथ के मन को भी मोहित कर लिया है। इस जोरी के समस्त अङ्ग सुन्दर, सुभग, सरस और सुगठित हैं। इस गौर श्याम जोरी की अवस्था नित्य किशोर है, इसी से ही मधुर रस और आनन्द प्रकाशित हुए हैं। यह जोरी नित्य निकुञ्ज में निवास करती है और इस का स्नेह नित्य नूतन और अवधि रहित है, जो क्षण क्षण में बढ़ता रहता है ॥२॥

इस जोरी की छवि और इसके रस के प्रवाह को देख देख कर मेरे नेत्र सदा सीतल होते रहते हैं। मेरे हृदय की नित्य विहार सम्बन्धी लता इनके स्वाभाविक प्रेम को अनुभव करके बढ़ती रहती है। इनके विविध प्रकार के विनय युक्त वाक् विलास दोनों की अभिलाषाओं को पूरा करते रहते हैं। इन दोनों की रहस्य भरी मुस्कराहट इनको उस रहस्य विनोद में प्रवृत करा देती है जो रहस्य विनोद विलास के विशद पद पर अर्थात सुमेरु के शिखर के नृत्य पर रसिक दम्पति को पहुँचा देता है ॥३॥

श्रीहरिप्रिया सखी प्रार्थना करती है कि यह जोरी इसी प्रकार विहार करती हुई सदा मेरे हृदय में बिराजमान रहे। मेरा मन इसी रस में रसायित होता रहे। मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है। मैं रसिक दम्पति का यही अनुग्रह चाहती हूँ कि महल को निज टहल में इसी प्रकार से लगी रहूँ। हे करुणा के सागर बस! इसके अतिरिक्त मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है ॥४॥

॥ दोहा ॥

अमित रूप धरि कोउ कछु, करत न टहल अघाउँ।
अति उदार सुकुँवार अहु, यहै मनोरथ पाउँ॥

॥ पद ॥ २५ ॥

यहै मनोरथ निज उर मेरे दम्पति की नित टहल मनाऊँ।
अमित रूप धरि कोउ कछू कोउ कछू करति रहौं नाहिं अघाऊँ॥
तुम हौ परम उदार अहो सुकुँवार सिरोमनि यह बर पाऊँ।
श्रीहरिप्रिया लाड़िली लाल लड़ाय अहो निसि यों बितवाऊँ॥२५॥

अमित=अगणित।

श्रीहरिप्रिया सखी सेवा की अभिलाषा करती हुई पुनः कहती हैं।

॥ दोहा ॥

हे अति उदार सुकुमारि शिरोमणि श्रीप्रियाजू! मेरी एक मात्र यही एक अभिलाषा है कि अगणित रूप धारण करके मैं ही आपकी सेवा करती रहूँ।

॥ पद ॥

मेरे हृदय में एक मात्र यही मनोरथ है कि मैं अहर्निश दम्पति की टहल ही करती रहूँ। आपकी सेवा के अनुरूप मैं प्रथक-प्रथक प्रकार के रूपों को धारण करके सेवा करती रहूँ, कभी भी इस कार्य से तृप्त न होऊँ। हे सुकुमारि शिरोमणि (लड़ेती) लणेतोजू! आप परम उदार हो, इसलिये आपसे यह वर प्राप्त करना चाहती हूँ कि आप दोनों श्रीहरि एवं प्रिया को अहर्निश-लड़ाय-लड़ाय कर अपना समय व्यतीत करती रहूँ।

दोहा ॥

यही चाह चित मो चहौ, सुनौ सुघर बर बैन।
मधुकर ह्वै पदकंज कौ, रहौं सदा दिन रैन॥

॥ पद ॥ २६ ॥

यही चाह चाहौ चित मेरौ, और चाह तन तनक न हेरौ।
मधुकर ह्वै पदपङ्कज केरौ, रैन दिना करि रहौं बसेरौ ॥
श्रीहरिप्रिया प्रेम उरझरौ, उरझ्यौ रहु न होहु सुरझेरौ ॥२६॥

सुघरवर=चतुर शिरोमणि।

सखि की बात सुन कर श्रीलालजू भी सेवा की अभिलाषा से कहने लगे।

॥ दोहा ॥

हे सुघड़ शिरोमणि प्रियाजू! मेरे हृदय में भी यही-चाह है कि अहर्निश मैं भी आपके चरणारविन्दों का सदा मधुकर हो कर रहूँ।

॥ पद ॥

मेरे चित्त में एक मात्र यही चाह है, इस के अतिरिक्त मेरे मन में और कोई कामना हो तो आप उसकी ओर दृष्टि भी न डालें। मैं आपके चरण-कमलों का मधुकर होकर रात-दिन इन्हीं में बसेरा करना चाहता हूँ। हे श्रीहरि-की प्रिया स्वामिनी जू! मेरा प्रेम एक-मात्र इन चरणारविन्दों से ही उलझा रहे, इस प्रकार के प्रेम से मैं कभी भी–सुलझने न पाऊँ, यही मेरी प्रार्थना है।

॥ दोहा ॥

अति अरबी करबी नहीं, अहु सुकुँवारि सुजान।
महामोह लगि लाड़िलौ, माँगत हैं रसदान ॥

॥ पद ॥ २७ ॥

माँगत लाड़िलौ रसदान।
देहु दया करि कुँवरि किसोरी हौ तुम मयानिधान।
अति अरबी करबी न उचित अहो बीतत बरस समान ॥
श्रीहरिप्रिया सकल सुखदायक लायक परम सुजान ॥२७॥

अरबी=हठ। श्रीलालजू की विनय सुन कर श्रीहरिप्रिया सखी उनके हृदय की बात समझ गई और वह श्रीस्वामिनी जू से प्रार्थना करती हुई कहने लगी।

॥ दोहा ॥

हे सुकुमारि सुजान शिरोमणि! आपके लिये इतनी हठ करनी उचित नहीं है।

प्यारे का आप में अत्यन्त मोह है, इस लिये यह अधर-सुधा-रस प्राप्ति के लिये व्याकुल हैं।

॥ पद ॥

प्यारे अधर-सुधा-रस की विह्वल होकर याचना कर रहे हैं। हे कुँवरि किशोरी! आपका प्यारे पर अत्यन्त ममत्व है, इसलिये आप दया करके इन्हें अधर-सुधा-रस से सिंचन करें। आपके लिये इतनी हठ करनी उचित नहीं है। इनका एक-एक क्षण काल-अधर-सुधा की तृषा से वर्षों के समान व्यतीत हो–रहा है। आप श्रीहरि की प्रिया हैं, इन को सब सुख प्रदान करने वाली हैं, समर्थ हैं और इन के हृदय की सब बातों को जानने वाली हैं।

॥ दोहा ॥

तनक बिछुरबी तुमहिं ते, दीन दुखित ज्यों मीन।
अब न कछु करबी अहो, अरबी प्रिया प्रबीन॥

॥ पद ॥२८॥

अहो बलि उचित न करबी अरबी, जो कछु भई सो भरबी।
निमिष न एक इन्हें अब सरबी परि गई बानि कुढरबी॥
दीन दुखित ज्यों तरफर मरबी तुमतें तनक बिछरबी।
श्रीहरिप्रिया क्यो हू न निबरबी देखें कहा फरफरबी॥२८॥

मीन=मछली। करवी=करनी। भरवी=परिणाम। अबसरबी=काल। बान=स्वभाव। कुढरवी=बेढंगा। तरफरमरवी=तड़फड़ा के मरना। निवरवी=निवारण।

लालजू को अधिक व्याकुलता देखकर पुनः श्रीहरि प्रियाजी प्रार्थना करती हैं:—

॥ दोहा ॥

हे प्रियाजू! देखो तो सही प्यारे आपके अधर-सुधा-पान विना कैसे विल विला रहे हैं, जैसे मछली को जल से अलग कर दिया हो। हे प्रवीण-शिरोमणि प्रियाजू! अब कुछ और हठ करनी उचित-नहीं हैं, क्योंकि हद हो चुकी है।

॥ पद ॥

मैं आप की बलिहारी जाऊँ, अब और हठ करनी उचित नहीं है। आप के विलम्ब का परिणाम तो सामने ही है जो लालजी इतने अधीर हो रहे हैं। इनका यह एक बेढंगा स्वभाव पड़ गया है कि क्षण काल भी आपके अधर-सुधा-रस दान बिना ये ऐसे

तड़फड़ाने लगते हैं जैसे जल के बिना मछली तड़फती है। हे श्रीहरि की प्रिया मैं किसी प्रकार भी इन्हें इस दशासे निवारण नहीं करपाती। देख तो सही ये कैसे तडफड़ा रहे हैं।

॥ दोहा ॥

करुनासिन्धु कृसोदरी, प्रानन की प्रतिपाल।
सुनि सहचरि के बचन तिय, हिय लगाय लियो लाल॥

॥ पद ॥ २६ ॥

लाल कों लिये लगाय हिये सों सुनिकें बचन रसाल।
करुनासिन्धु कृपाल कृसोदरि उमँगि मिलि तत्काल॥
ढरि अँचवायो अधर-सुधा उरझायो लै रस-जाल।
श्रीहरिप्रिया प्रवर परिपूरन प्राननि की प्रतिपाल॥२६॥

प्रवर=महिमान्वित। यह दशा देख कर स्वामिनी जी ने अपने प्यारे को अपने हृदय से लगा लिया।

॥ दोहा ॥

सहचरि के वचन सुन कर और प्यारे की ऐसी विह्वल एवं अधीर अवस्था देख कर स्वामिनी जी का दिव्य मङ्गल विग्रह तत्क्षण कृश हो गया, उनके हृदय में करुणा उमड़ आई और उन्होंने अपने प्राण-जीवन-धन प्रियतम को हृदय से लगा लिया।

॥ पद ॥

सखी के अत्यन्त रस मय बचनों को सुनकर लड़ैती जू ने अपने लाल को हृदय से लगा लिया। करुणा सिन्धु कृपाल कृशोदरि ने उमङ्ग कर तत्क्षण उनका गाढ़ आलिंगन किया। उनको अधर-सुधा पान कराया, और अपने अङ्ग-प्रत्यंगों से रस के जाल में उनको उलझा लिया। इस प्रकार से श्रीहरि को प्रिया महिमान्वित स्वामिनीजू ने श्रीलालजू के तड़फड़ाते हुए प्राणों की रक्षा की।

॥ दोहा ॥

बड़े भाग पाई जु हम, जीवन-प्रान-अधारि।
जोरी रसिक-सिरोमनी, सहज सदा सुखकारि॥

॥ पद ॥३०॥

रसिक-सिरोमनि जोरी जू नवनित्य किसोर किसोरी जू।
सहज सदा सुखकारी जू यह जीवन-प्रान हमारी जू॥

बड़े भाग हम पाई जू बरनी नहिं जाति बड़ाई जू।
नवल-निकुंज-निवासी जू उर आनन्द-प्रेम प्रकासी जू॥
गौर स्याम तन सोहैं जू घन दामिनि उपमा को हैं जू।
रूप अनूपम राजैं जू लखि कोट काम रति लाजैं जू॥
सहज सनेह सनेही जू ए एक प्रान द्वै देही जू।
सब सोभा के सागर जू नव नागर रूप उजागर जू॥
आनँद अहलाद स्वरूपा जू सत असत परे पर भूपा जू।
मूरति सब सुख-रासी जू महा मनमथ इष्ट उपासी जू॥
रङ्गरँगीले सुन्दर जू परधाम प्रकास पुरन्दर जू।
उपजीविन के(उप) जीवी जू दंपति सुखसंपति दीवी जू॥
मंगल मोद प्रदायक जू गुनआगर सुतः सुभायक जू॥
निरवधि नित्य बिहारा जू पावैं जिहिं वार न पारा जू।
श्रीहरिप्रिया सलोने जू आगें भये न अब कोई होने जू॥३०॥

सत=वैकुण्ठादि लोक। असत=प्राकृतिक लोक। परभूपा=अधिपतियों के भी भूप, अर्थात् चूड़ामणि। उप जीवनि=दासी वर्ग। महामन्मथ=साक्षात काम देव। पुरन्दर=अधिपति। गुण आगर=गुणों की खान। निरवधि=अवधि रहित।

सखियाँ विरुदावलि गान करती हुई कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति की यह जोरी हम को बड़े भाग्य से प्राप्त हुई है। यह हमारे जीवन प्राणों की आधार स्वरूपा है। यह जोरी रसिक शिरोमणि है, और सदैव सहज सुख को प्रदान करने वाली है।

॥ पद ॥

यह जोरी रसिक शिरोमणि हैं। इनकी सदा नव-नवायमान नित्य किशोर अवस्था रहती है। ये सदैव सुख को प्रदान करने वाले हैं। यह जोरी हमारी जीवन प्राण स्वरूपा है ॥१॥ हमें यह जोरी बड़े भाग्य से प्राप्त हुई है। हम अपने भाग्यों की क्या सराहना करें ॥२॥ यह जोरी सदा नवल निकुञ्जों में निवास करती है। हमारे-हृदयों में आनन्द तथा प्रेम का प्रकाश करने वाली है ॥३॥ इनके दिव्यमङ्गल विग्रह

गौर और श्याम हैं। इनकी दिव्य छटा के सामने घन और दामिनी की उपमा तुच्छ प्रतीत होती है ॥४॥ इनकी रूप माधुरी अनूपम है, जिसको देख कर कोटि काम देव तथा रती लज्जित हो जाते हैं ॥५॥ इनका स्वाभाविव स्नेह इस प्रकार का है, मानों ये दोनौं एक प्राण दो देह हौं ॥६॥ ये समस्त सौन्दर्य के निधान हैं। ये नव नागर हैं इनका रूप स्वयं प्रकाशमान है ॥७॥ श्रीलालजू आनन्द प्रियाजू आह्लाद स्वरूपा हैं। सत–बैकुण्ठादि, असत–पृथ्वी आदि प्राकृतिक लोक इनसे आप परे और इन सब लोकों के अधिपतियों के भी भूपा अर्थात् चूड़ामणि स्वरूपा हैं ॥८॥ आपके दिव्य मङ्गल विग्रह सब सुखों की राशि स्वरूपा हैं। आपका इष्ट साक्षात् मन्मथ है, अर्थात् आप सदा दिव्य काम की उपासना में सदा निमग्न रहते हैं ॥९॥ आप अनुराग के रंग से सुन्दर प्रकार से रंजित हैं। वैकुण्ठादि धाम भी आपसे प्रकाशमान है। इन सब लोकों के भी आप अधिपति हैं ॥१०॥ आप अपने आश्रितों के जीवन स्वरूपा हैं। आप सदैव दम्पति-स्वरूप से ही रहते हैं, और अनेक प्रकार की सुख सम्पत्तियों के दाता हैं ॥११॥ आप मङ्गल और आनन्द के प्रदाता हैं और स्वाभाविक ही सब गुणों की खान-स्वरूपा हैं ।१२। आप अवधि रहित उस नित्य विहार में सदा प्रवृत्त रहते हैं, जिसका कोई बार पार नहीं है ॥१३॥ श्रीहरि प्रियाजी कहती हैं कि आप अत्यन्त सलौने सकुमारि हैं। आप जैसे न तो कोई पहले हुए हैं न आगे होने की आशा है ॥१४॥

॥ अनुरागिनि आनन्दा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सदा सनातन एक रस, सदा बसत सब काल।
श्रीराधा रानी जहाँ, राजा मोहन लाल ॥

॥ पद ॥३१॥

जय जय वृन्दावन रजधानी।
जहाँ बिराजत मोहन राजा श्रीराधा-सी रानी।
सदा सनातन इकरस जोरी महिमा निगम न जानी।
श्रीहरिप्रिया हितू निज दासी रहति सदा अगवानी॥३१॥

अनुरागिनि आनन्दा मध्याभास=आसावरी।

—॥ तृतीय वाक् विलास ॥—

सनातन=अनादि। श्रीवृन्दाबन का वर्णन करती हुई सखियाँ कहती हैं:—

॥ दोहा ॥

हम श्रीवृन्दावन की महिमा का क्या वर्णन करें जहाँ के राजा मोहन लाल और रानी श्रीराधा सी हैं। ये अनादि काल से यहाँ सब काल अर्थात् सत् युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग आदि सब कालों में स्थाई रूप से विराजमान रहते हैं और जिनका स्नेह एक रस है।

॥ पद ॥

इस श्रीवृन्दावन रजधानी की सदा ही जय हो जहाँ कि राजा मोहन लाल और रानी श्रीराधा सी हैं। ये जोरी सदा सनातन एक रस रहती हैं, जिसकी महिमा बेद भी नहीं जान सके हैं। जिनकी सेवा श्रीहरि प्रिया एवं श्रीहितू सहचरी जी, निज दासी, आगे होकर सदा समाधान करती रहती हैं।

॥ दोहा ॥

पूरन प्रेम प्रकास कें, परी पयोधनि पूरि।
जय श्रीराधा रस-भरी, स्याम सजीवन मूरि॥

॥ पद ॥३२॥

जय श्रीराधिका रसभरी।
रसिक सुन्दर साँवरे की प्रान-जीवन-जरी॥
गौर अङ्ग अनङ्ग अद्‌भुत सुरति-रंगनि-ररी।
सहज संग अभङ्ग जोरी सुभग-साँचे-ढरी॥
परम प्रेम-प्रकास-पूरन पर पयोधिनि परी।
हितू श्रीहरिप्रिया निरखति निकट निज सहचरी॥३२॥

पयोनिधि=समुद्र। ररी=रञ्जित। सुभग=सौभाग्य। श्रीस्वामिनी जी का स्वरूप निर्धारित करती हुई सखियाँ कहती हैं।

॥ दोहा ॥

रस से परिपूर्ण उन श्रीराधारानी की सदा जय हो, जो श्याम प्राणों की संजीवनी बूटी स्वरूपा है। जिनकी कृपा से ही पूर्ण प्रेम प्रकाशित हुआ है और जो प्रेम समुद्र को परिपूर्ण करके उसमें स्वयं ही निमग्न हो गई हैं। (जैसे मकड़ी जाल का विस्तार करके उसमें स्वयं भी फस जाती है)।

॥ पद ॥

श्रीकृष्ण विषयिक रस से परिपूर्ण उन श्रीराधारानी की सदा जय हो जो रसिक सुन्दर साँवरे के प्राणों की संजीवनी बूटी स्वरूपा हैं। जिनका दिव्य मङ्गल विग्रह गौर है। जो अद्‌भुत दिव्य काम तथा सुरति रङ्ग से रञ्जित है। जो सदा अभङ्ग जोरी स्वरूप से रहती हैं अर्थात् जो कभी भी अपने प्यारे से विलग नहीं होती है। जिनके अङ्ग प्रति अङ्ग मानो सौभाग्य रूपी साँचे में स्वाभाविक ढले हुए हैं। श्रीस्वामिनी जी द्वारा ही परम प्रेम का पूर्ण प्रकाश हुआ है और यह उसी परम प्रेम रूपी समुद्र में स्वयं निमग्न हैं। अथवा "परम प्रेम प्रकाश - पूरन पर" अर्थात परम प्रेम के पूरन प्रकाश के परे जो दिव्य काम केलि रूपा समुद्र है उसमें यह निमग्न है। श्रीहितु एवं श्रीहरिप्रिया सहचरी अपनी सखियों को साथ लेकर इनको सदा निकट से देखती रहती हैं।

॥ दोहा ॥

पलकांतर अवलोक बिन, कल्पांतरहि विहात।
सरबस धन बिनु स्वामिनी, और न कछू सुहात॥

॥ पद ॥ ३३ ॥

मेरें सरबस-धन स्वामिनी मोहिं और न कछु सुहावै री।
पलकांतर अवलोके बिन मोहि कल्पांतरहि बिहावै री॥
एक टेक यहि चित चढ़ी रहै बिन देखे अकुलावैं री।
श्रीहरिप्रिया प्रान धन जीवन जोइ जु मोहिं जिवावैं री॥३३॥

पलकान्तर=पलक झपने का समय। कल्पान्तर=सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग सब मिलकर एक कल्प होता है, ऐसे अनन्त कल्प। जोई जु=देख देख कर। श्रीलालजू श्रीहरिप्रिया से कहते हैं!

॥ दोहा ॥

मेरी सर्व सुधन श्रीस्वामिनी जू ही हैं, इनके बिना मुझे और कुछ नहीं सुहाता है। इनके दर्शन करते करते जब मेरी पलक गिर जाती है तो वह क्षण काल का समय मुझको इतना बड़ा प्रतीत होता है मानों अनन्त कल्प इनके दर्शन बिना व्यतीत हो गये हों (एक कल्प में सत्य युग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग ४ युग होते हैं)

॥ पद ॥

मेरी तो एक मात्र सर्व सुधन स्वरूपा श्रीस्वामिनीजू ही हैं। मुझे इनके अतिरिक्त और कुछ अच्छा नहीं लगता है। मेरी पलक गिरने से जब इनके दर्शन का व्यवधान होता है तो वह क्षण काल भी इतना बड़ा लगता है मानो इनके दर्शन विन कई कल्प व्यतीत हो गये हों। मेरे चित्त में यही एक टेक सदा चढ़ी रहती है कि इनके दर्शन बिना मेरे प्राण अकुला उठते हैं। हे श्रीहरि प्रिया सखी! श्रीलड़ैतीजू मेरे प्राण जीवन धन स्वरूपा है, यही मुझको अपनी कृपा भरी दृष्टि से देख देख कर जिलाती रहती हैं।

दोहा—नित नवतन नेही महा, कहा जु गति जल मीन।
　　मोहन-रस बस मोहिनी, रहत सदा आधीन॥

॥ पद ॥ ३४॥

मोहन मोहिनी आधीन।
रहैं अति आसक्त अनुदिन कहा गति जल मीन॥
नित्य नवतन नेह नेही परस्पर रस-लीन।
हितू श्रीहरिप्रिया रसिकन हेत बिबि तन कीन॥३४॥

अनुदिन=अहर्निश। बिबि=दो। श्रीहरि प्रिया जू कहने लगीं :—

दोहा—यह मोहन रस के वश होकर सदा मोहनी जू के आधीन रहते हैं। इनका स्नेह नित्य नूतन रहता है। इसके सामने जल और मीन के स्नेह की कोई उपमा युक्ति संगत नहीं है।

पद—ये मोहन सदा मोहनी जी के आधीन रहते हैं। इनकी आसक्ति इतनी प्रबल है कि इनके स्नेह के सामने जल और मीन की उपमा तुच्छ प्रतीत होती है। इन दोनों का स्नेह नित्य नूतन है। क्योंकि ये सदा परस्पर रस में लीन रहते हैं इसलिये इनका स्नेह क्षण-क्षण में बढ़ता रहता है। मछली जल के वियोग में तो अपने प्राणों को त्याग देता है, परन्तु जल में रहने पर न तो उसका प्रेम ही नित्य बढ़ता है न ही जैसा मछली का—जल के प्रति स्नेह है, वैसा जल का मछली के प्रति नहीं है। वास्तविक तो श्रीहरि एवं प्रिया का तत्वांश में एक ही स्वरूप है। श्रीहितु सहचरी जी और रसिकों के लिये ही आपने दो स्वरूप, धारण कर रखे हैं।

॥ दोहा ॥

अतपर अभिलाषत न कछु, राखत यहि उर आस।
मोहिं मया करि देहु बलि, रज पद पंकज पास॥

॥ पद ॥ ३५॥

मोहिं मया करि देहु दयानिधि परिचर्य्या पद पंकज की।
अतपर और न कछु अभिलाषत राखत उर आसा रज की॥
दिनहिं लड़ाऊँ गाऊँ यह जस दंपति संपति सुखसज की।
श्रीहरिप्रिया छकी रहौं इहिं छक देखि देखि या छबि छज की॥३५॥

मया=ममत्व। सुख सज=सज्जित किया हुआ सुख। पूर्ण सुख अति पर और न कछु अभिलाषत राखत उर आसा रजकी। छकी=तृप्ति। छवि छज=योग्य सुन्दरता। श्रीहरिप्रिया जू फिर कहने लगीं —

॥ दोहा ॥

इसके अतिरिक्त मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है। आप ममता पूर्वक दया करके अपने चरणारविन्दों की सेवा तथा रज मुझे प्रदान करें।

॥ पद ॥

हे दया निधि ! आप ममता पूर्वक दया करके अपने चरणारविन्दों की सेवा मुझे प्रदान करें। आपके चरणों की रज छोड़कर मेरी और कुछ अभिलाषा नहीं है। मैं आपको ही रात-दिन लड़ाती रहूँ, और मेरे पूर्ण सुख-सम्पत्ति स्वरूपा आप ही हैं। आप का ही यश-गान करती रहूँ। श्रीहरि प्रियाजू कहती हैं कि आपकी इस रूप-माधुरी को जिसकी उपमा आप ही हैं मैं सदा देख-देख कर तृप्त होती रहूँ।

॥ दोहा ॥

अमृत-जस जुगलाल कौ, या बिन अचौं न आन।
मो रसना करिबो करौ, याही रसको पान॥

॥ पद ॥ ३६ ॥

करौ मो रसना यहि रस पान।
लाड़िली लालन कौ मधु अमृत या बिन अचौं न आन॥

याही छक में छके रहौं दृग अहो निसा उनमान।
मुदित रहौं नित श्रीहरिप्रिया को गाय गाय गुनगान ॥३६॥

उन्मान=प्रायः। पुनः श्रीहरिप्रियाजी कहने लगी :—

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति का यश अमृत स्वरूप है। मैं यह चाहती हूँ कि इस अमृत को छोड़कर और किसी रस का पान न करूँ। मेरी रसना सदा इसी रस का पान करती रहे।

॥ पद ॥

श्रीलाड़िली लाल की सभी लीलाएँ अमृत स्वरूपा हैं। श्रीहरिप्रियाजू कहती है कि प्रिया-प्रीतम की मधु अमृत लीलाओं के बिना मैं और किसी अमृत का आस्वादन न करूँ (यहाँ-"मधु" लिखने का तात्पर्य मान, विरह, तथा भ्रम आदि लीलाओं का परिहार करने से है)। इन रसिक दम्पति को जो मधु-अमृत पान से छके हुए हैं इनकी तृप्ति देख-देख कर मेरे नेत्र प्रायः रात-दिन इसी तृप्ति से तृप्त होते रहें। मैं श्रीहरि एवं प्रिया के गुणों को गाय-गाय कर सदा प्रसन्न होती रहूँ।

॥ दोहा ॥

नैन बैन अरु श्रवन उर, कर पद सिर सब अङ्ग।
मो चित नित लगि रहौ यहाँ, प्रिया सङ्ग रस-रंग॥

॥ पद ॥ ३७ ॥

मो चित लगौ नित इहि ठाम प्रियाजू के काम।
नैन राधे बसो मूरति बैन राधे नाम॥
श्रवन राधे सुजस कीरति हृदय में विश्राम।
कर लगौ परिचरिया हू में पद लगौ परिक्राम॥
मधुप ह्वै मन रमौ मो इहि विपिन में अभिराम।
टरहु जिन इनि ठौर हू तें अहु निसा सब जाम।
चरन-रज श्रीहरिप्रिया की करौ सिर पर धाम॥३७॥

श्रीहरि प्रिया जू पुनः प्रार्थना करती हुई कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

मेरे नैंन, बैन, श्रवण, हृदय, कर, पद, शिर तथा चित्त आदि सब अङ्ग उन श्रीप्रियाजू की सेवा में नित्य लगे-रहैं, जो लालजू के रस–रंग से नित्य रंजित रहती हैं।

॥ पद ॥

मेरा चित्त मेरी सब इन्द्रियों सहित प्रियाजू की टहल में इन-इन जगहों में नित्य लगा रहे। मेरे नेत्रों में सदा श्रीस्वामिनी जू की ही मूर्ति बसै और जिह्वा से उन्हीं का नाम लेती रहूँ। अपने कानों से श्रीप्रिया जू के यश को ही सुनती रहूँ, और हृदय में उन्हीं को विराजमान कराऊँ। मेरे हाथ उन्हीं की सेवा में लगे रहें। मैं उन्हीं की विविध परिचर्या में रत रह कर उनके चारों ओर परिक्रमा देने की भाँति घूमती रहूँ। मेरा मन रूपी भ्रमर इस वृन्दाबन की विविध प्रकार की कुञ्जों को देख-देख कर आपके सुख विधान के लिये विविध प्रकार के मनोरथ करता रहे। रात-दिन आठों प्रहर मेरे विविध अङ्ग उपरोक्त प्रकार से आपकी सेवा में लगे रहैं। इनसे इनको कभी भी उपराम न हो। श्रीहरि एवं प्रिया की चरण-रज सदा मैं अपने मस्तक पर धारण करती रहूँ।

॥ दोहा ॥

गुन तिहरौ गाऊँ सदा करत रहौं परिचारि।
मो पर अनुग्रह यहि करौ, करुनानिधि सुकुँवारि॥

॥ पद ॥ ३८ ॥

करुनासिन्धु कृसोदरि प्यारी कलबैंनी सुकुँवारि हो।
मेरौ तन मन धन सर्बस लै वारि वारि देउँ डारि हो॥
मो पर करौ अनुग्रह एही मैं आज्ञा अनुसारि हो।
यह पाऊँ गाऊँ गुन तिहरौ रसना सदा उचारि हो॥
अननि होय अनुराग सहित नित करत रहौं परिचारि हो।
श्रीहरिप्रिया राखि सिर ऊपर ढरौं यही रस ढारि हो॥३८॥

परिचारि=परिचर्य्या। कल बैनी=मधु भाषणी। श्रीहरिप्रिया जू पुनः कहती हैं :–

॥ दोहा ॥

हे करुणा निधि सुकुमारि श्रीस्वामिनीजू! मैं सदा यही चाहती हूँ कि आपका

गुण सदा गाती रहूँ और आपकी टहल सदा करती रहूँ।

॥ पद ॥

हे करुणा सिन्धु कृशोदरी जू, हे प्यारी जू हे मधु-भाषणी सुकुमारि जू ! मैं आप की बलिहारी जाऊँ। मैं अपना तन मन धन सब बार–बार आप पर न्योछावर करती हूँ। मैं सदा आपकी आज्ञा का पालन करने वाली हूँ। मुझ पर यह अनुग्रह करें कि मैं आपके गुणों का अपनी जिह्वा से सदा गान करती रहूँ। मैं अनन्य होकर अनुराग-सहित नित्य आपकी परिचर्य्या में लगी रहूँ। मेरे शिर पर सदा श्रीहरि की प्रिया स्वामिनी जू हैं, इसी अभिमान से मैं सदा निश्चिन्त रहती हूँ। आप मुझ पर ऐसा अनुग्रह करें जो मैं इसी रस का सदा आस्वादन करती रहूँ।

॥ दोहा ॥

जिनकी दया सुदृष्टि की, वृष्टिहि करै निहाल।
सो प्यारी मो पर ढरौ, प्रानन की प्रतिपाल॥

॥ पद ॥ ३६ ॥

प्यारी जू प्रानन की प्रतिपाल।
जिनकी दया सुदृष्टि वृष्टि करि पल में होत निहाल॥
तन मन परम पुष्ट पन पावै लावै रंग रसाल।
श्रीहरिप्रिया प्रेम रस बाढ़े काढ़े दुख ततकाल॥३६॥

निहाल=कृत-कृत्य। श्रीहरिप्रियाजी पुनः कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

प्राणों की प्रतिपाल वह प्यारी जू मुझ पर सदा कृपा करें, जिनकी दया की दृष्टि की वृष्टि से हम सखियाँ सदा निहाल होती रहती हैं।

॥ पद ॥

हे प्यारी जू आप मेरे प्राणों की सदा रक्षा करने वाली हैं। जिनकी कृपा की दृष्टि की वृष्टि से एक क्षण काल में सब निहाल हो जाते हैं अर्थात् कृपा के भाजन हो जाते हैं, तन-मन सब पुष्ट हो जाते हैं, और रस-रंग से रंजित हो जाते हैं। जिनकी कृपा-दृष्टि से श्रीहरि एवं प्रिया का प्रेम-रस बढ़ता रहता है और उसके विरह जन्य दुःख निवारित हो जाते हैं वही स्वामिनि जू मुझ पर सदा कृपा करें।

॥ दोहा ॥

अङ्ग अङ्ग सोभा सहज सुख, बाढ़त रहु निसि भोर।
इहि बानिक बनिठनि सदा, मो मन जुगलकिसोर॥

॥ पद ॥ ४० ॥

मो मन बसो जुगलकिसोर बने यों निसि भोर ॥टेक॥
बदन-चन्द प्रकास पूरन नैंन जुगल सरोज॥
नासिकाधर चिबुक छबि लखि होत है हिय चोज।
ग्रीव उरज सुबाहु सुन्दर अंगुरी नख लाल॥
उदरत्रिवली रोम राजी नाभि गहर सुढाल।
जघन जंघा पर लसैं अति छीन-सी कटि दाम॥
जानु जंघा पिंडुरी पद अंगुरी अभिराम।
क्रीट सिर कच लटैं छूटी बँक भौंह मरोर।
मुक्तलर बैंदा लसैं सुभ श्रवन भूषन ओर॥
नासिका बेसरि सुमुक्ता बिम्ब ओठनि आय।
मनहुँ श्रवत सुचन्द अमृत बून्द छबि ठहराय॥
कण्ठ भूषन कनक के खचि हीरा मानिक लाल।
मुक्त-मनि पुनि कनक कुसुमनि गुही सोहति माल॥
भुजबन्ध चूरी सुभग कंकन मुद्रिका नग जोति।
ललित कोमल मुकुर सोभा जगर मगर सी होति॥
किंकिनी कटि पायँ नूपुर झीन सुर झनकार।
मनहुँ हंसिनि निरखि छौना बोलि एकहिं बार॥
झीन पट में दीपति दुति कहा दामिनी घन जोति।
उरज अँगिया लाल कसबी लहक लहँगा होति॥
बोल पिक गति हंस राजै मत्त गज-गति गौन।
नहिंन सोभा पटतरैं लखि थकित तीनहुँ भौन॥

श्रीहरिप्रिया की ललित छबि कबि कौन बरनै जाहि ।
नित्य निकट निहारिये छिन टारियै नहिं ताहि ।।४०।।

कस्वी=कसी हुई अथवा रेश्मी । श्रीहरिप्रिया बिरदावली गान करती हुई कहती हैं :—

।। दोहा ।।

मेरे मन में युगल किशोर की बनी ठनी यह झाँकी सदा विराजमान रहे, जिनके अङ्ग-अङ्ग से स्वाभाविक प्रेम अहर्निश वर्धमान होता रहता है (और जो इस समय पर परस्पर अंसों पर भुजदण्ड रख विराजमान हैं) ।

।। पद ।।

मेरे मन में युगल किशोर की यह झाँकी रात-दिन इस प्रकार से बसी रहे :— श्रीप्रियाजू का मुखारविन्द पूर्ण चंद्रमा सरीखा प्रकाशमान है और नेत्र युगल कमल सरीखे सुशोभित हैं । इनको देखकर तथा इनकी नासिका, अधर बिम्ब तथा चिबुक की शोभा देखकर हृदय में बार बार देखने का चाव बढ़ता है । इनकी ग्रीवा, वक्षस्थल, सुन्दर भुज दण्ड, अँगुलियाँ तथा वे नख पक्तियाँ जो महिन्दी के रङ्ग से लाल रञ्जित हैं तथा उदर, त्रिवली, रोम राजि और गम्भीर नाभि कमल देखकर हृदय में ललक बढ़ती है । इनकी जधन, जंघा जिन पर क्षुद्र घंटिका सुशोभित हैं, जानु, पिण्डरी और चरण कमलों की अंगुलियाँ देख देख कर मेरे हृदय में यह चाव बढ़ता रहता है कि मैं सदा इन अंग प्रति अंगों को देखती रहूँ । श्रीलालजू के मस्तक पर क्रीट, छुटी हुई अलकावली उनकी बाँको भोंह की मरोर, लटकी हुई मोतियों की लड़ें, मस्तक पर सुशोभित बेंद और कानों के कुण्डल देखकर मेरे हृदय में देखने का चाव बढ़ता है । इनकी नासिका के अग्रभाग में वह वेसर का मुक्ता जो होठों के ऊपर झूमता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानों श्रीलालजी के मुख चन्द्रमा से अमृत की बून्द टपक रही हो जो कि प्रियाजू की छवि को देखकर गिरने से वहाँ की वहाँ रुक गई हो । श्रीलालजू का कण्ठ सोने के उन आभूषणों से सुसज्जित है जो हीरा माणिक लाल से जटित हैं । इनकी मोहन माला, मोतियों अनेक प्रकार की मणियों तथा स्वर्ण के फूलों से गुथी हुई है । (अब श्रीप्रियाजू का भुज दण्ड जो इस समय लालजू के अँश पर विराजमान है उसका वर्णन करते हुए कहते हैं) प्रियाजू का वह हस्त कमल जिसमें भुजबन्ध, नील मणियों की चूड़ियाँ, सुभग, कंकण सुशोभित हैं । और जिसकी अँगुलियों में अँगूठियों के नगों की ज्योति झलमला रही है ।

(अब श्रीलालजू के ललित कोमल हस्त का वर्णन करते हैं जो प्रिया जू की ओर है) यह हस्त कमल श्रीप्रियाजू की रूप माधुरी की छटा से जगमगा रहा है। लालजू की कटि की किंकिणी और उनके चरणारविन्दों के नुपुर इस प्रकार से झँकृत हो रहे हैं मानों किंकिणी स्थानापन्न हंसनी और नुपुर स्थानापन उसके बालक परस्पर देखकर एक ही बार क्वणित क्वणित शब्द कर रहे हों। प्रिया प्रीतम बहुत ही झीना वस्त्र धारण किये हुए हैं इसलिये उनकी गौर श्याम छटा फूट फूटकर इनके वस्त्रों से बाहिर आ रही है। इस छटा को देखकर घन और दामिनी लज्जित होती हैं। स्वामिनीजू के ऊरोजों पर रेशमी लाल अंगिया कसी हुई है। और कटि पर सुन्दर लहेंगा सुशोभित है इनके मधुर भाषण के सामने कोकिल का बोलना इनकी मन्द गति के सामने राज हंसों का चलना और झूमी हुई चाल के सामने मत्तगज गति तृस्कृत होता है। इन दोनों की रूप माधुरी के सामने देव लोक, भूलोक तथा रसातल तीनों लोकों की सभी उपमाएें तुच्छ प्रतीत होती हैं। श्रीप्रिया प्रीतम की इस ललित छवि को कौन ऐसा कवि है जो वर्णन करने में समर्थ हो। श्रीहरिप्रिया सखी जी कहती हैं, कि मैं तो यही प्रार्थना करती हूँ कि उपरोक्त छवि वानिक को मैं अत्यन्त निकट रहकर निहारती रहूँ और यह झाँकी मेरे हृदय और आखों से एक क्षण काल के लिये भी दूर न हो।

॥ अनुरागिनि धन्यभागा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

तो सों कहा दुराव तू, हिय हित समझनि हारि।
न्याय कहत तोसों सबै, श्रीहरिप्रिया सहचारि॥

॥ पद ॥ ४१ ॥

कहा तोसों कहों मो हिय हित की बात।
कहि नहिं आवत ए सखी री कहत कंठ रुकि जात॥
निसिबासर लगियै रहै री मो उर एही टेक।
हौं हिलि प्रिया होइ जाऊँ कै प्रिया हौं मिलि होइ रहौं एक॥
जब देखों जब दीखहीं री सदा दृष्टि अनुकूल।
बरसत सरसतहीं रहै ज्यों सूरज रसकौ मूल॥
निमिष न छबि नैनान तें री न्यारी होय सकाय।

ज्यों आँखिन में पूतरी त्यों रहत सदा सुखदाय ॥
तोसों कहा दुराइये तूं हिय हित समझनिहारि ।
न्याय कहत तोसों सबै श्रीहरिप्रिया निज सहचारि ॥४१॥

(चतुर्थ वाक् विलास)

अनुरागिनि धन्य भागा मध्याभास=रागधना श्री । न्याय=ठीक ठीक । सच्ची-बात । टेक=रट । श्रीलालजू कहने लगे :—

॥ दोहा ॥

हे श्रीहरिप्रिया सखी ! तुझसे हम दोनों की कौनसी बात छिपी हुई है ? आप हमारे हृदयों के प्रेम को समझने वाली हो । इसलिये मैं अपने हृदय की सब बातें ठीक ठीक तुझसे कहता हूँ ।

॥ पद ॥

मैं अपने हृदय की प्रेम की बातें तुझ से क्या कहूँ ? कुच्छ कहने में नहीं आती है । कहते कहते मेरा कण्ठ रुक जाता है । मेरे हृदय में रात दिन यही रट लगी रहती है कि किसी तरह हम दोनों मिलकर एक हो जावें । या तो मैं प्रियाजू में मिल जाऊँ या प्रियाजू मुझ में मिल जावें । जब भी मैं प्रियाजू की ओर देखता हूँ तब ही मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी दृष्टि मुझ पर अनुकूल है । जैसे सूर्य नारायण ही वर्षा के मूल कारण हैं । क्योंकि वही अपनी किरणों द्वारा पहिले जल को खेंचते हैं फिर वर्षा करते हैं, एवं प्रकार से वे सूर्य नारायण तरुलता आदियों को अपनी राशिमियों द्वारा जीवन दान देते रहते हैं । इसी प्रकार श्रीप्रियाजू ही रस वर्षा के मूल कारण हैं, क्योंकि वही मुझ रस स्वरूप का आकर्षण करके अपनी कृपा दृष्टि की वर्षा करती रहती हैं और एवं प्रकार से समस्त निकुञ्ज विश्व को सरसाती रहती हैं । मेरी आँखों से मेरे प्यारे की छवि एक क्षण काल के लिये भी अलग नहीं हो पाती हैं, वह मेरी आँखों में पुतलियां होकर सदा निवास करती हुई सुख प्रदान करती रहती हैं । हे श्रीहरिप्रिया ! तुम तो हमारी निज सहचरी हो, तुम्हारे से क्या छिपाव है । तुम तो हमारे परस्पर के प्रेम को भली प्रकार समझने वाली हो, इसलिये मैंने अपने हृदय की सच्ची सच्ची बात तुम से कह दी है ।

॥ दोहा ॥

अङ्ग अङ्ग सोभा सिन्धुको, किहिं बिधि पार लहोंव ।
जाति समानो रूप में, यह छबि क्योंर (व) लखोंव ॥

॥ पद ॥४२॥

सखी री ! यह छबि क्योंर लखइये ।
अङ्ग अङ्ग सोभा को सागर उलँघि पार क्यों जइये ॥
जिहिं सुठौर मन एक लगत है तिहीं जु ठौर सुसमइये।
संगी होय नैंन तहाँ लागत गलित रूपमय छइये ॥
द्दगनि बिलोकि भोंह दिसि चाह धीर न ए ठहरइये ।
श्रीहरिप्रिया स्वरूप समानो कहौ जु काहि कहइये ॥४२॥

रलखौव=रल्लकौव=देखना (रलक का अर्थ कोष में पलक लिखा है जिसका अपभ्रंश रलख है । यहाँ पलक उठाकर देखने से तात्पय है) गलित रूप=रूप की छटा। खइये=खेकर पार होना लालजू फिर कहने लगे :—

॥ दोहा ॥

श्रीस्वामिनी जू के अङ्ग प्रत्यङ्ग में शोभा के सिंधु बह रहे हैं इसलिए इनकी समस्त अङ्ग की रूप माधुरी के अवलोकन में मैं किस प्रकार समर्थ हो सकता हूँ । ज्यों ही मेरी आँखें किसो अङ्ग विशेष को देखकर दूसरे अङ्ग की रूप माधुरी को देखने के लिए प्रवृत्त होती हैं त्यों ही वह पहले अङ्ग की माधुरी में इस प्रकार लीन हो जाती हैं कि चेष्टा करने पर भी मैं उनको दूसरे अङ्ग की माधुरी में नहीं ले जा पाता हूँ ।

॥ पद ॥

हे सखी, प्रियाजू के अङ्ग-प्रत्यङ्गों में शोभा के सागर बह रहे हैं इसलिए इस रूप माधुरी को मैं किस प्रकार पार हो सकता हूँ। क्योंकि जिस अङ्ग की रूपमाधुरी को देखने के लिए मेरा मन जाता है उसी रूप माधुरी में ही मेरा मन लीन हो जाता है, फिर मेरे नेत्र भो मन के साथ वहीं पहुँचते हैं परन्तु उस अङ्ग की रूपमाधुरी में वे भी वहाँ के वहाँ ठिठक जाते हैं। द्दग और भौंहों की अत्यन्त समीपता हैं, तो भी जब मैं प्रियाजू के नेत्र कमलों की रूप माधुरी को देखकर उनकी भौंह देखने के लिए प्रवृत्त

होता हूँ तो मेरे नेत्रों को इतना भी धीरज नहीं रहता कि वे नेत्रों से भौंह तक जा सकें। हे श्रीहरि प्रिया सखी श्रीप्रियाजू की रूप माधुरी में मेरा मन उपरोक्त प्रकार से समाया हुआ है, मैं क्या कहूँ कुछ कहते नहीं बनता।

॥ दोहा ॥

कल न परै पल बिन लखैं, अद्‌भुत रूप अनूप।
जो अँग देखत नैंन भरि, होत नैंन वहि रूप॥

॥ पद ॥ ४३॥

बिन लखे कल न परै इहि रूप।
निरखि निरखि जीजै रस पीजै अद्‌भुत अतिहिं अनूप॥
नैंन भये अङ्ग अङ्ग की मूरति सूरति सरस स्वरूप।
श्रीहरिप्रिया प्रान धन जीवनि प्रेमपरा परभूप॥४३॥

प्रेम परापर भूप=परा प्रेम अर्थात श्रेष्ठ प्रेम से भी परे जो प्रेम है उसके मानो राजा। प्यारे फिर कहते हैं:—

॥ दोहा ॥

प्यारी जू का अद्‌भुत अनुपम रूप देखे बिना मुझे कल नहीं पड़ती है परन्तु मैं उसको देख नहीं पाता हूँ, क्योंकि जिस अङ्ग को मैं आँख भरकर देखने की चेष्टा करता हूँ, मेरी आँखें तद्रूप हो जाती हैं।

॥ पद ॥

प्यारी जू की अद्‌भुत अनुपम रूप माधुरी को मैं देख २ कर जीता हूँ और इसी रूप माधुरी द्वारा रस पान करता रहता हूँ। इसलिए प्रियाजू के अङ्ग प्रत्यङ्गों को देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ती है। परन्तु ज्यों ही मैं देखने की चेष्टा करता हूँ त्यों ही मेरे नेत्र प्यारी जू के अङ्ग प्रत्यंग में समाकर उनही के अङ्गों की सरस मूर्ति बन जाते हैं। हे श्रीहरिप्रिया प्यारी जू ही मेरी प्राण जीवन धन हैं। और वे ही श्रेष्ठ प्रेम से भी जो परे प्रेम है उसके चक्रवर्ती सम्राट स्वरूपा हैं।

॥ दोहा ॥

सोंह तिहारी मोहिं अहु, जो मैं कहौं जु राखि।
कृपा-दृष्टि ही चहत नित, और न उर अभिलाखि॥

॥ पद ॥ ४४ ॥

एक मैं कृपा सुदृष्टि चहौं।
सोंह तिहारी मोहिं अहो जिय जो मैं राखि कहौं।
जब तुम चितवत मो तन के तन तब सब सुखहिं लहौं।
श्रीहरिप्रिया नाउँ तेरे बिन और कछू न चहौं ॥४४॥

नाउँ==नाम। अब लालजू प्रियाजू के चरण कमलों को छूकर शपथ खाकर कहते हैं।

॥ दोहा ॥

हे स्वामिनी जी, यदि मैं आप से छिपाकर कुछ कहता हूँ तो मुझे आपकी सौगन्ध है। मैं केवल आपकी कृपा दृष्टि ही चाहता हूँ मेरे मन में और कोई अभिलाषा नहीं है।

॥ पद ॥

मैं केवल आपकी कृपा दृष्टि ही चाहता हूँ इसके अतिरिक्त यदि मेरी कुछ और अभिलाषा हो तो मुझे आपकी सौगन्ध है। जब आप मेरी ओर कृपा भरी दृष्टि से देखती हो तो सब प्रकार के सुखोंका लाभ मुझको हो जाता है। हे श्रीहरि को प्रिया स्वामिनीजू, आपके नाम के बिना मैं और कुछ नहीं चाहता हूँ।

॥ दोहा ॥

रहों टहलनी महल में, होइ अहो निसि जाम।
मैं माँगत हों यह सदा, जो तुम पुरवहु काम ॥

॥ पद ॥४५॥

जो तुम पुरवहौ मन काम।
तो मैं माँगत यही निसि दिन छिन न बिसरों नाम।
रहौं टहलनी महल में ह्वै निरखि छबि अभिराम ॥
श्रीहरिप्रिया हित बात सुनि सुनि धरौं निज हिय धाम ॥४५॥

॥ दोहा ॥

अहो निशायाम=रात्रि दिन सब समय। लालजू फिर कहने लगे :—
जो आप मेरी अभिलाषाओं को पूर्ण कर दें तो मैं दीन होकर यही मांगता हूँ,

कि मैं आपके महल की एक टहलनी होकर रात दिन आपकी सेवा करता रहूँ।

॥ पद ॥

जो आप मेरे मन की अभिलाषा को पूर्ण कर दें तो मैं ये माँगता हूँ कि रात दिन आपके नाम को क्षण काल के लिए भी न बिसारूँ और आपके महल की टहलनी होकर आपकी रूप माधुरी को निहारता रहूँ। जो आप श्रीहरिप्रिया सखी से प्रेम की बातें करें उन्हें मैं सुनूँ और चुन २ कर हृदय में धारण करता रहूँ।

॥ दोहा ॥

चितवत तुव मुखचन्द्र छबि, परत पलैं बिचि आनि।
अहो कुँवरि करुनामई, बितवें बरष समान॥

॥ पद ॥४६॥

प्रानन के आधार मेरे।
अहो कुँवरि करुनामई स्वामिनि रहौ सदा मो नेरे॥
अन्तर आनि परत पल चितवत बितवत वर्ष घनेरे।
श्रीहरिप्रिया यह टेव परी कोउ सूझ न साँझ सबेरे॥४६॥

टेव=आदत। पुनः प्राण प्यारे कहते हैं:—

दोहा—हे प्रिया जू, आपके मुख चन्द्र की शोभा को देखने में जब मेरो पलकें व्यवधान डालती है, वह क्षण काल भी मुझे बरसौं समान व्यतीत होता है।

पद—हे मेरे प्राणों की आधार स्वरूपा, हे करुणामयी स्वामिनी जू आप मेरे सदा अत्यन्त निकट रहें। क्योंकि आपको देखने में मेरी पलकें व्यवधान डालती हैं, तो वह क्षणकाल भी मुझको वर्षों के समान व्यतीत होता है। हे श्रीहरि की प्रिया स्वामिनी जू, आपकी रूप माधुरी देखने की मेरी आदत सी पड़ गई है। मुझको इसके अतिरिक्त यह भी पता नहीं रहता कि कब सवेरा होता है और कब साँझ होती है।

॥ दोहा ॥

जो करुनामय कुंवरि अहु, करुना मो पर है जु।
तौ तुव पद नख चंद्र छबि, टरि न रहै उर ते जु॥

॥ पद ॥ ४७ ॥

सहजहिं रहौ एह सुभाव।
प्रिया पद नख चन्द्रकी छबि टरि न उर ते जाव॥
जो पै करुना करति हौ तौ और चित्त न चाव।
श्रीहरिप्रिया की उरझनी सों रहौ उर उरझाव॥४७॥

लालजू फिर कहने लगे :—

॥ दोहा ॥

हे करुणामयी कुँवरि लड़ैंती जू, यदि आपकी मुझ पर कृपा है, तो मैं यह माँगता हूँ कि आपके चरणारविन्द के नख चन्द्र की छटा मेरे हृदय से कभी भी दूर न हो।

॥ पद ॥

मेरा सहज ही यह भाव बना रहे कि आपके चरणारबिन्द के नख चन्द्र की छटा मेरे हृदय से कभी भी टारी न टरे। जो आपकी मुझ पर कृपा है तो इससे अतिरिक्त मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है, कि मेरा हृदय श्रीहरि की प्रिया अर्थात स्वामिनी जू के प्रेम की उलझन में सदा उलझा रहे।

॥ अनुरागिनि सुरङ्गाङ्गा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

रसभरि हँसि चितवनि जु में, कर्‌यौ कहा नहिं जानु।
मेरौ प्रान अरी अहे, पर्‌यौ प्रिया के पानु॥

॥ पद ॥ ४८ ॥

मेरौ प्रान प्रिया कें बस पर्‌यौ।
सहज सलोनी हँसि चितवनि में ना जानौं कहा धों कर्‌यौ॥
निसिबासर बलि कल न परै पल बिन देखें मुख रसभर्‌यौ।
श्रीहरिप्रिया स्वामिनी सनमुख सर्ब समरपन लै धर्‌यौ॥४८॥

अनुरागिनि सुरङ्गाङ्गा मध्याभास=राग सारङ्ग। पानु=पाणी-हाथ।
श्रीलालजू कहते हैं :—

दोहा ।।

हे सखी, प्रियाजू की रसभरी मुस्कराती हुई दृष्ठि ने मालूम नहीं मुझ पर क्या टोना सा किया जिससे मेरे प्राण सदा के लिए प्रिया जू के हाथों में पड़ गये ।

।। पद ।।

ज्योंही प्रिया जी ने हंसकर रसभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा त्यौंही मालूम नहीं मुझ पर क्या जादू सा पड़ा कि तत्क्षण मेरे प्राण प्रियाजू के वशवर्ती हो गये । हे सखी, मैं तुम्हारी बलिहारी जाऊँ तब से मुझको वह रस भरा मुखचन्द्र देखे बिना रात दिन एक क्षण के लिए भी चैन नहीं पड़ता है । हे श्रीहरिप्रिया सखी तब से ही मैंने स्वामिनी जी को अपना तन मन धन सब कुछ अर्पण कर दिया ।

।। दोहा ।।

परे रहैं नित प्रेम निधि, भई बिधि औरहिं देह ।
सुधि नहिं साँझ सबेर की, कछु अकथ कथा है नेह ।।

।। पद ।।४६।।

कछु अकथ कथा है नेहकी ।
भोर साँझ अरु साँझ भोर कछु सुधि नहिं आवत गेहकी ।।
परे रहैं नित प्रेमसिन्धु में भई और दुति देहकी ।
श्रीहरिप्रिया निरखि नैननि में लगिय रहै झरि मेहकी ।।४६।।

द्युति=चमक=दशा । झरि मेह=प्रेमाश्रु । प्यारे की दशा देखकर श्रीहरिप्रिया जू कहती हैं :—

दोहा—हे सखी स्नेह की कुछ अकथ कहानी है । जो इस प्रेम के समुद्र में पड़ जाते हैं उनके शरीर की कुछ और ही दशा हो जाती है । और उनको साँझ सबेर की सुध बुध भूल जाती है ।

पद—स्नेह की कुछ अकथ कथा है । जो प्रेमसिन्धु में पड़ जाते हैं उनको, भोर साँझ का ज्ञान नहीं रहता है और वे अपने गृह की सुध बुध भी भूल जाते हैं । उनके देह की दशा भी कुछ निराली सी हो जाती है । इस प्रकार के प्रेमियों के नेत्रों से वर्षा की तरह से आँसुओं की झरी लगी रहती है । श्रीहरिप्रिया जी कहने लगी—हे सखी ! तू देख तो सही, प्यारे उपरोक्त प्रकार से कैसे तड़फड़ा रहे हैं ।

॥ दोहा ॥

छाय रहौ छिनहुँ न टरौ, यह छबि मोहन मैन।
लगहुँ बलैया बदन की, निरखि सिरावत नैन ॥

॥ पद ॥ ५० ॥

मोहिं लगहु बलैया बदन की।
अँखियाँ सिरावति रहौ मेरी निसिदिन लखि सोभा सुखसदन की ॥
छाय रहौ छिनहूँ न टरौ छबि रदन छदन दुख कदन की।
श्रीहरिप्रिया प्रेम रस भीनी हँसनि मनोहर मदन की ॥५०॥

सदन=स्थान, घर। रदन छदन=ओष्ठ। दुख कदन=दुखों को दूर करने वाली। प्यारे पद नं० ४८ के विषय को फिर, जारी करते हुए कहने लगे—

॥ दोहा ॥

रति के रूप को भी मोहन करने वाली प्रिया जू की यह छवि सदा मेरे हृदय में छाई रहे। इस रूप माधुरी को देख २ कर मेरे नेत्र सदा शीतल होते रहें! अमङ्गलमयी दृष्टि दोष आदि इन पर कुछ न पड़े। वे सब आपत्तियाँ मुझ पर आ जावें, मैं यह चाहता हूँ।

॥ पद ॥

इनके मुखारविन्द पर यदि किसी की अमङ्गलमयी दृष्टि दोष पड़ जाय तो वह अमङ्गल आपत्ति इन पर न होकर मुझ पर आ जाय, मैं यह चाहता हूँ। मेरे नेत्र सुख-सदन रूप प्रियाजू के मुख कमल की रूप माधुरी को देख २ कर सदा शीतल होते रहें (लालजू की संजीवनी बूटी अधर सुधा हो है इसलिए कहते हैं) मेरे नेत्रों से प्रियाजू के उन ओठों की रूपमाधुरी क्षण काल के लिए भी दूर न हो जिनसे मेरे सब दुखों की निवृत्ति होती है। श्रीहरि की प्रिया श्रीस्वामिनीजू की प्रेम रस से भीजी हुई मुस्कराहट दिव्य कामदेव के मन को भी हरने वाली है।

॥ दोहा ॥

हिलगनि हिय हित की अरी, जानति महरमि जोय।
कहिये जो कहि आत मुख, बात कहन की होय ॥

॥ पद ॥ ५१ ॥

कहिये जो कहन की होय री ।
या अन्तरगति की सुनि सजनी पावत नाहिंन कोय री ॥
निसि तें बासर बासर तें निसि लगी रहत उर ओय री ।
श्रीहरिप्रिया हिलगि हिय हितकी जानति महरमि जोय री ॥५१॥

हिलगनि हित=प्रेम की तड़पन । महरमि=मर्म । ओय=आह । अधर सुधारस के पिपासु लालजू फिर कहने लगेः—

॥ दोहा ॥

हे सखी, मैं तेरे से क्या कहूँ ? वही बात कही जा सकती हैं जो कहने की होती हैं । प्रेम की तड़फन का मर्म तो वही जान सकते हैं, जिनके हृदय में बीतती है ।

॥ पद ॥

हे सजनी ! जो बात कहने की होती है वही कही जा सकती है । इस समय मेरे हृदय में जो बीत रही है उसको मैं ही जानता हूँ और कोई नहीं जान सकता है । आहें भरते २ मेरी सारी रात बीत जाती है और फिर रात से दिन भी इसी प्रकार व्यतीत होता है । हे श्रीहरिप्रिया सखी, प्रेम की तड़पन का मर्म तो एकमात्र वही जान सकता है जिसके हृदय में यह वेदना हो ।

॥ दोहा ॥

चोज मनोज बढ़ावहीं, प्रेम-सनी अतियाँ जु ।
लागत नीकी ललन की, रसभीनी बतियाँ जु ॥

॥ पद ॥ ५२ ॥

रसभीनी बतियाँ ललन की ।
लागति मोहिं सुहाई सजनी ! प्रेमसनी पल पलन की ॥
चोज मनोज बढ़ावत छिन-छिन चितवनि लोचन चलन की ।
श्रीहरिप्रिया हरनि हिय लायक दायक-बंछित-फलन की ॥५२॥

चोज मनोज=काम का वेग ! अतियाँ=अत्यन्त । अपने प्यारे की व्याकुलता को देखकर प्यारी जू कहने लगी :—

॥ दोहा ॥

प्यारे की रस से भीजी हुई और प्रेम से सनी हुई वार्तालाप मुझे बहुत अच्छी लगती है क्योंकि इन्हीं वाक् विलासों से दिव्य काम का वेग बढ़ता है।

॥ पद ॥

प्यारे की रस भीजी बतियाँ मुझे बड़ी सुहाई लगती हैं। इन मीठी २ बातों से क्षण २ में प्रेम चुचाता रहता है। बातें करते करते जब इनके नेत्र किसी विशेष भ्रू-भँगी से चलते हैं तब दिव्य काम का वेग इनसे क्षण २ में उमड़ने लगता है। हे श्रीहरि-प्रिया सखी, उपरोक्त प्रकार की वार्तालाप ही मेरे हृदय को हरने और प्यारे के सब मनोरथों को पूरे करने में समर्थ है।

॥ दोहा ॥

कबहुँ काहु पर कबहुँ कहुँ, रहत झपटि दटि झौंर।
तो तन-बन में अहु प्रिये, भ्रमत जु मो मन भौंर॥

॥ पद ॥ ५३ ॥

तो तन बन मो मन मधुकर मति अति सुन्दरवर,
गहवर जा में रहत सदा मडरानौ महाई।
कबहुँ कदम्ब अम्ब जम्बुनि पर कबहुँ कदलि,
केतकी मधुकनि कबहुँ कमल पर रहत लुभाई॥
चम्पक पर ह्वै सोनजुही केसरि में ररि,
कबहूँक रहत हैं कुब्ज कुन्द केवर उरझाई।
श्रीहरिप्रिया सौरभ-समूह के झपट दपट में,
झूलि निपट हीं रहत सकल सुधि भूलि सदाई॥५३॥

झपट झट झोर=उमड़ २ कर पड़ना। भौंर=भौंरा। गहबर=वक्षोज (गहवर कुञ्ज सो हियों कहावै)–'तालिका' कदम्ब=चरणारविन्द (चरण कदम्ब कहावत चारु) –'तालिका' अम्ब जम्बुनि=वक्षोज, उनका अग्र भाग (उरज अग्र जम्बू मन भावै) –'तालिका। कदलि=जंघा (कदली जंघा जानि अनूप)–'तालिका'। केतकी=पिंडुरी (कही केतकी पिंडुरी रूप)–'तालिका' मधुकन=कपोल (मधुक सुमन संज्ञा कपोल की) –'तालिका'। कमल=हृदय, मुख, कर, पद, नैन आदि (हृदय कमल मुख कमल सुहाये।

कर, पद नैन कमल मन भाये । औरहु कमल भेद बहु बिधि के) –'तालिका' । चंपक= नासिका (चंप बरन पुनि नासा लहिये) –'तालिका' । सौन जुही=प्रियाजू का देखना (जोहन जुही जानिये सही)–'तालिका यहाँ सोनें जुही से गौरांगी का देखने से तात्पर्य है । केशरि=रति विहार (केशरि रति रंग) '–तालिका' कुब्ज=चिबुक (चिबुक रसाल कुब्ज छवि पावें)—'तालिका' । कुन्द=दंतावली (अधर बिम्ब रद कुन्दहि जावें)–'तालिका' केवर=मन (मन केवर)—'तालिका' सौरभ समूह=सुगन्ध की बाहुल्यता । झपट दपट= लपटों की भरमार । श्रीलालजू प्रियाजू की अङ्ग २ की माधुरी पर आसक्त हुए कहते हैं:–

॥ दोहा ॥

हे प्रियाजू, आपके तन रूपी वन में मेरा मन रूपी भौंरा बिहार करता रहता है। कभी किसी अङ्ग की माधुरी पर कभी किसी अङ्ग की माधुरी पर वह उमड़ २ कर पड़ता है ।

॥ पद ॥

आपके तन रूपी बन में मेरा मन रूपी मधुकर सदा भ्रमता रहता है । वह भौंरा कभी आपके वक्षोजों पर कभी चरण कमलों की परिमल पर, कभी बक्षोजों के अग्रभाग की सुवास पर, कभी जंघों की सुगन्धि पर, कभी पिंडरियों की सुवास पर, कभी कपोलों की परिमल पर, कभी २ हस्तकमल, चरण कमल, मुख कमल, हृदय कमल आदि कमलों की सुगन्धि पर आसक्त होकर उमड़ २ कर भ्रमता है और कभी २ वह भौंरा आपकी नासा की सुवास पर, कभी दृष्टि विन्यास की परिमल पर आसक्त होकर रतिरंग विहार में प्रवृत्त होता है । फिर वह मधुकर चिबुक की सुगन्धि पर आसक्त होता हुआ अधर बिम्ब की परिमल पर उलझ जाता है । हे श्रीहरि की प्रिया स्वामिनीजू आपके अङ्ग प्रत्यङ्ग में विविध प्रकार की निकुञ्जें हैं । जिनकी सौरभ से आसक्त होकर मेरा मन रूपी भौंरा वहाँ झूलने लगता है । फिर वह मधुकर विविध प्रकार की सुगन्धों को लपटों की भरमार से इतना किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है कि वह अपनी सुध बुध भी भूल जाता है ।

॥ दोहा ॥

रंचक इनहिं न रुचहिं कछु, बंचक बिभव बड़ेजु ।
ललचोहें लोचन महा, अहै लालके ए जु ॥

॥ पद ॥ ५४ ॥

ललचोहें लोचन लाल के ।

लगे रहत लालच में निसिदिन पगे प्रेम-रस जाल के ॥
रंचक और रुचत नहिं इनको बंचक बिभव बिसाल के ।
श्रीहरिप्रिया सहज सुख साँचे राचे रङ्ग रसाल के ॥५४॥

रंचक=लेशमात्र भी । बंचक=तिरस्कृत करना, छोड़ना । अपने प्यारे की इतनी आसक्ति देखकर प्यारीजू कहने लगी :—

॥ दोहा ॥

"हे सखी मेरे प्यारे के नेत्र कैसे लालच से भरे हुए हैं । जो उन्होंने अभिलाषाएँ व्यक्त की हैं उनको छोड़कर इन्हें लेश मात्र भी अच्छा नहीं लगता है । इन नेत्रों ने अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने के हेतु बड़े २ वैभवों को भी तिलाञ्जलीं दे दी है ।

॥ पद ॥

श्रीलालजू के नेत्र कैसे लालच से भरे हुए हैं । इस लालच का और कोई हेतु नहीं है । वास्तव में ये नेत्र प्रेम से पगे हुए हैं और रस जाल में फँसकर उसी लालच के लिए मेरी ओर देखते रहते हैं । इन लोचनों को प्रेम रस के बिना और कुछ तिलमात्र भी अच्छा नहीं लगता । इसी कारण से इन नेत्रों ने बड़े २ विशाल वैभवों को भी छोड़ दिया है । हे श्रीहरिप्रिया सखी ! ये लोचन नहीं हैं, अपितु ये रस रंग से रंजित वे सांचे हैं जिनमें हम दोनों का स्वाभाविक सुख ढलता है ।

॥ अनुरागिनि गौरमुखी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

रसिकन के हित कारने, बिसद बिहार-निहारि ।
जोरी गोरी साँवरी, अनहोनी परम उदारि ॥

॥ पद ॥५५॥

जोरी गोरी साँवरी अनहोनी परम उदारि हो ।
छैलछबीली लाड़िली प्यारी प्रानन की प्रतिपारि हो ॥
सहज रंग रस रगमगी जगमगी दीपति दिनरैन हो ।
महामूरति आनन्द की अति अद्‌भुत मनहरि लैन हो ॥
नित्यविलास बिलासिनी सुखरासि सदा समरूप हो ।

नवनागरि गुनआगरी अलबेली अमल अनूप हो ॥
एकै तन मन एकही अरु एक प्रान द्वै देह हो।
कहिबे कों ए दम्पति हैं वस्तु एकही एह हो ॥
और कछू न रुचै इन्हैं इनको नित यही अहार हो।
रसिकन के हित कारने श्रीहरिप्रिया बिसद विहार हो ॥५५॥

अनुरागिनि गौर मुखी मध्याभास=राग गौरी। रगमगी=रँजित। जगमगी=प्रकाशमान। विशद=बड़ा। श्रीहरिप्रियाजू विरदावली गान करती हुई कहती हैं:—

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति की यह गौर साँवरी जोरी रसिकों के हित के लिए अहर्निश नित्य विहार में लवलीन रहती है इसलिए इस जोरी जैसी उदारता और जोड़ियों में नहीं है।

॥ पद ॥

गौर साँवरी यह जोड़ी परम उदार है। इसकी उपमा और जोड़ियों से नहीं दी जा सकती है। यह छैल छबेली, लाड़ली और प्यारी जोड़ी परस्पर प्राणों की और हमारे प्राणों की रक्षा करने वाली है। यह स्वाभाविक रस रंग से आर्द्र हो रहे हैं। इसी रस से देदीप्यमान होकर ये कैसे जगमगा रहे हैं। ये दोनों आनन्द की मूर्तियां हैं, अद्भुत प्रकार से एक दूसरे के मनों को हरने वाले हैं। ये सुख की राशि स्वरूपा है। इनका रूप सदा समान रहता है। ये नित्य विलास में आरूढ़ रहते हैं। यह जोरी नव नागरी, सब गुणों की खान, अलबेली उज्ज्वल तथा अनुपम है। इन दोनों के तन मन तथा, प्राण तो एक हैं और देह दो हैं। केवल कहने मात्र में ही ये दम्पति है वास्तव में ये दोनों एक ही हैं। ये अहर्निश नित्य विहार में ही आरुढ़ रहते हैं। इसको छोड़कर इन्हें और कुछ नहीं रुचता है। श्रीहरि एवं प्रियाजू का यह नित्य विहार केवल रसिक जनों के हित के लिए ही प्रवृत्त होता है।

॥ दोहा ॥

अङ्ग अङ्ग सोभा जु पर, वारौं काम करोरि।
सुनी न हूँ देखी कहूँ, ऐसी अद्‌भुत जोरि ॥

॥ पद ॥ ५६॥

सुनीहूँ न देखी ऐसी जोरि जुगल किसोर किसोरि।
अङ्ग अङ्ग सोभा पर सजनी वारौं काम करोरि ॥

नहिं उपमा पटतर दीबे कों देखि थकी मति मोरि।
श्रीहरिप्रिया अद्भूत कलावलि मानहु काढ़ी कोरि ॥५६॥

पटतर=बराबर। कला=कोक कला, सुरति केलि जन्य चातुरी। बलि=मैं बलिहारी जाऊँ। काढी=निकाली। कोरी=किसने री। श्रीहरिप्रिया सखी विरदावली गान करती हुई पुनः कहने लगी :—

॥ दोहा ॥

इन दोनों के अङ्ग प्रत्यंगों की शोभा पर करोड़ों कामदेवों को भी न्यौछावर करके वार फेर कर दीजिये। ऐसी अद्भुत जोरी न तो कभी सुनी न ही कहीं देखी।

॥ पद ॥

युगल किशोर की जैसी यह जोड़ी है ऐसी न तो कहीं सुनी न ही कहीं देखी। इनके अङ्ग प्रत्यंगों की शोभा पर करोड़ों कामदेवों को बारफेर करके डाल दीजिये। इनके बराबर की उपमा ढूँढ़ते ढूँढ़ते मेरी बुद्धि थकित हो गई। मैं बलिहारी जाऊँ श्रीहरि एवं प्रिया में कोक कलाओं की निपुणता अद्भुत है। किसने ये कलाएँ प्रकट की हैं, मैं आश्चर्य चकित हूँ।

॥ दोहा ॥

चिदानन्द घन कुञ्ज में, इक रस बिबि सुकुँवारि।
सहज सदा सुख में सने, बिलसत रास बिहार ॥

॥ पद ॥५७॥

सहज रस-रास-बिलास-बिहार बिलसत बिबि सुकुँवार।
श्रीवृन्दावन चिदानन्दघन मंजु कुञ्ज सुखसार ॥
ललित रंग आभूषन अङ्ग अङ्ग सजे सुधंग सिङ्गार।
जगमग जगमग करत हरत मन मोहै कोटि रति मार ॥
केलि कला कुल मौर जुगलबर रहे छबि छाजि अपार।
नइ नइ गति उपजावति नागरि नागर संग सुढार ॥
सीस मुकुट मुकुटी की ढलकनि झलकनि कुण्डल हार।
अलकनि रलकि रहीं उर ऊपर नूपुर सुर झुनकार ॥

अङ्क भरैं रस ढरैं परस्पर दोऊ परम उदार।
श्रीहरिप्रिया रसिकजन जिय के जीवन-प्रान-अधार ॥५७॥

॥ पञ्चम वाक् विलास ॥

चिदानन्द घन कुञ्ज=श्रीप्रियाप्रियतम के दिव्य मङ्गल विग्रह। विवि=दोनों। रंग आभूषण=सुरतकेलि जन्य चिह्नों से चिह्नित। मञ्जु=मनोहर, आकर्षक। सुधंग=रति केलि नृत्य संबंधी। मोर=मुकुटमणि। सुढार=सुन्दर गति से। अलकनि=अलकावलि, केशपाशि,। रलकि=छिंटकी हुई। श्रीहरिप्रिया सखी रास के रूपक से सुमेरु के शिखर के नृत्य को वर्णन करती हुई कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

श्रीप्रिया प्रियतम के दिव्य मङ्गल विग्रह ही यहाँ चिदानन्द कुञ्ज हैं। इनमें ये दोनों सुकुमार एक रस (नायक-नायिका के अभेद भाव से) तथा स्वाभाविक सुख से सुसज्जित होकर रास बिहार सुख को नित्य विलसते रहते हैं।

॥ पद ॥

इनका सुरतकेलि जन्य रास विलास बिहार ही स्वाभाविक रस है। ये रसिक दम्पति इस रास बिहार को श्रीवृन्दावन चिदानन्द घन कुञ्जों में अर्थात् परस्पर के दिव्य मङ्गल विग्रह स्वरूपों जहाँ अङ्ग प्रति अङ्ग ही सुख सार स्वरूपा सुन्दर कुञ्जें हैं विलास करते रहते हैं। इस समय ये दोनों सुरत केलि जन्य जिह्नों से चिह्नित है, यही आभूषण इनके अङ्गों में जगमगा रहे हैं जिनको देखकर करोड़ों रति कामदेवों के मन मोहित हो जाते हैं। ये दोनों रसिक दम्पति कोक कलाओं के ज्ञाताओं के समूहों के मुकुटमणि हैं। इस समय की इनकी शोभा को कोई वार पार नहीं है। प्रिया जू प्रीतम के साथ नृत्य करती हुई नई २ सुन्दर गतियों को ले रही हैं। नृत्य करते हुए दोनों के मुकुट और मुकुटी कैसे लहलहा रहे हैं, कुण्डलों और हारों की कैसी शोभा हो रही है। वक्षस्थलों पर अलकावलियाँ कैसी झूम २ कर छिटक रही है। नूपुर कैसे झंकृत हो रहे हैं। ये दोनों, परम उदार परस्पर अङ्क भरें हुए किस प्रकार से रसास्वादन कर रहे हैं। श्रीहरि एवं प्रिया इस प्रकार का नृत्य करते हुए रसिक जनों के तो जीवन प्राण आधार-स्वरूपा है।

॥ दोहा ॥

रसिया रसिक सु लालची, चटक-भरयौ चटकील ।
गोरी के गुन लाड़िलौ, रहत सदा गरबील ॥

॥ पद ॥ ५८॥

लाड़िलौ गोरी के गुन गरबीलौ ।
निसिदिन रहत ऐड इतरातौ अलबेलौ अरबीलौ ॥
रसिया रसिक लालची लंपट चटक-भर्यौ चटकीलौ ।
श्रीहरिप्रिया प्रान को प्रीतम मनमोहन मटकीलौ ॥५८॥

चटक=इतराना । ऐंड=बाँका । अरबीलो=हठीलौ रति केलि नृत्य में प्यारी के अत्यन्त लाड़ को पाकर प्यारे इतराने लगे । यह भाव उनकी चटक मटक से प्रकट हो रहा है । इस समय की लाल की रूप माधुरी को वर्णन करती हुई श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

हे सखी तू देख तो सही, प्यारीजू किस प्रकार से रस पान करा रही है तो भी इस रसिक रसिया की तृप्ति नहीं होती है । इस रस के लिए ये कैसे ललचा रहे हैं । यह भाव इनकी इस समय इनकी चटक मटक से प्रकट हो रहा है। गौरांगी के लाड़ को पाकर ये गर्व पुनः कैसे इतरा रहे हैं ।

॥ पद ॥

ये बाँका अलबेला लाल गाढ़ आलिङ्गन किये हुए भी गौरांगी के लाड़ को पाकर निशिदिन इतराता हुआ अधिक रसपान के लिए हठ करता रहता है । और इतराते हुए कैसे चटक मटक दिखला रहे हैं । हे सखी तू देख तो सही प्रिया जू के प्राणों के प्यारे ये हरि कैसे प्रिया जू के और हम सब के मनों को मोहित करते हुए कैसे मटक रहे हैं ।

॥ अनुरागिनि केलिकौमुदी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

प्रान प्रितम की प्रीतमा, स्वामिनि सुखनि सनी जु ।
जय श्री बिहारिनि लाड़िली, रवनी रसिक बनी जु ॥

॥ पद ॥ ५६॥

जय श्रीराधिका रवनी ।
प्रानप्रीतम की प्रिया जय कलस्वनी कवनी ॥
जय श्रीबिहारिनि लाड़िली जय रसिक जोरी बनी।
स्वामिनी सुखसनी श्रीहरिप्रिया दुखदवनी ॥५६॥

अनुरागिनि केलि कौमुदी मध्याभास=कल्यान राग। कलस्वनी=मधुर भाषिणी। कवनी=कमनीय, सुन्दर। लालजू को उपरोक्त प्रकार से सुख प्रदान करने वाली प्रिया जू की विरदावली का गान करती हुई श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

हे प्राण प्रियतम की प्रियतमा स्वामिनी जू ! हे श्रीविहारनि लाड़लीजू, हे रसिक रमणी जू आपकी जय हो। लाल को सुख प्रदान करके आप ही वास्तविक सुख से सनी हुई हो।

॥ पद ॥

हे श्रीराधिका हे रमणी जू, हे प्राण प्रियतम की प्रियाजू, हे मधुर भाषिणी कमनीयजू, हे श्रीविहारनि लाड़लीजू आपकी जय हो। आप और लाल की जोड़ी ही उपयुक्त जोड़ी है। हे स्वामिनीजू, हे प्रिया जू, आप ही श्रीहरि के अतृप्ति जन्य दुखों को दूर करके उनको सब प्रकार से सुख प्रदान करने वाली हो।

॥ दोहा ॥

लागति मोहि अतिहीं प्रिया, प्राननि की प्रतिपाल।
करि राखों एरी सखी ! सहज सदा उर माल ॥

॥ पद ॥ ६० ॥

बाल करि राखों ए सखी री ! मेरे उरकी माल।
लागति है मोहि अतिहिं अलौकिक प्राननिकी प्रतिपाल ॥
आवत है कबहूँक यहै जिये धारि रहौं हिये आल।
श्रीहरिप्रिया सलोनी सूरति अति रसाल रस जाल ॥६०॥

आल=आलय, स्थान, मन्दिर। श्रीलालजू स्वामिनी जू का गाढ़ आलिङ्गन

करते हुए भी अतृप्त रहते हैं, अतः प्यारे अपनी अधीरता को जनाते हुए विपरीत रति की प्रार्थना करते हुए कहते हैं :—

॥ दोहा ॥

हे सखी, श्रीप्रियाजू मेरे प्राणों को पालन करने वाली मुझको अति ही प्यारी लगती हैं। इनको मैं सदैव सहज ही अपने हृदय का हार बनाना चाहता हूँ।

॥ पद ॥

हे सखी, प्यारी जू को मैं अपने हृदय का हार बनाना चाहता हूँ। ये मेरे प्राणों का अलौकिक रीति से पालन करने वाली हैं अतः मुझको बड़ी प्यारी लगती हैं। कभी २ मेरे जी में ऐसी आती है कि मैं इनको अपने हृदय-मन्दिर के अन्तराल में बसाकर रक्खूँ। हे श्रीहरिप्रिया प्यारी जू की यह सलोनी मूरति अत्यन्त रस प्रदान करती हुई मुझको रस जाल में उलझाती रहती हैं।

॥ दोहा ॥

अभिलाषत उर में यही, अहो दया रस दीठि।
ऐसे प्यारे लगत हो, जैसे कोउ नईठि॥

॥ पद ॥६१॥

लागत हो प्यारे प्राननि तें ऐसे जैसे कोउ नईठि।
कह कहात तें बात जात होइ भये बात परिजात,
श्रवन में श्रवन परे परिजात है पीठि॥
मो मन तो मन कै यह जानत जो इन बातनि बीचि बसीठि।
श्रीहरिप्रिया परसि पद भाषत राखत उर अभिलाष,
यही बलि देखत रहौं दया रस दीठि॥६१॥

दीठि=दृष्टि। ईठि=इष्ट, प्यारा। पीठि=पिष्ट, पिस २ कर बसीठि=दूतियाँ अर्थात सखियाँ श्रीलालजी की हृदय मन्दिर में बसाने को अभिलाषा को सुनकर प्यारीजू कहने लगी :—

॥ दोहा ॥

हे दया की दृष्टि से सबको प्लावित करने वाले लाल, मेरी भी यही अभिलाषा

है जो आपने व्यक्त की है। मुझको आप जैसे प्यारे लगते हो ऐसा और कोई प्यारा नहीं लगता।

॥ पद ॥

आपके बराबर मुझको और कोई प्यारा नहीं लगता किंतु यह बात हृदय में ही रखने की है, कहने सुनने से इस बात का मूल्य ही नहीं घटता अपितु वह बात ही चली जाती है। क्योंकि कहने से वह बात कानों में पड़ती है और कान २ में पड़ने से पिस २ कर वह बात समाप्त हो जाती है। इन बातों को या तो मेरा मन जानता है या आपका मन जानता है या ये सखियाँ जानती हैं जो मेरे और आपके बीच में दूतियाँ हैं। यह सुन कर श्रीहरि प्रिया जू के चरण पकड़ कर कहने लगे कि मेरी तो एकमात्र यही अभिलाषा है कि इसी प्रकार मुझ पर दया रस दृष्टि रखें।

॥ दोहा ॥

गौर अङ्ग में झलमलें, स्याम बरन सुभ साज।
देखि री देखि निहारि छबि, प्यारी प्रीतम आज॥

॥ पद ॥ ६२॥

आज प्यारी प्रीतम की उनिहारि देखि री देखि निहारि।
गौर अंग में झलमलाति छबि स्याम बरन सुकुँवारि॥
ज्यों प्रतिबिम्ब आदरस दरसत अमल उद्योत उदारि।
श्रीहरिप्रिया निरखि यह सोभा डारों तन मन वारि॥६२॥

उनहारि=सदृश। आदर्श=दर्पण, आइना। दशति=दिखाई देना। अमल=स्वच्छ, साफ। उद्योत=ऊपर पड़ा हुआ। उदारि=सुन्दर, चमकीला।

पद नं० ६० में विपरीत रति की लालजू ने प्रार्थना की थी जिसको प्यारी जू ने पूर्ण किया। विपरीत रति आरूढ़ विगतवास प्रिया प्रियतम की छवि का वर्णन करती हुई श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं:—

॥ दोहा ॥

हे सखी तू देख तो सही आज प्यारी ही प्रियतम हो गई हैं क्योंकि इस समय श्रीलालजू के श्याम अङ्ग की छटा प्यारी जू के गौर अङ्ग में कैसी झलमला रही है।

॥ पद ॥

हे सखी, तू देख तो सही, आज प्यारी ही प्रियतम के सदृश हो गई हैं। हे सुकुमारी, इस समय श्याम वर्ण की छटा गौर अङ्ग में कैसी झलमला रही है मानों किसी स्वच्छ दर्पण में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब चमचमा रहा हो। श्रीहरि प्रिया जू कहती हैं कि इस शोभा पर में अपने तन मन की वारफेर करके न्यौछावर करती हूँ।

॥ दोहा ॥

स्याम बरन ते गौर तन, ह्वै सोहत रस जाल।
देखि री देखि निहारि सखि, लाल लई छबि बाल॥

॥ पद ॥ ६३ ॥

देखि री लाल लई छबि बाल विराजत गौर बरन रस जाल।
नखसिख सुन्दर रूप तदाकृति ऐंनमैंन अइँ हाल॥
यह अचरज उर एक सखी री हार होइ गई माल।
श्रीहरिप्रिया तेज-तन हिलिमिलि बाढ्यौ रङ्ग बिसाल॥६३॥

रस जाल=रस का फन्दा। ऐन मैन=हूबहू। इहि हाल=इस प्रकार इस समय। तदाकृति=सदृश। उसो विपरीत रति में आरूढ़ श्रीलालजू की शोभा का वर्णन करती हुई श्रीहरिप्रिया सखी कहती हैं।

॥ दोहा ॥

हे सखी! देख तो सही लालजी ने प्रियाजू की छवि को कैसे ग्रहण कर रखा है। मानों एक अनिर्वचनीय रस के फन्दा ने श्यामवर्ण प्यारे को आच्छादित करके गौर बना दिया हो।

॥ पद ॥

देख री, लाल ने ललना की छवि को कैसे ग्रहण कर रखा है। गौरांगी की छटा रूपी रसजाल ने इनका नख से शिख पर्यन्त सब अङ्गों को इस प्रकार से आच्छादित कर लिया है मानो इन्होंने हूबहू लाड़ली जू के रूप को धारण कर लिया हो। इतना ही नहीं, एक आश्चर्य और है कि इनके वक्षस्थल की वनमाला ने भी हरि का रूप धारण कर लिया है। श्रीहरि एवं प्रिया के दिव्य मङ्गल-विग्रहों का तेज एक अद्भुत रङ्ग के विशाल सौंदर्य को प्रकट करता है।

॥ दोहा ॥

प्रतिनिधि श्रीहरिप्रिया की, निरखत नैन सिरांति ।
सब-सुखधाम स्वरूप, श्रीकृष्ण मनोहर कांति ॥

॥ पद ॥ ६४ ॥

जय श्रीकृष्ण कमनीय-कांति ।
प्रिया आनन्द रूप अद्भुत अङ्ग अनुपम भांति ॥
स्यामसुन्दर धाम सब सुख आन को उपरांति ।
प्रियाहरि श्री श्रिया प्रतिनिधि निरखि नैन सिरांति ॥६४॥

प्रतिनिधि=अदल-बदल । सिराति=शीतल होना । उपरान्ति=उदासीनता, विरक्ति । श्रीश्रिया प्रतिनिधि=शोभा युक्त श्रीप्रियाजू के प्रतिनिधि अर्थात् श्रीहरि ।

विपरीत रति आरूढ़ रसिक दम्पति के अदले बदले हुए विग्रहों की झाँकी का वर्णन करते हुए श्रीहरिप्रिया जी पुनः कहती हैं:—

दोहा—श्रीहरि एवं प्रिया की अदलो बदलो हुई झाँकी को देखकर मेरे नैन शीतल होते हैं । इनमें भी सब सुख धाम स्वरूप गौरांगी ने श्रीकृष्ण की मनोहर कान्ति को कैसे धारण कर रक्खा है ।

पद—श्रीकृष्ण स्वरूप धारण किये हुए प्यारी, और कमनीय कान्ति से सुशोभित प्यारे की जय हो । प्यारी, जिन्होंने इस समय अपने प्यारे के आनन्द रूप को धारण कर रक्खा है, उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग अनुपम अद्भुत भांति से सुशोभित हैं । सब सुख धाम स्वरूप श्यामसुन्दर की भी गौरांगी का स्वरूप धारण करके और समस्त सुखों से उदासीनता हो गई है । प्रिया रूप हरि और शोभायुक्त श्रीप्रिया के प्रतिनिधि हरि रूप प्रिया की इस झांकी को देख २ कर मेरे नेत्र सदाशीतल होते हैं ।

दोहा—अलकलड़े अङ्ग अङ्ग अलबेले मोहन मार ।
गौर साँवरे सहज सुख, रंग रँगे सुकुँवार ॥

॥ पद ॥६५॥

सहज सुख रंग रँगे सुकुँवार ।
गौर स्याम अनहोने सलोने दोऊ परम उदार ॥

अलकलड़े अलबेले अङ्ग-अङ्ग सोहन मोहन-मार ।
श्रीहरिप्रिया परस्पर प्रीतम प्राननि के प्रतिपार ॥६५॥

अलकलड़े=अल्+अक=लाड़ करने के योग्य । मार=कामदेव । प्रियतम=प्यारे । प्रतिपार=परस्पर पालन करने वाले । श्रीहरिप्रियाजू विरदावली गान करती हैं :—

॥ दोहा ॥

ये दोनों गौर साँवरे अलवेले सुकमार स्वाभाविक सुख रंग से रञ्जित हैं । वास्तविक यही लाड़ करने योग्य है । इनके अङ्ग प्रति अङ्ग कामदेव को मोहन करने वाले हैं ।

॥ पद ॥

ये दोनों सुकमार स्वाभाविक सुख से रञ्जित हैं । इन गौर श्याम की सुन्दरता की उपमा अनहोनी है । ये दोनों परम उदार, लाड़ करने योग्य, अलवेले और अङ्ग प्रत्यङ्ग की सुन्दरता से कामदेव के मनको मोहन करने वाले हैं । श्रीहरि एवं प्रिया एक दूसरे के प्रियतम और प्राणों के प्रतिपालक हैं ।

॥ अनुरागिनि कर्णकान्ता मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

अहो बिहारिनि कहत बलि, सौंह तिहारी मोहि ।
जो जोई तुम करति हौ, भावत मो सो सो हि ॥

॥ पद ॥६६॥

जोई जोई करति तुम प्यारी सोई सोई मो मन मानें ।
अहो बिहारिनि सौंह तिहारी उर प्रतीति अति आनें ॥
जब तुम नेंक रुखोंई चितवति प्रनय-कोप-रस सानें ।
श्रीहरिप्रिया स्वामिनी जहिं छिन मेरोई जी जानें ॥६६॥

—॥ षष्टम वाक् विलास ॥—

अनुरागिनि कर्णकान्ता मध्याभास=राग कान्हरो । प्रणय कोप=मान युक्त । प्रतीति=विश्वास । आनें=अन्य श्रीलालजू प्रियाजू के चरण पकड़कर कह रहे हैं :—

॥ दोहा ॥

हे विहारिनि लाड़ली जू ! मैं आपकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, मैं आपकी बलिहारी जाऊँ। जो जो कार्य आप करती हैं मुझ को भी वही वही अच्छे लगते हैं।

॥ पद ॥

हे प्यारीजू ! जो जो कार्य आप करती हैं मेरे मन को भी वही वही अच्छे लगते हैं। अहो, विहारिनि लाड़िली जी, मैं आपकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, आप इसके अतिरिक्त अपने हृदय में और किसी प्रकार के विश्वास को बिल्कुल भी स्थान न दें। परन्तु जब आप मानवती होकर तनिक रूखी दृष्टि से मेरी ओर देखती हो, तो हे स्वामिनी जू, उस क्षण में जो मेरे हृदय पर बीतती है, मेरा हृदय ही जानता है, इस बात की श्रीहरि प्रिया जू साक्षी है।

॥ दोहा ॥

बहु भायनिसों भरी नित, सोभा सहज सुढाल।
मोहि सुहाई लगति अति, यह तिहरी गुन-माल॥

॥ पद ॥ ६७ ॥

मोहि सुहाई लागत लाल यह तिहरी गुन-माल।
चाह चोंप चतुरायनि बहु बिधि चितवनि नैंन बिसाल भायनिभरी रसाल॥
अङ्ग अङ्ग आभा अनहोनी सहज सलोनी सुढाल।
श्रीहरिप्रिया प्रान परिपोषन परमप्रेम रसजाल छिन छिन प्रति प्रतिपाल॥

चाह=अभिलाषा। चौप=होड, हठ। आभा=कांति। प्यारे की मान छोड़ने की प्रार्थना सुनकर प्यारी जू कहने लगो :—

दोहा—बहुत प्रकार के भावों से भरी हुई और स्वाभाविक सौंदर्य में ढली हुई आपकी यह गुण माला मुझको बहुत ही सुहावनी लगती है।

पद—हे लाल, आपकी यह गुण-माला मुझको बहुत सुहावनी लगती है जिसमें बड़ी चतुराई से आपकी सुरतकेलिजन्य सुख की अभिलाषा और हठ भरी है। इस समय बातचीत करते समय आपके विशाल नेत्र भी आपके हृदयस्थ भावों की सूचना दे रहे हैं। आपकी बातचीत रसीले भावों से भरी हुई है और स्वाभाविक सौंदर्य में ढली हुई है।

इस समय आपके अङ्ग-प्रत्यङ्गों की अनहोनी कांति इस बात की साक्षी है। इस प्रकार की आपकी वार्तालाप से मेरे और श्रीहरिप्रिया आदि सखियों के प्राण ही पोषण नहीं हाते अपितु हम लोगों को आपकी ऐसी बातें परम प्रेम के रस जाल में फँसा देती है। एवं प्रकार से आपकी इस प्रकार की बातें क्षण २ में हमारे हृदयस्थ भावों का पालन करती रहती हैं।

॥ दोहा ॥

सकल कला पूरन सदा, सहजहिं रहत सुछन्द।
प्रिया तिहारे बदन पर, वारों कोटिक चन्द॥

॥ पद ॥ ६८॥

प्रियाजू तिहारे बदन-चन्द पर कोटि चन्द्र-दुति वारौं।
सकल कला संपूरन लखि लखि वारि वारि फेरि डारौं॥
करन प्रकास परम प्रति छिन-छिन निसिदिन उर अवधारौं।
श्रीहरिप्रिया सहज सुख सोभा निमिष एक नहिं टारौं॥६८॥

सुछन्द=स्वतन्त्र। अवधारौं=धारण करूँ। द्युति=कान्ति। निमिष=पल भर लालजू पुनः प्रार्थना करते हुए कहते हैं :—

दोहा—प्राकृतिक चन्द्रमा तो प्रकृति के नियमों से बँधा होने के कारण स्वतन्त्र नहीं है और सदा पूर्ण नहीं रहता है अपितु घटता बढ़ता रहता है, जबकि आपका मुख कमल पूर्ण चन्द्रमा की तरह स्वाभाविक स्वतन्त्र रूप से सदा प्रकाशमान रहता है। इस लिए हे प्रिया, आपके मुख कमल पर कोटि चन्द्रमाओं को वारफेर करके न्यौछावर कर दूँ।

पद—हे प्रिया जू, आपका मुख-चन्द्रमा सब कलाओं से संपूर्ण रहता है अतः उसे देखकर करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति को उस पर वारफेर करके न्यौछावर कर दूँ। मैं यह चाहता हूँ कि आपका मुखचन्द्रमा जो अहर्निश क्षण २ में एक नवीन सा परम प्रकाश करता रहता है उसको मैं सदा अपने हृदय में धारण रक्खूँ और हे हरिप्रिया सखी उपरोक्त प्रिया जू के मुखकमल की स्वाभाविक शोभा अपने हृदय से पल भरके लिए भी अलग न करूँ।

॥ दोहा ॥

टरहु न टारी अहु निसा, अहु प्यारी सुनि बैंन ।
मृदु मूरति यह रावरी, रहु मो उर करि ऐंन ॥

॥ पद ॥ ६६ ॥

रहौ मेरे उर में ऐंन करि प्यारी यह मृदु मूरति तिहारी ।
टरहु न टारी अहो निसा री वारी वारी वारी ॥
जीय जियारी अति सुकुँवारी निमिष न होहु नियारी ।
श्रीहरिप्रिया सहज सुखकारी सकल लोक उजियारी ॥६६॥

ऐंन=स्थान । पुनः लालजू कहने लगे :—

॥ दोहा ॥

हे प्यारी जू, मेरी प्रार्थना सुनिये आपके कोमल दिव्य मङ्गल विग्रह की छटा रात दिन मेरे हृदय में स्थाई स्थान बना कर रहे और एक क्षण के लिए भी इस स्थान से टारी न टरे ।

॥ पद ॥

हे प्यारी जू, आपका कोमल विग्रह मेरे हृदय में सदा स्थान बनाकर रहे । मैं आपकी बार बार बलिहारी जाता हूँ यह छटा रात दिन मेरे हृदय से टारी न टरे । हे सुकुमारी जू, यह विग्रह मुझको जीवन प्रदान करने वाला है । इसलिए पल भर के लिए भी आप मेरे हृदय से अलग न हों । हे श्रीहरिप्रिया सखी, श्रीप्रियाजू का यह मङ्गल विग्रह स्वाभाविक सब सुखों को प्रदान करने वाला है और इसी से सब लोकों में प्रकाश हो रहा है ।

॥ दोहा ॥

गुननि उजागरि नागरी, सहज सदा सुखकारि ।
प्राननि प्रतिपालक प्रिया, मो संपति सुकुँवारि ॥

॥ पद ॥७०॥

मेरी संपति सहज किसोरी, सदा प्रान प्रतिपालक ओरी ।
गुननि उजागरि नागरि गोरी, सुखसागरि आगरि रस बोरी ॥

जीऊँ निरखत निसा अहो री, पलक ओट बितवै नहिं थोरी।
ज्यों जल मीनऽरु चंद चकोरी, ऐसें लागि रही लगि मोरी॥
श्रीहरिप्रिया उपाय न कोरी, तू ही मो जिय जीवन जोरी॥७०॥

उजागरि=प्रकाश करने वाली। लगि=लगन। जोरी=संजवनी बूंटी (यहाँ छंद के अनुरोध से जरी का जोरी पाठ किया गया है।) आगरि रस=सर्वश्रेष्ठ रस। बोरी=निमग्न। प्यारे फिर कहने लगे :—

दोहा॥

हे नागरी जू, आप से ही सब गुणों का प्रकाश होता है और आप ही स्वाभाविक सुख को सदा प्रदान करती रहती हो। आप ही मेरे प्राणों को प्रतिपालन करने वाली और हे सुकुमारी जू आप ही मेरी सर्वसंपत्ति स्वरूपा हो।

॥ पद ॥

हे किशोरी जू, आप ही मेरी स्वाभाविक संपत्ति स्वरूपा हो, मेरे प्राणों को सदा पालन करती रहती हो। हे नागरी गोरी जू, आपसे ही सब गुण प्रकाशमान होते हैं और आप ही सब सुखों की सागर स्वरूपा हो और आप सर्वश्रेष्ठ रस में सदा निमग्न रहती हो, मैं आपको देखकर ही रात दिन प्राण धारण करता रहता हूँ। मेरी पलक गिरने से जब आप मेरी आँखों से ओझल हो जाती हो तो वह क्षण काल भी मेरे लिए अत्यन्त दीर्घ हो जाता है। मेरी लगन आपमें ऐसी लगी हुई है, जैसे मछली की जल में और चकोरी की चन्द्रमा में। (यहाँ दो दृष्टान्त संयोग और वियोग की दो स्थितियों को व्यक्त करने के लिए दिये गये हैं अर्थात संयोग जैसे चन्द्रमा के साथ चकोरी का और वियोग तड़पन जैसे जल बिना मीन की।) हे श्रीहरि प्रिया सखी, मेरे जीवन की संजीवनी बूटी एकमात्र श्रीप्रियाजू ही हैं। इनसे अतिरिक्त मेरे जीवन का और कोई उपाय नहीं है।

॥ अनुरागिनि अलबेलिकेलि मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

करि कें आस जु और की, तकत न इत उत होय।
तुव पद परछाँही बिना, नहिं भावत मन कोय॥

॥ पद ॥

श्रीराधे ! तो पद पंकज की परछाँहीं रहत सदा मन मेरौ।

करिकें आस और इत उतकी तकत न दाहिन डेरौ ॥
सकल लोक सुख-संपति कौ सुख नाहिं सुहावत नेरौ।
श्रीहरिप्रिया निरन्तर रसना रटत नाम नित तेरौ ॥७१॥

अनुरागिनि अलवेलि केलि मध्याभास=राग अण्डानौ। दाहिनो डेरो=दाऐं-बाये। श्रीलालजी अधीर होकर फिर कहने लगे :—

॥ दोहा ॥

हे प्रिया जू, मेरा मन केवल आपके चरणारविन्दों की आशा को छोड़कर और कहीं भी इत उत नहीं भटकता है। मेरे मन को आपके चरणों की परछाँही के बिना और कुछ भी नहीं सुहाता है।

॥ पद ॥

हे राधे, मेरा मन आपके चरणारविंदों की परछाहीं में ही सदा रहता है। इन चरणों को छोड़कर और किसी की आशा में दाऐं बाऐं इधर उधर नहीं भटकता है। समस्त प्राकृत–चौदह भुवन–और अप्राकृत बैकुण्ठादि लोकों का सुख आपके चरणारविन्दों की परछाहीं के सुख के सामने मुझ को तनिक भी नहीं सुहाता है। हे श्रीहरि की प्रिया स्वामिनी जू, इसी परछाँही को प्राप्त करने के लिए मेरी रसना निरन्तर आपका ही नाम रटती रहती है।

॥ दोहा ॥

रोम रोम रसना होई, तउ नहिं पाऊँ पार।
मो मति अणु महिमा जु तो, अति अगाध कूपार ॥

॥ पद ॥ ७२ ॥

तो अगाध महिमा मो अणु मति एक जीह कैसें गुन गाऊँ।
(प्यारीजू)अहो कृसोदरि कुँवरि किसोरी कौन बिरद दै कें बिरदाऊँ॥
रोम रोम जो रसना होई तउ तेरे गुनको पार नहिं पाऊँ।
श्रीहरिप्रिया स्वामिनि सर्वेस्वरि सदा सीस पर तोहि बसाऊँ॥७२॥

रसना=जिह्वा। अणु=छोटी। कूपार=समुद्र जीह=जिह्वा। विरद=विरदावली=स्तुति। लालजू की अधीरता बढ़ती जाती है। वह फिर कहने लगे।

॥ दोहा ॥

हे प्रियाजू ! आपकी महिमा तो अगाध समुद्र सरीखी है और मेरी बुद्धि बहुत छोटी है, अतः यदि मेरे रोम रोम में जिह्वा हों तों भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकता हूँ।

॥ पद ॥

हे प्यारीजू ! आपकी महिमा तो अगाध है और मेरी बुद्धि बहुत छोटी है इस लिये एक जिह्वा से आपके गुणों का मैं कैसे गान कर सकता हूँ। हे कृशोदरि कुँवरि किशोरीजू किन शब्दों में आप की विरदावली गान करूँ। जो मेरे रोम रोम में जिह्वा हो जायें तो भी आपके गुणों का मैं पार नहीं पा सकता हूँ। हे श्रीहरिप्रिया सखी की स्वामिनी जू ! हे सर्वेश्वरि जू मेरी एक मात्र यही अभिलाषा है कि आपके चरण कमलों से मैं अपने मस्तक को सदा अलंकृत करता रहूँ। या आपके श्रीराधा शुभ नाम से अपने मस्तक को चिह्नित करके सजाता रहूँ अथवा आपके चरणारविन्द की परछाई की रज का अपने मस्तक पर तिलक बनाता रहूँ।

॥ दोहा ॥

प्यारी कहौं कि प्रान तुहि, ज्यारी कहौं कि जीय।
हौं ही कहौं कि हौं तुही, प्रिया कहौं अकि पीय ॥

॥ पद ॥७३॥

पीय कहौं अकि प्रिया कहौं मैं प्रान कहौं अकि प्यारी तोकों।
हौं हि कहौं अकि हौं तूही कहौं जीय कहौं अकि ज्यारी तोकों ॥
जो जो कहौं सो सो सब तूही कहौं कि न कहौं अहारी तोकों।
श्रीहरिप्रिया बरनन कों बानी बिथकित होत महारी तोकों ॥७३॥

ज्यारी=जीवनदान देने वाली। जीय=जीव, आत्मा। हौं ही=मैं ही राधा हूँ। हौं तुही=आप ही मेरा स्वरूप हो। बिथकित=थकित।

प्यारे प्यारी का नाम रटते २ इतने अधीर हो गये कि अब, वे यह भी निश्चय नहीं कर पाते कि कौन सा नाम रटूँ। अतः उस अधीर अवस्था को व्यक्त करते हुए लालजू पुनः प्रलाप करने लगे।

॥ दोहा ॥

हे लड़ैंती जू, मैं आपको प्यारी कहूँ या प्राण कहूँ या जीवन प्रदान करने वाली कहूँ, या आत्मा ही कहूँ, मैं ही तुम हूँ यह कहूँ या तुम ही मैं हूँ यह कहूँ या प्रिया कहूँ अथवा प्रियतम कहूँ, कुछ निश्चय नहीं हो पाता कि आपका कौनसा नाम रटूँ ।

॥ पद ॥

हे लाड़ली जू, मैं आपको पीय कहूँ या प्रिया कहूँ या प्राण कहूँ या प्यारी कहूँ, मैं तुम ही हूँ यह कहूँ या तुम ही मैं हूँ यह कहूँ या आत्मा कहूँ अथवा जीवन प्रदान करने वाली कहूँ कुछ समझ में नहीं आता कि मैं आपका कौनसा नाम रटूँ । अहा ! इन नामों को रहते २ मेरा हृदय विस्मित हो गया है, जो जो नाम आपके रटता हूँ सो सब आप ही हो अतः कहूँ कि न कहूँ तुम ही बताओ कि कौन से नाम से आपकी आराधना करूँ । हे श्रीहरिप्रिया सखी आप ही बताओ इनके नाम रटते २ मेरी वाणी अत्यन्त थकित हो गई है अब मैं क्या करूँ । यह कहकर लाल ने लड़ैंतीजू के चरणारविन्दों को पकड़ लिया ।

॥ दोहा ॥

करुनानिधि नागरि अहो, करुना करहु जु सोइ ।
यह कैंऊ वह कै जु वा, रहौं चरन तर होइ ॥

॥ पद ॥ ७४ ॥

ऐसी करौ करुनानिधि नागरि होइ रहौं कछु तिहारे चरन तर ।
यह कैं ऊ वह कै वा ओही इतने में कोई पाऊँ बर ॥
मन बच क्रम निहचै उर मेरे और कछु अभिलाष न अतपर ।
श्रीहरिप्रिया धन्य पन जानौं मन मानौं मम भाग सु फरफर ॥७४॥

सुफर फर=सुफल फल=भली भाँति से फला । श्रीस्वामिनी जू के चरणारविन्द के तलवों में १९ चिह्न हैं । श्रीचाचा हित वृन्दावन दासजी उनका इस प्रकार से वर्णन करते हैं :—

" बाम तौ अँगूठा मूल जब चक्र विराजमान,
अर्ध पदतें तरजनी लौं रेखा जू धरन है ।
मध्यमा तर ध्वज औ कमल है अनूप भाँति,
तिन तर पुहुप लता नेके वरन हैं ॥

छिगुनियाँ निकट अंकुश वलय छत्र है, अरध विधु मध्य एड़ीजू सुख भरन है।
वृन्दावन हित रूप बन्दि पुनि ध्यान धरि, राधिका कुमरि कौ बाम अस चरन है ॥१॥
दक्षिण ही एड़ी में मीन ध्वज ता पर रथ, परवत कौ चिह्न जो मन कों हरन है।
गदा और शक्ति कौ महाई प्रताप जानि, अंगूठा के मूल शंख मङ्गल करन है ॥
छिगुनी के तरें वेंदी जगमगैं अहा कहा, ताके तरें कुण्डल सु छवि खै परन है।
वृन्दावन हित रूप दाहिने में एते चिह्न, बन्दौं चारु ऐसे राधारानी के चरन हैं ॥२॥"

प्यारी जू के चरण सहलाते हुए ज्यों ही लाल की दृष्टि उपरोक्त इन १९ चरणारविन्दों के तलवों के चिह्नों पर पड़ी, त्यों ही वे अधीर होकर कहने लगे :—

॥ दोहा ॥

हे करुणानिधि नागरी जू,आप मुझ पर ऐसी करुणा करो जिससे कि मैं आपके तलवों के चरण-चिह्नों में से कोई एक हो जाऊँ। इनमें भी मैं निश्चय नहीं कर पाता कि कौनसा चिह्न बनूं।

॥ पद ॥

हे करुणानिधि नागरी जू, आप मुझ पर ऐसी कृपा करें जिससे कि मैं आपके चरणों के तलवों के चिह्नों में से कोई एक हो जाऊँ। मन वचन कर्म से मेरे हृदय में यही दृढ़ निश्चय है, इसके अतिरिक्त मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है (चरण-चिह्नों पर ऊँगली रख रख कर उन्मत्त से होकर लाल कह रहे हैं) इस चिह्न को बनने को कहूँ या उस चिह्न को बनने के लिए कहूँ, नहीं २ पहले वाले को ही बनने के लिए कहूँ। ऐसा कहते समय ही प्यारी जू अमुक चरण चिह्न बनने के लिए आज्ञा प्रदान करें। हे श्रीहरि प्रिया सखी, ऐसा होने से ही मैं अपने आप को धन्य जानूं और यह समझूँ कि मुझको मन माना वर मिल गया और मेरे भाग्य सुफल फले।

॥ अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

नीरजनैनी नागरी, कलबैनी सुकुँवारि।
श्रीहरि प्यारी नित हिये, बसहु सदा सुखकारि ॥

॥ पद ॥ ७५ ॥

जय जय प्रिया प्रान-पिय प्यारी।

जय जय रूप उजारी राधे अति सुन्दर सुकुँवारी ॥
जय जय नीरजनैंनी नागरि कलबैंनी कमला री।
जय जथ श्रीहरिप्रिया हिये नित बसौ सदा सुखकारी ॥७५॥

अनुरागिनि विचित्र शोभा मध्याभास=राग विहागरी। नीरज नैनी=कमल सरीखे नेत्रों वाली। कल वैनी=मृदुभाषिणी। कमलारी=कमलगन्धा। पद्मनी।

श्रीलालजू की अत्यन्त अधीर अवस्था देखकर श्रीहरि प्रिया सखी जी श्रीप्रियाजू से प्रार्थना करने लगी।

॥ दोहा ॥

हे कमल सरीखे नेत्रों वाली नागरी हे मृदुभाषिणी सुकमारी जू आप श्रीहरि की अत्यन्त प्यारी हैं अतः आप उन के हृदय से लगकर उनको सुख प्रदान करें।

॥ पद ॥

हे प्रिया ! प्रीतम को आप प्राणों से भी अधिक प्यारी हो आप की जय हो ! हे राधे ! हे अति सुन्दरि सुकमारीजू आपसे ही सब रूप का प्रकाश है, आपकी जय हो। हे कमल सरीखे नेत्रों वाली नागरिजू ! हे मृदुभाषिणी पद्मनीजू आपकी जय हो। आप हरि की अत्यन्त प्यारी हैं, अतः उनका गाढ़ आलिङ्गन करके उनके हृदय में नित्य वसी रहें, एवं प्रकार से उनको सदा सुख प्रदान करें मेरी यही प्रार्थना है।

॥ दोहा ॥

नवानत मंदिर रसिक जहाँ, रसिक रहसि भरि रंग।
रमत रसिक दोउ परस्पर, रसिक सहचरिनु संग॥

॥ पद ॥ ७६ ॥

रसिकनी श्रीराधा रसिक रँग-भीनौ बिहारी।
रसिक नित्य नवमन्दिर माहीं रसिक रहसि सुखकारी॥
रसिक रसीली बात करत मन हरत परस्पर भारी।
रसिक हितू श्रीहरिप्रिया निहारति रसिक सङ्ग सहचारी ॥७६॥

मन्दिर=निकुञ्ज, मोहन महल। श्रीहरिप्रियाजू की प्रार्थना सुनकर प्यारीजू ने लाल को हृदय से लगा लिया और उनकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण की। एवं प्रकार से

सुखी होकर रसिक दम्पति विलास में प्रवृत्त हुए उसी अवस्था का वर्णन करते हुए श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं :—

दोहा—नव नित मोहन महल में रसिक दम्पति रहसि संबन्धी दिव्य काम से रंचित होकर परस्पर रमण कर रहे हैं और सहचरियाँ उस विहार को (गवाक्षों में से) देख रही हैं।

पद—रसिकनी श्रीराधा दिव्य काम से रंजित श्रीबिहारी के साथ रसिक नित्य नव मोहन महल परस्पर सुख प्रदान करने वाली केलि क्रीड़ा में निमग्न हैं। रसिक दंपति विलास करते समय मीठी २ बातों से एक दूसरे के मनों को अत्यन्त हरण कर रहे हैं इस झाँकी को रसिक श्रीहितू सखीजू और श्रीहरिप्रिया सहचरीजू, अन्य रसिक सहचरियों के साथ देख रही हैं।

दोहा—अति जकर्‌यौ दृढ़ फन्द में, तोर्‌यो नहिं तूटै जु।
तो सनेह-गुन में बँध्यो, मन मो नहिं छूटै जु॥

॥ पद ॥ ७७ ॥

तो सनेह-गुन में बँध्यो मन मो नहिं छूटै।
अति जकर्‌यौ दृढ़ फन्द में तोर्‌यौ नहिं तूटै॥
हितकी हिलग हितू बिना जानै को हियकी।
तुमहीं तें बनि आइ हैं प्रतिपालन कियकी॥
अहो कृसोदरि कामिनी कोकिल-कलबैनी,
सदा सदय देखति रहौं सब विधि सुखदैनी।
श्रीहरिप्रिया रसकें झकोर जिय जात झकोर्‌यौ,
कछु सामर्थ्य न ह्वै सकै मसकाय मरोर्‌यौ॥७७॥

॥ सप्तम वाक् विलास ॥

स्नेह-गुण=स्नेह रूपी रस्सी। हित की हिलग=प्रेम की तड़पन। कृशोदरि=सुन्दरी। कोकिल कल बैनो=कोकिल सरीखी मृदुभाषिणी। सदय=दयासहित, कृपायुक्त। मरोरयौ=मथित किया, मरोड़ा। लाल जू पुनः अधीर होकर कह रहे हैं :—

॥ दोहा ॥

हे प्यारी जू, आपने मेरे मन को स्नेह रूपी रज्जु में इस प्रकार से बाँध लिया है कि वह छुटाने से भी नहीं छूटता है और प्रेम रूपी फंदे में इस प्रकार से फँसा लिया है जो कि तोड़ने से भी नहीं टूटता ।

॥ पद ॥

हे प्यारी जू, आपने मेरे मन को स्नेह रूपी रस्सी में इस प्रकार से बाँध लिया है जो छुटाने से भी नहीं छूटता और प्रेम रूपी दृढ़ फंदे में इस प्रकार से फँसा लिया है जो तोड़ने से भी नहीं टूटता है । मेरे हृदय में इस समय जो प्रेम की तड़पन हो रही है उसको हितू सहचरी बिना कौन जान सकता है । हे हितूजी ! इस स्थिति में आप हो के द्वारा मेरी रक्षा हो सकती है। हे कृशोदरिजू, हे कामिनी जू, हे कोकिल सरीखी मृदु भाषिणी जू, आप ही मुझे सब प्रकार से सुख प्रदान करने वाली हो अतः कृपा भरी दृष्टि से सदा मेरी ओर देखती रहो । हे श्रीहरिप्रियाजू, इस समय मेरा मन रस के झकोर में झकोरा जा रहा है । श्रीप्रियाजू ने मेरे मन को मधुर–मधुर मुसका कर इस प्रकार से मरोड़ा है, कि वह सँभाले भी नहीं संभल पाता है ।

॥ दोहा ॥

स्यामा रामा स्वामिनी, सुखदा नैंन बिसाल ।
राधा प्यारी लाड़िली, प्रिया बिहारिनि बाल ॥

॥ पद ॥ ७८॥

राधा प्यारी लाड़िली किसोरी स्यामा भामा,
प्रिया अलबेली अलकलड़ैती लाड़गहेली ।
नागरी नवीना रम्या रसिका बिहारिनि जू,
बल्लभा बिसालनैंनी सुखदैंनी सहेली ॥
स्वामिनी सरोज-मुखी सुन्दरी सुजानमनी,
स्याम अङ्ग संगिनी सुरंग कनक-बेली ।
प्रीयतमा प्रबीना प्रेमा प्रेयसी परात्परा श्रिया,
हरिप्रिया प्रान जीवनि रस रेली ॥७८॥

रामा=रमण करने वाली। भामा=मान करने वाली। अलबेली=बाँकापन लिए हुए। अलक लड़ैती=लाड़ करने योग्य। लाड़ गहेलीं=लाड़ में निमग्ना। सरोज मुखी=कमल-सदृश मुख वाली। सुजान मनी=चतुर शिरोमणि। सुरंग कनक बेलि=सुन्दर स्वर्ण लता स्वरूपा। प्रेमा=प्रेम करने वाली। प्रेयसी=प्यारी। परात् परा श्रिया=पर से पर लक्ष्मी स्वरूपा। रस रेली=रस को समूह स्वरूपा।

पुरुष जैसे समुद्र में डूबते समय अपनी रक्षा के लिये अनेक नामों को ले लेकर पुकारता है। इसी प्रकार इस समय श्रीलालजू भी रस समुद्र में डूबे जा रहे हैं, अतः श्रीप्रियाजू को अनेक सम्बोधनों द्वारा सम्बोधित करते हुए पुकार रहे हैं। (इस पद में केवल सम्बोधन ही सम्बोधन हैं।)

॥ दोहा ॥

हे श्यामा! हे रामा! हे राधा! हे प्यारी! हे लाड़िलीजू! हे प्रियाजू! हे विहारिनिवालजू! हे विशाल नेत्रों वाली स्वामिनीजू आप ही मुझको सुख प्रदान करने वाली हो।

॥ पद ॥

हे राधा प्यारीजू! हे लाड़िलीजू! हे किशोरीजू! हे श्यामाजू! हे मानवती जू! हे प्रियाजू! हे अलवेलीजू! हे लाड़ करने के योग्य जू! हे लाड़ में निमग्ना जू! हे नागरीजू! हे नवीना रम्याजू! हे रसिक विहारनिजू! हे वल्लभा जू! हे विशाल नेत्रों वाली और सुख प्रदान करने वाली सहेली! हे स्वामिनीजू! हे कमल मुखी सुन्दरी! हे चतुर मुकट मणिजू! हे श्याम अङ्ग संगनीजू! हे सुरङ्ग कनक बेलीजू! हे प्रवीना प्रियतमाजू! हे प्यार करने वाली प्रेमा! हे परसे पर प्रेयसी-प्यारीजू! हे परात परा श्रिया=हे परसे पर लक्ष्मी स्वरूपाजू! हे हरि प्रिया सखी की प्राण जीविनी! हे रस की रली स्वरूपाजू! (आप मेरे प्राणों की रक्षा करो)।

॥ दोहा ॥

राखौं हिय बासर-निसा, या बानिकहि बसाय।
अहो कमल-बदनी-प्रिया, सहज सदा सुखदाय॥

॥ पद ॥ ७९ ॥

कमल बदन प्यारी अहो सुकुँवारी। तेरी या विचित्र छबि पर बलिहारी॥

लागति है सोभा मोहि अति रुचिकारी। नैननकी दैन चैन मैन-मदहारी।
राखौं हिय में बसाय बासर-निसा री। कुँवरि किसोरी प्रानजीवनि अधारी।
अतिहिं कृपाल चिंतवनि या तिहारी। सर्बस धन मेरे मन को महारी।
बिन तोहिं छिन मोहिं बीतै बहुभारी। श्रीहरिप्रिया स्वामिनी सहज सदारी।

वानिक=छवि। मैन=कामदेव अथवा रति। प्यारे की निमग्न अवस्था अब कुछ कम हुई है। श्रीस्वामिनीजू को अपने निकट ही देखकर कहने लगे।

॥ दोहा ॥

हे कमल वंदनी प्रियाजू ! आपका स्वभाव मुझको सदा सुख प्रदान करने का है। मैं यह चाहता हूँ, कि इस आपकी छवि को, सदा अपने हृदय में वसाये रखूँ।

॥ पद ॥

हे कमल वदन प्यारीजू ! हे सुकमारीजू ! आपकी इस विचित्र छवि पर मैं बार बार बलिहारी जाता हूँ। आपकी यह शोभा मुझको बड़ी रुचिकारी लगती है। मेरे नेत्र आपकी रूप माधुरी के दर्शन करके सुखी होते हैं। मैन के मद को हरण करने वाले आपके नेत्रों से सुख मिलता है। हे कुँवरि किशोरीजू आप मेरे प्राणों की जीवन आधार स्वरूपा हो मैं यह चाहता हूँ कि आपको रात दिन मैं अपने हृदय में बसाये रखूँ। आप की यह कृपा भरी चितवन ही मेरे मन के लिये बड़ा भारी सर्व सुधन है। हे श्रीहरिप्रिया की स्वामिनी ! मेरा सदा का यह एक स्वभाव सा पड़ गया है कि आपके बिना क्षणकाल भी मुझको बहुत भारी प्रतीत होने लगता है।

॥ दोहा ॥

उपजीवीहिं जिवाय कें, बाढ़ौ सुजस बिसाल।
जो पै करुणा करति हौ, अहो लाड़िली कृपाल ॥

॥ पद ॥ ८०॥

लाड़िली कृपाल मो पै करुणा जो करिये,
नित हीं रसाल दृष्टि बृष्टि रस ढरिये।
उपजीवी जी जिवाय जस विस्तरिये,
चरन-सरोज मेरे उर पर धरिये॥

अहो अहलादिनि उदार दुख हरिये,
अनुदिना छिन-छिना हिय तें न टरिये।
अपनो सुभाव एसें जैसें अनुसरिये,
विरद बिहारिनि को नाहिंन बिसरिये।
श्रीहरिप्रिया सहज सुख सर भरिये,
कुँवरि किसोरी स्यामा गोरी नागरिये॥८०॥

उपजीवी=दासी वर्ग। जोपै=मुझ जीव पर=दास पर। चरन सरोज=चरण कमल। अनुदिन=सदैव। विरद=प्रशंसा। प्रतिज्ञा। सर=सरोवर=तालाब। रस पिपासू लालजू दीन होकर रस पान के लिये प्रार्थना करते हुए कहते हैं।

॥ दोहा ॥

हे लाड़िलीजू ! दासी वर्गों को जीवन प्रदान करने से ही आप का इतना विशाल यश बढ़ा है, अतः आप मुझ दास पर भी कृपा करें।

॥ पद ॥

हे लाड़लो कृपालु, मुझ दास पर कृपा कीजिये। आप मुझ दीन पर अपनी कृपा भरी दृष्टि से नित्य हो रस की वर्षा करती रहें। आपके आश्रय से ही जिनके जीवन का निर्वाह है उनको जीवन प्रदान करके अपने यश का विस्तार कोजिये। आपके चरण-कमल ही मेरे जीवन का अवलम्ब हैं अतः उनको मेरे हृदय पर धारण कराइये अर्थात विपरीत रति–विलास का सुख मुझे प्रदान कीजिये। हे आनन्द प्रदान करने वाली उदार आह्लादिनी, मेरे अतृप्ति जन्य दुख को हरण कीजिये। आप मेरे हृदय में सदा विराजी रहें, एक क्षण-काल के लिए भी अलग न हों। मुझ दीन की ओर न देखें अपितु अपने सहज कृपालु उदार स्वभाव के अनुसार अनुसरण करें। हे विहारिणी जू, आपकी जो इस निकुञ्ज विश्व में आजीवियों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा है उसे न बिसारें। हे कुँवरि किशोरीजू, हे श्यामा गोरी नागरी जू, हे श्रीहरिप्रिया की स्वामिनी जू, आप सहज सुख अर्थात स्वाभाविक प्रेम की वर्षा से मेरे सूखे हुए हृदय रूपी सरोवर को भरिये।

॥ दोहा ॥

गटक-सुधाकी-सी चटक, मटक-भरी रस-नेह।
मोहिं सुहाई लगति अति, 'लटक लाल की एह॥

॥ पद ॥ ८१॥

मोहिं तो सुहाई लागै लाल की लटक री।
अतिहीं सलोनी अनहोनी रति-रस-भरी,
देखत ही ढरै चखि चटक-मटक री॥
अङ्ग अङ्ग अनङ्ग उमङ्ग उपजोंही ऐसी,
मीठी हू ते मीठी जैसी सुधाकी गटक री।
श्रीहरिप्रिया सुनहु श्रवन सखी री मेरी,
कहति हों तोहिं यह उर की अटक री॥८१॥

गटक सुधा=अमृत की घूंट। चटक-मटक=लाड़ से इतराना। लटक=भोली भोली बातें, टेढ़ी बातें। सलोनी=लावरायतायुक्त। चख=नेत्र-कमल। अनङ्ग-उमङ्ग= दिव्य काम के वेग। उपजों ही=उत्पन्न करने वाली। उर की अटक=हृदय को उरझन।

लाल की दीनता युक्त बातों को सुनकर प्यारी ने उनका गाढ़ आलिंगन किया और वह उनका उद्घट चुम्बन करते हुए कहने लगी :—

॥ दोहा ॥

मुझे लाल की भोली भाली टेढ़ी बातें बहुत सुहाई लगती हैं। लाड़ से इतरा कर स्नेह में भरकर जब ये बातें करते हैं तो बे बातें मुझको इतनी प्यारी लगती हैं मानों मैं अमृत को घूंटे भर भर कर पी रही हूँ।

॥ पद ॥

मुझको लाल की वह भोली २ बाँकी टेढ़ी बातें बहुत सुहाई लगती हैं जो अनहोनी, अत्यन्त लावण्ययुक्त, रति-विलास संबंधी रस से भरी हुई हैं। यद्यपि ये लाड़ से सदा इतराते रहते हैं तो भी मुझको देखते ही अपने नेत्रों की चटक मटक भूल जाते हैं। ये मीठी २ बातें मेरे अङ्ग २ में दिव्य काम की उमङ्गों को बढ़ाती हैं और ये भोली-भोली टेढ़ी बाँकी बातें मुझको ऐसी लगती हैं मानों मैं अमृत को घूंटे भर २ कर पी रही हूँ। हे श्रीहरिप्रिया सखी, आप कान देकर सुनें, एवं प्रकार की बात ही मेरे हृदय को लाल में उलझाती रहती हैं।

॥ अनुरागिनि कन्दर्पकामा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

चतुर-चारु-चूड़ामनी, स्वामिनि हियहरनी जु।
जय सय सुख-संपति-सनी, बर चंपक-बरनी जु ॥

॥ पद ॥८२॥

जय जय चतुरि चूड़ामनी।
चारु चंचल-लोचनी चितहरनि चन्द्राननी ॥
जयति सुख-सौन्दर्य-संपति सुद्ध चम्पक तनी।
स्वामिनी श्रीहरिप्रिया नित सहज रङ्गहि सनी ॥८२॥

अनुरागिनि कन्दर्पकामा मध्याभास=राग केदारो। चतुर चारु चूड़ामणि=बड़े भारी चतुरों के भी शिरोमणि। वर चम्पक वर्नी=श्रेष्ट चम्पापुष्प सरीखी कान्तिवाली श्रीस्वामिनीजू ने लालजू की अभिलाषाओं को पूर्ण किया श्रीहरिप्रियाजू प्रसन्न होकर श्रीप्रियाजू की विरदावली गान करती हुई कहने लगीं :—

॥ दोहा ॥

हे श्रेष्ठ चम्पक पुष्प सरीखी कान्तिवाली स्वामिनीजू आपकी जय हो। आप सब चतुरों की शिरोमणि हो। लालजू तथा समस्त कुञ्जविश्व के मनों को हरन करने वाली हो। आप सब प्रकार की सुख सम्पतियों से युक्त हो।

॥ पद ॥

सब चतुरों की चूड़ामणि स्वरूपा आपकी जय हो। हे चन्द्रा आप अपने नेत्र कमलों की भ्रूभङ्गी से लाल के मन को चुराती रहती हो। हे शुद्ध चम्पक पुष्प सरीखी कान्ति वालो आपने लाल को वश में कर रखा है अतः आप ही सब सुख, सौन्दर्य तथा सम्पति युक्ता हो। हे श्रीहरिप्रिया की स्वामिनीजू ! आप ही लाल सम्बन्धी स्वाभाविक अनुराग से सदा रञ्जित रहती हो।

॥ दोहा ॥

मून्दे तुरतहि जात खुलि, पावत अति अकुलानि।
मेरे नैननि कों अरी, परी कहा यह बानि ॥

॥ पद ॥ ८३॥

कहा यह बानि परी नैननि कों बिन देखे न रहात।
तनक मून्द राखौं हिय हित कै तौव तुरत खुलि जात॥
जो कहु भले करौ ऐसे हीं तौ हू अति अकुलात।
श्रीहरिप्रिया अङ्गसङ्गहि हिलिमिलि चहत एक भयौ गात॥८३॥

अकुलानि=तड़फन। विकलता। गाढ़ आलिङ्गन अवस्था में नेत्र नेत्रों के अति समीप हो जाते हैं इसलिये दर्शनों में वाधा होने लगती है इसी विकलता को व्यक्त करते हुए प्यारे कहते हैं।

॥ दोहा ॥

अरी सखी! मेरे नेत्रों का क्या जाने यह क्या स्वभाव पड़ गया है। जब कभी प्रियाजू के गाढ़ आलिङ्गनानन्द भार से यह थोड़ी देर के लिये मुन्दे से हो जाते हैं परन्तु क्षण काल के बाद ही यह खुलकर अत्यन्त विकल हो जाते हैं।

॥ पद ॥

मेरे नेत्रों का न मालूम यह क्या स्वभाव पड़ गया है प्रियाजू के देखे बिना इनसे नहीं रहा जाता है। गाढ़ आलिङ्गन के हृदयानन्द से अथवा इन नेत्रों के हृदय का हित समझकर अर्थात यह समझकर किये कुछ देर के लिये विश्राम कर लेंगे। मैं इन नेत्रों को कुछ काल के लिये जब बन्ध करके रखता हूँ तो भी यह तुरत ही खुल जाते हैं। इनको खुले देखकर जब मैं कहता हूँ बहुत अच्छा खुले रहो तो भी ये तड़फने लगते हैं। हे श्रीहरिप्रिया सखी! मैं क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता है। ये नेत्र तो प्रियाजू के जिस अङ्ग को देखते हैं उसी में मिलकर तद्रूप होना चाहते हैं।

॥ दोहा ॥

निमिषहु न्यारी नहिं प्रिया, प्यारी लगति अनूप।
मेरे उर में बसी ज्यौं, होइ उरबसी रूप॥

॥ पद ॥ ८४ ॥

मो उर बसी ज्यों उरबसी।
निमिष हूँ नहिं होत न्यारी प्यारी प्यारी लसी॥

होइ अभरन हरन-दुख सब सहज सुखमें रस रसी।
श्रीहरिप्रिया सुनि प्रानहू तें लगति अति अधिक सी ॥८४॥

उर्वशी=विषम वासना। उत्कट अभिलाषा। स्वर्ग वासिनी इन्द्र की एक प्रसिद्ध अपसरा, जिसके प्रेम में पुरुरवा राजा दीवाना हो गया था, जिसकी कथा श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में प्रसिद्ध है। अथवा उर्वशी=एक आभूषण विशेष का नाम है जो गले में पहना जाता है। प्यारे, प्यारी जूका गाढ़ आलिङ्गन किये हुए सखी से कह रहे हैं।

॥ दोहा ॥

प्यारीजू मेरे हृदय में उर्वशी—उत्कट अभिलाषा के रूपमें या उर्वशी अपसरा के रूप में जिसने पुरुरवा राजा को उन्मत्त बना दिया था अथवा उर्वशी एक आभूषण विशेष के रूप में जो सदा गले में धारण किया जाता है, सदा विराजमान रहती हैं एक क्षण काल के लिये भी मेरे हृदय से अलग नहीं होती है इसलिये यह मुझको बड़ी प्यारी लगती हैं।

॥ पद ॥

प्यारीजू मेरे हृदय में उर्वषी की तरह बस रही है। यह एक क्षण काल के लिये भी मेरे हृदय से अलग नहीं होती हैं। प्यारीजू मेरा इस प्रकार से गाढ अलिङ्गन किये हुए है मानो मेरे अङ्ग प्रत्यङ्गो में प्यारी प्यारी ही सुशोभित हो रही हों। मेरे अतृप्ति जन्य दुख को दूर करने के लिये प्यारी जू ने उर्वषी या अन्य आभरणों का रूप ही धारण नहीं कर रखा है अपितु अपने स्वाभाविक प्रेम रस में रसायत होकर वह मुझ को रञ्जित कर रही हैं। हे श्रीहरिप्रिया सखी तू मेरी बात सुन, इसीलिये प्रिया जू मुझको अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी लगती हैं।

॥ दोहा ॥

पूरनचन्द प्रकास मन, हरन सहज-सुख सैंन।
प्रिया तिहारी बदन छबि, लखि चखि पावत चैंन॥

॥ पद ॥८५॥

देखत नैंन पावत चैंन।
प्रियाजू तुव बदन की छबि मोहिनी-मन-मैंन॥
बढ़त हैं बलि जाउँ उर में सहज सुख की सैंन।
श्रीहरिप्रिया प्रकास पूरन-चंद्र चित-हरि-लैंन ॥८५॥

सेंन=सेना, छावनी। प्रियाजू के मुख चन्द्र के दर्शन-सुख का वर्णन करते हुए लालजू कहते हैं :—

॥ दोहा ॥

हे प्रियाजू, आपका मुख पूर्ण चन्द्र की भाँति प्रकाश करने वाला, मेरे मन को हरने वाला और स्वाभाविक सुख का इस प्रकार राशि २ विस्तार करने वाला है मानों कोई सुख की छावनी छाई जा रही हो। इस मुख की छवि को निहार कर मेरे नेत्रों को विश्राम मिलता है।

॥ पद ॥

आपके दर्शन से मेरे नेत्र सुखी होते हैं। हे प्रियाजू, आपके मुखारविन्द की छवि कोटि २ कामदेवों के मन को मोहन करने वाली है आपके मुखारविन्द के दर्शन से मेरे हृदय में स्वाभाविक प्रेम इस प्रकार बढ़ता है मानो उसने मेरे हृदय में कोई एक अनिर्वचनीय सुख की छावनी डाल दी हो। हे श्रीहरिप्रिया, प्रियाजू के मुख की कांति पूर्ण चन्द्रमा के सदृश है जो कि क्षण २ में मेरे चित्त को हरता रहता है।

दोहा—गहि इक टेक अनन्य ब्रत, होय रह्यौ लवलीन।
कुँवरि जो तो रसनिधि महो, रमत जो मो मन मीन॥

॥ पद ॥ ८६ ॥

रसनिधि कुँवरि मो मन-मीन।
रहत निसिदिन रमत जामें होइ अति आधीन॥
एक टेक अनन्य-ब्रत गहि ह्वै रह्यौ लवलीन।
श्रीहरिप्रिया निज नेम उर धरि परि सदा पन-पीन॥८६॥

रस-निधि=रस का समुद्र। पन पीन=पनपना, पुष्ट होना। लालजू अपने हृदय की अनन्यता व्यक्त करते हुए कहते हैं:—

॥ दोहा ॥

हे कुँवरि किशोरी जू, जिस प्रकार मछली एक टेक धारण करके जल में ही रहती है, मेरा मन भी एक ही टेक तथा अनन्य व्रत ग्रहण करके आपके स्वाभाविक प्रेम के इस रस-समुद्र में ही रमण करता रहता है।

॥ पद ॥

हे प्रियाजू, आप रस-समुद्र स्वरूपा हैं और मेरा मन मछली के समान है। जैसे मछली जल में ही रहती है उसी प्रकार आपके इस समुद्र में ही मेरा मन अत्यन्त अधीन होकर रात-दिन रमण करता रहता है, अन्यत्र कहीं नहीं जाता। मेरे मन ने एकमात्र इसी अनन्य व्रत की टेक ग्रहण कर रक्खी है कि वह सदा आपके दिव्य मङ्गल विग्रह रूप रस अर्थात प्रेम समुद्र में सदा लवलीन रहता है। हे श्रीहरिप्रिया, मेरा मन रूपी मीन इसी प्रेम रूपी समुद्र में पड़कर और प्रियाजू के निज प्रेम को उर में धारण करके सदा पनपता अर्थात पुष्ट होता रहता है।

॥ अनुरागिनि सुष्ठुसुन्दरी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सहज स्वयं सिधि-रूपिनी, प्रानेस्वरी उदारि।
रसिकरवन-रानी प्रिया, जय राधा सुकुंवारि॥

॥ पद ॥ ८७॥

जय राधे रसिक रवन रानी।
प्रानेस्वरी प्रानप्रीतम की प्रानवल्लभा मनमानी॥
परम उदारि प्रिया सुकुँवारी सहज स्वयं सिद्धि सुखदानी।
श्रीहरिप्रिया स्वामिनी स्यामा तेजपुञ्ज सब गुन खानी॥८७॥

अनुरागिनि सुष्ठुसुन्दरी मध्याभास=राग सोरठ सहज स्वयं सिधि=स्वाभाविक आप ही सिद्धि स्वरूप पुञ्ज=समूह : सखियाँ प्रियाजू की विरुदावली का गान करती हुई कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

हे रसिक रमन रानी, हे प्रिया, हे सुकुमारी राधे आप स्वाभाविक स्वयं सिद्धि रूपा हो, प्राण-प्रियतम की उदार प्राणेश्वरी हो, आपकी जय हो।

॥ पद ॥

हे रसिक रमन रानी राधे आपकी जय हो, आप ही प्राण-प्रियतम की प्राणेश्वरी हो और उनकी मनमानो प्राणों की वल्लभा हो। हे सुकुमारि जू, आप लालजू की परम

उदार प्रिया हो, आप स्वाभाविक स्वयं सिद्धि रूपा हो, इसलिए सब प्रकार से लाल को सुख प्रदान करती रहती हो। हे श्यामा जू, आप श्रीहरिप्रिया एवं हम सब सखियों की स्वामिनी हो आप तेज-पुञ्ज और सब गुणों की खान हो।

॥ दोहा ॥

और कछू अभिलाष नहिं, अहो कुँवरि सुनि एह।
सदा चरन-बनजात में, रहौ सहज मो नेह॥

॥ पद ॥ ८८ ॥

रहौ मेरो नेह चरन-बनजात।
कुँवरि किसोरी स्यामा गोरी सहज सदा रँगरात॥
और कछू अभिलाष न बलि जाऊँ इहि लालच ललचात।
श्रीहरिप्रिया निरन्तर ध्याऊँ परिहरि दूजी बात॥

॥ अष्टम वाक् विलास ॥

चरन बनजात=चरण-कमल। रंग रात=अनुराग से रञ्जित। श्रीलालजू कह रहे हैं—

॥ दोहा ॥

हे कुँवरि किशोरीजू, आप सुनिये, मेरी एकमात्र यही अभिलाषा है कि आपके चरण कमलों में मेरा स्वाभाविक स्नेह सदा बना रहे।

पद—हे कुँवरि किशोरी श्यामागोरी जू, मेरी एकमात्र यही अभिलाषा है कि आपके चरण-कमलों में मेरा स्नेह सदा बना रहे और उन्हीं चरणों के स्वाभाविक अनुराग से मेरा हृदय सदा रञ्जित होता रहे। एकमात्र इसी लालच से मेरा हृदय सदा ललचाता रहता है। हे श्रीहरिप्रिया सखी, मैं यह चाहता हूँ कि और सब बातों का छोड़कर उन चरण-कमलों का ही मैं निरन्तर ध्यान करता रहूँ।

दोहा—रोम-रोम रस रागहीं, जब उर लागहिं आनि।
अनुदिन छिन-छिन स्वामिनी, सकल सुखनकी खानि॥

॥ पद ॥ ८९ ॥

स्वामिनी सकल सुखन की खानि।
रोम-रोम रति-रस में रागति जब उर लागति आनि॥

पावत सचु अङ्ग अङ्ग अनुदिन छिन-छिन अति अधिकानि॥
श्रीहरिप्रिया सहज स्वभाविक परम प्रेमकी दानि ॥८९॥

रस रागहीं=रस से रसायत और अनुराग से रञ्जित । रति-रस=नित्य विहार सम्बन्धी रस । सुचु=आनन्द । श्रीलालजू कहते हैं :—

दोहा—जब प्रिया जू मुझसे गाढ़ आलिङ्गन करती हैं तब मेरा रोम रोम रस और अनुराग से रञ्जित हो उठता है । स्वामिनी जो सब सुखों की खान स्वरूपा हैं, एवं प्रकार से अहर्निश क्षण क्षण में मुझको सुख प्रदान करती रहती हैं ।

पद—स्वामिनी जू सब सुखों की खान स्वरूपा हैं । जब ये मेरा गाढ़ आलिङ्गन करती हैं तब मेरा रोम २ रति-विहार सम्बन्धी रस में रञ्जित हो उठता है । हे श्रीहरिप्रिया सखी, प्रियाजू सहज स्वाभाविक ही परम प्रेम की दाता हैं । अतः वे उस सुरत केलि जन्य आनन्द से जो परम प्रेम की भी अन्तिम परिपाक अवस्था है, मेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग को अहर्निश सींचती रहती हैं । एवं प्रकार से वह आनन्द मेरे हृदय में बढ़ता ही रहता है, कभी भी घटता नहीं है ।

दोहा—दुख दरनी बरदायनी, सदा सहज सुखकारि ।
अहु बलि प्रानेस्वरि प्रिया, मैं छबि पर बलिहारि॥

॥ पद ॥९०॥

अहु प्रानेस्वरि प्यारी । मैं तोरी छबि पर बलिहारी॥
सहज सदा सुखदा दुखहारी । करुणा-उदधि उदार महारी॥
महा उदधि-उदार-करुणा दुखहरा सुखदा सदा ।
सहज छबि पर जाउँ वारी अहो प्यारी प्रानदा॥
अति अनूपा अमल-रूपा भवन-भूपा भामिनी ।
नागरी गुन-आगरीय उजागरी गजगामिनी॥
नित्यसिद्धि अहलादिनि देवी । आगम निगम अगोचर भेवी॥
अति अगाध महिमा अपरेवी । अखिल लोक सुरसंपति सेवी ।
सेवी संपति सुर अखिल महिमा अपार अगाधिनी ।

निगम आगम अति अगोचर नित्यसिधि अह्लादिनी॥
कृसोदरि सुकुँवरि किसोरी जितुपमा जनपालिनी।
सदय दृष्टि सुवृष्टि सुघटा बिसद जस रस ढालिनी॥
मैं मन बच क्रम यही मनाऊँ। भामिनि निसिदिनि तुव गुन गाऊँ।
गाय गाय निज हियो सिराऊँ। करि यह कृति कृतिकृत्य कहाऊँ॥
कहाऊँ कृतिकृति यहै कृति करि हियँ सिराऊँगै जसै।
भामिनी निसिदिन वचन मन क्रम मनाऊँ मैं असै॥
करहु अनुग्रह कमलबदनी सुधा सदन सिरोमनी।
वल्लभा बरदायिनी सुचि सौरभा चंपकतनी॥
मेरो मन अलि ह्वै अनुरागौ। पद पंकज रस लालच लागौ॥
अतपर और बासना त्यागौ। याही प्रेम प्रीति पन पागौ॥
पागौ पन याही प्रेम प्रीतिहिं त्यागौ अतपर वासना।
लागौ लालच सदा पद पंकज सुरस ह्वै अलि मना॥
श्रीहरिप्रिया अनुकूल ऐसे सुमन सविता ज्यौं रहौं।
निकट अनुवर्तिनि सुरुख ह्वै सदा सनमुख सुख लहौं॥९०॥

दुख दरनी=अतृप्ति जन्य दुख को दूर करने वाली। वरदायिनी=सब अभिलाषाओं को पूरी करने वाली। महा उदधि उदारकरुणा=उदार करुणा के गम्भीर समुद्र स्वरूपा। प्राणदा=जीवन प्रदान करने वाली। भवन भूपा=१४ भवनों की रानी। आगम निगम=शास्त्रवेद। भेवी=होने वाली। अपरेवी=जिससे कोई पार न हो सके। जित उपमा=उपमा को जीतने का। अखिल लोक सुर सम्पति सेवी=समस्त लोकों और सब देवताओं की सम्पति स्वरूप श्रीकृष्ण भी जिस की सेवा करते हैं। गैयशै=यश गाय गाय कर। सुधा सदन=अमृत का स्थान स्वरूपा। सौरभा=सुगन्ध युक्त। पद्मनी। अलि=भौराँ। पन=व्रत। सुमन् सविता=जैसे कमल या सूरज मुखी फूल अपना मुख सूर्य नारायण की ओर ही रखता है।

इससे पिछले पद में श्रीलालजू ने प्रियाजू को "परम प्रेम की दानि" कहा है। सखियों का एक मात्र "प्रयोजन तत्व परम प्रेम" ही है। अतः श्रीहरिप्रियाजू सब सखियों को साथ लेकर श्रीप्रियाजू की विरदावली गान करती हुई कहती है :—

॥ दोहा ॥

हे प्रियाजू ! मैं आपकी इस छवि की बलिहारी जाऊँ ! आप हमारे प्राणों की ईश्वरी हो। आप लालजू के अतृप्ति जन्य दुखों को दूर करने वाली, उनकी सब अभिलाषाओं को पूरी करने वाली तथा सब प्रकार से उनको स्वाभाविक सुख प्रदान करने वाली हो।

॥ पद ॥

हे प्यारीजू ! आप हमारे प्राणों की ईश्वरी हो। मैं आपकी इस छवि पर बलिहारी जाती हूँ। आप लालजू को सदा स्वाभाविक सुख प्रदान करने वाली हो और उनके अतृप्ति जन्य सब दुखों को दूर करने वाली हो। आप करुणा की गम्भीर समुद्र स्वरूपा हो अतः उस करुणा से आप अपने प्यारे के अतृप्ति जन्य दुखों को दूर करती रहती हो और एवं प्रकार से उनको सुख प्रदान करती रहती हो। आपकी इस स्वाभाविक छवि पर मैं बलिहारी जाऊँ जो आप के प्यारे के प्राणों की रक्षा करने वाली है। हे चौदा भवनों और निकुञ्ज विश्व की चक्रवर्ती सम्राट स्वरूपा भामिनी। आपके इस स्वच्छ स्वरूप की और कोई उपमा नहीं दी जा सकती है। हे नागरी जू सब गुणों की अग्रणीय आप ही हो। हे गजगामिनीजू ! आपसे ही सब भवन प्रकाशमान हैं ।।१।।

हे नित्य सिद्ध अह्लादिनी देवी श्रीप्रियाजू ! आप शास्त्र वेद में अति अगोचर है। आपकी महिमा का कोई पार नहीं पा सकता है यह अति अगाध है। अखिल लोक अर्थात समस्त प्राकृत—भूर्भुवः स्वः आदि अप्राकृत—बैकुण्ठादि और सुर—इन्द्रादि देवताओं की सम्पत्ति स्वरूप आपके प्यारे हैं उन्हीं द्वारा आपकी सेवा समाधान होती है अतः आपको महिमा अति अगाध है इसका कोई वारपार नहीं है। आप वेद शास्त्र में अति अगोचर हो और नित्य सिद्ध आह्लादिनी हो अन्य सब आह्लादिनी शक्तियाँ आप से ही प्रकट होती हैं, आपकी ही अंश कला हैं। हे कृशोदरि, सुकुमारी किशोरी जू, आप ही अपने जनों का पालन करने वाली हैं। आपकी उपमा और किसी से नहीं दी जा सकती। आपकी दया भरी दृष्टि से करुणा की घटा उमड़ कर जब वर्षा होती है तब उससे आपका विशद यश फैलता है क्योंकि उस रस-बर्षा से समस्त निकुञ्ज विश्व और आपके जन रस में ढल जाते हैं ।।२।।

हे भामिनी जू, मैं मन-वच-कर्म से यही मनाती रहती हूँ, कि रात दिन सदा आपका गुणगान करती हुई अपने हृदय को शीतल करती रहूँ, और एवं प्रकार के कृत्य

से अपने आपको कृतार्थ समझूं । आपके निर्मल यश को गान करके अपने आपको कृतकृत्य समझ कर अपने हृदय को शीतल करती रहूँ । हे भामिनीजू मैं मनवचकर्म से रातदिन यह अभिलाषा करती रहती हूँ कि, हे कमलवदनी चम्पकतनीजू, आप मुझ पर यह अनुग्रह करें कि आपका दिव्य मङ्गल विग्रह जो श्रेष्ठ अमृत का सदन स्वरूपा है और जिससे पवित्र परिमल की लपटें उठती रहती हैं इससे आप अपने प्यारे के सब मनोरथों को पूरा करें क्योंकि आप उनकी प्यारी वल्लभा हैं ।।३।।

मैं यह चाहती हूँ कि मेरा मन भौंराँ बनकर आपके चरण रूपी कमलों की सुगन्ध को सदा ललचाता रहे । इससे अतिरिक्त मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है । मेरा मन एक मात्र आपके चरणों से ही प्रेम रखे और इन चरणों की प्रीति रूपी व्रत में सदा पगा रहे । इससे अतिरिक्त मेरा मन अन्य सब वासनाओं का त्याग करदे । मेरा मन रूपी भौंराँ आपके चरण कमल की मकरन्द रूपी रस में ही सदा रसायत होता रहे, मेरी एक मात्र यही वाञ्छा है । अन्त में श्रीहरिप्रिया जू यह प्रार्थना करती है:—हे प्रियाजू ! जैसे "सुमन" अर्थात् सूरज मुखी का फूल सदा "सविता" अर्थात सूर्य के अनुकूल रहता है जिस दिशा में सूर्य जाता है उसी दशा में सूरज मुखी भी अपना मुख कर लेता है इसी प्रकार आपके प्यारे भी सदा आपको ही निहारते रहते हैं । हे माननी जू मैं आपसे यह प्रार्थना करती हूँ कि आप अपने प्यारे के सदा अनुकूल रहें कभी भी मान न करें । मैं भी अपनी अनुवर्तनी सखियों सहित आप दोनों के "सुमन सविता" की नाईं सदा निकट रहकर आप का रुख देख देख कर आपकी सेवा समाधान करके सदा सुखी होती रहूँ ।

।। दोहा ।।

परमाधारिनि प्रेयसी, स्यामा सहज स्वरूप ।
अहो बिहारिनि बलि सदा, जीवनि प्रान अनूप ।।

।। पद ।। ६१।।

बिहारिनि जीवनि मेरी हो ।
सदा प्रान प्रतिपालन हौं बलि जाऊँ तेरी हो ।।
परमाधार प्रेयसी स्यामा सहज स्वरूपा एरी हो ।
श्रीहरिप्रिया आस अवलम्बनी तो पद केरी हो ।।६१।।

स्यामा=पूर्ण किशोर अवस्था प्राप्त कुमारी । १६ वर्ष की तरुणी । परमाधारिनि

प्रेयशी=परम आधार स्वरूपा प्यारी। श्रीलालजू कहने लगे :—

॥ दोहा ॥

हे मेरी परम आधार रूपा प्यारीजू ! आपका स्वाभाविक स्वरूप सदा "श्यामा" अर्थात पूर्ण किशोर अवस्था प्राप्त रहता है। हे विहारिनीजू मैं आपकी बलिहारी जाऊँ, आप मुझको इस प्रकार से सदा जीवन प्रदान करतो रहती हो जिसकी कोई उपमा नहीं है।

॥ पद ॥

हे विहारिनीजू ! आप मेरी जीवन स्वरूपा हो। आप मेरे प्राणों की सदा रक्षा करती रहती हो, मैं आपको बलिहारी जाऊँ। आप स्वभाव से ही "श्यामा" अर्थात पूर्ण किशोर अवस्था प्राप्त हो अतः आप मेरी परम आधार स्वरूपा प्यारी हो। हे श्रीहरि की प्रिया अर्थात प्रियाजू ! मुझको तो एक मात्र आपके चरण कमलों की ही आशा और सहारा है।

॥ अनुरागिनि मारमोहनी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सुखनिधि सुन्दरि सरसनी, सुनि स्वामिनि मोरी जु।
दासि तिहारी जय प्रिया, श्रीराधा गोरी जु॥

॥ पद ॥ ६२ ॥

जय जय श्रीराधिका गोरी मदन मनमोहिनी जोरी।
रङ्गरङ्गीली छैलछबीली रस—भरी भोरी॥
सरसनी सुखसिंधु सुन्दरि स्वामिनी मोरी।
राखिये नित पास श्रीहरिप्रिया दासि हों तोरी॥६२॥

अनुरागिनि मार मोहनी मध्याभास=राग मारु। सरसनी=रस उदीपन करने वाली। निधि=समुद्र रूपा। श्रीहरिप्रिया सखी प्रार्थना करती हैं —

॥ दोहा ॥

हे सुख समुद्र रूपा सुन्दरीजू हे स्वामिनीजू मेरी बात सुनिये आप ही रस उद्दीपन करने वाली हो। हे श्रीराधा गोरीजू, हे प्रियाजू आपकी सदा जय हो, आप मुझ पर ऐसी कृपा करें जिस से मैं आपकी सदा दासी रहूँ।

॥ पद ॥

हे श्रीराधिका गोरी आपकी सदा जय हो, अपने प्यारे मदन के मन को आप ही मोहन करने वाली हो। आप और आपके प्यारे की ही वास्तविक जोरी है। यद्यपि आप लालजू के रङ्ग से रञ्जित, उसी छैल के मन को हरण वाली छवि पुतर होने से छबीली और अपने प्यारे के रस से भरी हुई हो, तो भी आप भोरी हो। हे सुन्दरीजू सुख रूपी समुद्र को उद्दीपन करने वाली आप ही हो। हे मेरी स्वामिनी जू! आप मुझ हरिप्रिया अपनी दासी को सदा अपने पास ही रखें, मेरी यह प्रार्थना है।

॥ दोहा ॥

भ्रमत रहत निसिदिन छिना, छके अधिक रस नेह।
प्यारी तुव पद कंज पर, मो दृग मधुकर एह॥

॥ पद ॥ ६३ ॥

प्यारी लाड़िली पदारविन्द नैन मधुकर मेरे।
भ्रमत रहत निसिदिना छकि छिनछिना अधिकेरे॥
कोटि जतन करहु कोउ फिरत नाहिं फेरे।
श्रीहरिप्रिया सहज सुभाव गहि रहे अनेरे॥६३॥

मधुकर=भौंरा। पदारविन्द=चरण कमल। अनेरे=अ+नेरे=दूर से। सखी की प्रार्थना सुनकर श्रीलालजू भी चरण कमल प्राप्ति की अभिलाषा से कहने लगे।

॥ दोहा ॥

हे प्यारीजू मेरे नेत्र रूपी भौंरा यद्यपि आपके स्नेह रूपी रस में सदा छके रहते हैं तो भी ये भौंरा आपके चरण रूपी कमलों पर रात दिन मँडराते ही रहते हैं क्योंकि छिन छिन में इनकी प्यास बढ़ती ही रहती है।

॥ पद ॥

हे प्यारी लाड़िलीजू! मेरे नयन रूपी भौंरा यद्यपि आपके स्नेह रस में सदा छके रहते हैं तो भी आपके चरण कमलों पर रात दिन मँडराते ही रहते हैं। इन भौंरों की भ्रमणता क्षण क्षण में बढ़ती रहती है। चाहे कोई कोटि यत्न करे ये रोकने से भी नहीं रुकते हैं। हे श्रीहरिप्रिया सखी! और तो निकट से पकड़ते हैं इन मेरे दृग रूपी मधुकरों ने श्रीप्यारी जू के चरण रूपी कमलों को दूर से ही पकड़ रखा है।

॥ दोहा ॥

भीने सहज सुभाव सुख, अरिन अरे जु अरैल।
रङ्गराते माते सदा, छके रहौ दोउ छैल॥

॥ पद ॥ ६४ ॥

एरी रहो अहो रङ्गराते माते छबि छके दोउ छैल।
सहज सुख सुभाव भीने अरनि अरि अरैल॥
जोर (जोवन) जुवन जुरि किसोर मूरति-मोहन-मैन।
अति अनूप रूप सजनि दैन चितको चैन॥
परस्पर प्रतीति प्रीति परम प्रेम पगे।
श्रीहरिप्रिया प्रसन्न बदन मदन ज्योति जगे॥६४॥

भीने=आर्द्र। भीगे हुए। अरिन=वैरी सरीखे। मल्ह सरीखे। अरि=अड़े हुए। अरैल=हठीले। रंग राते=अनुराग से रञ्जित। माते=मस्त। मतवारे। जोर युवन=यौवन के जोर से। जुरि=मिलकर। प्रतीति=विश्वास। परम प्रेम=प्रेमकी विपाक अवस्था अर्थात दिव्य काम। मदन ज्योति=दिव्य काम से कामातुर। जगे=उद्दीपन। श्रीहरिप्रियाजू अपनी जोरी का परिचय देती हुई मंगलाशासन रूप में कहती हैं।

दोहा ॥

तत् सुख सुखी सुख ही रसिक दम्पति का स्वाभाविक सुख है अतः परस्पर सुख प्रदान करने के लिये ही ये दोनों सुरति केलि युद्ध में प्रवर्त होते हैं। इस समय ये दोनों छैल उस सुख से आर्द्र होकर दो हठीले मल्हों की तरह अड़े हुए हैं। इनके मङ्गल विग्रह अनुराग रंग से रञ्जित होकर मतवारे हो रहे हैं। मैं यह मनाती हूँ कि ये दोनों छैल इसी प्रकार इसी रस से छके रहें।

॥ पद ॥

हे सखी! मैं यह मनाती हूँ कि ये दोनों छैल अनुराग रङ्ग से रञ्जित तथा मतवारे होकर इसी रस में सदा छके रहें। सहज स्वाभाविक सुखी रस में आर्द्र होकर ये दोनों हठीले इसी प्रकार मल्हों की तरह अड़े रहें। इन दोनों के किशोर मङ्गल विग्रह यौवन के वेग से परस्पर मिलकर इसी प्रकार कामदेव को मूर्छित करते रहें। हे सजनी

इस समय के इनके रूप की छवि की उपमा और किसी छवि से नहीं दी जा सकती है यह छटा हमारे चित्तों को बड़ा आनन्द देती है। परस्पर के विश्वास से प्रीति होती है उसी का नाम प्रेम है। प्रेम की भी परम परिपाक अवस्था को परम प्रेम अथवा दिव्य काम कहते हैं। ये दोनों उसी दिव्य काम में पगे हुए हैं। इस समय श्रीहरि एवं प्रिया के हृदयों में दिव्य काम उद्दीपन हो रहा है उसी मदन की ज्योति से इनके मङ्गल विग्रह जगमगा रहे हैं अतः ये अति प्रसन्न वदन हैं।

॥ दोहा ॥

जल मीनहि रु चकोर ससि, घन मोरहि सुख सार।
जोरी जुगल किसोर की, यों मों प्रान अधार॥

॥ पद ॥६५॥

मेरी प्रानन की आधार एरी जोरी जुगल किसोर।
रहौं चितवत ऐसें सजनी जैसें चन्द चकोर॥
मीन जल-रस लीन निसदिन मुदित ज्यौं घन मोर।
श्रीहरिप्रिया मोहिं लगत प्यारी निपट नाहिन थोर॥६५॥

रु=और। निपट=अत्यन्त। इससे पहिले पद में वर्णन कर चुके हैं दिव्य काम से क्लांत ही श्रीहरिप्रिया जू की जोरी है। उस जोरी के मिलने के लिये उनकी कैसी उत्कण्ठा है इसी बात का परिचय देते हुए श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं।

॥ दोहा ॥

जैसे मछली को जल, चकोर को चन्द्रमा और मोर को बादल ही सुख सार स्वरूप है, इसी प्रकार युगल किशोर की जोरी मेरे प्राणों की आधार स्वरूपा है।

॥ पद ॥

हे सखी! युगल किशोर की जोरी मेरे प्राणों की आधार स्वरूपा है। मैं इस जोरी को निरन्तर ऐसे देखती रहूँ जैसे चकोर एकटक चन्द्रमा को देखता रहता है। मछली का जैसे जल ही जीवन है इसी प्रकार से रसिक दम्पति के रस में मैं रात-दिन लीन रहूँ और इनके वियोग से जल बिना जैसे मछली तड़पती है ऐसे तड़पने लगूँ। इस जोरी को देखकर मैं ऐसे मुदित होती रहूँ जैसे मोर बादल को देखकर प्रसन्न होकर

नाचने लगता है। हे सजनी, श्रीहरि एवं प्रिया की यह जोड़ी मुझको अत्यन्त ही प्यारी लगती है।

॥ अनुरागिनि परम प्रवरा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया हिय में बसौ, नवनागर गुन ऐंन।
सदा सुखद मूरति सु मृदु, सहज सनेही सैंन॥

॥ पद ॥ ६६ ॥

सदा सुख सहज सनेही सैंन।
निरखि निरखि सोभा अङ्ग-अङ्गकी अति सचुपावत नैंन॥
मृदु मूरति अहलाद उजागर नवनागर गुन ऐंन।
श्रीहरिप्रिया नित बसौ हिय में दम्पति आनन्द दैंन॥६६॥

अनुरागिनि परम प्रवरा मध्याभास=राग परज। गुन ऐंन=गुन+ऐन=सब गुणों का स्थान, खान सनेही शेन=स्नेह भरी चितवन। उजागर=प्रकाश। श्रीहरिप्रिया जू पुनः कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

श्रीहरि एवं प्रिया जो नवनागर और सब गुणों के स्थान स्वरूप हैं, मेरे हृदय में सदा निवास करते रहें। इन दोनों के दिव्य मङ्गल-विग्रह सदा सुख प्रदान करने वाले अत्यन्त कोमल हैं और इनकी चितवन स्वाभाविक स्नेह से भरी हुई है।

॥ पद ॥

रसिक दम्पति की चितवन स्वाभाविक स्नेह से भरी हुई है। इनके अङ्ग-प्रत्यंग की शोभा को देखकर मेरे नेत्र अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं। इन दोनों के दिव्य मङ्गल-विग्रह अत्यन्त सुकोमल हैं, आनन्द को जाग्रत करने वाले हैं, नव नागर और सब गुणों की खान हैं। श्रीहरिप्रिया जू कहती हैं कि आनन्द प्रदान करने वाले ये रसिक दम्पति सदा मेरे हृदय में निवास करते रहें।

॥ दोहा ॥

अद्‌भुत रूप अनूप अति, गौर स्याम गुन जाल।
सहज सदा बसि रहौ मो, नैंननि में दोउ लाल॥

॥ पद ॥ ६७॥

बसो मो नैननि में दोउ लाल ।
सहज सदा सुख साँचे सजनी राचे-रङ्ग-रसाल ॥
अद्भुत रूप अनूप अलौकिक गौर स्याम गुन जाल ।
श्रीहरिप्रिया पहरि उर राखों ज्यों मनि मंजुल माल ॥६७॥

गुन-जाल=गुणों का फन्दा । साँचे=जिसमें कोई वस्तु ढाली जाती है । मंजुल=सुन्दर । श्रीहरिप्रिया जू कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

इन गौर-श्याम युगल किशोर का रूप अत्यन्त अद्भुत एवं अनुपम है और ये अपने गुणों के फन्दा में हम सखियों के मनों को फँसाने वाले हैं । मैं यह चाहती हूँ कि मेरे नेत्रों में ये दोनों लाल लड़ैती जू सदा स्वाभाविक रूप से बसे रहें ।

॥ पद ॥

हे सजनी, मैं यह चाहती हूँ कि लाल लड़ैती जू सदा मेरे नैनों में बसे रहें । मैं यह समझती हूँ कि स्वाभाविक सुख के ढालने के साँचे रसिक दम्पति ही हैं और इन रसीलों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग अनुराग के रङ्ग से रचे हुए हैं । इन गौर श्याम का रूप अद्भुत अनुपम, अलौकिक है । इनके गुणों का जाल तो समस्त निकुञ्ज विश्व में फैला हुआ है । श्रीहरिप्रिया जू यह अभिलाषा करती हैं कि मैं इनके गुणों की माला सुन्दर मणियों की माला की भाँति अपने हृदय पर सदा धारण करे रक्खूँ ।

॥ दोहा ॥

मधुर महा मनरंजनी, रवनी रसकी रेलि ।
अलकलड़े उर मण्डनी, लाड़लड़ी अलबेलि ॥

॥ पद ॥६८॥

लड़ीली लाड़िली अलबेलि ।
अलकलड़े के उर की मण्डन खण्डन दुख दल बेलि ॥
मधुर महा मनरंजन रवनी कवनी कारन केलि ।
श्रीहरिप्रिया सलोनी सुन्दरि सर्बस रसकी रेलि ॥६८॥

मधुर=माधुर्य रस स्वरूपा। रस की रेलि=रस समूह स्वरूपा। अलकलड़े=डाल करने योग्य श्रीलालजू। मण्डनी=शृङ्गार अथवा हार स्वरूपा। अलवेलि=नुकोला टेढ़ापन लिये हुए। दुख दल=दुखों की दलदल अर्थात् अत्यन्त दुख। कारन केलि=विलास सम्बन्धी लीलाओं की कारण स्वरूपा। श्रीप्रियाजू की विरदावली गान करती हुई श्रीहरिप्रिया जू कहती हैं।

॥ दोहा ॥

हे अलवेली लाड़लड़ीजू! आप ही महा माधर्य रसस्वरूपा होने से लालजू के मन को रञ्जन करके उनको रमण कराने वाली रस की समूह स्वरूपा हो, अतः एवं आप अलक लड़े के हृदय की हार हो रही हो।

॥ पद ॥

हे अलवेली लड़ीली लाड़िलीजू! आप अलक लड़े के गले का हार होकर उनके हृदय की शोभा ही नहीं बढ़ाती हो अपितु ऐसा करने से आप उनका अतृप्ति जन्य दुखों के समूह को शान्त करती हो अतः एव आप उनके अत्यन्त दुख दूर करने वाली अमृत लता हो। आप ही महा माधुर्य रस स्वरूपा अपने प्यारे के मन को रञ्जन करके उनको रमण कराने वाली कमनीय, सलोनी, सुन्दरि तथा सर्वस्व रस की समूह स्वरूपा हो। श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं अतः एव आप ही सुरति केलि विहार की कारन स्वरूपा हो।

॥ दोहा ॥

अंसन पर भुज दियें दोउ, मनहर साँवर गौर।
आज सखी अति छबि भरे, राजत जुगलकिसोर॥

॥ पद ॥ ६९ ॥

आज अति राजत जुगलकिसोर।
देख री देखि रहे फबि अद्भुत छबि कौ ओर न छोर॥
अंसन पर भुज दिये परस्पर मनहर साँवर गौर।
श्रीहरिप्रिया बदन ससि सुन्दर चितवत नैन चकोर॥६९॥

अंसन=कन्धों। वदन शशि=मुख चन्द्रमा। रसिक दम्पति की शोभा वर्णन करती हुई श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं:—

॥ दोहा ॥

ये दोऊ साँवर गौर परस्पर गल वहियाँ दिये हुए हमारे मनों को हर रहे हैं। हे सखी छवि से भरे हुए ये युगल किशोर आज कैसे सुशोभित हो रहे हैं।

॥ पद ॥

आज ये युगल किशोर अत्यन्त सुशोभित हैं। हे सखी तू देख तो सही इनकी अद्भुत छवि कैसी फवि रही है जिसका कोई आर पार नहीं है। ये साँवर गौर परस्पर गल वहियाँ दिये हुए हमारे मनों को हरन कर रहे हैं। श्रीहरि एवं प्रिया के मुख तो चन्द्रमा सरीखे हैं और नेत्र चकोर की तरह परस्पर एक टक देखते रहते हैं।

॥ दोहा ॥

सोहत परम सुहावने, अङ्गनि अङ्ग रसाल।
अति अनहोने सलोने, रसलम्पट दोउ लाल॥

॥ पद ॥ १००॥

रसिक रस लंपट लाल सलोने।
सोहत परम सुहाये सजनी अङ्ग अङ्ग अनहोने॥
नैन बिसाल रसाल रङ्ग ररि ढरि रहे कानन कोने।
अद्भुत रूप रसासव अँचवत करि करि तिरछि चितौने॥
मदन मनोहर बदन चंद छबि सदन सहज सुख दोने।
श्रीहरिप्रिया परस्पर दोऊ लगे लालच ललचोने॥१००॥

रस लम्पट=रस के लालची। रंग ररि=अनुराग से रञ्जित। कानन कोने=कानोंके पर्यन्त। अत्यन्त दीर्घ। रसासव=रस+आसव=रस रूपी मन्दिर। अचवत=पीते हैं। छबि सदन=सौन्दर्य के स्थान स्वरूप। सहज सुख दोनें=स्वाभाविक सुख के पात्र स्वरूप। श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं।

॥ दोहा ॥

रसिक दम्पति के अङ्ग प्रत्यङ्ग अत्यन्त सुहावने और रसीले हैं। ये दोनों लाड़िली लाल अनुपम सुन्दर और परस्पर रस के लालची हैं।

॥ पद ॥

हे सजनी ! ये दोनों लाड़िलीलाल अत्यन्त सलोने, रसिक तथा रस के लालची हैं। इनके अङ्ग प्रत्यङ्ग की सुन्दर शोभा की दूसरे और किसी वस से उपमा नहीं दी जा सकती है। इनके रसीले नेत्र अति विशाल हैं अतः इनके कोने कानों तक ढरे हुए हैं। ये नेत्र अनुराग के रँग से रंजित हैं इसलिये ये परस्पर के रूप रस रूपी मदिरा को अपनी अपनी तिरछी चितवनों द्वारा पान कर रहे हैं। इनदोनों के मुख चन्द्र मानों छवि के सदन हैं ये केवल काम देव के ही मन को नहीं हरन करते हैं अपितु ये मुख चन्द्रमा मानों दो दोना अर्थात पात्र हैं जहाँ इनका स्वाभाविक सुख अर्थात प्रेम निहित रहता है। अतः एव श्रीहरि एवं प्रिया उसी स्वाभाविक प्रेम के लालच के लिये सदा ललचाते रहते हैं। यही कारण है जिससे इनके नेत्र एकटिक परस्पर सदा देखते रहते हैं।

॥ दोहा ॥

बिलसनि हुलसनि हिये की, निरखत रहौं नित नैन।
यह सुख स्यामा स्याम को, रहौ सदा उर ऐंन॥

॥ पद ॥१०१॥

यह सुख सदा रहौ उर मेरें।
स्यामा स्याम सहज रङ्ग भीने को सखी साँझ सबेरें॥
बिलसनि हुलसनि हिय के हित की निरखत रहुँ नित नेरें।
श्रीहरिप्रिया और अलिभाष न लाखन कहुँ बहुतेरें॥१०१॥

हुलसनि=उल्लिसित होना=आनन्दित होना। ऐन=अयन=स्थान। श्रीहरिप्रियाजू पुनः कहती हैं :—

॥ दोहा ॥

मैं यह चाहती हूँ कि रसिक दम्पति के विलास और उस विलास जन्य इनके हृदय के आनन्द को मैं सदा अपनी आखों से देखती रहूँ। यह श्यामा श्याम का सुख मेरे हृदय में स्थान बनाकर सदा विराजमान रहे।

॥ पद ॥

रसिक दम्पति का यह सुख सदा मेरे हृदय में विराजमान रहे, जिस सुख के रंग

में श्यामा श्याम इतने भीगे हुए रहते हैं कि इनको यह भी ज्ञान नहीं रहता कि कब साँझ होती है और कब सवेरा होता है। मैं यह चाहती हूँ कि इनके विलास और उस रति विलास जन्य इनके हृदय के प्रेम को मैं इनके अत्यन्त निकट वर्ती होकर सदा अपने नेत्रों से देखती रहूँ। श्रीहरिप्रियाजू कहती हैं, चाहे मुझको कोई लाख बार कहे, इससे अतिरिक्त मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है।

॥ दोहा ॥

सब रसको घर है सदा, श्रीवृन्दावन धाम।
जा मधि वैभव बसत नित, अधिपति स्यामास्याम ॥

॥ पद ॥ १०२॥

श्रीवृन्दाबन सब रसकौ घर। जा मधि बैभव नित्य बसत बर ॥
नागरि नागर रूपउजागर। गुनआगर सोभा के सागर ॥
रङ्गरँगीले अतिही सुन्दर। परम कृपाल प्रबीन पुरन्दर ॥
श्रीहरिप्रिया स्वामिनी सुखकर। और नहीं ऐसें इनतें पर ॥१०२॥

वैभव=विभूति। सम्पत्ति। ऐश्वर्य। अधिपति=सम्राट वर=श्रेष्ठ। उजागर=प्रकाश करने वाले। गुण आगर=गुण आकर=गुणों के खजाना स्वरूप। प्रवीन पुरन्दर=चतुर शिरमौर अथवा चतुर तथा निकुञ्ज विश्व के इन्द्र स्वरूप।

श्रीहरिप्रियाजू सहज सुख की समाप्ति में श्रीवृन्दावन की विरदावली गान करती हुई कहती हैं।

॥ दोहा ॥

श्रीवृन्दावन धाम के चक्रवर्ती सम्राट श्रीश्यामा श्याम हैं, अतः यहाँ ही सब विभूतियाँ नित्य रूप से विराजमान रहती हैं और इसी हेतु से यह श्रीवृन्दावन सब रसों का जो संख्या में १२ हैं घर स्वरूप है, अर्थात् सब रसों का उदगम स्थान भी यही है और यहाँ ही सब रस स्थाई रूप से रहते हैं।

॥ पद ॥

श्रीवृन्दावन ही सब रसों का घर है। यहाँ ही श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सब विभूतियां स्थाई रूप से नित्य विराजमान रहती हैं। क्योंकि यहाँ ही सब लोकों में रूप का प्रकाश करने वाले सब गुणों के आकर समस्त शोभा के सागर स्वरूप नागरि नागर सदा विराजमान

रहते हैं। यहाँ ही ये अनुराग के रङ्ग से रञ्जित, रंगोले, अति ही सुन्दर, परम कृपाल, सब चतुरों के शिरोमणि और सब प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक लोकों के पुरन्दर स्वरूप सदा रहते हैं। यह श्रीवृन्दावन ही श्रीहरि एवं हमारी स्वामिनी श्रीप्रियाजू को अत्यन्त सुख प्रदान करने वाले हैं, अतः इन श्रीवृन्दावन से अतिरिक्त और कोई लोक श्रेष्ठ नहीं है।

॥ कुण्डलिया ॥

श्रीहरिप्रिया को सहज सुख सुने सहज सुख ताहि।
कर्मविदूषित हियन कें रुचै न रंचक जाहि॥
रुचै न रंचक जाहि बिकल मन बुद्धि बिपर्जय।
तत्व अनिश्चित चित्त तिमिर आच्छादित अतिसय॥
गुरु मारग तें बिमुख कलुष हत संतत गत ह्री।
प्रापति ह्वै किहिं भाँति बिना अनुकंपा यह श्री॥१॥

कर्म विदूषित=कर्म काण्ड को ही जिन्होंने साध्य समझा है जिनके हृदय भक्ति से शून्य हैं। रंचक=थोड़ा सा भी। विकल मन=अशान्त चित्त। विपर्य्य=उलटो। तिमर=अन्धेरा। कलुष हत=पापों द्वारा नष्ट। सन्तत=निरन्तर। गतह्री=निर्लज्ज। अनुकम्पा=कृपा। यह श्री=श्रीप्रियाजू। श्रीगुरु। "श्रीसहज सुख" के सुनने तथा पाठ करने वाले अधिकारी का निर्वाचन करते हुए श्रीग्रन्थकार कहते हैं।

॥ कुण्डलिया ॥

श्रीहरि एवं प्रिया का यह "सहज सुख" जो कोई सुनेगा (पढ़ेगा या मनन करेगा) उसको रसिक दम्पति का जो स्वाभाविक सुख अर्थात प्रेम जो इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है सहज ही प्राप्त हो जावेगा। श्रीगुरु शरणागत के बाद भी जिनके हृदय कर्म से विशेष दूषित हैं अर्थात भक्ति को छोड़कर जिन्होंने कर्म काण्ड को ही अपना साध्य वना रखा है, उनको यह "सहज सुख" नेक भी नहीं रुचेगा। क्योंकि उनकी बुद्धि उलटी हो रही है उनके चित्तों ने तत्व को निश्चय नहीं किया है। उनके हृदयों पर अतिशय अन्धेरा छाया हुआ है। वे अपने गुरु के मार्ग से विमुख हैं। इसी पाप से निरन्तर हत होने से उनकी लज्जा चली गई है। अब उनको श्रीप्रिया प्रीतम के चरण कमल बिना श्रीगुरुदेव या श्रीप्रियाजू की कृपा के कैसे प्राप्त हो सकते हैं?

॥ दोहा ॥

इहि बिधि यह श्रीसहज सुख, सदा सहज सुख रूप।
सुनौ गुनौ बहु यत्न करि, ज्यौ सुख लहो अनूप॥
इक श्लोक द्वै दोहरा, ए कहे आदि बखानि।
इक कुण्डलिया इक दोहा, ये दोउ अन्तहि मानि॥
मधि सत ऊपर दोय पद, आभासनि जुत जोइ।
सप्तोत्तर सत सब भये, सहज सुखहिं गनि सोइ॥
अब इनकी अनुरागिनी, प्रति प्रति पदहिं बिचारि।
बरनि सुनाऊँ कहि कबित, छप्पय सो उर धारि॥

मध सत ऊपर दोय पद=बीच में १०२ पद हैं। आभासन युत=पदों के पहिले जो दोहे हैं उनमें पदों का अभास अर्थ दिया गया है अत: उनको आभास दोहा कहते हैं उन सहित। सप्तोतर शत=१०७ अनुरागिणी=राग रागिनी। ग्रन्थकार ग्रन्थ को समाप्त करते हुए राग रागिनियों की संख्या बताते हैं।

॥ दोहा ॥

इस प्रकार से यह "सहज सुख" जो सदा सुख रूप है समाप्त हुआ। इसको यत्न पूर्वक सुनो तथा मनन करो जिससे आपको अनुपम सुख प्राप्त हो।

इस "सहज सुख" के आदि में एक श्लोक और दो दोहा हैं। और अन्त में एक कुण्डलिया और एक दोहा हैं। बीच में १०२ पद आभास दोहा सहित हैं। अर्थात सब मिलाकर "सहज सुख" में पदों की संख्या १०७ है। अब ये पद जिन जिन राग रागिनियों में हैं इसका विचार अगले कवित्त छप्पय से किया जाता है। आप हृदय में इस प्रकार धारण करें।

॥ कवित्त छप्पय ॥

षट पद सुभरव माहिं चारि पद रत्नकला में।
चारहिं ललितानना षट जु पद विस्वाभा में॥
दस बिलास आवलि जु दसहु आनन्दा में चहि।
सप्त धन्यभागा जु सप्तहिं सुरङ्गअङ्गा महि॥

गौरमुखी में चारि पद केलिकौमुदी सप्त गुनि।
कर्नकांतिका पांच पद और कहू जो सुनहु पुनि॥
चारि केलि अलिबेलि बिचित्रसोभा में सप्त कहि।
कंदरपकामा में पाँच पाँच पुनि सुष्टसुन्दरि महि॥
मारमोहिनी चार परमप्रवरा में सप्त पद।
इक सत ऊपर दोय सप्तदस अनुरागिनि हद॥

॥ दोहा ॥

इह बिधि यह श्रीसहजसुख, श्रीमहावानी सुजस रस।
गावै मन-बच-क्रम जु कोउ, पिय प्यारी तिहिं होइ बस॥

इति श्रीपदविलास निकुञ्जरहस्य श्रीमहादिव्य महाराजराजेश्वरप्रवर परमहंस वंशाचार्य श्रीमद्धरिव्यासदेवज्ञ कृता महावाणी श्रीसहज सुख सम्पूर्णम् ॥ शुभम् ॥ श्रीराधा कृष्णाय नमो नमः। निकुञ्ज में राग रागिनी भी सखी रूपा हैं तालिका के अनुसार इनके ये अर्थ हैं—

षट पद शुभरवा माँहि=६ पद भैरव राग में
चारि पद रत्न कलामें=४ राम कली में
चारि ललिता नना=४ ललित रागिनी में
षट् जु पद विश्वाभा में=६ विभास में
दश विलास आवलिजु=१० विलावल में
दश हु आनन्दा में चहि=१० आसावरी में
सप्त धन्य भागा जु=७ धना सरी में
सप्तहू सुरङ्ग अङ्ग महि=७ सारङ्ग में
गौर मुखी में चारि पद=४ गौरी राग में
केलि कौमुदी में सप्त गुनि=७ कल्यान में
कर्ण कान्ति का पांच पद=५ कासौ कान्हरौ में
और हू जो सुनहु पुनि=इससे आगे और सुनो।
चारि केलि अलवेलि=४ अण्डानो में
विचित्र शोभा में सप्त कहि=७ विहागरौ में

कन्दर्प कामा पाँच =५ केदारौ में
पाँच पुनि सुष्ठु सुन्दरि महि=५ सोरठि में
मार मोहनी चारि =४ मारू राग में
परम प्रवरा में सप्त पद=७ परज में
इक रात ऊपर दोय सप्तदश=कुल पद १०२ हैं
अनुरागिनि हद=ये १७ राग रागिनियों में हैं ।

यह विधि यह श्रीसहज सुख श्रीमहावाणी सुयश रस गावै मन वच क्रम जु कोऊ पिय प्यारी जिहिं होंय वश । इस प्रकार से यह महावाणी का सुयश रस सहज सुख समाप्त हुआ । जो कोई इसको मन वच तथा क्रम से गावेंगे श्रीपिय प्यारी उनके वश में हो जावेंगे ।

इति श्रीपदविलास निकुँजरहस्य श्रीमहादिव्य महाराजाराजेश्वरप्रवर परमहंस वंशाचार्य्य श्रीमद्धरिव्यासदेवजू कृता महावाणी श्रीसहजसुख सम्पूर्णम् ।

॥ इति ॥

॥ श्रीमहावाणी सिद्धान्त सुख ॥

—: भूमिका :—

श्री१००८ श्रीहरिव्यास देवाचार्य रचित श्रीमहावाणी ग्रन्थ का यह सुख पञ्चम रत्न है। कोष में सिद्धान्त शब्द का अर्थ निर्णीत अर्थ, तत्व की बात अथवा वह बात जो महात्माओं विद्वानों द्वारा स्थिर की गई है। सुख उल्लासात्मको ज्ञान विशेष सुखम् (संदर्भ) सिद्धान्त की बात कहने सुनने में सुख होता है। स्वयं ग्रन्थकार के शब्दों में "कहिये जो कुछ पारहि पावै। यथा शक्ति कहि भलो मनावै॥ मनावै भलौ कहि यथा शक्तिहि हार मानि न रहजियें। कहत सुनत होत है उपकार याते कहजिये।" (सिद्धान्त सुख) अतः इसका नाम ग्रन्थकार ने सिद्धान्त सुख रखा है।

आद्याचार्य १००८ स्वयं श्रीनिम्बार्क भगवान् आज्ञा करते हैं साधक को ये पाञ्च बात जाननी अति आवश्यक हैं।

"उपास्य रूपं तदुपासकस्य च कृपा फलं भक्तिरसस्ततः परम् विरोधिनोरूप मथैतदाप्तैर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः॥" (१) श्रीप्रिया प्रीतम का स्वरूप (२) उपासक अर्थात् नित्य परिकर श्रीरङ्गदेवी आदि सखी और उनके अनुगत साधक। (३) कृपा का फल अर्थात् भक्ति "अवधेय तत्व"। (४) भक्ति रस अर्थात् प्रेम "प्रयोजन तत्व।" (५) "विरोधी तत्व जो श्रीप्रिया प्रीतम की प्राप्ति में साधक को बाधा देता है। उपरोक्त ये पाञ्च विषय साधक भक्त जनों को अवश्य जानने चाहियें।

श्रीग्रन्थकार ने इस "सिद्धान्त सुख" में उपरोक्त पांचों विषयों को विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। अब एक एक को लीजिये :—

(१) "उपास्य रूपम्"

"प्रिया शक्ति अह्लादिनी पिय आनन्द स्वरूप।
तन वृन्दावन जगमगे इच्छा सखी अनूप।" (सिः सु पद १६)
"एक स्वरूप सदा द्वै नाम।
आनन्द की अह्लादिनी श्यामा, अह्लादिनि के आनन्द श्याम।

सदा सर्वदा जुगल एकतन एक जुगल तन विलसत धाम ।।
श्रीहरिप्रिया निरन्तर नित प्रति काम रूप अद्‌भुत अभिराम ।।''
(सि: सु: पद : २६)

सूक्षम कलरव जन्य पार वेद तन्त्र को मन्त्र ।
श्रीवृन्दावन हरि प्रिया नित्य विहार स्वतन्त्र ।।'' (सि: सु: पद: २)
"याही रस में मगन निरन्तर नहिं जानत कित रजनी भोर ।'' (से: सु: पद: १६)
सुभग सेजपर सुघर सुन्दर वर रसिक पुरन्दर कुँवर किशोर ।
व्रीडहिं तजि क्रीडहिं मन मानत नहिं जानत कितरजनी भोर ।।
करत पान रस मत्तमिथुन मन मुदित उदित आनन्द अधीर ।
सेवत सहज सदा सुख सागर नागरि नगर गहर गम्भीर ।। (सि: सु: पद: ५)
सर्व सुख सींव दोऊ ग्रीव भुजमेलि के करत हैं कलि नवरंग रंगे ।
पलजुविछुरें परें कलनजिय ललन के उमंग अंग अंगसदा एक संगे । इत्यादि
(सि: सु: पद: ७)

श्रीग्रन्थकार कहते हैं एक ही "रस'' तत्व चार स्वरूपों में विभक्त है :—श्रीलालजू आनन्द स्वरूप श्रीप्रियाजू अह्लादिनि शक्ति, युगल के दिव्य मङ्गल विग्रह श्रीवृन्दावन और इन दोनों की इच्छा वृत्तियें सखियों के स्वरूप हैं। "एक स्वरूप सदा द्वै नाम ।'' अर्थात एक ही युगल तत्व अभिन्न रूप से अपने स्वरूप में ही नित्य काम केलि करते रहते हैं। इस विहार में ये इतने निमग्न हैं कि इनको यह भी पता नहीं हैं कि कब रात होती है और कब दिन निकलता है। सौभाग्य वती शय्या पर सब रसिकों के पुरन्दर स्वरूप श्रीलाल ललना लज्जा छोड़कर मन मानी क्रीड़ा करते हैं। ये इस विहार में इतने आसक्त हैं कि इस समय इनको रजनी भोर का भी ज्ञान नहीं है। ये दोनों यद्यपि परस्पर रस पान करने से उन्मत्त हो रहे हैं तो भी तृप्त नहीं हैं अपितु इसी आनन्द रस पान के लिये अधीर हो रहे हैं। एवं प्रकार से ये नागरि नागर गहर गम्भीर समुद्र सरीखा इस सहज सुख प्रेम को सदा विलसते रहते हैं।

सब सुखों की सींव स्वरूप श्रीरसिक दम्पति परस्पर गल बहियाँ दिये हुए नये नये अनुराग से रंजित होकर रतिकेलि में निमग्न रहते हैं। एक पल के लिये भी यदि बिछर जावें तो लाल विकल हो जाते हैं। इसलिये दोनों यद्यपि सदा सर्वदा साथ रहते हैं तो भी तृप्ति नहीं होती है, क्योंकि इनके अङ्ग अङ्ग में और अधिक मिलने की उमंगे

बढ़ती रहती हैं।

जब रसिक दम्पति का उपरोक्त स्वरूप है फिर यह स्वाभाविक प्रश्न होता है कि वेद शास्त्र में जिसको शब्द ब्रह्म, परब्रह्म, परमात्मा, विश्वकाय, नारायण विष्णु, सब अवतारों का अवतारी, प्रकृति पुरुष का ईश, सगुण निर्गुण पर ब्रह्म तथा अनन्त कोटि वैकुण्ठों का अधिपति आदि कहा है वह ऐश्वर्य स्वरूप तत्व क्या श्रीप्रिया प्रीतम से कोई भिन्न स्वरूप है ? ग्रन्थकार ने उपरोक्त सब ऐश्वरत्व तत्वों का दार्शनिक रीति से श्रीप्रियाप्रीतम के चरण कमलों में इस प्रकार से समन्वय किया है:—

(१) "अनन्त, अनीह, अनावृत, अव्यय, अखिल अण्ड आधीश अपार।
अँघ्री अब्ज आभूषण रव करि केतन केत लेत अवतार ।।" (सि: सु: पद:२)

(२) "पारब्रह्म कहियत हैं इनकी पद नख ते सुख ज्योति प्रकाश ।।"(सि: सु: पद:४)

(३) "जाके पद नख ज्योति की आभा कौ अणुलेश।
जग मगात है जगत में पारब्रह्म परमेश ।।" सि: सु: पद: ३३)

(४) "श्रीराधा पद कमल तें नूपर कलरव होय।
निर्विकार व्यापक भयो शब्द ब्रह्म कहें सोय ।।" (सि: सु: पद: १६)

(५) "नित्य विहरत जहाँ नित्य कैशोर दोउ नित्य सहचरनि सङ्ग नित्य नव रङ्ग।
नित्य रस रास उल्लास आनन्द उर नित्य प्रतिकाश परभास अंग अंग ।।
निर्विकार निराकार चैतन्यतन विश्वव्यापक प्रकृति पुरुष के ईश।
अक्षरातीत परब्रह्म परमात्मासर्वकारन परं ज्योति जगदीश ।।
नाद के अण्डते अखण्ड धारा द्रवत श्रवत जा मध्य सत सृष्टि के हेत।
जिहिं जिहिं भांति जे जे उपासत जिन्हें तिहिं तिहिं भांति ते ते तिन्हें देत ।।
तत्व के तत्व सिद्धान्त सिद्धान्त के सारके के सार सुख रूप के रूप।
अमित ऐश्वर्य माधुर्य श्रीहरिप्रिया भावतिनु भवन के भाँवते भूप ।।(सि: सु: पद १०)

(६) "आगम अगम अगोचर अधिपति पद नख अणु आभा अवतार।
विवि स्वरूप ईच्छा विग्रह करि अमित कोटि वैकुण्ठ विलास ।।
जा मध्य उपजि समावत जामधिक मोग्रादि कुल कोटि प्रकाश ।।
(सि: सु: पद: १४)

(७) "जाऊं बलिहारी नित्य वैभव विहारी जुगल किशोर स्वयं सत्य श्रुति सारी।

अखिल ब्रह्माण्ड व्यापक है जोई तिहारे चरन नख आभा है सोई ।।
परमात्माविश्वकाय नारायण विष्णु धर्म हैं तिहारे तुम धर्मी जग विष्ण''
सि: सु: पद: ३३)

(८) ''अंसन के अंसी अवतार अवतारी कारन के कारनोक मङ्गल महारी ।
स्वयं रूप शुद्ध सत्व इच्छा विस्तारी जाकरिके भयो नाद ब्रह्मनिर्विकारी ।।
ताकौ सब थाट पाट घाट अघटारी असत सवहि परावर के परचारी ''
(सि: सु: पद: ३४)

(६) ''निर्गुण सगुण कहत जिंहि वेद ।
निज इच्छा विस्तार विविध विधि वहु अनवहोदिखावत भेद ।।
आप अलिप्तलिप्त लीला रचि करत कोटि ब्रह्माण्ड विलास ।
शुद्ध सत्व परके परमेश्वर जुगल किशोर सकल सुख रास ।।'' 'सि: सु: पद:२०'
उपरोक्त पदों का भावार्थ देखिये ।

[१] श्रीप्रिया प्रीतम के चरणारविन्दों के नूपुरों के शब्दों से अनन्त कोटि वे अवतार प्रकट होते हैं जिनके स्वरूप अनन्त हैं जिनकी कोई अभिलाषा नहीं है जो मायिक गुणों से ढके हुए नहीं हैं, जो अवनाशी हैं और जो समस्त ब्रह्माण्डों के नायक हैं ।

(२-३) श्रीरसिक दम्पति के पद नख ज्योति की कोई अणुलेश ज्योति इस जगत में परब्रह्म करके जगमगा रही है । इसी सुखमय ज्योति के प्रकाश को ही परब्रह्म कहते हैं ।

(४) श्रीप्रियाजू के चरणारविन्द के नूपुर से जो मधुर स्वर होता है वही निर्विकार व्यापक शब्द ब्रह्म है ।

[५] नित्य वृन्दावन में नित्य कैशोर रसिक दम्पति नित्य सहचरियों के साथ नित्य रास विलास विहार करते रहते हैं । इस रास जनित विहार से इनके हृदयों में आनन्द उल्लास का प्रकाश होता है उसी प्रकाश का परभास अर्थात प्रतिबिम्ब युगल के अङ्ग प्रत्यंगों से जो वाहिर स्फुट होता है उसी से निर्विकार, निराकार चैतन्य तन प्रकृति पुरुष के ईश, क्षर और अक्षर से अतीत पर ब्रह्म परमात्मा जो सब कारणों से परे हैं, जिसको ज्योति स्वरूप जगदीश कहते हैं प्रकट होते हैं । और रसिक दम्पति के रास विलास आनन्द में उनके नुपुर आदि से जो ''नाद'' प्रकट होती है उस नाद रूपी अण्ड से अखण्ड धारा द्रवित होकर बहने लगती हैं । उन धाराओं से ''तत् सृष्टि' अर्थात अनन्त कोटि वैकुण्ठ तत तत् अधिपतियों सहित प्रकट होते हैं । जो जो साधक जिस जिस भावना से

जिस जिस वैकुण्ठ नाथ की उपासना करता है वे उसी उसी भान्ति से उसको फल प्रदान करते हैं। अतः सब तत्वों के तत्व स्वरूप, सब सिद्धान्तों के सिद्धान्त स्वरूप, सब सारों के भी सार स्वरूप सब सुखों के सुख स्वरूप तथा सब सौन्दर्यों के सौन्दर्य स्वरूप सब ऐश्वर्यों के ऐश्वर्य स्वरूप तथा सब माधुर्यों के माधुर्य स्वरूप यही श्रीहरि एवं प्रिया है। अर्थात तीनों भवनों के यही श्रीप्रिया प्रीतम चक्रवर्ती सम्राट हैं।

(६) गौर श्याम की पद नख की अणु ज्योतियों से वह ज्यतिमय युगल तत्व प्रकट होता है जिसकी महिमा वेद शास्त्रों में भी अगोचर है। जिन युगल को वैकुण्ठ आदि लोकों के अधिपति कहते हैं। वही युगल ज्योति इच्छा विग्रह धारण करके अनन्त कोटि वैकुण्ठों का विलास करते हैं इन्हीं से क+म+उग्र अर्थात अनन्त कोटि ब्रह्मा-विष्णु महेश प्रकट होते हैं और इन्हीं में समा जाते हैं।

[७] हे जुगल किशोरजू ! मैं आपके वैभव की बलिहारी जाऊँ आप स्वयं ही सत्य श्रुतियों के सार स्वरूप हैं। जो पर ब्रह्म अखिल ब्रह्माण्डों में व्यापक है वह आप के चरण कमल के नख की आभा है। परमात्मा, विश्वकाय, नारायण तथा विष्णु ये तुम्हारे धर्म हैं, और हे जगके पालन करने वाले ! आप धर्मी हैं।

(८) हे विहारी विहारिनि ! आप ही सब अंशों को अंशी सब अवतारों के अवतारी सब कारणों के कारण स्वरूप तथा सब मङ्गलों के मङ्गल स्वरूप हो। आपके ही चरणारविन्दों से शुद्ध सत्व स्वयं रूप का विस्तार हुआ है, जिससे निर्विकारी नाद ब्रह्म प्रकट हुआ। उस नाद ब्रह्म से ही सब अघट घट–पट, सत्, असत् पर, अवर का प्रचार हुआ।

(९) ये जुगल किशोर जू ! आप ही सब सुखों के राशि स्वरूप हैं। जिन तत्वों को वेद निर्गुण सगुण कहता है जो अपनी इच्छा से विविध प्रकार के अनहोने भेदों को दिखलाते रहते हैं। जो आप अलिप्त होकर अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में लिप्त सरीखी लीलाएं करते रहते हैं, जिनको शुद्ध सत्व पर से परमेश्वर कहते हैं ये दोनों निर्गुण सगुण ब्रह्म आप से ही प्रकट हुए हैं। इत्यादि

"श्रीमहावाणी सिद्धान्त सुख" के उपरोक्त अंशों से यह भली से विदित होता है कि रसिक दम्पति के स्वरूप में या इनके विलास में ऐश्वर्य तत्वों का गन्ध भी नहीं है "श्रीवृन्दावन हरिप्रिया नित्य विहार स्वतन्त्र" है। परन्तु उस नित्य विहार रास विलास

से उछट कर जो माधुर्य की छटाऐं बाहिर प्रकट होती हैं इन घटाओं को ही "शब्द ब्रह्म" तथा "परब्रह्म" कहते हैं। याने नूपुर कलरव के मधुर शब्द को "शब्दब्रह्म" और पद नख ज्योति को "परब्रह्म" कहते हैं। इन दोनों माधुर्य छटाओं से ही ऐश्वर्य सम्बन्धी वे सब तत्व प्रकट होते है जिनका यश वेद शास्त्र में भिन्न भिन्न नामों से गाया गया है। इसका मतलब यह हुआ सब अवतार, परमात्मा, विश्वकाय नारायण, विष्णु, प्रकृति पुरुष का ईश, सगुण निर्गुण परब्रह्म, अनन्त कोटि वैकुण्ठों के अधिपति तथा ब्रह्मा विष्णु महेश आदि गुणावतार सब श्रीप्रिया प्रीतम की पद नख ज्योति या नूपर से प्रकट हुऐ हैं। रसिक दम्पति के स्वरूप में या इनके विलास में ऐश्वर्य की गन्ध भी नहीं है। इस प्रकार के निरूपण करने से ग्रन्थकार ने एक प्रकार से माधुर्य गुणों की ही प्रशंसा की है। ग्रन्थकार ने रसिक दम्पति के पद नख ज्योति से "परब्रह्म" और इनके मधुर नूपुर रव से शब्द ब्रह्म" का प्राकटच वर्णन किया है इनसे अनेक ऐश्वर्य वाची तत्व प्रकट हुए हैं। ये अर्थवाद नहीं हैं, वास्तिविक में पुराणों उपनिषदों तथा संहिता ग्रन्थों में भी इसी प्रकार वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिये कुच्छ अंश नीचे दिये जाते हैं।

"परब्रह्म" यथाः—

"तदंघ्रि पंकज द्वन्द नख चन्द्र मणि प्रभाः ।
आहुः पूर्ण ब्रह्मणोऽपि कारणं वेद दुर्गमम् ।।"

[पद्म पुराण पाताल खण्ड वृन्दावन महात्म्य]

श्रीप्रिया प्रीतमके चरणारविन्दों के नख चन्द्रों की कान्ति उस पूर्ण परब्रह्म का कारण स्वरूप कहलाती है जो वेदों को भी दुर्गम है।

"शब्द ब्रह्म" यथाः—

राधोवाचः—

"अहं कृष्णश्च युगमंतु कुर्वे रासक्रियां शुभाम् ।
ततश्चकार वै रासं पुनरभ्यन्तरे ययौ ।।
कृता युगमेन सा केलि महानन्दमयी ध्रुवा ।
नूपुराज्जनितो एवः स एव ब्रह्म संज्ञिकः ।।
ततो जातस्तु पुरुषः सुशुद्धः प्रकृते परः ।
ततः प्रकृति पुरुषौ ततो नारायणः परः ।।

तन्नामि कमलाज्जातो ब्रह्माब्रह्मविदां वरः ।
ततो रुद्राश्चमुनयो जाता वैसृष्टि कृतमाः ।।"

[सनत कुमार संहिता पटल ३१ श्लो० ७३-७४-७५-७६]

"एतन्नानावताराणां निधानं वीज मव्ययम् ।
यस्यांशाशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ नरादयः ।।"

[भा० स्कः ३ अः ५ः श्लोक०]

श्रीप्रियाजू कहने लगीः—

अब मैं और प्यारे दोनों मिलकर रास नृत्य करेंगे । इस प्रकार कहकर दोनों रास विलास करके निभृत निकुञ्ज में पधारे । वहां दोनों ने मिलकर आनन्दमयी सुरति क्रीड़ा की । उस समय स्वामिनी जी के नूपर का जो शब्द हुआ उसी को "शब्द ब्रह्म" कहते हैं । इस "शब्द ब्रह्म" से मायातीत "पुरुष" प्रकट हुआ इस से प्रकृति तथा पुरुष [माया अन्तर्यामी] आविर्भाव हुऐ । जिनसे श्रीनारायण प्रकट हुऐ । इनकी नाभि कमल से वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ श्रीब्रह्माजी का जन्म हुआ । इनसे श्रीमहादेवजी तथा अन्य प्रजापति प्रकट हुए ।

श्रीमद्भागवत में वर्णन हैः—

"श्रीनारायण ही सब अवतारों का अक्षय कोष है । अर्थात इनसे ही सब अवतार प्रकट हुए हैं । इसी रूप के छोटे से छोटे अंशों से देवता, पशु पक्षी और मनुष्यादि योनियों की सृष्टि हुई है ।"

उपरोक्त प्रमाणों से ग्रन्थकार का मत कि बड़े से बड़े तत्व रसिक रसिकिनी के चरण कमलों से प्रकट हुए हैं पुष्ट होता है । साथ की साथ यह भी समझ लेना चाहिये श्रीमद्भागवत में वर्णित हैं "शब्द ब्रह्म पर ब्रह्म उभे मे शाश्वती तनुः" । अर्थात श्रीकृष्ण कहते हैंः—"शब्द ब्रह्म पर ब्रह्म" मेरे ही स्वरूप हैं । इसलिये तत्वांश से श्री रसिक दम्पति और उनसे जिनका प्रादुर्भाव है उनतत्वों में भेद बुद्धि नहीं करनी चाहिये । क्योंकि वेद की आज्ञा हैः—

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।"

[२] "उपासक तत्व":—

"श्रीराधिकोपनिषद" में उपासक तत्व दो प्रकार का कहा गया है

[१] सखियाँ जो आह्लादिनी की काय व्यूह रूपा हैं।

[२] श्रीवृन्दावन तथा सेवा सामग्री जो सन्धिनी रूपा हैं। पहिले सखियों को लीजिये:—[१] ईच्छाशक्ति [२] अङ्ग संगनि आदि यद्यपि अन्य अन्य ग्रन्थों में सखियों के बहुत यूथ वर्णन कर रखे हैं जैसे "नित्य सिद्धा" "साधनसिद्धा" "मुनी चरी" तथा "श्रुतिरूपा" आदि परन्तु श्रीमहावाणी ग्रन्थ में श्रीरंग देवी, सुदेवी, ललिता, विशाखा, चम्पलता, चित्र, तुङ्गविद्या तथा इन्दुलेखा इन "अष्ट सहचरिन के बिना परिकर यहाँ और सहचरिन को नहीं प्रवेशा ।।" [सि: सु: पद: ७] इत्यादि वर्णन है, इसलिये इन्हीं सखियों का इस ग्रन्थ में वर्णन किया है। इन्हीं को इच्छा शक्ति कहते हैं इन रङ्गदेवी आदि आठों यूथों की सखियों के नाम गुण तथा सेवा आदि इसी सिद्धान्त सुख पद न० १५ में दी गई है विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखी जाती हैं। ग्रन्थकार सखि विषय को समाप्त करते हुए कहते हैं:—

"ये सब कहीं कहन जो आई। परम नर्म सहचरी समुदाई।
और हूँ अपरंपार सुहाई। अनगिनती जुगिनी नहीं जाई ।।
को वरने महा सिन्धु तरंगा। भू रजकन उडुगन अप्रसंगा।
लखि लखिइनकौ अद्भुत अङ्गा। चकित होय चित रहत अनङ्गा ।।
ऐ इनहीसीं और न कोई। उपमा कहन कौन मतिहोई।
पिय प्यारी इच्छावपु जोई। अमित कला सुख सेवें सोई ।।
परम चतुर यद्यपि गुन भोरी। एक डार कीसी सब तोरी।
तत्पर टहल महल रसवोरी। जीवनि जिय श्रीहरिप्रिया जोरी ।।"

[सि: सु: पद: १५]

यद्यपि सब सखियाँ रूप, गुण, तथा वयसादि में सब समान हैं जैसा कि वर्णित है "सम वय सुधर स्वरूप विराजै।" "एकही साँचे माहें ढरीसी," तथा "एक डार की सी सब तोरी।" इत्यादि, तो भी भाव की गुरुता तथा लघुता से या रहस्य लीला अधिकार अनिअधिकार दृष्टि से ग्रन्थकार ने इनको पाञ्च प्रकार से विभक्त किया है। "सखी, सहेली, सहचरि, सुन्दरि, मञ्जरि महल टहल टगलगि कोउ आवति कोउ जाति जतन जगि अतन अङ्ग सङ्गनि अनुरागि।" [सि: सु: पद: ४]

यद्यपि नाम भिन्न भिन्न हैं" श्री उज्ज्वल नीलमणि" कार ने भी श्रीप्रियाजू के यूथ की सखियों के पाञ्च ही भेद किये हैं। यथा:—

"तास्तु वृन्दावनेश्वर्याः सख्यः पञ्चविधा मताः ।
सख्यश्च नित्यसख्यश्च, प्राण सख्यश्च काश्चन ।
प्रिय सख्यश्च परम प्रेष्ठ सख्यश्च विश्रुता ।।"

श्रीप्रियाजू के यूथ की सखियाँ पाञ्च प्रकार की हैं:—

सखी, नित्य सखी, प्राण सखी, प्रिय सखी तथा परम प्रेष्ट सखी । आगे चलकर कहा है, इनमें से श्रीललितादि परम प्रेष्ट सखी कहलाती हैं ।

इच्छा शक्ति तो ये हुईं । अब दूसरी प्रकार की अङ्ग संगिनी सखियों को लीजिये । ये वस्त्र भूषणादि स्वरूपों से रसिक दम्पति के दिव्य मङ्गल विग्रह में विराजती हैं ।

"सुनाऊँ यश अङ्ग सङ्ग सहचरि चतुरविधि संकीर्तनी ।
प्रिया प्रीतम की सदा अन्तरङ्गिनी समवर्तिनी ।।
दम्पतिरिझवें सहज, सेवा, सुरत, उत्सव, सजि सदा ।
परम प्यारी काहू विधि करि न्यारी होत नहीं कदा ।।"

[सि: सु: पद: ३७]

"अङ्गसङ्गिनी" सहचरी चार प्रकार की गाई गई हैं । ये रसिक दम्पति को अत्यन्त प्यारी हैं । ये कभी भी इनसे अलग नहीं होती हैं । सेवा, उत्सव, सुरत तथा सहज सुखों की शोभा बढ़ाती हुई श्रीप्रिया प्रीतम को ये रिझाती रहती हैं इनके चार प्रकार ये हैं :—

[१] श्रीप्रियाजू की "अङ्ग संगनियाँ" इनके वस्त्र आभूषण स्वरूपा ।

[२] श्रीलालजू की "अङ्गसङ्गिनियाँ" इनके वस्त्र आभूषण रूपा ।

[३] "अन्तरङ्गिनी" अर्थात श्रीप्रिया प्रीतम की अन्तरङ्ग वृत्ति रूपा । जैसे इन दोनों का प्रेम, स्नेह, चाव, भाव आदि ।

[४] "समवर्तिनी" रसिक दम्पति के सिंहासन, चँवर, छत्र झारी तथा दर्पण आदि स्वरूपा ।

ग्रन्थकार ने उपरोक्त चारों प्रकार की अङ्ग सङ्गिनियों के पृथक् पृथक् नाम निरूपण किये हैं ।

सखियों के सौभाग्य को कहाँ तक कहें। ग्रन्थकार ने "तालिका" में यहाँ तक कह दिया है :—

"आनन्द अह्लादिनि पिय प्यारी। सुरति सोई सुन्दरि सहचारी।"

अर्थात् "आनन्द अह्लाद" स्वरूपा पिय प्यारी की जो सुरत विहार के लिये वृत्तियाँ हैं वही सहचरो का स्वरूप है।

(२) अब "उपासक तत्व" के दूसरे भाग "श्रीवृन्दावन" को लीजिये। ग्रन्थकार ने समस्त ग्रन्थ में श्रीवृन्दावन की महिमा बहुत विस्तार पूर्वक वर्णन की है। एक होते हुए भी श्रीवृन्दावन दो प्रकार का प्रतीत होता है।

(१) भूमि वृन्दावन जो सबके दृष्टि गोचर है।

(२) अप्रकट नित्य वृन्दावन जो एक मात्र भाव मई दृष्टि से ही देखा जा सकता है। वास्तव में इन दोनों में भेद नहीं है। जैसे मन्दिरों में श्रीअर्चाविग्रह विराजते हैं। भाव होने से वे साक्षात की तरह बातचीत करने लग जाते हैं इसी प्रकार भाव होने से यह भूमि वृन्दावन साक्षात की नाँई दिखने लग जाता है।

श्रीमहावाणी सिद्धान्त सुख में तीन पदों द्वारा इसका स्वरूप व्यक्त किया गया है।

(१) ऐश्वर्य स्वरूप :—

"अखिल ब्रह्माण्ड वैराट के थाट सब............तहाँ निज धाम वृन्दाविपिन जग मगै दिव्य वैभवन को दिव्य आगार"। (सिः सुः पदः १०)

(२) माधुर्य स्वरूप :—

"दिव्य कनक अवनी वनी जटित मनि वहु भान्ति।
अतिविचित्रता सोठनी रमनी कमनी कान्ति॥" (सिः सु० पद० ३)

(२) रस मय स्वरूपः—रसिक दम्पति का तन स्वरूप।

"विविध सुरति सम्पति सहित अति अद्भुत अभिराम।
चिदानंद घन जयति जय श्रीवृंदावन धाम॥" (सिः सुः पदः ४)

इन तीनों पदों का अर्थ विस्तार पूर्वक शास्त्र प्रमाणों सहित इन पदों के उचित स्थान पर किया गया है। श्रीयमुनाजी श्रीवृन्दावन के तरु लता तथा अन्य सेवा सामग्री सब "उपासक तत्व" के अंतर्गत ही समझें।

(३) "कृपा फलम्" । "अभिधेय तत्व" अर्थात् भक्ति :—

"भक्ति" की विस्तार पूर्वक व्याख्या इसी "सिद्धांत सुख" के मङ्गलाचरण के श्लोकों के अंतर्गत "परमौ नयमः प्रेमणों" तथा "परागम्यौ" के शीर्षक से की जा चुकी है। यहाँ इतना जानना चाहिये। कृपा का फल एक मात्र भक्ति है। क्योंकि किसी साधन से भी भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। ग्रंथकार स्वयं कहते हैं:—

"साधन करिनाकादि फल नश्वर पावत जोय।
एक कृपा ही करि कछु सिद्ध होय सो होय ।।
एक कृपा करि होय सो होई। साधन सिद्ध रह्यो नहीं कोई ।।
नाकादि नश्वर फलपावैं। जाय आय में आयु बितावैं ।।
जितने साधन उर में धरहीं। तितने या बिच अंतर करहीं ।।
सब तजि सदा मनावहिं याही। औरन ते मन धरि अवज्ञा हीं ।।
श्रीहरिप्रिया परम पद चाहैं। तो याविन न आन उमा हैं ।।"

(सिः सुः पदः ३०)

कर्म, ज्ञान तथा तप आदि साधनों से स्वर्गादि नश्वर फल मिल सकते हैं। परंतु भक्ति एक मात्र कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। कृपा छोड़कर यदि अन्य साधनों से भक्ति प्राप्त करने की चेष्टा की जावे तो प्राप्ति तो दूर रही अपितु अन्य साधन भक्ति प्राप्ति में अन्तरा डाल देंगे। अतः सब साधनों को छोड़कर, कृपा ही की बाट निहारनी चाहिये जो श्रीहरि एवं प्रिया के चरणारविन्दों की प्राप्ति की इच्छा है तो कृपा से अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है।

कृपा भक्ति सम्बन्धी अनुष्ठानों द्वारा हो सकती है।
"सेवा साधक रूपेण सिद्ध रूपेण चात्रहि।" (भक्ति रसामृत सिंधु)

अर्थात भक्ति दो प्रकार से अनुष्ठित होती है। पहिले यथा अवस्थित देह द्वारा दूसरे अन्तश्चिन्तित देह से। ग्रन्थकार ने दो पदों द्वारा दोनों प्रकार की अनुष्ठान विधि बतलाई है।

(१) "साधक रूपेण" यथा अवस्थित देह द्वारा :—

"विधिनिशेध अदिक जिते कर्म धर्म तजि तास।
प्रभु के आश्रय आवहीं सो कहिये निज दास ।।

जो कोई प्रभु के आश्रय आवै" इत्यादि [सिः सुः पदः ३१]

[२] "सिद्ध रूपेण" अंतश्चिन्तित देह से :—

"अग्रवर्ति इहिं अवसरहिं आईं धरि वर वेष।
और निबाहू सङ्गमिलि चलहु चलें निज देश।।

चलहु चलहु चलये निज देश.......................................
मनजनादि नवसत अम्बरन तन सजियेमन रञ्जन शुभ वेष।।"
इत्यादि।। [सिः सुः पदः १२]

[४] "भक्ति रस स्ततः परम्"। प्रयोजन तत्व अर्थात प्रेम आद्य आचार्य श्री१००८ श्रीनिम्बार्क भगवान् आज्ञा करते हैं :—

"कृपाऽस्य दैन्यादि युजि प्रजायते।
यथाभवेत्प्रेम विशेष लक्षणा।।
भक्ति ह्यनन्याधिपते र्महात्मनः।
साचोत्तमा साधन रूपिकाऽपरा।।" [वेदान्त कामधेनु श्लो० ६]

स्वाभाविक कारुण्य वात्सल्यादि गुणों के सागर श्रीकृष्ण की कृपा दीनता आदि गुणों युक्त पुरुष पर होती है जिस कृपा से प्रेमलक्षणा भक्ति का उदय होता है। यह भक्ति सब भक्तियों में उत्तम मानी गई है। अतः इस को 'परा भक्ति'' कहते हैं। और साधन रूपा भक्ति जो कि सत्संग तथा श्रद्धा से प्रकट होती है वह अपरा भक्ति है। अर्थात् प्रेम लक्षणा फल रूपा है और उससे अन्य साधन रूपा हैं।

भक्ति अनुष्ठान से भक्ति उच्चतम अवस्था में पोंहच कर रसायित हो जाती है। उसी को "परा भक्ति" "रागानुगा" या "पुष्टि" कहते हैं। यही प्रयोजन तत्व है। इसकी अनुष्ठान विधि यथा अवस्थित देह द्वारा तथा अनश्चिन्तित देह से पहिले प्रकरण में कह चुके हैं। केवल इन दोनों में इतना अन्तर है। पहिले वर्णित भक्ति की अपक्व अवस्था है और फल रूपा होने से वही भक्ति पक्व हो जाती है। इस अवस्था में भी साधक को निम्नलिखित अनुष्ठान करने की ग्रन्थकार आज्ञा करते हैं :—

"पहिले रसिक जनन को सेवे। दूजी दया हृदय धरि लेवे।
तीजी धर्म सुनिष्टागुन है। चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनि है।।

पंचमि पद पङ्कज अनुरागै। षष्टी रूप अधिकता पागै ॥
सप्तमि प्रेम हिये विरधावें। अष्टम रूप ध्यान गुन गावें ॥
नवमी दृढ़ता निश्चैगहिवें। दशमी रस की सरिता वहिवें ॥
या अनुक्रम करि जो अनुसरहीं। शनै शनै जगतें निखरहीं ॥
परम धाम परिकर मध्य वसहीं। श्रीहरिप्रिया हितु संग लसहीं ॥"

(सि: सु: पद ३१)

उपरोक्त पद से "परा भक्ति" प्राप्ति की १० पैडी बतलाई गई हैं। इनके अनुष्ठान से साधक शनै शनै इस जगत से छूट जाता है और श्रीवृन्दावन नित्य विहार में सखियों के परिकर में सम्मिलित हो जाता है वहाँ अपने यूथ की सखी श्रीहितु सहचरी जी और श्रीहरिप्रियाजू के साथ सुशोभित होता है।

(५) "विरोधी तत्व।"

अर्थात वे बातें जो प्रिया प्रीतम की प्राप्ति में रुकावटें डालती हैं। यों तो यह बहुत बड़ा विषय है, समस्त वेद शास्त्र, जो बातें भगवत् प्राप्ति में विघ्न रूप हैं उन्हीं को बतलाने के लिये यत्नशील है। तो भी काम, क्रोध, लोभ, मोह मद तथा मात्सर्यादि के अतिरिक्त जो जो मोटी मोटी बातें विघ्नरूप हैं उनको अन्वय: व्यतिरेक से ग्रन्थकार बतलाते हैं :—

"जो कोऊ प्रभु के आश्रय आवै। सो अन्या श्रय सब छिट कावै।
बिधि निषेध के जे जे धर्म। तिनको त्याग रहे निष्कर्म ॥
झूट क्रोध निन्दा तजि देही। विन प्रसाद मुख और न लेही ॥
सब जीवन पर करुणा राखे। कवहूँ कठोर वचन नहिं भाषै ॥
मन मधुर रस माँहि समोवै। घरी पहर पल वृथा न खोवै ॥
सत्गुरु के मारग पर धारै। हरि सत् गुरु विच भेद न पारै ॥
येद्वादश लक्षण अवगाहै। जो जन परा परम पद चाहै ॥

(सि: सु: पद: ३१)

यहाँ ग्रन्थकार ने "पराभक्ति" प्राप्ति इच्छुक साधक के लिये १२ बातें अन्वय: व्यतिरेक से विरोधी वतलाई हैं :—

'१' भगवत् शरणागति अर्थात वैष्णव दीक्षा लेना विधि नहीं लेना विरोधी।
'२' दीक्षा लेने के बाद भी अन्य धर्मों में आस्था रखनी विरोधी '३' झूट '४' क्रोध

'५' पर निन्दा करनी विरोधी। '६' विन प्रसाद अर्थात अमणिया खाना विरोधी। '७' सब जीवों पर करुणा रखनी विधि नहीं रखनी विरोधी। '८' किसी से कभी भी कठोर वचन नहीं बोलना विधि, बोलना विरोधी। '९' मनको माधुर्य रस में लगाना विधि, नहीं लगाना विरोधी '१०' घरी पहर क्या अपितु १ पल भी श्रीप्रिया प्रीतम की सेवा बिना वृथा न खोवे विधि। व्यर्थ खोना विरोधी '११' सत्गुरु के वताये हुए मार्ग पर चलना विधि, नहीं चलना विरोधी '१२' हरि तथा सत गुरु एक ही स्वरूप मानना विधि, नहीं मानना विरोधी।

इस प्रकार से ग्रन्थकार ने पाञ्चों तत्वों का इस सिद्धान्त सुख" में निरूपण किया है।

श्रीमहावाणी ग्रन्थ में श्रीप्रिया प्रीतम की रहस्य लीलाओं को स्पष्ट शब्दों में वर्णन नहीं किया है अपितु वे लीलायें अन्य अन्य नामों से इस प्रकार से निरूपण की गई हैं जिससे कि अनधिकारी न समझ सके। अतः अधिकारियों के समझाने के लिये "सिद्धान्त सुख" के अन्त में एक "तालिका" अर्थात शब्द कोष वर्णन किया गया है। ग्रन्थकार ने सब राग रगिनियों को भी सखी स्वरूप से निरूपण किया है "तालिका" में सबका भेद खोला है। इस "सिद्धान्त सुख" में सब राग रागिनियाँ अष्टकाल सेवा पद्धति से दी गई हैं। यथाः—

(१) "निशान्त" में ५ पद शुभरवा अर्थात भैरव राग में।

(२) "प्रातः" में ६ पद विश्राभा अर्थात् विभास में और ४ पद विलासावलि अर्थात विलावल में।

(३) "पूर्वाह्न" में ४ पद आनन्दा अर्थात आसावरी में।

(४) "मध्याह्न" में ४ पद सुरङ्गागा अर्थात् सांरग में।

(५) "अपराह्न" में ४ पद गोर मुखी अर्थात गौरी में।

[६] "सायं" में ३ पद केलि कौमुदी अर्थात् कल्याण में।

[७] "प्रदोष" में २ पद कर्णकान्ता अर्थात् कान्हरो में और २ पद विचित्र शोभा अर्थात विहागरौ में।

[८] "नक्त" में २ पद कन्दर्प का अर्थात् कैदारो २ पद सुष्टु-सुन्दरि अर्थात् सोरठ में।

इस प्रकार से पदों का अष्टकालीन सेवा पद्धति से चुनाव किया गया है।

॥ इति श्रीमहावाणी सिद्धान्त सुख भूमिका समाप्तम् ॥

॥ श्रीनिकुञ्जविहारिभ्यां नमः ॥

अथ श्रीमहावाणी सिद्धान्त सुखं

अर्थ समन्वय टीका सहित लिख्यते ॥

॥ श्लोक ॥

राधाकृष्णौ महारम्यौ रङ्गदेव्यादिसेवितौ ।
परमौ नियमप्रेम्णौ किशोरौ रसिकेश्वरौ ॥१॥
निकुञ्जस्थौ परागम्यौ परात्परतमावुभौ ।
सर्वेषां प्रेरकौ दिव्यौ सदा वंदे कलात्मकौ ॥२॥

अर्थ—मैं उन श्रीप्रिया प्रीतम की वन्दना करता हूँ, जो अति सुन्दर हैं तथा श्रीरंग-देवी आदि सखियों से जो सुसेवित हैं। जिनकी प्राप्ति नियम अर्थात् विधि भक्ति, प्रेम अर्थात विधि के अनुष्ठान करने से जो प्राप्त हुई प्रेम लक्षणा भक्ति उससे परे हैं। जो नित्य किशोर तथा रसकेन्द्र चूड़ामणि हैं। जो नित्य निकुञ्ज में विराजमान हैं। जो एक मात्र "पराभक्ति" से ही प्राप्त हो सकते हैं। जो पर से पर तत्व स्वरूप, सब के प्रेरक तथा दिव्य हैं। जो कलात्मक अर्थात कामवीज स्वरूप हैं ॥१॥२॥

श्रीमङ्गला चरण के इन दोनों श्लोकों द्वारा श्रीग्रन्थकार ने "सिद्धान्त सुख" का प्रायः सभी प्रतिपाद्य विषय वीज रूप से वर्णन कर दिया है।

अब प्रतिपाद्य तत्व अर्थात् "श्रीराधा कृष्णौ" और इनके सब विशेषणों की भिन्न भिन्न रूप से व्याख्या करते हैं।

॥ राधा कृष्णौ ॥

"नमस्तस्मै भगवते कृष्णाया कुण्ठ मेधसे ।
राधाधर सुधासिन्धौ नमो नित्य विहारिणे ॥"
"राधां कृष्ण स्वरूपां वै कृष्णं राधा स्वरूपिणम् ॥" इत्यादि ।

"मैं अकुण्ठ मेधा उन श्रीभगवान् श्रीकृष्ण को अभिवादन करता हूँ जो श्रीराधा-धर सुधा सिन्धु में निरन्तर विहार करते रहते हैं।"

"श्रीप्रियाजू श्रीलालजू के स्वरूप हैं और श्रीलालजू श्रीप्रियाजू के स्वरूप हैं ॥"

उपरोक्त श्लोकों से यह भली भाँति से विदित होता है यद्यपि श्रीप्रिया प्रीतम तत्वांश से एक ही स्वरूप हैं "रस रूपों रसायनौ है" तो भी श्रीलालजू रस भोक्ता और श्रीस्वामिनीजू रस स्वरूप तथा रसदातृ हैं। इसी ग्रन्थ में परस्पर के इस सम्बन्ध को कई ठोर व्यक्त किया गया है। यहाँ कुछ अंश दिये जाते हैं। यथा—

"जयति श्रीराधिका कृष्ण सुख साधिका।
सुगुण आगाधिका मम शरण्या ।।"

"जयति रस दायिका पिय शयन शाषिका।
नित्य नव नायिका मम शरण्या।"

"जयति पिय पोषिका नित्य तन तोषिका
शोक सर शोषिका मम शरण्या।"

"जयति नग भूषणा पिय जलज पूषणा
श्याम संतूषणा मम शरण्या।"

"जयति पीयूषदा प्रेयसी पारदा
सौहृदा शारदा मम शरण्या।"

[मः बाः उः सुः शरणापत्ति]

"कृष्णमन मधुकर हिता—मालती वन माहकिता।
कृष्ण आनन्द दायिका—नित्य नौतन नायिका।
कृष्ण सुखदा सागरी—अमित रूप उजागरी।
कृष्ण पंकज पोषनी—समर हिन दुख शोषनी।
कृष्ण अलि मनरञ्जनी—सहज सुभित कञ्जनी।
कृष्ण चातक स्वातिकी—जीव जीवनि थातिकी।
इत्यादि।   [मः बाः उः सुः जयति]

इस सम्बन्ध को कई प्रकार से वर्णन किया गया है।

श्रीप्रिया प्रीतम एक ही रस के दो स्वरूप हैं। इनके पृथक् पृथक् होने का कारण "राधिका तापनी उपनिषत्" में वर्णन किया गया है:—

"येऽयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत् ।।"

श्रीराधामाधव एक ही रस के समुद्र स्वरूपा हैं। केवल क्रीड़ा करने के लिये ही

दो स्वरूपों से प्रकट हुए हैं। इसी विषय को "प्रेम सम्पुट" में इस प्रकार से कहा गया है। श्रीप्रियाजी कहती हैं:—

"एकात्मनीह रसपूर्णतमेत्यगाधे एकासुसंग्रथितमेव तनुद्वयं नौ।
कस्मिश्चिदेक सरसीव चकासदेकनालोत्थमब्जयुगलं खलु नीलपीतम्॥"
(श्रीप्रेम सम्पुटः श्लोक १०८)

जैसे किसी एक सरोवर में एक नाल से उत्पन्न होकर नील और पीत वर्ण के दो कमल विकसित होते हैं, वैसे हो अतिशय अगाध रस परिपूर्ण एक ही आत्मा वाले हमारे नील पीत वर्ण दो शरीर एक ही प्राण में संग्रथित होकर रहते हैं।

इसी विषय को श्रीग्रन्थकार "सुरत सुख" में इस प्रकार अंकित करते हैं:—

"दोहाः—पागे प्रेम सिंगार में भीजे सहज सुरंग।
वाग विशद अनुराग दिवि अम्मृत के विवि अङ्ग॥
पदः—अमृत की विवि मूर्ति मोहनी मोहनजू रस रँग भीने।
प्रेम सिंगार में पागे हैं प्रियतम अङ्ग अङ्ग वश रङ्ग भीनें॥
अति अनुराग के वागमें विहरत वितन विपुल लस रंग भीनें।
श्रीहरिप्रिया सु जीवनि जोरी प्रगट विशद यश रङ्ग भीनें॥"
(म. बा. सु. सु. पद २२०)

अर्थात् प्रिया प्रीतम दौनों के दिव्य मङ्गल विग्रह अमृत के हैं। श्रीलालजू "रस" प्रिया जू "रङ्ग" में भीजी हुई हैं। श्रीप्रीतम "शृङ्गार" श्रीस्वामिनीजू 'प्रेम' में पगी हुई हैं। श्रीलालजू के अङ्ग अङ्ग 'वश रङ्ग' में भीगे हुए हैं अर्थात श्रीप्रीतम ने अपने आपको सर्वथा प्रियाजू के आधीन कर रक्खा है! दोनों 'अनुराग' के वाग में निरन्तर विहार कर रहे हैं। उभय परस्पर के 'काम' से अत्यन्त पीड़ित हैं। श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि यह जोड़ी 'विशद् यश' प्रकट करने के लिये ही प्रकटी है। मेरे प्राणों की जीवन स्वरूप है।

अब इस पद के प्रत्येक विषय पर प्रकाश डाला जाता है।

"अमृत के विवि मूरति..............." यथाः—

"आनन्द रूपममृतं यद्विभाति (मु. उपनिषत्)
इत्यत्रापि रूप पदं विग्रह समर्पकं।

जिनके स्वरूप आनन्द अमृत से सुशोभित हैं यहाँ 'रूप' पद विग्रह बाची है ।

पुनः । यथा :—

"अखिलरसामृतमूर्तिः प्रसृमररुचिरुद्धतारकापालिः ।।" (भक्ति. रसा. सिन्धौ)

श्रीकृष्ण अखिल रस रूपी अमृत की मूर्ति हैं ।

............'मोहनी मोहन जू रस रङ्ग भीने ।'............

श्रीमोहनी जी रङ्ग तथा श्रीमोहन जी 'रस' में भीने हुए हैं ।

श्रीमोहनी जी 'रंग' में भीनी हुई । यथाः—

"श्रीराधिके सुरतरङ्गि नितम्ब भागे' ..." (श्रीराधा सु. निधी. श्लो. १९)

हे सुरत रङ्ग से रञ्जित नितम्ब वाली श्रीराधिके श्रीमोहन जी 'रस' में भीने हुए । यथाः— "रसो वै सः । रस ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति" (उपनिषद्)

श्रीकृष्ण रस स्वरूप हैं जिनको प्राप्त करके जीव नित्य आनन्द लाभ करता है ।

............"प्रेम सिङ्गार में पागे है ।"............

श्रीप्रिया जी 'प्रेम' और श्रीलाल जी 'शृंगार' में पगे हुए हैं ।

श्रीप्रिया जी । यथाः—

प्रीतिरिव मूर्ति मती" (श्री रा. सु. निधी ११९ श्लोक)

श्रीप्रियाजी (प्रेम की मूर्ति हैं)

श्रीलालजी 'शृंगार' । यथाः—

"शृंगार रस सर्वस्वं शिखि पिञ्छ विभूषणम् ।
अङ्गीकृत नराकार माश्रये भुवनाश्रयम् ।। (भक्तिरसायन)

मैं नराकार स्वरूप उन श्याम सुन्दर का आश्रय लेता हूँ । जो शृंगार रस स्वरूप हैं, मोर मुकट से विभूषित तथा जो सब भुवनों के आश्रय स्वरूप हैं ।

............'प्रीतम अङ्ग अङ्ग वश रङ्ग भीने ।'

श्रीप्रीतम ने अपने आपको सर्वथा श्रीप्रियाजी के अधीन कर रक्खा है । क्योंकि श्रीलालजी 'धीर ललित' नायक है जिनका स्वाभाविक वह गुण हैं । यथाः—

"विदग्धो नव तारुण्यः परिहास विशारदः ।
निश्चिन्तो धीर ललितः स्यात्प्रायः प्रेयसी वशः ।। (भक्ति. र. सि.)

जो रसिक शिरोमणि नव कैशोर हास्य परिहास्य में चतुर चिन्ता रहित तथा प्रायः अपनी प्रिया के अधीन रहता है उसको 'धीर ललित' नायक कहते हैं ।

'अति अनुराग के बाग में विहरत–"

ये दोनों अति अनुराग अर्थात् प्रेम के बाग में विहार करते हैं । यथाः––

"परस्परं प्रेम रसे निमग्नमशेष संम्मोहन रूप केलि ।
वृन्दावनान्तर्नव कुञ्ज गेहेतन्नील पीतं मिथुनं चकास्ति ।।
(रा. सु. निधी. १६६ श्लो.)

वह नील पीत रसिक दम्पति वृन्दावन नव कुञ्ज गेह में सुशोभित हैं जो परस्पर प्रेम रूपी रस में निमग्न हैं जिनका रूप तथा केलि सबको सम्मोहन करने वाली है ।

"वितन विपुल लश रङ्ग भीने श्रीहरिप्रिया सु जीवनि जोरी प्रगट विशद यश रङ्ग भीने ।"

दौंनों परस्पर के काम से अत्यन्त व्याकुल हैं । यह सु जीवन जोड़ी प्रेम रूपी यश को वितीर्ण करने के लिये प्रकट हुई है । यथाः—

"रसावतार विस्तारं वंशी वादन सुन्दरम् ।
रति काम मदा क्लांत राधा कृष्ण भजाम्यहम् ।।"

मैं उन श्रीराधा माधव को भजता हूँ जिनका अवतार ही रस को विस्तार करने के लिये है जो सुन्दर बंशी बजाते हैं और जो परस्पर के रति काम मद से अत्यन्त पीड़ित हैं ।

अब "राधाकृष्णौ" शब्दों का प्रकृति प्रत्यय द्वारा जो अर्थ निश्पन्न होता है, वह वर्णन करते हैं । राधा :—

"श्रीराधिकोपनिषत्" में श्रीराधानाम की दो प्रकार से व्याख्या की गई है :—

(१) "कृष्णेन आरध्यत इति राधा"

(२) "अर्थात् जो सर्वाराध्य श्रीकृष्ण की भी आराध्या"

(१) "कृष्णं समाराधयति इति राधा"

(२) "जो श्रीकृष्ण की सर्वश्रेष्ठ आराधिका हैं ।।"

अब प्रथम व्युत्पत्ति को वर्णन करते हैं :—

"यन्नामांकित मन्त्र जापन परः प्रीत्या स्वयं माधव ।
श्रीकृष्णोपि तद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम् ।।"

(श्रीराधासुधानिधि श्लोः ९४)

"सर्वाकर्षक स्वयं श्रीकृष्ण भी इस नाम को अत्यन्त प्रीति से निरन्तर जप करते रहते हैं । यह दानों वर्ण मेरे हृदय में निरन्तर स्फुरत हों ।

पुनः । यथा :—"कालिन्दी तट कुञ्ज मन्दिर गतो योगीन्दवद्
यत्पद ज्योति ध्यान परः सदा जपंति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।।"

(श्रीराधा सुधानिधि श्लोः ९५)

श्रीकृष्ण यमुना के तट पर कुञ्ज मन्दिर में बैठकर योगेन्द्रों के सदृश श्रीप्रियाजू के चरणारविन्दों की ज्योति का ध्यान करते हैं ।

स्वयं श्रीग्रन्थकार भी इसी विषय को इसी ग्रन्थ में इस प्रकार कहते हैं :—

"जयति हेमांग दा स्याम सेव्या सदा ।
रति रहसि रंग दा मम शरण्या ।।

"जयति पिय पूजिता कल स्वर कूजिता ।
कोकिल च मूजिता मम शरण्या ।।

जयति हरि जल्पिता चारु तिलकांकिता ।
कृष्ण परि बन्दिता मम शरण्या ।।

जयति कृष्ण स्तुता कृष्ण गुण गण रता ।
कृष्ण मन बञ्छिता मम शरण्या ।।

जयति प्राणाधिके कृष्ण आराधिके ।
हरिप्रिया राधिके मम शरण्या ।।"

(म. बा. उ. सु. शरणापत्ति)

उपरोक्त से यह सिद्ध होता है कि श्रीस्वामिनी जी सर्वाराध्य श्रीकृष्ण की भी आरध्या हैं, इसीलिये आपका नाम श्रीराधा है ।

अब दूसरी व्युत्पत्ति को सुनिये :—

"कृष्णं समाराधयति इति राधा" (राधिकोपनिषत्)

"या वाराधयति प्रियं ब्रजमणिं प्रौढ़ानुरागोत्सवैः ।। (राधा सु. नि. श्लोक ९७)

श्रीराधिका जी अत्यन्त गाढ़ अनुराग उत्सवों से ब्रजमणि श्रीलाल जू को आराधना करती हैं ।

"अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः " ।।

(श्रीभा. १० स्क. ३० अ. २८ श्लो.)

अर्थात् इन्हीं (श्रीराधिका जी) ने वास्तव में श्रीभगवान हरि ईश्वर (श्रीकृष्ण) की आराधना की है :—

"अनया राध्यते कृष्णो भगवान्हरिरीश्वरः ।
लीलया रस वाहिन्या तेन राधा प्रकीर्तिता ।।"

(पञ्चरात्रे बृहद् ब्रह्म संहिता)

यह रस वाहिनी लीला द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की आराधना करती हैं इसीलिये इनका नाम राधा है । इस ग्रन्थ में भी वर्णित है :—

दोहाः—सुरत रङ्ग न्हानादि लै अरु आरति पर जंत ।
भली भांति पूज्यौ मृग नैनि मनोहर कंत ।।

पदः—आजु भली भांति पूज्यौ वसंत । मिलि मृग नैनी मन हरन कंत ।।
अन्हवाये सचि सुचि सुरत रङ्ग । अंबर अनुराग अंगोछि अङ्ग ।।
प्रेमांबर सुन्दर अति रसाल । पहिराये रङ्ग रङ्गीली बाल ।।
आलिंगन अभरन तन सजाय । चरच्यो चंदन चुम्बन सुहाय ।।
सुख आसन उपरि करि सँजोग । भुगताये बहु विधि भाव भोग ।।
अचवायो अधर सुधा अमोल । मुख बीरी दीनी कल कपोल ।।
तिरछी चितवनि आरति उतारि । वलि गई श्रीहरिप्रिया छबि निहार ।।

(म. बा. उ. सु. बसन्त)

उपरोक्त प्रमाणों से यह भली भाँति ज्ञात होता है कि श्रीस्वामिनी जी श्रीकृष्ण की सर्वश्रेष्ठ आराधिका हैं ।

—: कृष्णौः :—

श्रीकृष्ण शब्द की वेद, शास्त्र तथा पुराणादि में अपनी अपनी उपासना के अनुकूल बहुत प्रकार से व्याख्या की गई है ।

(१) "कृषिर्भू वाचको शब्दो णश्च निवृति वाचकः ।
तयो रैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥" (महाभारत)

(२) "कर्षतीति स्वयं आत्मानमपि कर्षतीति कृष्णः ॥"

(३) कृष्यते इति कृष्णः ॥"

(१) प्रथम व्याख्या का अर्थ ऊपर से निर्विशेष परब्रह्म सदृस प्रतीत होता है । वास्तविक में ऐसा नहीं है । "श्रीगौतमी तन्त्र" में "श्रीअष्टादशाक्षर" गोपाल मन्त्र की व्याख्या करते हुए वर्णित है :—

"कृष शब्दश्च सत्तार्थो णश्चानन्द स्वरूपकः ।
सुख रूपो भवेदात्मा भावानन्द मयस्ततः ॥"

"कृषि भू वाचको" में जो "कृषि" का अर्थ "भू" कहा गया है वहाँ केवल "सत्ता" अर्थ नहीं समझना चाहिये बल्कि "आकर्षण रूपा" सत्ता जानना चाहिये । जैसे घट सत्ता वाचक कहने से केवल सत्ता नहीं लिया जाता है और न पट सत्ता ही लिया जाता है बल्कि घट सत्ता ही लिया जाता है । इसी प्रकार यहाँ भी "कृषी" शब्द से आकर्षण सत्ता अर्थ ही लेना चाहिये । अर्थात आकर्षण करने वाले । 'ण' का अर्थ निवृत आनन्द स्वरूप है । 'कृष्' और 'ण' मिलकर 'कृष्ण' शब्द निषपन्न हुआ अर्थात् जो अपनी ओर आकर्षण करके अनिर्वचनीय आनन्द प्रदान करते हैं ।

(२) "कर्षतीति स्वयं अत्मानमपि कर्षतीति कृष्णः" श्रीकृष्ण की रूप माधुरी सब स्थावर जंगमों को तो आकर्षण करती है वह स्वयं आप भी अपने रूप को देख कर अर्कषित विस्मित एवं मुग्ध हो जाते हैं :—

यन्मर्त्य लीलौपयिकं स्वयोगमायावलं दर्शयता गृहीत ।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्ग ॥
(श्रीभा. ३स्क. २अ. १२ श्लो.)

श्रीकृष्ण ने अपनी योगमाया का प्रभाव दिखाने के लिये मानव लीलाओं के योग्य जो दिव्य मङ्गल विग्रह प्रकट किया है वह इतना सुन्दर है कि उसे देखकर सारा जगत्

तो मोहित हो ही जाता है, वे स्वयं भी अपनी रूप माधुरी से विस्मित एवं मुग्ध हो जाते हैं। उस रूप में सौभाग्य और सुन्दरता की पराकाष्टा है। उससे अङ्गों के आभूषण भी विभूषित हो जाते हैं।

और भी वर्णित हैं :—

अपरि कलित पूर्वः कश्चमत्कार कारी।
स्फुर्तिमम गरीयानेष माधुर्य पूरः।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य या लुब्ध चेताः
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेवा ॥ (श्रीललित माधव ।८।३२।)

अहो ! जिसका पहले कभी अनुभव नहीं हुआ तथा चमत्कार जनक एवं श्रेष्ठ यह मेरा अनिर्वचनीय माधुर्य समूह कैसा स्फुरित हो रहा है, जिसको देखकर स्वयं मैं भी लुब्ध चित्त होकर श्रीराधिकाजी की भाँति उत्सुकता पूर्वक उपभोग करने की अभिलाषा करता हूँ।

(३) कृष्यते (अनया राधया) इति कृष्णः।

जो स्वामिनी श्रीराधिका जी से आकर्षित हों अर्थात् उनके अधीन हों वह है श्रीकृष्ण। श्रीलालजी 'धीर ललित नायक हैं। यह बात प्रसिद्ध है। इसलिये श्रीप्रिया जू के आधीन होना इनका स्वाभाविक धर्म है।

"विदग्धो नव तारुण्यः परिहास विशारदः।
निश्चिन्तो धीर ललितः स्यात्प्रायः प्रेयसी वशः ॥ (भक्तिरसामृत सिन्धु)

जो रसिक शिरोमणि, नव कैशोर, हास्य परिहास्य में चतुर चिन्ता रहित तथा प्रायः अपनी प्रिया के अधीन रहता है उसको 'धीर ललित नायक' कहते हैं।

उपरोक्त प्रकार से श्रीकृष्ण शब्द की प्रकृति प्रत्यय द्वारा व्याख्या की गई है।

..... महारम्यौ :—

आप दोनों अत्यन्त सुन्दर हैं। इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। समस्त शास्त्रों, पुराणों और बाणियों में भूयः भूयः वर्णन है।

"तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान मुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥"

(श्रीभा० स्क १० अ० ३२ श्लो २)

ठीक उसी समय उनके बीच में श्रीकृष्ण प्रकट हुए जिनका मुख कमल मुसकान से खिला हुआ है। जो गले में वनमाल पहने हुए पीताम्बर धारण किये हुए हैं। उनका रूप क्या है ? सबके मन को मथ डालने वाले कामदेव के मन को भी मथने वाला है।

चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चित–स्त्रैलोक्य लक्ष्म्येक पदं वपुर्दधत् ।।

(श्रीभा. स्क. १०–अ.३२ श्लो. १४)

सहस्र सहस्र गोपियों के बीच में उनसे पूजित होकर श्रीकृष्ण बड़े ही शोभाय मान हुए। तीनों लोकों में तोनों कालों में जितना भी सौन्दर्य है वह सब श्रीकृष्ण के विन्दुमात्र सौन्दर्य का आभास भर है। वह ही उसके एक मात्र आश्रय हैं।

"सौन्दर्य्यामृत राशिरद्भुत महालावण्य लीला कला,
कालिन्दी वर वीचिऽवंर परिस्फूर्ज त्कटाक्षछविः।
सा कापि स्मर केलि कोमल कला वैचित्र्य कोटि स्फूरत,
प्रेमानन्द घनाकृतिर्दिशतु मे दास्यं किशोरीमणिः ।।

(रा. सु. सि. श्लो. १५६)

वह किशोरी मणि श्रीस्वामिनीजी मुझको अपनी दासी बना लेवें, जो सुन्दरता रूपी अमृत की सागर स्वरूपा हैं, जिनकी लावण्य तथा लीला विलास परम अद्भुत है। जिनके कटाक्ष पात की इस प्रकार से शोभा हो रही है मानों श्रीयमुना जल की लहरें उछल रही हैं और जिनका प्रादुर्भाव एक मात्र उन श्याम सुन्दर के लिये ही है जो कि रति केलि में विविध प्रकार के कोमल कला विलास द्वारा शोभित हो रहे हैं।

श्रीध्रुवदास जी कहते हैं :—

छवि ठाढ़ी कर जोरैं गुण कला चँवर ढोरैं,
द्युति सेवैं तन गोरें रति वलि जात है।
उजराई कुञ्जएन सुथराई रची सैन,
चतुराई चितै नैन अति ही लजात है।
राग सुनि रागिनी हूँ होत अनुराग वश,
मृदुताई अङ्गन छुवति सकुचात है।
हित ध्रुव सुकमारी पूतरिन हूँ ते प्यारी
जीवत देखें विहारी सुख वर्षात हैं।

(ब्यालीस ली. भ. श्रं. शत)

ऐसी है ललित प्यारी, लालजू की प्राण प्यारी, डीठ हू न ठहरात कैसे कै निहारिये ।
जाकी परछांई पर कोटि कोटि चन्द्र अरु, दामिनी भामिनी काम कोटि कोटि वारिये।
काजर की रेख जहाँ पानन की पीक भारी, और सुकमार ताई कैसे कि विचारिये ।
सहज ही अंग अंग रूप सार मोद मयी, हित ध्रुव प्राण न्योछावर कर डारिये ।।
(व्या. ली. भजन. शि. शत)

......रङ्गदेव्यादि सेवितौ—
निकुञ्जस्थौ :—

श्रीप्रिया प्रीतम श्रीरंगदेवी आदि सखियों से सुसेवित हैं। नित्य निकुञ्ज में विराजमान हैं।

इन वाक्यों द्वारा श्रीग्रन्थकार इस ग्रन्थ में वर्णित उपासना का परिचय देते हैं। यथा "सेक्षेप भागवतामृत":—

"प्रकटा प्रकटा चेति कृष्णलीला द्विधामता।
तया धामत्रये कृष्ण विहरत्येव सर्वदा ।।१।।
कृष्णेन प्रकटा लीला या या धाम त्रये कृताः ।
तास्ताः श्रीदशमस्कन्धे वर्णिताः सन्ति कृत्स्नशः ।।२।।

अप्रकट लीलायाँ ब्रजे कृष्णस्य सदा विहारो यथा "श्रीस्कान्धेश्वेत द्वीप पतेरुक्तिः–

अस्ति मे परमंरूप य दंशात्संभवो मम ।
तन्नित्यं रमते यत्र वल्लवी गण वेष्टितम् ।।३।।
भूर्लोके भारते वर्षे माथुरे मण्डले शुभे।
भूमिः पवित्राति तरां तत्र वृन्दावन महत् ।।४।।

श्रीसनत कुमार संहितायाम् :—

विहराम्यनया नित्यमस्या ! प्रेम वशी कृतः ।
इमांतु सत्प्रियां विद्धि राधिकां पर देवताम् ।।५।।
अस्याश्च परितः पश्य सख्यः शत सहस्रशः ।
नित्याः सर्वा इमा रुद्र यथाहं नित्य विग्रहः ।।६।।

श्रीयामल तन्त्रे :—

कृष्णोऽन्यो यदु संभूतो यः पूर्णः सोप्यतः परा ।

वृन्दावनं परित्यज्य सक्वचिन्नैव गच्छति ॥७॥
द्वि भुजः सर्वदा सोऽन कदाचिच्चतुर्भुजः ।
गोप्यैक या युतस्तत्र परि क्रीडति नित्यदा ॥८॥

उपरोक्त श्लोकों का संग्रह 'साधनामृत चन्द्रिका' में है । इन श्लोकों से यह भली भाँति विदित होता है कि श्रीकृष्ण की लीलाएँ दो प्रकार की हैं । एक प्रकट लीला जो अवतार समय में सर्व साधारण के लिये दृष्टि गोचर होती है और जो तत् तत् ब्रह्माण्डों में सर्वदा प्रकट रूप से होती रहती है । दूसरी अप्रकट लीला जो नित्य अप्रकट रूप से होती रहती है जिसके केवल विशिष्ट अधिकारी ही दर्शन कर सकते हैं ।

यह अप्रकट लीला भी दो प्रकार की है :—

श्रीकृष्ण सन्दर्भ में वर्णित है—

"अप्रकटा लीला द्विविधाः—मन्त्रोपासनामयी, स्वारसिकी च ।"

"प्रथमा यथा तत्तवेकतरस्थानादि नियतस्थिका तत्तन्मन्त्र ध्यानमयी ।" यथा वेदान्त कामधेनु :—"स्वभावतोऽपास्त समस्त दोषमशेष कल्याण गुणैक राशिम व्यूहांगिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिः अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराज माना मनुरूप सौभगाम् । सखी सहस्रैः परि सेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकाम दाम ॥२॥

अप्रकट लीला दो प्रकार की हैं :—

मन्त्रोपासन मयी और स्वारसिकी ।

पहली मन्त्रोपासनमयी जिसको "ह्रदवत्" या "निकुञ्ज लीला भी कहते हैं। यथाः—

मैं कमलदल लोचन हरि श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, जिनसे समस्त दोष स्वभाव से ही दूर रहते हैं । जो अनन्त कल्याण गुणों की राशि हैं । जो चतुर्व्यूह के अङ्गी तथा परब्रह्म हैं ।

इनके बाम भाग में श्रीवृषभानुनन्दनींजी सहर्ष विराजमान् हैं जो इनके समान सौभगवाली हैं जो सहस्रों सखियों से सदा सुसेवित हैं सहर्ष हैं । तथा जो सब के सर्व प्रकार अभिष्ट पूर्ण करने वाली हैं ।

द्वितीया श्रीकृष्ण संदर्भे यथा अवसर विविध स्वेच्छा मयी लीला स्वारसिकी । यथाः—
वत्सैं वत्सरीभिश्च सदा क्रीडति माधव । वृन्दावनन्तर गतः स रामः बालकैं वृतः ॥
चिन्तामणि प्रकर सद्म सु कल्प वृक्षः । लक्षा वृतेषु सुरभीइभि पाल यन्तम् ॥

लक्ष्मी सहस्त्र शत संभ्रम सेव्य मानं। गोविन्द मादि पुरुषं तमहृ भजामि ॥

दूसरी "स्वारसिकी" "स्रोतवत्" जो ब्रज लीलाके नाम से विख्यात है। यथाः—

श्रीकृष्ण, दाऊजी, सखावृन्द, (श्रीनन्दरायजो आदि) तथा छोटे बड़े बछड़ों के सहित श्रीवृन्दावन में नित्य ही लीला करते हैं।

जिस वृन्दावन में लाखों कल्प वृक्ष से आवृत चिन्तामणी निर्मित लाखों गृह हैं। वहाँ जो श्रीकृष्ण लक्ष्मी सदृश हजारों संभ्रम युक्त गोपियों से सेवित होकर गौओं का पालन करते हैं, उन आदि पुरुष गोविन्द को मैं भजता हूँ। मन्त्र मयी और स्वारसिकी में यह भेद हैः—

"ना ना लीला प्रवाह रूप तया स्वारसिकी गंगेव।
एकैक लीलात्मतया मन्त्रोपासना मयी तुलब्ध तत्सम्भव हृद श्रेणी रिव ॥"

(श्रीकृष्ण संदर्भ)

अर्थात जो लीला नियत 'योग पीठ' में होती रहती है उसको "मन्त्रमयी" या "ह्रद्वत्" कहते हैं। जो 'निकुञ्ज लीला' नाम से विख्यात है। जो लीला नाना स्थानों पर भिन्न भिन्न रस के परिकरों के साथ भिन्न भिन्न काल में होती रहती है उसको 'स्वारसिकी' या 'स्रोत विशिष्ट गङ्गा सदृश' कहते हैं। जो ब्रज लीला" के नाम से प्रसिद्ध है।

यहाँ ग्रन्थकार मङ्गलाचरण के श्लोक में "रङ्ग देव्यादि सेवितौ" "निकुञ्जस्थौ" से वह यह वर्णन करते हैं, कि वह जो आगामी विषय प्रतिपादन करेंगे उसमें केवल "मन्त्रमयी", "ह्रद्वत" या "निकुञ्ज लीलाओं" का ही वर्णन होगा। यद्यपि 'मन्त्रमयी' के भी बहुत भेद हैं, तो भी यहाँ केवल श्रीरङ्ग देवी आदि सखियों से सेवित श्रीलाल ललना की लीलाओं का ही वर्णन होगा स्वयं ग्रन्थकार कहते हैं :—

"अष्ट सहचरि न के बिना परिकर यहाँ और सहचरिन कौ नहिं प्रवेशा ॥"

(म. बा. सि. सु०)

...............परमौनियम प्रेमणोः :—

...............परागम्यौ :—

श्रीग्रन्थकार स्थान स्थान पर यह अङ्कित करते हैंः—

"रह गयो मारग उरे नियम और प्रेम को

परं चल्यो परा को परम पर पन्थ।" (म. बा. सि. सु. ४१६)

"नियम प्रेम तें परें पन्थ तहां तुरत पोंहचिये अलि अक्लेश" (म. बा. सि. सु.४१८)

"परा भक्ति प्रदायिनी करु कृपा करुणा निधि प्रिये" 'से. सु. पद ५७'

"श्रीहरिप्रिया परम पद चाहै तो या वि न न आन ऊमा हैं।।" 'सि. सु. पद ४५३'
यह द्वादश लक्षण अवगा हैं जो जन परम परा पद चाहैं ।। 'सि. सु. पद ४५३' इत्यादि ।

श्रीप्रिया प्रीतम की प्राप्ति 'नियम' अर्थात "विधि भक्ति" "प्रेम" अर्थात "विधि" के अनुष्ठान करते करते जो प्रेम लक्षण भक्ति प्राप्त होती है उससे परे है । वे एक मात्र "परा भक्ति" से ही प्राप्त हो सकते हैं ।

जब तक उपरोक्त "नियम" "प्रेम" तथा "परा," इन तीनों प्रकार की भक्तियों को पृथक पृथक न समझा जावे तब तक ग्रन्थकार का वास्तविक अभिप्राय समझना कठिन है । इसी हेतु से यहाँ कुछ वर्णन किया जाता है ।

पहले यह जानना चाहिये कि भक्ति किसे कहते हैं—

"भज इत्येष वैधातु सेवायां परिकीर्तितः ।

तस्मान् सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्ति साधन भूयसी ।।" 'गरुड़ पुराण भक्ति संदर्भ'

भक्ति 'भज' धातु से है, जिसका अर्थ सेवा है । इसलिये किसी प्रकार की सेवा जो भगवत् संतोष के लिये की जाती है सब भक्ति कहलाती हैं ।

इस भक्ति की ठीक ठीक पहिचान के लिये इसके स्वरूप तथा तटस्थ लक्षण जानने चाहिये ।

"अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान कर्म्माद्यना वृतम् ।

आनु कूल्येन कृष्णानु शीलनं भक्तिरुत्तमा ।।" 'भक्ति रसामृत सिंधु'

इस श्लोक में भक्ति के स्वरूप तथा तटस्थ लक्षण वर्णन किये गये हैं ।

(१) जो विशेषण स्वरूप सिद्धा भक्ति में सदैव विद्यमान रहते हैं जिनके बिना यह स्वरूप सिद्धा भक्ति ही सिद्ध नहीं हो सकती है । उनको स्वरूप लक्षण कहते हैं :—

"आनु कुल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिः ।"

यहाँ "भक्ति" विशेष्य है और "आनुकुल्येण कृष्णानुशीलनम्" विशेषण है । यह विशेषण ही भक्ति का स्वरूप लक्षण है । अर्थात श्रीकृष्ण को सुख प्रदान करने के लिये जो श्रवण कीर्तनादि भक्ति के अङ्ग हैं वही भक्ति के स्वरूप लक्षण कहलाते हैं ।

[२] जिन विशेष्यों द्वारा स्वरूप सिद्धा तामसी आदि भक्तियों की पृथक् पृथक् पहिचान की जाती है उनको तटस्थ लक्षण कहते हैं। उपरोक्त श्लोक में "उत्तमा भक्ति" की पहिचान के लिये दो विशेषण दिये गये हैं :—

"अन्याभिलाषिता शून्यं" तथा "ज्ञान कर्माद्यनावृतम्" अर्थात् जिस भक्ति में भक्ति की अभिलाषा छोड़कर और कोई अभिलाषा नहीं है तथा जो निर्विशेष ब्रह्म, ज्ञान तथा वर्णाश्रम धर्म रूप कर्मों से मिश्रित नहीं है वह उत्तमा भक्ति कहलाती है। उपरोक्त विशेषण भक्ति के तटस्थ लक्षण कहलाते हैं।

स्वरूप सिद्धा भक्ति किसे कहते हैं ?

"अज्ञानादि नापि तत् प्रादुर्भावे भक्तित्वाव्यभिचारणी साक्षात तदनुगत्यात्मा-तदीय श्रवण कीर्तनादि रूपा।" (भक्ति संदर्भ)

"जो भक्ति अज्ञानादि से भी अनुष्ठित होने से फल प्रदान करती है। जो अव्यभिचारी रूप से भगवत, श्रवण, कोर्तनादि स्वरूपा है।"

यह भक्ति चार प्रकार की है :—

तामसी, राजसी, सात्विकी और निर्गुणा। "तामसी" भक्ति उसे कहते हैं जो हिंसादि संकल्प से अनुष्टान की जाती है। "राजसी" जो अर्थ, एश्वर्य यशादि प्राप्ति के लिये की जाती है। "सात्विकी" जो केवल मोक्ष कामना से की जाती है। 'निर्गुणा" जो केवल श्रीकृष्ण संतोष के लिये ही की जाती है। जिसमें किसी प्रकार की भी अन्य अभिलाषा नहीं है। जो कर्म ज्ञानादि से मिश्रित नहीं है। इसी भक्ति को "उत्तमा भक्ति" कहते हैं। इसी भक्ति से ही भगवत् प्राप्ति होती है।

जिस भक्ति में स्वरूप लक्षण नहीं हैं वह भक्ति "स्वरूप सिद्धा" नहीं है उसको "आरोपसिद्धा" या "संग सिद्धा" कहते हैं। "आरोपसिद्धा" यथा:—

"स्वतो भक्तित्वाभावेऽपि भगवदर्पणादिना भक्तित्वं प्राप्ता कर्मादि रूपा"।

(भक्ति संदर्भ)

अर्थात "आरोप सिद्धा" उसको कहते हैं जो स्वरूप से बास्तविक भक्ति नहीं है वल्कि वर्णाश्रम धर्म रूप कर्मों का भगवान में अर्पण कर देना भक्ति कहलाती है। यह भक्ति एक ही प्रकार की होती है। यथा :—

"कायेन वाचां मनसेन्द्रियैवा बुद्धयात्मना वानुसृत स्व भावात्।

करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ।।"

(भा. ११ स्क. २ अ. ३६ श्लो.)

जो कोई शरीर से, वाणी से मनसे, इन्द्रियों से, वुद्धि से अहङ्कार से अनेक जन्मों अथवा एक जन्म की आदतों से स्वभाव वश जो जो करे, वह सब परम पुरुष भगवान नारायण के लिये ही है इस भाव से उन्हें समर्पण करदे ।

"संग सिद्धा" इसको 'मिश्रा' भी कहते हैं । यथा:—

"स्वतो भक्तित्वा भावेपितत्, परिकर तथा भक्ति प्रकरणे पठिता ।" 'भक्ति संदर्भ'

"संग सिद्धा" उस भक्ति का नाम है जो वास्तविक तो कर्म ज्ञानादि रूप है परन्तु क्योंकि शास्त्र में इसका भक्ति अङ्ग में उल्लेख किया गया है इसलिये इसको भक्ति कहते हैं । यह तीन प्रकार की है :—

कर्ममिश्रा, ज्ञान मिश्रा और कर्मज्ञान मिश्रा । "कर्म मिश्रा" यथा:—

"ततः समाधि युक्तेन क्रिया योगेन कर्दमः ।
सम्प्रपेदे हरिं भक्तया प्रपन्न वरदा शुषम् ।।"

[भा. ३स्क. २१ अ. ७ श्लो.]

श्रीकर्दम जी समाधि युक्त होकर क्रिया योग द्वारा शरणागत वरदायक श्रीहरि की भक्ति युक्त आराधना करने लगे ।

"ज्ञान मिश्रा" यथा:—

"विविक्त क्षेम शरणो मद्भाव विमलाशयः ।
आत्मानं चिन्तये देक भेदेन मया मुनिः ।।"

जिनके हृदय निरन्तर मेरी भक्ति करने से विशुद्ध हो गये हैं ऐसे ज्ञानी साधक को निर्जन और निर्भय एकान्त स्थान पर रहना चाहिये । वे अपने को मुझसे अभिन्न स्वरूप से चिन्तन करें । [भाः ११ स्कः १८ अः २१ श्लोकः]

"कर्म ज्ञान मिश्रा" यथा:—

निषेवितेनाऽनिर्मित्तेन स्व धर्मेण महीयसा ।
क्रिया योगेन शस्तेन नाति हिंस्रेण नित्यशः ।।
मद्धिष्ण्य दर्शन स्पर्श पूजा स्तुत्यभिवन्दनैः ।
भूतेषु मद्भावनया सत्वेना सङ्गमेन च ।।

महतां बहु मानेन दीनानामनुकम्पया ।
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ।।
आध्यात्मिका नु श्रवणान्नाम संकीर्तनाच्च मे ।
आर्जवेनार्य संगेन निरहङ्क्रिया यथा ।।
मद्धर्मणो गुणैरेतैः परि संशुद्ध आशयः ।
पुरुषास्यञ्ज साभ्येति श्रुतमात्र गुणं हि माम् ।।"
(भा. ३ स्क. अ. २९ श्लोक. १५, १६, १७, १८,१९)

निष्काम भाव से श्रद्धा पूर्वक अपने नित्य नैमित्तिक कर्तव्यों का पालन कर नित्य प्रति हिंसा रहित उत्तम क्रिया योग का अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमा का दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति और वन्दना करने, प्राणियों में मेरी भावना करने धैर्य और वैराग्य अवलम्बन, महापुरुषों का मान दीनों पर दया और समान स्थिति वालों के प्रति मित्रता का व्यवहार करने, यम नियमों का पालन, अध्यात्म शास्त्रों का श्रवण और मेरे नामों का उच्चस्वर से सङ्कीर्तन तथा मन की सरलता, सत्पुरुषों के सङ्ग और अहंकार के त्याग से मेरे धर्मों का अनुष्टान करने वाले भक्त पुरुष का चित अत्यन्त शुद्ध होकर मेरे गुणों के श्रवण मात्र से अनायास ही मुझमें लग जाता है ।

उपरोक्त भक्तियों के भेदों का जो विवेचन किया गया है उनमें "आरोप सिद्धा" तथा "संग सिद्धा" से चित्त शुद्ध होकर कामना अनुसार फल प्राप्त होता है ।

'स्वरूप सिद्धा' में तामसी, राजसी और सात्विकी भक्तियों का जो वर्णन किया गया है यह सब साधकों की वासना के अनुसार फल प्रदान करती हैं । परन्तु श्रीकृष्ण प्राप्ति में यह सब "संकेतवा" है इसलिये विरोधी हैं । भगवत प्राप्ति तो एक मात्र उपरोक्त निर्गुणा अकैतवा उत्तमा भक्ति से ही हो सकती है ।

इस 'उत्तमा भक्ति' के दो भेद हैं :—

'वैधी' तथा 'परा'

वैधी जिसको स्वयं ग्रन्थकार ने अपने 'सिद्धान्त रत्नाञ्जली' ग्रन्थ में विहिता कहा है । वैधी—

"वैधी भक्ति भवेत शास्त्रं भक्तौ चेत् स्यात् प्रवर्त्तकम् ।।" अर्थात जो भक्ति शास्त्र के भय से अनुष्ठान की जाती है उसको वैधी भक्ति कहते हैं । (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती)

"वैधी" भक्ति दो प्रकार की होती है:—

'नियम' अर्थात 'साधन भक्ति' तथा 'प्रेम' पाल रूपा "नियम" यथा:—

"शृण्वन् समुद्राणि रथाङ्गपाणे
जंन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थं कानि
गायन् विलज्जो विचरेद सङ्ग ॥"

(भा. ११. स्क. २ अ. ३९ अ.)

संसार में भगवान के जन्म की और लीलाओं की बहुत सी मङ्गलमयी कथाएं प्रसिद्ध हैं उनको सुनना चाहिये। उन गुणों और लीलाओं का स्मरण दिलाने वाले भगवान के बहुत से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लज्जा संकोच छोड़कर उनका गान करते रहना चाहिये। इस प्रकार किसी भी वस्तु में आसक्ति न करके बिचरण करते रहना चाहिये। 'प्रेम' यथा:—

एवं व्रतः स्वप्रिय नाम कीर्त्या जातानुरागो द्रुत चित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्माद वन्नृत्यति लोक वाह्यः॥

(भा. ११ स्क. २ अ. ४. श्लो)

जो इस प्रकार से नियम भक्ति का अनुष्ठान करता रहता है। उसके हृदय में अपने परम प्रियतम प्रभु के नाम कोर्तन से अनुराग का प्रेमांकुर ऊग आता है। उसका चित्त द्रवित हो जाता है। अब वह साधारण लोगों की स्थिति से ऊपर उठ जाता है। वह स्वभाव से ही मतवाला सा होकर कभी खिल-खिलाकर हंसने लगता है तो कभी फूट-फूट कर रोने लगता है। कभी ऊँचे स्वर से भगवान को पुकारने लगता है तो कभी मधुर स्वर से उनके गुणों का गान करने लगता है। कभी कभी जब वह अपने प्रियतम को अपने नेत्रों के सामने अनुभव करता है तब उन्हें रिझाने के लिये नृत्य भी करने लगता है। उस समय उसको संसार की किसी वस्तु का भी ज्ञान नहीं रहता है।

"परागम्यौ"

अब 'परा भक्ति' का निरूपण किया जाता है।

"सा परानुरक्तिरीश्वरे" (शाण्डिलय सूत्र)

ईश्वरे श्रीकृष्णे अनुरक्ति सा परा भक्तिरित्यर्थः।

"अत एव तद भावाद्वल्लवी नाम् ॥" (शाण्डिलय सूत्र)

वल्लवी ब्रज गोपिका एवमेव ब्रह्म विषयक ज्ञानाभावेऽपि परानुराग रूप भक्त्या एवेश्वर प्राप्तिः "पराभक्ति" के स्वरूप को निरूपण करते हुए श्रीशाण्डिल्य ऋषि कहते हैं:-

श्रीकृष्ण में परम अनुराग होना ही "पराभक्ति" कहलाती है। श्रीब्रज नागरियों को ब्रह्म विषयक ज्ञान नहीं था तो भी "परानुराग रूपी भक्ति" से ही उनको श्रीकृष्ण प्राप्ति हुई।

पुनः। यथाः—

"सा तस्मिन परम प्रेम रूपा।"

"यथा ब्रज गोपिका नाम।" (श्रीनारद भक्ति सूत्रम्)

देवर्षि नारद जी भी अपने 'भक्ति सूत्र' में इस बात की पुष्टि करते हैं।

श्रीकृष्ण में परम प्रेम रूपा भक्ति को ही 'परा भक्ति' कहते हैं। जैसे ब्रज गोपिकाओं की भक्ति।

उपरोक्त दोनों भक्ति सूत्रों से यह भली भाँति विदित होता है कि श्रीकृष्ण में अनुराग होना ही "पराभक्ति" कहलाती है। दोनों सूत्रों में ब्रज गोपिकाओं की भक्ति का ही उदाहरण दिया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीशाण्डिल्य ऋषि तथा देवर्षि नारद जी को श्रीब्रजगोपिकाओं के अनुगत होकर ही भक्ति करना अभीष्ट है।

श्रीमद्भागवत रास पञ्चाध्यायी की फल स्तुति में भी ब्रज गोपिकाओं की रास विलास लीलाओं को श्रवण तथा वर्णन करने से 'पराभक्ति' की प्राप्ति निरूपण की गई है। यथाः—

"विक्रीडितं ब्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनु शृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्ति परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥"

(भा. स्क. १० अ. ३३ श्लोक. ४०)

परीक्षित्! जो धीर पुरुष ब्रजयुवतियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के इस चिन्मय रास-विलास का श्रद्धा के साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है उसे भगवान के चरणों में "पराभक्ति" की प्राप्ति होती है। और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदय के रोग-काम विकार से छुटकारा पा जाता है। उसका काम भाव सर्वदा के लिये नष्ट हो जाता है।

पुनः श्रीमद् भागवत वेद स्तुति में भी श्रुतियों ने श्रीव्रज नागरियों के ही अनुगत होकर सेवा करने की प्रार्थना की है । यथाः—

"स्त्रिय उरगेन्द्र भोग भुजदण्ड विषक्तधियो ।
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रि सरोज सुधाः ।।"
(भा स्क १० अ. ८७ श्लोक. २३)

वे गोपिकायें जो आपकी शेषनाग के समान मोटी लम्बी तथा सुकुमार भुजाओं के प्रति काम भाव से आसक्त होकर आपके चरणारविन्दों को प्राप्त करती हैं । हम भी उनके समान आपके चरणार विन्दों का मकरन्द रस पान करने की इच्छा करती हैं ।

इसलिये ब्रजगोपियों के अनुगत होकर ही भक्ति करना पराभक्ति कहलाती है ।

उपरोक्त प्रकार से "परा" भक्ति का विवेचन किया गया है । यहां यह देखना है श्रीग्रन्थकार का "परा भक्ति" से क्या तात्पर्य है । स्वयं ग्रन्थकार अपने दूसरे ग्रन्थ "सिद्धान्त रत्नाञ्जलि" में इस प्रकार कहते हैंः—

"सामान्यतो भक्तिर्द्विविधा । विहिताऽविहिता चेति । तत्र अविहता भक्ति चतुर्विधा । कामजा, द्वेषजा, भयजा स्नेहजा चेति ।।" सामान्य से भक्ति के २ भेद हैं । (१) "विहिता" अर्थात "अपरा" जिसको "विधि भक्ति" भी कहते हैं (२)"अविहिता" अर्थात "परा" । जिनमें "अविहिता" अर्थात "परा" ४ प्रकार की होती है—१ "कामजा" २ "द्वेषजा" ३ "भयजा" और ४ "स्नेहजा" । यहां केवल "कामजा" का विवर्ण किया जाता है ।

श्रीकृष्ण में २ प्रकार की भगवता हैं :—

१ ऐश्वर्य भगवत्ता यथाः—

"ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्योश्चैवषण्णांभग इतींगनाः ।।" (विष्णु पुराण)

जिनमें समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य यह ६ गुण सदैव रहते हैं उनको भगवान कहते हैं श्रीकृष्ण में यह सब हैं । २ माधुर्य भगवत्ता यथा :—

"मोहनं कर्षणं रूपं बलवैदग्ध मेव च ।
अभिलाषोपन्नत्व षण्णां भग इतीङ्गना ।" (पुराणान्तर)

मोहन करना, कर्षण करना, रूप सौन्दर्य युक्त होना, बलवान तथा चतुर होना और सब अभिलाषाओं को प्राप्त होना यह ६ अङ्ग माधूर्य भगवत्ता के हैं।

उपरोक्त आधार पर श्रीबलदेव विद्याभूषण कहते हैं :—

"क्वचिन्माधुर्य ज्ञान प्रवृता "रुचि भक्ति" स्तत्प्राप्ति हेतु प्रतीयते क्वचिचैश्वर्य ज्ञान प्रवृताविधि भक्तिश्चेति"

(श्रीगोविन्द भाष्य अ: ३।५। सूत्र २९ पृष्ठ: २३७)

जो भक्ति ऐश्वर्यादि ज्ञान से प्रवृत होती है उसको 'विधि' भक्ति, जो माधुर्य ज्ञान से प्रवृत होती है उसको 'रुचि' भक्ति कहते हैं।

श्रीग्रन्थकार इसी 'रुचि' भक्ति को 'अविहिता' अर्थात 'परा' कहते हैं। जिसके भी चार भेद ऊपर कह चुके हैं। जिनमें से यहां केवल 'कामजा' पर प्रकाश डाला जाता है। इसी भक्ति को श्रीरूप गोस्वामी अपने 'भक्ति रसामृत सिन्धु' ग्रन्थ में 'कामरूपा' कहते हैं। यह २ प्रकार की होती है।

१ 'सम्भोगेच्छामयी' २ 'तद्भावेच्छाऽऽत्मिका।'

(पूर्वविभाग दूसरी लहरी ८२-८३) पृ: ६६।

श्रीजीव गोस्वामी इसी भक्ति को 'कान्तभावा' कहते हैं इसके भी उन्होंने २ भेद किये हैं :—

१ 'साक्षादुपभोगात्मक' २ 'तदनुमोदनात्मक"

पूर्वः साक्षान्नायिकानाम्। उत्तरः सखीनाम्॥

(प्रीति संदर्भ ३६५ अनुच्छेद पृ: ८६७)

अर्थात 'कामजा' भक्ति के २ भेद हैं एक साक्षात श्रीकृष्ण से भोग इच्छा की अभिलाषा करना दूसरी श्रीप्रिया प्रीतम की परस्पर प्रीति को ही अहर्निश अनुमोदन करते रहना, अर्थात उन दोनों की प्रीति से प्रीति करना। श्रीग्रन्थकार का इस ग्रन्थ में "परा" कहने से इसी प्रकार की भक्ति से तात्पर्य है। श्रीसखियों की स्वतन्त्र सम्भोग इच्छा नहीं है, बल्कि वह श्रीप्रिया प्रीतम के विहार को ही अनुमोदन करती हैं अथवा उनकी परस्पर की प्रीति को ही प्रतिक्षण आस्वादन करतो रहती हैं। इसीलिये यह भक्ति सखियों में ही चरितार्थ होती है। स्वयं ग्रन्थकार कहते हैं :—

"आनन्द अह्लादिनि पिय प्यारी।
सुरति सोई सुन्दर सहचारी॥ (तालिका)

अर्थात आनन्द स्वरूप श्रीलालजी, अह्लादिनी श्रीप्रियाजी तथा परस्पर को सुन्दर रति स्वरूपा श्रीसखियां हैं। पुनः यथा:—

'सदा यह राज करौ बलि जाऊ, दम्पति को सुख सहज स्नेह।
सु मंगलदा, मनमोद प्रदा, रसदायक, लायक सुधा केसा मेह॥
जिवावनजी उपजीवन के उर आनन्द बलि बढ़ावन येह।
श्रीहरिप्रिया मनोरथ के गण को सिध कारन सिन्धु अछेह॥' (सहज सुख)

अर्थात श्रीप्रिया प्रीतम के सहज स्नेह से ही सखियां पुष्ट होती हैं उनका आहार ही यह है। यद्यपि सखियां श्रीप्रिया प्रीतम की सेवा ही में लगी रहती हैं तो भी उनकी भक्ति 'दास्य भाव' रूपा किंवा 'शुद्ध सख्य भाव' रूपा नहीं है बल्कि मधुरभावात्मक 'कामजा' या 'काम रूपा' ही है।

'परा भक्ति' का अनुष्ठान, दो प्रकार से होता है। (१) वाहिक। (२) आन्तरिक। यथा:—

'सेवा साधक रूपेण सिद्ध रूपेण चात्रहि" (भक्ति रसामृत सिन्धु)

पुनः 'दीक्षा तत्त्व प्रकाशे' वैष्णव लक्षणं द्विविधिम्। 'आभ्यन्तरं वाह्यं च। आद्ये श्रीकृष्ण मन्त्र दीक्षावश्यकत्वं वैष्णवा साधारण धर्मश्चोच्यते।"

"मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु॥"

इति भगवत् बचनात्। वैष्णवस्य मनो वाक्कायैर्वाह्याभ्यन्तरा सर्वा क्रिया भगद्विषयिकेत्युपदिष्टा तत्र मन्मनाभवेत्येन मानसी क्रिया रूपं ध्यानं भगवत एव कर्त्तव्यं।' (दीक्षा त० प्र०)

सेवा दो प्रकार से होती है:—

(१) वाहिक (२) आन्तरिक।

'दीक्षातत्व प्रकाश' ग्रन्थ में भी इसी प्रकार वैष्णवों के दो प्रकार के लक्षण वर्णित हैं। (१) आभ्यन्तर (२) वाहिक।

श्रीमद्भागवत गीता १८ वां अध्याय ६५ वाँ श्लोक 'मन्मनाभव' इत्यादि से यह सिद्ध होता है कि वैष्णव की मन, वाणी तथा शरीर की सब क्रियायें भगवत् विषयक होनी चाहिये। मन्मनाभव इससे मानसिक क्रिया रूप ध्यान की आज्ञा दी गई है।

उपरोक्त प्रमाणों के अनुसार यह सिद्ध होता है कि 'पराभक्ति' दो प्रकार से अनुष्ठित होती है। पहले यथा वस्थित देह द्वारा भगवत् शरणागति प्राप्त करके दूसरे अन्तस्चिन्तित देह से सखियों के अनुगत होकर के।

'वेदान्त कामधेनु' (दशश्लोकी) की व्याख्या करते हुए 'श्रीवेदान्त रत्न मञ्जूषा' में 'परा भक्ति' का स्वरूप इस प्रकार निरूपण किया गया है। यथाः—

'कृपाऽस्य दैन्यादि युजि प्रजायते।
यया भवेत्प्रेम विशेष लक्षणा।
भक्ति ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः
सावोत्तमा साधनरूपिकापरा॥'

(वे. का. धेनु ६ श्लोक)

'कृपाऽस्येति—अस्य—निरतिशय-स्वाभाविक-कारुण्य—वात्सल्यक्षमा-सौहार्द्द सत्यप्रतिज्ञात्वादि-गुणाब्धेः श्रीकृष्णस्य, कृपा दैन्यादि युजि पुंसि प्रजायते, इति योजना। उपाया नैव सिद्धयन्तीत्यापाया विविधा स्तथा। इति यागर्व हानिस्तद्दैन्यं कार्पण्य-मुच्यते॥ इति वचनाद्दैन्यं कार्पण्यमादि यस्याऽसौ दैन्यादि षडङ्गा शरणागति।'' यथाः—

'आनुकुल्यस्य संकल्पं प्राति कूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा॥
आत्म निक्षेप कार्पण्ये षडविधा शरणा गतिः। (वैष्णव तन्त्र)

निरतिशय, कारुण्य, वात्सल्य, क्षमा, सौहार्द एवं सत्य प्रतिज्ञता आदि स्वाभाविक गुणों के सागर श्रीकृष्ण की कृपा, दीनता आदि गुण युक्त पुरुष पर होती है। जिस कृपा से 'प्रेम लक्षणा भक्ति' का उदय होता है। यह भक्ति सब भक्तियों में उत्तमा मानी गयी है। अतः इसको 'परा भक्ति' कहते हैं। 'साधन रूपा भक्ति' को ''अपरा भक्ति' कहते हैं। अर्थात् 'परा' 'फल रूपा' है और 'अपरा' 'साधन रूपा' है।

यहाँ पर दैन्य शब्द का अर्थ 'उपाया नैव सिद्धयन्ति' इस प्रमाण से 'गर्व हानि रूप' एवं 'शरणागति' ही समझना चाहिये। अर्थात जब तक प्राणी अपने हित के लिये गर्व पूर्वक अनेक प्रयत्न करता रहता है किन्तु भगवान श्रीकृष्ण के चरणाविन्द में शरणागत नहीं होता है तब तक उसके सब प्रयत्न निष्फल होते रहते हैं। अन्त में जब वह अपने अभिमान को छोड़कर प्रभु की शरण में जाता है तभी उसको 'परा भक्ति' प्राप्त

होती है। इस श्लोक में 'दैन्यादि' का तात्पर्य 'कार्पण्यादि षडविधा शरणागति' से है। यथा :—

(१) प्रभु के अनुकूल धर्मों तथा कर्मों का अनुष्ठान करना।

(२) जो उनके प्रति कूल धर्म तथा कर्म हैं उनका आचरण नहीं करना।

(३) भगवान निश्चय रक्षा करेंगे यह दृढ़ विश्वास रखना।

(४) रक्षा विषय में उन्हीं को वरण करना।

(५) अपनी आत्मा को उनके चरणारविन्द में अर्पण करना।

(६) दीनता रखना।

अब दूसरी अर्थात् आन्तरिक अनुष्ठान विधि का वर्णन करते हैं। यथा:—

'कृष्ण प्रिया सखी भावं समाश्रित्य प्रयत्नतः।
तयोः सेवां प्रकुर्वीत दिवानक्तम तंद्रितः ॥१३४॥'

"आत्मानं चिन्तये तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूप यौवन संपन्नां किशोरीं प्रमदा कृतिम् ॥
नाना शिल्प कलाभिज्ञां कृष्ण भोगानु रूपिणीम्।
प्रार्थितामपि कृष्णेन तत्र भोग पराङ् मुखीम् ॥
राधिकानुचरीं नित्यं तत्सेवन परायणाम्।
कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम् ॥
प्रीत्यानु दिवसं यत्नात्तयोः संगम कारिणीम्।
तत्सेवन सुखा स्वाद भरेणाति सु निर्वृताम् ॥
इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवां समा चरेत्।
ब्राह्म मुहूर्तमारभ्य यावत्स्यात्तु महा निशा ॥

(सनत्कुमार सं. पटल ३६ श्लोक १३४, १८५,
१८६, १८७, १८८)

साधको! अन्तस्चिन्तित देह से श्रीप्रेयसी श्रीराधिका जी की सखी भाव को यत्न पूर्वक आश्रय करके तथा आलस को त्याग कर अहर्निश उन दोनों की सेवा में लग जाना चाहिये।

(उसका प्रकार यह है।):—

अपनी आत्मा का इस प्रकार चिन्तवन करना चाहिये कि मैं उन मनोरम सखियों में हूँ। रूप यौवन सम्पन्ना किशोर अवस्था वाली मेरी आकृति है। मैं अनेक प्रकार की शिल्प तथा कलाओं में चतुर हूँ। मैं कृष्ण भोग के अनुरूप होती हुई भी कृष्ण के प्रार्थना करने पर उनसे भोग विलास में पराङ्मुखी हूँ। मैं श्रीराधिका जो की दासी होकर उनकी सेवा परायणा हूँ। श्रीकृष्ण से भी उनमें अधिक प्रेम करती हूँ। प्रेम पूर्वक उन दोनों का मिलन कराने के कार्य में लग रही हूँ। उन दोनों के सेवा सुख का आश्वादन करती हुई परमानन्द में मगन हूँ।

इस प्रकार अपने आपका चिन्तवन करते हुए ब्राह्म मुहूर्त्त से लेकर अर्ध्य रात्रि पर्य्यन्त उनकी सेवा करती रहे।

श्रीग्रन्थकार इसी विषय को "अग्रवर्ति इहि अवसरहिं आई धर वर वेष"। तथा "विधि निषेध आदिक जिते कर्म धर्म तजु तासु" इन पदों की व्याख्या में विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे।

उपरोक्त विषय के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकला कि श्रीप्रिया प्रीतम की प्राप्ति 'नियम भक्ति' तथा 'प्रेम भक्ति' से नहीं हो सकती उनको प्राप्ति तो एक मात्र 'परा भक्ति' द्वारा ही हो सकती है।

किशोरौ :—

श्रीप्रिया प्रीतम नित्य किशोर अवस्था वाले हैं। यथा :—

'सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रह कातरम् ॥'

(भा. स्क. ३ अ. २८ श्लोक १७)

आपकी नित्य किशोर अवस्था है। आप भक्तों पर कृपा करने के लिये सदा आतुर रहते हैं।

पुनः। यथा :—

'वृन्दावन विहारेषु कृष्णं किशोर विग्रहम्।
अन्यारण्येषु स्थानेषु बाल्य पौगण्ड यौवनम् ॥' (पद्म पुराण)

श्रीवृन्दावन लीलाओं में वह नित्य कैशोर स्वरूप हैं। अन्य वन तथा स्थानों में उनकी अवस्था कहीं, बाल, कहीं पौगण्ड और कहीं यौवन है।

किशोर अवस्था। यथा :—

'कौमरं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि ।
कैशोरमा पञ्चदशाद यौवनं तु ततः परम् ॥'
(भक्ति रसामृत सिन्धौ)

पाँच वर्ष तक की अवस्था को 'कौमार' इसके बाद दस वर्ष तक पौगण्ड फिर पन्द्रह वर्ष की अवस्था को कैशोर कहते हैं। इसके पश्चात् यौवन अवस्था कहलाती है।

'रसिकेश्वरौ' :—

श्रीलाल ललना दोनों रसिकेन्द्र चूड़ामणि हैं। यथा:—

"राधा कृष्णमहं वन्दे रस रूपौ रसायनौ ॥" (म. बा. सु. सु.)

मैं उन श्रीराधा माधव की बन्दना करता हूँ जो रस स्वरूप तथा रसायन अर्थात् रस के भोक्ता–रसिक हैं।

क्योंकि श्रीलाल ललना का स्वरूप ही काम तथा रति बीजात्मक है इसलिये ये दोनों स्वरूप से हो रसिकेन्द्र चूड़ामणि हैं। यथा:—

"काम वीजात्मकः कृष्णो रति बीजत्मिका राधा ।
तावे वान्योन्य संश्लिष्टौ रसस्य परमावधिः ॥" [पुराणान्तर्गत]

श्रीकृष्ण 'काम' तथा श्रीराधिका जी 'रति' वीजात्मक है। दोनों के परस्पर संश्लिष्ट होने से ही रस की परमावधि है।

पुनः। यथा:—

"कृष्णो यथा नागर शेखराग्र्यो राधा तथा नागरिका वराग्र्या ।
राधा यथा नागरिका वराग्र्या कृष्णस्तथा नागर शेखराग्र्यः ॥'
[वृ. भागवतामृतः खं. २ अ. ६-श्लो. १११]

केवल श्रीकृष्ण की उपमा श्रीराधिका से ही दी जा सकती है। जैसे श्रीकृष्ण नागर शिरोमणि हैं। इसी प्रकार श्रीराधिका जी समस्त नागरियों की शिरोभूषण हैं इसी प्रकार श्रीराधिका जी की उपमा भी श्रीकृष्ण से ही दी जा सकती है।

—: परात्परतमावुभौ :—

श्रीप्रिया प्रीतम दोनों पर से पर तत्व हैं।

'मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय ।' [श्रीगीता]

'हे अर्जुन ! मुझसे परे और कोई पर तत्व नहीं है ।" श्रीमद्भागवत में श्रीउद्धव जी विदुरजी से कहते हैं :--

"स्वयंत्व साम्यातिशयस्त्र्य धीशः । स्वाराज्य लक्ष्म्याप्त समस्त कामः ।।
बलिं हरद्भिश्चिर लोक पालैः । किरीट कोटचेडित पाद पीठः ।।
(भा स्क. ३ अ. २ श्लोक २१)

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण तीनों लोकों के अधीश्वर हैं । उनके समान भी कोई नहीं है, फिर उनसे बड़ा कौन होगा ? वे अपने स्वतः सिद्ध ऐश्वर्य्य से ही परिपूर्ण काम हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि-चिर लोक पाल गण नाना प्रकार की भेटें ला ला कर अपने अपने मुकुटों के अग्रभागों से उनके चरण रखने की चौकी को प्रणाम किया करते हैं ।

स्वयं श्रीकृष्ण वृहद् गौतमीय तन्त्र में कहते हैं :—

"सत्वं तत्वं परत्वं च तत्त्व त्रयमहं किल–
त्रि तत्व रूपिणी सापि राधिका मम वल्लभा
प्रकृते पर एवाहं सापि मच्छक्ति रूपिणी ।" (वृ. गौतमीय तंत्र)

सत्व अर्थात कार्य तत्व, तत्व अर्थात कारण तत्व तथा परत्व अर्थात् कार्य कारण से परे अप्राकृत तत्व अर्थात् श्रीवैकुण्ठ तथा भगवत् स्वरूप यह तीनों तत्व स्वरूप मैं ही हूँ । इसी प्रकार से मेरी वल्लभा श्रीराधिका जी भी यह सब तत्व स्वरूपा हैं । जैसे मैं माया से अतीत हूँ इसी प्रकार मेरी शक्ति श्रीराधिका जी भी हैं ।

उपरोक्त प्रमाणों से यह भली भाँति से विदित होता है कि श्रीलाल ललना दोनों पर से पर तत्व हैं ।

—: सर्वेषां प्रेरकौ :—

आप दोनों सबके प्रेरक हैं :—

"अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।" [गीता]

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कहते हैं :—

" मैं ही सबकी सृष्टि तथा प्रेरणा करने वाला हूँ ।"

—: दिव्यौ :—

श्रीप्रिया प्रीतम दिव्य स्वरूप हैं ।

"दिव्य" के दो अर्थ हो सकते हैं ।

[१] अप्राकृत [२] अत्यन्त सुन्दर ।

अप्राकृत । यथाः—

"नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ।
न यत्र श्रूयते माया लोक सृष्टि विकल्पना ॥"

[भा. स्क. १०. अ. २८ श्लो ६]

आप भक्तों के भगवान् वेदान्तियों के ब्रह्म और योगियों के परमात्मा हैं । श्रुतियां ऐसे कहती हैं—आपके स्वरूप में विभिन्न लोक सृष्टियों की कल्पना करने वाली माया नहीं है । मैं आपको नमस्कार करता हूं ।

अत्यन्त सुन्दर । यथा :—

"विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः
परं पदं भूषण भूषणाङ्गम् ॥" [भा. स्क. ३ अ. २ श्लो. १२]

आपका दिव्य मङ्गल विग्रह इतना सुन्दर है कि उसे देखकर सारा जगत् तो मोहित हो ही जाता है वह स्वयं भी उसे देख कर विस्मित हो जाते हैं । सौभाग्य और सुन्दरता की उस रूप में पराकाष्ठा है । जिससे अङ्गों के आभूषण भी विभूषित हो जाते हैं ।

सदा बन्दे कलात्मकौ :—

आप दोनों काम बीज स्वरूप हैं । यथा:—

"क कारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रह ।
ई कारः प्रकृती राधा नित्यं वृन्दावनेश्वरी ॥
लश्चानन्दात्मकं प्रेम सुखं तयोश्च कीर्तितम् ।
चुम्बनानन्द माधुर्यं नाद बिन्दु समीरितः ॥" [श्रीगौतमीय तंत्र]

काम बीज में 'क्' का अर्थ सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण 'ई' का आदि शक्ति नित्य वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका जी है । 'ल्' का अर्थ आनन्दात्म प्रेम सुख, तथा 'नाद बिन्दु' को चुम्बन, आलिङ्गन, रूप माधुर्य्य जानना चाहिये ।

सदावन्दे......

श्रीग्रन्थकार उपरोक्त मङ्गलाचरण के दोनों श्लोकों में वर्णित सब विशेषणों

सहित श्रीप्रिया प्रीतम की बन्दना करते हैं।

॥ दोहा ॥

जय जय श्रीहितु सहचरी भरी प्रेम रसरंग।
प्यारी प्रियतम के सदा रहत जु अनुदिन संग ॥

इस दोहे को ग्रन्थकार "श्रीमहाबाणी" के पाँचों सुखों में अपने गुरु रूपा सखी श्रीहितु सहचरी जी की बन्दना करते हुए वर्णन करते हैं। श्रीहितु-सहचरी जी प्रेम, रस, तथा रंग से भरी हुई हैं।

मर्कत मणि कंचन घन दामिनि। सो पिय प्यारी तन संज्ञा गनि ॥
तथा तमाल कनक की बेली। रति अनङ्ग रस रङ्ग सहेली ॥
(म० बा० तालिका)

'तालिका' के अनुसार रस, रंग का अर्थ श्रीप्रिया प्रीतम होता है। अर्थात श्रीहितु सहचरी जी श्रीलाल ललना के प्रेम से भरी हुई हैं।

दूसरे अर्थ में :— प्रेम—यथा :—

"सम्यङ्मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमानिगद्यते ॥" (भक्तिरसामृत सिंधु)

भाव की उस गाढ़ अवस्था को विद्वान लोग "प्रेम" कहते हैं, जिसमें चित्त पूर्ण रूप से पिघल जाता है और श्रीकृष्ण में अतिशय ममता हो जाती है।

रस। यथा :—सिद्धान्त रत्नाञ्जली पृः १२६

पुनः यथा :—विभावैरनु भावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः ॥
एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत् ॥ (भक्तिरसामृत सिंधु)

श्रवण कीर्तनादि करते करते जब श्रीप्रिया–प्रीतम विषयक रति (स्थायी भाव) भक्तों के हृदयों में विभाव, अनुभाव, सात्विक तथा व्यभिचारी द्वारा विशेष रूप से आस्वादन होता है तब उसको 'भक्ति रस' कहते हैं।

रङ्ग। यथा :—

"रञ्ज्" धातु से रङ्ग शब्द बनता है। जिसका अर्थ प्रेम में अनुरक्त होना है।

यहाँ रङ्ग शब्द से प्रेम की ही एक अवस्था विशेष अर्थात् अनुराग से तात्पर्य है। जिसके लक्षण यह हैं :—

सदानुभूतमपि यः कुर्वन्नवनवं प्रियम् ।
रागो भवन्नवनवः सोऽनुरागइतीर्यते ।। (श्रीउज्ज्वल नीलमणि)

प्रेम की ही एक अवस्था विशेष का नाम राग है जिस अवस्था में अत्यन्त दुख भी पराकाष्ठा का सुख प्रतीत होता है। उस राग की गाढ़ अवस्था का नाम ही अनुराग है जिसमें श्रीप्रिया प्रीतम दर्शन करने से क्षण क्षण में नवीन प्रतीत होते हैं।

उपरोक्त व्याख्या के अनुसार दोहे का यह अर्थ हुआ। श्रीहितु सहचरी जी का हृदय सदैव प्रेम से पिघला रहता है, वह श्रीलाल ललना के रति रस आस्वादन में निमग्न रहती हैं और उनके दर्शन करके क्षण क्षण में उनको नवीन नवीन भावों से अनुभव करती रहती हैं।

।। दोहा ।।–२

तिनकी कृपा मनाय कें बरनों परम सुधाम।
महाबाणी सिद्धान्त सुख, निज घर स्यामास्याम ।।२।।

श्रीहितु सहचरी जी की कृपा मनाय के श्रीमहाबाणी सिद्धान्त सुख रूपी उस परम सुधाम का वर्णन करता हूँ जो कि श्रीप्रिया प्रीतम के रहने का निज घर स्वरूप है।

जैसे कि श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में वर्णित है–

"स्वकीयं यद्भवेतेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ।।"

[पद्म पुराणे श्रीभा. मा. ३, अ. ६१ श्लोक]

श्रीकृष्ण ने अन्तर्धान के समय अप्रकट होकर श्रीमद्भागवत रूपी समुद्र में प्रवेश किया। अपने तेज को श्रीमद्भागवत में रख दिया जैसे श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण के रहने का सुन्दर स्थान है इसी प्रकार 'महावाणी सिद्धान्त सुख" भी है। जैसे घर में दीवारें होती हैं इसी प्रकार सिद्धान्त रूपी दीवारों से वेष्टित यह श्यामा श्याम के रहने का सुन्दर निज घर है।

।। अनुरागिनि शुभरवा मध्याभास ।। (भैरव राग)

।। दोहा ।।

जय वृन्दावन नित्य जै, नित्य कुञ्ज सुखसार।
जय श्रीराधा पिय जहाँ, बिहरत नित्य बिहार ।।

।। पद ।।१।।

जय वृन्दावन नित्य बिहार। श्रीराधा पिय परम उदार ।।
जय सहचरी आदि रङ्गदेव्य। स्यामास्यामहि जिनकें सेव्य ।।
जय नव नित्य कुंज सुख सार। जय जमुना कंकन आकार ।।
श्रीहरिप्रिया सकल सुखसार। सर्ब वेद कौ सारोद्धार ।।१।।

श्रीग्रन्थकार ग्रन्थ प्रारम्भ करने से पहले इस पद द्वारा नमस्कारात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण करते हुए कहते हैं :—

श्रीनित्य वृन्दावन, सुख सार स्वरूप नित्य निकुञ्ज, नित्य विहार, कंकना कार श्रीयमुना जी तथा उन श्रीरङ्गदेवी आदि सहचरियों की जय हो जिनके सेव्य वह परम उदार श्रीप्रिया प्रीतम हैं जो सब सुखों तथा वेदों के सार स्वरूप हैं ।

वृन्दावन नित्य विहार :—यथा :—

"नित्यं वृन्दावनं नाम नित्य रास रसोत्सवम् ।
अदृश्यं परमं गुह्यं पूर्ण प्रेम रसात्मकम् ।।"

(पद्म पुराण. पा. खं वृ. भा.)

नित्य वृन्दावन का स्वरूप अदृश्य, अत्यन्त गुह्य तथा पूर्ण प्रेम रसात्मक है। जहाँ नित्य रास रसोत्सव होते रहते हैं।

सकल सुख सार—यथा :—

"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम मृतस्या व्ययस्य च ।
शाश्व तस्य च धर्मस्य सुखस्यै कान्ति कस्य च ।।" (गी. अ. १४ श्लो. २७)

अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्य धर्म का और "अखण्ड एक रस आनन्द" का मैं ही आश्रय हूँ।

सर्व वेद को सारोद्धार—यथा:—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्त कृद्वेद वि देव चाहम ।। [गि. अ. १५ श्लो १७]

सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ, तथा वेदान्त का कर्त्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ।

दोहा—सूछम कलरव जन्य पर, वेद तन्त्र कौ मंत्र ।
श्रीवृन्दावन हरिप्रिया, नित्य बिहार स्वतन्त्र ।।

।। पद ।।२।।

वेद तंत्र कौ मंत्र मनोहर श्रीवृन्दावन नित्य बिहार ।
सूछम कलरव जन्य ब्रह्म पर परमधाम कौ परमाधार ।।
निरवधि नित्य अखंडल जोरी गोरी स्यामल सहज उदार ।
आदि अनादि एक रस अद्भुत मुक्ति परें पर सुख दातार ।।
अनंत अनीह अनावृत अव्यय अखिल अंड आधीस अपार ।
अंघ्रि अब्ज आभूषन रव करि केतन केत लेत अवतार ।।
अचल अचिंत अगम गुन आलय अक्षर तें अक्षर अधिकार ।
श्रीहरिप्रिया विराजत हैं जहाँ कृपा साध्य प्रापति सुखसार ।।२।।

अब अलग अलग तुकों की व्याख्या को जाती है ।

सूक्षम कलरव जन्य पर वेद तन्त्र कौ मन्त्र ।

यहाँ ग्रन्थकार की यह उक्ति है कि बहुत धीमे मधुर स्वर से जो शब्द प्रकट हुआ है वही "सूक्षम कलरव जन्य अर्थात "शब्द ब्रह्म" है । जिसका प्रादुर्भाव श्रीस्वामिनी जी के चरणारविन्द के नूपुर के शब्द से शब्द से हुआ है । यथा—

"श्रीराधा पद कमल ते नूपुर कलरव होय ।
निर्विकार व्यापक भयो शब्द ब्रह्म कहैं सोय ।।"

(म. बा. सि. सु. ४३६)

श्रीसनत् कुमार संहिता में भी इसी प्रकार से वर्णित है ।

"कृता युग्मेन सा केलिं महानन्द मयि ध्रुवा ।
नूपुराञ्जनितो रावः स एव ब्रह्म संज्ञिकः ।।

[स. कु. सं. पटल ३१ श्लो. ७४]

अर्थात् श्रीप्रिया प्रीतम ने मिलकर आनन्दमयी सुरति केलि की, उस समय श्रीस्वामिनी जू के नूपुर का जो शब्द हुआ उसी को "शब्द ब्रह्म" कहते हैं।

वही 'शब्द ब्रह्म' क कार लकारात्मक 'काम बीज' है। उसी पर वेद तथा तन्त्र के मन्त्र हैं।

अब इस विषय की पुष्टि के लिये 'गौतमी तन्त्र' में से कुछ अंश उधृत किये जाते हैं :-

सर्वेषु मन्त्र बर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णवो उच्यते।
विशेषतो दशार्णोऽयं जप मात्रेण सिद्धिदः॥
कामाक्षरं धरा संस्थं शान्ति विन्दु विभूषितम्।
त्र्यी लोक्य मोहनं वीजं कथितं तव यत्नतः॥
समस्त कृष्ण मन्त्राणां उद्दीपन करं परम॥

अर्थात् जितने सौर्य, गाणपत्यादि, वैदिक तान्त्रिक मन्त्र हैं उनमें वैष्णव (विष्णु मन्त्र) श्रेष्ठ हैं। उनमें भी श्रीकृष्ण मन्त्र श्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्ण मन्त्रों में भी दशाक्षर मन्त्र जप मात्र से ही सिद्धि देने वाला है। परन्तु 'काम बीज' समस्त कृष्ण मन्त्रों का भी उद्दीपन [प्रकाश] करने वाला है। इसीलिये सब कृष्ण मन्त्रों में यह मन्त्र नायक स्वरूप है। इसका स्वरूप यह है। कामाक्षरं=कों। धरासंस्थं=ल॥ शान्ति बिन्दु= ई+[ं]॥ चारों वेद ओ३म् पर हैं। यथा:—

ततोऽभूत्त्रिवृदोङ्कारोयोऽव्यक्त प्रभवः स्वराट्।
स सर्व मन्त्रोपनिषद्वेद बीजं सनातनम्॥

[श्रीभा. स्क. १२ अ. ६ श्लो. ३९-४१]

उस अनाहत नाद से अकार; उ कार और मकार रूप तीन मात्राओं से युक्त ओ३म् कार प्रकट हुआ। ओ३म् कार ही सम्पूर्ण मन्त्र, उपनिषद् और वेदों का सनातन वीज है।

अर्थात् चारों वेद ओ३म् पर और समस्त तन्त्र काम बीज पर हैं। ओ३म् और काम बीज का ऐक्य है। श्रीनिम्बार्क भगवान कृत 'रहस्य शोऽषी' यथा:—

"अकारार्थो हरिः प्रोक्तो मध्यमार्थो गुरुस्तथा।
मकारार्थो जीव जातो विज्ञेयो वैष्णवोत्तमैः॥

तथैव क्लर्थः कृष्णः स्या द्वितीयो गमयितागुरुः ।
चरमार्थश्च क्षेत्रज्ञ इति शास्त्रानु शासनम् ।।" (रहस्य शोडषी)

शास्त्र की यह आज्ञा है कि जैसे अकार का हरिः उ कार का गुरु और मकार का जीव अर्थ है इसी प्रकार 'काम बीज' का भी समझें । इत्यादि

श्रीगोपालोत्तर तापिनी में भी वर्णित है :—

'क्लीमोंकार योरेकत्वं उज्यते ब्रह्म वादिभिः"

अर्थात् ब्रह्म वादी 'काम वीज' और ओ३म् कार का एकत्व ही वर्णन करते हैं ।

उपरोक्त प्रमाणों से यही सिद्ध हुआ कि 'सूक्षम कलरव जन्य' अर्थात काम वीज जिसकी उत्पत्ति श्रीस्वामिनी जी के चरणारविन्द के नूपुर के शब्द से है उसी से समस्त वैदिक तथा तान्त्रिक मंत्र प्रकट हुए हैं ।

"श्रीवृन्दावन हरिप्रिया नित्य विहार स्वतन्त्र ।"

अर्थात् श्रीवृन्दावन तथा श्रीप्रिया प्रीतम का विहार स्वतन्त्र है अर्थात् उसका कोई कारण नहीं है । श्रीसनत् कुमार संहिता में वर्णन है :—

वृन्दावनं महत्पुण्यं सर्व पावन पावनम् ।
सर्व लोक वहिर्भूतं निराधारं परिस्फुटम् ।।
तत्र संक्रीडते युग्मं ललितादि सखी वृतम् ।
(स. कु. सं. पटल ३१ श्लो. २२, २३,२४)

श्रीवृन्दावन अत्यन्त पवित्र है इसलिये—और जितने पवित्र पदार्थ हैं उनको भी पवित्र करने वाला है । यह निराधार होने से प्रत्यक्ष ही सब लोकों से अलग है । वहाँ श्रीप्रिया प्रीतम ललितादि सखियों के साथ नित्य विहार करते हैं ।

वेद तंत्र कौ मंत्र मनोहर, श्रीवृन्दावन नित्य विहार ।

वेद तंत्र कौ मंत्र—काम बीज ही मनोहर श्रीवृन्दावन नित्य विहार स्वरूप है । अर्थात् कामबीज में श्रीप्रिया-प्रीतम तथा उनका नित्य विहार सूचित है । यथा :—

"क कारः पुरुषः कृष्ण सच्चिदानन्द विग्रह ।
ई कारः प्रकृती राधा नित्यं वृन्दावनेश्वरी ।।
लश्चानन्दात्मकः प्रेम सुखं च परि कीर्तितम् !
चुम्बना श्लेष माधुर्यं बिन्दु नाद मुदीरितम् ।।" (वृहद्गौतमीय तंत्र)

अर्थात काम बीज में 'क्' का अर्थ सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण, 'ई' का आदि शक्ति नित्य वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका जी है। 'ल्' का अर्थ आनन्दात्मक प्रेम सुख है। नाद बिन्दु से चुम्बन आलिङ्गन रूप माधुर्य जानना चाहिये।

इससे यह सिद्ध हुआ कि कामबीज ही श्रीलाल ललना तथा उनका नित्य विहार स्वरूप है।

सूक्षम कलरव जन्य ब्रह्म पर, परम धाम को परमाधार ।।

अर्थात् 'शब्द ब्रह्म' जिसको यहाँ "सूक्षम कलरव जन्य" कहते हैं। जिसकी उत्पत्ति श्रीप्रियाजी के नूपुर के शब्द से है। वही काम बीज है यही प्राकृत तथा अप्रकृत श्रीवैकुण्ठ आदि लोकों तथा उनके अधिपतियों का कारण स्वरूप है। यथा :—

श्रीगौतमीय तंत्र में भी कामबीज की व्याख्या करते हुए श्रीनारद जी कहते हैं। काम बीज ही सब लोकों का आधार स्वरूप है—

"क्लीं काराद सृजद्विश्वमिति प्राह श्रुते शिरः।
ल कारात्पृथिवी जाता क काराज्जल संभवः ।।
'ई' काराद्वह्रिरुत्पन्नो नादाद्वायुरजायत।
बिन्दोराकाशंः संभूति रिति भूतात्मको मनु ।।२।।

श्रुति का शिरोभाग—गोपाल तापिनी में काम बीज से ही इस विश्व की उत्पत्ति वर्णित है। ल् कार से पृथ्वी, क्कार से जल, ईकार से अग्नि, नाद से वायु, और विन्दु से आकाश उत्पन्न हुए। इसलिये इस मंत्र को भूतात्मक भी कहते हैं।

"कृता युग्मेन सा केलि महानन्द मयी ध्रुवा।
नूपुराञ्जनितो रावः स एव ब्रह्म संज्ञिकः ।।
ततो जातस्तु पुरुषः सु शुद्धः प्रकृते परः ।
ततो प्रकृति पुरुषौ ततो नारायणः परः ।।
तन्नाभि कमलाज्जातो ब्रह्मा ब्रह्म विदां वरः।
ततोरुद्राश्च मुनयो जाता वैसृष्टि कृत्तमाः ।।
(सनत् कुमार संहिता पटल ३१ श्लो. ७४. ७५. ७६)

श्रीप्रिया प्रीतम ने परस्पर मिलकर आनन्दमयी सुरति केलि की। उस समय श्रीस्वामिनी जी के नूपुर का जो शब्द हुआ उसी को शब्द ब्रह्म कहते हैं। उसी शब्द से

मायातीत 'पुरुष' प्रकट हुआ जिससे प्रकृति तथा पुरुष (मायान्तर्यामी) आविर्भाव हुए। जिनसे श्रीनारायण प्रकट हुए। इनकी नाभि कमल से वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ श्रीब्रह्माजी का जन्म हुआ। उनसे श्रीमहादेव जी तथा अन्य प्रजापति प्रकट हुए।

श्रीमहावाणी में स्वयं ग्रन्थ कर्त्ता ने उपरोक्त विषय को इस प्रकार अंकित किया है।

"नाद के अण्ड ते अखण्ड धारा द्रवत,
स्रवत जा मध्य सत् सृष्टि केहेत ।
जे जे भाँति जे जे उपासत तिन्हें,
ते ते भाँति ते ते तिन्हें देत ॥"

(म. वा. सि. सु. पद ४६)

सारांश यह हुआ कि कामबीज जो कि श्रीस्वामिनी जी के नूपुर के शब्द से अभिन्न है वही वैकुण्ठादि परम धामों का आधार स्वरूप है।

निरवधि नित्य अखण्डल जोरी गोरी श्यामल सहज उदार।

गौर श्याम श्रीप्रिया प्रीतम नित्य हो श्रीयुगल स्वरूप हैं इनका कभी भी विच्छेद नहीं होता है। यथा :—

"श्रीराधिका कृष्ण युगं सनातनं नित्यैक रूपं विगमादि वर्जितम्।
यद्वज्जलो ल्लोल युगं मिथोरतं, तद् गोचरं यावद वाग्नु यान्नतु ॥

(उदम्बर संहिता)

श्रीलाल ललना तत्व से एक होने पर भी अनादि काल से विच्छेद रहित इस प्रकार युगल हैं जैसे जल और उसकी तरंगे कभी अलग अलग नहीं होती हैं। इनका साक्षातकार एक मात्र सत्संग से ही हो सकता है।

आदि अनादि एक रस अद्भुत, दोनों आदि अनादि हैं : यथा :—

(१) "ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादि गोविन्दः सर्व कारण कारणम् ॥"   (ब्रह्म संहिता)

(२) एक रस अद्भुत यथा:—

"येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीड़नार्थं द्विधाऽभूत ॥"

(राधिकोपनिषत्)

(३) श्रीकृष्ण (प्रीया प्रीतम) परम ईश्वर हैं। इनका दिव्य मङ्गल विग्रह

सच्चिदानन्द स्वरूप है । यह सबके आदि होते हुए भी अनादि हैं । सब कारणों के कारण स्वरूप है ।

(४) श्रीराधा माधव एक ही रस के अद्भुत समुद्र हैं । केवल क्रीड़ा करने के लिये ही दो स्वरूपों से प्रकट हुए हैं ।

मुक्ति परे पर सुख दातार ॥

मुक्ति से भी परे जो पर सुख—श्रीवृन्दावन प्राप्ति उसको देने वाले हैं । यथा:— अर्थात् पञ्चम पुरुषार्थ प्रेम को देने वाले हैं ।

"गतो राधापति स्थानं यत्सिध्दैरप्य गोचरम् ।
ततश्चतदुपादिष्टो गोलोका दुपरि स्थितम् ॥
नित्य वृन्दावनं नाम नित्य रास रसोत्सवम् ।
अदृश्यं परमं गुह्यं पूर्ण प्रेम रसात्मकम् ॥"
(पद्म पुराण पाताल खण्ड वृन्दावन माहात्म्य)

फिर वह श्रीप्रिया प्रीतम के उस स्थान में पहुँचा जो सिद्धों अर्थात मुक्त पुरुषों के भी अगोचर है । जिसका नाम दिव्य वृन्दावन है । जहाँ रास आदि नित्य उत्सव होते रहते हैं । जो स्थान पूर्ण प्रेम रसात्मक होने से मुक्ति से भी परे सुख का देने वाला है तथा अत्यन्त गुह्य तथा अदृष्य है ।

उपरोक्त से यह सिद्ध हुआ कि श्रीवृन्दावन मुक्ति से भी परे जो पर सुख है उसको देने वाले हैं ।

अनन्त अनीह अनावृत अव्यय, अखिल अंड आधीश अपार ॥

अनन्त :—यथा :—

"सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।" (श्रीभा. १० स्क. १४ अ. २३ श्लो)

हे प्रभो ! आप ही एक मात्र सत्य हैं । स्वयं ज्योति, अनंन्त तथा आद्य हैं ।

अनींह यथा—

"वदन्त्यनी हादगुणाद्विक्रियात् ॥" (श्रीभा १० स्क. ३ अ. १९ श्लो)

आपको स्पृहा गुणों और विकारों से रहित कहते हैं ।

अनावृत यथा:—

"अनावृतत्वाद् वहिरन्तरं न ते ।।" (श्रीभा. १० स्क. ३ अ. १७ श्लो)

आप मायिक गुणों से बिना ढके हुए हैं इसीलिये आप में न बाहर है न भीतर।

अव्यय:—यथा :—

"यो लोक त्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।" (श्र. म. गीता अ. १५ श्लो. १७)

जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है जिसको अविनासी परमेश्वर कहते हैं। अखिल अण्ड आधीश अपार यथा :—

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का अपार अधीश्वर यथा—

"यदंघ्रि नख चन्द्रांशुमहिमान्तो न गम्यते ।
तन्माहात्म्यं कियद् देवि प्रोच्यते तं मुदाश्रृणु ।।
अनन्त कोटि ब्रह्माण्डे अनन्त त्रिगुणोच्छ्रये ।
तत्कला कोटि कोटयांशा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः ।।

(पद्म पुराणे पाताल खण्ड वृन्दावन माहात्म्ये)

हे देवि ! हम श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण महिमा किस तरह से वर्णन कर सकते हैं। जिनके चरणार विन्द के एक नख चन्द्र की किरण की महिमा भी हम नहीं जानते हैं तो भी यथा शक्ति कुछ कहते हैं तुम सावधान होकर आनन्द से सुनो ! त्रिगुण के आश्रित जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड है उनमें जो अनन्त कोटि ब्रह्मा बिष्णु महेश हैं यह सब श्रीकृष्ण के कोटि कोटि अंश कला स्वरूप हैं।

अंघ्रि अब्ज आभूषण रव करि, केतन केत लेत अवतार ।।

जिनके चरणारविन्द के नूपुर के शब्द से अगणित अवतार प्रकट होते हैं :—

श्रीसनत् कुमार संहिता में वर्णित है :—

"श्रीस्वामिनी जी श्रीललिता जी से कहती हैं। श्रीराधोवाच :—"

"करुध्वं मण्डलं यूयं मध्ये तिष्ठामि युग्मकम् ।
भवन्त्यः प्रक्रमां कुर्यु रावयोश्च पुनः पुनः ।।
अहं कृष्णश्च युग्मंतु कुर्वे रास क्रियां शुभाम् ।
ततश्चकार वै रासं पुनरभ्यन्तरे ययौ ।।
कृता युग्मेन सा केलि महानन्द मयी ध्रुवा ।
नूपुराज्जनितो रावः स एव ब्रह्म संज्ञिकः ।।
ततोजातस्तु पुरुषः सु शुद्ध प्रकृते परः ।

ततः प्रकृति पुरुषौ ततो नारायणः परः ।।
तत्नाभि कमलाञ्जातो ब्रह्मा ब्रह्म विदांवरः ।
ततो रुद्राश्च मुनयो जाता वैसृष्टि कृत्तमाः ।।
(स. कु. सं. पटल ३१ श्लो. ७२, ७३, ७४, ७५, ७६।)

"एतन्नानावताराणां निधानं बीजम व्ययम् ।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देव तिर्यङ् नरादयः ।।"
(श्री भा. १ स्क. ३ अ. ५ श्लो.)

श्रीस्वामिनी जी कहती हैं :—

हे ललिते ! तुम सब मण्डली बांधकर स्थित हो । बीच में हम दोनों रहेंगे । तुम सब बार बार हमारी परिक्रमा करो । हम दोनों भी रास नृत्य करेंगे । इसके बाद इस प्रकार आज्ञा देकर रास नृत्य करके दोनों निकुञ्ज मन्दिर में पधारे वहाँ दोनों ने मिलकर आनन्द मयी सुरति केलि की । उस समय श्रीस्वामिनी जी के नूपुर का जो शब्द हुआ उसी को शब्द ब्रह्म कहते हैं । उसी शब्द से मायातीत "पुरुष" प्रकट हुआ उससे प्रकृति तथा पुरुष (मायान्तर्यामी) आविर्भाव हुए । जिनसे श्रीनारायण प्रकट हुए इनकी नाभि कमल से वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ श्रीब्रह्माजी का जन्म हुआ । उनसे श्रीमहादेवजी तथा अन्य प्रजापति प्रगट हुए ।

श्रीनारायण से सब अवतारों का प्रागट्य श्रीमद्भागवत में भी वर्णित है ।

"भगवान यही पुरुष रूप जिसे नारायण कहते हैं अनेक अवतारों का अक्षय कोष है । अर्थात् इसी से सारे अवतार प्रकट हुए हैं । इसी रूप के छोटे से छोटे अंश से देवता, पशु पक्षी, और मनुष्यादि योनियों की सृष्टि होती है ।

उपरोक्त प्रमाणों से यह भली भाँति से सिद्ध होता है कि आपके चरणारविन्द के आभूषण अर्थात् नूपुर के शब्द से अगणित अवतार प्रकट होते हैं ।

अचल अचिन्त्य अगम गुण आलय, अक्षर ते अक्षर अधिकार ।।

'अचल' । यथा :—

"स्थिरो दान्तः क्षमाशीलो गभीरो धृतिमान, सम ।" (भक्ति रसामृत सिंधौ)

श्रीकृष्ण के चौंसठ गुणों में ये गुण भी वर्णित हैं :--अचल, दाता, क्षमाशील, गम्भीर, धैर्यवान और समभाव युक्त।

'अचिन्त्य'। यथा :--

"भक्तेच्छयोपात्त सुचिन्त्य विग्रहादचिन्त्य-रविचिन्त्यसाशयात्॥" (वेदांत कामधेनु)

जिन भगवान श्रीकृष्ण के आशय जानने के लिये ब्रह्मादिक भी असमर्थ हैं जिनकी सामर्थ्य अचिन्त्य है ऐसे होने पर भी निज भक्तों पर अनुग्रह करते हुए उनकी इच्छानुसार सुन्दर ध्यान करने योग्य दिव्य शरीर को धारण करते हैं।

"अगम गुण आलय।" यथा :—

ज्ञान शक्तिबलैश्वर्य्य वीर्य्य तेजास्यशेषतः।
भगवच्छब्द वाच्यानिविना हेयै र्गुणादिभिः॥ (विष्णु पुराण)

श्रीकृष्ण में हेय (प्राकृतिक) गुणों को छोड़कर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि गुण अशेष रूप से हैं। इसीलिये आपको भगवान कहते हैं।

"अक्षर तें अक्षर अधिकार"—"पुरुषोत्तम" यथा श्रीकृष्ण कहते हैं:—

'द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरउच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्यविभर्त्य व्ययईश्वर॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहम क्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
(भ. गी. अ. १५. श्लो. १६, १७, १८)

इस संसार में नाशवान और अविनाशी दो प्रकार के पुरुष हैं। सम्पूर्ण भूत प्राणियों के शरीर तो नाशवान हैं और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है। उत्तम पुरुष तो और ही है जो कि तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है। जिसको अविनाशी परमेश्वर, परमात्मा भी कहते हैं। मैं "क्षर" अर्थात् नाशवान् जड़ वर्ग से अतीत हूँ। "अक्षर" अर्थात् जीवात्मा से उत्तम हूँ। इसीलिये लोक और वेद में मुझ को ही 'पुरुषोत्तम' कहते हैं।

श्रीहरिप्रिया बिराजत हैं जहाँ, कृपा साध्य प्रापति सुख सार॥

जहाँ श्रीलाल ललना बिराजते हैं वह स्थान अर्थात् श्रीनित्य वृन्दावन सब सुखों का सार स्वरूप है। और वह एक मात्र उनकी कृपा से ही प्राप्त हो सकता है। यथा—

"तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥" (भ. गी. अ. १८ श्लो. ६२)

भगवान की कृपा से तू परम शान्ति को प्राप्त होकर अन्त में नित्य परम धाम को प्राप्त होगा।

यहाँ नित्य धाम से नित्य वृन्दावन ग्रहण करें। यथाः—

नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डो परि संस्थितम्।
पूर्ण ब्रह्म सुखैश्वर्य्यं नित्यमानन्दमव्ययम् ॥
वैकुण्ठादितदंशाशं स्वयं वृन्दावनं भुवि ॥"

(पद्म पुराण)

"दिव्यं वृन्दावनं नाम शेषागस्थं च सर्वदा।
ब्रह्म रूप मिदं देवि सच्चिदानन्द रूपकम् ॥ (पुरुषार्थ बोधिनी उपनिषद्)

नित्य वृन्दावन की स्थिति सब ब्रह्माण्डों के ऊपर है। वह स्थान पूर्ण परब्रह्म के आनन्द से परिपूर्ण है। उसका कभी नाश नहीं होता है। श्रीवैकुण्ठ आदि भगवत् धाम श्रीवृन्दावन के अंश के अंश स्वरूप है। भूमि वृन्दावन भी नित्य वृन्दावन से पृथक नहीं है। अर्थात् दोनों एक ही स्वरूप हैं।

हे देवि ! यह वृन्दावन दिव्य है शेष भगवान के श्रीअङ्ग पर स्थित है। यह ब्रह्म की तरह विकार रहित सच्चिदानन्द स्वरूप है।

॥ दोहा ॥

दिव्य कनक अवनी बनी, जटित मनी बहुभाँति।
अति विचित्रता सों ठनी, रवनी कवनी कांति ॥

॥ पद ॥३॥

दिव्य कंचनमयी अवनि रवनी।
जटित मनि बिबिध बर चित्रकवनी ॥
बिमल वृक्षन की सोभा बनी सार।
पेड़ मनि नील तौ हरितमनि डार ॥१॥
पत्र मनि पीत फल अरुन अनुकूल।
मधुर सौरभ सुभग सुरंग रंग फूल ॥२॥

बहुत द्रुम ऐसें रहि जिनकी छबि छाय ।
फूल फल मूल साखादि बहुभाय ॥३॥
सबहिं आभासि रहे रंग नाना ।
मनहरन रम्य को कोटि भाना ॥४॥
अतिही रसीली रही रङ्ग रेली ।
ललित वृक्षन सों लपटाय बेली ॥५॥
बहुत कै लत्तिका उर्ध्व गवनी ।
बहुत कै भूमि परिसरित रवनी ॥६॥
कंकनाकार सौढार सरिता ।
बहति अति सुरस सिंगार भरिता ॥७॥
रङ्ग नाना तरंगें सुपुंजें ।
कमल–कुल लुब्ध अलि करत गुंजें ॥८॥
हंस सारस चक्रवाक मोरा ।
कोकिला कीर चातिक चकोरा ॥९॥
आदि कारंड कल सुर रसाला ।
रटत बर जुगल की नाम माला ॥१०॥
उभय–तट रत्न–बद्धित विराजें ।
तिन उपरि तरुन की सुछबि छाजें ॥११॥
झुकि रही डार फल फूल भारें ।
परसि बारिहिं बिहारें अपारें ॥१२॥
परति नहिं कहि बन बनिक जोहें ।
अति ही सोभा की सोभा बिमोहें ॥१३॥
आपुहीं लुभि रहे दोउ प्यारे ।
छिनहुँ तहँ तें न ह्वै सकहिं न्यारे ॥१४॥
ऐसो निज धाम जा मध्य निति भूमि ।
अमित दल कमल आकार रही झूमि ॥१५॥

मध्य मंजुल बनी अष्टदल पांति।
उपरि प्रिय सखिनि की कुंज सरसांति ॥१६॥
तेजमय कर्निका अति सुदेसा।
ताके चहुँ ओर सरवर सुबेसा ॥१७॥
मान अरु मधुर सरवर स्वरूपा।
रूप सरवर सहित अति अनूपा ॥१८॥
तिनकि चहुँ ओर रचना अपारा।
नगनि करि घाट निर्मित सुढारा ॥१९॥
सुभग सुठि सिढिनि कौ अति प्रकासा :
जगमगहिं जोति उठि रह्यौ उजासा ॥२०॥
चहुँ सरवरन के मध्य सोहें।
महल अठद्वार छबि कों बिमोहें ॥२१॥
द्वार–द्वारन ध्वजा अति सुढाला।
बडडे मुक्तान बन्दन सुमाला ॥२२॥
कनक सुकपाट सुभ घाट सोहें।
निकर निकुधांनि कें जरित जोहें ॥२३॥
जगर जगमगति अति जोति जिनकी।
अमित दुति धरन सम होति तिनकी ॥२४॥
फटिकमनि भीति अति स्वच्छ जामें।
भासें प्रतिबिम्ब सब ठौर तामें ॥२५॥३॥

॥ दोहा ॥

ता जु महल के चौक बिचि, मणि मण्डल रसपुंज।
ता चहुँघाँ सोहनि बनी, अष्टमोहनीकुञ्ज ॥२६॥
मङ्गल सेंन प्रजंत लगि, सेवा-सुख इन माहिं !
सरस बनी मोहन महल, कल्पवृक्ष की छांहि ॥२७॥

॥ पद ॥४॥

सरस मनि मृदुल मनि कनक खचिता।
सूर ससि हेममनि कांति रचिता ॥२८॥
पद्म अरु पुष्प रागादि राजें।
बिबिध बर चित्र तासों बिराजें ॥२९॥
ता जु मधि मृदुल सज्या सहेली।
स्याम स्यामा कि जहाँ सुरत केली ॥३०॥
और काहू कौ जहाँ नहीं प्रवेसा।
बिना श्रीहरिप्रिया लहें न लेसा ॥३१॥४॥

॥ दोहा ॥

आँगन मोहन महल के, मोहन मण्डल मञ्जु।
ता ऊपर अठकौंन कौ, सुख सिंघासन रंजु ॥३२॥
कोंन कोंन प्रत्येक इक, प्रिया प्रमदा-गन संग।
रुचि अनुसारें सेवहीं, उर अनुराग अभंग ॥३३॥
उत्तर श्रीरङ्गदेवि जू, दिस ईसान सुदेवि।
पूरब श्रीललितासखी अग्नि बिसाखा सेवि ॥३४॥
दक्षिन चंपक लत्तिका, चित्रा नैरितु पेखि।
पश्चिम तुङ्गविद्या सखी, वायुकोंन इन्दुलेखि ॥३५॥
रङ्ग सुदेवी दुहुँनि कौ, कमल केसरी रङ्ग।
जपा सुही के रंग की, सारी सोहै अङ्ग ॥३६॥
सेवा भूषन सजत तन, सरस सुगन्ध सवारि।
भरी रूप रस रङ्ग में, लड़वें जुगल निहारि ॥३७॥
ललित बिसाखा दुहुँन कौ, रोचन दामिनि बर्न।
मोर पिच्छ उडुभांति के, पहिरें पट मन हर्न ॥३८॥
बीरी बागे सेव में, सावधान ए दोइ।

जुगल रूप में पगि रही, तन मन प्रान समोइ ॥३९॥
चंपलता चंपक बरन, चित्रा कुमकुम कांति।
नीलरु पीत निचोल निजु, पहिरें बसन सुहांति ॥४०॥
सेवा है इनि दुहुँनि कें, भोजन अरु जलपान।
अतिहित सों अरुगावहीं, पावहिं रस बहुबान ॥४१॥
तुङ्गविद्या इन्दुलेखिका, गौर बरन हरितार।
पहिरें सारी फबि रही, पण्डुर पुहुप अनार ॥४२॥
नृत्यादिक अरु कोक की, कला भेद बहुभाइ।
रिझवत सिखवत दुहुँनि कौं, अद्‌भुतदाय उपाइ ॥४३॥
बिबिध भूमि के भेद हैं, बिबिध कुञ्ज मन रंजु।
नित्य-नित्य नई-नई जहाँ, श्रवत सुखमई सञ्जु ॥४४॥
इनिमें श्रीहरिप्रिया कौ, नित्य बिहार अखण्ड।
अंसा-अंसी रूप में, राचि रह्यौ ब्रहमंड ॥४५॥

॥ पद ॥३॥

अनुरागनी शुभरवा मध्याभास (भैरवी)

दिव्य कनक अवनी वनी जटित मनी बहुभाँति।
अति विचित्रता सों ठनी रमनी कमनी काँति ॥

श्रीनित्य वृन्दावन की भूमि दिव्य स्वर्णमयी रत्न जटित की इतनी सुन्दर कान्ति है कि मानो ये रमणियों में श्रेष्ठ श्रीस्वामिनी जी के अङ्ग की छटा है। यथाः—

"वनं वृन्दावनं नाम सर्व श्रृङ्गार दायकम्।
सर्वत्र कांचनी भूमिः दिव्योद्यान समुद्‌भवे ॥" (अनन्त संहिता)

यह वृन्दावन नामक वन सब श्रृङ्गार को देने वाला है। इसकी भूमि सब स्वर्ण मयी है। जिसमें सुन्दर सुन्दर बगीचे हैं। पुनः। यथाः—

"द्रुमा भूमिश्चिन्तामणि गणमयी तोयममृतम् ॥" (ब्रह्म संहिता)

श्रीवृन्दावन के सब वृक्ष कल्पतरु, भूमि चिन्तामणि तथा जल अमृत सदृश हैं।

श्रीस्वामिनी जी के अङ्ग की छटा। यथा:—

"रोमालीमिहिरात्मजा सुललिते बंधूक बन्धु प्रभा।
सर्वांगस्फुट चंपक छविरहो नाभी सरः शोभना॥
वक्षोजस्तव कालसद्भुज लता शिंजापतच्छ्रकृतिः।
श्रीराधा हरते मनो मधुपतेरन्येव वृन्दाटवी॥" (श्रीराधासुधा निधि श्लो. १७८)

सवैया

गौर शरीर पै रोम समूह, मनौ जमुना जल हो लहराई।
ओंठ लसैं जिमि बन्धु प्रशून से, चंपक अंगलता भुजलाई॥
नाभि सरोवर गुच्छा कुचा, पग नूपुर भौरं गुञ्जार सुहाई।
अन्य वृन्दावन होय के राधिका, मोहन भौंर को चित्त चुराई॥

दिव्य कंचन मयी अवनि रमनी।
जटित मनि विविध वर चित्र कमनी॥
विमल वृक्षन की शोभा बनी सार।
पेड़ मनि नील तौ हरित मनि डार॥
पत्र मणि पीत फल अरुन अनुकूल।
मधुर सौरभ सुभग सुरँग रँग फूल॥
बहुत द्रुम ऐसे, रहि जिनकी छवि छाय।
फूल फल मूल शाखादि बहु भाय॥
सबहि आभासि रहे रङ्ग नाना।
मन हरन रम्य को कोटि भाना॥
अतिहि रसीलो रही रङ्ग रेली।
ललित वृक्षन सों लपटाय बेली॥
बहुत कें लतिका ऊर्ध्व गमनी।
बहुत कें भूमि परि सरित रमनी॥

श्रीनित्य वृन्दावन की रमणीय भूमि दिव्य कञ्चनमयी है। जोकि विविध प्रकार के श्रेष्ठ चित्र विचित्र मणियों से जटित होने के कारण अत्यन्त सुन्दर है। विमल वृक्षों की अवलियाँ अत्यन्त सुशोभित हैं उनके तने नील मणियों के, साखाएँ हरित मणियों की, पत्ते पीत माणयों के, फल लाल मणियों के और सुरङ्ग रङ्ग के फूल लगे

हुए हैं। जिनमें से अत्यन्त मधुर सुगन्ध आ रही है। ये सब अनुकूल रूप से सुशोभित है। अर्थात् जिस प्रकार की भूमि पर जिस प्रकार का वृक्ष और जिस प्रकार के वृक्ष पर जिस प्रकार की शाखाएँ, तथा जिस प्रकार के पत्र फल, फूल आदि सुशोभित लगते हों उसी प्रकार के सुन्दरता युक्त हैं। बहुत से वृक्ष इस प्रकार से सुशोभित हैं कि उनके फूल, फल मूल तथा शाखादि बहुत प्रकार की हैं। इन सबकी रङ्ग विरङ्गी ज्योत्स्ना करोड़ों भास्करों की रम्यता को हरण करने वाली है। रसीली रङ्ग विरङ्गी बेलें ललित वृक्षों से लिपटी हुई हैं जिनमें बहुत सी लतिकायें नीचे से ऊपर को गई हुई हैं, और बहुत सी पृथ्वी पर फैली हुई हैं। यथाः—

(१) स्वर्ण स्कन्धाः शिति सित मणि स्थूल शाखोप शाखा-
केचिद्द् वृक्षा मरकत दलाः पद्मराग प्रवालाः।
विभ्राजन्ते स्फटिक कुसमाः स्थूलभुक्ता फलौद्या—
श्चान्ये तत्तन्मणि विरचना वैपरीत्येन यस्मिन ॥

(२) "वृक्षा हैमा हरि मणिमयैः काञ्चनै रैन्द्र नीला—
वैदूर्याभा स्फटिक मणिजैः स्फाटिकाः पद्मरागैः।
ग्लौ कान्तांगा मर्कत मयैस्तैश्चतेऽने तथान्यै
दीव्यं व्यस्मिन् वृतति बलै श्लेष्ट शाखा प्रफुल्ला ॥

(३) हरिमणि भुवि हैमा वैद्रुमा वैद्रुमाश्च
स्फटिकमणि धरायां स्फाटिकाः स्वर्ण भूमौ।
अरुण मणि धरायां शात्क नीलाश्व यस्मिन्—
मर्कतमणि धात्र्यां पद्मरागा विभन्ति ॥

(श्रीगोविन्द लीलामृत सर्ग २१ श्लो. ५८. ५९. ६०)

(१)किसी किसी वृक्ष के तने स्वर्ण भणियों के, स्थूल शाखा इन्द्रनील मणियों की तथा उप शाखायें स्फटिक मणियों की हैं। पत्र मरकत मणियों के, कौंपलें पद्मराग मणियों की, पुष्प स्फटिक मणियों के तथा फल बड़े बड़े मुक्ताओं के सुशोभित हो रहे हैं। इसी प्रकार और और वृक्ष भी इनके विपरीत क्रम से सुशोभित हैं।

(२) श्रीनित्य वृन्दावन में विविध वर्ण के वृक्षों से विविध वर्ण की लताएँ लिपट रही हैं। कहीं स्वर्ण मयी वृक्षों से इन्द्रनील मणि लतायें, कहीं इन्द्रनील मणि वृक्षों से

स्वर्ण मयो लतायें, कहीं वैदूर्य मणि वृक्षों से स्फटिक मणिलतायें, कहीं स्फटिक मणि वृक्षों से पद्म राग मणि लतायें, और कहीं चन्द्रकान्त मणि वृक्षों से मर्कत मणि लतायें लिपट रहीं हैं। इसी प्रकार और मणियों के वृक्ष अन्य अन्य मणियों की लताओं से आश्लिष्ट होकर सुशोभित हो रहे हैं।

[३] जहाँ इन्द्रनील मणियों को भूमि है वहाँ स्वर्ण मणियों के वृक्ष हैं, जहाँ स्फटिक मणियों की पृथ्वी है। वहाँ लालमणियों के वृक्ष हैं, जहाँ स्वर्ण मणियों की भूमि है वहाँ स्फटिक मणियों के वृक्ष हैं, जहाँ लाल मणियों की धरा है वहाँ इन्द्रनील मणि के वृक्ष हैं और मर्कत मणि धरा पर पद्मराग मणियों के वृक्ष सुशोभित होते हैं।

कंकनाकार सौढार सरिता। बहत अति सुरस सिंगार भरिता ॥

श्रीवृन्दावन के चारों ओर कंकनाकार श्रीयमुना जी बह रही हैं। यह जल नहीं है बल्कि श्रृंगार रस ही जल रूप से बह रहा है। इसी ग्रन्थ में दूसरे स्थान पर भी वर्णन करते हैं :—

"सरिता रस श्रृंगार की सदा बहत चहु ओर" [म. बा. सि. सु. ४३६]

कंकनाकार। यथा:—

"कालिन्दी चा करोद्यस्य कर्णिकायाः प्रदक्षिणम्।" [पद्मपुराण]

श्रीयमुना जी कर्णिका की परिक्रमा देती हुई बहती हैं इसीलिये कंकनाकार हैं।

सुरस सिंगार भरिता...यथा:—

"सरिता यमुना नदी साहि कर्णिका मध्यस्था नंग बीज रूप कलिन्द पर्वतात् प्रकटिता कर्णिकां परितः संवेष्ट्य प्रवहति"।

[श्रीयुग्म तत्व समीक्षा]

श्रीयमुना जी कर्णिका के मध्य में स्थित काम बीज रूप कलिन्द गिरि से प्रकट होकर कर्णिका की परिक्रमा देती हुई बहती हैं।

'युग्म तत्व' के उपरोक्त गद्य में 'कलिन्द पर्वत' 'काम बीज' को कहा गया है। 'कामबीज' और 'सुरति केलि' का एकत्व 'गौतमी तन्त्र' में वर्णित 'क कारः पुरुष कृष्ण' इत्यादि श्लोक से पद नं......में वर्णन कर चुके हैं। अर्थात् श्रीयमुना जी की उत्पत्ति श्रीप्रिया प्रीतम की सुरति केलि से है। यथा:—

"राधाया च कृता केलिः श्रीकृष्णेन समं शुभा ।
ततः प्राप्य सखी श्रेष्ठा ललिता वाक्यम् ब्रवीत् ।।

ललितो वाच :—

युवयोर्वक्त्र संजाताः केलि श्रम कणाः शुभा ।
अतः संजायते नूनं तटिनी कापि चोत्तमा ।।
सर्वैः सखी गणै पेयं त्वं प्रसीद कुरुष्व च ।
इदमेव परं पुण्यं युवयोः केलिजं जलम् ।।
तस्यास्तद्वाक्यमाकर्ण्य सा चकार नदीं वराम् ।।"

[सनत्कुमार संहिता प. ३२ श्लो ८. ९. १०. ११)

किसी समय श्रीप्रियाजू ने श्रीलाल जू के साथ परम पवित्र सुरति केलि की जिससे उनके मुखारबिंद पर स्वेद बिन्दु आये। उनको देखकर सखियों में श्रेष्ठ श्रीललिता जी कहने लगी:—

"आप दोनों के लीला विलास के श्रम से जो, मुखारविंद में परम पवित्र श्रम कण आये हैं निश्चय इनसे कोई उत्तमा नदी प्रकट होनी चाहिये उसके जल को हम सब सखी पान करेंगी। आप प्रसन्न होकर इनसे एक नदी निर्माण करिये। आपका जो लीला विलास का श्रम जल है यह परम पवित्र है।" इस प्रकार श्रीललिता जी के वाक्य सुन कर श्रीप्रियाजी ने परम पवित्र नदी श्रीयमुना जी को प्रकट किया।

पुनः यथा :—

"केलि रूपिनी जमुना श्रीभट वृन्दावन फूल्यौ वहु भतियाँ ।।" [युगल शत]
रङ्ग नाना तरङ्गें सु पुञ्जैं कमल कुल लुब्ध अलि करत गुञ्जैं ।।
हंस सारस चक्रवाक मोरा। कोकिल कोर चातक चकोरा ।।
आदि कारण्ड कल स्वर रसाला। रटत वर युगल की नाम माला ।।

श्रीयमुना जी में नाना प्रकार के रंगों की तरङ्गे उठ रही हैं कमलों की सुगन्ध से लुब्ध होकर भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं। हंस, सारस, चक्रवाक, मोर, कोकिल, तोता, चातक, चकोर और कबूतर आदि अपने अपने मधुर मधुर स्वरों से श्रीलाल ललना का यश गान कर रहे हैं। यथा:—

"ललित कलिन्द सुता-लहरी-कृत-मृदु-मृदु शीकर वर्षम् ।
तुमुल रति श्रमिता लस-तनुवर-रसिक मिथुन कृत हर्षम् ।।
आस्तृत-कुसुम-घटित-मधु भाजन-मञ्जुल कुञ्ज कुटीरं ।
राधा माधव-नव रति लीला गान—मदाकुल कीरम् ।।

[सङ्गीत माधव सर्ग १ श्लो. ८)

स्थान स्थान पर श्रीयमुना जी मनोहर तरङ्गों से कोमल कोमल विन्दु वर्षा रही हैं। जिससे कि उद्दाम विलास—श्रम दूर होकर श्रीयुगल किशोर को परम सुख लाभ हो रहा है। श्रीवृन्दावन में स्थान स्थान पर पुष्प समूह मधु पूर्ण पात्र द्वारा सुसज्जित मनोहर कुञ्ज कुटीर विराजमान हैं। कहीं कहीं बहुत प्रकार के पक्षी तोता, मैंना आदि मत्त होकर श्रीराधा माधव की नव नव सम्भोग रसमयी लीलाओं को गा रहे हैं।

उभय तट रतन बद्धित विराजें तिन उपर तरुन की सु छवि छाजें ।।
झुकि रहीं डार फल फूल भारें परशि वारहिं विहारें अपारें ।।
परति नहिं कही वन वनिक जोहै। अतिहि शोभा कि शोभा विमोहैं ।।

श्रीयमुना जी के दोनों तट रत्न बद्धित हैं जिन पर उन वृक्षों की अत्यन्त शोभा हो रही है। जिनकी शाखायें फल फूल भार से यमुना जी की ओर झुक कर पवन के वेग से जल को स्पर्श करती हुई इस प्रकार से सुशोभित हैं मानों ये डालियाँ जल से विहार कर रहीं हैं। इस प्रकार जो वन अर्थात जल की शोभा हो रही है उसका कौन वर्णन कर सकता है। मानों ये शोभा—शोभा की अधिष्ठात्री देवी को भी विमोहित करने वाली है।

"श्रीमद्वृन्दावनं रम्यं यमुनायाः प्रदक्षिणम् ।
शोभमानं जलं रम्यं तरङ्गानि मनोहरम् ।।
तस्योभयतटो रम्या शुद्ध काञ्चन निर्मिता ।।" (साधन दीपिका)

यह श्रीवृन्दावन अत्यन्त सुशोभित है जिसकी श्रीयमुना जी परिक्रमा दे रही हैं। जिसका जल मनोहर तरङ्गों द्वारा सुशोभित हो रहा है। जिसके दोनों तट शुद्ध स्वर्ण से निर्मित हैं।

पुनः यथाः—

"यत्र निर्मल पानीया कालिन्दी सरितां वरा।
रत्न वद्धोभयतटी हंस पद्मादि सेविता ।।" [वृहद्वामन पुराण]

जहाँ सब नदियों में श्रेष्ठ निर्मल जल वाली श्रीयमुनाजी हैं। जिसके दोनों तट रत्न वद्धित तथा हंस पद्मादि से सेवित हैं।

आपही लुभि रहे दोऊ प्यारे। छिनहुँ तहँते न ह्वै शकहिं न्यारे ॥

श्रीवृन्दावन की शोभा से लाल ललना इतने आशक्त हैं कि वह एक क्षण काल के लिये भी इसको नहीं त्याग सकते। यथाः—

"वृन्दावनं परित्यज्य नैव गच्छामि अहं क्वचित्।
निवसाम्यनया सार्धं महमत्रैव सर्वदा ॥" सनत्कुमार संहिता)

वृन्दावन को छोड़कर मैं कभी भी कहीं नहीं जाता हूँ यहाँ ही श्रीराधिका जी के साथ सदा निवास करता हूँ।

ऐसौ निज धाम जा मध्य नित भूमि।
अमित दल कमल आकार रहि झूमि ॥
मध्य मञ्जुल बनी अष्ट दल पाँति।
उपरि प्रिय सखिन की कुञ्ज सरसाँति ॥
तेज मय कर्निका अति सुदेशा।

श्रीप्रिया प्रीतम के 'निज धाम'—श्रीवृन्दावन की शोभा उपरोक्त है। अब श्रीयमुना जी के मध्य में जो नित्य भूमि है, उसका विवरण करते हुए कहते हैं कि यह भूमि अमित दल कमलाकार है जिसके मध्य में सुन्दर अष्ट दलों की पंक्ति है। उन अष्ट दलों के ऊपर प्रिय अष्ट सखियों की कुञ्जें सुशोभित हैं। कमल के मध्य में तेजमय अति सुन्दर कर्निका है। यथाः—

"साप्युक्ता गोकुलाख्ये माथुर मण्डले वृन्दावन मध्ये।
सहस्त्र दल पद्म मध्ये कल्प तरोर्मूलेऽष्ट दल केशरे।" इत्यादि—
(पुरुषार्थ वोधिनी अथर्वण उपनिषद्)

उन्होंने कहा गोकुल नामक मथुरा मण्डल के अन्तर्गत वृन्दावन सहस्त्र दल कमल के मध्य में है वहाँ कल्प तरु के नीचे अष्ट दल कमल है।

ताके चहुँ ओर सरवर सुवेषा। मान अरु मधुर सरवर स्वरूपा ॥
रूप सरवर सहित अति अनूपा। तिनके चहुँ ओर रचना अपारा।
नगनि करि घाट निर्मित सु ढारा ॥

सुभग सुठि सिढिनि को अति प्रकाशा ।
जग-मगहिं ज्योति उठि रह्यौ उजासा ।।

उस कर्निका के चारों ओर चार अति अनूप मधुर, मान, स्वरूप तथा रूप नामक सरोवर हैं। उन सरोवरों के चहुँ ओर अपार रचना बनी हुई है। उनके घाट नगन जटित अति सुढार निर्मित हैं जिनकी सुभग सुन्दर सीढ़ियाँ अति प्रकाश मान हैं। जिनकी ज्योति जगमग-जगमग कर रही है और जिनकी छटा छिटक रही है।

चार सरोवरों का 'पुरुष बोधनी उपनिषद्' में इस प्रकार वर्णन है :—

"तद्वाह्ये चतुर्दिक्षुसरस्योह्यत्र निर्म्मलाः ।
चतस्रोऽमृतपानीया हंस पद्मादि संकुलाः ।
पूर्वे सिद्धि प्रदानाम्ना रत्न सोपान संयुता ।
तज्जल स्पर्श मात्रेण ज्ञान चक्षर्भवेन्नृणाम् ।
प्रेमभक्त्यातु पश्यन्ति न पश्यन्तीतरे जनाः ।।
पतत्री विशालस्तत्र कृष्ण प्रेम सु विह्वलाः ।
ये च माया गुणा तीताः प्रेम भक्ति समन्विताः ।
तज्जलं ते तु पश्यन्ति महात्मानो महोदरम ।।
पश्चिमद्वार संकीर्णा नाम्ना पुष्पारिणी परा ।
नाना मणि समाकीर्णा, सोपानै रूपशोभिता ।।
तज्जलस्पर्श मात्रेण साधका दिव्य रूपिणः ।
भवन्ति तत्क्षणा देव श्रीकृष्ण प्रेम भाजनाः ।।
उत्तर द्वारि तत्र तस्थो नाम्ना मलय नीविडः ।
मणि वैदूर्य्य सोपानः पुष्प रत्न समाकुलः ।।
वसन्तोत्सव यात्रां तु कुरुते तत्र केशवः ।"

इसके बाहर चारों दिशाओं में अमृत रूपी जल से युक्त चार सरोवर हैं। जो सतत् हंस कारण्ड आदि पक्षियों से युक्त रहते हैं।

पूर्व दिशा में रत्न सोपान से युक्त 'सिद्ध प्रदा' नाम का सरोवर है जिसके जल स्पर्श मात्र से साधकों के ज्ञान चक्षु हो जाते हैं। यह सरोवर प्रेम भक्ति से ही देखा जा सकता है अन्यथा नहीं।

(दक्षिण दिशा में) एक और सरोवर है जहाँ श्रीकृष्ण प्रेम से विह्वल बहुत से पक्षी रहते हैं। जो माया गुण से मुक्त हैं तथा प्रेम भक्ति से युक्त हैं वही महात्मा लोग उस सरोवर को देखते हैं।

पश्चिम द्वार के समीप में 'पुष्पारिणी' नाम का सरोवर है जो नाना मणि गणों से समाकीर्ण अनेक विधि के सोपानों से सुशोभित है। उसके जल स्पर्श मात्र से साधक वर्ग दिव्य रूपी होकर श्रीकृष्ण का प्रेम पात्र बन जाता है।

उत्तर द्वार के निकट वैदूर्य्य मणियों की सीढ़ियों से युक्त पुष्प रत्न जटित 'मलय निविड' नाम का सरोवर है। वहाँ पर श्रीकृष्ण (अपनी प्रिया तथा सखियों सहित वसन्त उत्सव करते हैं।

चहुँ सरवरन के मध्य सोहै।
महल अठ द्वार छबि को विमो है॥
द्वार द्वारन ध्वजा अति सु ढाला।
बड़ड़े मुक्तानि बन्दन सु माला॥
कनक सुकपाट शुभ घाट सोहैं।
निकरिनिकुधानि कें जरित जोहैं॥
जगर जगमगति अति ज्योति जिनकी।
अमित द्युति धरनि सम होति तिनकी॥
फटिक मनि भीति अति स्वच्छ जामैं।
भासें प्रति विम्ब सब ठौर तामैं॥

उपरोक्त चारों सरोवरों के मध्य में छबि को विमोहन करने वाला आठ द्वारों का महल शोभायमान है। प्रत्येक द्वार पर अति सुन्दर ध्वजा तथा बड़े बड़े मोतियों की बन्दन मालाएँ लगी हुई हैं। इन दर्वाजों की सुन्दर किवाड़ें शुभ घटित स्वर्णमयी हैं जो हीरा पुखराज आदि बहुत प्रकार के नगों से जटित हैं। इसलिये इनकी अति ज्योति इस प्रकार जगमगा रही हैं मानों अगणित सूर्य चमक रहे हों। इस महल की दीवारें स्फटिक मणियों की इतनी स्वच्छ हैं कि उसके सामने कोई वस्तु आने से उसके प्रतिबिम्ब सब जगह पर दिखाई देते हैं।

उपरोक्त प्रकार से महल की रचना 'अनन्त संहिता' तथा 'श्रीब्रह्मवैवर्त्त पुराण' में भी वर्णित है। यथाः—

"तस्य मध्ये पुरं दिव्यं प्रधानाख्यं मनोहरम् ।
योषिद्रत्न मणि स्तम्भ प्रमदा गण सेवितम् ।
दिव्याभरण संयुक्तं मुक्ता दाम विलम्बितम् ।
चन्द्रा तप घनच्छायं हेम कुम्भ पुरस्कृतम् ।।
पताका तोरणैरम्यं सुधासार घनाचलम् ।
परिखा दुर्ग संकीर्णं मणि वज्र कपाटकम् ।। (अनंत संहिता)

बीच में प्रधान नामक एक मनोहर दिव्य पुर है। जिसमें योषित रत्न तथा मणि स्तम्भ हैं और जो प्रमदागणों से सेवित है। जो दिव्य आभरणों तथा मुक्ता मालाओं से भूषित है। जिस पर वितान तना हुआ है। और जो स्वर्ण कलशों से सुशोभित है। जिसके सौन्दर्य को पताका तथा वन्दन मालाएँ बढ़ा रही हैं। जिसके चारों ओर खाई तथा अभेद्य परकोटा है। उसके किवाड़ वज्रमणि के हैं।

पुनः यथाः—

"प्रकार परिखायुक्तं पारिजात वनान्वितम् ।
कौस्तुभेन्द्रेन मणिना राजितं परमोज्ज्वलम् ।
हीरसार सुसंकृप्त सोपानैश्चाति सुन्दरैः ।
मणीन्द्र सार खचितैः कपाटैर्दर्पणान्वितैः ।।
ना ना चित्र विचित्राढ्यै राश्रमैश्च सु संस्कृतम् ।
षोडश द्वार संयुक्तं सुदीप्तं रत्न दीपकैः ।।
(ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्म खण्डे)

जो खाई तथा परकोटा युक्त है। जिसमें पारिजात के वन हैं जो श्रेष्ठ कौस्तुभ मणि द्वारा भूषित होने से अत्यन्त देदीप्यमान हो रहा है। उसकी अत्यन्त सुन्दर सीढ़ियाँ हीरासार से निर्मित हैं। उत्तम उत्तम मणियों से खचित कपाटों में दर्पण लग रहे हैं। जो नाना प्रकार के चित्र विचित्र आश्रमों द्वारा सुशोभित हो रहा है। जिसके सोलह द्वार हैं। जो रत्नों के दीपकों से प्रकाशित हो रहा है।

नोटः—उपरोक्त श्लोक में सोलह द्वारों का वर्णन है जबकि श्रीमहावाणी में केवल आठ द्वारों का ही वर्णन है। मोहन महल की भिन्न भिन्न प्रदक्षिणाओं में भिन्न भिन्न द्वार हैं। किसी ग्रन्थ में बाहर के द्वारों का वर्णन किया गया है किसी में भीतर के द्वारों का। इसीलिये यह भिन्नता प्रतीत होती है।

जाजु महल के चौक विच मनि मण्डल रस पुञ्ज ।
ता चहुघाँ सोहनि बनो अष्ट मोहनी कुञ्ज ।।
मङ्गल शैन प्रजन्त लगि सेवा सुख इन माँहि ।
सरस मनि मोहन महल कल्प वृक्ष की छाँहि ।।

सरस मनि मृदुल मनि कनक खचिता । सूर शशि हेम मनि कान्ति रचिता ।।
पद्म अरु पुष्प रागादि राजैं । विविध वर चित्रता सों विराजैं ।।
ताजु मधि मृदुल शय्या सहेली । श्याम श्यामा कि जहाँ सुरति केली ।।
और काहू को जहाँ नहिं प्रवेशा । बिना श्रीहरिप्रिया लह न लेशा ।।

मोहन महल के भीतर कल्प वृक्ष की छाया में एक मणि जटित चबूतरा है । जिसके चारों ओर अष्ट सखियों की आठ कुञ्जें हैं । जिनमें मङ्गल से लेकर शैन पर्यन्त पृथक पृथक अष्टकाल की रीति से सेवा समाधान होती है । मध्य में (कल्प-वृक्ष की मूल में) श्रीप्रिया प्रीतम का वह केलि स्थान है जो कनक रचित है और उसमें सरस मणि, मृदुलमणि, सूर्य कान्ति मणि, चन्द्रकान्ति मणि, हेम कान्ति मणिमाणिक तथा पुखराज आदि मणियाँ चित्र विचित्र प्रकार से जड़ी हुई हैं । जहाँ श्रीप्रिया प्रीतम सुरति केलि करते हैं वहाँ इन दोंनों के अतिरिक्त और किसी सखी का प्रवेश नहीं हैं ।

ता चहुघाँ सोहनि बनी अष्ट मोहनी-कुंज । यथा:—

"अनङ्ग सुखदाख्योऽस्ति कुंजस्तस्योत्तरे दले ।
विज्ञेयोऽयं तडिद्वर्णो नाना पुष्प द्रुमावृतः ।।
ललितानन्ददो नित्यमुत्तरे कुंज राजकः ।
गोरोचनाभा ललिता तत्र तिष्टति नित्यशः ।।१।।
ईशान दल आनन्द नामकं कुंज मस्तिहि ।
मेघ वर्णं श्रीविशाखा यत्रास्ते कृष्ण वल्लभा ।।२।।
चित्रं पूर्व दले कुंज पद्म किंजल्क नामकम् ।
श्रीचित्रा स्वामिनी तत्र वर्त्तते कृष्ण वल्लभा ।।३।।
आग्नेय पत्रे पूर्णेन्दु कुंज स्वर्णाभ वर्ण के ।
इन्दुलेखा वसत्यत्र हरिताल समाङ्गिका ।।४।।
दक्षिणेस्मिन् दले कामलता नामास्ति कुंजकम् ।
अत्यन्त सुखदं तप्त जाम्बुनद समप्रभम् ।।

श्रीचम्पकलता तिष्टत्य मुस्मिन् कृष्ण वल्लभा ॥५॥
रक्षोदले श्याम वर्णे कुंजे श्रीरंगदेविका ।
सुखदाख्ये निवसति नित्यं श्रीहरिवल्लभा ॥६॥
कुंजस्ति पश्चिमे दलेऽरुण वर्णः सुशोभनः ।
तुङ्ग विद्या नन्ददो नाम्नेऽति विख्याति मागता ।
नित्यं तिष्टति तत्रैव तुङ्ग विद्या समुत्सुका ॥७॥
वाद्य दलके कुञ्जमास्ते हरित वर्णकम् ।
वसन्त सुखदामत्र सुदेविवर्त्तते सदा ॥८॥

(गौर गोविन्द अर्चन पद्धति)

उत्तर दल में गोरोचन आभा श्रीललिताजी को आनन्द देनेवाली अनङ्ग सुखदा नामक कुञ्ज है जिसका वर्ण बिजली सरीखा है और जो विविध प्रकार के पुष्प वृक्षों से सुशोभित हैं जिसमें वह नित्य निवास करती हैं।

ईशान दल में मेघ वर्ण "आनन्द" नामक कुञ्ज है इसमें कृष्ण वल्लभा श्रीविशाखा जी रहती हैं पूर्व दल में चित्र वर्ण 'पद्मकिंजल्क' नामक कुञ्ज है। इसमें कृष्ण वल्लभा श्रीचित्रा सखी रहती हैं।

अग्नि दल में स्वर्ण वर्णा 'पूर्णेन्दु' नामक कुञ्ज है वहाँ हरिताल वर्ण श्रीइन्दुलेखा जी रहती हैं।

दक्षिण दल में तप्त सोने के वर्ण की अत्यन्त सुख दायक 'कामलता' नामक कुञ्ज हैं जिसमें कृष्ण वल्लभा श्रीचम्पक लता सखी निवास करती हैं।

नैऋत्य दल में श्याम वर्ण 'सुखदा' नाम को कुञ्ज है वहां हरिवल्लभा श्रीरङ्ग-देवी जी रहती हैं। पश्चिम दल में अरुण वर्ण की "आनन्ददा" नामक सुशोभित कुञ्ज हैं। जिसमें तुङ्ग विद्याजी रहती हैं।

वायु दल में हरित वर्ण की 'वसन्त सुखदा' नामक कुञ्ज है जिसमें नित्य श्रीसुदेविजी रहती हैं।

ताजु मधि मृदुल शैया सहेली
"चिदानन्द मयी शय्यां शेते सुभ्रुमहाभुजः ।
अनेक हरिरत्नैश्च स्वर्ण स्तंभस्थिता वनौ ॥

स्तंभानां मंडपस्यापि तेजोभिर्माणि द्वीपके ।
प्रकाशे वर्द्धते स्थूल मुक्तामणिभि रप्युत ।।
प्रमोद मोद संमोदः पुष्पाणां तत्र जायते ।
तस्मिन्मणि द्वीपके च पट मंडोऽपि विद्यते ।।
स्याधः पर्यङ्कोपि विद्यते च मनो हरः ।
सा कंच प्रियया तस्मिन्शेते श्रीकृष्ण सुन्दरः ।। (आलमन्दार संहिता)

मोहन महल के आँगन में मोहन नामक एक सुन्दर मण्डल है। उसके ऊपर अष्ट कोण का एक सुख प्रदान करने वाला लाल रङ्ग का सुन्दर सिंहासन है। इस सिंहासन के प्रत्येक कोने पर श्रीरङ्गदेवि आदि आठ यूथेश्वरियों के स्थान हैं। जो अपनी अपनी यूथ की सखियों सहित स्थित होकर श्रीप्रिया प्रीतम का रुख देखकर सेवा समाधान करतीं हैं। इन सब में श्रीप्रिया प्रीतम सम्बन्धी अभङ्ग अनुराग भरा हुआ है।

अब सब सखियों की दिशाओं का वर्णन करते हुए कहते हैं।

उत्तर दिशा में श्रीरङ्गदेवी जी, ईशान कोण में श्रीसुदेवी जी, पूर्व में श्रीललिता जी, अग्नि कोण में श्रीविशाखा जी, दक्षिण में श्रीचम्पलता जी, नैऋत्य कोण में श्रीचित्राजी, पश्चिम में श्रीतुङ्ग विद्या जी और वायु कोण में श्रीइन्दुलेखा जी हैं।

श्रीरङ्गदेवीजी तथा सुदेवी जी का कमल केशर के समान वर्ण हैं। ये दोनों जपा और सुर्हा के समान लाल वर्ण की साड़ियाँ पहने हुए हैं। ये श्रीप्रिया प्रीतम के रूप, रस, रङ्ग में भरी हुई, उनकी भूषण तथा सुगन्ध आदि की सेवा समाधान करती है। श्रीललिता जी तथा श्रीविशाखा जी का गोरोचन तथा विद्युत सदृश वर्ण हैं। ये मयूर पिच्छ तथा तारावलि सदृश मन हरन वस्त्र पहिने हुए हैं ये दोनों अपने तन, मन प्राणों से रसिक दम्पति के रूप में पगी हुई उनकी ताम्बूल तथा वस्त्रादि की सेवा में सावधानी से लगी हुई हैं। श्रीचम्पक लता जी का चम्पा के फूल सदृश और श्रीचित्रा जी का कुंकुम केशर सदृश वर्ण हैं। ये नील और पीत वसन से सुशोभित हैं। ये दोनों लाल ललना की भोजन तथा जलपान की सेवा समाधान करके बहुत प्रकार के रसों को स्वयं प्राप्त करती हैं।

श्रीतुङ्गविद्या जी तथा इन्दुलेखा जी तपे हुए स्वर्ण सदृश गौर तथा हरताल सदृश वर्ण हैं। ये दोनों नृत्य और कोक कलाओं के बहु प्रकार के भेदों तथा भावों के अद्भुत

दाव पेचों को सिखला कर श्रीलाल ललना को रिझाती हैं।

यह विषय 'वृहत् गौतमीय तन्त्र' में इस प्रकार वर्णित है। यथा—

"तन्मध्ये मण्डलं सुष्टु योजनत्रय वर्तुलम्।
तन्मध्ये षोडश दलं पद्मं तदुपरि स्थितम्॥"
मध्ये च राधिका कृष्णौ गौर श्यामौ सुशोभनौ।
गुरुञ्च दक्षिणे पार्श्वे पूर्वे च ललिता सखीम्॥
विशाखा दक्षिणे पूर्वे दक्षिणे चम्पकी लताम।
दक्षिणे पश्चिमे चित्रां तुङ्ग विद्याञ्च पश्चिमे॥
पश्चिमोत्तरयोः स्थाप्य इन्दुलेखा सुशोभनाम्।
उत्तरे रङ्गदेवीञ्च ह्यष्टमीञ्च सुदेविकाम्॥
इत्यष्टौ च सखी मुख्यास्तस्यां तस्यां सखीस्तथा।
प्रसन्नास्याः प्रपश्यन्तो भ्राजमाना सर्वतो दिशाम्॥

(वृहत् गौतमीय तन्त्र)

उसके बीच में एक सुन्दर मंडल है, जिसका विस्तार तीन योजन का है। उस मंडल के ऊपर बीज में एक सोलह दल का कमल है। वहाँ गौर श्याम श्रीप्रिया प्रीतम सुशोभित हैं। उनके दक्षिण पार्श्व में श्रीगुरुरूपा सखी हैं। पूर्व में श्रीललिता जी, अग्नि कोण में श्रीविशाखा जी, दक्षिण में श्रीचम्पकलता जी, नैऋत्य कोण में श्रीचित्रा जी, पश्चिम में श्रीतुङ्गविद्या जी, वायु कोण में इन्दुलेखा जी, उत्तर दिशा में श्रीरङ्गदेवी जी और ईशान कोण में श्रीसुदेवी जी विराजमान हैं। इस प्रकार ये आठों मुख्य सखियाँ अपनी अपनी यूथ की सखियाँ सहित श्रीप्रिया प्रीतम की ओर देखती हुई प्रशन्न वदना है। और अपनी अङ्ग कान्तियों से सब दिशाओं को देदीप्यमान कर रही हैं।

अब अष्ट सखियों के वेष भूषा तथा पृथक पृथक सेवाओं का वर्णन करते हैं।

यथाः—वेदान्त कामधेनु —श्रीरङ्गदेवी जी—

यथाः—

समुल्लसत्पंकज केसराभां जपाप्रसूनाऽरुणचारु वस्त्राम्।
तदीयरत्नाभरणादि सेवा परां स्मरेच्छ्रीयुतरङ्ग देवीम्॥

(वेदान्त कामधेनु)

विकशित कमल केशर सदृश जिनका वर्ण है, जिनके जवा पुष्प सदृश सुन्दर अरुण वस्त्र हैं। और वह श्रीप्रिया प्रीतम की रत्नाभरण आदि की सेवा में आशक्ता हैं। इस प्रकार श्रीरङ्गदेवी जी का स्मरण करें।

पुनः। यथाः—

राजीव किंजल्क समान वर्णम् जवा प्रशूनोपम वास साढ्याम्।
श्रीखण्ड सेवा सहितां व्रजेन्द्र सूनोर्भजे रासगरंगदेवीम्॥
(श्रीश्रीगोपाल गुरु कृत गौर गोविन्दार्चन स्मरण पद्धति उद्धृत किशोरी तन्त्रम्)

जिनकी अङ्ग कान्ति कमल केशर के समान है, जो जवा पुष्प सदृश वस्त्र पहिने हुए हैं। जिनकी चन्दन सेवा है तथा जो श्रीकृष्ण के रास रङ्ग में आसक्त हैं इस प्रकार श्रीरङ्गदेवी जी का मैं भजन करता हूँ।

—: श्रीसुदेविजी :—

यथाः—कदम्ब किंजल्क समान वर्णां कुसुम्भरक्ताम्बरमाव सानाम्।
स्मरेत्तयोश्चन्दन गन्ध सेवा विधान विद्या निपुणां सुदेवीम्॥ (वेदान्त कामधेनु)

जिनके अङ्ग की कान्ति कदम्ब किंजल्क के समान है। कुसुम्भी फूल के समान रक्त वर्ण के वस्त्र पहिने हुए हैं जो श्रीप्रिया प्रीतम की गन्ध चन्दन सेवा में निपुणा हैं। इस प्रकार श्रीसुदेवी जी का स्मरण करें।

पुनः। यथाः—

"अम्भोज केशर समान रुचिं सुशीलाम्। रक्ताम्बरां रुचिर हास विराजि वक्त्राम॥
श्रीनन्द नन्दन पुरो जल सेव नाढ्याम। सद्भूषणावलि युतां च भजे सुदेवीम्॥"
(श्रीश्रीगोपाल गुरु कृत श्री गौ. गो. अ. स्म. प. उधृत कि. तन्त्र)

जिनकी कमल की केशर समान कान्ति है। रक्त-वर्ण वस्त्र हैं। मनोहर हास युक्त मुखारविन्द है जो श्रीकृष्ण की जल सेवा में आसक्ता है तथा उत्तम उत्तम भूषणों द्वारा भूषिता हैं। इस प्रकार उत्तम शील स्वभाव वाली श्रीसुदेवी जी को मैं भजता हूँ।

श्रीललिता जी

यथा :—गोरोचनाचय रुचं स्व रुचा क्षिपन्तीं मायूर पिच्छ परिचिन्हित चित्र वस्त्राम्।

ताम्बूल सेवन परामथ सम्मुख स्थां ध्यायेत् सखीं सु ललितां ललिताभिधानाम् ॥
(वेदान्त कामधेनु)

जिनकी अङ्ग कांति गोरोचन की कान्ति को भी तिरस्कार करती है। मयूर पुच्छ के सदृश जिनके वस्त्र चित्रित हैं। जो श्रीप्रिया प्रीतम की ताम्बूल सेवा में रत होकर उनके सन्मुख रहती हैं। इस प्रकार श्रीमनोहर रूपवाली श्रीललिताजी का ध्यान करें।

पुनः । यथा :—

गोरोचना द्युति विडम्बि तनुं सु वेणीम् । मायूर पिच्छ वसनं शुभ भूषणाढ्यम् ॥
ताम्बूल सेवन रतां ब्रजराज सूनोः । श्रीराधिका प्रिय सखीं ललिता स्मरामि ॥
(श्रीश्रीगोपाल गुरु कृत श्री गो. गो. अ. स्म. प. उधृत सम्मोहन तन्त्र)

जिनकी अङ्ग कान्ति गोरोचन का भी तिरस्कार करने वाली है। जिनकी वेणी अत्यन्त मनोहर है। जो मयूर पिच्छ के सदृश वस्त्र पहिने हुए हैं तथा जो श्रीप्रिया प्रीतम की ताम्बूल सेवा में रता हैं। इस प्रकार श्रीराधिका जी की प्रिय सखी ललिता जी का मैं भजन करता हूँ।

—: श्रीविशाखा जी :—

यथा :—स्फुरत्तडिद्दीधिति दीप्य मानां तारावली भ्राजि विशुद्ध वस्त्राम् ।
स्मरेद्यथा काल दुकूल सेवा विधौ सदा प्रीति युतां विशाखाम् ॥(वेदान्त कामधेनु)

जिनकी अङ्ग कांति देदीप्यमान बिजली के समान है जिनके वस्त्र तारावली सदृश सुशोभित है। जो ऋतुओं के अनुसार श्रीप्रिया प्रीतम की वस्त्र सेवा में रता हैं इस प्रकार प्रीति युक्त श्रीविशाखा जी का स्मरण करें।

पुन. । यथा :—

सच्चम्पका वलि विडम्बि तनुं सुशीलाम् । ताराम्बरां विविध भूषण शोभमानाम् ॥
श्रीनन्द नन्दन पुरो वसनादि भूषा । दानेरतां सु कुतु काञ्च भजे विशाखाम् ॥
(श्रीश्रीगोपाल गुरु कृत गौ. गो. अ. स्म. प. उधृत वृहद् गौतमीय तन्त्र)

जिनकी अङ्ग कान्ति उत्तम चम्पा के फूलों का भी तिरस्कार करने वाली है। जो ताराम्बर तथा विविध प्रकार के भूषणों से सुशोभित है जो श्रीप्रिया प्रीतम के आगे रहकर वसन भूषणादि सेवा में रता हैं। तथा उत्तम स्वभाव वाली हैं। और कौतुक

रस द्वारा उनको आनन्द देती हैं। ऐसी श्रीविशाखाजी का मैं भजन करता हूँ।

श्रीचम्पक लताजी

यथा :—स्मरेत्स्फुटच्चम्पक पुष्प वर्णां सुनील पट्टाम्बर सम्वृताङ्गीम्।
समाहितां षड्रसभक्ष्य भोज्य सेवा विधौ चम्पकवल्लि कांताम्॥(वेदान्त कामधेनु)

जिनका वर्ण चम्पा के पुष्प के समान है जो सुन्दर नील वस्त्र धारण किये हुए हैं जो प्रिया प्रीतम की षटरस भक्ष्य भोज्य सेवा समाधान करने में लगी हुई हैं इस प्रकार श्रीचम्पक लताजी का स्मरण करें।

पुनः। यथा :—

"चम्पकावलि समान कान्तिकाम् चातकाभ वसनां सुभूषणाम्।
रत्न माल्य युत चामरोद्यताम् चारु चम्पकलतां सदा भजे॥"
(श्रीगोपाल गुरुकृत श्रीगौ. गो. अ. प. स्म. उधृत गरुड़ पुराण)

जिनकी अङ्ग कान्ति चम्पक पुष्प के सदृश है। जिनके वस्त्र चातक पक्षी वर्ण सदृश हैं। जो विविध प्रकार भूषण से भूषित हैं तथा जो श्रीप्रिया प्रीतम की रत्न माला और चमर सेवा में उद्यत् हैं। इस प्रकार मैं उन सुन्दर श्रीचम्पक लताजी का सदा भजन करता हूँ।

—: श्रीचित्रा जी :—

यथा :—समुल्ल सत्कुङ्कुम तुल्य वर्णां हारिद्र रागांशुक शोभिताङ्गीम्॥
संसेवमानां सुखदैः पयोभिश्चित्रां स्मरेत्पान विधि प्रयुक्तैः॥ (वेदान्त कामधेनु)

जिनकी अङ्ग कान्ति अत्यन्त उज्ज्वल कुंकुम के समान है। हल्दी के सदृश वर्ण वाले वस्त्रों से भूषिता हैं। जो श्रीप्रिया प्रीतम की सुखदा जल सेवा में लीन है। इस प्रकार श्रीचित्रा सखी का स्मरण करें।

पुनः। यथाः—

काश्मीर वर्णा सहितां विचित्र गुणैस्मिता शोभि मुखीञ्च चित्राम्।
काचाम्बरां कृष्ण पुरो लवङ्ग माला प्रदाने नितरां स्मरामि॥"
(श्रीगोपाल गुरुकृत श्रीगौ. गो. अ. स्म. प. उधृत स्कन्ध पुराण)

जिनकी अङ्ग कान्ति केशर के सदृश है जो विचित्र गुण युक्त हैं तथा जिनका

मुख कमल हास्य द्वारा सुशोभित है। जिनके वस्त्र काचमणि सदृश हैं जो श्रीप्रिया प्रीतम की लवङ्ग माला सेवा में आशक्ता हैं। उन श्रीचित्रा सखी को मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ।

—: श्रीतुङ्ग विद्या जी :—

यथा:—प्रतप्त चामीकर चारु गात्रां विचिन्तयेत्पाण्डुर पट्ट वस्त्राम्।
अनेकधानर्त्तन गीत वाद्य शिक्षा विधिज्ञानथतुङ्ग विद्याम्॥" (वेदान्त कामधेनु)

जिनकी अङ्ग कान्ति प्रतप्त स्वर्ण सदृश है। जो पाण्डुर वर्ण पट्ट वस्त्र पहिने हुई हैं। जो अनेक प्रकार की नृत्य, गीत तथा वाद्यादि की शिक्षा विधियों को जानने वाली हैं। इस प्रकार श्रीतुंग विद्याजी का चिन्तवन करें।

पुनः। यथा :—

"चन्द्राढ्यैरपि चन्दनै सुललितां श्रीकुम्कुमाभ द्युतिम्।
सद्रत्नाञ्जित भूषणञ्चित तराम् शोणाम्बरोल्लासिताम्॥
सद्गीतावलि संयुक्तां बहु गुणाम् डम्फस्य शब्दैन वै।
नृत्यन्तीं पुरतो हरे रसवतीं श्रीतुंग विद्यांभजे॥"
(श्रीगोपाल गुरुकृत श्री गो. गो. अ. स्म. प. उधृत किशोरी तन्त्र)

जिनकी अंग कांति कुंकुम के सदृश है जो कर्पूर सहित चन्दन द्वारा अत्यन्त रमणीय है। जो उत्तम उत्तम रत्न द्वारा खचित भूषणों से तथा लाल वर्ण वस्त्र द्वारा भूषिता हैं। जो उत्तम उत्तम गान करने के कारण बहु गुण विशिष्टा हैं तथा प्रिया प्रीतम के सन्मुख मृदंग वाद्य के साथ नृत्य करती हैं। इस प्रकार रसवती श्रीतुंगविद्या को मैं भजता हूँ।

—: श्रीइन्दुलेखा जी :—

यथा :—अधि क्षिपन्तीं हरिताल पुञ्जं मनुत्विषा दाडिम पुष्प वस्त्राम।
विचिन्तयेत्काम कला कलाप प्रवोध विद्या निधिमिन्दुलेखाम्॥
(वेदान्त कामधेनु)

जिनकी अङ्ग कान्ति हरताल समूह को भी तिरस्कार करने वाली है। जिनके वस्त्र दाडिम पुष्प वर्ण सदृश हैं। जो काम कलाओं के ज्ञान में इतनी निपुण हैं कि मानो इस विषय की विद्या के सागर स्वरूपा हैं। इस प्रकार इन्दुलेखा जी का ध्यान करें।

पुनः यथा:—

हरिताल समान देह कान्तिम् विकसद दाड़िम् पुष्प शोभि वस्त्राम् ।
अमृतं ददतीं मुकुन्द वक्ते भज आलि मह मिन्दु लेखिकाख्याम् ।।
(श्रीगोपाल गुरुकृत श्रीगौ. गो. अ. स्म. प. धृत ईशान संहिता)

इनकी अङ्ग कान्ति हरताल सदृश हैं जो विकसित दाड़िम पुष्प वर्ण सदृश वस्त्र पहिने हुए हैं जो लाल जी को (श्रीप्रिया जी का अधर) अमृत पान कराने में लगी हुई हैं। इस प्रकार मैं इन्दुलेखा जी का भजन करता हूँ।

विविध कुञ्ज के भेद हैं विविध कुञ्ज मनरंजु नित्य नित्य नई नई जहाँ स्रवत सुख मई संजु इनमें श्रीहरिप्रिया कौ नित्य विहार अखण्ड अंशा अंशी रूप में राचि रह्यौ ब्रह्मण्ड।

इन कुञ्जों के विविध प्रकार के भेद हैं ये सब कुञ्जें श्रीलाल ललना के मन को विविध प्रकार से रञ्जन करती हैं इनमें नित्य प्रति नई नई सुख की धाराऐं बह रही हैं। इनमें उन श्रीप्रिया प्रीतम का नित्य अखण्ड विहार होता रहता है। जिनके अंश के अंशों द्वारा इस ब्रह्माण्ड की रचना है।

कुञ्जें बहुत प्रकार की असंख्य हैं। यथा :—

"संक्रीड़नार्थं कुञ्जाश्च कृतश्च विविधाः प्रभोः ।
सहस्र संख्यकाऽसंख्याः कान्त्याभर्त्सित लोकका: ।।"
(सनत्कुमार सं. ३१ पटल २५ श्लो.)

श्रीकृष्ण के विहार के लिये विविध प्रकार की कुञ्जें हैं। यद्यपि ये असंख्य हैं, तो भी स्थूल रूप से इनकी संख्या लगभग एक हजार है। ये कुञ्जें इतनी सुन्दर हैं कि इनकी कान्तियों से अन्य लोकों की कान्तियों का तिरस्कार हो रहा है।

पुनः। यथा :—

"गुणातीतं तु तद्धाम सुन्दरं सर्व दुर्लभम् ।
युगलं क्रीडते तत्र नित्य धाम्नि सुखास्पदे ।।"
(सनत्कुमार सं. पटल ३१ श्लो. ३६)

वह धाम मायिक तीन गुणों से रहित है और परम सुन्दर है। सब लोगों को

दुर्ल्लभ है। इस प्रकार परम सुखास्पद नित्य धाम में श्रीप्रिया प्रीतम विहार करते हैं।

अंशा अंशी रूप में राचि रह्यौ ब्रह्मण्ड। यथा:—

"यस्यांशांशांश भागेन विश्वोत्पत्ति लयोदया:।
भवन्ति किल विश्वात्मं स्तं त्वाद्याहं गतिं गता॥"

(भा. १० स्क. ८५ अ. २१ श्लो.)

हे विश्वात्मन् श्रीकृष्ण ! आपके अंश के अंश के अंश भाग से विश्व की उत्पत्ति, विकास तथा प्रलय होती है। आज मैं सर्वान्तःकरण से आपकी शरण हूँ।

श्रीनित्य वृन्दावन तथा श्रीस्वामिनीजी के दिव्य मङ्गल विग्रह का अभेद।

॥ दोहा ॥

बिबिध सुरति संपति सहित, अति अद्भुत अभिराम।
चिदानंदघन जयति जय, श्रीवृन्दावन धाम॥

॥ पद ॥५॥

जय जय श्रीवृन्दावनधाम। चिदानंदघन पूरन काम॥१॥
बहति बिमल कल केलि रूपिनी श्रीजमुना कमना चहुँकोद।
अति रस रंग तरंग उमंगनि अँग अंगनि प्रति बढ़वनि मोद॥२॥
दिव्य कनकमय अवनि अखंडित मृदुमनि मंडितमयी मनोज।
बिबिधभाँति तरु बेलिन झेली रति-रेली अलबेली ओज॥३॥
महि महि चारु चंबेली चंदन चंपक बकुल बरन बर बेस।
पियवासें अनुकूल बसंती सदा सेवती सुमन सुदेस॥४॥
अंब कदंब जंब निंबू श्रीफल चलदल कदली कमनीय।
कुर्बक कुब्ज केतकी केउर पारिजात रोचिक रमनीय॥५॥
ठौर ठौर निर्मल जल आसय मध्य कमल फूले बहुरंग।
बस मकरंद वृंद मधुकर मिलि मँडरावत मन भावत संग॥६॥
नव पल्लव रस सरस ससी की लसी बसी जोवन बन जाचि।
पाडर परनि निवार नवेली जुही जुही सों अति रति राचि॥७॥

त्रिबिध पवन गवनें मन रवनें सीतल मंद सुगंध सुहाय ।
सब रितु सब सुखदायक लायक सुरत सहायक सहज सुभाय ॥८॥
सिलसिलाति सलिता छबि छलिता रस रलिता आवृत अनुकूल ।
अरुन पीत सित असित अमित रिधि जामधि फूलेबहुबिधि फूल ॥९॥
फूल मूल में मूल फूल में फूल फूल फल फल हिलि हेज ।
प्रति प्रति परम प्रेमपय पोषत तोषत तरनि किरनि तन तेज ॥१०॥
थलज जलज झलमलित परसपर प्रतिबिंबित अति ओप अपार ।
खग नग मृग लखि दृगन भये अग पग भरि करि न सकत संचार ॥११॥
कुंजनि कुंजनि पुंजनि पुंजनि नित्य-नित्य नव निति नवरंग ।
मण्डल महल मनोहर मोहन जहाँ बिलसत बिबि केलि अभङ्ग ॥१२॥
सुभग सेज पर सुघर सुंदरबर रसिक पुरन्दर कुँवरकिसोर ।
ब्रीडहिं तजि क्रीडहिं मन मानत नहिं जानत कित रजनी भोर ॥१३
करत पान रस मत्त मिथुन मन मुदित उदित आनन्द अधीर ।
सेवत सहज सदा सुख सागर नागरि नागर गहर गम्भीर ॥१४॥
सखी सहेली सहचरि सुंदरि मन्जरि महल टहल टग लागि ।
कोउ आवत कोउ जाति जतन जगि अतन अङ्ग सङ्गनि अनुरागि ॥१५॥
मान बिरह भ्रम कौ न लेस जहाँ रसिकराय कौ रसमय भौंन ।
जद्दपि अति उत्कृष्टि सृष्टि तउ कृपा दृष्टि बिन पावत कौंन ॥१६॥
आदि अनादि अक्रीयमान हैं एक समान सुतन्त्र बिलास ।
पारब्रह्म कहियतु हैं इनिकी पद नख नेंसुक जोति प्रकास ॥१७॥
सदा सनातन इक रस जोरी सच्चिद-आनँदमयी स्वरूप ।
अनन्त-सक्ति-पूरन-पुरुषोत्तम जुगलकिसोर विपिनपति भूप ॥१८॥
सीस सुहाग छत्र छबि छाजें रसराजें रजधानी रीति ।
अग्रवर्त्ति आगें धरि दम्पति लई सबनि की सम्पति जीति ॥१९॥
बोलें बोल अबोल अबोलें डोलें सङ्ग लगी सब तीय ।
मन अनुसारनि आज्ञा-कारनि बिबि तन के तन में मन दीय ॥२०॥

सेस महेस सुरेस गनेसुर वन्दन हित बन्छत पद रेन ।
अज अजहू खोजत नहिं पावत ध्यान मात्र आवत सुहिये न ॥२१॥
यह रस दुर्ल्लभ हू ते दुर्ल्लभ सुल्लभ नित्य रहत हैं ताहि ।
श्रीहरिप्रिया जानि जन जिय में हिय में अपनावत जब जाहि ।५।२२।

इस पद से श्रीग्रन्थकार श्रीनित्य वृन्दावन तथा श्रीप्रिया जी के दिव्य मङ्गल विग्रह का अभेद वर्णन करते हैं ।

विविध सुरत सम्पति सहित अति अद्भुत अभिराम ।
चिदानन्द घन जयति जय श्रीवृन्दावन धाम ॥
जय जय श्रीवृन्दावन धाम । चिदानन्द घन पूरन काम ॥

सत्-चित-आनन्द घन मय उस श्रीवृन्दावन अर्थात् श्रीप्रियाजी के दिव्य मङ्गल विग्रह की सदा जय हो जो विविध प्रकार की सुरति सम्पत्ति द्वारा श्रीलालजी को अति अद्भुत आनन्द प्रदान करके उनके मनोरथों को पूर्ण करता है :—

इस पद से श्रीग्रन्थकार श्रीनित्य वृन्दावन तथा श्रीप्रियाजी के दिव्य मङ्गल विग्रह का अभेद वर्णन करते हैं । यथा :—

रोमाली मिहिरात्मजा सुललिते बंधूक बंधुप्रभा ।
सर्वांगे स्फुट चंपकच्छबिरहो नाभी सरः शोभना ॥
वक्षोजस्तब कालसद्भुज लता शिंजापतच्छुंकृतिः ।
श्रीराधा हरते मनो मधु पते रन्येव वृन्दाटवी ॥ (श्रीराधा सुधानिधि)

गौर शरीर पै रोम समूह, मनौ जमुना जल हो लहराई ॥
औंठ लसैं जिमि बंधु प्रसून से, चंपक अंग लताभुज लाई ॥
नाभि सरोवर गुच्छ कुचा, पग नूपुर भौंर गुञ्जार सुहाई ॥
अन्य वृन्दावन होय के राधिका मोंहन भौंर कौ चित्त चुराई ॥

पुनः । यथा :—

"पञ्च योजन मेवास्ति वनं मे देह रूपकम्" (गौतमी तन्त्र)

यह वृन्दावन मेरी देह स्वरूप है जिसका विस्तार पञ्च योजन का है ।

पुनः । यथा :—

"प्रिया शक्ति अह्लादनी पिय आनन्द स्वरूप ।
तन वृन्दावन जग मगै इच्छा सखी अनूप ।।" (मह. वा. सि. सु.)

श्रीवृन्दावन 'चिदानन्द घन स्वरूप' है । यथा:-

"दिव्यं वृन्दावनं नाम शेषां गस्थं च सर्वदा ।
ब्रह्म रूप मिदं देवि सच्चिदानन्द रूपकम् ।।" (पुरुषार्थ बोधनी उपनिषध)

हे देवि ! वृन्दावन दिव्य वृह्म रूप, तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है । यह सर्वदा भगवान की आधार शक्ति स्वरूप शेषांग पर स्थित है ।

पुनः । यथा :—

"कुञ्ज गुल्मादि रूपत्वं श्रीमद्वृन्दावनस्यतत् ।
कृष्ण क्रीडा कृते ज्ञेयं चिद घनस्य विचित्रता ।। (श्रीपद्माचार्य्य चरणैः)

श्रीवृन्दावन के कुञ्ज, गुल्म लता आदि जो कुछ हैं यह सब श्रीकृष्ण की क्रीड़ा के लिये ही हैं । यही चिद्घन की विचित्रता है ।

वहति विमल कल केलि रूपनी, श्रीयमुना कमना चहुँ कोद ।
अति रस रङ्ग तरङ्ग उमङ्गनि अङ्ग अङ्गनि प्रति बढ़वनि मोद ।।

इस श्रीवृन्दावन (श्रीस्वामिनी जी के दिव्य मङ्गल विग्रह) के चारों ओर विमल कल केलि रूपी वह श्रीयमुनाजी बह रही हैं जिसमें अति रस रङ्ग की उपयुक्त वे तरंगें उठ रही हैं । जो श्रीलाल जू के अंग अंग में अतिमोद बढ़ाने वाली है । यथा:—

कंकना कार सौढार सरिता वहत अति सुरस सिंगार भरिता । (म. वा. सि. सु.)

जैसे इस न्याय से श्रीवृन्दावन के चारों ओर श्रीयमुना जी हैं इसी प्रकार श्रीप्रिया प्रीतम के अंग अंग में जो परस्पर मिलने की उमंग युक्त रस रंग भरी तरंगें हैं वही श्रीयमुना जी हैं । और वही परस्पर मोद को बढ़ाने वाली हैं ।

श्रीयमुना जी श्रीलाल ललना की केलि स्वरूपा है । इसकी पुष्टि के लिये श्रीसनत् कुमार संहिता का प्रमाण योग पीठ की व्याख्या पद नम्बर......में उद्धृत किया जा चुका है ।

दिव्य कनक मय अवनि अखण्डित मदुमनि मंडित मयी मनोज ।
विविध भाँति तरु वेलिन झेली रति रेली अलवेली ओज ।।

इस श्रीवृन्दावन (श्रीस्वामिनीजू के विग्रह) की अखण्डित भूमि दिव्य कनक मय है जो विविध प्रकार की मनोज रूपी मृदुमणियों से मंडित हैं। तरु रूप श्रीलाल जू, बेली रूपा श्रीअलवेली स्वामिनीजी के रति ओज को विविध भाँति से झेल रहे हैं । यथा:-

दिव्यं कनक मय अवनि अखण्डित=श्रीप्रिया जू का दिव्य मंगल विग्रह जो स्वर्ण सदृश है। यथा :—

"तन अवनी सरिता सिंगार" (तालिका)

मृदु मनि मंडित मयी मनोज । =श्रीलालजू विषयिक कामातुरा । यथा:—

"अंग-अंग उदै होय जो काम । रतन ज्योति ताही कौ नाम ।।" (तालिका)

यहाँ "मृदुमनि मंडित" और "रतन ज्योति" का एक ही तात्पर्य है ।

विविध भाँति तरु वेलनि=श्रीलाल ललना के अंग प्रति अंग । यथा:—

"विविध वृक्ष अंग अंग कहावैं । छबि की लता लपटि छबि पावैं ।।
और तरु लता अमित अपार अँग सँग में सबकौ अधिकार ।।" (तालिका)

झेली । रति रेली अलवेली ओज । =श्रीअलवेली जी अर्थात् श्रीस्वामिनी जी जिनके अंग की कान्ति स्वर्ण सदृश है जो श्रीकृष्ण विषयिक कामातुरा हैं। वह लालजी के साथ सुरति केलि में प्रवर्त्त हैं।

महि महि चारु चँवेली चन्दन ।
चम्पक वकुल वर्न वर वेष ।
पिय वासे अनुकूल वसंती ।
सदा सेवती सुमन सुदेश ।।

वसंती सदा सेवती अर्थात् श्रीस्वामिनी पियवासा अर्थात् श्रीलालजू के इस समय अनुकूल है अर्थात वामा नहीं हैं। इसीलिये श्रीलालजू महि महि चारु चँवेली अर्थात श्रीस्वामिनी जी के चरण के अग्रभाग को आदर सहित ग्रहण करते हुए चन्दन चम्पक अर्थात चुम्बन करते हुए अपनी नासिका तथा नेत्र कमलों से स्पर्श कराते हैं ऐसे करते हुए वकुल वर्न वर वेष अर्थात् वह अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते हैं। यथा:—

महि महि=पूजन करना। आदर सहित सम्मान करना। (संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ)

चारु चँवेली=श्रीस्वामिनी जी के चरणार विन्दों का अग्रभाग। यथा:—

"चारु पदाग्र चमेली कही" (तालिका)

चन्दन=जिससे शीतलता प्राप्त हो। चुम्बनादि। यथा:-

"जिहिं सुख ते शीतलता लहैं।

चंदन सिंगारहिं तिहीं कहैं।।" (तालिका)

"चरच्यौ चन्दनचुम्बन सुहाय" (उत्सव सुख वसन्त)

चम्पक=नासिका। यथा:--

"चम्प वर्ण पुनि नासा लहिये" (तालिंका)

वकुल=मोल श्री (संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ)

मोल श्री=शोभा। यथा:--

"मोल श्रीशोभालहि जानौ" (तालिका)

वर्न वर वेष=सुन्दर सिंगार। पिय वासे=श्रीस्वामिनी जी।

अनुकूल=मान रहित अर्थात् दक्षिणा।

वसन्ती=सौरभ युक्ता। यथा:--

"जा मधि सौरभ सकल लसन्त ताकी संज्ञा कही वसन्त।" [तालिका]

सदा सेवती सुमन सुदेश=सौभाग्य वती श्रीश्यामा जू। यथा:--

"सदा सुहाग सेवती श्यामा। याही ते पिय वासौ नामा।।" [तालिका]

अम्ब कदम्ब जम्बु निम्बु श्री फल चल दल कदली, कमनीय।

कुरवक कुञ्ज केतकी केवड़ पारि जाति रोचक रमनीय।।

श्रीलाल जी श्रीस्वामिनी जू के अम्ब कदम्ब आदि विशेष अंगों को देखकर पारिजात अर्थात उनको आलिंगन करने की इच्छा करते हैं।

अम्ब=वक्षोज। चिवुक [रसाल कुञ्ज छबि पावै]

कदम्ब=श्रीचरण कमल। यथा :—

चरण कदम्ब कहावत चारु।" [तालिका]

जम्बु=कुचों का अग्रभाग। यथा:--

"उरज अग्र जम्बू मन भावे"　　　　[तालिका]

निम्बू श्रीफल=कुच । यथा:—

"श्रीफल कोक कलश कुच शोभा ।"　　　　[तालिका]

चल दल=उदर । यथा:—

"चल दल उदर अनूपम शोभा ।"　　　　[तालिका]

कदली कमनोय=सुन्दर जंघा। यथा :—

"कदली जंघा जानि अनूप।"　　　　[तालिका]

कुरबक=गुलशादाब का फूल (शब्दार्थ कौस्तुभ)

कुञ्ज केतकी=छोटी केतकी यथा:—

"कही केतकी पिंडुरी रूप ।"　　　　[तालिका]

केवड़=मन। यथा :— "मन केवड़ केसर रति रंग।"　　　　[तालिका]

परिजात=वृक्ष का नाम है। यहाँ परिरम्भण से तात्पर्य है। यथा:—

"पारिजात परिरम्भण संज्ञा ।"　　　　[तालिका]

रोचक रमनीय=अति सुन्दर, रुचि बढ़ाने वाला।

ठौर ठौर निर्मल जल आशय
　　मध्य कमल फूले बहु रङ्ग ।
बस मकरन्द वृन्द मधुकर मिलि
　　मँडरावत मन भावत संग ।

श्रीस्वामिनी जी के अङ्ग प्रति अङ्ग की कान्ति ही मानों अनेक सरोवर हैं। उनमें हृदय, मुख, कर, पद तथा नैन आदि अनेक प्रकार के रङ्ग विरङ्ग कमल फूल रहे हैं। श्रीलाल जू उनकी सुगन्ध से लुब्ध होकर परस्पर नैन विन्यास करते हुए मिलने की इच्छा से अत्यन्त आतुर होते हैं।

ठौर ठौर निर्मल जल आशय=यहाँ श्रीस्वामिनी जू के अंग की पानिप अर्थात उज्ज्वलता से तात्पर्य्य है। यथा :—

"ठौर ठौर निर्मल जल आशय
　　सो अंग अंग प्रति पानिप भासै ।"　　　　(तालिका)

मध्य कमल फूले बहु रंग=आपके अंग प्रति अंग ही यहाँ कमल हैं। यथाः—

हृदय कमल मुख कमल सुहाये। कर पद नैन कमल मन भाये॥
औरहु कमल भेद बहु विधि के। भरे सुरंग समर ऋधि सिधि के॥ [तालिका]

वस मकरन्द=सुगन्ध से लुब्ध होकर।

वृन्द मधुकर मिलि=परस्पर नैन विन्यास करते हुए। यहाँ मधुकर से नैन ग्रहण करने चाहिये। यथा:—

"खञ्जन, मीन, अलि, मृग दृग कहिये॥" तालिका।"

मँडरावत मन भावत संग....मिलने की इच्छा से अत्यन्त आतुर होना।

नव पल्लव रस सरस शशी की
लसी बसी यौवन वन याति।
पाडर परनि निवारि नवेली
जुही जुही सौं अति रति राचि॥

श्रीलालजू श्रीशशी अर्थात श्रीस्वामिनी जी के नव पल्लव रस अर्थात् अधर सुधा रस तथा यौवन रूपी कमलों के गुलदस्तों को पाने के लिये नाना प्रकार के दीन वाक्यों द्वारा विनय युक्त याचना करते हैं। फिर प्रेम भरी दृष्टि से परस्पर देखते हुए अति रति विलास की रचना करते हैं।

नव पल्लव रस=अधर सुधारस (शब्दार्थ कौस्तुभ)। सरस शशी की=यदि शशि का अर्थ चन्द्रमा किया जावे तो इसका अर्थ सुन्दर मुख चन्द्र होगा। अथवा 'कामशास्त्र' के अनुसार "शश" मनुष्य के चार भेदों में से एक भेद का नाम है। उसके यह लक्षण हैं।

"मृदु बचन सुशीलः कोमलाङ्गः सु केशः।
सकल गुण निधानं सत्य वादी शशोऽयम्॥" (शब्दार्थ कौस्तुभ)

'जो मृदुभाषी, सुशील, कोमल अंगों तथा सुन्दर केशों वाला, सकल गुण निधान तथा सत्य वादी हो उसकी संज्ञा 'शश' है। इसी प्रकार पद्मनी नायिका के ये लक्षण हैं।

भवति कमल नेत्रा नासिका क्षुद्ररन्ध्रा।
अविरल कुचयुग्मा दीर्घकेशी कृशाङ्गी॥
मृदु चरण सुशीला नृत्य गीतानुरक्ता।
सकल तनु सुवेशा पद्मिनी पद्म गन्धा॥ (रति शास्त्र)

'शश' का स्त्रीलिंग 'शशी' होता है। यहाँ उपरोक्त लक्षण युक्त श्रीस्वामिनी जी से तात्पर्य्य है।

लसी वसी=उपरोक्त लक्षणों से सुशोभित।

यौवन वन=यौवन रूपी बगीचा। अथवा 'वन' का अर्थ कमलों का 'गुलदस्ता' भी है। [शब्दार्थ कौस्तुभ]

याचि=[श्रीलालजू] प्रार्थना करते हैं।

पाडर परनि=याचना। यथा :—

"पाडर परनि विनय जाचंज्ञा।" [तालिका]

निवारि नवेली=नेति नेति कहना। यथा :—

"नाना बरन उच्चारन जोई। कही निवारि नवेली सोई॥" [तालिका]

जुही जुही सों=परस्पर देखना। यथा:—

"जोहन जुही मानिये सही॥" [तालिका]

अति रति राचि=अति रति विलास की रचना करते हैं।

त्रिविध पवन गवनें मन रमनें शीतल मन्द सुगन्ध सुहाय।
सब ऋतु सब सुख दायक लायक सुरत सहायक सहज सुभाय॥ [तालिका]

श्रीस्वामिनी जी के श्वास ही श्रीलालजी के मन को रमाने वाली शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु है। यह पवन सब ऋतुओं में सुख देने वाली है। और सहज स्वाभाविक सुरति केलि की सहायक है।

त्रिविध पवन=श्वास। यथा:—

"त्रिविध पवन मन रमन महाई। सो समझो श्वासा सुख दाई॥ [तालिका]

गवनें=चलती है। मन रमने=मन को रमाने वाली।

शीतल मन्द सुगन्ध सुहाय=सुहावनी शीतल, मन्द, सुगन्ध।

सब ऋतु सब सुख दायक लायक=सब ऋतुओं में सुख देने वाली।

सुरत सहायक सहज सुभाय=स्वाभाविक सुरति केलि की सहायक।

सिल सिलाति सलिता छबि छलिता रस रलिता आवृत अनुकूल।
अरुन पीत सित असित अमित ऋधि जा मधि फूले बहु विधि फूल॥

श्रीस्वामिनी जी जिनके कुछ अङ्ग वस्त्र आदि से आच्छादित हैं तथा कुछ खुले हुए हैं। जब लालजू से मिलकर क्रीड़ा करती हैं उस समय उनकी ऐसी शोभा होती है मानों छबि छलक रही हो और रस शृँगार की नदी बढ़कर लहरें मार रही हो। उस शृँगार रूपी सरिता में परस्पर अङ्ग प्रति अङ्गों के विन्यास से सुरति केलि सम्बन्धी अनेक रङ्ग बिरंगे— लाल, पीत, स्वेत तथा नील असीम स्मृद्धि वाले फूल खिल रहे हों।

सिल सिलात—लहरें मार रही है।

सलिता=सरिता। श्रीयमुना जी। यथा :—

"सरिता रस शृंगार की सदा बहत चहुँ ओर" (सि. सु. प.)

"तन अवनो सरिता शृङ्गार।" (तालिका)

छबि छलिता=मानों छबि उझिली पड़ती है।

रस रलिता=लालजू से मिलकर। यथा:—

मरकत मणि कंचन घन दामिनि। सो पिय प्यारी तन संज्ञा गनि॥
तथा तमाल कनक की वेली। रति अनङ्ग रस रंग सहेली॥ [तालिका]

यहाँ 'रस' से श्रीलाल जू की संज्ञा दी गई है।

आवृत=(श्रीस्वामिनी जी) वस्त्र आदि से ढकी हुई हैं।

अनुकूल=[श्रीस्वामिनी जी] के अङ्ग कहीं कहीं वस्त्र आदि से आच्छादित नहीं है अर्थात् अनुकूल हैं।

अरुन पीत, सित असित अमित ऋधि। जामधि फूले बहु विधि फूल॥

यहाँ अनेक प्रकार के फूलों से श्रीलाल ललना के अङ्ग प्रत्यङ्गों से तात्पर्य्य है।

यथा:—"हृदय कमल मुख कमल सुहाये कर पद नयन कमल मन भायें।
और हू कमल भेद बहु विधि के भरे सुरङ्ग समर ऋधि सिधि के॥
जहाँ जहाँ जैसो लगे सम्बन्ध तहाँ तहाँ तैसो समझ प्रबन्ध॥ [तालिका]

फूल मूल में मूल फूल में फूल फूल फल फल हिलि हेज।
प्रति प्रति परम प्रेम पय पोखत तोषत तरनि किरन तन तेज॥

रस पिपासू श्रीलालजू जब अपने हस्त कमल से श्रीस्वामिनी जी के चरण मूल को पकड़ कर अपने मुख कमल से स्पर्श कराते हैं तब श्रीस्वामिनी जी अत्यन्त लाड़ से

उनका गाढ़ आलिङ्गन करती हैं। उस समय उन दोनों के अङ्ग प्रति अङ्गों का मिलना ही "फूल फूल फल फल हिलि हेज" है। ऐसा करने से वह दोनों परस्पर के परम प्रेम रूपी पय से पुष्ट तथा दिव्य मङ्गल विग्रहों के तेज रूपी सूर्य किरणों से तुष्ट होते हैं।

फूल=हस्त कमल आदि। यथा:—

"......कर पद नयन कमल मन भाये।" [तालिका]

यहाँ 'करकमल' से तात्पर्य्य है।

मूल=चरण मूल। फूल फूल=कमलों से कमल मिले हुए। यहाँ कपोल से कपोल, हृदय से हृदय आदि मिलने से तात्पर्य्य है। यथा:—

"मधुक सुमन संज्ञा कपोल की" (तालिका)

"हृदय-कमल मुख कमल" इत्यादि [तालिका]

फल फल=विशेष अङ्गों से विशेष अङ्ग मिले हुए हैं। "श्रीफल कोक कलश कुच शोभा"

"पुनि अनार की उपमा पावैं।" "उरज अग्र जम्बू मन भावैं।" (तालिका)

हिलि हेज=अत्यन्त लाड़।

प्रति प्रति प्रेम पय पोषत=परस्पर के परम प्रेम रूपी दुग्ध से पुष्ट हुये हुए।

तोषत तरनि किरन तन तेज=परस्पर के सूर्य किरन रूपी दिव्य मंगल विग्रह के तेज से तुष्ट होते हैं। अर्थात प्रशन्न होते हैं।

उपरोक्त तुक की व्याख्या अनेक प्रकार की सुरति क्रीड़ा सम्बन्धी लीलाओं की हो सकती हैं। यहाँ उदाहरणार्थ केवल एक लीला उधृत की गई है।

थलज जलज झल मलित परस्पर प्रतिबिम्बित अति ओप अपार।
खग नग मृग लखि दृगन भये अग पग भरि करि न सकत संचार ॥

श्रीलाल ललना के अंग प्रति अंग ही थल तथा जल कमल हैं इनके परस्पर मिलने से अंग माधुरी झल मल झल मल करने लगती है। श्रीलालजू के नेत्र कमल श्रीस्वामिनी जी के वक्षोजों तथा नेत्र कमल आदि की रूप माधुरी को देखकर मात्र थकित हो जाते हैं। वह एक क्षण काल के लिये भी इधर उधर नहीं होते हैं।

थलज=पृथ्वी में पैदा होने वाले कमल पुष्पादि।

जलज=जल से पैदा होने वाले कमल। यथाः—

"नाभि सरोवर गहर गँभीर।
भरचौ सुधा नव निरमल नीर।" (तालिका)

इस सरोवर में पैदा होने वाले सौन्दर्य्य रूपी कमल। झल मलित परस्पर, प्रति विम्बित अति ओप।

अपार=परस्पर आलिंगित होने से एक दूसरे के अंग की परछाई पड़ने से उन दोनों की कान्ति अत्यन्त सुशोभित होती है।

खग=श्रीलाल जी के चञ्चल नेत्र।

नग=वृक्ष, पर्वत आदि। यथा :—

"विविध वृक्ष अँग अंग कहावैं" (तालिका) वक्षोज आदि।

दृगन भये अग=नेत्र कमल हटते नहीं हैं। टक टकी बाँधकर देख रहे हैं।

पग भरि करि न सकत संचार=एक पैंड भी इधर उधर नहीं हिल सकते हैं।

कुञ्जनि कुञ्जनि पुञ्जनि पुञ्जनि नित्य नित्य नव नित्य नवरंग।
मण्डल महल मनोहर मोहन जहँ विलसत विवि केलि अभंग॥

श्रीस्वामिनी जी के दिव्य मंगल विग्रह में अनन्त निकुञ्जें हैं। जिनमें नित्य नवीन नवीन सुरति केलि सम्बन्धी रंग हैं। श्रीलाल जू सुरति क्रीड़ा उपयोगी रास मंडल पर अनेक प्रकार की अभंग केलि करते हैं। जिसे दोनों विलसते हैं। कुञ्जनि कुञ्जनि=अनेक प्रकार की कुञ्जे जो श्रीस्वामिनी जी के श्रीविग्रह में हैं। यथाः—

"चिवुक रसाल कुञ्ज छवि पावै। गहवर कुञ्ज सु हियौ कहावै॥
निज तन सुभग रतन मणि कहिये। कमल निकुञ्ज कमल हू लहिये॥"
(तालिका)

पुञ्जनि पुञ्जनि=अनन्त।

नित्य नित्य नव नित नव रङ्ग=उपरोक्त निकुञ्जे श्रीअङ्ग प्रति अङ्गों में नित्य विराजमान हैं जिनमें श्रीलालजू नित्य सुरति केलि सम्बन्धी नव रङ्गों को विलसते हैं।

मण्डल महल=श्रीस्वामिनी जी का कटि पश्चात् भाग। यथाः—

"मण्डल जघन सु कटि तट कहिये।" (तालिका)

मनोहर मोहन==मन को हरने वाले श्रीलालजू ।

जहँ विलसत विवि केलि अभंग=जहाँ दोनों अभङ्ग रूप केलि करते हैं ।

यहाँ तक श्रीग्रन्थकार श्रीनित्य वृन्दावन के अङ्गों स्वरूप को श्रीस्वामिनो जी की देह से अभिन्न रूप से वर्णन करते आ रहे हैं । अब सुरति केलि मग्न श्रीप्रिया प्रोतम का वर्णन करते हुए आगामी बिषय प्रारम्भ करते हैं । यथा—

सुघर सुभग सेज पर सुभग सुन्दर वर, रसिक पुरन्दर कुँवर किशोर ।
ब्रोडहिं तजि क्रीडहिं मन मानत, नहिं जानत कित रजनी भोर ॥

सुघर, सुन्दर वर रसिक चूड़ामणि श्रीलालजू तथा श्रीप्रियाजी सुभग सेज पर लज्जा को छोड़कर इतनी आसक्तता से मनमानी नित्य क्रीड़ा करते रहते हैं कि उनको रजनी तथा भोर का भी ज्ञान नहीं रहता है ।

करत पान रस मत्त मिथुन मन,
मुदित उदित आनन्द अधीर ।
सेवत सहज सदा सुख सागर,
नागरि नागर गहर गम्भीर ॥

श्रीरसिक दम्पति रस मत्त होकर अधीरता पूर्वक आनन्द आस्वादन करते हैं । वह दोनों नागरि नागर सदैव गहर गम्भीर सुख रूपी सागर को स्वाभाविक विलसते रहते हैं ।

सखी सहेली सहचरि सुन्दरि, मञ्जरि महल टहल टग लागि ॥
केऊ आवति कोऊ जाति यतन जगि अतन अङ्ग संगनि अनुरागी ॥

सखी, सहेली, सहचरी, सुन्दरी तथा मंजरियों की दृष्टि हर समय महल की सेवा में लगी रहती है । ये अंग संगनी अनुराग पूर्वक प्रिया प्रीतम के परस्पर काम को उद्दीपन कराने के लिये यत्न करती रहती हैं । इसीलिये महल में इनमें से कुछ आती हुई तथा कुछ जाती हुई दिखाई देती हैं ।

जिस प्रकार यहाँ पाँच प्रकार की सखियों का वर्णन है प्रायः समस्त महावाणी ग्रन्थ में इसी प्रकार है । यथा:—

"रसिक सहेलनि के रस वरषे । आनन्द लता हिये महा हरषे ॥

"सखी सहचरी फूली तन में। सरस सुन्दरी मह महि मनमें ॥
प्रेम मञ्जरी परम सुहाई। मन मोहनी महा मन भाई॥"
(म. वा. से. सु. पद. ६२)

"सखी, सहेली, सहचरी, मञ्जरी,सुन्दरि वेलि।
अपने अपने औरे कौरे रही सोहिल झेलि॥"
(पः ३६) (म. वा. उ. सु. सोहिलो पद २५)

"सखी, सहेली अरु सहचरी मिली मञ्जरी और सुंदरी।
(म. वा उ. सु. व्याहलौ पद १४६)

'श्रीउज्ज्वल नीलमणि' में भी इसी प्रकार पाँच प्रकार की सखियों का वर्णन किया गया है। यथा:—

"तास्तु वृन्दावनेश्वर्याः सख्यः पञ्चविधा मताः।
सख्यश्च नित्य सख्यश्च प्राण सख्यश्च काश्चनं।
प्रिय सख्यश्च परम प्रेष्ठ सख्यश्च विश्रुताः॥"
सख्यः कुसुमिका विन्ध्या धनिष्टाद्याः प्रकीर्तिताः।
नित्य सख्यस्तु कस्तूरि मणि मञ्जरि का द्यः॥
प्राण सख्यः शशि मुखी वासन्ती लासिका द्यः।
प्रिय सख्यः कुरंगाक्षो सु मध्या मदनालसा॥
कमला माधुरो मञ्जुकेशी कन्दर्प सुन्दरी।
माध्वी मालती कामलता शशिकलादयः॥
परम प्रेष्ट सख्यस्तु ललिता सविशाखिका।
सु चित्रा चम्पक लता तुङ्ग विद्येन्दु लेखिका॥
रंग देवी सु देवी चेत्यष्टौ सर्व गुणाग्रिमाः। (उज्ज्वल नीलमणि)

श्रीवृन्दावनेश्वरी की सखियाँ पाँच प्रकार की हैं जिनमें से कोई 'सखी', कोई 'नित्य सखी', कोई 'प्राण-सखी,' कोई 'प्रिय सखी' और कोई 'परम प्रेष्ठ सखी' कहलाती हैं।

अब सबको अलग-अलग बतलाया जाता है। जिनके नाम "कुसुमिका" "बिन्ध्या" "धनिष्टा" आदि हैं। यह सखियाँ कहलाती हैं। "कस्तूरी" "मणिमञ्जरिका"

आदि नित्य सखी हैं। "शशि मुखी" "वासन्ती" "लासिका" आदि प्राण सखी कहलाती हैं। "कुरंगाक्षी" "सुमध्या" "मद-नालसा" "कमला" "माधुरी" मञ्जुकेशी" "कन्दर्प सुन्दरी" "माध्वी" "मालती" "कामलता" तथा "शशि कला" आदि प्रिय सखी हैं। "श्रीललिता" "विशाखा" "चित्रा" "चम्पकलता" "तुङ्गविद्या" "इन्दुलेखा" "रङ्गदेवी" "सुदेवी" ये आठों सखी सब गुणों के धाम स्वरूपा तथा सबके अग्रगण्या हैं इनको परम प्रेष्ठ सखी कहते हैं।

मान बिरह भ्रम को न लेश, जँह रसिक राय कौ रसमय भौन ।।
यद्यपि अति उतकृष्ट सृष्टि तउ, कृपा दृष्टि विनि पावत कौन ।।१५।।

श्रीरसिक दम्पति का श्रीवृन्दावन रसमय भवन है जहाँ स्थूल मान, विरह तथा भ्रम का लेश भी नहीं हैं। यद्यपि श्रीवृन्दावन गोलोकादि सब लोकों में अति उत्कृष्ट है तो भी वह इस पृथ्वी पर विराजमान है यहाँ एक मात्र मंजरी भाव से ही प्रवेश हो सकता है बिना श्रीप्रिया प्रीतम की कृपा के यह भाव प्राप्त नहीं हो सकता है।

इस ग्रन्थ में केवल निकुञ्ज लीलाओं का ही वर्णन है। इसलिये यहाँ गोचारन, दूर प्रवासादि विरह, स्थूल मान तथा भ्रम आदि नहीं हैं। यथाः—

"हरेर्लीला विशेषस्य प्रकटस्यानुसारतः ।
वर्णिता विरहावस्था ब्रज वाम भ्रुवामसौ ।।
वृन्दारण्ये विहरता सदा रासादि विभ्रमैः ।
हरिणा ब्रज देवीनां विरहो नास्ति कर्हिचित् ।।" (उज्ज्वलनीलमणि)

यद्यपि श्रीकृष्ण की विशेष प्रकट लीलाओं के अनुसार ब्रजनागरियों की विरहावस्था का वर्णन किया गया है परन्तु वृन्दावन विहार लीलाओं में जहाँ नित्य रास विलास हैं वहाँ श्रीप्रिया प्रीतम में किसी काल में कभी भी विरह नहीं हैं।

यद्यपि यहां स्थूल "मान" "विरह" तथा "भ्रम" आदि नहीं हैं तो भी सूक्ष्म रूप से यह सब निकुञ्ज लीलाओं में भी होते हैं। "मान" यथाः—"रसदान"

दोहा—"जदपि सकल शिरमौर तोउ तेरे ही आस निदान।
अहो प्रिया प्रतिपाल दै अधर सुधा रस दान ।।
पद—दे अधर सुधा रस दान प्रिया। इत्यादि...........

"विरह" यहां "अतृप्ति" ही "विरह" है यथाः—

"सखी री कहा कहों इन की बात ।
निशिवासर ऐसे ही वितवत मो गुण गात ही गात ।।
नीरेंहि रहत निपट उर लागे तोउ अधीर अकुलात ।
श्रीहरिप्रिया तिहारे ही देखत अङ्ग बदलसे जात ।।"

(सः सुः पद ३०५) पः ८

"श्रीहरिप्रिया अङ्ग सङ्गहि हिलि मिलि चहत एक भयो गात ।"

(सः सुः पदः ३८०) पद ८३

"भ्रम" यथाः—एक समय सुख में सखीरी जान परै भ्रम भौन । उ. स. प. ४१

दोहा—"अति की गति सब होइ चुकी तन धीरज न धराँहि ।
मेरी जीवनि प्रान वलिए अलि मोहि मिलाँहि ।

पद—मोहि मिलाय देरी मेरी जीवनि प्रान ।" इत्यादि (उः सुः पदः २६) पद४०

"अंकस्थितेपि दयिते किमपि प्रलापम् हा मोहनेति मधुरं विदधत्यकस्मात् ।
श्यामानुराग मदविह्वल मोहनांगी श्यामा मणिर्जयति कापि निकुञ्ज सीम्नि ।।"

(राः सुः निः श्लोः ४६)

कोई एक अनिर्वचनीय निकुञ्ज स्थित श्यामा मणि की जय हो जिनके अङ्ग प्रति अङ्ग श्रीलालजू के अनुराग मद से विह्वल होकर प्रेम वेचित्ती भाव द्वारा अचेतन अवस्था को प्राप्त हो रहे हैं । यद्यपि श्रीलालजू उनके अंक में उनसे गाढ़ अलिङ्गन किये हुये स्थित हैं तो भी वह अकस्मात् 'हा मोहन !' 'हा मोहन' इस प्रकार मधुर प्रलाप कर रही हैं ।

यद्यपि अति उत्तकृष्ट सृष्टि तउ :—यद्यपि श्रीवृन्दावन सब लोकों से अति उत्तकृष्ट—श्रीगोलोक से भी ऊपर है तो भी इस पृथ्वी पर विराजमान है । यथाः—

"गतो राधापति स्थानं यत्सिद्धैरप्य गोचरम् ।
ततश्चतदुपादिष्टो गोलोकादुपरिस्थितम् ।।
नित्यं वृन्दावनं नामनित्य रास रसोत्सवम् ।
अदृश्यं परमं गुह्यं पूर्ण प्रेम रसात्मकम् ।।"

"नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डो परि संस्थितम् ।
पूर्ण ब्रह्मसुखैश्वर्य्यं नित्यमानन्दमव्ययम् ।।
वैकुण्ठादितदंशाशं स्वयं वृन्दावनम् भुवि ।
(पाद्मे पाताल खण्डे वृन्दावन माहात्मे)

अर्थात वह (अर्जुन) उस स्थान में पहुँचा जो सिद्धों के भी अगोचर है । जिसकी स्थिति गोलोक से भी ऊपर है । जिसका नाम नित्य वृन्दावन है। जहाँ रास आदि नित्य उत्सव होते रहते हैं । जो स्थान पूर्ण प्रेम रसात्मक अत्यन्त गुह्य तथा अदृश्य है ।

नित्य वृन्दावन की स्थिति सब ब्रह्माण्डों के ऊपर है। वह स्थान पूर्ण परब्रह्म के आनन्द से परिपूर्ण है । उसका कभो नाश नहीं होता है । वैकुण्ठादि भगवत धाम भी श्रीवृन्दावन के एक अंश के अंश हैं । यह वृन्दावनथा भूमि स्थित वृन्दावन एक ही स्वरूप हैं। अर्थात इनमें कोई भेद नहीं है ।

कृपा दृष्टि बिन पावत कौनः—

श्रीप्रिया प्रीतम की कृपा दृष्टि हुए बिना श्रीनित्य वृन्दावन में प्रवेश तथा मञ्जरी भाव प्राप्त नहीं हो सकता है ।

"कृष्ण तद्भक्त कारुण्य मात्रलाभैक हेतुका ।" (भक्ति रसामृत सिन्धु)

अर्थात प्राप्ति का हेतु एक मात्र श्रीकृष्ण (प्रिया प्रीतम) तथा उनके भक्तों की कृपा ही है ।

इसका क्रम यह है :—

"प्रेम भक्तौ यदि श्रद्धा मत्प्रसादं यदीच्छसि ।
तदा नारद भावेन राधाया राधको भव ।।" (भविष्य पुराण)

"सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव पुनः पुनः ।
बिना राधा प्रसादेन मत्प्रसादो न विद्यते ।।
श्रीराधिकाया कारुण्यात् तत्सखी संगिताम्नियात् ।
तत्सखीनां च कृपया योषिदंगमवाप्नुयात् ।। (नारद पुराण)

श्रीकृष्ण कहते हैंः—

"हे नारद जी ! यदि तुम्हारी प्रेम भक्ति में श्रद्धा है और मेरी कृपा चाहते हो तो भाव युक्त श्रीराधिकाजी में आराधक बनो ।।"

"मैं यह बार बार शपथ लेकर कहता हूँ बिना श्रीराधिका जी की कृपा के मेरी कृपा नहीं हो सकती है। श्रीराधिका जी की कृपा से उनकी सखियों का सङ्ग प्राप्त होता है। उनकी कृपा से ही सखी भाव मिलता है।"

अक्रिय माण अनादि आदि है, एक समान स्वतन्त्र विलास।
पार ब्रह्म कहियतु है इनकी पद नख ते सुख ज्योति प्रकाश ॥१६॥

श्रीवृन्दावन किसी का निर्मित किया हुआ नहीं है यह स्वरूप से ही आदि अनादि है। इसमें सदैव एक समान स्वतन्त्र विलास होता रहता है। श्रीप्रिया प्रीतम के चरणारविन्द के नख की छटा को ही परब्रह्म कहते हैं।

श्रीवृन्दावन का स्वरूप यथा:—

" पूर्ण ब्रह्म सुखैश्वर्य्यं नित्यमानन्द मव्ययम्" (पद्म पुराण)

परब्रह्म सुख ऐश्वर्य्य परिपूर्ण नित्य आनन्दमय है। उसका कभी नाश नहीं होता है। इसीलिये नित्य वृन्दावन अक्रियमाण है। अर्थात् किसी का निर्माण किया हुआ नहीं है। यह अनादि आदि है। यहाँ क्रीड़ा स्वतन्त्र रूप से एक समान होती रहती है। यथा:—

राधा कृष्णावहं वन्दे रस रूपौ रसायनौ।
वृन्दावन निकुञ्जेषु नित्य लीला समाश्रितौ ॥ (म. बा. सु. सु. श्लो १)

मैं उन श्रीप्रिया प्रीतम की बन्दना करता हूँ जो रस रूप तथा रस भोक्ता स्वरूप हैं। यह वृन्दावन निकुञ्जों में नित्य विहार परायण हैं।

पार ब्रह्म कहियतु हैं इनकी, पद नखतें सुख ज्योति प्रकाश ॥

"पद्म पुराण पाताल खण्ड" वृन्दावन माहात्म में वर्णित है।

"तदंघ्रि पंकजद्वन्द नख चन्द्र मणि प्रभाः।
आहुः पूर्ण ब्रह्मणोऽपि कारणां वेद दुर्गमम् ॥"

श्रीप्रिया प्रीतम के चरणारविन्द्रों के नखचन्द्रों की कान्ति उस पूर्ण ब्रह्म का कारण स्वरूप कहलाती है जो वेदों को भी दुर्गम है। पुनः

"नखेन्दु किरण श्रेणी पूर्ण ब्रह्मैक कारणम् " (पद्म पुराण)

श्रीरसिक दम्पति के चरणारविन्द के नख की ज्योति का प्रकाश ही परब्रह्म का कारण स्वरूप है।

सदा सनातन इक रस जोरी, सच्चिद आनन्द मयी स्वरूप।
अनन्त शक्ति पूरन पुरुषोत्तम, युगल किशोर विपिन पति भूप ॥१७॥

श्रीरसिक दम्पति की जोरी सदा सनातन, एक रस तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है। ये विपिन पति भूप युगल किशोर अनन्त शक्ति वाले तथा पूर्ण पुरुषोत्तम हैं।

सदा सनातन इक रस जोरी :—

श्रीप्रिया प्रीतम सदा सनातन एक रस के स्वरूप होकर भी सदा युगल हैं। यथा:–

"एको एवायं रसोद्विधाभिन्नो राधा कृष्ण रूपाभ्याम्।" (सामरहस्योपनिषद्)

एक ही रस लीला विहार के लिये "श्रीराधा कृष्ण" इन दो स्वरूपों से विराजमान हैं। पुनः यथा:—

"जयति जयति राधाकृष्ण युग्मं वरिष्ठं,
व्रतसुकृतनिदानं यत्सदैतिह्यमूलम्।
विरल सुजन गम्यं सच्चिदानन्द रूपं,
व्रज वलय विहारं नित्य वृन्दावनस्थम् ॥ (औदम्बर संहिता)

सर्वश्रेष्ठ नित्य युगल किशोर की जोरी की सदा जय हो। जो अनेक व्रत तथा सुकृत अनुष्ठानों के फल को देने वाली है। जिसकी प्राप्ति एक मात्र परम्परा द्वारा ही हो सकती है। सज्जनों में भी जिनके अनुभवी बहुत कम हैं। जो सच्चिदानन्द स्वरूप है। जो नित्य वृन्दावन में स्थित होकर वृन्दावन के वलय स्वरूप ब्रज में भी विहार करते हैं। सच्चिदानन्द मयी स्वरूप:—यथा:—

"ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रह।
अनादिरादि गोविन्दः सर्वकारण कारणम् ॥" (ब्रह्म संहिता)

श्रीकृष्ण ही परमेश्वर सच्चिदानन्द विग्रह स्वरूप, अनादि, आदि तथा सब कारणों के कारण हैं।

अनन्त शक्ति। यथा :—

"अनन्त वीर्यामित विक्रमस्त्वम्। सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥
(भ. गी. अध्या. ११ श्लो ४०)

हे अनन्त सामर्थ्य वाले, अमित पराक्रम शाली श्रीकृष्ण। आप सब संसार को व्याप्त किये हुए हैं। इसलिये आप ही सर्व स्वरूप हैं।

पूरन पुरुषोत्तम, युगल किशोर विपिन पति भूप।

श्रीवृन्दावन के भूप स्वरूप श्रीयुगल किशोर श्रीप्रिया प्रीतम ही पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। यथाः—

"यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥" (भ. गी. अ. १५ श्लो. १८)

श्रीकृष्ण कहते हैं:—क्योंकि मैं नाशवान वर्ग से अतीत हूँ और अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ इसलिये लोक और वेद में पुरुषोत्तम नाम से मैं ही प्रसिद्ध हूँ।

शशि सुहाग छत्र छवि छाजै, रस राजै रजधानी रीति।
अग्रवर्ति आगें धर दम्पति, लई सवनि की सम्पति जीति॥१८॥

क्योंकि श्रीवृन्दावन वैकुण्ठ आदि परम धामों का भी आधार स्वरूप है। इसलिये यह सब परमधामों की रजधानी स्वरूप है। सौभाग्य और रस द्वारा श्रीप्रिया प्रीतम का और सब स्वरूपों से उत्कर्ष है। इसीलिये ग्रन्थकार वर्णन करते हैं। यथाः—

शशि सुहाग छत्र छवि छाजै, रस राजै रज धानी रीति।

श्रीप्रिया प्रीतम के मस्तक पर ही सौभाग्य रूपी छत्र छा रहा है वृन्दावन ही रस, रजधानी सदृश सुशोभित है अर्थात और सब भगवत् स्वरूपों से सौभाग्य और रस द्वारा श्रीप्रिया प्रीतम का ही उत्कर्ष है। यथाः—

भक्ति रसामृत सिन्धु। यथाः—

"सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि कृष्ण श्रीश स्वरूपयोः।
रसेनोत्कृष्यते कृष्ण रूप मेषा रसस्थितिः॥"
"सर्व सौभाग्य संयुक्ता मानिनी गौरवान्विता।
वामार्धांग स्वरूपा च गुणेन तेजसा समा॥ (ब्रह्म वैवर्त्त पुराण)

यद्यपि सिद्धांत अंश में श्रीकृष्ण और श्रीनारायण के स्वरूप में कोई भेद नहीं हैं तो भी रस द्वारा श्रीकृष्ण के स्वरूप का उत्कर्ष है। क्योंकि रस की ऐसी ही स्थिति है।

श्रीराधिका जी समस्त सौभाग्य, मान तथा गौरव से युक्त हैं। श्रीकृष्ण की वामार्धांग स्वरूपा है। इसलिये ये भी उनके समान गुण तथा तेज वाली हैं।

अग्रवर्ति आगें धर दम्पति, लई सबनि की सम्पति जीति।

अग्रवर्ति—श्रीरंग देवि आदि सखियों ने श्रीप्रिया प्रीतम की सेवा सौभाग्य प्राप्त करके अन्य अन्य भगवत् स्वरूपों के सेवकों (पार्षदों) के सौभाग्यों को जीति लिया है।

यथा :— लक्ष्म्या यश्च न गोचरी भवति यन्नापुः–
सखायः प्रभोः संभाव्योपि विरंचि नारद–
शिवस्वायंभुवाद्यै र्न यः ॥
यो वृन्दावन नागरी पशुपति स्त्री भाव लभ्यः कथं
राधामाधव योर्ममास्तु स रहोदास्याधिकारोत्सवः ॥
(राधा सुधा निधि २३६ श्लोक)

श्रीराधा माधव का वह रहस्य दास्याधिकार स्वरूप महोत्सव अर्थात दासी भाव मुझको प्राप्त हो जो साक्षात् श्रीलक्ष्मी जी को भी गोचर नहीं है जिसको आपके सखा वर्ग प्राप्त नहीं कर सके श्रीब्रह्मा, नारद, शिव, स्वायम्भू मनु आदि को जिसकी प्राप्ति की सम्भावना भी नहीं है। यह भाव श्रीवृन्दावन में श्रीगोपीभाव द्वारा श्रीशिव जी को भी बहुत कठिनता से प्राप्त हुआ है।

बोलें बोल अबोल अबोलें डोलें सङ्ग लगी सब तीय।
मन अनुसारिनि आज्ञा कारिनि, विवि तन के तन में मन दीय ॥१६॥

श्रीनिकुञ्ज में सखी गण अहर्निश श्रीस्वामिनी लाल के सङ्ग रहती हैं और अबोल की नाईं बोलती हैं अर्थात उनके इंगित से ही सब सेवा समाधान करती हैं। दोनों के मन के अनुसार आज्ञा पालन करती रहती हैं, हर समय उनके मन में मन दिये रखती हैं।

"यों बोलिये न डोलिये टहल महल की पाय।
श्रीविहारीदास अङ्ग सङ्गनी कहत सखी समझाय ॥
श्वास समझ स्वर बोलिये डोलिये नैन की कोर।
सैननि चैन न पावहीं विहरें युगल किशोर ॥" (श्रीविहारिनि दासजी)

शेश महेश सुरेश गणेश्वर बन्दनहित बांछित पद रेन ।
अज अजहू खोजत नहीं पावत ध्यान मात्र आवत सुहियेन ।।२०।।

श्रीशेशजी, महादेवजी, इन्द्र तथा गणेशजी श्रीप्रिया प्रीतम की बन्दना करने का सौभाग्य प्राप्ति के लिये उनके चरणारविन्दों की रेणु अर्थात व्रजरज की वाँछा करते हैं। श्रीब्रह्माजी को आज पर्यन्त ढूँढने पर भी वह रज ध्यान में भी नहीं आती है। यथा:—

"श्रीराधः प्राणबन्धोश्चरण कमलयो केश शेषाद्यगम्या ।
या साध्या प्रेम सेवा ।" इत्यादि ।। (गोविन्द लीलामृत)

पुनः यथा :—

"तद् भूरि भाग्यमिह जन्म किमप्यटव्याम्
यद् गोकुलेऽपिकत माइघ्रि रजोऽभिषेकम् ।
मज्जीवितं तु निखलं भगवान् मुकन्द
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ।।" (भा:१० स्कः १४ अः ३४ श्लोः)

श्रीब्रह्मा जो कहते हैं :—

"मैं तो यही बड़ भाग्य चाहता हूँ, कि मेरा जन्म इस पृथ्वी पर हो, पृथ्वी पर भी वनों में हो और बनों में भी गोकुल में हो, जहां के उन ब्रजवासियों में से किसी की चरण रेणु मुझ पर पड़े, जिनके प्राण जीवन धन एक मात्र श्रीकृष्ण हैं, जिनके चरणारविन्दों की रज को श्रुतियां आज पर्यन्त ढूँढ रही हैं।।"

यह रस दुर्लभ हूँ ते दुर्लभ सुलभनित्य रहत है ताहि ।
श्रीहरिप्रिया जान जन जिये में हिये में अपनावत जब जाहि ।।२१।।

यह रस दुर्लभ से दुर्लभ है। एक मात्र उन्हीं को सुलभ हो सकता है जिन पर श्रीहरि की प्रिया अर्थात श्रीस्वामिनी जी की कृपा होती है। यथा:-

श्रुतय ऊचु :—

"यथा त्वल्लोकवासिन्यः कामतत्त्वेन गोपिकाः ।
भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाऽजनिनस्तथा ।।"

श्रीकृष्ण उवाच :—

"दुर्लभोदुर्घटश्चैव युष्माकं तु मनोरथः ।
मयानु मोदितः सम्यक् सत्यो भवितु मर्हति ।।"

(वृहद्वामन पुराण)

"सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्य मेव पुनः पुनः ।
बिना राधा प्रसादेन मत्प्रसादो न विद्यते ।"

(नारद पुराण)

वेद की श्रुतियां श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती हैं :—

"जैसे आपके लोक में रहने वाली नित्य सिद्धा गोपिका आप को "रमण" जान कर काम बुद्धि से भजती है, इसी प्रकार हम भी भजन करने की इच्छा करती है ।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले :—

"यद्यपि तुम्हारा यह मनोरथ दुर्लभ तथा दुर्घट है तो भी मैं अनुमोदन करता हूँ यह सत्य हो ।।"

श्रीनारद पुराण में श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं:—

"मैं बार बार शपथ पूर्वक कहता हूँ । श्रीराधिका जी की कृपा हुए बिना मेरी कृपा नहीं हो सकती है ।"

इसीलिये उपरोक्त तुक में वर्णित है यह रस एकमात्र श्रीस्वामिनी जी की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है ।

।। दोहा ।।

मोहन मोहन महल में, स्यामा—स्याम स्वरूप ।
दुलहनि दुल्है मिलि दोऊ, करत विहार अनूप ।।

।। पद ।।

करत बिहार बिपिन सुखधाम । दुलहनि दुल्है स्यायास्माम ।
रंगद रसद रहसि बसुदा पुनि अरु सुनि बिसद बिचित्र अनूप ।।१।।
अमितकला अमृतादि कुंज मधि बिसलत भवन अधिपति भूप ।
ऐश्वर्यादि अखिल ग्रब गंजन रंजन रूप अमित रतिमैंन ।।२।।
नख सिख सुषमा रतनागर बर कल कमनीय कमल दल नैंन ।
अद्वय इकरस अद्भुत अव्यय आनन्दमयी अचित अभंग ।।३।।

परमधाम अभिराम पुरंदर सुंदर स्याम सहचरिन संग ।
नित्य नवीनी नवल लाड़िली नित्यनवीनों नवल सुलाल ॥४॥
नित्य नवीली नवलसहचरी नित्य नवीनों नवल सुख्याल ।
नित्य नवीनी नवलकुंज में नित्य नवीनों नवल सुनेह ॥५॥
नित्य नवीनें उमँगि उमँगि दोउ बरसत नवल नवीनों मेह ।
बिबिध बिनोद बिहारनि जोरी गोरी स्याम सकल सुख रासि ॥
हितु सहचरि श्रीहरिप्रिया हरखत निरखत चरन कमल कें पासि ॥६॥

अब सब तुकों का भिन्न भिन्न अर्थ लिखा जाता है :—

मोहन मोहन महल में श्यामा श्याम स्वरूप ।
दुलहिनि दूलह मिलि दोऊ करत विहार अनूप ॥
करत विहार विपिन सुख धाम । दुलहिनि दूलह श्यामा श्याम ॥

श्रीरसिक दम्पति मोहन करने वाले मोहन महलमें अनेक प्रकार से आनन्द आस्वादन करते हुए विहार करते हैं ।

रंगद, रसद, रहसि, वसुदा पुनि । अरु सुनि विशद, विचित्र, अनूप ॥
अमित कला अमृतादि कुंज मधि । विलसत भवन अधिपती भूप ॥१॥

इस तुक में रंगद, रसद, रहसि, बसुदा विशद, विचित्र, अनूप तथा अमृतादि आठ कुंजो का वर्णन किया गया है । ये आठों कुञ्ज "मोहन महल" के अन्तर्गत हैं । योग पीठ में भी इनका वर्णन किया गया है । यथाः—

"जाजु महल के चौक विच मणि मण्डल रसपुंज ।
ता चहुघाँ सोहनो वनी अष्ट मोहनी कुञ्ज ॥
मङ्गल शयन पर्यन्त लगि सेवा सुख इन माँहि ।
सरस मणि मोहन महल कल्प वृक्ष की छाँहि ॥"

गौर गोविन्द अर्चन पद्धति में भी इसी प्रकार वर्णित है । यथाः—

"अनङ्ग सुख दाख्योऽस्ति कुञ्जस्तस्योत्तरे दले ।
विज्ञेयोऽयं तडिद्वर्णो नाना पुष्प द्रुमावृतः ॥

ललितानन्ददो नित्यमुत्तरे कुञ्ज राजकः ।
गौरो च नामा ललिता तत्र तिष्ठति नित्यशः ॥१॥
ईशान दल आनन्द नामकं कुञ्जमस्तिहि ।
मेघ वर्णं श्रीविशाखा यत्रास्ते कृष्ण वल्लभा ॥२॥
चित्रं पूर्वदले कुञ्जं पद्म किंजल्क नामकम् ।
श्रीचित्रास्वामिनी तत्र वर्तते कृष्ण वल्लभा ॥३॥
आग्नेय पत्रे पूर्णेन्दु कुञ्ज स्वर्णाभ वर्णके ।
इन्दुलेखा वसत्यत्र हरिताल समाङ्गिका ॥४॥
दक्षिणेस्मिन् दले कामलता नामास्ति कुञ्जकम् ।
अत्यन्त सुखदं तप्त जाम्बुनद समप्रभम् ॥
श्रीचम्पकलता तिष्ठत्य मुस्मिन् कृष्णवल्लभा ॥५॥
रक्षोदले श्याम वर्णे कुञ्जे श्रीरंग देविका ।
सुखदारव्ये निवसति नित्यं श्रीहरि वल्लभा ॥६॥
कुञ्जस्ति पश्चिमे दलेऽरुण वर्णः सुशोभनः ।
तुङ्ग विद्यानन्ददो नाम्नेऽति विख्यातिमागता ।
नित्यं तिष्ठति तत्रैव तुङ्ग विद्या समुत्सुका ॥७॥
वायव्यदलके कुञ्जमास्ते हरित वर्णकम् ।
वसन्त सुखदामत्र सुदेवि वर्तते सदा ॥८॥ (गौर गोविन्द अर्चनपद्धति)

(१) उत्तर दल में गोरोचन आभा श्रीललिताजी को सुख देने वाली अनङ्ग सुखदा नामक कुञ्ज है। जिसका वर्ण बिजली सरीखा है। जो विविध प्रकार के पुष्प वृक्षों से सुशोभित है। और जिस में वह नित्य निवास करती हैं।

(२) ईशान दल में मेघ वर्ण "आनन्द" नामक कुञ्ज है उस में कृष्णवल्लभा श्रीविशाखा जी रहती हैं।

(३) पूर्व दल में चित्र वर्ण "पद्मकिंजल्क" नामक कुञ्ज है इसमें कृष्ण वल्लभा श्रीचित्रा सखी रहती हैं।

(४) अग्नि दल में स्वर्णा "पूर्णेन्दु" नामक कुञ्ज है। वहाँ हरिताल वर्ण श्रीइन्दुलेखा जी रहती हैं।

(५) दक्षिण दल में तप्त स्वर्ण वर्ण की अत्यन्त सुख दायक "कामलता" नामक कुञ्ज है। जिसमें कृष्ण वल्लभा श्रीचम्पकलता सखी निवास करती हैं।

(६) नैऋत्य दल में श्याम वर्ण "सुखदा" नाम का कुञ्ज है वहाँ हरिवल्लभा श्रीरङ्गदेवी जी रहती हैं।

(७) पश्चिम दल में अरुण वर्ण की "तुङ्ग विद्या आनन्दद" नामक सुशोभित कुञ्ज हैं। जिस में तुङ्गविद्याजी रहती हैं।

(८) वायु दल में हरित वर्ण "वसन्त सुखदा" नामक कुञ्ज है। जिस में नित्य श्रीमुदेविजी रहती हैं।

ऐश्वर्य्यादि अखिल ग्रब गंजन रञ्जन रूप अमित रति मैन।
नख सिख सुषमा रत नागर वर कल कमनीय कमल दल नैन ॥२॥

ऐश्वर्य्यादि अखिल ग्रब गंजन=आप समस्त ऐश्वर्यादि का गर्व अभिमान रखने वाले लोक पालों के मदों को गंजन करने वाले हैं :—

"स्वयं त्व साम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्य लक्ष्म्याप्त समस्त कामः।
बलिं हरिद्भिश्चिर लोक पालैः किरीट कोटचोडित पादपीठः ॥२१॥
(भा. स्क. ३ अध्याय २ श्लो)

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण तीनों लोकों के अधीश्वर हैं। उनके समान भी कोई नहीं है, उनसे बढ़कर तो कौन होगा। वे अपने स्वतः सिद्ध ऐश्वर्य से ही सर्वदा पूर्ण काम हैं। इन्द्रादि असंख्य लोक पाल गण नाना प्रकार की भेटें भेंट लेकर लालाकर अपने अपने मुकटों के अग्रभाग से उनके चरण रखने की चौकी को प्रणाम किया करते हैं।

रंजन रूप अमित रति मैन।=अनन्त कोटि काम देव तथा उनकी स्त्री रति के रूप को भी आप रंजन करने वाले हैं। यथा—

"कन्दर्प कोटचर्बुद रूप शोभा नीराज्य पादाब्ज नखांचलस्य।
कुत्राप्यदृष्ट श्रुत रम्य कान्तेर्ध्यानं परं नन्द सुतस्य वक्ष्ये ॥" (गौतमीय तंत्र)

श्रीकृष्ण जैसी रूप माधुरी न कहीं देखी न सुनी। उनकी सुन्दरता का तो हम क्या वर्णन करें उनके चरणारविन्द के नख कोर की शोभा पर ही करोड़ों, अर्वों काम देवों को न्योछावर करके फेंक दें।

नख शिख सुखमा रतनागर वर कल कमनीय कमल दल नैन। कमल दल नैन=श्रीश्याम सुन्दर कल कमनीय=मधुर भाषी। रत नागर वर=रति विलास में चतुर

शिरोमणि अर्थात् धीर ललित हैं। आपके श्रीचरण नख से शिखा पर्यन्त आनन्द स्वरूप हैं।

अद्वय इक रस अद्भुत अव्यय, आनन्द मयी अचिन्त्य अभङ्ग।
परम धाम अभिराम पुरन्दर, सुन्दर श्याम सहचरिन संग ॥३॥

अद्वय :—

"वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥" (भा. स्क. १ अ. २ श्लो. ११)

तत्ववेत्ता लोग ज्ञाता और ज्ञेय के भेद से रहित अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण को ही तत्व कहते हैं। उन्हीं को कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और कोई भगवान के नाम से पुकारते हैं।

इकरस :—

"एक एवायं रसो द्विधा भिन्नो राधा कृष्णरूपाभ्याम्" (साम रहस्योपनिषद्)
एक ही रस "राधा कृष्ण" इन दो स्वरूपों से नित्य विराज मान है।

अद्भुतः—क्षण क्षण प्रति नवीन। यथाः—

"वन्दे मदन गोपालं कैशोरा कारमद्भुतम् ॥" (पद्म पुराण)

पुनः यथाः—

"सदैक रूपोऽपि स विष्णुरात्मनस्तथा–स्वभक्त र्जनयत्यनुक्षणम्।
विचित्र माधुर्य्य शतं नवं नवम् तयास्व शक्तचेतर दुर्वितर्क्यम् ॥"
(वृहद्भागवतामृत ख. २ अ. २ श्लो १८)

मैं श्रीमदनगोपाल जी को अभिवादन करता हूँ। जो कैशोराकृति तथा अद्भुत हैं।

श्रीभगवान सदा एक स्वरूप होते हुए भी अपने तर्क के अगोचर स्वरूप शक्ति से अपनी तथा अपने भक्तों को सैकड़ों विचित्र माधुरियों को क्षण क्षण में नई नई प्रकट कराते रहते हैं। इसी को अद्भुत कहते हैं।

अव्ययः—अविनाशी। यथाः—

"त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥" (भा. स्क. १० अ. १० श्लो. ३०)

आप ही समस्त प्राणियों के शरीर, प्राण, अन्तः करण और इन्द्रियों के स्वामी

हैं। तथा आप ही सर्व शक्तिमान काल सर्वव्यापक एवं अविनाशी ईश्वर हैं।

आनन्दमयीः-- यथाः--

"आनन्द मूर्तिमजहादति दीर्घ तापम्॥ (भा. स्क. १०. अ. ४८ श्लो. ७)

आनन्द मूर्ति श्रीकृष्ण को अपने हृदय से लगाकर उस (कुब्जा) ने दीर्घ काल से बढ़े हुए विरहताप को शान्त किया।

अचिन्त्यः--यथाः—

"स एव कृष्ण वार्ष्णेयः पुराण पुरुषो विभुः।
आस्ते हरिरचिन्त्यात्मा क्रीड़न्निव महाभुज॥" [महाभारत]

श्रीमार्कण्डेय जी श्रीयुधिष्ठिर जी से कहते हैं :—

हे महाभुज! जिन्होंने मुझको बर दिया था वह ही पुराण पुरुष, व्यापक, वृष्णी नन्दन श्रीकृष्ण हैं जिनका स्वरूप अचिन्त्य है।

अभङ्गः—जिनका विहार कभी भङ्ग नहीं होता है। नित्य है। यथाः—

"एको देवो नित्य लीलानुरक्तः" [पुरुषबोधनी]

परम धाम अभिराम पुरन्दर, सुन्दर श्याम सहचरिन सङ्ग॥

परम धाम अभिराम=यथाः—

"वनं वृन्दावनं नामह्यनादि निधनं मतम्।
नित्य क्रीड़ा रतस्तत्र गोपिभिर्गोपवेश भृत्॥" [आदि पुराण]

जिसको उत्पत्ति तथा नाश नहीं है ऐसे नित्य वृन्दावन में गोपरूप धारी श्रीकृष्ण गोपियों के साथ निरन्तर क्रीड़ा करते हैं।

पुरन्दर, सुन्दर श्याम=यथाः--

"किशोरौ गौर श्यामांगौ कोटि कन्दर्प मोहनौ।
राधा कृष्णावितिख्यातौ वेणुना चिन्हितौ नुमः॥" [वृहद गौतमीय तन्त्र]

मैं गौर श्याम किशोर स्वरूप श्रीराधा कृष्ण की स्तुति करता हूँ जिनकी रूप माधुरी करोड़ों काम देवों को मोह न करने वाली है। जिनकी पहिचान वेणु है।

सहचरिन संग=यथा:--

"मुख्याष्ट सखीभिर्युक्तौ गोपिकाशत यूथपौ ।
राधाकृष्णावहं वन्दे रास मण्डलमध्यगौ ।।"

जो अष्ट प्रधाना तथा और सैकड़ों सखियों के यूथों सहित रास विलास करते हैं उन श्रीप्रिया प्रीतम की हम वन्दना करते हैं ।

नित्य नवीनी नवल लाड़िली, नित्य नवीनों नवल सुलाल ।
नित्य नवीनी नवल सहचरी । नित्य नवीनों नवल सुख्याल ।।४।।
नित्य नवीनो नवल कुञ्ज में नित्य नवीनों नवल सुनेंह ।
नित्य नवीने उमगि उमगि दोउ, वर्षत नवल नवीनों मेह ।।५।।

उपरोक्त दोनों तुकों में श्रीप्रिया प्रीतम, सखी, वृन्दावन कुञ्ज, उनका नित्य विहार तथा परस्पर का नेह आदि सब नवीन नवीन वर्णन किये गये हैं । यद्यपि यह सब चिन्मय एक रस है तो भी ये सब अनुराग स्वरूप होने के कारण क्षण क्षण में नये नये अनुभव होते रहते हैं । अनुराग के लक्षण ये हैं । यथा:--

"सदानुभूतमपियः कुर्वन्नव नवं प्रियम् ।
रागो भवन्नव नवः सो अनुराग इतीर्यते ।।" [उज्ज्वल नीलमणि]

अनुराग एक राग की ही गाढ़ अवस्था का नाम है जिसमें अपनी प्रिय वस्तु क्षण क्षण में नवीन नवीन प्रतीत होती हैं ।

विविध बिनोद विहारिनि जोरी गोरी श्याम सकल सुखराशि ।।५।।
हितु सहचरि 'श्रीहरिप्रिया' हर्षंत, निरखत चरन कमल के पासि ।।६।।

सकल सुख राशि गौर श्याम जोरी विविध प्रकार के विलासों में लगी हुई हैं श्रीहितु सहचरि और श्रीहरिप्रिया आपके चरण कमलों के निकट रहकर आपकी नित्य लीलाओं को देख देख कर हर्षित होती रहती हैं ।

।। अनुरागिनि विश्वाभा मध्याभास ।।

।। दोहा ।।

जै श्रीराधा रसिक रस, मंजरि पिय सिरमौर ।
रहसि रसिकिनी सखी सब, वृन्दावन रस ठौर ।।

॥ पद ॥७॥

जयति जय राधिका रसिक रस-मंजरी,
रसिक सिरमौर मोहन बिराजै ॥
रसिकिनी रहसि रसधाम वृन्दाविपिन
रसिक रसरसी सहचरी समाजै ॥
रसिक रस प्रेमसिंगार रंग रँगि
रहे रूप आगार सुखसार साजै।
मधुर माधुर्य सौंदर्यतावर्य पर
कोटि ऐश्वर्य की कला लाजै ॥१॥
नित्य नव नायका नित्य सुखदायका
नित्य नवकुंज में नित्य राजै।
नित्य नव केले नव नित्य नायक नवल
नित्य नव निपुनता भव्य भ्राजै ॥२॥
कसिब कौसेय कोमल कमल कनक दुति
चिकुर मेचक मुरित छुरति छाजै।
दिव्य आभूषना भूषिता भामिनी
अद्भुतानन्ददा जै सदा जै ॥३॥
चंचला लोचनी चातुरा चितहरा
चारुभा चंद्रिका चंद्रका जै।
सच्चिदानंद की सिद्धिदा सक्ति स्यामा
सुधामा सुधादा सुभाजै ॥४॥
चातिक कृष्ण की स्वाति की वारिदा
वारिदा रूपगुन गर्विताजै।
मान मद मोचनी रोचनी रतिकला
रत्नमनि कुंडला जगमगाजै ॥५॥

प्रान प्रीतम प्रिय प्रीतमा प्रेयसी
पद परम पांसु पावन कराजैं।
परम रस बर्षिनी कर्षिनी चित्त पिय
नित्य हित हरषनी श्रीहरिप्रिया जैं ॥६॥७॥

अनुरागिनी विश्वाभा मध्याभास=विभास राग। यथाः—
"विश्वाभा विभास कहिये कल" (तालिका)

जय श्री राधा रसिक रस मंजरि पिय शिर मौर।
रहसि रसिकिनी सखी सब वृन्दावन रस ठौर ॥

जयति जय राधिका रसिक रस मंजरी रसिक शिर मौर मोहन बिराजैं।
रसिकिनी रहसि रस धाम वृन्दाविपिन रसिक रस रसी सहचरि समाजैं ॥

उपरोक्त दोहे तथा तुक में चारतत्व—श्रीप्रिया, प्रीतम, सखी तथा वृन्दावन को रस रूप से वर्णन किया गया है। यथाः—

"येऽयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धर्देहश्चैक क्रीड़नार्थं द्विधाऽभूत इति"
(राधा तापिन्युपनिषद्)

"ये यं राधा यश्च कृष्ण रसाब्धिर्देहे नैकः क्रीडार्थं द्विधाऽभूत" (राधोपनिषद्)

"एक एवायं रसोद्विधा भिन्नो राधा कृष्ण रूपाभ्याम्" (सामरहस्योपनिषद्)

"स रसो रस्यते नित्यं तदीयैस्तु सखी जनैः।
तयोरेवानुरूपैश्च प्रेमानन्दैक विग्रहैः ॥" (श्रीयुग्म तत्व समीक्षा-भावमयूख)

"नित्यं वृन्दावनं नाम नित्य रास रसोत्सवम्।
अदृश्यं परमं गुह्यं पूर्ण प्रेम रसात्मकम् ॥ (पद्मपुराण पाताल खं. वृन्दा.भा.)

पुनः यथाः—

"धर्म स्थानं त्वयोध्याख्यं श्रीरङ्गं मुक्ति साधनम्,
द्वारका भक्ति कृत् प्रोक्ता रसस्थानं तु माथुरम् ॥" (वृहद् ब्रह्म संहिता)

श्रीअयोध्या जी धर्मस्थान, श्रीरंग क्षेत्र मुक्ति साधन, श्रीद्वारिका जी भक्ति स्थान तथा श्रीमथुरा जी रसस्थान हैं। यहाँ मथुरा को रस स्थान वर्णित किया गया है

वृन्दावन मथुरा का भी सार स्वरूप है। इसलिये यह भी रस स्वरूप है।

श्रीराधा और कृष्ण दोनों एक ही रस के समुद्र हैं केवल क्रीड़ा करने के लिये दो रूप हो गये हैं।

यह रस उन सखि जनों में नित्य विराजमान है, जिनके विग्रह भी प्रिया प्रीतम के सदृश प्रेमानन्द स्वरूप है।

नित्य वृन्दावन जहाँ रास आदि नित्य उत्सव होते रहते हैं जो स्थान पूर्ण प्रेम रसात्मक अत्यन्त गुह्य तथा अदृश्य है।

उपरोक्त प्रमाणों से चारों तत्व-प्रीया, प्रीतम, सखी तथा वृन्दावन रस स्वरूप हैं। यह सिद्ध हुआ। अब श्रीप्रिया प्रीतम तथा सखी रसिक हैं यह वर्णन करते हैं।

यथा:—राधा कृष्णा वहं वन्दे रस रूपौ रसायनौ।
वृन्दावन निकुञ्जेषु नित्य लीला समाश्रितौ॥ (म. बा. सु. सुख)

मैं उन श्रीप्रिया प्रीतम का अभिवादन करता हूँ जो रस रूप तथा रस आलय एवं रस आलम्बन स्वरूप हैं। और जो वृन्दावन निकुञ्जों में नित्य विहार करते हैं। उपरोक्त प्रमाण से श्रीलाल ललना की रसिकता प्रमाणित होती है।

क्योंकि सब सखियाँ श्रीस्वामिनी जी की कायव्यूह रूपा हैं इसलिये यह सब भी रसिकनी हैं। यथा:—

"अस्या एव कायव्यूह रूपा गोप्यो"। (राधिकोपनिषद्)

पुनः यथा:—

"रस सागर पार धोरणीं। रस रूपामृत चन्द्र तोरणीम्॥
सर स्मित हास्य वादिनीं। सरसां रासकरीं भजामहे॥
(म. बा. सखी नाम रत्नावली स्त्रोत्र)

हम सरसा नामक रास करी सखी को भजते हैं जो श्रीप्रिया प्रीतम को रस रूपी समुद्र से पार ले जाने में समर्थ है और जो रस रूप अमृत चन्द्र के वहिर्द्वार स्वरूपा है अर्थात श्रीलाल ललना सम्बन्धी रस इन्हीं के द्वारा प्रकट हुआ है। इसलिये सब सखियाँ भी रसिक हैं।

रसिक रस प्रेम श्रृंगार रंगि रंगि रहे रूप आगर सुख सार साजें।

श्रीलालजू रस सिंगार स्वरूप तथा श्रीप्रियाजू प्रेम स्वरूपा हैं। यथा:—

प्रीतिखि मूर्तिमती रस सिंधोः सारसंपदिव विमला ॥
वैदग्धीनां हृदयं काचन वृन्दावनाधि कारिणी जयति ॥"
रस घन मोहन मूर्ति विचित्र केलि महोत्सवोल्ल सितम्।
राधा चरण विलोडितरुचिर शिखण्डं हरिं वन्दे ॥
राधा. सुः नि. श्लो. १९९-२००)

कोई एक अनिर्वचनीय श्रीवृन्दावन अधिकारणी स्वामिनी जी की जय हो ! जो साक्षात् मूर्तिमान् प्रीति रस रूपी सागर की विमल शोभा सम्पत्ति तथामहा चतुरा श्रीललितादि सखियों की हृदय रूपा हैं मैं उन श्रीहरि की वन्दना करता हूँ जो मूर्तिमान रस घन मोहन स्वरूप हैं जिनमें अनेक प्रकार के केलि महोत्सव उल्लसित हो रहे हैं इसी कारण से जिनका सुन्दर मुकट श्रीप्रिया जी के चरणार विन्दों में लुढ़क रहा है।

मधुर माधुर्य सुन्दर्यता वर्य पर, कोटि ऐश्वर्य्य की कला लाजें।

श्रीकृष्ण में पूर्ण ऐश्वर्य्य भगवत्ता पूर्ण माधुर्य्य भगवत्ता है। ऐश्वर्य्य भगवत्ता के ये छः गुण हैं। यथाः—

"ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्योश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥ (विष्णुपुराण)

जिनमें समग्र ऐश्वर्य्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य होता है उनको भगवान कहते हैं।

माधुर्य्य भगवत्ता। यथा :—

मोहनं कर्षणं रूपं वल वैदग्धमेव च।
अभिलाषोपपन्नत्वं षण्णांभग इतीङ्गना ॥ (पुराणान्तर)

माधुर्य्य भगवत्ता के ये छः गुण हैं :—मोहन, कर्षण, रूप सौन्दर्य, वल, चातुर्य, और सब अभिलाषाओं का प्राप्त होंना। ये सब गुण सब भगवत् अवतारों में विद्यमान है परन्तु निम्नलिखित चार गुण श्रीकृष्ण में ही हैं।

पुनः यथा:—

लीला प्रेमा च प्रेष्ठत्वं माधुर्य्यं वेणु रूपयोः।
इत्य साधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम् ॥(भक्तिरसामृत सिन्धु)

लीला माधुर्य, प्रेम माधुर्य, वेणु माधुर्य तथा रुप माधुर्य यह श्रीगोविन्द के असाधारण चार माधुर्यं गुण हैं।

ग्रन्थकार कहते हैं कि उपरोक्त माधुर्य गुणों की सौन्दर्यता पर उपरोक्त कोटि ऐश्वर्य्य भगवत्ता के गुणों को न्यौछावर किया जा सकता है।

नित्य नव नायिका नित्य सुख दायिका नित्य नव कुंज में नित्य राजैं।
नित्य नव केलि नव नित्य नायक नवल नित्य नव निपुनता भव्य भ्राजैं ॥२॥

नित्य नव नायिका अर्थात् श्रीस्वामिनी जी अपने श्रीलाल, सहचरी गण तथा और वृन्दावन के समस्त स्थवर जङ्गम जीवों को सुख प्रदान करती हुई नव नित्य कुञ्ज में सुशोभित हैं। नित्य नव नायक अर्थात् श्रीलाल जी नित्य नई नई केलि करते हुए अपनी नित्य नई निपुनता को सुन्दर रीति से प्रकाश कर रहे हैं।

कसिव कौशेय कोमल कमल कनक द्युति,
चिकुर मेचक मुरित छुरित छाजैं।
दिव्य आभूषना भूषिता भामिनी,
अद्भुतानन्द दा जय सदा जय ॥३॥

कसिव कौशेय=कषिव कौशय अर्थात् लालरेशमी वस्त्र।

कोमल कमल कनक द्युति=कोमल स्वर्ण कमल सदृश सरीकी अङ्ग कान्ति।

चिकुर=केश याश। मेचक=श्याम रङ्ग के। मुरित=घुँघुँरारे। छुरित छाजैं= खुले हुए अत्यन्त सुशोभित। दिव्य=जो कभी मंले नहीं होते हैं।

आभूषना भूषिता भामिनी=श्रीस्वामिनी जी आभूषनों से भूषित।

अद्भुतानन्द दा जय सदा ज्य=अद्भुत आनन्द (नित्य नवीन आनन्द) देने वाली की जय हो।

अर्थात उन स्वामिनी जी की सदा जय हो जो लाल रेशमी वस्त्र धारण किये हुए हैं। जिनके अङ्ग की कान्ति कोमल स्वर्ण कमल शदृस है। जिनके श्याम घुँघरारे केश पास खुले हुए हैं। जो दिव्य आभूषनों से भूषित हैं तथा नित्य नवीन आनन्द की प्रदाता हैं।

चञ्चला लोचनी चातुरा चित हरा, चारु भा चन्द की चन्द्रिका जय ॥

श्रीस्वामिनी जी की सदा जय हो जो अपने रस आविष्ट सुन्दर नेत्र कमलों से श्रीलाल जी के चित्त को हरण कर रही हैं ।

आप लाल जी स्वरूप चन्द्र की सुन्दर चन्द्रिका अर्थात् चाँदनी हैं । यथाः—

यथा च चन्द्रिका चन्द्रे प्रभा भानौ हुताशने ।
यथा मधुरिमा नीरे स्पर्शनं मारुते यथा ।।
गन्धः पृथिव्यामनघो राधिकेयं तथाहरौ । (वृहद् ब्रह्मसंहिता)

जैसे चन्द्रमा को चाँदनी, सूर्य को किरण, जल को मधुरिमा वायु को स्पर्श तथा पृथ्वी को गन्ध छोड़कर नहीं रह सकती है इसी प्रकार श्रीलाल जी को छोड़कर श्रीस्वामिनी जी नहीं रह सकती हैं ।

सच्चिदानन्द की सिद्धि दा शक्ति श्यामा सुधामा सुधादा सुभा जय ।।४।।

सच्चिदानन्द की सिद्धि दा शक्ति=यथाः—

इच्छा शक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रिया शक्तिस्तवेशितुः ।
तवांशमात्र मित्येषा मनीषा मे प्रवर्तते ।।
कृष्णस्य सभवन्त्यस्या रूपं परम तुष्टये । (पाद्मे पाताल खण्डे)

श्रीनारद जी श्रीप्रियाजी की स्तुती करते हुए कहते हैं:—

"श्रीकृष्ण की इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति तथा क्रिया शक्ति आपके ही अंश स्वरूपा हैं । आपका परम मनोहर स्वरूप श्रीकृष्ण को पूर्ण रूप से सुख प्रदान करने वाला है ।"

श्यामा=श्रीप्रिया जी सुधामा=सुन्दर धाम—वृन्दावन सुधा दा=अमृत रूपा प्रेम प्रदान करने वाली अथवा श्रीलालजू को अधर सुधा पान कराने वाली ।

सुभा=मङ्गल कारी ।

सुन्दर धाम श्रीवृन्दावन में विराजमान मङ्गल कारी श्रीस्वामिनी जी की जय हो । श्रीलालजू यद्यपि सच्चिदानन्द स्वरूप हैं तो भी श्रीप्रिया जू अपना अधर सुधा पान कराकर उनको सब प्रकार की शक्तियों की सिद्धि प्रदान करती हैं ।

चातकी कृष्ण की स्वाति की वारिदा वारि धा रूप गुन गर्विता जय ।

चातकी कृष्ण की=यहाँ चातकी स्त्रीलिङ्ग नहीं हैं चातक धर्मावलम्बी कृष्ण से तात्पर्य है ।

स्वाँति की वारिदा=स्वाँति नक्षत्र के जल की वर्षा करने वाली अर्थात श्रीस्वामिनी जी। वारिधा रूप गुन=रूप गुन की समुद्र स्वरूपा अर्थात श्रीप्रिया जी।

गर्विता=गर्वीली।

उपरोक्त तुक में लालजू को चातक श्रीस्वामिनी जो को स्वाँति नक्षत्र के जल की वर्षा करने वाली वर्णन किया गया है। श्रीलालजी धीर ललित नायक हैं इसलिये श्रीप्रिया जी के आधीन होना इनका स्वाभाविक धर्म है। यथाः—

विदग्धो नव तारुण्यः परिहास विशारदः।
निश्चिन्तो धीर ललितः स्यात्प्रायः प्रेयसीवश ॥ (भक्तिरसामृत सिंधु)

जो नायक रसिक शिरोमणि, नव कैशोर, हास्य परिहास्य में चतुर चिन्ता रहित तथा प्रायः अपनी प्रिया के अधीन रहता है उसको धीर ललित नायक कहते हैं।

अर्थात श्रीप्रियाजी चातिकी लालजू की स्वाति के जल स्वरूपा हैं। रूप गुणों की समुद्र स्वरूपा तथा श्रीलालजू सरीखे प्यारे को पाकर गर्विता हैं। यथा—

"लाड़िली लाल के मद माती गज गति लियें डोलें।
मरकतमनि के अहल महल में चरन धरति हौलें होलें।"

इत्यादि (मा. सु. सु.)

मदन मद मोचनी रोचनी रतिकला रतन मणि कुण्डला जगमगा जय।

श्रीस्वामिनी जी जिनके कानों में रत्न मणि कुण्डल जगमगा रहे हैं मदन के मद को खण्डन करने वाली तथा सुरति केलि की शोभा बढ़ाने वाली हैं।

प्राण प्रीतम प्रिया प्रियतमा प्रेयसी पद पद्म पांसु पावन करा जय।
परम रस वर्षिनी कर्षिनी चित्त पिय नित्य हिये हर्षिनी श्रीहरिप्रिया जय ॥

प्राण प्रीतम प्रिया प्रियतमा प्रेयसी=यथाः—

"प्रेम प्राणाधिदेवी च पञ्चप्राण स्वरूपिणी।
प्राणाधिक प्रियतमा सर्व्वाद्या सुन्दरी परा ॥" (ब्रह्म वैवर्त पुराण)

श्रीराधिकाजी श्रीकृष्ण के प्रेम तथा प्राण अधिष्ठातृ देवी हैं। यह इनके पाञ्च प्राण स्वरूपा तथा प्राणों से भी अधिक प्यारी हैं। यह सब शक्तियों की आदि श्रेष्ठ सुन्दरी हैं।

पद पद्म पांसु पावन करा जय=श्रीचरण कमल को रज से पवित्र करने वाली

यथाः—"वन्दे नन्द ब्रज स्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरि कथोद्गीतं पुनाति भुवन त्रयम् ।।"
(भा: १० स्क. ४७: अ: ६३ श्लो.)

श्रीउद्धव जी कहते हैं कि मैं श्रीनन्द ब्रज में रहने वाली गोपाङ्गनाओं की चरण धूलि को बारंबार प्रणाम करता हूँ जिनकी गाई हुई हरिकथा तीनों भुवनों को पवित्र करती है ।

ब्रज गोपिकाओं की चरण धूलि को जब यह महिमा है तो श्रीप्रियाजी का कहना ही क्या है ।

परम रस बर्षिनी कर्षनी चित्त पिय । नित्य हिय हर्षनी श्रीहरिप्रिया जय ।।

श्रीप्रिया जो रस बर्षन करने वाली श्रीलालजी के चित्त को आकर्षण करने वाली तथा नित्य प्रशन्न रहने वाली हैं : यथाः—

"जयति रस वर्षनी चित्त आकर्षनी,
नित्य हिय हर्षनी मम शरण्या । (म: वा. उ. सु. ११०) (जयति)

।। दोहा ।।

दर्प करैं दलमल सबैं, को कंदर्प करोरि ।
घनस्यामल गोरी सहज, बनी मोहनी जोरि ।।

।। पद ।।

बनी मोहनी जोरि घनस्याम गोरी महासोहनी रूप गुन की अगाधा ।
नित्य नवकुंज आनंद के पुंज में मंजु क्रीडा करैं कृष्णराधा ।।१।।
सर्व सुख सींव दोउ ग्रीव भुज मेलि कें करत हैं केलि नवरंग रंगे ।
पल जु बिछुरें परें कल न जिय ललनकें उमँग अंग अङ्ग सदा एक संगे ।।२।।
अष्ट सहचरिन के बिना परकर यहाँ और सहचरिन कौ नहिं प्रवेसा ।
काल गुन रहित निजधाम वृन्दाविपिन पर्म अभिरामता कौ सुदेसा ।।३।।
दिव्यअद्भुत नगनि जगमगति जगति अति अमित अंसमानके अंस लाजें ।
कोटि कंदर्प के दर्पदलमल करें गर्व गोलोक के सर्ब भाजें ।।४।।

रसिक जन उरसि अनुराग की बर्धिनी मुक्ति सारिष्ट पर सुखकी दाता।
सकल अंसादि अवतार की सेव्य श्रीस्यामस्यामा सुजोरी विख्याता ॥५॥
चतुर चूड़ामनी चारु चद्राननी चित्तहर चमत्कारें अपारें।
जिनहिं दिव्य दृष्टि ए देत करिकें दया तेई जाथार्थ इनि कौं निहारें ॥६॥
अज्ञ जन होइ आसक्त सुख जक्त अव्यक्त निजधाम कल्पित बखानें।
सच्चिदानन्द रस अमृत कों त्यक्त करि अन्य यातें कछु अधिक मानें ॥७॥
कर्म अरु ज्ञान करिकें सदा दुर्ल्लभा सुल्लभा पराभक्तिहि प्रकासी।
हितू श्रीहरिप्रिया की कृपा-दृष्टि सों निकट निरखें तहाँ नित्यदासी ॥८॥

भिन्न भिन्न तुकों की व्याख्या करते हैं। यथा:—

दर्प करै दलमल सबै को कन्दर्प करोरि।
घन श्यामल गोरी सहज बनी मोहनो जोरि ॥

बनी मोहनी जोरि घनश्याम गोरी महा मोहनी रूप गुन की अगाधा।
नित्य नव कुञ्ज आनन्द के पुञ्ज में, मञ्जु क्रीड़ा करैं कृष्ण राधा ॥
सर्व सुख सींव दोउ ग्रीव भुज मेलि के करत हैं केलि नव रङ्ग रङ्गे।

रूप गुन अगाध श्रीप्रिया प्रीतम की महामोहनी नित्य जोड़ी है यह दौंनों परस्पर गलबैयाँ दिये हुऐ नित्य नव कुञ्ज में आनन्द पूर्वक सुरति केलि करते हैं। इनकी रूप माधुरी करोड़ों कामदेवों को मोहन करने वाली है। यथा:—

किशोरौ गौर श्यामांगौ कोटि कन्दर्प मोहनौ।
राधा कृष्णाविति ख्यातौ वेणुना चिह्नितौ नुमः ॥ (वृहद्गौतमीय तन्त्र)

मैं उन गौर श्याम श्रीप्रिया प्रीतम का स्तव करता हूँ। जिनकी रूप माधुरी करोड़ों कन्दर्पो को मोहन करने वाली है जिनकी चिन्हार वेणु है अर्थात जो वेणु द्वारा ही पहचाने जाते हैं।

पल जु बिछुरें परें कल न जिय ललन कैं।
उमङ्ग अङ्ग अङ्ग सदा एक संगे ॥

यथा:—

श्रीराधिका कृष्ण युगं सनातनं नित्यैक रूपं विगमादि वर्जितम्।

यद्वज्जलोल्लोल युगं मिथोरतं सद्गोचरं यावद वान्नु यान्तुतु ।।
(औदुम्बर संहिता)

जैसे जल तरंग अलग अलग दिखाई देते हैं। वस्तुतः वह पृथक नहीं है। इसी प्रकार श्रीप्रिया प्रीतम का स्वरूप नित्य सनातन युगल है। वह दोनों परस्पर आसक्त हैं उनमें कभी विच्छेद नहीं है। इनकी प्राप्ति एक मात्र महत् कृपा से ही हो सकती है। अन्यथा नहीं।

पुनः यथाः—

"विच्छेदाभासमानादहह निमिषतो गात्र विस्रंसनादौ।
चंचत्कल्पाग्नि कोटिज्वलितमिव भवेद्बाह्यमभ्यंतरं च ।।
गाढ स्नेहानु बंधग्रथितमिव तपोरद्भुत प्रेममूर्त्यो।
श्रीराधामाधवाख्यं परमिह मधुरं तद्वयं धाम जाने ।।"
(श्री रा. सु. नि. श्लो. १७३)

हम यह बात जानते हैं कि प्रेम मूर्ति परम मधुर श्रीराधा माधव के स्वरूप गाढ़ स्नेह से ग्रथित हुए हैं इसलिये यदि कभी श्रीअङ्ग की शिथिलता से निमष काल भी विच्छेद का आभास हो जाय तो प्रलय कालीन कोटि अग्नि की ज्वाला की तरह बाहर भीतर श्रीअङ्ग जलने लग जाते हैं।

अष्ट सहचरिन के बिना परिकर यहाँ और सह चरिन को नाहि प्रवेशा।

योगपीठ में श्रीप्रिया प्रीतम ललितादि और सहचरी तथा उनके परिकरों का ही वर्णन है। यहाँ अन्य अन्य सखियों का प्रवेश नहीं हैं। जैसा कि वृहद् गौतमीय तन्त्र में वर्णित है। यथाः—

"मध्ये च राधिकाकृष्णौ गौर श्यामौ सुशोभनौ।
गुरुं च दक्षिणे पार्श्वे पूर्वे च ललितां सखी ।।
विशाखां दक्षिणे पूर्वे दक्षिणे चम्पकी लताम्।
दक्षिणे पश्चिमे चित्रां तुङ्गविद्यां च पश्चिमे ।।
पश्चिमोत्तरयोः स्थाप्य इन्दुलेखां सुशोभनाम्।
उत्तरे रङ्गदेवीञ्च ह्यष्टमी तु सु देविकाम ।।
उत्तरेन्द्र दिशायाञ्च राजतीं सहसाम्बिकाम्।

इत्यष्टौ च सखीमुख्यास्तस्यांतस्यां सखीस्तथा।
प्रसन्नास्याः प्रपश्यन्तो भ्राजमाना सर्वतो दिशम्॥

इसी प्रकार सखियों का तत् तत् दिशाओं में श्रीमहावाणी सिद्धान्त सुख वृन्दावन योगपीठ में वर्णन किया गया है। केवल वृहद्गौतमीय तन्त्र में श्रीप्रिया प्रीतम के दक्षिण पार्श्व में गुरु रूपा सखी का वर्णन किया गया है। श्रीमहावाणी में यह उल्लेख नहीं है।

यथाः—आँगन मोहन महल के मोहन मण्डल मञ्जु।
ता ऊपर अठ कौंन को सुख सिंहासन रञ्जु॥
कौंन कौंन प्रत्येक इक प्रिय प्रमदागन संग।
रुचि अनुसारहि सेवहीं उर अनुराग अभङ्ग॥
उत्तर श्रीरङ्ग देवि जू दिशि ईशानु देसुवि।
पूरब श्रीललिता सखी अग्नि विशाखा सेवि॥
दक्षिण चम्पक लतिका चित्रा नैऋत पेखि।
पश्चिम तुङ्ग विद्या सखी वायु कोण इन्दुलेखि॥(म.सि.सु.योगपीठ)

उपरोक्त से यह सिद्ध होता है कि श्रीनित्य वृन्दावन में श्रीरङ्ग देवि आदि आठ सखियों तथा उनके परिकरों को छोड़कर और सखियों का प्रवेश नहीं है।

काल गुन रहित निज धाम वृन्दाविपिन।
परम अभिराम ताको सुदेशा॥

पद्म पुराणे यथाः—

"नित्य वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थितम्।
पूर्ण ब्रह्म सुखैश्वर्यं नित्यमानन्द मव्ययम्॥"

श्रीवृन्दावन का स्वरूप नित्य आनन्द मय तथा अविनाशी है इसलिये यह काल गुण से रहित है। यह वृन्दावन सब ब्रह्माण्डों के ऊपर स्थित है तथा पूर्ण ब्रह्म सुखैश्वर्य युक्त है।

दिव्य अद्भुत नगनि जग मगति जगति अति अमित अंशुमान के अंशुलाजें।

श्रीवृन्दावन रतन जटित है अनन्त सूर्य नारायणों की किरणें इसकी जग मगाट को देख कर लज्जा को प्राप्त होते हैं। यथाः—

एक योजन विस्तीर्णः कुञ्जः सर्व समृद्धिमान ।
महामरकतैर्युक्तौ मुक्ता मणि द्रुमा कुलः ।।
श्वेत पीतोत्पलै रत्नैरचितश्चदलादिभिः ।। (स. कु. सं पटल ३१)

श्रीवृन्दावन का विस्तार एक योजन है जिसकी सब कुञ्जें महा मर्कत मणी, मुक्ता मणि, के वृक्षादियों से सुशोभित हैं । श्वेत, पीत, उत्पल आदि रत्नों के दलों से रची हुई है ।

कोटि कन्दर्प के दर्प दलमल करै,

श्रीवृन्दावन की सुन्दरता करोड़ों कामदेवों को सुन्दरता के दर्पों को खण्डन करने वाले । यथाः—

वनं वृन्दावनं नाम नव पल्लव मण्डितम् ।
कोकिल भ्रमरा रावं मनोभव मनोहर ।। (पाद्मे पाताल खण्डे वृन्दावन मा.)

श्रीवृन्दावन नामक वन नव पल्लवों से सुशोभित है जहाँ कोयल मधुर मधुर स्वर से गान कर रही है । जिसकी सुन्दरता काम देव के मन को भी हरने वाली है ।

गर्व गोलोक के सर्व भाजै ।

"गतो राधा पतिस्थानं यत्सिद्धैरप्यगोचरम् ।
ततश्च तदुपादिष्टो गोलोकादुपरिस्थितम् ।।
नित्यं वृन्दावनं नाम नित्य रास रसोत्सवम् ।
अदृश्यं परमं गुह्यं पूर्ण प्रेम रसात्मकम् ।।" (पाद्मे पाताल खंडे वृ. मा.)

(अर्जुन) उस नित्य वृन्दावन में गया जो सिद्धों को भी अगोचर है । जो गोलोक से भी ऊपर विराजमान है जहाँ नित्य रास रसोत्सव होते रहते हैं जो धाम अदृष्य गुह्य से गुह्य तथा पूर्ण प्रेम रसात्मक है ।

उपरोक्त प्रमाण से श्रीवृन्दावन की गोलोक से भी श्रेष्ठता सिद्ध होती है ।

रसिक जन उरसि अनुराग की वर्द्धिनी, =

श्रीग्रन्थकार सहज सुख में इसी विशय की पुष्टि करते हैं ।

"सदा यह राज करो वलिजाऊँ । दम्पति कौ सुख सहज स्नेह ।।
सु मङ्गल दा मन मोद प्रदा रस दायक । लायक सुधा के सों मेह ।।

जिवावनि जो उप जोवन के उर आनन्द वेलि वढावन येह ॥
श्रीहरिप्रिया मनोरथ के गण की सिद्ध कारण सिन्धु अछेह ॥"
(म. वा. स. सु-पद ३१६) १६

मुक्ति सारिष्टि पर सुख की दाता ॥
सार्ष्टि मुक्ति से भी सेवानन्द पर सुख है । यथा:—

"सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूपयैकत्वमप्युत ।
दीय मानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥"(भा. स्क. ३ अ. २६ श्लो. १३)

मेरे श्रेष्ठ भक्त मेरी सेवा को छोड़कर मुझसे सालोक्य सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य मुक्तियाँ दिये जाने पर भी स्वीकार नहीं करते हैं ।

सकल अंशादि अवतार की सेव्य श्रीश्याम श्यामा सु जोरी विख्याता ॥

यथा:—मत्स्य कूर्म्म वराहैश्च नृसिंह हरि वामनैः ।
भार्गवहलिसीतेश बुद्ध कल्कि भिरुद्यतैः
उपास्य मानं देवेशं देवानां प्रवरं प्रभुम् ॥ (अनन्त संहिता)

सब देव गणों के ईश तथा श्रेष्ठ प्रभु श्रीश्याम सुन्दर मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, हरि, वामन, परषुराम, बलिदेव सीतेश, बुद्ध, कल्कि आदि अवतारों से सुसेवित हैं ।

चतुर चूणामनी चारु चन्द्राननी । चित हरि चमत्कारें अपारें ॥

चतुर चूणामणि श्रीप्रिया प्रीतम जिनके मुखारविन्दों की शोभा चन्द्र सदृश है । एक दूसरे के मनों को अत्यन्त चमत्कार पूर्वक हरण करते हैं ।

जिनहिं दिव्य दृष्टि ए देत करिकै दया तेई यथार्थ इनकौं निहारें ।

यथा:—"दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्" (भ. गी. अ. ११ श्लो.८)

(श्रीकृष्ण कहते हैं) मैं तेरे लिये दिव्य चक्षु देता हूँ उससे तू मेरे प्रभाव को तथा योगशक्ति को देख ।

पुनः यथा:—

"न शक्यः सत्वया दृष्टु मस्माभिर्वा वृहस्पतेः ।
यस्य प्रसादं कुरुत सवैतं दृष्टु मर्हति ॥" (नारायणा आध्यात्म)

उन प्रीया प्रीतम के दर्शन आपको, मुझको या वृहस्पति जी को भी नहीं हो सकते हैं उनको वही देख सकता है जिन पर वह कृपा करते हैं।

अज्ञ जन होइ आसक्त सुख जक्त अव्यक्त निज धाम कल्पित बखानें।
सच्चिदानन्द रस अमृत कौं त्यक्त करि अन्य यातें कछू अधिक मानैं॥

जो लोग इस संसार के सुखों को ही मुख्य मानते हैं। वह स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिये यत्न करते रहते हैं। यद्यपि श्रीनित्य वृन्दावन सच्चिदानन्द स्वरूप है तो भी इसको कल्पित कहते हैं। अमृत स्वरूप श्रीवृन्दावन को छोड़कर स्वर्ग आदि के सुखों को इससे अधिक मानते हैं। यथा:—

"यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्य विपश्चितः।
वेद वादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्म कर्मफल प्रदाम्।
क्रिया विशेषबहुलां भोगैश्वर्य गतिं प्रति॥
भोगैश्वर्य प्रसक्तानां तयापहृत चेत साम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयतेः॥"
(भ. गी. अ. २ श्लो. ४२. ४३. ४४)

हे अर्जुन जो सकामी पुरुष केवल फल श्रुति में प्रीति रखने वाले स्वर्ग को ही परम श्रेष्ठ मानने वाले इससे बढ़कर और कुछ नहीं है ऐसे कहने वाले हैं वे अविवेकी जन जन्म रूप कर्म फल को देने वालो और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये बहुत-सी क्रियाओं के विस्तार वाली इस प्रकार की जिस दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहते हैं। उस वाणी द्वारा हरे हुए चित्त वाले तथा भोग और ऐश्वर्य में आसक्ति वाले उन पुरुषों के अन्तः करण में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है।

ग्रन्थकार ऐसे साधकों को इसी हेतु से अज्ञ जन कहते हैं। यहाँ वृन्दावन को सच्चिदानन्द अमृत स्वरूप आदि विशेषणों से वर्णन करते हैं। वास्तविक वृन्दावन का यही स्वरूप है। यथा:—

"दिव्यं वृन्दावनं नाम शेषांगस्थं च सर्वदा।
ब्रह्म रूप मिदं देवि सच्चिदानन्द रूपकम्॥"(पुरुषार्थ बोधनी उपनिषद्)

हे देवि! यह वृन्दावन दिव्य है। शेष भगवान के अङ्ग पर स्थित है यह ब्रह्म

को तरह विकार रहित सच्चिदानन्द स्वरूप है। श्रीवृन्दावन कल्पित नहीं है। यथा:—

"नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थितम्।
पूर्णं ब्रह्म सुखैश्वर्य्यं नित्यमानन्द मव्ययम्॥
नित्यं वृन्दावनं नाम गोपगोभिरलंकृतम्।
न यत्र श्रूयते माया लोक सृष्टि विकल्पना॥" (पञ्च रात्र)

नित्य वृन्दावन सब ब्रह्माण्डों के ऊपर स्थित है पूर्ण ब्रह्म सुखैश्वर्य्य स्वरूप है नित्य आनन्द मय तथा अविनाशी है। यहाँ माया द्वारा लोक सृष्टि की कल्पना नहीं है।

कर्म अरु ज्ञान करिकै सदा दुर्लभा सुल्लभा परा भक्तिहिं प्रकाशी।

श्रीप्रिया प्रीतम की प्राप्ति कर्म और ज्ञान से नहीं हो सकती है। वह तो एक मात्र परा भक्ति से ही सुलभ है। यथा:—

सा कर्म्म ज्ञान वैराग्य पेक्षकस्य न सिद्धयति।
परं श्रीकृष्ण कृपया तन्मात्रापेक्षकस्य हि॥ (श्री.वृ.भा. ख. २ आ. श्लो २०४)

वह श्रेष्ठ भक्ति कर्म, ज्ञान और वैराग्य आदि से सिद्ध नहीं हो सकती है। इन सबकी आशा छोड़कर केवल जो परा भक्ति ही को चाहते हैं उनको यह भक्ति श्रीकृष्ण कृपा से प्राप्त हो जाती है।

हितू श्रीहरिप्रिया की कृपा दृष्टि सौं निकट निरखैं तहाँ नित्य दासी।

श्रीहितू सखी तथा हरिप्रिया की कृपा दृष्टि से "नित्य दासी" भाव ग्रहण करने से निकट ही श्रीप्रिया प्रीतम के दर्शन हो सकते हैं। यथा:—

"सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव पुनः पुनः।
विना राधा प्रसादेन मत्प्रसादो न विद्यते॥
श्रीराधिकाया कारुण्यात् तत्सखी संगितामियात्।
तत्सखीनां च कृपया योषिदं गमवाप्नुयात्॥"(नारदीय पुराण)

"कृष्ण प्रिया सखी भाव समाश्रित्यप्रयत्नतः।
तयोः सेवां प्रकुर्व्वीत दिवान्क्तम तन्द्रितः॥" (पद्म पुराणे वृ. मा.)

मैं यह बार बार शपथ लेकर कहता हूँ बिना श्रीराधिका जी की कृपा के मेरी कृपा नहीं हो सकती है। श्रीराधिका जी की कृपा से उनकी सखियों का सङ्ग प्राप्त होता

है। उनकी कृपा से ही सखी भाव मिलता है।

श्रीकृष्ण की प्रिया सखी का भाव यत्न पूर्वक धारण करके सावधानी से निरन्तर श्रीप्रिया प्रीतम की सेवा करनी चाहिये।

इस प्रकार करने से ही प्रिया प्रीतम की प्राप्ति हो सकती है।

॥ दोहा ॥

हिय हरनी सुख की महा, विस्तरनी कवनीय ।
विपिन चन्द्रकी चन्द्रिका, जै राधा रवनीय ॥

॥ पद ॥६॥

जय जय राधिका रवनी कवनी चन्द्रिका बन चन्द्र की।
रंग रंगीली छैलछबीली हिय हरनी चम्पक बरनी ॥१॥
नवल नागरी नीरज नैंनी नव नागर सुख विस्तरनी ।
अमित अलौकिक सुख की धामा श्रीस्यामा सोभा सदनी ॥२॥
महामोहनी मनमोहन की मन मोहन वारिज बदनी ।
अङ्ग अङ्ग आभा अभरन की निरखि नैंन चकचोंधी होति ॥३॥
वृन्दावन की बगर बगर में जगर–मगर जगमगि रहि जोति ।
कोक–कला कुल कोबिद कुसल किसोर–किसोरी जोरी ऐंन ॥४॥
बिहरत बिबिध बिहार उदार बिहारी विहारनि सब सुख दैंन।
स्यामसुंदर वर रसिक पुरंदर गुन मंदिर गोरी कौ कंत ॥५॥
छिन छिन नव नव भाव तरंगनि अङ्ग अनङ्गनि के सरसंत।
प्रिया प्रान-प्रीतम की जीवनि प्रीतम प्रिया प्रान आधार ॥६॥
सदा सनातन रहत स्वतंतर रमत निरन्तर नित्य बिहार।
सखी सबैं नवरंग रंगीली जानत जुगल हियें कौ हेत ॥७॥
सोइ–सोइ प्रगट दिखावत अनुदिन सब भाँतिनसों सब सुख देत।
प्रेम पयोधि परे दोउ प्यारे पल न्यारे होत न अँग अंग ॥८॥
रंग महलकी टहल करत जहाँ हितु सहचरि श्रीहरिप्रिया संग। ॥९॥

अब भिन्न भिन्न तुकों की व्याख्या करते हैं—

दोहा

हिय हरनो सुख की महा विस्तरनी कमनीय।
विपिन चन्द्र की चन्द्रिका जय राधा रमनीय॥

जयति जय राधिका रमनी कमनी चन्द्रिका वन चन्द्र की॥
रंग रँगीली छैल छवीली हिय हरनी चम्पक वरनी।
नवल नागरी नीरज नैनी नव नागर सुख विस्तरनी॥१॥

रङ्ग रङ्गीली—श्रीलालजी के रङ्ग में रङ्गी, छैल छवीली, नवल नागरी, नीरज नैनी,—कमल नैनी उन श्रीप्रिया जी की सदा जय हो जो सब रमनियों में श्रेष्ठ हैं। श्रीलालजू के हृदय को हरने वाली तथा उनके सुख को अत्यन्त विस्तार करने वाली हैं। आप विपिन चन्द्र अर्थात श्रीवृन्दावन के चन्द्रमा श्रीलालजू की चन्द्रिका स्वरूपा हैं। यथा:—विपिन चन्द्र की चन्द्रिका :—

यथा च चन्द्रिका चन्द्रे प्रभा भानौ हुताशने।
यथा मधुरिमा नीरे स्पर्शनं मारुते यथा॥
गन्धः पृथिव्यामनघो राधिकेयं तथा हरौ॥(वृहद् ब्रह्म संहिता)

जैसे चन्द्र की किरणें चन्द्रमा को, सूर्य तथा अग्नि की प्रभा सूर्य नारायण तथा अग्नि को, जल की मधुरिमा जल को, वायु का स्पर्श गुण वायु को तथा पृथ्वी का गन्ध गुण पृथ्वी को, छोड़कर नहीं रहता है इसी प्रकार श्रीकृष्ण को छोड़ कर श्रीस्वामिनी जी नहीं रहती हैं।

अमित अलौकिक सुख की धामा श्रीश्यामा शोभा सदनी॥
महा मोहनी मन मोहन की मन मोहन वारिज बदनी॥

कमल बदनी श्रीप्रियाजी अमित अलौकिक सुख तथा शोभा की धाम स्वरूपा हैं। आप महा मोहनी मनमोहन की=श्रीलालजू के मन को मोहन करने वाली हैं। यथा:—

देवी कृष्ण मयी प्रोक्ता राधिका पर देवता।
सर्व लक्ष्मीमयी सर्व कान्ति सम्मोहिनी परा॥ (वृहद् गौतमीय तन्त्र)

श्रीराधिकाजी स्वयं प्रकाश, श्रीकृष्ण मयी सर्व लक्ष्मीयों के अंशनी, सर्व कान्ति स्वरूप तथा श्रीकृष्ण को मोहन करने वाली पर देवता हैं।

अङ्ग अङ्ग आभा अभरन की, निरखि नैंन चकि चौंधी होति।
वृन्दावन की वगर वगर में, जगर मगर जग मगरहि ज्योति ।।

श्रीप्रिया जी के अङ्ग ही आभूषण हैं उनको आभा को निरखकर श्रीलाल जू तथा सखियों के नेत्रों में चकाचौंध होती है। समस्त वृन्दावन की कुञ्जें आपके अङ्ग की कान्ति से जगमग जगमग कर रही हैं।

कोक कला कुल कोविद कुशल किशोर किशोरी जोरी ऐंन।
विहरत विविध विहार उदार विहारी विहारिन सब सुख दैंन ।।४।।

श्रीप्रिया प्रीतम बहुत सी कोक कलाओं में प्रवीण तथा कुशल हैं आप दोनों उदार, अनेक प्रकार के विहारों में प्रवृत होकर, सबको सुख प्रदान करते हैं।

श्याम सुन्दर बर रसिक पुरन्दर, गुन मंदिर गोरी कौ कंत।
छिन छिन नव नव भाव तरंगनि, अङ्ग अनङ्गन के सरसन्त ।।५।।

सुन्दरवर रसिकों में श्रेष्ठ श्रीलालजू सब गुणों के मन्दिर स्वरूपा श्रीप्रियाजी के कंत हैं। इनके छिन छिन में श्रीप्रियाजू विषयिक नई नई भावों की तरंगें उठती रहती हैं।

प्रिया प्राणप्रियतम की जीवनि प्रियतम प्रिया प्राण आधार।
सदा सनातन रहत स्वतन्तर रमत निरन्तर नित्य विहार ।।

यथाः—

"आस्ते कैवल्य नाथस्तु राधा वक्षः स्थलोज्ज्वलः।
प्राणाधिक प्रियतमा सा राधा राधितो यया ।।" (नारदीय पुराण)

"प्रेम प्राणाधि देवी च पंच प्राण स्वरूपिणी।
प्राणाधिक प्रियतमा सर्वाद्या सुन्दरी परा ।।" (ब्रह्म वैवर्त पुराण)

"वनं वृन्दावनं नाम ह्यनादि निधनं मतम्।
नित्यं क्रीड़ा रतस्तत्र गोपीभि गोप वेशभृत ।।" (आदि पुराण)

"श्रीप्रियाजी अपने प्राण प्यारे, केवल्यनाथ श्रीकृष्ण की आराधना करती हैं जो नित्य वृन्दावन में विराजमान हैं।"

"सबकी आदि तथा परम सुन्दरी श्रीप्रियाजी, जो लालजू के प्रेम रूपी प्राण

को अधिदेवी तथा पञ्चप्राण स्वरूपिणी हैं, वह लालजू को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती हैं।"

"श्रीवृन्दावन नामक वन है जिसका आदि अन्त नहीं है वहां गोप वेश धारी श्रीकृष्ण गोपियों के साथ नित्य विहार करते हैं।"

सखी सबै नव रंग रंगीली जानत युगल हिये को हेत।
सोई सोई प्रकट दिखावत अनुदिन सब भान्तिन सो सब सुख देत ॥

यथा :—

"तौर्यत्रिकक कलोल्लोसैरुभयो परितोषणम्।
अवकाशो चिताचार सेवा प्रार्थन भाषणम् ॥
इत्यादि सुष्ठुभूयिष्ठं ज्ञेयमासांविचक्षणैः ॥"

(श्रीराधाकृष्णगणोदेश दीपिका)

श्रीसखियां अपना अपना नृत्य कला कौशल दिखलाकर श्रीप्रियाप्रीतम को प्रसन्न करती हैं तथा उन दोनों का रुख देखकर प्रार्थना, भाषण तथा सेवा आदि समय अनुसार सुन्दर रीति से समाधान करती हैं।

प्रेम पयोधि परे दोऊ प्यारे पल न्यारे होत न अङ्ग अङ्ग।
रङ्ग महल की टहल करत जहां हितु सहचरी श्रीहरिप्रिया सङ्ग ॥

दोनों प्रेम रूपी समुद्रमें डूबे हुए हैं एक पलके लिये भी अलग अलग नहीं होते हैं।

यथाः— "सखि न स रमणो नांह रमणोतिभिदाऽवयो रास्ते।
प्रेम रसेनोभय मन इव मदनो निष्पिपेष बलात् ॥"

(श्रीयुग्म तत्व समीक्षा—युग्म मयूख)

हे सखी! प्यारे रमण हैं और मैं रमणी हूं यह भेद हममें नहीं है। क्योंकि मदन ने प्रेम रस द्वारा हम दोनों के मनों को पीस कर एक कर दिया है।

पुनः यथाः—

"स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वामृदु करतले नांगमङ्गं सुशीतम्।
सान्द्रानंदामृत रस ह्रदे र जतो माधवस्य ॥
अंके पंके रुह सुनयना प्रेम मूर्ति स्फुरन्ती।
गाढाश्लेषान्नमित चिबुका चुम्बिता पातु राधा।"

(राः सुः निः श्लोः २५२)

श्रीलालजू श्रीप्रियाजू को अपने अंक में बैठाकर उनके अत्यन्त शीतल तथा कोमल अङ्गों का स्पर्श करते हुए परमानन्द अमृत समुद्र में डूब जाते हैं तथा प्रेम मूर्ति कमल–नयना श्रीप्रिया जी का गाढ़ आलिङ्गन करके वह उनकी चिम्बुक को चूँमते हैं। वह श्रीराधिका जी मेरी रक्षा करें।

॥ दोहा ॥

अत्यैश्वर्य माधुर्य कौ, बरनें को विस्तार।
परमधाम राजै जहाँ, आनन्दमयी अपार ॥

॥ पद ॥१०॥

आनन्दमय अंग इङ्गितज्ञ ईश्वर अधिप अनन्त वीर्याश्चर्य रूप अविकार।
इन्दिरेसादि ईडित उपेंद्रादि उत्कट अनन्यादि कारन अकर्त्तार ॥१॥
उत्तमोत्तस उपादान उत्पत्ति रहित एक ऐश्वर्य परिपूरणाधार।
ओज औदार्य उर्ध्वग उसत्तम उर्ध्व नित्यनैमित्त्यपति कृपा कूपार ॥२॥
अजित अच्युत अनामय असत सत असँग अप्रमेयादि अब्यक्त सुबिहार।
कमन कैसोर कीर्त्तन्य गुनकौतुकी कोटि कंदर्प लावन्यतागार ॥३॥
परम अभिराम परमधाम राजत सदा सर्व पर सेव्य पर सेव्य सुखसार।
अमित ऐश्वर्यमाधुर्य श्रीहरिप्रिया कहन विस्तार कबि पावें को पार ॥४॥

अब अलग अलग सब तुकों का अर्थ वर्णन करते हैं:—

दोहा — अत्यैश्वर्य माधुर्य का वर्नें को विस्तर।
परमधाम राजें जहां आनन्दमयी अपार ॥

जहाँ आनन्द मयो श्रीप्रिया प्रीतम विराजते हैं उस धाम के ऐश्वर्य तथा माधूर्य का हम क्या वर्णन करें?

अत्यैश्चर्य यथाः—

"नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थितम्।
पूर्णं ब्रह्म सुखैश्वर्यं नित्यमानन्दमव्ययम् ॥" (पञ्चरात्रे)

अति माधुर्य यथाः—

"वनं वृन्दावनं नाम नव पल्लव मण्डितम् ।
कोकिल भ्रमराराबं मनोभव मनोहरम् ॥"
(पाद्मे पाताल खण्डे वृन्दावन माहात्म्ये)

नित्य वृन्दावन सब ब्रह्माण्डों के ऊपर विराजमान है। उसका स्वरूप पूर्ण ब्रह्म, पूर्ण सुख, पूर्ण एश्वर्य, नित्य आनन्द तथा अविनाशकारी है।

वृन्दावन नामक बन नव पल्लवों से सुशोभित है जहां कोयल भ्रमरादि मधुर मधुर स्वरों से गान करते हैं। यहां की सुन्दरता कामदेव के मन को भी मोहन करने वाली है।

"आनन्दमय अङ्ग।" यथाः—

"आनन्द चिन्मयसमुज्ज्वल विग्रहस्य।
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥" (ब्रह्म संहिता)

मैं उन गोविन्द आदि पुरुष को भजता हूँ जिनका श्रीविग्रह आनन्द चिन्मय तथा परम उज्ज्वल है।

इंगतज्ञ। सर्वज्ञ यथाः—

"सर्वाधारं सर्ववश्यं सर्वज्ञं सर्वमेव च।" (ब्रह्म वैवर्तपुराण)

"श्रीकृष्ण सब वस्तु स्वरूप सब के आधार तथा सर्वज्ञ हैं। इनके ही आधीन सब हैं।"

इश्वर-अधिप-अनन्तवर्य-आश्चर्यरूप-अविकार। यथाः—

"अचिन्त्यानन्त शक्तीनां अधिपस्य महामुने।
समस्त कल्याण गुणोनिर्गुणेश्वेश्वरेश्वरः॥" (वृहद्वामन पुराण)

हे महामुने! श्रीकृष्ण अचिन्त्य, अनन्त शक्तियों के अधिपति, सब कल्याण गुणों के स्वरूप तथा ईश्वरों के भी ईश्वर हैं।

इन्द्रेशादिईडित। यथाः—

"वलिं हरद्भिश्चिर लोक पालै
किरीट कोटचेडित पाद पीठः।" (भाः स्क ३ः अः २ श्लोः २१)

इन्द्रादि असंख्य लोकपाल नाना प्रकार की भेटें लाला कर अपने अपने मुकटों के अग्र भाग से उनके चरणारविन्दों की चौकी को प्रणाम किया करते हैं।

पुनः यथाः—

"सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभि मानवेन्द्रकैः ।
ब्रह्म विष्णु शिवानन्त धर्माद्यैर्वन्दितं मुदा ॥" (ब्रह्मवैवर्त महा पुराण)

जिन श्रीकृष्ण की सुरेन्द्र, मुनीन्द्र, ऋषि लोग, नृपेन्द्र ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अनन्त देव तथा धर्म प्रभृति बन्दना करते हैं ।

उपेन्द्रादि उत्कट ।

श्रीवामन भगवान आदि से श्रेष्ठ अर्थात उनके भी उपास्य हैं । यथाः—

"मत्स्यकूर्म्मं वराहैश्च नृसिंह हरि बामनैः ।
भार्गवहलि सीतेश बुद्ध कल्किभिरुद्यतैः ॥
उपास्यमानं देवेशं देवानां प्रवरं प्रभुम् ॥" (अनन्त संहिता)

मत्स्य, कूर्म, बराह, नृसिंह, हरि, वामन, परशुराम, बलदेव, श्रीरामचन्द्र, बुद्ध तथा कल्कि आदि भगवत अवतार भी श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं ।

अनन्यादि कारण=अनन्य+आदि कारण । जिनका और कोई कारण नहीं है अर्थात जो सबके आदि कारण हैं । यथाः—

"अनादि आदि गोविन्द सर्व कारण कारणम् ।" (ब्रह्म संहिता)

श्रीकृष्ण ही स्वयं अनादि और सबके आदि तथा सब कारणों के कारण स्वरूप हैं।

अकर्तार । सब के कर्ता होकर भी आप अकर्ता हैं । अर्थात सृष्टि आदि कार्य आप स्वयं नहीं करते हैं बलिक अपने और और अवतारों से सब कार्य कराते हैं । यथाः—

"माया गुणैर्य्यतो मेऽशांः कुर्वन्तिसर्ज्जनादिकम् ।
न करोति स्वयं किञ्चित् सृष्टयादिकमहंशिव ॥"
(पद्म पुराण पाताल खण्ड वृन्दावन माहात्म्य)

श्रीकृष्ण श्रीमहादेव जी से कहते हैं :—

हे शिव ! मैं स्वयं सृष्टि आदि कार्य नहीं करता हूँ । मेरे अंश स्वरूप ब्रह्मादिक माया के गुणों द्वारा सब सर्जनादि कार्य करते हैं ।

उत्तमोत्तम उपादान ।

जिनके दिव्य मङ्गल विग्रह में उत्तम से उत्तम उपादान हैं । यथाः—

"आनन्द चिन्मय समुज्ज्वल विग्रहस्य
गोविन्द मादि पुरुषं तमहं भजामि।" (ब्रह्म संहिता)

पुनः यथा:—

"निर्दोष पूर्ण गुण विग्रह आत्मतन्त्रो निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्चहीनः।
आनन्द मात्र कर पाद मुखोदरादिः सर्वत्र च स्वगत भेदविवर्जितात्मा।"
(नारद पञ्चरात्र)

मैं आदि पुरुष गोविन्द को भजता हूँ, जिनका दिव्य मङ्गल विग्रह सच्चिदानन्द तथा उज्ज्वल है।"

"जिन श्रीकृष्ण का विग्रह दोष रहित, पूर्ण गुणों के आश्रय, मायिक जड़ गुणों से रहित है। जिनके हस्त मुख, उदर, पदादि अव्यव आनन्दात्मक हैं। जो स्वतन्त्र तथा विगत भेद से रहित हैं।

उत्पत्ति रहित। यथा:—

"अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानांनीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्म मायया॥" (भ. गी. अ. ४ श्लो. ६)

मैं अवनाशी स्वरूप अजन्मा होने पर भी, सब भूत प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को अधीन करके योग माया से प्रकट होता हूँ।

एक एश्वर्य। यथा:—

"कृष्णो ह वै हरिः परमोदेवः षड्विधैश्वर्य परिपूर्णो भगवान्।
गोपी गोप सेव्यो वृन्दाऽऽराधितो वृन्दावनाधिनाथ, स एकरवेश्वरः॥"
(श्रीराधिकोपनिषत्)

श्रीकृष्ण हो एक ईश्वर हैं। जो हरि, परमदेव, षड् एश्वर्य पूरिपूर्ण भगवान् हैं, जो वृन्दादेवी, गोप गोपियों से सुसेव्य हैं तथा जो वृन्दावन के अधिपति हैं।

परिपूर्णाधार=परिपूर्ण+आधार। परिपूर्ण। यथा:—एक एश्वर्य की व्याख्या में पर वर्णन हो चुका है।

"आधार" यथा:—

"यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्म भाति यथा तथा।" (भा. १० स्क ३ अ. १७ श्लो.)

जिसकी कुक्षि में यह समस्त जगत है। औज। इन्द्रिय शक्ति वाले।

औदार्य। उदारता युक्त यथाः—

"तुलसीदल मात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीनाति स्वयं आत्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥ (हरि भक्ति विलास)

भक्त वत्सल श्रीकृष्ण अपने भक्तों के लिये एकचूल्लू जल अथवा एक तुलसी दल से अपनी आत्मा तक को विक्री कर देते हैं।

ऊर्ध्वग=सबसे ऊँचे लोक-वृन्दावन में रहने वाले।

उशत्तम=सबसे सुन्दर। कमनीय तम।

ऊर्ध्व नित्य नैमित्य प्रति कृपा कू पार॥=

जो साधक नित्य नैमित्य कर्मों से अतीत हो गये हैं उनके प्रति आप कृपा के सागर स्वरूप हैं। स्मृतियों और गृह सूत्रों के अनुसार पाँच नित्य नैमित्य कर्म करना गृहस्थियों के लिये आवश्यक हैं:—

(१) ब्रह्म यज्ञ=अध्यापन, संध्यावंदनादि। (२) पितृ यज्ञ=पितृ तर्पण।
(३) देव यज्ञ=हवनादि। (४) भूत यज्ञ=बलिवैश्व।
(५) नृ यज्ञ=अतिथि पूजन।

जो साधक उपरोक्त नित्य नैमित्य कर्म रूपी यज्ञों को छोड़ कर प्रभु की शरण आते हैं उन पर आप कृपा करते हैं। यथा—

देवर्षिभूताप्त नृणां पितृणां, न किङ्करो नाय मृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥"
(श्री. भा. स्क. ११ अ. ५ श्लो. ४१)

हे राजन्! जो मनुष्य नित्य नैमित्य कर्मों का त्याग करके सर्वात्म भाव से शरणागतवत्सल श्रीकृष्ण की शरण में आ गया है, वह ऋषि, पितृ, देव, भूत तथा मनुष्य ऋण से उऋण हो जाता है। वह किसी के आधीन, किसी का सेवक तथा किसी के बन्धन में नहीं रहता है।

अजित=जिनको कोई जीत नहीं सकता है। यथाः—

"अजित जितोऽप्यसितं स्त्रिलोक्याम्॥" (भा. १० स्क. १४ अ. ३ श्लो)

यद्यपि आप पर त्रिलोकी में कोई कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकता है फिर भी आपके भक्त आप पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। आप उनके प्रेम के अधीन हो जाते हैं।

अच्युत=जिनका कभी नाश नहीं होता। यथा:-

न च्यवन्ते हि यद्भक्ता महत्यां प्रलयपादि।
अतोऽच्युतोऽखिल लोके स एव धर्मगोऽव्ययः॥ (हरिभक्ति विलास)

क्योंकि जिसके भक्त बड़ो भारी प्रलय आपत्ति में भी नाश नहीं होते हैं इसीलिये धर्म गोप्ता अविनाशी श्रीकृष्ण को समस्त लोकों में अच्युत कहते हैं।

अनामय=रोग आदि से मुक्त। क्योंकि आपका दिव्य मङ्गल विग्रह मायिक गुणों से रहित है। यथा—

निर्दोष पूर्ण गुणविग्रह आत्म तन्त्रो।
निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्च हीनः॥ (नारद पञ्चरात्र-लक्ष्मीतन्त्र)

जिनका विग्रह मायिक शरीर धर्मों से रहित है तथा जो निर्दोष समस्त कल्याण गुणों के आश्रय हैं।

असत् सत असंग=कार्य कारण में अनासक्त। यथा:—

"न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्म फले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।" (गी. अ. ४ श्लो. १४)

कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है इसलिये मेरे को कर्म लिपायमान नहीं करते इस प्रकार जो मेरेको तत्त्व से जानता है वह भी कर्मों से नहीं बँधता है।

अप्रमेयादि अव्यक्त=अप्रमेय+आदि+अव्यक्त=सबके आदि तथा अव्यक्त होने से आप अप्रमेय हैं अर्थात इन्द्रिय ज्ञान के विषय नहीं हैं। यथा:—

"तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्य लिङ्ग मधोक्षजम्" (भा. स्क १० अ. ६ श्लो. १४)

जो समस्त इन्द्रियों के ज्ञान से परे है तथा जो अव्यक्त है उनको श्रीयशोदा जी ने अपना पुत्र समझा।

सु विहार=जिनकी लीलाएँ अति सुन्दर हैं। यथा:—

परिस्फुरतु सुन्दरं चरितमत्र लक्ष्मीपते-
स्तथा भुवन नन्दिन स्तदवतार वृन्दस्य च।

हरेरपि चमत्कृति प्रकर वर्द्धनः किं तु मे-
बिभर्त्ति हृदि विस्मयं कमपि रासलीलारस ।। (भक्ति रसामृतसिन्धु)

यद्यपि लक्ष्मिपति तथा जगत् को आनन्द देने वाले उनके अवतारों की लीलाएं परम सुन्दर हैं। एवं स्वयं श्रीकृष्ण की और और लीलाएँ भी परम चमत्कार बढ़ाने वाली हैं। तो भी उनकी रास लीला मेरे हृदय को अत्यन्त बिस्मय प्राप्त कराती है।

कमन कैशोर=अत्यन्त सुन्दर किशोर स्वरूप वाले। यथाः—
"कमनीय किशोर मुग्ध मूर्तेः कल वेणु क्वणिता वृताननेन्दो।
मम वाचि विजृम्भतांमुरारेर्मधुरिम्णः कणिकापि कापि कापि ।।"
(कृष्ण कर्णामृत श्लो. ७)

जिनकी मूर्ति अत्यन्त सुन्दर, मुग्ध, कैशोर स्वरूप है जो अपने मुखारविन्द से मनोहर वंशी ध्वनि कर रहे हैं ऐसे श्रीकृष्ण की मधुरिमा रूपी सागर का एक कण भी यदि मेरी वाणी में प्रकाश पाये तो मैं अपने आपको कृतार्थ मानूं।

कीर्तन्य गुन=जिनके गुण कीर्तन करने योग्य है। यथाः—
"कीर्तन्य तीर्थ यशसं पुण्य श्लोकं यशस्करम्।" (भा. ३ स्क. अ. २८ श्लो.१)

श्रीकृष्ण का पवित्र यश परम कीर्त्तनीय है।

कौतुकी=परिहास विशारद–खिलाड़ी। यथाः—

"विदग्धो नव तारुण्यः परिहास विशारदः
निश्चिन्तो धीर ललितः स्यात्प्रायः प्रेयसी वशः" (भक्तिरसामृत सिन्धु)

जो रसिक शिरोमणि, नवकैशोर, हास्य परिहास्य में चतुर, चिन्ता रहित तथा प्रायः अपनी प्रिया के आधीन रहता है उसको "धीर ललित नायक" कहते हैं।

कोटि कन्दर्प लावण्यताःगार=करोड़ों कामदेवों की सुन्दरताओं की खान स्वरूप।

यथाः—"कन्दर्प कोटि लावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसिनः।
कामिनी भावमासाद्य स्मरक्षुब्धान्य संशयम् ।।" [वृहद्वामन पुराण]

श्रुतियां कहती हैंः—

हे प्रभो! करोड़ों कन्दर्पों की सुन्दरता को धिक्कार करने वाले आपके स्वरूप

को देखकर हमारे मन कामिनी भाव को प्राप्त होकर काम क्षुब्ध हो गये हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

परम अभिराम पर धाम राजत सदा= यथाः—

"नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थितम्।
पूर्णं ब्रह्म सुखैश्वर्यं नित्यमानन्द मव्ययम् ॥" [नारद पञ्चरात्रे]

श्रीनित्य वृन्दावन सब ब्रह्माण्डों के ऊपर विराजमान है जो अव्यय नित्य आनन्द तथा पूर्ण ब्रह्म सुख स्वरूप है।

सर्व पर सेव्य पर सेव्य सुखसार=जितने श्रेष्ठ से श्रेष्ठ उपास्य देव हैं उनके भी श्रेष्ठ सेव्य स्वरूप। यथाः—

"सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभिर्मानवेन्द्रकैः।
ब्रह्मविष्णुशिवानन्तैर्धर्माद्यैर्वन्दितं मुदा।" (ब्रह्मवैवर्त महापुराण)

पुनः यथाः—

"मत्स्य कूर्म्म वराहैश्च नृसिंह हरि वामनैः।
भार्गवहलिसीतेश बुद्ध कल्कि भिरुद्यतैः॥
उपास्यमानं देवेशं देवानां प्रवरं प्रभुम्।" (अनन्त संहिता)

श्रीशिव जी श्रीनारद जी से कहते हैंः—

"श्रीकृष्ण की सुरेन्द्र, मुनीन्द्र, नृपेन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अनन्त तथा धर्मराज आदि प्रसन्नता पूर्वक वन्दना करते हैं।"

"मत्स्य, कूर्म्म, वाराह, नृसिंह, हरि, वामन, परशुराम, बलदेव, श्रीरामचन्द्र, बुद्ध तथा कल्कि आदि भगवत् अवतार भी उन श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं, जो सब देवताओं के ईश तथा श्रेष्ठ प्रभु हैं।"

अमित ऐश्वर्य माधुर्य श्रीहरिप्रिया कह न विस्तार कवि पावै को पार॥

श्रीप्रिया प्रीतम का इतना अपार ऐश्वर्य तथा माधुर्य है कि जिसका कोई भी कवि विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं कर सकता है। यथाः—

अमित ऐश्वर्य। यथाः—

"ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।

ज्ञान वैराग्योश्चैव षण्णां भग इती ंगना ।।" (विष्णु पुराण)

श्रीकृष्ण में यह छः गुण हैं :--समस्त ऐश्वर्य्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य । इसीलिये आपको भगवान कहते हैं ।

माधुर्य=यथाः--

लीला प्रेमा च प्रेष्ठ त्वं माधुर्य्यं वेणु रूपयोः ।
इत्य साधारणं प्रोक्तं ग्ेविन्दस्य चतुष्टयम् ।। (भक्ति रसामृत सिन्धु)

लीला माधुर्य, प्रेम माधुर्य, वेणु माधुर्य तथा रूप माधुर्य यह श्रीगोविन्द के असाधारण चार माधुर्य्य गुण हैं ।

उपरोक्त गुणों को कोई भी कवि विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं कर सकता है जैसे "श्रीहित चौरासी" जी में वर्णित है । यथाः—

"देखो माई सुन्दरता की सीवाँ ।
व्रज नव तरुनि कदम्ब नागरी निरखि करत अधग्रीवाँ ।।
जो कोऊ कोटि कलप लगि जीवै, रसना कोटिक पावै ।
तऊ रुचिर बदनारबिन्द की शोभा कहत न आवै ।।
देव लोक, भू लोक, रसातल सुनि कवि कुल मति डरियै ।
सहज माधुरी अङ्ग-अङ्ग की, कहि कासौं पटतरियै ।।
जै श्रीहित हरिवंश प्रताप रूप,गुण वय बल श्याम उजागर ।
जाकी भ्रू विलास वस, पशु रिव दिन विथकित रस सागर ।।
(श्रीहित हरिवंशजो)

।। दोहा ।।

निगम निगम आगम अगम, लहि न सकें गुन ग्रंथ ।
नेम प्रेम ते परचल्यौ, परमपरा कौ पंथ ।।

।। पद ।।११।।

रहि गयो मारग उरें नेम अरु प्रेम कौ,
परचल्यौ परा कौ परम पर पंथ ।
निगम को निगम अरु अगम आगमन कौ,
नाहिं समरथ्थ गुन गनन में ग्रंथ ।।

अखिल ब्रह्मांड बैराट के थाट सब,
महाबैराट के रोम के कूप।
सावकासें उड़त रहत निति सहजहीं,
परम ऐश्वर्य आश्वचर्यमय रूप॥
सो प्रथम एक ही सून्य मधि समि रह्यौ,
जैसें त्रिसरेनु को रेनु सत अंस।
यातें दस दस गुनी सहस्र सत सुन्य पुनि,
तिनतै लख सहस्र महासुन्य अवतंस॥
तिन महासुन्य के सिखर पर तेज कौ,
कोटि गुन तें गुनों अमित विस्तार।
तहाँ निजधाम वृन्दाविपिन जगमगें,
दिब्य बैभवन कौ दिब्य आगार॥
मन बचनहु जहाँ पहुँचि सकत न कबहुँ,
बुधि विथकित चित्तहु अतिहि असमर्थ।
सकल साधन सुकृति मुक्ति सारिष्ट लगि,
बिना कृपा कोटि कोट्यान बिधि ब्यर्थ॥
नित्य बिहरत जहाँ नित्यकैसोर दोउ,
नित्य सहचरिन संग नित्य नवरंग।
नित्यरस रास उल्लास आनंद उर,
नित्य प्रतिकास परभास अँग अंग॥
निर्विकारी निराकार चैतन्य तन,
विश्व ब्यापक प्रकृति पुरुष के ईस।
अक्षरातीत परब्रह्म परमात्मा,
सर्ब कारन परें जोति जगदीस॥
नाद के अंड तें अखंड धारा द्रवत,
स्रवत जा मध्य सत सृष्टि कें हेत।

जिहीं जिहिं भाँति जे जे उपासत जिन्हें,
तिहीं तिहीं भाँति तेते तिहें देत ॥
तत्व के तत्व सिद्धांत सिद्धांत के,
सार के सार सुख रूप के रूप ।
अमित ऐश्वर्य माधुर्य श्रीहरिप्रिया,
भावतिनु भौंन के भावते भूप ॥११॥

अब सब तुकों की अलग अलग आलोचना शास्त्र वाक्यों द्वारा करते हैं ।

"निगम निगम आगम अगम लहि न सकें गुन ग्रन्थ"

"पुनः यथाः—"निगम कौ निगम और अगम आतमनकौ ।
नहिं समरत्थ गुन गनन में ग्रन्थ ॥"

श्रीप्रिया प्रीतम का नित्य विहार निगम अर्थात वेदों को दुष्प्राप्य आगम् अर्थात शास्त्रों को अगम्य हैं और आप के गुणों को कोई ग्रन्थ से गुणने को समर्थ नहीं हैं श्रीमद् भागवत् में स्वयं श्रुतियाँ कहती हैं । यथाः—

"यच्छ्रुतय स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥"
(श्री. भा. स्क. १० अ. ८७ श्लो. ४१)

हम श्रुतियाँ भी आपके स्वरूप का पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकती हैं ।

"नेम प्रेम ते पर चल्यो परम परा कौ पन्थ ।"
"रहि गयौ मारग डरें नेम अरु प्रेम कौ
पर चल्यो परा कौ परम पर पन्थ ।

जबकि श्रीलाल ललना वेद, पुराण, शास्त्र आदि के भी अगम्य है । फिर वे किस तरह प्राप्त हो सकते हैं ? इस शंका का निवारण करने के लिये ग्रन्थकार कहते हैं कि वे केवल उस 'परा' भक्ति से ही प्राप्त हो सकते हैं जो 'नियम भक्ति' तथा 'प्रेम भक्ति' से भी परे हैं । इन तीनों प्रकार की भक्तियों का विवेचन मङ्गला चरण के श्लोक की व्याख्या में "परमौ नियम प्रेमणो"...'परागम्यौ' के शीर्षक से विस्तार पूर्वक वर्णन कर चुके हैं ।

अब ग्रन्थकार नित्य वृन्दावन के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं । यथाः—

अखिल ब्रह्माण्ड वैराट के थाट सब, महा वैराट के रोम के कूप ।
सावकाशँ उड़त रहत नित सहज ही परम ऐश्वर्य आश्चर्य मय रूप ।।

उस "महावैराट" के जिसको कि "महाविष्णु" अथवा "कार्णार्णवशायी" भी कहते हैं परम ऐश्वर्य आश्चर्य मयरूप का हम क्या वर्णन करें जिसके एक एक रोम कूप में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड वैराट के ठाट बाटों सहित सावकाश घूमते रहते हैं ।

अब एक ब्रह्माण्ड में क्या क्या सम्मिलित हैं वर्णन करते हैं। एक ब्रह्माण्ड में चौदह भुवन, सात आवर्ण तथा प्रकृति आदि सम्मिलित हैं । यथाः—

"अण्ड कोशे शरीरेऽस्मिन् सप्तावरण संयुते ।
वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान धारणाश्रयः ।।

पातालमेतस्य हि पादमूलं, पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ, तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ।।
द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्ते—रूरुद्वयं वितलं चातलं च ।
महीतलं तज्जघनं महीपते, नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ।।
उरः स्थलं ज्योतिरनी कमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ।
तपो ररार्टी विदुरादि पुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ।।
[श्री. भा. स्कन्ध २ अध्याय १ श्लो. २५, २६,२७,२८]

जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति—इन सात आवरणों से घिरे हुए इस ब्रह्माण्ड-शरीर में जो विराट् पुरुष भगवान हैं वे ही धारणा के आश्रय हैं उन्हीं की धारणा की जाती है। तत्त्वज्ञ पुरुष उनका इस प्रकार वर्णन करते हैं—पाताल विराट् पुरुष के तलवे हैं, उनकी एड़ियाँ और पंजे रसातल हैं, दोनों गुल्फ—एड़ी के ऊपर की गाँठे महातल हैं उनके पैर के पिंडे तलातल हैं। विश्वमूर्ति भगवान् के दोनों घुटने सुतल हैं जाँघें वितल और अतल हैं, पेडू भूतल है और परीक्षित ! उनके नाभिरूप सरोवर को ही आकाश कहते हैं। आदि पुरुष परमात्मा की छाती को स्वर्ग लोक गले को महर्लोक, मुख को जन लोक, और ललाट को तपोलोक कहते हैं। उन सहस्र सिर वाले भगवान का मस्तक समूह ही सत्य लोक है ।

ऐसे ऐसे उपरोक्त वर्णित अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं जो कि महावैराट के एक एक रोम कूप में अवकाश सहित घूमते रहते हैं। जैसा कि श्रीमद् भागवत् में 'ब्रह्म स्तुति"

में वर्णित है यथा:—

"क्वाहं तमो महदहं खचराग्नि वाभू-
संवेष्टिताण्ड घट सप्तवितस्तिव ायः ।
क्वे दृग्विधा विगणिताण्ड पराणुचर्या-
वाताध्व रोम विवरस्य च ते महित्वम् ।।
(भा. स्क. १०. अ. १४ श्लो. ११)

"कहाँ तो मैं ! प्रकृति महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी रूप आवरणों से घिरा हुआ जिसका ब्रह्माण्ड ही शरीर है । और कहाँ आप ! जिनके एक एक रोम के छिद्र में ऐसे ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड उसी प्रकार उड़ते फिरते हैं जैसे झरोखे की जाली में से आने वाली सूर्य की किरणों में रज के छोटे छोटे परमाणु उड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं । कहाँ तो अपने परिमाण से साढे तीन हाथ के शरीर वाला अत्यन्त क्षुद्र मैं और कहाँ आपकी अनन्त महिमा ।"

सो प्रथम एक ही शून्य मधि समि रह्यौ
जैसे त्रस रेनु को रेनु शत अंश ।

उपरोक्त महा वैराट जिसके एक एक रोम कूप में अनन्त कोटि बैराट अवकाश सहित घूमते रहते हैं वह प्रथम शून्य अर्थात विरजा नदी या कार्णार्णव समुद्र रूपी शून्य में इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म दिखाई देता है "जैसे त्रस रेनु को रेनुशत अंश" । अर्थात जैसे झरोखे की जाली में से आने वाली सूर्य की किरणों में रज के छोटे छोटे परमाणु उड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं । उन परमाणुओं के भी एक एक के सौ सौ टुकड़े किये जाने पर जो सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप रहता है उसी प्रकार वह महा वैराट कार्णार्णव रूपी शून्य में प्रतीत होता है ।

इससे पाठक गण स्वयं अनुमान करें कि वह कार्णार्णव समुद्र जिसको ग्रन्थकार प्रथम शून्य कहते हैं । कितना बड़ा है ।

याते दश दश गुनी सहस्र शत शून्य पुनि—

उपरोक्त प्रथम शून्य से दश दश गुनी अधिक सहस्र शत शून्य अर्थात १०००× १००=१००००० एकलाख की संख्या तक की एक दूसरे से दस दस गुनी बढ़ती हुई पाँच शून्य अर्थात पाँच लोक हैं यानी (१०–१००–१०००–१००००–१०००००) अर्थात

कार्णार्णव समुद्र से दश दश गुना अधिक क्रम से पाँच लोक हैं जिनके नाम—मुक्तिपद, अनुरुद्ध, प्रद्युम्न, शंकर्षण तथा वासुदेव लोक हैं। यह सब लोक महा वैकुण्ठ के अन्तर्गत हैं। इन चारों लोकों के अधिपतियों को चतुर्व्यूह अवतार कहते हैं। इनके अङ्गी श्रीकृष्ण हैं। यथाः—

"व्यूहांगिनं ब्रह्मपरं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्"

(वेदान्त कामधेनु)

हम कमल दल लोचन हरी परब्रह्म श्रीकृष्ण का ध्यान करते हैं जो चतुर्व्यूह के अंगी हैं।

तिनतें लख सहस्र महा शून्य अवतंश।—

उपरोक्त सहस्र शत यानी १००००० एक लाख से दश दश गुनी अधिक लख सहस्र (१०००००×१०००=१००००००००) अर्थात दस करोड़ की संख्या तक महा शून्य हैं। यानी (१००००००–१०००००००–१००००००००) तीन महा शून्य अर्थात लोक हैं अर्थात महावैकुण्ठ के अन्तर्गत जो वासुदेव लोक है उससे उर्ध्व में दस दस गुना अधिक क्रम से तीन लोक हैं जिनके नाम द्वारिका, मथुरा तथा गोलोक हैं।

तिन महाशून्य के शिखर पर तेज कौ
कोटि गुनतें गुनों अति अमित विस्तार।
तहाँ निज धाम वृन्दा विपिन जग मगै।
दिव्य वैभवन कौ दिव्य आगार ॥३॥

तिन महा शून्यों के शिखर पर अर्थात श्रीगोलोक के ऊर्ध्व में तेज का कोटि गुण तें गुनों अमित विस्तार है अर्थात एक असीम तेज मय लोक है वहाँ ही अनन्त वैभव शाली श्रीनित्य वृन्दावन विराज मान है। यथाः—

स्कन्द पुराणे वैष्णव खण्डे नारदस्य गोलोक यात्रायां पञ्चमहा भूताहंकारमहत्तत्वमूल प्रकृति पर्य्यन्ताष्टावरणान्यति क्रम्य विरजा नदीं तीर्त्वा गोलोकस्थ षोडश द्वारातिक्रमण वर्णनानन्तरम्—

सूत उवाचः—

श्रीदामानं च नत्वाऽसौ प्रविष्टोऽन्तस्तदाज्ञया।
महा चतुष्के वितते तेजोऽपश्यन्महोच्चयम् ॥

तत्त्वैक काल संभूतं कोटि कोटचर्क सन्निभम् ।
स व्यचष्ट महत्तेजो दिव्यं सितत‍रं मुने ।।
दिशश्च विदिशः सर्व्वा उर्ध्वाधो व्याप्नुवान्यतः ।
व्यतीत्य मूर्धिन पश्यन्ति वासुदेव प्रसादतः ।
यद् ब्रह्मपुर मित्याहुर्भगवद्धाम सात्वताः ।।
पतन्ति बलिहस्तानि गोप गोपी व्रजाश्च यम् ।
कृष्ण स्यानुग्रहो यस्मिन्स तेजसि समीक्षते ।।
केवलं तेज एवान्ये पश्यन्ति न तु तं मुने ।
तस्मिन्ददर्शाद् भूत दिव्य मन्दिरं विचित्र रत्नेन्द्रमयं मनोज्ञम् ।
रत्नोज्वलस्तम्भसहस्त्र कान्तम् महासभामण्डपदर्शनीयम् ।। इत्यादि

(स्कन्ध पुराण)

स्कन्ध पुराण के वैष्णव खण्ड में वर्णित है:—

जब नारद जी ने गोलोक यात्रा की थी तव वह पहले पञ्च महाभूत, अहंकार, महत् तत्व और प्रकृति आदि आठ आवर्णो का अतिक्रम करके विरजा नदी से पार हुए फिर गोलोक के सोलह दरवाजों से गुजरे वहाँ सूतजी कहते हैं:—

श्रीनारद जी श्रीदामा को प्रणाम करिके उनकी आज्ञा से चतुष्कोण स्थान के भीतर प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने एक प्रकाण्ड दिव्य इस प्रकार के तेज को देखा मानों करोड़ों सूर्य एक काल में ही उदित हो रहे हों। वह तेज नीचे ऊपर सब दिशाओं में व्याप्त है। फिर उन्होंने उस तेज को अतिक्रम करके श्रीकृष्ण की कृपा से ब्रह्म पुरी के दर्शन किये इसी को वैष्णव लोग गोलोक कहते हैं यहाँ ही गोपी गोप तथा गौएं रहती हैं। वही लोग यहां के दर्शन कर सकते हैं जिन पर श्रीकृष्ण की कृपा होती है। अन्यथा यहाँ तेज ही तेज दिखाई देता है। फिर नारद जी ने एक ऐसे अद्भुत दिव्य महल के दर्शन किये जो अनेक प्रकार की विचित्र मणियों से खचित होने से अति सुन्दर है, जिसमें हजारों मणिमय स्तम्भ हैं और जो सभा मंडप आदि से सुशोभित है यही श्रीवृन्दावन है। पुनः यथा—

"पारशून्यपर धाम तेऽद्भूतं चिद्घनं जयति लोक मूर्द्धनि ।
व्यापकं च परिखाऽसरिद्वराऽचिन्त्यशक्ति नवमङ्गलध्वनिः ।।"

(श्रीकृष्णस्तवराजे पूर्वाचार्य्यैंभगवन्निम्बार्क सिद्धान्त विभ्दिरिति)

हे भगवान आपके धाम की जय हो ! जो सब शून्यों से परे अर्थात सीमा रहित है। जो अद्भुत, चिद्घन व्यापक तथा सब लोकों के ऊपर है। जो चारों ओर से श्रीयमुना जी से घिरा हुआ है। जिसकी शक्ति अचिन्त्य है। और जहां मङ्गल ध्वनि हो रही है। पुनः यथाः—

तत्स्थानं कोटि ब्रह्माण्ड महाशून्याद्विलक्षणम्।
मानं तस्यापि किमपि विद्यते नैव शांभवि ॥ (आलमन्दार संहिता)

हे पार्वती ! श्रीनित्य वृन्दावन कोटि कोटि ब्रह्माण्डों युक्त महाशून्यों से विलक्षण है। उस धाम की कोई धाम समता नहीं कर सकता है।

श्रीआचार्य चरण जीव गोस्वामी पाद ने भी अपने "श्रीकृष्ण संदर्भ" में उपरोक्त विषय को इस प्रकार वर्णित किया है। यथाः—

"स्वायम्भुवागमे च स्वतन्त्रतयैव सर्वो परि तत्स्थान मुक्तम्।

यथा ईश्वर देवो संवादेः--

ध्यायेत्तत्र विशुद्धात्मा इदं सर्वं क्रमेणतु।
नानाकल्पलता कीर्णं वैकुण्ठं व्यापकं स्मरेत् ॥
अधः साम्यं गुणानाञ्च प्रकृति सर्व कारणम्।
प्रकृतेः कारणान्येव गुणांश्च क्रमशः प्रथक्
ततस्तु ब्रह्मणो लोकं ब्रह्मचिन्हं स्मरेत् सुधीः ॥
ऊर्द्धेतु सीम्नि विरजां निः सीमां वरवर्णिनि।
वेदाङ्ग स्वेद जनि ततोयैं प्रसावितां शुभाम् ॥"
"ततो निर्वाण पदवीं मुनीनामूर्द्धरेत साम्।
स्मरेत्तु परम व्योम यत्र देवाः सनातनाः ॥
ततोऽनिरुद्धलोकञ्च प्रद्युम्नस्य यथा क्रमम्।
संकर्षणस्य च तथा वासु देवस्य च स्मरेत् ॥"
"लोकाधिपान् स्मरे दित्या ह्यनन्तरञ्च।
पीयूष लतिका कीर्णां नाना सत्वनिषेविताम् ॥
सर्वर्त्तु सुखदां स्वच्छां सर्वजन्तुसुखावहाम्।
नीलोत्पल दल श्यामां वायुना चालितां मृदु
वृन्दावन परागैस्तु वासितां कृष्ण वल्लभाम्।

सीम्नि कुञ्ज तटां योषित क्रीड़ा मण्डप मध्यमाम्
कालिन्दीं संस्मोद्धी मान् सुवर्ण तट पङ्कजाम् ।
नित्य नूतन पुष्पादि रञ्जितं सुख सङ्कुलम् ।।"
"स्वात्मानन्द सुखोत्कर्ष शब्दादि विषयात्मकम् ।
नाना चित्र विहङ्गादि ध्वनिभिः परिरञ्जितम् ।।
नाना रत्न लताशोभिमत्तालि ध्वनि मण्डितम् ।
चिन्तामणिपरिछन्नं ज्योत्स्नाजाल समाकुलम् ।।
सर्वर्त्तु फल पुष्पाढ्यं प्रवालैः शोभितं परि ।
कालिन्दी जल संसर्गि वायुना कम्पितं मुहुः ।।
"वृन्दावनं कुसुमितं नाना वृक्ष विहङ्गमैः ।
संस्मरेत साधको धीमान् विलासैक निकेतनम् ।।"
"तस्माद् या यथा भुवि वर्तन्ते पुर्यो भगवतः प्रियाः ।
तास्तथा सन्ति वैकुण्ठे तत्तल्लीलार्थ मादृताइति ।।" (स्कन्ध पुराण)

इति न्यायाच्च स्वतंत्र एव द्वारका मथुरा गोकुलात्मकः श्रीकृष्ण लोकः स्वयं भगवतो विहारास्पदत्वेन भवति सर्वोपरीति सिद्धम् । (श्रीकृष्ण संदर्भ)

'वायम्भू आगम तन्त्र' नित्य वृन्दावन को स्वतन्त्ररूप से सब लोकों के ऊपर वर्णन किया गया है । वहाँ श्रीमहादेव जी तथा पार्वती जी का सम्वाद इस प्रकार है:—

"विशुद्धात्मा साधक पहले इस प्रपञ्च लोक का क्रम से ध्यान करे । पीछे उस व्यापक वैकुण्ठ को स्मरण करे जिसमें नाना प्रकार की कल्पलता हैं । उस वैकुण्ठ के नीचे सब के कारण तथा तीनों गुणों की साम्यावस्था स्वरूप प्रकृति को देखे । फिर प्रकृति सम्बन्धी कारणों को तथा तीनों गुणों को अलग अलग जाने । इसके बाद श्रीब्रह्माजी के सत्य लोक का स्मरण करे । हे पार्वती ! इसके पीछे माया को उर्ध्व सीमा पर असीम उस विरजा नदी (कारण समुद्र) का ध्यान करे जिसमें वेदों के पसीना रूप पवित्र जल वह रहा है । इस विरजा (कार्णार्णव) के ऊपर कैवल्य मुक्ति का स्थान ब्रह्म लोक है । जहाँ उर्ध्वरेता मुनियों की मुक्ति होती है । उसके ऊपर वैकुण्ठ लोक है जहाँ के देवता सब नित्य हैं । उसके मूर्ध्नि में क्रम से अनुरुद्ध, प्रद्युम्न, शंकर्षण तथा वासुदेव यह चतुर्व्यूह के चार लोक हैं । तत् तत् लोकों के अधिपतियों का स्मरण करना चाहिये । इसके ऊपर श्रीवृन्दावन का वर्णन करते हुए कहते हैं—साधक पहले श्रीकृष्ण की प्यारी

उस श्रीयमुना जी का ध्यान करे जो अमृतमय लतिकाओं से व्याप्त है जिसको अनेक जीव तन्तु सेवन करते हैं। जो . निर्मल तथा सब ऋतुओं में सबको सुख देने वाली है। जिसका वर्ण नीलकमल सदृश श्याम है जिसमें वायु द्वारा छोटी छोटी लहरें उठ रही हैं। जिसका जल वृन्दावन के फूलों के पराग से सुगन्धित हो रहा है। जिसके तट कुञ्जों द्वारा सुशोभित हैं। जिसके बीच में गोपियों के विहार करने का मंडप है। जिसके दोनों तट स्वर्ण मंडित हैं। जहां स्वर्ण कमल खिल रहे हैं।

इस प्रकार यमुना जी के तट पर उस वृन्दावन का ध्यान करे जो नित्य नूतन पुष्पों से सुशोभित होने से सबको सुखास्पद हैं। जहाँ के रूप रस आदि विषय ब्रह्मानन्द से भी अधिक आनन्द प्रदान करने वाले हैं। जहाँ अनेक प्रकार के चित्र विचित्र पक्षी चिकुर चिकुर मुकुर मुकुर कर रहे हैं। जहाँ विविध प्रकार की रत्न लताओं पर मत्त भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं। जहाँ की भूमि चिन्तामणि होने से देदीप्य हो रही है। जहाँ को तरुलता सब ऋतुओं में होने वाले फल फूलों को नित्य प्रदान करती हैं। जो चारों ओर मणि मूँगा आदि से सुशोभित है। जहाँ जमुना जल को स्पर्श करता हुआ शीतल मन्द सुगन्ध वायु चल रहा है। इस प्रकार साधक श्रीप्रिया-प्रीतम के विलास स्थान— श्रीवृन्दावन का स्मरण करें।

इस प्रकरण से यह निश्चय हुआ कि अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, शंकर्षण तथा वासुदेव आदि लोक प्रथक प्रथक हैं।

"तस्माद या यथा भुवि वर्त्तन्ते" इत्यादि 'स्कन्ध पुराण' के श्लोक से यह सिद्ध होता है कि जैसे इस पृथ्वी पर द्वारका, मथुरा आदि धाम हैं इसी प्रकार लीला समाधान के कारण वैकुण्ठ में भी प्रथक प्रथक धाम हैं।

इससे यह सिद्ध हुआ वैकुण्ठ आदि सब धामों के ऊपर स्वतन्त्र रूप से द्वारका, मथुरा तथा गोलोक श्रीकृष्ण के विहार स्थल हों श्रीमहावाणी में श्रीवृन्दावन को गोलोक मे भी पृथक तथा उसके ऊपर वर्णन किया गया है। जिसकी पुष्टि पद्म पुराण पाताल खण्ड वृन्दावन माहात्म्य के इस श्लोक से होती है। यथा:—

गतो राधापतिस्थानं यत्सिध्यैरप्य गोचरम्।
ततश्च तदुपादिष्टो गोलोकादुपरिस्थितम् ॥
नित्यं वृन्दावनं नाम नित्य रास रसोत्सवम्।
अदृश्यं परमं गुह्यं पूर्ण प्रेम रसात्मकम् ॥

अनन्तैश्चिज्ज्योत्सना रस जलधिपूरैस्ततरता
वहद्भिर्गोलोकावधि सकल संप्लावनकरम् ।
अहोसर्वस्योपर्य्यतिविमलविस्तीर्ण मधुर
स्फुरच्चन्द्र प्रायं स्फुरति ममवृन्दावननिदम् ॥ (चतुर्थ शतम श्लोः ८३)

वह (अर्जुन) उस नित्य वृन्दावन में गये जो गोलोक से भी ऊपर विराजमान है जहाँ नित्य रास रसोत्सव हो रहे हैं। जो स्थान गुह्य से भी गुह्य तथा पूर्णप्रेम रसात्मक है।

१०००००००००००००००००००० श्रीवृन्दावन
१०००००००००००००००००००
१००००००००००००००००००
१०००००००००००००००००
१००००००००००००००००
१०००००००००००००००
१००००००००००००००
१०००००००००००००
१००००००००००००
१०००००००००००
१००००००००००

(तिन महा शून्य के शिखर पर तेज की, कोटि गुनो अति अमित विस्तार ॥)

१००००००००० श्रीगोलोक
१०००००००० श्रीमथुरा
१००००००० श्रीद्वारिका
१०००००० वासुदेव लोक
१००००० शंकर्षण लोक
१०००० प्रद्युम्न लोक
१००० अनिरुद्ध लोक
१०० मुक्तिस्थान

(वासुदेव लोक से अनिरुद्ध लोक तक — महावैकुण्ठ)

१ विरजा नदी या कार्णार्णव जहाँ महा वैराट जिसको महाविष्णु, प्रथम पुरुष तथा कार्णार्णव शायी भी कहते हैं, रहते हैं।

मन बचन हूँ जहाँ पहुँचि शकत न कवहुँ
बुद्धि विथकित चित हू अति ही असमर्थ।

क्योंकि यह श्रीवृन्दावन धाम अत्यन्त दुर्लभ है इसलिये मन, बचन द्वारा वहाँ कभी भी नहीं पहुँच सकते हैं। बिचार करते करते बुद्धि विथकित हो जाती है चित्त भी उसकी प्राप्ती के लिये असमर्थ है। यथा:—

"गुणातीतं तु तद्धाम सुन्दरं सर्वं दुर्लभम् ।
युगलं क्रीडते तत्र नित्य धाम्नि सुखास्पदे ।।"
(स. कु. सं. ३१ पटल श्लोक. ३६)

श्रीयुगल किशोर जहाँ विहार करते हैं यह वृन्दावन धाम गुणातीत, सर्वसुन्दर, अत्यन्त दुर्लभ तथा सुखास्पद है।

इसीलिये मन, बच, बुद्धि तथा चित्त द्वारा वहाँ पहुँचना अत्यन्त दुर्लभ है।

सकल साधन स्वकृत मुक्ति सारिष्टि लगि
बिन कृपा कोटि कोटयान विधि व्यर्थ ।।४।।

वेद पुराण आदि शास्त्रों में धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष—चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिये ही भिन्न भिन्न साधन वर्णन किये गये हैं। सब साधन सार्ष्टि मुक्ति प्राप्ति तक ही हैं। मुक्तियाँ पाँच प्रकार की हैं—सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य सारूप्य तथा सायुज्य। इनमें सार्ष्टि मुक्ति प्रधाना है। अन्य मुक्तियां आनन्द स्वरूप होते हुए भी स्वयं भोग विलास में असमर्थ हैं सार्ष्टि मुक्ति में भोग विलास भोगने के विलक्षणता है "हरिणार्त्तयमानोऽपि सार्ष्ट्याादि स्तुष्यतावरः।" (भः रः सिन्धु पृः ४५२)

ग्रन्थकार का कथन है यद्यपि बिना भगवत् कृपा कोई साधन भी फलित नहीं हो सकता है तो भी परा भक्ति बिना श्रीप्रिया प्रीतम का वृन्दावन धाम प्राप्त नहीं हो सकता है। परा भक्ति एक मात्र उनकी कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। यथा:—

"ज्ञानतः सुलभामुक्ति भुंक्ति यज्ञादि पुण्यतः।
सेयं साधन साहस्रं हरि भक्ति सु दुर्लभा ।।" (तन्त्र)

ज्ञान द्वारा मुक्ति सुलभ है। धर्म अर्थ और काम यज्ञादि अनुष्टान करने से उनके पुण्य से मिल सकते हैं। परन्तु हजारों साधन करने से भी हरि भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है।

"निदानन्तु परं प्रेम्णः श्रीकृष्ण करुणा भरः"

(वृ. भागवतामृत खं. २ अं ५ श्लो.२१५)

उस प्रेम प्राप्ति का मुख्य कारण तो श्रीकृष्ण की कृपा ही है।

प्रेम के हुए बिना श्रीनित्य वृन्दावन में प्रवेश नहीं हो सकता है। यथाः—

"गुणातीतं महद्धाम प्रेमभक्ति स्वरूपकम्।
वृन्दया चावनं यस्मात्तस्माद् वृन्दावनं स्मृतम् ॥" (कृष्णोपनिषद)

क्योंकि वह धाम गुणातीत प्रेम भक्ति स्वरूपा है। इसीलिये उसको वृन्दावन कहते हैं। "वृन्दा" नाम भक्ति का है 'अवनं' 'रक्षणं' अर्थात जहाँ भक्ति द्वारा ही रक्षण होता है उसको वृन्दावन कहते हैं।

नित्य विहरत जहाँ नित्य कैशोर दोउ
नित्य सहचरिन सँग नित्य नव रङ्ग।
नित्य रस रास उल्लास आनन्द उर,
नित्य प्रति काश पर भास अङ्ग अङ्ग ॥५॥

श्रीयुग्मतत्त्व समीक्षा यथाः—

यौ नित्यौ नवदम्पती रस मयौ लीलाविलासोन्मदे
गौर श्याम तनू किशोरवयसौ सन्नील पीताम्बरौ।
नित्यानन्त सखी जनैः सुरसितौ वृन्दावनोल्लासि
तौ राधापुरुषोत्तमौ विजयतां मन्मानसे सर्वदा ॥ (यु. त. भाव मयूरव)

वे श्रीप्रिया-प्रीतम सदैव मेरे मन मन्दिर में विराजमान होकर जय को प्राप्त हों, जो नित्य नव दम्पती हैं, रस मयी लीला विलास से उन्मत्त हो रहे हैं। जिनके अङ्ग की कांति गौर और श्याम है। जो नित्य कैशोर अवस्था वाले हैं नील तथा पीत पट को धारण किये हुए हैं जो अनन्त सखी जनों से नित्य वेष्टित रहते हैं। जो श्रीवृन्दावन में रस में आविष्ट होकर उल्लास को प्राप्त हो रहे हैं।

निर्विकार निराकार चैतन्य तन विश्व,
व्यापक प्रकृति पुरुष के ईश।
अक्षरातीत परब्रह्म परमात्मा सर्व
कारन परें ज्योति जगदीश ॥६॥

निर्विकार=विकार रहित । निराकार=प्राकृत आकार रहित ।
चैतन्य तन=सच्चिदानन्द स्वरूप । विश्व व्यापक=संसार की प्रत्येक वस्तुओं में व्यापक । प्रकृति पुरुष कौ ईश=जड़ चैतन्य सबके स्वामी ।

अक्षरातीत=क्षर तथा अक्षर से परे अर्थात उत्तम पुरुष ।
परब्रह्म=ब्रह्म से भी परे । परमात्मा=सबके नियामक ।
सर्व कारन परें=नैमित्य तथा उपादान कारणों से परे ।
ज्योति=ज्योति स्वरूप । जगदीश=जगत् के ईश्वर ।

उपरोक्त विशेषणों की पुष्टि के लिये पद्म पुराण पाताल खण्ड वृन्दावन माहात्म्य के श्लोक उधृत किये जाते हैं । इन श्लोकों में प्रायः सब विशेषण आ गये हैं । यथाः—

श्रीवेदव्यास उवाच— ततो मामाह भगवान् वृन्दावन चरः स्वयम् ।
यदिदं मे त्वया दृष्ट मिदं रूपं सनातनम् ।।
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं सच्चिदानंद विग्रहम् ।
पूर्ण पद्म पलाशाक्षं नातः परतरं मम ।।"

श्रीकृष्ण उवाच-"यदद्य मे त्वया दृष्ट निदं रूपमलौकिकम् ।
घनीभूतामल प्रेम सच्चिदानंद विग्रहम् ।।
नीरूपं निर्गुणं व्यापि क्रियाहीनं परात्परम् ।
वदंत्युपनिषत्संघा इदमेव ममानघम् ।।
प्रकृत्युत्थगुणभाा वादनंत त्वात्तथेश्वरम् ।
असिद्धत्वान्मद् गुणानां निर्गुणं मां वदन्ति हि ।।
अदृश्य त्वान्ममै तस्य रूपस्य चर्म चक्षुषा ।
अरूपं मां वदंत्येते वेदाः सर्वे सुरेश्वर ।।
व्यापकत्वाच्चि दंशेन ब्रह्मेति च विदुर्बुधाः ।।
अकर्तृत्वा त्प्रपञ्चस्य निष्क्रियं मां वदन्ति हि ।।
(पद्मपुराण पाताल खंड वृ. भा.)

श्रीवेदव्यास जी श्रीअम्बरीष जी से कहते हैं :—

तब मुझ से—वृन्दाविहारी स्वयं श्रीकृष्ण ने कहाः—तुमने जो यह कमल नयन स्वरूप मेरा रूप देखा है यही सनातन, शुद्ध, क्रिया रहित शांत, पूर्ण सच्चिदानंद स्वरूप

है इससे पर तर और कोई मेरा स्वरूप नहीं, वेद इसी स्वरूप को ही सत्य, परमानंद, चिद्घन, शाश्वत, शिव तथा सब कारणों के कारण स्वरूप वर्णन करते हैं।

श्रीकृष्ण श्रीमहादेव जी से कहते हैं।—

जो आप अभी मेरा रूप देख रहे हो यह रूप अलौकिक, घनीभूत, शुद्ध प्रेम तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है। उपनिषद समूह इसी रूप को निर्गुण निरूप, व्यापक, क्रिया हींन, दोष रहित तथा पर से पर तत्व वर्णन करते हैं। मेरे इस रूप में प्रकृति के गुण नहीं और यह अनन्त हैं इसलिये ही मुझको ईश्वर कहते हैं। मेरे गुण मायिक नहीं हैं इसलिये मुझको निर्गुण कहते हैं। चर्म चक्षु द्वारा मेरे इस रूप के दर्शन नहीं हो सकते हैं इसलिये वेद मुझको अरूप कहते हैं। मैं चिद् अंश द्वारा सर्वत्र व्याप्त हूँ इसीलिये विद्वान लोग मुझको ब्रह्म कहते हैं। मायिक जगत का मैं कर्त्ता नहीं हूँ इसीलिये मुझको निश्क्रिय कहते हैं।

नाद के अण्ड तें अखण्ड धारा द्रवत,
स्रवत जामध्य सत सृष्टि के हेत।
जिहिं जिहिं भाँति जे जे उपासत जिन्हे,
तिहीं तिहीं भाँति ते ते तिन्हैं देत ॥७॥

यहाँ "नाद के अण्ड" का तात्पर्य शब्द ब्रह्म से है। जिसका प्राकट्य श्रीप्रियाजी के नूपुर के शब्द से हुआ है। यथा:—

श्रीराधा पद कमल तें नूपुर कलरव होय।
निर्विकार व्यापक मयी शब्द ब्रह्म कहैं सोय ॥" (म. वा. सि. सु. पद २६)

इसी नूपुर शब्द से ही 'सत् सृष्टि' अर्थात अनंत कोटि वैकुण्ठ आदि भगवत् धाम तत् तत् अधिपतियों सहित प्रकट हुए हैं। यथा:—

सूक्षम कलरव जन्य ब्रह्म पर परम धाम को परमाधार।
अंघ्रि अब्ज आभूषण रव कर केतिन केति लेत अवतार ॥ (म. वा. सि. सु. प.२)

इत्यादि वाक्यों द्वारा ग्रन्थकार पहले वर्णन कर चुके हैं। साधक गण जिन जिन भावों द्वारा तत् तत् वैकुण्ठादि सत् लोकों के अधिपतियों की उपासना करते हैं उनके तत् तत् भावों के अनुसार वे फल प्रदान करते हैं।

उपरोक्त विषय की पुष्टि के लिये "सनत्कुमार संहिता" "तथा गौतमीय तन्त्र" के प्रमाण पहले दिये जा चुके हैं। पद पृष्ठ

तत्व के तत्व सिद्धान्त सिद्धान्त के, सार के सार सुख रूप के रूप ।

यथा:—"वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।" (भा. स्क. १ अ. २ श्लो. ११)

अर्थात तत्व वेत्ता लोग अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप ज्ञान को ही तत्व कहते हैं। उसी को कोई ब्रह्म कोई परमात्मा और कोई भगवान के नाम से पुकारते हैं ।

यहाँ ग्रन्थकार कहते हैं कि श्रीप्रिया प्रीतम ही सब तत्वों के तत्व, सब सिद्धान्तों के सिद्धान्त सार के सार तथा सुखों के सुख स्वरूप हैं ।

अमित ऐश्वर्य्य माधुर्य श्रीहरिप्रिया भाव तिनु भौन को भाँवते भूप ।।

यथा:—"एते चांश कला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान स्वयम्" (भा. स्क. १ अ ३ श्लो.२८)

अन्य सब अवतार तो भगवान् के अंशावतार अथवा कलावतार हैं परन्तु भगवान श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान अर्थात् अवतारी हैं। भगवान उनको कहते हैं जो षडैश्वर्य परिपूर्ण हों । यथा:—"षड्विधैश्वर्य्य परिपूर्णो भगवान्"

श्रीकृष्ण तो उपरोक्त छः गुणों से युक्त तो हैं ही बल्कि उनमें और भगवत् स्वरूपों की अपेक्षा चार माधुर्य्य गुण अधिक हैं । यथा:—

लीला प्रेम्णा च प्रेष्ठत्वं माधर्य्यं वेणु रूपयो: ।
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम् ।।(भक्ति रसामृत सिन्धु)

लीला माधुर्य्य, प्रेम माधुर्य्य, वेणु माधुर्य्य तथा रूप माधुर्य्य यह श्रीगोविन्द के असाधारण चार माधुर्य्य गुण हैं ।

श्रीप्रिया प्रीतम का भाव-अर्थात प्रेम तीनों भुवनों के भाँवते भूप हैं तीनों भुवनों से तात्पर्य पृथ्वी के ऊपर भू भुवः स्व मह जन तप तथा सत्य और नीचे अतल, वितल सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल से है अथवा तीनों भुवनों से त्रिपाद विभूति भी अर्थ हो सकता है । तुक में 'भाव' शब्द का अर्थ होता है । यहाँ भाव शब्द से और कोई विशेष अर्थ ग्रहण नहीं करना चाहिये । अर्थात तीनों भुवनों के भाँवते भूप हैं ।

॥ दोहा ॥

भर्म तजौ हरिप्रिया भजौ, सजौ अनन्य व्रत एक ।
यही यही निश्चै कहौ, सही गही उर टेक ॥

॥ पद ॥१२॥

यही है यही है भूलि भरमों न, कोउ भूलि भरमें तें भव भटक मरिहौ ।
लाड़िलीलाल के नित्य सुखसार बिन कौंन बिधि वारतें पार परिहौ ॥
एक अनन्य की टेक उर में धरौ परिहरौ भर्म ज्यौं फूलि फरिहौ ।
श्रिया हरिप्रिया के परम पद पासु ही आसु अनयासु ही बासु करिहौ ॥१२

नित्य वृन्दावन का ईश्वरत्व स्वरूप पहले पद में वर्णन कर चुके हैं । साधक गण पूर्व बर्णित वृन्दावन को इस भौम वृन्दावन से प्रथक न समझ लेवें इस भ्रम का निवारण करते हुए श्रीभौम वृन्दावन में बैठे हुए ग्रन्थकार पुनः कहते हैं । "यही है यही है" इत्यादि । "भर्म तजौ हरि प्रिया भजौ सजौ अनन्य व्रत एक ।"

"एक अनन्य की टेक उर में धरौ
परिहरौ भर्म ज्यौं फूलि फरि हौ ॥

श्रीग्रन्थकार के श्रीगुरुपाद श्रीभट्टजी श्रीवृन्दावन की अनन्यता के विषय में कहते हैं:

"रे मन वृन्दाविपिन निहारि ।
यदपि मिलै कोटि चिन्तामनि तदपि न हाथ पसार ॥

पूर्व पद में वर्णित श्रीनित्य वृन्दावन जो गोलोक से भी ऊपर विराजमान है तथा भौम वृन्दावन की एकता है । इस विषय में पद्म पुराण का प्रमाण यह है । यथाः—

"नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थितम् ।
पूर्ण ब्रह्म सुखैश्वर्य्यं नित्यमानन्दमव्ययम् ।
वैकुण्ठादि तदंशांशं स्वयं वृन्दावनं भुवि ।"

जिस वृन्दावन का स्वरूप पूर्ण ब्रह्म, पूर्ण सुख, पूर्ण ऐश्वर्य्य, नित्य आनन्द तथा अव्यय है वह सब ब्रह्माण्डों से ऊपर विराजमान है । वैकुण्ठ उसके एक अंश के भी अंश स्वरूप है । वही श्रीवृन्दावन पृथ्वी पर अभेद रूप से स्थित है । यहां इतना समझ लेना चाहिये कि "जात रति" भक्त को ही भौम वृन्दावन में बसते हुए साक्षात स्वरूप के दर्शन होते हैं । यथाः—

लाड़िलो लाल के नित्य सुख सार बिन,
कौन विधि वार ते पार परिहौ।

श्रीप्रिया प्रीतम को छोड़कर इस संसार रूपी सागर के वारि से यह जीव और किसी बिधि पार नहीं हो सकता है। यथाः—

"नान्यागतिः कृष्णपदार विन्दात् सन्दृश्यते ब्रह्म शिवादि वन्दितात्।"

(वेदान्त कामधेनु)

जिनके चरणारविन्दों में श्रीब्रह्मा शिव आदि प्रणाम करते हैं उन चरण कमल रूपी नौका को छोड़कर इस संसार से पार होने का और कोई उपाय नहीं है।

एक अनन्य की टेक उर में धरो
परिहरौ भर्म ज्यों फूलि फरिहौ।
श्रिया हरिप्रिया के परम पद पास ही
आशु अनयास ही वास करिहौ॥

यथाः—"तवास्मीति वदन्वाचा तथैव मनसा स्मरन्।
तद्धाममाश्रितस्तन्वा मोदते शरणा गतः॥" (हरि भक्ति विलास)

शरणागत साधक श्रीवृन्दावन में शरीर द्वारा निवास करता हुआ, बाणी तथा मन से यह कहता हुआ "हे भगवन! मैं आपका हूँ" आनन्द को प्राप्त होता है। पुनः यथाः—

आभास दोहा—जाकौ नाम हि लेत सन देत जुगल निज कूल।
जै जै वृन्दावन जु है महा आनन्द कौ मूल॥

पद इकताल—जै जै वृन्दावन आनंद मूल
नाम लेत पावत जु प्रनय रति जुगल किशोर देत निज कूल।
सरन आय पाये राधाधव मिटो अनेक जनम की भूल।
ऐसे ही जानि वृन्दावन श्रीभट रज पर वारि कोटि मखतूल॥

(श्रीयुगल शतक)

॥ अनुरागिनि विलासावलि मध्याभास॥

॥ दोहा॥

अग्रवर्ति इहि अवसरहिं, आई धरि बर वेस।
ओर निबाहू संग मिलि, चलहु चलें निज देस॥

॥ पद ॥१३॥

चलहु चलहु चलियें निज देस।
रंग-रँगीले जुग नरेस जहाँ दिब्यकनकमय,
अवनि अखंडित मनिमंडित तहाँ करें प्रवेस॥
करुणानिधि श्री नित्यकिसोरी करि अनुकंप कियौ आदेस।
आई अग्रवर्ति अलबेली धरि बर इच्छा विग्रह वेस॥
ऐसो अवसर बहुरि न ऐहैं ओर निबाहू संग सुदेस।
नेम प्रेम तें परे पंथ तहाँ तुरत पहुँचि हैं अलि अकलेस॥
मंजनादि नवसत अभरन तन सजियें मनरंजन सुभ वेस।
बिबिध सुगंधनि अङ्ग अङ्गनि में करहु अलंकृत कुसुम सुकेस॥
सब जन भये अनुकूल अयन के भय न रह्यौ अब तनकहु सेस।
सकुन समागम अगम जनावत प्रतिकूलिन के गये लवलेस॥
सुफल फली मन रली सबनि की जागे निज निज भाग बिसेस।
हिलिमिलि हुलसि हियें हर्षहु अहु निरखहु श्रीहरिप्रिया परेस॥१३॥

अग्रवर्ति=श्रीरङ्गदेव्यादि यूथेश्वरी। निज देश=श्रीनित्य वृन्दावन। युग नरेश=रसिक दम्पति। श्रीप्रिया प्रीतम। पेश=पेशल=सुन्दर, मनोहर।

अग्रवर्ति इहि अवसरहिं आई धर वर वेष।
और निवाहू सङ्ग मिलि चलहु चलें निज देष॥
चलहु चलहु चलियें निज देश रङ्ग रङ्गीले युग नरेश
जहाँ दिव्य कनक मय अवनि अखण्डित मनिमण्डित जहाँ करें प्रवेश॥
करुना निधि श्रीनित्य किशोरी करि अनुकम्प कियौ आदेश।
आई अग्रवर्ति अलवेलो धारि वर इच्छा विग्रह पेश॥१॥

श्रीरङ्ग देवी आदि यूथेश्वरियों को करुणानिधि श्रीनित्य किशोरी प्रिया जी ने आज्ञा दी है कि "तुम पृथ्वी पर जाकर माया ग्रसित जीवों का कल्याण करो और उन्हें मेरी ओर लगाओ।" इसलिये वे रङ्गदेवी आदि यूथेश्वरी जो अपनी इच्छा से सुन्दर आचार्य रूप से प्रकट होकर आदेश कर रही हैं "चलहु चलहु चलिये निज देश"

श्रीवृन्दावन जहाँ कि रसिक दम्पति युगल नरेश हैं। जिस वृन्दावन की भूमि स्वर्ण मयी रत्न खचित है। यथा:—

"एकदा समये भक्त ललिता करुणामयी।
सर्वं च वीक्ष्य संसारं तमो रूपं गत्तार्थकम्॥
राधा समीपमागत्य मधुरं वाक्यमब्रवीत्।
॥ ललितोवाच॥ राधिके भक्त शरणे श्रृणुष्व वचनं मम।
भ्रमन्ति सर्व जीवाश्च विश्वार्णव तमोमये॥
तेषां क्वापि गतिर्नास्त्युपदेष्टारं विना प्रिये।
पृथिव्यां गम्यतेऽस्माभिस्त्रिगुणायां च सुन्दरि॥"
(स. कु. सं-पटल ३३ श्लोक. ५,६,७,८)

एक बार करुणामयी भक्त वत्सल श्रीललिता जी ने सब संसार को तम रूपी गर्त्त में पड़े हुए देख कर श्रीराधिका जी के समीप आकर इस प्रकार मधुर वचन कहे। श्रीललिता जी बोली। "हे श्रीराधिका जी भक्तों की एक मात्र गति आपही हैं मेरे बचन सुनिये। इस समय सब जीव तम रूपी संसार समुद्र में डूबे हुए हैं। हे प्रिये! बिना उपदेष्टा के उनकी कोई गति नहीं है। इसलिये हे सुन्दरी! यदि आप की आज्ञा हो तो हम सबको उनका कल्याण करने के लिये पृथ्वी पर जाना चाहिये।"

इन वाक्यों को सुनकर श्रीरङ्गदेव्यादि यूथेश्वरी तथा श्रीहरिप्रिया आदि सहेलियां इस पृथ्वी मण्डल पर अपनी इच्छा से सुन्दर आचार्य स्वरूप से प्रकट हुई हैं। जैसे भगवान आज्ञा करते हैं। यथा:—

"आचार्य चैत्य वपुषा स्वगतिं व्यनक्ति॥" (भा. ११ स्क. २९ अ. ६ श्लो.)

जिस प्रकार भगवान आचार्य रूप से प्रकट होकर अपनी प्राप्ति का स्वयं मार्ग बतलाते हैं इसी प्रकार उनके परिकर सखी, सहेली आदि भी समय समय पर भू मंडल पर अवतीर्ण होकर अपनी प्राप्ति का स्वयं रास्ता बतलाती हैं।

ऐसौ अवसर बहुरि न अैहै ओर निवाहू संग सुदेश।
नेम प्रेम तें परें पन्थ तहाँ, तुरत पहुँचिहैं अलि अकलेश॥२॥

यूथेश्वरी जो आचार्य वपु से प्रकट हुई हैं साधक को आज्ञा करती हैं कि ऐसा अवसर फिर नहीं आयेगा हम तुमको निकुञ्ज महल तक पहुँचा देंगी। अब निकुञ्ज

प्राप्ति का उपाय बतलाती हैं ।:—"नेम" अर्थात 'विधिभक्ति' 'प्रेम' अर्थात 'विधि भक्ति' के अनुष्ठान से जो प्रेम भक्ति प्रकट होती है । यह दोनों प्रकार की भक्तियां साधक को निकुञ्ज में नहीं पहुँचा सकती हैं। वलिक इन दोनों प्रकार की भक्तियों से पृथक 'परा भक्ति' से ही बिना कष्ट के निकुञ्ज प्राप्ति हो सकती है ।

इन तानों प्रकार को भक्तियों का विस्तार पूर्वक विवेचन मङ्गला चरण के श्लोक को व्याख्या में "परमौ नियम प्रेमणौ........परागम्यौ" के शोर्षक से पहले कर चुके हैं।

मज्जनादि नवसत अभरन तन सजिये मन रञ्जन शुभ वेष ।
विविध सुगंधन अङ्ग अङ्गन में करहु अलंकृत कुशुम सुकेश ।।

परा भक्ति का अनुष्ठान दो तरह से होता है। एक "वाहिक" दूसरा "आन्तरिक" । यथा:—

"सेवा साधक रूपेण सिद्ध रूपेण चात्रहि ।

अर्थात सेवा यथा अवस्थित देह द्वारा तथा अन्तः चिन्तित देह से करनी चाहिये।

"विधि निषेध आदिक जिते कर्म धर्म तजु तासु ।
प्रभु के आश्रय आवहीं सो कहिये निज दासु ।" (म. सि. सु. पद)

इत्यादि पद से ग्रन्थकार पराभक्ति का वाहिक अनुष्ठान वर्णन कर चुके हैं अब उपरोक्त तुक में अन्तश्चिन्तित देह द्वारा सेवा करने की विधि को बतलाते हुए मज्जनादि षोडश शृङ्गार करने की आज्ञा करते हैं । यथा:—

आदौ मज्जन चीर हार तिलकं नेत्रांजनं कुण्डलं,
नासा मौक्तिक पुष्प माल चरणं झंकार वन्नूपुरं ।
अंगे चंदन लेपनं कुचमणिः क्षुद्रावली घंटिका ।
तांबूलं कर कंकणं चतुरता शृङ्गारका शोडषः ।।१।।

इत्यादि । पुनः यथा:—

ततः स्नाता चर्चांशु तिलक लीलाम्बुजमक,
प्यलरक्त स्रग्वेणी प्रति सखतं साञ्जनवती ।
नसि श्रीमन्मुक्ता चिवुक घृत विन्दुः कुसुमयु
क्वचा ताम्बूलास्या षड़धिकवशा कल्प मधुरा ।।
सर्ग १६ श्लो १० (श्रीकृष्णभावनामृतम् श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती)

शोडष शृंगार कहलाते हैं।

ग्रन्थकार आज्ञा करते हैं अन्तश्चिन्तित देह से अपने आपको सखी स्वरूप मानकर सेवा समाधान करे। यथा:—

कृष्ण प्रिया सखी भावं समाश्रित्य प्रयत्नतः।
तयो सेवां प्रकुर्वीत दिवानक्तमतंद्रितः॥
(स. कु. सं पटल ३६ श्लोक १३४)

पुनः यथा:—

आत्मानं चिंतये तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूप यौवन संपन्नां किशोरीं प्रमदा कृतिम्॥
नाना शिल्प कलाभिज्ञां कृष्ण भोगानुरूपिणीम्।
प्रार्थितामपि कृष्णेन तत्रभोग पराङ्मुखीम्॥
राधिकानुचरीं नित्यं तत्सेवन परायणाम्।
कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम्॥
प्रीत्यानुदिवसं यत्नात्तयोः संगम कारिणीम्।
तत्सेवन सुखास्वाद भरेणाति सुनिर्वृताम्॥
इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवां समाचरेत्।
ब्राह्मं मुहूर्तमारभ्य यावत्स्यात्तु महानिशा॥
(स. कु. सं पटल ३६-१८४-१८५-१८६-१८७-१८८)

साधक को अन्तश्चिन्तित देह मे श्रीकृष्ण प्रेयसी श्रीराधिका जी की सखी भाव को यत्न पूर्वक आश्रय करके, तथा आलस को त्याग कर अहर्निश उन दोनों की सेवा में लग जाना चाहिये।

(उसका प्रकार यह है-)

अपनी आत्मा का इस प्रकार चिन्तवन करना चाहिये कि मैं उन मनोरम सखियों में हूँ। रूप, यौवन सम्पन्ना किशोर अवस्था वाली मेरी आकृति है। मैं अनेक प्रकार की शिल्प तथा कलाओं में चतुर हूँ। मैं कृष्ण भोग के अनुरूप होती हुई भी कृष्ण के प्रार्थना करने पर उनसे भोग विलास में पराङ्–मुखी हूँ। मैं श्रीराधिका जी की दासी होकर उनकी सेवा परायणा हूँ। श्रीकृष्ण से भी उनमें अधिक प्रेम करती हूँ। प्रेम

पूर्वक उन दौनों का मिलन कराने के कार्य में लग रही हूँ। उन दौनों के सेवासुख का आस्वादन करती हुई परमानन्द में मगन हूँ।

इस प्रकार अपने आपका चिन्तवन करते हुए ब्राह्म मुहूर्त्त से लेकर अर्द्ध रात्रि पर्य्यन्त उनकी सेवा करती रहे।

सब जन भये अनुकूल अयन के भय न रह्यौ अब तनक हु शेष।
शकुन समागम अगम जनावत प्रतिकूलन के गये लव लेष।।४।।

उपरोक्त तुकों में "परा भक्ति" के बाहिक तथा आन्तरिक अनुष्ठान वर्णन कर चुके हैं। अब ग्रन्थकार कहते हैं। ऐसा होने से "सब जन" अर्थात निकुञ्जस्थित सब सखी, सहेली, सहचरी, सुन्दरी तथा मञ्जरी गण सब तुम्हारे अनुकूल हैं। अब भय करने का कोई स्थान नहीं है। जैसे अच्छे शुकनों द्वारा भविष्य "मङ्गलमय" होने का ज्ञान हो जाता है, इसी प्रकार "पराभक्ति" का भली प्रकार अनुष्ठान भविष्य का द्योतक है, कि उनके चरण कमल जरूर प्राप्त होंगे। अब कोई विरोधी भाव रास्ते में रुकावट नहीं डाल सकेंगे।

सुफल फली मन रली सबनकी जागे निज निज भाग विशेश।
हिलि मलि हुलसि हिये हर्षहु अहु निरखहु श्रीहरिप्रिया परेश।।

साधक को निकुञ्ज प्राप्ति होने से, वहां की सब सखियाँ अत्यन्त प्रसन्न हुई हुई अपने अपने भागों की सराहना करती हुई, नई आई हुई सखो से कहती हैं "उल्लास पूर्वक सबसे हिल मिलकर आनन्द पूर्वक रहो, श्रीप्रिया प्रीतम जो पर से पर ईश हैं उनको निरखो।" यथा श्रीरसिक देवजी कहते हैं:—

भाग बडो श्रीवृन्दावन पायौ।
जा रज को सुर नर मुनि वंछित विधि शंकर शिरनायौ।।
बहु तक जुग या रज बिन बीते जन्म जन्म डहकायौ।
सो रज अब जु कृपा करि दीनी अभय निशान बजायौ।।
आय मिल्यो परिवार आपनें हरि हंसि कंठ लगायौ।
श्यामाश्याम जु विहरत दोऊ सखी समाज मिलायौ।।
शोक संताप करौ मति कोई दाव भलौ बनि आयौ।
श्रीरसिक बिहारी की गति पाई धनि धनि लोक कहायौ।।

॥ दोहा ॥

श्रीहरिप्रिया पद पावनो, अतिही दुर्ल्लभ सोइ।
बहुत बिघन जग मगहि में, मिलिहि चलें सुख होइ ॥

॥ पद ॥१४॥

मिलि चलौ मिलि चलौ मिलि चलें सुख महा,
बहुत हैं बिघन जग–मगहि माहीं।
मिलि चलें सकल मङ्गल मिलें सहजहीं अनमिलि चलें सुख नहिं कदाहीं।
मिलि चलें होत सों अनमिलि चलें कहाँ फूट ते होत है फट फटाहीं।
श्रीहरिप्रियाजू कौ इह परमपद पावनौ अतिहि दुर्ल्लभ महासुलभ नाहीं ॥

ग्रन्थकार उपरोक्त पद में 'मिल चलो मिल चलो' से सखियों के अनुगत होकर उपासना करने की आज्ञा करते हुए अन्वय मुख से कहते हैं। यथाः—

"वयमपि ते समाः समदृशोङ्घ्रि सरोज सुधाः ॥"

(भा. स्क १० अ. ८८ श्लो. २३)

श्रुतियां कहती हैं कि "हम सब सखियों के सम भावापन्न होकर ही आपके चरणारविन्दों को प्राप्त करती हैं। "अनमिलि चलें सुख नहीं कदाहीं।"

"फूट तें होत है फट फटाहीं ॥"

इससे व्यतिरेक मुख से ग्रन्थकार कहते हैं बिना सखियों के अनुगत हुए आपकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। जैसे लक्ष्मी जी को बिना अनुगत होने के कारण से निकुञ्ज प्राप्ति नहीं हुई। यथाः—

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रि रेणु स्पर्शाधिकारः।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो, विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥

(भा. स्क १० अ. १६ श्लो. ३६)

नागपत्नी श्रीकृष्ण से कहती हैं:—

हे भगवान! हम नहीं समझपातीं कि यह इसके किस साधन का फल है। जो यह आपके चरण कमलों की धूलि का स्पर्श पाने का अधिकारी हुआ है। क्योंकि यह धूल श्रीलक्ष्मी जी के बहुत तपस्या करने से भी प्राप्त नहीं हो सकी थी। श्रीप्रिया प्रीतम

की प्राप्ति एक मात्र नित्य परिकरों के अनुगत होकर ही हो सकती है। यथाः—

"सेवा साधक रूपेण सिद्ध रूपेण चात्रहि।
तद्भावलिप्सुना कार्य्या ब्रज लोकानुसारतः ॥"
(भक्ति. सिन्धु. पूर्वविभाग २ लहरी श्लो. ७८,७९)

सेवा दो प्रकार से की जाती है। एक यथावस्थित देह से दूसरे अन्तः चिन्तित सिद्ध देह से अर्थात जिनको श्रीप्रिया प्रीतम की प्राप्ति की इच्छा है उनको उसी भाव के नित्य परिकरों के अनुगत होकर साधक तथा सिद्ध स्वरूप से सेवा करनी चाहिये।

अन्त में ग्रन्थकार कहते हैं:—

श्रीहरिप्रिया जू कौ यह परम पद पावनौं
अतिही दुर्ल्लभ महा सुल्लभ नाहीं ॥

श्रीप्रिया प्रीतम की निकुञ्ज प्राप्ति अति महान् दुर्लभ है सुलभ नहीं है। स्वयं श्रीब्रह्माजी कहते हैं यथाः—

"षष्टि वर्ष सहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा।
नन्द गोप ब्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये ॥
तथापि न मया प्राप्तास्तासां वै पादरेणवः ॥" (वृहद वामन पुराण)

यद्यपि मैंने ब्रज नागरियों की चरण रेणु प्राप्ति के लिये साठ हजार वर्ष तपस्या की तब भी मुझे वह रेणु प्राप्त नहीं हुई।

पुनः। यथाः—

श्रीकृष्ण श्रुतियों से कहते हैं।

"दुर्लभो दुर्घटश्चैव युष्माकं तु मनोरथः।
मयानुमोदितः सम्यक् सत्योभवितुमर्हति ॥" (वृहद वामन पुराण)

यद्यपि तुम्हारा मनोरथ अत्यन्त दुर्लभ तथा दुर्घट है तो भी मैं अनुमोदन करता हूँ सम्यक् प्रकार से सिद्ध होगा।

उपरोक्त प्रमाणों से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि श्रीप्रिया प्रीतम का परम पद अत्यन्त महा दुर्लभ है सुलभ नहीं हैं।

॥ दोहा ॥

आदि मध्य अवसान में, परिकर सहज सहेत ।
पर तें पर श्रीहरिप्रिया, राजत परम निकेत ॥

॥ पद ॥१५॥

राजत पर तें पर सर्वेश्वर परमधाम वृन्दावन निज घर ।
आनंद अहलादनि अद्भुतबर गौरस्याम सोभा अपरंपर ॥
आदि मध्य अवसान एक रस सब कारन कारन करतार ।
आगम अगम अगोचर अधिपति पद नख अनु आभा अवतार ॥
बिबिध रूप इच्छा-विग्रह करि अमित कोटि बैकुण्ठ बिलास ।
जा मधि उपजि समावत जा मधि कमोग्रादि कुल कोटि प्रकास ॥
सुद्ध सत्व अव्यय अविकृत कृत अगुण गुणालय ईस अनूप ।
है है नहीं नहीं जिहिं भाषत सब्द ब्रह्म सो सुद्ध स्वरूप ॥
अद्वय द्वय बहु भेद विसेषण आदि आभास अचिंत अनन्त ।
श्रीहरिप्रिया सहज परिकर सह करत बिहार कामिनी कंत ॥१५॥

अब भिन्न भिन्न तुकों का अर्थ करते हैं ।

आदि मध्य अवसान में परिकर सहज सहेत ।
परते पर श्रीहरिप्रिया राजत परम निकेत ॥
राजत परते पर सर्वेश्वर, परम धाम वृन्दावन निज घर ।
आनन्द आह्लादिनि अद्भुत वर गौर श्याम शोभा अपरं पर ॥
आदि मध्य अवसान एकरस, सब कारन कारन कर्त्तार ॥

श्रीप्रिया प्रीतम जो कि पर से परतत्व हैं अपने परिकर सहित 'आदि' 'मध्य' 'अवसान' अर्थात् सृष्टि के आदि में, मध्य में, तथा प्रलय में नित्य वृन्दावन में नित्य विहार करते हैं । यथाः—

"यौ नित्यौ नव दम्पती रसमयौ लीला विलासोम्मदौ ।
गौर श्यामतनू किशोरवयसौ सन्नील पीताम्बरौ ॥
नित्यानन्तसखी जनैः सुरसितौ वृन्दावनोल्लासिनौ ।
तौ राधा पुरुषोत्तमौ विजयतां मन्मानसे सर्वदा ॥ (यु. त. भाव मयूख)

वे श्रीप्रिया प्रीतम सदैव मेरे मन मन्दिर में विराजमान होकर जय को प्राप्त हों, जो नित्य दम्पति है, रसमयो लोला विलास से उन्मत्त हो रहे हैं। जिनके अङ्गों की कान्ति गौर तथा श्याम है। जो नित्य कैशोर अवस्था वाले हैं। नील तथा पोत पट को धारण किये हुए हैं। जो नित्य अनन्त सखी जनों से वेष्टित होकर उल्लास युक्त श्रीवृन्दावन में रस में आविष्ट हो रहे हैं।

"आँनद अहलादिनि अद्भुत वर" यथा:—

"अ कारो नायकः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
ई कारः प्रकृती राधा महाभाव स्वरूपिणी ।। (पुराणान्तरे)
"परमाह्लादरूपा च सन्तोषानर्षरूपिणी।" (देवी भागवते)

'अ' कार स्वरूप नायक श्रीकृष्ण हैं जिनका विग्रह सच्चिदानन्द है। 'ई' कार प्रकृती श्रीराधिका जी हैं जो महाभाव स्वरूपा हैं।

संतोष तथा धीरज स्वरूपा श्रीप्रिया जी परम अह्लाद की मूर्ति हैं।

सब कारन कारन कर्तार। यथा:—

'इदमेव वदन्त्येते वेदाः कारण कारणम्।' (पद्म पुराण पाताल खं वृ. मा.)
समस्त वेद आपको ही सब कारणों के कारण बतलाते हैं।

आगम अगम वेद शास्त्रों द्वारा जो अगम्य है। यथा:—

"नाहं वेदै न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्ट वानसि मां यथा।।" (गीता. अ. ११ श्लो.५३)

न वेदों से न तप से न दान से और न यज्ञ से इस प्रकार के रूप वाले मुझको नहीं देख सकते जैसे तुमने मुझको देखा है।

पुनः यथा:—

न वेद यज्ञाध्ययनैर्न दानै र्न च क्रियाभि न तपोभि रुग्रैः।
एवं रूपः शक्य अहं नृ लोके द्रष्टुं त्व दान्येन कुरु प्रवीर।।
(गीता. अ. ११ श्लो. ४८)

हे अर्जुन! मनुष्य लोक में इस प्रकार विश्व रूप वाला मैं न वेद से और यज्ञों के अध्ययन से तथा न दान से और न क्रियाओं से और न उग्रतप से ही तेरे सिवाय दूसरे से देखा जाने को शक्य हूँ।

अगोचर=जिस तत्व को इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता है। यथाः—

"इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु स:॥ गीता अ. ३–४२ श्लो

क्योंकि इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से अत्यन्त परे वह भगवान है। इसलिये वह इन्द्रियों के अगोचर कहलाता है।

अधिपति=प्रभु–शासक, पद नख अणु आभा अवतार। यथाः—

"तदंघ्रिपंकजद्वन्द नख चन्द्र मणि प्रभाः।

आहुः पूर्ण ब्रह्मणोऽपि कारणं वेद दुर्गमम्॥" (पद्म पुराण पाताल खंड वृ. मा.)

श्रीप्रिया प्रीतम के चरण कमलों के नख की प्रभा ही उस पूर्ण ब्रह्म का कारण स्वरूप है। जो वेदों को भी दुर्गम है।

पुनः यथाः—

"तस्या अंघ्रिरजस्पर्शात्कोटिविष्णुः प्रजायते॥" (पद्मपुराण पा. खं. वृ.)

जबकि उनके चरणारविन्द की रज के स्पर्श से करोड़ों विष्णु प्रकट होते हैं। फिर मूल में पद नख की आभा से अवतारों का प्रादुर्भाव वर्णित है। इसमें क्या आश्चर्य है।

विवि स्वरूप इच्छा विग्रह करि,
अमित कोटि बैकुण्ठ विलास॥

दोनों श्रीप्रिया प्रीतम इच्छा विग्रह धारण करके अनन्त कोटि वैकुण्ठों में विलास करते हैं दोनों एक ही स्वरूप हैं। यथाः—

"तयोर्देहस्थ योनैव भेदो नित्य स्वरूपयोः।

धावल्य दुग्धयोर्यद्वत्पृथिवी गन्धयोरिव॥" (नारदीय पुराण)

जैसे दुग्ध से धवलता तथा पृथ्वी से गन्ध भिन्न नहीं है इसी प्रकार श्रीप्रिया प्रीतम नित्य दो स्वरूप होकर भी उनमें भेद नहीं हैं। क्योंकि श्रीकृष्ण अवतारी हैं और सब अवतार हैं इसलिये अनन्त कोटि वैकुण्ठों में इन्हीं के विग्रह स्वरूप अवतार विलास करते हैं। यथाः—

"देवि! सर्वावतारास्तु ब्रह्मणः कृष्ण रूपिणः।

अवतारी स्वयं कृष्ण सगुणो निर्गुणों स्वयम्॥" (नारद पुराण)

हे देवि ! परब्रह्म श्रीकृष्ण के ही सब अवतार हैं इसलिये सगुण तथा निर्गुण स्वरूप श्रीकृष्ण ही अवतारी हैं।

पुनः यथा:—

कृष्णस्य वाम भागात्तुजातो नारायणः स्वयम्।
राधिका याश्च वामांगान्महालक्ष्मीर्व्वभूवह ॥
ततः कृष्णो महालक्ष्मींदत्वा नारायणाय च।
वैकुण्ठे स्थापयामास शश्वत्पालन कर्म्मणि ॥ (नारदीय पुराण)

श्रीकृष्ण के वाम भाग से श्रीनारायण और श्रीराधिका जी के वाम भाग से श्रीलक्ष्मी जी प्रकट हुईं। फिर श्रीकृष्ण ने श्रीनारायण को श्रीलक्ष्मी जी देकर इन दोनों को सदैव पालन कार्य के समाधान करने के लिये वैकुण्ठ में स्थापना करदी।

जा मधि उपजि समावत जामधि कमोग्रादि कुल कोटि प्रकाश।

कमोग्रादि=क+म+उग्र। शब्दार्थ कौस्तुभ कोष में 'क' अर्थ ब्रह्मा 'म' का विष्णु 'उग्र' का महेश वर्णित है। अर्थात जिनसे अनन्त कोटि ब्रह्मा विष्णु, महेश अपने अपने अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों सहित उपजते हैं और उन्हीं में समा जाते हैं। यथा:—

यस्यैक निश्वसित काल मथावलम्ब्य,
जीवन्ति रोम विलजा जग दण्ड नाथा।
विष्णुर्महान्स इह यस्य कला विशेषो,
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥ (ब्रह्म संहिता)

मैं उन आदि पुरुष गोविन्द को भजता हूँ जिनका वह महा विष्णु एक अंश है जिनके रोम कूप में रहने वाले अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के नाथ अर्थात ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि उनके एक निश्वास काल तक ही जीवित रहते हैं अर्थात उनके एक श्वास से उपजते हैं दूसरे से उन्हीं में समा जाते हैं।

शुद्ध सत्त्व अव्यय अविकृत, अगुन गुनालय ईशअनूप ॥

अब पृथक पृथक शब्दों की व्याख्या करते हैं। शुद्ध सत्त्व=यथा:—

"विशुद्ध सत्वं तव धाम शान्तं।" (भा. १० स्क. २७ अ. ४ श्लो)

हे भगवन ! आपका स्वरूप परम शान्त, ज्ञानमय, रजोगुण तथा तमोगुण से रहित एवं विशुद्ध अप्राकृत सत्वमय है।

अव्यय=अविनासी। यथा:—

"ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाहम मृतस्याव्ययस्य च।" (गी. १४ अ. २७.श्लो)

मैं अविनाशी परब्रह्म की और अमृत की मूर्ति हूँ।

अविकृत कृत=प्रकृति के रचने वाले। सांख्य दर्शन में 'अविकृत' प्रकृति को कहते हैं जो इस संसार का कारण मानी जाती है। दूसरे अर्थ में। यथा:—जिनके कृत अर्थात कार्य 'अविकृत' अर्थात अपरिवर्त्तन शोल हैं। अर्थात जिनके कार्य नित्य हैं।

अगुन=निर्गुण। यथा:—

"योऽसौ निर्गुण इत्युक्तः शास्त्रेषु जगदीश्वरः।
प्राकृतैर्हेय संयुक्तै र्गुणैर्हीनत्वमुच्यते ॥" (पाद्मे उत्तर खण्डे)

जहाँ जहाँ शास्त्र में श्रीकृष्ण को निर्गुण वर्णन किया गया है वहाँ निर्गुण शब्द से प्राकृतिक गुण रहित जानना चाहिये।

गुनालय=अप्राकृत समस्त गुणों के आलय। "स्वभावतोऽपास्त समस्त दोषमशेष कल्याणगुणैक राशिम्॥ (वेदान्त कामधेनु)

श्रीकृष्ण स्वभाव से ही समस्त दोषों से रहित हैं और अनन्त कल्याण गुणों के आश्रय हैं। ईश अनूप=सबके अनुपम नियन्ता। यथा:—

'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते' (गी. अ० १० श्लो. ८)

मैं ही सबका प्रभू हूँ मेरे से ही सब जगत प्रवर्त्त होता है।

है है नहीं नहीं जिहि भाखत शब्द ब्रह्म सो शुद्ध स्वरूप॥

शब्द ब्रह्म अर्थात वेद जिनके शुद्ध स्वरूप को 'अस्ति' 'नास्ति' करके प्रतिपादन करता है। यथा:—

"किमस्ति नास्ति व्यपदेश भूषितं त्वास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः।"
(श्री. भा. १० स्क. १४ अ. १२ श्लो.)

'हैं' और 'नहीं' है इन शब्दों से कही जाने वाली वस्तु कोई भी ऐसी नहीं है जो आपकी कूख के भीतर न हों।

अद्वय द्वय वहु भेद विशेष न आदि आभास अचिन्त्य अनन्त।

अब प्रथक प्रथक विशेषणों का अर्थ करते हैं। अद्वय द्वय बहु भेद विशेष न=

जिस तत्व को कोई अद्वैत कोई द्वैत कहते हैं तथा कोई 'विशिष्टाद्वैत' कोई 'शुद्धाद्वैत' कोई 'द्वैताद्वैत' कोई 'अचिन्त्याद्वैताद्वैत' इत्यादि बहुत प्रकार के विशेषणों द्वारा वर्णन करते है यह सब तत्व आप ही हैं। आदि=सबके आदि। यथाः—

"अनादिरादि गोविन्दः सर्वकारण कारणम्। (ब्रह्म संहिता)

श्रीकृष्ण ही सब कारणों के कारण स्वरूप सबके आदि तथा अनादि हैं।

आभास=ज्योति स्वरूप। यथाः—

"आनन्द चिन्मय समुज्वल विग्रहस्य,
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥" (ब्रह्म संहिता)

मैं उन आदि पुरुष गोविन्द को भजता हूँ जिनका विग्रह आनन्द, चिन्मयतथा ज्योति स्वरूप है।

अचिन्त्य=जिनका स्वरूप चिन्ता तथा तर्क के अगोचर है। यथाः—

"साकारत्वेऽप्यनाकारं सगुणत्वेऽपि निर्गुणम्।
विभुत्वेऽपि परिच्छिन्न कामये श्रीयुगं प्रियम् ॥ (यु. त. समीक्षा विग्रह मयूखे)

मैं श्रीरसिक दम्पति का प्रिय होने की कामना करता हूँ जो साकार होकर निराकार, सगुण होकर निर्गुण तथा व्यापक होकर एक देश में स्थित हैं।

उपरोक्त लक्षणों से यह सिद्ध होता है कि आप परस्पर विरोधी धर्मों के अवलम्बी हैं इसीलिये आप अचिन्त्य हैं अचिन्त्य के लक्षण। यथाः—

"अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥" (स्मृति)

अचिन्त्यभावों में तर्क नहीं करना चाहिये क्योंकि प्रकृति से परे होना ही अचिन्त्य का लक्षण है।

अनन्त=जिनके गुण-लीलाओं का कोई पार नहीं पा सकता है। यथाः—

"तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः।" (भा. १० स्कन्ध १४ अ १८ श्लो.)

"अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव।" (भा. १० स्क. १४ अ. २८ श्लो.)

हे अनन्त! सब कुछ आपको कुक्षी में है हे अनन्त! आप तो सबके अन्तःकरण में ही विराजमान हो।

श्रीहरि प्रिया सहज परिकर सह, करत विहार कामिनी कन्त।"

इस तुक का अर्थ इसी पद के दोहे तथा पहली तुक की व्याख्या में कर चुके हैं।

॥ दोहा ॥

सेवें सहज सदा सखी, लगी सवें चहुँ ओरि।
गुन निधि गोरी साँवरी, नित्य किसोरी जोरि

॥ पद ॥१६॥

नित्यकिसोर-किसोरी जोरी। परम उदारि साँवरी गोरी॥
सेवें सहज सदा रङ्ग बोरी। सहचरि सकल लगी चहुँ ओरी॥
समें समें सेवा जो जोई। करत रहति निति प्रति सो सोई॥
मिथुन कुँवर मन रुचि होई। सो पहलहिं पुरवति रति भोई॥
हित चित बातनिमें बहु बितपनि। बिबिध भाँति रसदा उर अनुगनि॥
तुरत सुरत सहजहिं सुख सरसनि। सनमुख सदा सुरुख बन बरषनि॥
प्रथमहिं श्रीरङ्गदेवि मनाऊँ। तिनकी कृपा यहै जस गाऊँ॥
कल कंठ्यादिक आठ सहेली। आठ आठ इनिकें अलबेली॥

॥ कलकण्ठी जू की ॥

अलबेलि नवला विश्वआभा उत्तमा जु बिलासिनी।
सरसिका मधुरा सुभद्रा और पद्म सुवासिनी॥

॥ ससिकला जू की ॥

स्यामा श्री सारदा कृपाला देवदेवी सुन्दरी।
पद्म आस्या ऐंदिरा पुनि सुनहु रामा सहचरी॥

॥ कमला जू की ॥

वामा अरु कृष्णा सुपद्मा श्रुतिस्वरूपा भगवती।
माधवी असिता गुनाकरि, सदासेवति रसरती॥

॥ कन्दर्पा जू की ॥

बल्लभा गौरांगि केसी पवित्रा अरु कुंकुमा।
हितू सहचरि हित विचित्रा अग्रवर्तनि अनुपमा॥

॥ हितसुन्दरी जू की ॥

महामोहिनि मानवति मणि मंजरी मधुरप्रभा।
बिमलनी वारिजमुखी कलवयनिका सुचि सौरभा॥

॥ कामलता जू की ॥

सुखद सहचरि चारुमति अलबेलि व्याहबिनोदिनी।
भान सुभगा सहचरी पुनि कमलबदनी कमलिनी॥

॥ प्रेममञ्जरी जू की ॥

वृन्दा अरु रसिका अनन्दा परम सहचरि हितअली।
नित नवीना मनोमंजरि ब्रजेसुन्दरि अतिभली॥

॥ प्रेमदा जू की ॥

चंद्रहासा चारुभासा दिब्यवासा मोददा।
मृदुल अङ्गा ऐलि बेली अनुपमा अनुरागदा॥

श्रीप्रिया प्रीतम की सखियों का वर्णन करते हुए श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि रङ्ग में भीगी हुई चारों ओर सखियाँ श्रीरसिक दम्पति की सेवा में हर समय लगी रहती हैं। जो जो मिथुन कुवर की रुचि होती है उनका रुख देखकर पहले से पहले ही सब प्रबन्ध करती हुई उनको रति विलास सुख में निमग्न करा देती हैं। सखियाँ बात चीत करने में इतनी चतुर हैं कि बात करते करते उन दोनों के हृदयों में रस संचार करा देती हैं। ये हर समय उनके सन्मुख रहकर रस वर्षाती रहती हैं। और बहुत शीघ्रता से सुरति सुख में उनको प्रवृत्त करा देती हैं। अब सर्व प्रथम श्रीरङ्ग देवी जी कृपा मनाकर उनकी कलकंठी आदि आठ सहेलियों का वर्णन करते हुए प्रत्येक की आठ आठ सहचरियों का वर्णन करते हैं। श्रीरूप गोस्वामी कृत "राधा-कृष्ण गणोद्देश दीपिका" में भी इसी प्रकार श्रीरङ्गदेविजी की आठ सहेलियों का वर्णन किया गया है। यथाः—

"कलकण्ठी, शशिकला, कमला, मधुरेन्दिरा।
कन्दर्प, सुन्दरी, कामलतिका, प्रेममञ्जरी॥"

उपरोक्त पद में इन सहेलियों की प्रत्येक की आठ आठ सहचरियों का वर्णन किया गया है।

॥ पद ॥

सदा सुदंपति के मन मानी। महल टहल में महा सयानी ॥
डोलत बोलत कोकिल बानी। रमझमाति रति रस में सानी ॥
मुख तें जोइ जु वचन बखानें। जाकों सुनि दोऊ रुचि मानें ॥
परम चतुरि जिय की सब जानें। समझि समझि सोई बिधि बानें ॥
छिन छिन प्रति नव नेह जनावें। बिबि बिनोद मोद उपजावें ॥
नवल जुगलबर के मन भावें। अङ्ग अनङ्ग तरङ्ग बढ़ावें ॥
दुतिय सुदेवी सहचरि जानों। महामोहनी मन की मानों ॥
कावेरयादिक आठ बखानों। तिनकी आठ आठ परिवानों ॥१७॥

॥ काबेरी जू की ॥

परिवानों हितप्रद परमुदारा चटका चारुचमेलिका।
सुखसनी नीरज सुनयनी नेहिनी अलबेलिका ॥

॥ मंजुकेसी जू की ॥

रङ्गभीना नागरी नवलाजु भाव-प्रकासिका।
भवन सुन्दरि सुख-स्वरूपा सहज हासा मंजुला ॥

॥ सुकेसी जू की ॥

केलिकलिका रतिरसाला रत्नआवलि सुखदिनी।
मंजुमोदा मुद मनोजा मान मंजु सरोजिनी ॥

॥ कबरा जू की ॥

सुखदरूपा सानुरक्तिनि बरस बाला सरसनी।
चिमतकारा भद्रसुरभा रंगमञ्जरी चोंपनी ॥

॥ हारकंठी जू की ॥

गर्विता गुणभरा सहचरि भव्यकांता भूरिदा।
मदनमाला सुरतसाला रूपजाला रङ्गिदा ॥

॥ मनोहरा जू की ॥

रायबेली फूलमाला कमलनी कमलेक्षिनी।
हंसगामा प्रेमधामा बिंबओष्ठा बिधुमुखी॥

॥ महाहीरा जू की ॥

रस पयोधा राजरवनी कामिनी कमनीयनी।
कुञ्जकेली रङ्गरेली रहसि रङ्गा रसदिनी॥

॥ हारहीरा जू की ॥

चारु चरिता चन्द्रभागा गोपिका गुणमञ्जरी।
गिरामिष्टा मिष्टदाया जयावलि जगमण्डनी॥

अब द्वितीय सखी श्रीसुदेवी जी का वर्णन करते हुए कहते हैं। सखियाँ रसिक दम्पति की मनमानी महल टहल करने में अत्यन्त चतुर हैं रतिरस विलास में सनी हुई रिमझिम रिमझिम करती हुई महल में कोकिल के सदृश वाणी बोलती हुई इधर उधर सेवा समाधान करने के लिये डोलती रहती हैं। ये प्रिया प्रीतम की रुचि के अनुसार समझ समझ कर सेवा करती हैं। इस प्रकार के वचन मुख से बोलती है कि जिनको सुनकर दोनों प्रसन्न हों। छिन छिन में नया नया नेह जनाती हुई बिविध प्रकार की लीला कराकर मोद उपजाती हैं। यह सब नवल युगल किशोर के मनभाँती हैं। प्रिया प्रीतम के अङ्ग अङ्ग में काम की तरंगें बढ़ाती रहती हैं। श्रीसुदेवि जी मानों प्रिया प्रीतम के मनकी महामोहनी हैं। इनकी कावेरी आदि आठ सहेलियाँ हैं और यथाः—

"कावेरी, चारु कबरा, सुकेशी, मञ्जु केशिका।
हार हीरा, महा हीरा, हारकण्ठी, मनोहरा॥"

(राधाकृष्ण, गणोद्देश दीपिका)

उपरोक्त प्रत्येक सहेली की आठ आठ सहचरियाँ है। जो कि पद में वर्णित हैं।

॥ पद ॥

दम्पति की प्यारी परिचारी। परमानन्द भरी अति भारी॥
कबहुँ न होय सङ्ग तें न्यारी। रहति सदा जैसें छायारी॥
चितवति चंद्रबदनि चहुँओरी। चारु चकोरी ज्यों रसबोरी॥

अति आनन्द समुद्र झकोरी। फिरत टहल में यों चकडोरी॥
प्रेम–पगी जगमगी महाई । अति रस रङ्ग रङ्गी अधिकाई॥
सोभा सहज कही नहिं जाई। देखि जिनहिं दृग रहत लुभाई॥
तीजी ललिता ललित बिसेसा। रहसि रङ्ग–भीनी बर बेसा॥
रत्नप्रभादिक आठ बयेसा । आठ-आठ इनिकें जु सुदेसा॥

॥ रत्नप्रभा जू की ॥

सुदेसा तानमतीरु तारा तरला तान तरङ्गिनी।
तरुनि सहचरि सुखसनी महासलौनी अरु सोहिनी॥

॥ रतिकला जू की ॥

रुचिर बेसा रसिक रूपा प्रीति पागा रगमगा।
जगमगा नवजोवनी जगजोति भामिनि जोन्हिका॥

॥ सुभद्रा जू की ॥

मित्रविंदा वंदिनी प्रियवादिनी प्रमुदावली।
मृगजनैंनी महामुदिता सुसीला सौदामिनी॥

॥ भद्ररेखा जू की ॥

प्रभापुंजा प्रेयसी सनमुखी खंज-बिलोचनी।
रमन रंजा रंजनी(रंजिका)करपूरिका अभिनन्दनी॥

॥ सुन्दरमुखी जू की ॥

सुख सायिका चंद्रावली रतिनावली रसमञ्जरी।
कनकबेली हेमलतिका रङ्गमाला रसिकिनी॥

॥ धनिष्ठा जू की ॥

बिसालाक्षी बिसदबेसा विमलबेलि विभावुका।
बरेयस्या महामान्या यसस्वनी पुरटाङ्गदा॥

॥ कलहंसी जू की ॥

महामधुरा इन्दु आभा विभा सुभदा तालिका।
किलम्बा मणिमण्डला पुनि अष्टमी श्रुतिकुण्डला॥

॥ कलापिनी जू की ॥

सुनन्दा सुभला बिसाला प्रभद्रा प्रतिमोदिका।
किंकनी सुघरा सहेली पुनि सुजानि सुमोदिका॥

तृतीय सखी श्रीललिता जी तथा उनकी सहेलियों का वर्णन करते हुए कहते हैं। कि ये सखियाँ रसिक दम्पती की अत्यन्त प्यारी हैं। उनके सेवानन्द से भरपूर हैं जैसे छाया अलग नहीं रहती है इसी प्रकार से यह भी प्रिया प्रीतम से कभी न्यारी नहीं होती हैं ये सखियाँ चारों ओर से रसमय निमग्न हुई हुई प्रिया प्रीतम के चन्द्र मुख को चकोरियों की तरह देखती रहती हैं। आनन्द समुद्र में निमग्न होकर चकडोरी की तरह टहल में फिरती रहती हैं। ये सब प्रेम में पगी हुई अत्यन्त जगमगा रही हैं रस रङ्ग में अधिक रंगी हुई हैं इनकी शोभा कही नहीं जा सकती है। जो कोई इनको देखता है लुभायमान हो जाता है यह श्रीललिता जी रहस्य रंग लीला में अधिक भीगी हुई हैं। रतन प्रभा आदि इनकी आठ सहेलियाँ हैं। यथाः—

"रत्न प्रभा रति कला सुभद्रा भद्र रेखिका।
सु मुखी च धनिष्ठा च कलहंसी कलापिनी॥"

(राधा कृष्णगणोद्देश दीपिका)

उपरोक्त सहेलियों की आठ आठ सहचरी हैं। जो कि पद में वर्णित हैं।

॥ पद ॥

लाड़िली-लाल लड़ावत छिन-छिन। चित में चोंप बढ़ावत दिन-दिन॥
रीझि रहसि निधि पाई जिन-जिन। उर अभिलाख पुराये तिन-तिन॥
प्रीतम प्रानप्रिया रस रांची। मोहन मदन मोद में माची॥
काहू बिधि कर नांहिन कांची। सकल कला संपूरन सांची॥
अहल महल टहलें रस लागी। भावनि भरी खरी बड़भागी॥
बिपुल पुलक प्रेमावलि पागी। लाखनि अभिलाखनि अनुरागी॥
चौथो सखी विसाखा नामुनि। जाननिहारि जुगल हिय की गुनि।
माधवि आदि आठ इनिकें पुनि। आठ आठ इनकें सोऊ सुनि॥

॥ माधवी जू की ॥

सुनि विटंकाक्षि प्रियंकराभा भद्रश्रेनि बिलासिका ।
बीरबामा गुण गँभीरा स्यामला सुकुँवारिका ॥

॥ मालती जू की ॥

श्रीमती विकुलंदिराभा मणिप्रभा प्रियप्रस्थिका ।
कुसुमसेना चन्द्रनी सहचरी कुन्दभरिन्दका ॥

॥ चन्द्रलेखा जू की ॥

कलनिभा कलभासिनी बैंदग्धिनी बासोज्वला ।
रसज्ञा रुचिदायका सुखदायका संतोषिला ॥

॥ चपला जू की ॥

बसन्ती बसुबन्तिकारा नवनिभा नगभूषिता ।
मनोज्ञा मधुमङ्गला पुष्पांजुला हासांकिता ॥

॥ हिरनी जू की ॥

केलिसाला सारदक्षा हृदज्ञा सुहृदावती ।
मधुकता मधुमाधवी मधुसंपदा मधुमालती ॥

॥ कुञ्जरी जू की ॥

पुष्पहासा प्रेमकन्दा महागन्धा माधुरी ।
कादंबिका कलसंपदा कोलाहला कुलमण्डनी ॥

॥ सुरभी जू की ॥

मधुलिहा वैदर्भिनी मधुरोचिनी मुदितांगनी ।
गुणप्रबोधा बोधिनी बुधिवती वेदप्रकासिनी ॥

॥ सुभानना जू की ॥

कोकनिपुणा पुण्यगाथा पावनी पटमंजरी ।
प्रबोधारा विद्यमाना परसिनी परसंसिनी ॥

चौथी सखी श्री विसाखा जी की सखियों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ये सखियाँ दौनों के चित्त में चौंप बढ़ा बढ़ा कर लाड़ली लाल को छिन छिन में लड़ाती

रहती हैं। जब रसिक दम्पति इन पर रीझ जाते हैं तब ये यह समझती हैं कि मानों इनके उर की सब अभिलाषायें पूरित हो गई। और इनको मानो रहसि निधि प्राप्त हो गई। ये सखियाँ प्रियतम की प्राण प्रिया श्री किशोरी जी के रस में रंगी हुई हैं। और मदन मोहन के मोद में इतरा रही हैं। इनमें से कोई भी किसी प्रकार काचो नहीं हैं वल्कि सब कलाओं में सब परिपूर्ण हैं। महल में रहने वाली सखियों के उपयोगी जो रस है उस रस में सब निमग्न हैं। ये सब भावों से भरी हुई हैं इसलिये वास्तव में बड़भागी है। इनके अंगों में पुलकादि बडे भारी प्रेम के अष्टसात्त्विक उदय हो रहे हैं। इनके हृदयों में आपके अनुराग सम्बन्धी लाखों अभिलाषाएँ उठती रहती हैं। यह विशाखा नाम्नी सखी युगल दम्पति के हिये को जानने वाली हैं। माधवि आदि इनकी आठ सहेलियाँ हैं।

"माधवी, मालती, चन्द्ररेखिका कुञ्जरी तथा।
हरिणी, चपला नाम्नी सुरभिश्च शुभानना॥"

उपरोक्त सहेलियों की प्रत्येक की आठ आठ सहचरि हैं। जो कि पद में वर्णित हैं।

॥ पद ॥

परिचरिज्या में परम प्रबीना। नव-नव केलिकला-रस भीना॥
निस दिन लगी रहत लवलीना। अति रति रँगी अधिक अधीना॥
सहज सुरंग सिंगारनि साजें। अतिहि अनूप मनोहर राजें॥
चढ़ि चढ़ि रहे चोंप चित छाजें। समबय सुघर स्वरूप बिराजें॥
दामिनि-सी दमकें तन गोरें। चन्द्र-बदनि सहचरि चहुँ ओरें॥
जरी जराय सु चितबित चोरें। छाजति छबि जिहिं ओर न छोरें॥
सहचरि पंचमि चंपलता पुनि। सब गुनखानि सुजानि सिरोमनि॥
मृगलोचनी आदि अठ-अलि गुनि। इनिकें आठ-आठ सोऊ सुनि॥२०॥

॥ मृगलोचनी जू की ॥

सुनि मालमणि मधुमालती मित्रारुमोदा मनरमा।
महाबिचित्रा मेधिनी अरु मदनमञ्जरि अष्टमा॥

॥ मणिकुण्डला जू की ॥

गुण जु माला कला चंदन तडिप्रभा शरदेंदुका।
रंभाभरणी भृंगिका कुसुमा ए आठ अलौकिका॥

॥ सुभचरिता जू को ॥

लता आनन्द अद्भुता अनुरागिनी अनुपम अली ।
लाड़िली आभा सहेली अतिप्रभा आनन्द रली ॥

॥ चंद्रा जू की ॥

लाड़परिका चंद्रमुखिनी गर्बिली सुरसालिनी ।
पुनीता बालारु मधुरा पारगामिनि आलिनी ॥

॥ चंद्रलतिका जू की ॥

मकरंदिनीरु मदोनमत्ता सुरिन्दा मधुकन्दला ।
प्रगुणस्वच्छा छबीली अरु कुमुद-अक्षि कुमोदिका ॥

॥ मण्डली जू की ॥

सुगुणधारा धी सुमान्या वृन्दा बारिजलोचनी ।
कलावलिरु कुरंगिनी पुनिसोभनी उद्दीपनी ॥

॥ कन्दुकनयनी जू की ॥

इन्दुहासा सुधानादा सारअङ्गा सुधाकरा ।
कलसुकण्ठा सुधाकण्ठा सुकण्ठा सुगुणाकरा ॥

॥ सुनन्दिरा जू की ॥

सुधाभासा सभा चूड़ा गोरी गर्बित अङ्गिनी ।
चारुकण्ठा कामपाला जोतिजाला जोत्सिनी ॥

पञ्चम सखी श्री चम्पलता जी के यूथ की सखियों का वर्णन करते हैं । ये सब परिचर्या में परम निपुण हैं नयी नयी केलि कला के रस में भीगी हुई हैं निश दिन प्रिया प्रीतम की सेवा में लवलीन होकर उनके अतिरति विलास में रंगी हुई हैं यह सब उन दौनों के अधिक आधीन हैं उनकी सेवा समाधान के लिये अपना-अपना लड़ झड़ शृंगार किये हुए प्रिया प्रीतम के मनको हरण करती हुई अत्यन्त सुशोभित हैं । इन सबके हृदयों में एक दूसरी से प्रिया प्रीतम सम्बधी चौंप में चढ़ बढ़ कर है यह सब सम अवस्था वाली सुघट स्वरूप से सुशोभित हैं । इनके गौर वर्ण दामिनि की तरह दमक रहे हैं । प्रत्येक सखी को चहुँ ओर से चन्द्र वदनी सहचरियों ने घेर रक्खा है । इनकी छवि का ओर

छोर नहीं हैं। यह सब जरी जराय सी इतनी सुन्दर हैं कि इनको देख कर रसिक दम्पति का चित्त भी चुराया जाता है। यह चम्पलता सखी सब गुणों की खान तथा सुजान शिरोमणि हैं। मृग लोचनि आदि इनकी आठ सहेलियाँ हैं। यथाः—

"कुरंगाक्षी सुसरिता मण्डली मणि कुण्डला।
चन्द्रिका चन्द्र तिलका पङ्कजाक्षी सु मन्दिरा॥
(राधाकृष्ण गणोद्देश दीपिका)

उपरोक्त प्रत्येक सहेलियों की आठ आठ सहचरियाँ हैं जो पद में वर्णित हैं।

॥ पद ॥

बनी-ठनी सुखसनी सलोनी। जगमग होति जोति अन-होनी॥
एक एक तें अधिक न ओंनी। सोहति सदा सहज सरसोंनी॥
निकट जुगल बर नैंन निहारें। पलकें पलक प्रान-धन वारें॥
तिन बिच तनक न अन्तर पारें। सदा एक रस रङ्ग विहारें॥
अतिरस चावभरी उर-माहीं। झम झमाति अधिकाति उमाहीं॥
लै-लै सोंज सबै सब पाहीं। चितै रही जुगचन्द जु धाहीं॥
छठी सहचरी चित्रा भारी। महा मोद उरभरी अपारी॥
तिलकनि आदि आठ अनुचारी। आठ-आठ इनकें अधिकारी॥

॥ तिलकनि जू की ॥

अधिकारि मृगनैंनी विसाला जयन्ती विजया जया।
बीना बिरजा अष्टमी बनबेलि केलि कलामया॥

॥ रसालिका जू की ॥

अलबेलि अङ्गा बालमति सुखसदनि स्यामा सहचरी।
बिधुबदनी अरु सौंदर्यका रम्या सुरदनी रसभरी॥

॥ बरबेनिका जू की ॥

सिंगार सुन्दरि रायबेली दर्पिका कन्दर्पिका।
पुन्यपुंजा भागपुञ्जा प्रेमपुञ्जा परमिता॥

॥ सौरसुगन्धा जू की ॥

बुद्धिमान्या रिद्धिरूपा सक्तिरूपा सक्तिनी।
अवतंसि रहस्या सहचरी पारङ्गमा रमणस्तनी ॥

॥ कामिला जू की ॥

अणिमावली महिमावली अरु उरबसी बसकारिनी।
सुष्टुवेसा सारपुञ्जा सुकुन्तला सिंगारिनी ॥

॥ कामनागरी जू की ॥

क्षेमधामा मोहिताभा मञ्जुला सारज्ञनी।
अलकनन्दा रुक्मकांगी सेवती सीमंतिनी ॥

॥ नागरबेली जू की ॥

राजहंसी हंसिनी मोरी मयोरी मेंनिका।
कुसुमकलिका कलाकन्दा अरबिंदा आनन्दिका ॥

॥ सुसोभना जू की ॥

रागरङ्गा रङ्गरागा रोहिनी संमोहिनी।
अमरबेलि सु अभरनी पुनि स्वरनबेलि सुलच्छिनी ॥

छठी सखी श्रीचित्रा जी की सखियाँ इस प्रकार हैं। ये सब रसिक दम्पति के सुख में सनी हुई इतनी सुन्दर हैं कि इनकी अङ्ग की कान्ति अपूर्व जग मगा रही है। इनमें से सुन्दरता में कोई कम नहीं है बल्कि एक दूसरी से अधिक से अधिक सुन्दर है। इनके हृदय स्वाभाविक सदा सरसता से सुशोभित हैं ये जुगल वर के निकट रह कर सदैव उनको टकटकी बांधकर निहारती रहती हैं। एक पल विच्छद को भी सहन नहीं कर सकती हैं पल पल में उनपर अपने प्राण धन को न्यौछावर करती रहती हैं। ये एक क्षण के लिये भी श्रीप्रियाप्रीतम विच्छेद नहीं होने देती हैं। सदा एक रस उनके रङ्ग में विहार करती रहती हैं। प्रिया-प्रीतम के अतिरस चाव से भरी हुई अधिक से अधिक आनन्द में झम झमात करती रहती हैं। यह सब सेवा सामिग्री लेकर जुगल चन्द्र को निहारती रहती हैं। ये श्रीचित्रा जी अपार आनन्द में भरी हुई हैं। तिलकनि आदि इनकी आठ सहेलियाँ हैं। यथा:—

"रसालिका तिलकिनी शौर सोनी सुगन्धिका ।
रामिला काम नगरी नागरी नाग बेणिका ।।"

(राधा कृष्ण गणोद्देश दीपिका)

उपरोक्त प्रत्येक सहेली की आठ आठ सहचरि पद में वर्णित हैं ।

।। पद ।।

मन की रुचि सुचि सेवा करहीं । छिन छिन प्रति ऐसें अनुसरहीं ।।
भावत जो सोई ढर-ढरहीं । निरखि नवलछबि आनन्द भरहीं ।।
कोउ सखी कछू कोउ कछु लीयें । सब ठाढ़ी सनमुख रुख दीयें ।।
तन–मन–प्रान समर्पन कीयें । अति अनुराग भरी सब हीयें ।।
रहसि रङ्ग रुचि में समुझनियाँ । सहज सनेह नेह–रस सनियाँ ।।
सुठि स्वरूप दम्पति मन मनियाँ । आनन्द कन्दनि चन्दबदनियाँ ।।
सप्तमि सखी तुङ्गविद्या गनि । बिसद बिलास कला में बितपनि ।।
मंजुमेधिका आदि आठ भनि । आठ-आठ इनिकें अलि रहि बनि ।।

।। मञ्जुमेधिका जू की ।।

बनि रही रस आनन्द माधुरि मोदनी मदनालसा ।
चारुचूड़ा चित्रनी चतुरा सुचन्दरकांतिका ।।

।। सुमेधिका जू की ।।

चकोरी कामा किसोरी केतकी अरु कोमला ।
कामरस कन्दला सहचरि चंचला कस्तूरिका ।।

।। तनमेधा जू की ।।

सुभरवा अरु दिव्यगन्धा रत्नकलिका विश्वभा ।
बिलासावलि अरु अनन्दा सुरङ्गाङ्गा गौरिका ।।

।। गुणचूडा जू की ।।

केलि कौमुदिकर्निका अलबेलिसोभ त्रिचित्रका ।
कामकन्दर्पा सुखंजा सुष्टिका विजयंतिका ।।

॥ वरांगदा जू की ॥

किसोरिधन्यसुभाग सोभाजयति आनन्दसिंधुका ।
चित्रमुख्या मुक्तमाला लहरि मालार्कविंदुका ॥

॥ मधुस्यंदा जू की ॥

ललित आननि टहल तत्परि मारमोहनिसंकरी ।
सौबीरि चंद्रजु सालि सेव्या सर्वतोषिण सहचरी ॥

॥ मधुरा जू की ॥

सानुकूला सरद ससिका स्वस्तिदा सरदोत्सुखा ।
रसपरज्ञा नवकिसोरी नित्यसिद्धा ससिमुखा ॥

॥ मधुरेक्षना जू की ॥

प्रनयप्रचुरा परम प्रवरा प्रिया प्रीतिप्रदायिका ।
चारु-वक्षा चारु-दक्षा चारु-ईक्षा अंमृता ॥

अब सप्तमी सखी तुङ्गविद्या जी तथा उनकी यूथ की सखियों का वर्णन करते हैं । ये सब प्रीया प्रीतम के मन की रुचि के अनुसार सेवा करती रहती हैं । जो जो उनको अच्छा लगता है उसके अनुसार क्षण क्षण में यह करती रहती हैं । उनकी नवल छवि को देख देख कर आनन्द में मगन होती हैं । यह सब सखियाँ पृथक पृथक सेवा की सामिग्रियों लिये हुए रसिक दम्पति के रुख को देखती हुई उनके सन्मुख खड़ी रहती हैं । इन सब के हृदयाँ में अति अनुराग भरा हुआ है इन्होंने अपने तन, मन, प्राणों को उनके समर्पण कर दिया है । यह सब प्रीया प्रीतम की रहसि रङ्ग रुचि को समझने वाली हैं। उनके स्वाभाविक स्नेह नेह तथा रस में सनी हुई हैं । इनका सुन्दर स्वरूप है । रसिक दम्पति के मन में ये सब समायी हुई है । ये सब चन्द्रमुखी आनन्द कन्द स्वरूप हैं । श्रीतुङ्गविद्या जी रति विलास कला में अत्यन्त चतुर हैं । मञ्जुमेधादिक इनकी आठ सहेलियां हैं ।

"मञ्जुमेधा सुमधुरा सु मेध्या मधुरेक्षणा ।
तनु मध्या मधुस्यन्दा गुण चूड़ा बरांगदा ॥

(राधा कृष्ण गणोद्देश दीपिका)

उपरोक्त प्रत्येक सहेली की आठ आठ सहचरि हैं । जो पद में वर्णित हैं ।

॥ पद ॥

सेवें चाव चढ़ी चितभारी । सोंज सुभाय सजें सहचारी ॥
अति उदारि मृदुचित्त महारी । रहसि रिझावहिं प्रीतम प्यारी ॥
जुगल चरन उरमें धर सोंही । नहि समान उपमा कों कोही ॥
कोटिक चंद्र कलानि विमोही । अमित माधुरी अङ्गनि जोही ॥
निसवासर इकरस रस पीवें । परम तृषातुरि सहज सदीवें ॥
जोय-जोय जुग चंदहिं जीवें । नेंन कटाछि चरन रज छीवें ॥
अष्टमि इंदुलेखा अति जीकी । प्यारी सदा प्रीतमा पीकी ॥
तुङ्गभद्रादि आठ इनिही की । आठ-आठ इनिकें सुनि नीकी ॥

॥ तुङ्गभद्रा जू की ॥

सुनि नीकि सोहनि सोभना सुन्दरी मोहनि मेंनिका ।
राग रङ्गनि सहचरी पुनि रङ्गीली रङ्गायिका ॥

॥ रसातुङ्गा जू की ॥

रसीली रस रंजनी पुनि चारुमतिका चंदनी ।
रसावलिका सुरत सजनी बिसासनी उल्लासिनी ॥

॥ रङ्गवाटी जू की ॥

भांवती त्रयभुवन सुन्दरि विपुलनी पुलकावली ।
कला-संपन्ना विमदनी मतङ्गनि मदनावली ॥

॥ चित्रलेखा जू की ॥

पीयूषदा ललितांगिनी लचलंकनी लीलावती ।
लोलचक्षा छाजनी साजनी राजनि महामती ॥

॥ सुसङ्गता जू की ॥

अवदातिनी अवरेखिनी आत्यंत-रसदा अनुगती ।
अति प्रवीना जानि सुन्दरि मानमन्दिर मालती ॥

॥ चित्रांगी जू की ॥

मधुमह महा अनुवर्तिनी आनन्यका करुणाकरा ।
दरसनीया प्राप्तकामा अलंकारा जितुपमा ॥

॥ मोदनी जू की ॥

आसक्तिनी अनुरंजनी अति भ्राजमाना मनमुदा।
सुरसरसिका रावती आभावती सोभाहृदा ॥

॥ मदनालसा जू की ॥

महामृदुला महामधुरा महारहस्या रसरता।
सुधाधारा धरासुखदा सुफला हरिप्रिया अनुगता ॥

अष्टमी सखी इन्दुलेखा जी तथा उनकी सखियों का वर्णन करते हैं।

ये सब सहचरी सब सेवा की सौजें सजाये हुए चाव उमङ्ग में भरी हुई सेवा करती हैं ये अति उदार हैं तथा महामृदु चित्त वाली हैं ये प्रिया प्रीतम को रहसि लीलाओं में रिझाती हैं। रसिक दम्पति के युगल चरणारविन्दों को उर में धारण करके ये इतनी सुशोभित हैं। इनके समान और कोई उपमा नहीं दी जा सकती है। इनके अङ्गों की माधुरी इतनी मधुर है कि जिसको देख कर करोड़ों चन्द्रमाओं की कला मोह को प्राप्त होती हैं। एक-रस प्रिया प्रीतम के रस को परम तृषातुर की भाँति निशि वासर पीती हुई और सबको उनके केलि स्वरूप यश का प्रदान करती हैं। उनके मुख चन्द्र को देख देख कर जीती हैं। अपने नयन कटाक्षों से उनकी चरण रज का स्पर्श करती रहती हैं। यह इन्दुलेखा जी प्रिया प्रीतम की अत्यन्त प्यारी हैं। तुङ्ग भद्रादिक इनकी आठ सहेलियां हैं। यथा:—

"तुङ्गभद्रा रसोत्तुङ्गा रङ्ग बाटी सुमङ्गला।
चित्र लेखा विचित्राङ्गी मोदनी मदनालसा ॥

(राधा कृष्ण गणोद्देश दीपिका)

उपरोक्त आठ सहचरियों की प्रत्येक की आठ आठ सखियाँ हैं।

॥ पद ॥

ए सब कही कहन जो आई। परम नरम सहचरि समुदाई ॥
औरहु अपरंपार सुहाई। अनगिनती जु गिनी नहि जाई ॥
को बरनें महासिंधु-तरङ्गा। भूरज-कन उडगन अप्रसङ्गा ॥
लखि लखि इनिकौ अद्भुत अङ्गा। चकित होय चित रहत अनंगा ॥
ए इनिही सी और न कोई। उपमा कहन कौन मति होई ॥

पिय-प्यारी इच्छा बपु जोई। अमित कला सुख सेवें सोई ॥
परम चतुरि जद्दपि गुन भोरी। एक डार कीसी सब तोरी ॥
तत्पर टहल महल रसबोरी। जीवनि जिय श्रीहरिप्रिया जोरी ॥

यद्यपि सखियाँ अगणित हैं उनकी गणना नहीं हो सकती है जैसे सिन्धु की तरंगे, पृथ्वी के कण और तारागणों की संख्या नहीं हो सकती है इसी प्रकार सखियों की गणना नहीं हो सकती हैं। तो भी मर्यादा के लिये जितना वर्णन कर सके किया गया है। यह सब परम नर्म सहचरियाँ हैं। इनके लक्षण यह हैं। यथाः—

"रङ्ग देवी सदोत्तुङ्ग हास्य रङ्ग तरंगिणी।
कृष्णाग्रेऽपि प्रिय सखी नर्म कौतूहलोत्सुका ॥"
(श्रीराधा कृष्ण गणोद्देश दीपिका)

इन सखियों के अद्भुत अङ्गों की शोभा को देखकर काम देव का चित्त भी चकित हो जाता है। ये इनहीं सी हैं। इनके समान और कोई उपमा नहीं दी जा सकती ये सखियाँ प्रीया प्रीतम की इच्छा विग्रह रूपा हैं। यथाः—

"अस्या एव काय व्यूह रूपा गोप्यो" (राधिकोपनिषत्)

अर्थात् सब सखियाँ श्रीप्रिया जी की काय व्यूह रूपा हैं। इसीलिये उनके समान रूप वाली हैं। यथाः—

"ललिताद्या अष्ट सख्यो मञ्जरयस्तद्गणश्चयः।
सर्वा वृन्दावनेश्वर्याः प्रायः सारूप्यमागताः ॥"
(राधा कृष्ण गणोद्देश दीपिका)

ललितादि आठ सखियाँ तथा उनके यूथ की मञ्जरियाँ आदि सब प्रायः प्रियाजी के सदृश रूपवाली हैं।

ये सब सखियाँ अमित कला कौशल से श्रीप्रिया प्रीतम को सुख प्रदान करने के लिये उनकी सेवा में लगी रहती हैं। यद्यपि ये अत्यन्त चतुर हैं तो भी गुण भोरी हैं। इन सब के स्वरूप इस प्रकार सदृश हैं जैसे एक डार के तोड़े हुए फल एक समान होते हैं। ये महल के टहल रूपी रस में निमग्न हैं। इन सब के एक मात्र श्रीप्रिया प्रीतम की जोड़ी ही जीवन स्वरूप है।

जोरी जीवनि जीय की श्रीहरिप्रिया जिनकें सदा।
नित्यधाम निवास निश्चल सकल फल मन बंछदा ।।
आनन्दकन्द किसोर मूरति गौर स्याम स्वयंप्रभा।
कोटि रबि ससि लाजहीं लखि चरन-नख मनि मंजुभा।।
कहत हैं जिहिं विदुष व्यापक ब्रह्म हैं जग में जोई।
चरन-नख आभास करि कवि सांच कल्पत हैं सोई ।।
निर्विकार विसेषणादि स्वरूप सुन्दर सोहनें।
अखिल लोक-अधीस अधिपति वपुष विश्वविमोहनें ।।
धाम नामरु काम कृति वृति अमल अङ्ग अनामयं।
दिव्यचिदघन चारु चरित उदार सुद्ध सुधामयं ।।
है नहीं सो नहीं है सो बदत हैं बिधि बेद में।
कही है करि सही ए परिभ्रमत हैं भव भेद में ।।
हितू सहचरि निज कृपा करि जासु तन चितवें जबें।
नित्यविभव बिलास कौ सुख सहज पावें सो तवें ।।
जै जै श्रीहरिप्रिया जोरी गोरी स्यामल गुनभरी।
स्वयं सिद्धि प्रसिद्ध लीला ललित मिश्री की डरी ।।

अब भिन्न भिन्न तुकों का अर्थ लिखा जाता है।

जोरी जीवनि जीय की श्रीहरिप्रिया जिनके सदा।
नित्य धाम निवास निश्चल सकल-फल-मन बंछदा ।।

जिनके श्रीप्रिया प्रीतम की जोड़ी सदा जीवन स्वरूप है वह नित्य धाम-नित्म वृन्दावन में निश्चल रूप से निवास करते हैं और उनके मन की सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यथा:—

"य इमामुपनिषदमधीते, सोऽव्रती व्रतीभवति, स वायु पूतो भवति, स सर्वपूतो भवति, राधा कृष्ण प्रियो भवति स या वच्चक्षुः पातं पंक्तीः पुनाति।" (राधिकोपनिषत्)

इस उपनिषत् को जो कोई पढ़ते हैं वे अव्रती भी व्रती हो जाते हैं। वे समस्त तीर्थों में स्नात् हो जाते हैं। वह वायुपूत हो जाते हैं। वे सर्व पूत हो जाते हैं। वे राधा

कृष्ण के प्यारे हो जाते हैं। और वह जहाँ तक दृष्टि पात करते हैं वहां तक वे सब को पवित्र कर देते हैं। जबकि श्रीराधिकाजी के उपनिषद् के पाठ मात्र का यह फल है, तो जिनके एकमात्र प्रिया प्रीतम ही जीवन स्वरूप हैं वह नित्य वृन्दावन में बास करें और "सकल फल मन बांछदा" हों इसमें क्या आश्चर्य्य है।

आनन्द कन्द किशोर मूरति गौर श्याम स्वयं प्रभा। कोटि रवि शशि लाजहीं लखि चरन-नख-मनि मंजुषा गौर श्याम किशोर मूरति श्रीप्रिया प्रीतम आनन्द कन्द स्वयं ज्योति स्वरूप हैं। उनके चरणारविन्दों के नख मणि की ज्योत्सना को देखकर करोड़ों सूर्य चन्द्रमा लज्जा को प्राप्त होते हैं। यथाः—

"यदंघ्रि नख चन्द्रांशुमहिमान्तो न गम्यते।
तन्माहात्म्यं कियद्देवि प्रोच्यते तं मुदाश्रृणु ॥"
"तद्देह विलसत्कान्ति कोटि कोटयंश को विधुः ॥"
"तत्प्रकाशस्य कोटयंशा रश्मयो रवि विग्रहाः।
तस्य स्वदेहकिरणैः परानन्द रसामृतैः ॥"
(पद्म पुराण-पाताल खंड. वृ. मा.)

श्रीप्रिया प्रीतम के चरण-नख-कान्ति की महिमा को भी हम नहीं जान सकते हैं फिर उनकी महिमा कौन कह सकता है। उनके अङ्ग की छटा के कोटि कोटि अंश के एक अंश स्वरूप चन्द्रमा है।

इसी प्रकार इनके प्रकाश के कोटि कोटि अंश के एक अंश स्वरूप सूर्य नारायण हैं।

कहत हैं जिहिं विदुष व्यापक ब्रह्म है जग में जोई।
चरण नख आभास करि कवि साँच कल्पत हैं सोई ॥

विद्वान लोग जिसको व्यापक ब्रह्म कहते हैं वह वास्तव में श्रीप्रिया प्रीतम के चरणारविन्द के नख की एक छटा है उसी में वह लोग ब्रह्म की कल्पना करके उसी को साँच कहते हैं। यथाः—

"तदंघ्रि पंकज द्वन्द नख चन्द्र मणि प्रभाः।
आहु पूर्ण ब्रह्मणोऽपि कारणं वेद दुर्गमम् ॥" (पद्म पुराण पाताल खण्ड वृ. भा.)

श्रीकृष्ण के युगल चरणारविन्दों के नख की उस छटा से उस 'पर ब्रह्म' का प्रादुर्भाव है। जिसको वेद भी नहीं जानता है।

"यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्ड कोटि कोटिश्वशेष वसुधादि विभूति भिन्नं ।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं, गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ।।" (ब्रह्म संहिता)

मैं आदि पुरुष उन गोविन्द को भजता हूँ जिनके अङ्ग की छटा वह निष्कल, व्यापक, परब्रह्म स्वरूप है जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में पृथक पृथक वैभव रूप से विद्यमान है ।

निर्विकार विशेषणादि सरूप सुन्दर सोहनें ।
अखिल ओक अधोश अधिपति वपुष विश्व विमोहनें ।।

यद्यपि आपका दिव्य मङ्गल विग्रह विश्व को मोहित करने वाला है तो भी निर्विकार आदि विशेषण आप में चरितार्थ होते हैं । आप अखिल, आधार, अधीश तथा अधिपति आदि हैं । यथाः—

"कोटि कन्दर्प लावण्य लीला निन्दित मन्मथम् ।।"
अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ।
स्वेच्छामयं निर्गुणं च निरीहं प्रकृतेः परम् ।।
सर्व्वाधारं सर्वबीजं सर्व्वज्ञं सर्व्वमेव च ।
सर्व्वेश्वरं सर्व्व पूज्यं सर्व्व सिद्धि करम्परम ।।
(ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्म खण्डे)

आपका दिव्य मङ्गल विग्रह कोटान कोटि कन्दर्पों से भी अधिक सुन्दर है लीला द्वारा आप मन्मथ को भी मोहित करते हैं ।

आप अक्षर, परब्रह्म, भगवान्, सनातन, स्वेच्छामय, निर्गुण, निष्चेष्ट, माया से रहित, सबके आश्रय, सबके कारण, सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वपूज्य, सब सिद्धियों को देने वाले, सबसे श्रेष्ठ तथा सब कुछ आप ही हैं ।

धाम नाम अरु काम कृति वृति अमल अङ्ग अनामयं ।
दिव्य चिदघन चारु चरित उदार शुद्ध सुधामयं ।।

धाम=वृन्दावन । यथाः—

"पार शून्य पर धाम तेऽद्भुतं चिद्घनं जयति लोक मूर्द्धनि ।।" (श्रीकृष्ण स्तवराज)

आपका श्रीधाम-वृन्दावन असीम, अद्भुत चिन्मय, तथा और सब धामों का चूड़ामनि स्वरूप है ।

नाम=यथा:—मधुर मधुरमेतं मङ्गलं मङ्गलानां

काम कृति वृति=अर्थात् आपकी इच्छा कर्म विहार आदि दिव्य हैं। यथा:—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ॥   (गी. अ. ४ श्लो. ६)

हे अर्जुन मेरा (वह) जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है।

अमल अङ्ग अनामयं=यथा:—

निर्दोष पूर्णगुण विग्रह आत्म तन्त्रो निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्च हीनः।
आनन्द मात्र करपाद मुखोदरादिः सर्वत्र च स्वगत भेद विवर्जितात्मा ॥

(नारद पञ्चरात्रे)

श्रीप्रिया प्रीतम का विग्रह निर्दोषि है। पूर्ण गुणों से युक्त स्वतन्त्र हैं। इनमें प्राकृतिक शारीरिक गुण नहीं हैं। इनके कर, चरण, मुख तथा उदर आदि सब अङ्ग चिन्मय हैं। इनमें सर्वत्र तथा स्वगत भेद नहीं हैं।

इसीलिये आपका विग्रह 'अमल अङ्ग अनामयं' शुद्ध दिव्य है यह प्राकृत विग्रह की तरह अस्वस्थ नहीं है।

दिव्य चिदघन चारु चरित उदार शुद्ध सुधामयं।

आपके चरित्र दिव्य, चिन्मय, सुन्दर, उदार, शुद्ध तथा अमृत मय हैं। यथा:—

"अव्याकृत विहाराय सर्वव्याकृत सिद्धयो।"   (भा. १० स्क १६ अ. ४७ श्लो.)

जिनका विहार सच्चिदानन्द है और जिनसे इस विश्व को सृष्टि होती है।

है नहीं सो नहीं है सो वदत है विधि वेद में।
कही है कर सही ये परि भ्रमत है भव भेद में ॥

श्रीब्रह्मा जी ने वेद में जिस पदार्थ को नेति नेति कहके प्रतिपादन किया है वह तत्व कुछ भी पदार्थ नहीं है, यह बात नहीं है। बल्कि उन्होंने समस्त मायिक पदार्थों का नेति नेति से निषेध करके, परतत्व स्वरूप श्रीप्रिया प्रीतम के तत्व की स्थापना की है। इस बात को नहीं समझ कर साधारण पुरुष नेति-नेति से भ्रम में पड़कर संसार के माया जाल में फस जाते हैं।

"है नहीं सो नहीं है" इत्यादि सब आप में ही है। यथा:—

"किमस्ति नास्ति व्यपदेश भूषितं त्वास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः।"

(श्री. भा. स्क. १०. अ. १४ श्लो. १२)

"है" और "नहीं है" इन शब्दों से कही जाने वाली कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो आप की कूख के भीतर न हो, अर्थात् अद्वय तत्व आप ही हैं।

हितु सहचरी निज कृपा करि जासु तन चितवें जबै।
नित्य विभव विलास को सुख सहज पावै सो तबै ।।

श्रीहितु सहचरी जी जिस की ओर कृपा भरी दृष्टि से देखती हैं उसी को नित्य वैभव विलास को सुख अनायास में प्राप्त हो जाता है। यथा:—

"सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव पुनः पुनः।
बिना राधा प्रसादेनमत्प्रसादो न विद्यते ।।
श्रीराधिकाया कारुण्यात् तत्सखी संगितामियात्।
तत्सखीनां च कृपया योषिदंग मवाप्नुयात् ।।" (नारदीय पुराण)

श्रीकृष्ण कहते हैं :—

बारम्बार शपथ पूर्वक मैं कहता हूँ "श्रीराधिका जी की कृपा बिना मेरी कृपा नहीं हो सकती है। क्योंकि श्रीप्रियाजी की कृपा से ही उनकी उन सखियों का सङ्ग प्राप्त होता है। जिनकी कृपा से ही सखी स्वरूप प्राप्त होता है।

जय श्रीहरिप्रिया जोरी गोरी श्यामल गुन भरी।
स्वयं सिद्ध प्रसिद्ध लीला ललित मिश्री की डरी ।।

समस्त गुणों के आलय स्वरूप श्रीप्रिया प्रीतम को जय हो जिनकी स्वयं सिद्ध लीलाएँ संसार में प्रसिद्ध हैं जोकि मिश्री की डरी की तरह मधुर हैं ।।

आपकी लीलाएँ नित्य हैं यथा:—

"एको देवो नित्य लीलानुरक्तः।" (पुरुष बोधिनी उपनिषद्)

श्रीकृष्ण नित्य लीला में अनुरक्त रहते हैं।

।। अनुरागिनि आनन्दा मध्याभास ।।

।। दोहा ।।

निगम निगम अगमनि अगम, लहि न सकें गुन अन्त।
जे कारन सब जक्त के, तिनके कारन कन्त ।।

॥ पद ॥१६॥

सकलकारन के कारन कंत । लीला अमल अनंत ॥
निगम-निगम आगम अगम गम ग्रन्थनि में गोप्य ।
सब ते सब सिद्धांत तें सब सिद्धांत अलोप्य ॥
जाकौ अंस परमातमा प्रकृति पुरुष कौ ईस ।
पर इच्छा आधीन ह्वै जगमगात जगदीस ॥
एकैं आप अनेक ह्वै ह्वै अनेक तें एक ।
आदि मध्य अवसान में रमि रहे एकामेक ॥
जो हैं सो सब इनहिं तें इनहो तें सब नाहिं ।
सब के बाहर आपुही है आपुहि सब माहिं ॥
ऐसे विश्व अनन्त में एकहि ये बहु अंस ।
परमातम अवतार ह्वै निर्विकार निरसंस ॥
तिनकी लीला तिनहिं के अधिकारी उलखंत ।
ह्यां तौ एकहि अंस कौ आवत नाहीं अन्त ॥
श्रीराधा पद कमल तें नूपुर कलरव होय ।
निर्विकार व्यापक भयौ शब्द ब्रह्म कहि सोय ॥
जै–जै नित्य बिहार जै–जै वृन्दावन धाम ।
जै–जै इच्छा सक्ति जै जिनकी ये ये काम ॥
प्रिया सक्ति अहलादिनी पिय आनन्द स्वरूप ।
तन वृन्दावन जगमगैं इच्छा सखी अनूप ॥
कोटिन क्रोटि समूह सुख रुख लियें इच्छा सक्ति ।
प्राणेसहि प्रमुदावहीं प्रमदावलि अनुरक्ति ॥
जब तें ए ए तबहिं ते ए ए एक अनन्त ।
श्रीवृन्दावन में सदा निति बिलास बिलसन्त ॥
सरिता रस सिंगार की बहति सदा चहुँ ओर ।
इकछतराज करें जु श्रीहरिप्रिया जुगलकिसोर ॥१६॥

अब सब तुकों की अलग अलग व्याख्या की जाती है ।

निगम निगम आगम अगम लहि न सकै गुण अन्त ।
जे कारन सब जगत के तिन के कारन कन्त ।।

वेद, शास्त्र को आप अगम्य हैं । आप के गुणों का अन्त यह भी नहीं पा सके । यथाः—"यच्छ्रुतयस्त्वयिहि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधन"

(भा: १० स्क: ८७ अ: श्लो: ४१)

हम श्रुतियां भी आपके स्वरूप का साक्षात वर्णन नहीं कर सकती हैं ।

पुनः यथाः— "वेद गुह्यानि हृत्पतेः ।" (भाः स्क १: अः ३: श्लोः ३५)

हृदयेश्वर भगवान के कर्म अर्थात लीला आदि वेदों को भी छिपी हुई हैं ।

जो सब जगत के कारन हैं उन के भी कारण श्यामसुन्दर हैं । यथाः—

"ईश्वरः परमः कृष्ण सच्चिदानन्द विग्रह ।
अनादि आदि गोविन्दः सर्व कारण कारणम् ।।" (ब्रह्म संहिता)

सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण ही परमेश्वर सबके आदि अनादि तथा सब कारणों के कारण स्वरूप है ।

सकल कारन के कारण कंत, लीला अमल अनन्त ।।
निगम निगम आगम अगम गम ग्रन्थनि में गोप्य ।
सबते सब सिद्धान्त ते सब सिद्धान्त अलोप्य ।।

सब कारणों के कारण स्वरूप वह प्रिया प्रीतम हैं । जिनकी लीलायें अप्राकृत तथा अनन्त हैं । यद्यपि उन लीलाओं का वेद शास्त्रों ने पार नहीं पाया है तथा "गम ग्रन्थन" अर्थात निजान्त रहस्य ग्रन्थों में गोप्य हैं । तो भी जब सब सिद्धान्तों का मन्थन किया जाता है तब वह व्यक्त हो जाती हैं ।

निगम आगम की वह लीलायें गोप्य हैं तथा आप सब कारणों के कारण स्वरूप हैं, इन दोनों विषयों पर इसी पद के 'आभास दोहा' की व्याख्या में प्रकाश डाला जा चुका है । आपकी लीलायें अप्राकृत तथा अनन्त हैं । यथाः—

"जन्म कर्म च मे दिव्यम्" (गी. अ. ४ श्लो. ६)

मेरा जन्म और कर्म अर्थात् लीला दिव्य अर्थात् अप्राकृत है ।

पुनः । यथाः—"लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कात्स्न्येंन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ।"

(श्री भा स्क. १२-अ. ४ श्लो. ३६)

श्रीकृष्ण की लीलायें संक्षेप से कही गई हैं। इसकी लीला अनन्त है। इनको पूर्ण रूप से श्रीब्रह्मा जी भी वर्णन नहीं कर सकते।

पुनः। यथाः— "अव्याकृत विहाराय सर्वव्याकृत सिद्धये।"

(श्रीभा. स्क. १० अ. १६ श्लो. ४७)

जिनका विहार सच्चिदानन्द है और जिनसे इस विश्व की सृष्टि होती है।

जाकौ अंश परमात्मा प्रकृति पुरुषं कौ ईश।
पर इच्छा आधीन ह्वै जगमगात जगदीश ।।

प्रकृति पुरुष का ईश जिसको परमात्मा कहते हैं वह भी श्रीप्रिया प्रीतम का अंश स्वरूप है। वह परमात्मा उनकी आज्ञा से उनके आधीन होकर जगदीश्वर कहलाता है। अब 'प्रकृति पुरुष' तथा 'परमात्मा' की भिन्न भिन्न व्याख्या की जाती है।

प्रकृति पुरुष=यथाः—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणाश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान्।। (गी. अ. १३ श्लो. १९)

प्रकृति अर्थात् माया और पुरुष अर्थात जीवात्मा इन दोनों को ही तू अनादि जान। विकार और गुणों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुए जान। परमात्मा=यथाः—

"उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदा हृतः।
यो लोक त्रयमाविश्य बभर्त्य व्ययइश्वरः।।" (गीता अ. १५. श्लो. १७)

उत्तम पुरुष तो अन्य ही है कि जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है। इसीलिये इनको अविनाशी, परमेश्वर और परमात्मा कहा गया है।

ग्रन्थकार का कहना है कि उपरोक्त 'प्रकृति पुरुष का ईश' जिसको परमात्मा कहते हैं। श्रीप्रिया प्रीतम के आधीन होकर अर्थात उनकी आज्ञा से तीनों लोकों का भरण पोषण करता है। यथाः—

"अनन्त कोटि ब्रह्माण्डे अनन्त त्रिगुणोच्छ्रये।
तत्कला कोटि कोटयंशा ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः।।"

(पद्म पुराण वृन्दावन मा.)

"माया गुणैर्यतोमेंऽशाः कुर्वन्ति सर्ज्जनादिकम्।
न करोमि स्वयं किञ्चित् सृष्टयादिमह शिव।।"

(पद्म पुराण पाताल खण्डे वृन्दावन)

अनन्त सत, रज, तम गुणों के आश्रय अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं यह सब श्रीकृष्ण के ही कोटि कोटि अंश के अंश स्वरूप हैं। हे शिव ! मेरे अंश ब्रह्मादिक ही माया के गुणों के द्वारा सृष्टि, स्थिति, प्रलय करते हैं मैं स्वयं यह सब कार्य नहीं करता हूँ।

एकै आप अनेक ह्वै ह्वै अनेक तें एक।
आदि मध्य अवसान में रमि रहे एकामेक ॥

श्रीप्रिया प्रीतम एक स्वरूप होते हुए भी अनेक स्वरूप धारण करते हैं। फिर अनेकों से एक हो जाते हैं। वास्तव में आदि, मध्य और अन्त में आप एक ही स्वरूप हैं। आप अपने एक ही स्वरूप में विहार करते रहते हैं। यथा:—

"एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति।" (गोपाल तापिनी)

"बहुमूर्त्यैक मूर्तिकम्" (श्रीभा. १० स्क. ४० अ. ७ श्लो.)

'एक होकर भी जो बहुत स्वरूपों से विहार करते हैं।' आप बहुत मूर्ति स्वरूप होकर भी एक मूर्ति स्वरूप हैं।

जो है सो सब इनहिं ते इनहिं ते सब नाहिं।
सब के बाहिर आपुहीं हैं आपुहि सब मांहि ॥४॥

आप से ही सब जगत् उत्पन्न होता है और आप ही में समा जाता है। सबके बाहर भीतर आप ही हैं। यथा:—

"अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।" (गीता अ. ७ श्लो. ६)

"मयि सर्मिदं प्रोतं सूत्रे मणि गणा इव।" (गीता अ. ७ श्लो. ७)

'मैं संपूर्ण जगत् का उत्पत्ति तथा प्रलय स्वरूप हूँ।'

यह सम्पूर्ण जगत् मुझ सूत्र में मणियों की सदृश गुथा हुआ है।

ऐसें विश्व अनन्त एकहिं ए बहु अंश।
परमातम अवतार ह्वै निर्विकार निरसंश ॥५॥

जैसे पहले कह चुके हैं, श्रीप्रिया प्रीतम एक होते हुए भी अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में अपने अनन्त अंशों—परमात्मा, निर्विकार आदि स्वरूपों से निश्चय नित्य विराजते हैं। यथा:—

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डे तद्वाह्याभ्यन्तरस्थिते ।
तत्कला कोटि कोटयंशा ब्रह्म बिष्णु महेश्वराः ।।
सृष्टि स्थित्यादिना युक्तास्तिष्ठन्ति तस्य वैभवा । (पाद्मे पा. खं. वृ. भा.)
सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः ।
हीनो पादान रहिता नैव प्रकृति जा क्वचित् ।। (सन्दर्भ)

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में उनके बाहर और भीतर श्रीप्रिया प्रीतम की कला के कोटि अंश के भीतर कोटि अंश स्वरूप ब्रह्मा विष्णु महेश श्रीप्रीया प्रीतम के वैभव हैं जो सृष्टि, स्थिति, संहार करते हैं। यह सब नित्य हैं इनमें कोई हेय अंश नहीं है यह प्राकृतिक नहीं हैं।

तिनकी लीला तिनहिं के अधिकारि उलिखंत ।
ह्याँ तो एकहिं अंश को आवत नाहीं अन्त ।।६।।

उपरोक्त अवतारों की लीलाओं के वर्णन करने का यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। उनके तत् तत् उपासकों ने उनकी लीलायें अन्य स्थानों में विस्तार पूर्वक वर्णन की हैं। उन अवतारों के एक अंश की लीलाओं का भी आर पार नहीं पा सकते हैं।

श्रीराधा पद कमल ते नूपुर कलरव होय ।
निर्विकार व्यापक भयो शब्द ब्रह्म कहि सोय ।।''

श्रीप्रिया जी के चरणारविन्द के नूपुर से जो मधुर अव्यक्त शब्द होता है, वही निर्विकार व्यापक शब्द ब्रह्म कहलाता है।

श्री'सनत्कुमार संहिता' में इस विषय की पुष्टि के लिये यह आख्यायिका वर्णित हैं। यथाः— "श्रीराधोवाच :—

कुरुध्वं मण्डलं यूयं मध्ये तिष्टामि युग्मकम् ।
भवन्त्यः प्रक्रमां कुर्युरावयोश्च पुनः पुनः ।।
अहं कृष्णश्च युग्मं तु कुर्वे रास क्रियां शुभाम् ।
ततश्चकार वै रासं पुनरभ्यन्तरे ययौ ।।
कृता युग्मेन सा केलिर्महानन्द मयी ध्रुवा ।
नूपुराज्जनितो रावः स एव ब्रह्म संज्ञिकः ।।
(स. कु. सं पटल ३१ श्लो. ७२, ७३, ७४, ७५)

श्रीप्रिया जी कहती हैं :—

हे ललिते ! तुम सब मण्डली बाँधकर स्थित हो बीच में हम दोनों रहैंगे। तुम सब बार बार हमारी परिक्रमा करो। हम दोनों सुन्दर रास क्रीड़ा करेंगे।" इसके बाद इस प्रकार आज्ञा देकर रास नृत्य करके दोनों निकुञ्ज मन्दिर में पधारें। वहां दोनों ने मिलकर आनन्द मयी सुरति केलि की। उस केलि से उत्थित श्रीस्वामिनी जी के नूपुर का जो शब्द हुआ उसी को शब्द ब्रह्म कहते हैं।"

जय जय नित्य विहार जय जय वृन्दावन धाम।
जय जय इच्छा शक्ति जय इनकी ए ए काम ॥८॥
प्रिया शक्ति अह्लादनी प्रिय आनन्द स्वरूप।
तन वृन्दावन जगमगै इच्छा सखी अनूप ॥९॥

वास्तव में शब्द ब्रह्म का प्रादुर्भाव श्रीनित्य विहार से ही हुआ है। इसलिये श्रीनित्य विहार, श्रीवृन्दावन तथा सखियों की विरदावली गान करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं 'जय जय' इत्यादि।

यद्यपि विहार में आपकी लीलाओं के उपयोगी असंख्य पदार्थ हैं तो भी ग्रन्थकार उन सबको चार विभागों में विभिन्न करते हुए कहते हैं:—

(१) श्रीप्रिया जी अह्लादनी शक्ति (२) श्रीलालजू—आनन्द स्वरूप (३) श्रीवृन्दावन—दोनों के दिव्य मङ्गल विग्रह स्वरूप तथा (४) श्रीसखियाँ प्रिया प्रीतम की इच्छा वृत्ति स्वरूपा हैं। अब चारों तत्वों का पृथक पृथक विवेचन किया जाता है।

(१) श्रीप्रियाजी :—अह्लादिनी।

"तास्वाह्लादिनी वरीयसी परमान्तरङ्ग भूता राधा, कृष्णेन आराध्यत इति।
(श्रीराधिकोपनिषत्)

आह्लादिनी, सन्धिनी, आदि शक्तियों में आह्लादिनी सर्व श्रेष्टा है यही श्रीकृष्ण की परमान्तरङ्ग स्वरूपा श्रीराधिका जी हैं, इन्हीं की श्रीकृष्ण आराधना करते हैं।

(२) श्रीलाल जू। आनन्द स्वरूप। यथा:—

"आनन्द मूर्तिमजहादति दीर्घ तापम्"। (श्री. भा. १० स्क. ४८ अ. ७ श्लो.)

कुब्जा ने आनन्द मूर्ति श्रीकृष्ण को आलिङ्गन करके अपने दीर्घ काल से बढ़े हुए ताप को शान्त किया।

(३) श्रीवृन्दावन यथाः—

"पञ्चयोजनमे वास्ति वनं मे देह रूपकम्" [वृहद् गौतमीय तन्त्र]

श्रीकृष्ण जी कहते हैं:—

पञ्चयोजन परिमाण वाला श्रीवृन्दावन मेरी देह स्वरूप है।

[४] श्रीसखी–दोनों की इच्छा वृत्ति स्वरूपा। यथाः—

"अस्या एव काय व्यूह रूपा गोप्यः।" [राधिकोपनिषत्]

सब सखियाँ श्रीप्रिया जी की काय व्यूह स्वरूपा हैं। अर्थात इनकी इच्छा से ही सखियों का प्राकटच हुआ है।

पुनः। यथाः—

इच्छा शक्ति ज्ञान शक्ति क्रिया शक्ति स्तवेशितुः।
तवांश मात्रमित्येषा मनीषी मे प्रवर्तते॥ [बृ. माहात्म्ये]

श्रीनारद जी श्रीप्रिया जी की इस प्रकार स्तुति करते हैं:—

'आपके प्राण नाथ की जो इच्छा शक्ति-ज्ञान शक्ति तथा क्रिया शक्तियाँ हैं ये सब आपकी ही अंश स्वरूपा हैं।'

कोटिन कोटि समूह सुख रुख लिये इच्छा शक्ति।
प्रानेशहिं प्रमुदावहीं प्रमुदावलि अनुरक्ति॥१०॥

करोड़ों सखी श्रीप्रिया प्रीतम का रुख लेकर उनकी सेवा समाधान करती हैं। अपने प्राणों से भी प्यारे दोऊ लड़ेतों को अनुराग सहित लाड़ लड़ाती हैं।

सखियों की संख्या करोड़ों हैं। यथाः—

"खेलत लालन ललना रासे, ललित मृदुल गति मिलवत हासे।
श्रीवृन्दावन सरद जामिनी, सङ्ग लिये शत कोटि कामिनी॥"

[महावाणी उ. सु. रास]

पुनः 'महावाणी'। यथाः—

ये सब कहीं कहन जो आई। परम नर्म सहचरी समुदाई॥
औरहु अपरम्पार सुहाई। अनगिनती जु गिनी नहीं जाई॥
को वर्णे महा सिन्धु तरङ्गा। भूरज कन उडुगन अप्रसङ्गा॥

[महावाणी सि. सुख]

किसी किसी स्थान पर :—

"तिस्रः कोटयो वल्लवीनां समाजः
तावद रूपो वल्लभः सोभि मध्ये ।।" (आदि पुराण)

तीन सौ करोड़ गोपियों के समाज में इन्हीं के अनुरूप श्रीकृष्ण मध्य में बिराजते हैं।

जवते ए ए तर्वाहि ते ए ए एक अनन्त।
श्रीवृन्दावन में सदा नित विलास विलसंत ।।११

जैसे श्रीप्रिया प्रीतम आदि अन्त रहित हैं। इसी प्रकार यह सखी भी हैं। श्री-वृन्दावन में यह भी श्रीप्रिया प्रीतम के साथ नित्य विलास करती हैं। यथा—

"गोप्यैकया वृतस्तत्र परिक्रीड़ति सर्वदा।" (यु. त. भाव मयूख)

उस वृन्दावन में गोपियों से आवृत (श्रीकृष्ण) नित्य क्रीड़ा करते हैं।

वृन्दावन में नित्यलीला होती रहती है। यथाः—

"नित्यं वृन्दावनं नाम नित्य रासरसोत्सवम्।
अदृष्यं परमं गुह्यं पूर्ण प्रेम रसात्मकम् ।।"

(पद्मपुराण पा. खं वृ. माहात्म्य)

यद्यपि नित्य वृन्दावन में नित्य रास रसोत्सव होते रहते हैं जो कि पूर्ण प्रेम रसात्मक तथा अत्यन्त गुह्य होने से सबके दृष्टि गोचर नहीं हैं।

सरिता रस सिंगार की वहति सदाँ चहूँ ओर।
इक छत राज करें जु श्रीहरिप्रिया जुगल किशोर।।

जिस वृन्दावन के चहूँ ओर शृंगार रस ही जमुना जल रूप से बह रहा है। वहाँ नित्य किशोर अवस्था वाले श्रीप्रिया प्रीतम नित्य राज करते हैं।

श्रीयमुना जल "शृंगार रस स्वरूप" है इसकी व्याख्या विस्तार पूर्वक इसी 'सुख' में योग पीठ की व्याख्या के अन्तर्गत कर चुके हैं।

।। दोहा ।।

परमातम परब्रह्म करि, बिसतारन जग जाल।
जन पालन जै-जै महा, रासबिहारी लाल ।।

॥ पद ॥१७॥

महारस रासबिहारीलाल। बारी जाऊं जै जै जै जनपाल॥
निराकार अविकार परब्रह्म सुद्ध चैतन्य।
निर्विसेष व्यापक भयौ जिहि चिदंस तें जन्य॥
जाके एकहि अंस करि परमातम अवतार।
पर इच्छा आधीन ह्वै कीनों सब बिस्तार॥
अखिल अंड व्यापिक अरु अखिल अंड आधार।
अखिल अंड के ईस ह्वै हरत करत प्रतिपार॥
एक दोय अरु तीन पुनि चारि पाँच बहुरूप।
धरि-धरि लीला धारहीं आप अपार अनूप॥
जा करि ए सब होत हैं सो ए नित्यकिसोर।
श्रीहरिप्रिया सिरोमनी सदा बसें निस-भोर॥१७॥

ग्रन्थकार इस पद से सृष्टि प्रकार वर्णन करते हैं। श्रीरास विहारी लाल की जय हो जिन्हौंने 'परब्रह्म' तथा 'परमात्मा' को प्रकट करके अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का विस्तार किया।   परब्रह्म=यथा:—

"तदंघ्रि पंकज द्वन्द नख चन्द्र मणि प्रभाः।
आहुः पूर्ण ब्रह्मणोऽपि कारणं वेद दुर्गमम्॥" (पाद्मे वृन्दावन मा.)

श्रीकृष्ण के युगल चरणार विन्दों के नख की उस छटा से 'परब्रह्म' का प्रादुर्भाव हुआ है जिसको वेद भी नहीं जानते हैं।

पुनः। यथा:—

"यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्ड कोटि
कोटिष्वशेष वसुधादि विभूति भिन्नम्।
तद् ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेष भूतं,
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥" (ब्रह्म संहिता)

मैं आदि पुरुष उन गोविन्द को भजता हूँ जिनके अङ्ग की छटा वह निष्कल, व्यापक, परब्रह्म स्वरूप है जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में पृथक पृथक वैभव रूप से

विद्यमान हैं। परमात्मा=यथा—

"यस्यैक निश्वसित कालमथावलम्ब्य जीवन्ति लोम विलजा जगदण्ड नाथाः।
बिष्णुर्महान् सइह यस्य कलाविशेषो, गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥

"परमात्मा" अर्थात कारणार्णवशायी जिनके रोम कूप को आश्रय करके अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड रहते हैं, उनके एक श्वास लेने के समय तक उन ब्रह्माण्डों के नाथ जीवित रहते हैं। ऐसे महाविष्णु भी जिनकी एक कला हैं उन आदि पुरुष गोविन्द को मैं भजता हूँ।

उपरोक्त प्रमाण से यह सिद्ध हुआ कि "परमात्मा" (महाविष्णु) श्रीकृष्ण के अंश स्वरूप है। इनसे सृष्टि का क्रम इस प्रकार है। यथा:—

"तद्रोम बिलजालेषु बीजं सङ्कर्षणस्य च।
हैमान्दण्डानि जातानि महाभूता वृतानि तु ॥
सहस्र मूर्धा विश्वात्मा महा विष्णुः सनातनः।
वामाङ्गाद् सृजद्विष्णु दक्षिणांगाद प्रजापतिम् ॥
ज्योतिर्लिङ्गमेयं शम्भु कूर्चे देशाद वा सृजत्।
अहंकारात्मकं विश्वं तस्मादेत द्व्यजायत ॥" (ब्रह्म संहिता)

सहस्र मूर्धा, विश्वात्मा महाविष्णु के रोम कूप समूह में पञ्चभूतों से आवृत अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए। उनके वामांग से विष्णु दक्षिण से ब्रह्मा, कूर्च देश अर्थात दोनों भूवों के मध्य देश से वह श्रीमहादेव जी प्रकट हुए जिनसे अहंकारात्मक विश्व की उत्पत्ति हुई।

महारस रास बिहारी लाल।
बारी जां जय जय जनपाल ॥
निराकार अविकार परब्रह्म सुद्ध चैतन्य।
निर्विशेष व्यापक भयौ जिहि चिदंश तें जन्य ॥

महा रस स्वरूप, सब जन पालक, श्रीरास विहारी लाल की बलि जाऊँ जिनके चिद् अंश से निराकार, अविकार, शुद्ध चैतन्य, निर्विशेष तथा व्यापक परब्रह्म का प्रादुर्भाव हुआ है।

उपरोक्त तुक में निराकार, अविकार आदि निर्विशेष उस परब्रह्म के सब

विशेषण हैं। जिसका प्रादुर्भाव श्रीकृष्ण के युगल चरणारविन्दों के नख की छटा से हुआ है। इस विषय के प्रमाण विस्तार पूर्वक इसी पद के 'आभास देहि' की व्याख्या में वर्णन कर चुके हैं।

जाके एकहि अंश करि परमातम अवतार।
पर इच्छा आधीन ह्वै कीनो सब विस्तार ॥२॥

श्रीरास विहारी लाल के एक ही अंश से परमात्मा अर्थात् महाविष्णु का अवतार हुआ है जिन्होंने उनकी इच्छा के आधीन होकर सब ब्रह्माण्डों का विस्तार किया है।

'आभास दोहे' की व्याख्या करते हुए विस्तार पूर्वक वर्णन कर चुके हैं।

अखिल अण्ड व्यापिक अरु अखिल अण्ड आधार।
अखिल अण्ड के ईश ह्वै हरत करत प्रतिपार ॥३॥

निर्विशेष परब्रह्म तथा परमात्मा अर्थात महाविष्णु, जो श्रीरास विहारी लाल से ही प्रकट हुए हैं। यही समस्त ब्रह्माण्डों में व्यापक तथा उनके आधार स्वरूप होकर ब्रह्मा, बिष्णु, महेश स्वरूप से अखिल ब्रह्माण्डों के ईश होकर, सृष्टि, संहार तथा पालन करते हैं।

उपरोक्त विषय के प्रमाण इसी पद के 'आभास दोहे' की व्याख्या तथा अन्य स्थानों में वर्णन कर चुके हैं।

एक दोय अरु तीन पुनि चार पाँच बहु रूप।
धरि धरि लीला धारहीं आप अपार अनूप ॥४॥

श्रीप्रिया प्रीतम ही कहीं एक, कहीं दो, कहीं तीन कहीं चार, कहीं पांच और कहीं बहुत रूपों से प्रकट होकर ऐसी ऐसी अनूप लीलायें करते हैं कि जिनका कोई पार नहीं पा सकता है। यथाः—

"एकोऽपि सन बहुधा यो विभाति"। (गोपाल तापिनी)

एक होकर भी जो बहुत स्वरूपों से प्रकट होते हैं।

एक स्वरूप से। यथाः—

श्रीनृसिंह तथा वामनादि।

दो स्वरूपों से। यथाः—

श्रीनर नारायण तथा श्रीलक्ष्मी नारायण आदि।

तीन स्वरूपों से। यथाः--

श्रीब्रह्मा, विष्णु तथा महेष—गुणावतारादि।

चार स्वरूपों से। यथाः—

श्रीवासुदेव, शंकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनुरुद्ध चतुर्व्यूह अवतारादि।

पाँच स्वरूपों से। यथाः—

श्रीसीता, राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न आदि।

जा करि ए सब होत हैं सो ए नित्य किशोर।
श्रीहरिप्रिया सिरोमनी सदा वसो निशि भोर॥

नित्य किशोर श्रीप्रिया प्रीतम से ही सब सत्, तथा असत् लोकों की रचना होती है श्रीग्रन्थकार अन्त में प्रार्थना करते हैं कि "यह दौनों मेरे मस्तक के चूणामणि स्वरूप होकर सदा विहार करें।

॥ दोहा ॥

रजधानी मानी मनहिं, वृन्दावन बिबि भूप।
सुखदायक नायक सखी, सच्चिदानन्द स्वरूप॥

॥ पद ॥१८॥

सखीरी सच्चिदानन्द स्वरूप सकल सुखदायक नायक भूप।
श्रीवृन्दावन रजधानी मनमानी परम अनूप॥
आदि अनादि एकरस अद्भुत सदा सनातन रूप।
श्रीहरिप्रिया सुधाकर दिनहिं विदारन दारन धूप॥१८॥

सब के भूप स्वरूप श्रीप्रिया प्रीतम ने इस वृन्दावन को अपनी रजधानी बनायी है जो कि सच्चिदानन्द स्वरूप होने से सब सुखों का प्रदान करने वाला, आदि, अनादि, एक रस तथा सदा सनातन है। यथाः--

"दिव्यं वृन्दावनं नाम शेषांगस्थं च सर्वदा।
ब्रह्मरूप मिदं देवि सच्चिदानन्द रूपकम्॥" (पुरुषार्थ बोधनी उपनिषद्)

हे देवि! इस वृन्दावन का स्वरूप दिव्य, ब्रह्मरूप, तथा सच्चिदानन्द है। ये नित्य शेषांगस्थ है। ब्रह्म-स्वरूप होने के कारण आदि अनादि, एक रस तथा सनातन

आदि सभी विशेषण श्रीवृन्दावन के स्वरूप में चरितार्थ होते हैं।

श्रीहरिप्रिया सुधाकर दिनहिं विदारन दारुन धुप।

श्रीप्रिया प्रीतम संसार रूपी दारुण धूप को नित्य नष्ट करके अमृत वरसाने वाले चन्द्रमा हैं। यथाः—

"श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्। क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन्॥
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते।"
(भा. स्क. १० अ. १४ श्लो. ४०)

सबके मन प्राण को अपनी रूप माधुरी से आकर्षित करने वाले श्याम सुन्दर। आप यदुवंश रूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य हैं। प्रभो, पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और गोरूप समुद्र की अभिवृद्धि करने वाले चन्द्रमा भी आप ही हैं आप पाखण्डियों के धर्म रूप रात्रिका घोर अन्धकार नष्ट करने के लिये सूर्य और चन्द्रमा दोनों के ही समान हैं। पृथ्वी पर रहने वाले राक्षसों के नष्ट करने वाले आप चन्द्रमा सूर्य आदि समस्त देवताओं के भी परम पूजनीय हैं। भगवन् मैं अपने जीवन भर महा कलप पर्यन्त आपको नमस्कार ही करता रहूँ।

॥ दोहा ॥

उदधि महामाधुर्य के, रसिक दोऊ रसभौंन।
सदा सर्वदा एक रस, राजत राधारौंन॥

॥ पद ॥१९॥

सदा सर्वदा राधिकारवन राजैं। रसिक रसभवन में भव्य भ्राजैं॥
मधुर माधुर्य औदधि उदारा। श्रवत नित रहत सुख सुधाधारा॥
सहज स्वकीयानि प्रति पोष कर्त्ता। अमित गुण चंड ब्रह्मंड भर्त्ता॥
श्रीहरिप्रिया जुगल वपुधरि बिहारैं। धन्य हैं ये जु इनि हैं निहारैं।१९

अब भिन्न तुकों की पृथक पृथक व्याख्या की जाती है।

उदधि महा माधुर्य के रसिक दोउ रस भौन।
सदा सर्वदा एक रस राजत राधा रौन॥

सदा सर्वदा राधिका रवन राजैं ।
रसिक–रस–भवन में भव्य भ्राजैं ।।

वह दोऊ राधारवन जो महा माधुर्य्य रस के समुद्र, रसिक तथा रस भवन स्वरूप हैं । सदा सर्वदा एक रस रस भवन—श्रीवृन्दावन में सुशोभित हैं । यथा:—

"राधा कृष्णावहं वन्दे रस रूपौ रसायनौ ।
वृन्दावन निकुञ्जेषु नित्य लीला समाश्रितौ ।। (म. बा. सु. सु. श्लो. १)

मैं श्रीप्रिया प्रीतम की बन्दना करता हूँ जो कि रस रूप तथा रसायन अर्थात रस भवन स्वरूप हैं । जो कि श्रीवृन्दावन की निकुञ्जों में नित्य लीला करते रहते हैं ।

पुनः यथा:—

पीयूषाम्बुधि कोटि कोटि मधुरौ नित्यौ किशोरौ रसौ ।
नित्यानन्त सखी जनैः सुरसितौ कान्तौ कला सागरौ ।।
नित्यानन्द महोदधौ तु परमे वृन्दावने लासिनौ ।
देवौ श्रीपुरुषोत्तमौ सुरसिकौ स्यातां प्रियौ सर्वदा ।। (यु. त. रस मयूख)

मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि रसिक शेखर वह श्रीप्रिया प्रीतम सदा प्रीति युक्त रहें ! जिनमें करोंड़ों अमृत समुद्रों से भी अधिक माधुर्य है । जो नित्य किशोर रस कमनीय कलासागर तथा नित्यानन्द महोदधि स्वरूप हैं । और जो नित्य अनन्त सखियों द्वारा आस्वादित हो रहे हैं और जो परम धाम श्रीवृन्दावन में विलास कर रहे हैं ।

मधुर माधुर्य्य औदधि उदारा श्रवत नित रहत सुख सुधा धारा ।।

(जिस वृन्दावन में) मधुर माधुर्य्य रस रूपी गम्भीर समुद्र की सुख रूपी अमृत धारायें नित्य श्रवत हो रही हैं । यथा:—

"वर्षंतमेव सहजाद्भुत सौख्यधारा ।
श्रीराधिका चरणरेणु महं स्मरामि ।। (राधा सु. नि. श्लो. ३२)

मैं उन श्रीप्रिया जी के चरणारविन्दों की रेणु को स्मरण करता हूँ, जिससे सदैव स्वाभाविक अद्भुत सुख की धाराएँ वर्षती रहती हैं ।

सहज स्वकीयानि प्रति पोष कर्त्ता । अमित गुन चंड ब्रह्मांड भर्त्ता ।।

वह रस सहज स्वकीयानि अर्थात सखी गणों को पोषण करता है । श्रीप्रिया प्रीतम अपने असीम गुणों द्वारा इस चण्ड अर्थात भयानक ब्रह्माण्ड को प्रेम रस दान

देकर भरण करते हैं।

सखियों का पोषण कर्त्ता। यथा:—

"स रसो रस्यते नित्यं तदीयैस्तु सखी जनैः।
तयोरेवानु रूपैश्च प्रेमानन्दैक विग्रहैः।" (यु. त.—भाव मयूख)

श्रीप्रिया प्रीतम रस स्वरूप हैं उनके अभिन्न तथा प्रेमानन्द विग्रह स्वरूप सखी जन ही उस रस को आश्वादन करती हैं।

चण्ड ब्रह्माण्ड भर्त्ता। यथा:—

"रस सागर पार धोरणीं रस रूपामृत चन्द्र तोरणीम्।
सरस स्मित हास्य वादिनीम् सरसां रास करीं भजामहे॥(म. वा. से. सु. श्लो १०)

वस्तुतः इस रस की उपलब्धि इस ब्रह्माण्ड में गुरु परम्परा द्वारा ही हो सकती है। जैसा कि इस श्लोक में वर्णित है।

हम सरसा सखी जी को भजते हैं (जिनका आचार्य स्वरूप नाम 'श्रीस्वरूपाचार्य जी' है।) जो श्रीलाल ललना को रस रूपी सागर से पार ले जाने के भार को उठाने में समर्थ हैं। जो रस रूप अमृत के श्राव के लिये चन्द्र स्थानीय तोरण अर्थात् वहिर्द्वार हैं। अर्थात् इस संसार में सखीयों द्वारा ही यह रस प्रकट हुआ है। श्रीसरसा सखी रस सहित मुस्कराती हुई बोलती हैं तथा जो रास सुख को प्रकट करने वाली हैं।

उपरोक्त श्लोक से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि इस भयानक ब्रह्माण्ड को यह प्रेम रस प्रदान करने वाली एक मात्र सखियाँ ही हैं। जैसे कि अन्य स्थान पर श्रीग्रन्थकार स्वयं लिखते हैं।

"करुणा निधि श्रीनित्य किशोरी करि अनुकम्पा कियो आदेश।
आई अग्रवर्ति अलवेली धरि वर इच्छा विग्रह पेश॥" (म. वा. सि. सु.)

पद में यह स्पष्ट है कि श्रीस्वामिनी जी ने नित्य निकुञ्ज से सखियों को आज्ञा दी है। जिन्होंने आचार्य स्वरूप से प्रकट होकर इस भयानक ब्रह्माण्ड में इस रस को वितीर्ण करके भक्तों का पालन पोषण किया है।

श्रीहरिप्रिया जुगल वपु धरि विहारैं। धन्य हैं ये जु इनहिं निहारैं॥

श्रीप्रिया प्रीतम नित्य युगल स्वरूप से विहार करते हैं। जो सुकृति इन्हें देखते हैं वे धन्य हैं। यथा:—

"जयति जयति राधाकृष्णयुग्मं बरिष्ठं।
व्रत सुकृत निदानं यत्सदैतिह्य मूलम् ।।
विरल सुजन गम्यं सच्चिदानन्द रूपम्।
ब्रज वलय विहारं नित्य वृन्दावनस्थम् ।।" (औदम्बर संहिता)

सर्व श्रेष्ठ जोड़ी श्रीयुगल किशोर की सदा जय हो जो अनेक व्रत तथा सुकृत अनुष्ठानों के फल देने वाले हैं। जिनकी प्राप्ति एक मात्र परम्परा द्वारा ही हो सकती है। सज्जनों में भी जिनके अनुभवी बहुत कम हैं। जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। जो नित्य वृन्दावन में स्थित होकर श्रीवृन्दावन के वलय स्वरूप व्रज में भी विहार करते हैं।

।। अनुरागिनि सुरंगांगा मध्याभास ।।

।। दोहा ।।

सुद्ध सत्व पर ईस सो, दिखवत नाना भेद।
निर्गुन सगुन बखानि कें, बरनत जाको वेद ।।

।। पद ।।२०।।

निर्गुन सगुन कहत जिहिं वेद।
निज इच्छा विसतारि बिबिधि बिधि बहु अन बहौ दिखावत भेद ।।
आप अलिप्त लिप्त लीला रचि करत कोटि ब्रह्मंड बिलास।
सुद्ध सत्व पर के परमेश्वर जुगलकिसोर सकल सुखरास ।।
अनन्त सक्ति आधीस अचिंतक ऐश्वर्यादि अखिल गुणधाम।
सब कारन के कारन कर्त्ता नित्य निमित्त नियन्ता स्याम ।।
सकल लोक चूडामनि जोरी बोरी रस माधुर्य असेष।
कोटि–कोटि कन्दर्प–दर्प-दलमलन मनोहर बिसद सुवेस ।।
परावरादि असत सत स्वामी निरवधि नामी नाम निकाय।
नित्य सिद्ध सर्वोपरि हरिप्रिया सब सुखदायक सहज सुभाय ।।२०।।

अब पृथक पृथक तुकों की व्याख्या की जाती है।

शुद्ध सत्व परईश सो दिखवत नाना भेद।
निर्गुन सगुन बखानि के बरनत जाको भेद ।।

निर्गुन सगुन कहत जिहिं वेद।
निज इच्छा विस्तार विविध विधि, वहु अनवहो दिखावत भेद ।।१।।

श्रीकृष्ण शुद्ध सत्व अर्थात वासुदेव आदि चतुर्व्यूह के भी ईश हैं। जो अपनी इच्छा से विविध प्रकार के 'अनवहो' अर्थात अनहौने यानी परस्पर विरोधी धर्मों का अवलम्बन करते हुए अपने स्वरूप में विविध प्रकार के भेदों को दिखलाते हैं। इसीलिये वेद आपका निर्गुण सगुण रूपों से वखान करते हैं।

यहाँ 'शुद्ध सत्व' का अर्थ वासुदेव आदि चतुर्व्यूह किया गया है। यथा:—

"सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः।
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते ।।
(भा स्क. ४ अ. ३ श्लो. २३)

विशुद्ध अप्राकृत अन्तःकरण में ही भगवान् वासुदेव का अपरोक्ष अनुभव होता है। इसींलिये इसी को ही 'वसुदेव' कहते हैं। उस शुद्ध चित्त में स्थित इन्द्रियातीत भगवान वासुदेव को ही मैं नमस्कार किया करता हूँ।

वह भगवान 'वासुदेव' चतुर्व्यूह में से एक हैं। यहाँ केवल 'वासुदेव' को ही चतुर्व्यूह स्थानापन्न होने से वर्णन किया गया है।

श्रीकृष्ण चतुर्व्यूह के भी ईश हैं। यथा:—

:'स्वभावतोऽपास्त समस्त दोषमशेष कल्याण गुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ।।"
(वेदान्त कामधेनु)

मैं कमल दल लोचन हरि श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ। जिनसे समस्त दोष स्वभाव से ही दूर रहते हैं। जो अनन्त कल्याण गुणों की राशि हैं। जो चतुर्व्यूह के अङ्गी तथा परब्रह्म हैं। पुनः यथाः— वासुदेव आदि चतुर्व्यूह तथा और सब अवतार श्रीकृष्ण के ही हैं यथा:—

"देवि! सर्वेऽवतारास्तु ब्रह्मणः कृष्ण रूपिणः।
अवतारी स्वयं कृष्ण सगुणो निर्गुणः स्वयम् ।। (नारदीय पुराण)

हे देवि! सब अवतार परब्रह्म श्रीकृष्ण के ही हैं। सगुण तथा निर्गुण स्वरूप श्रीकृष्ण ही इन सबके अवतारी हैं।

उपरोक्त श्लोकों से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण शुद्ध सत्त्व अर्थात् वासुदेव आदि चतुर्व्यूह के ईश हैं। अब परस्पर विरोधी धर्म श्रीकृष्ण का अवलम्बन करके रहते हैं। इसीलिये वेद आपको निर्गुण सगुण स्वरूपों से वर्णन करते हैं। यथा:-

"गोकुलाख्ये माथुर मण्डले वृन्दावन मध्ये सहस्त्र दल पद्म मध्ये कल्पतरोर्मूलेऽष्ट दल केशरे गोविन्दोऽपि श्यामः पीताम्बरो द्विभुजो मयूर पिच्छचूड़ो वेणुवेत्र हस्तो निर्गुणः सगुणो निराकारः साकारो निरीहः सचेष्टो विराजते।

(पुरुषार्थ बोधिनी अथर्वण उपनिषत्)

मथुरा मण्डल में जिसको गोकुल कहते हैं उसमें वृन्दावन है उसके मध्य में सहस्त्र दल कमल के बीच में कल्प वृक्ष के नीचे अष्टदल केशर पर श्रीगोविन्द विराजमान हैं जिनका वर्ण श्याम है पीताम्बर धारण किये हुए हैं, द्विभुज स्वरूप, मोर मुकुट पहने हुए लकुट तथा मुरली दोनों हाथों में धारण किये हुए हैं, जो कि निर्गुण होते हुए भी सगुण, निराकार होते हुए भी साकार तथा चेष्टा रहित होते हुए भी चेष्टा करते हुए विराजमान हैं।

आप अलिप्त लिप्त लीला रचि करत कोटि ब्रह्माण्ड विलास।
शुद्ध सत्व परके परमेश्वर जुगल किशोर सकल सुख रास ।।२।।

सकल सुखों की राशि युगल किशोर सुद्ध सत्व अर्थात् चतुर्व्यूह के परम ईश्वर हैं आप अलिप्त होकर भी अपने अंश स्वरूपों द्वारा लिप्त लीला अर्थात् मायिक सृष्टि आदि कार्यों का समाधान कराते हुए अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में विलास करते हैं।

'शुद्ध सत्त्व' इत्यादि की व्याख्या इसी पदके 'आभास दोहे' की व्याख्या में कर चुके हैं। आप अलिप्त होकर भी अपने अंश स्वरूपों से लिप्त लीला अर्थात् मायिक सृष्टि आदि कार्यों का समाधान कराते हैं। यथा:—

"माया गुणैर्य्यतो मेंऽशाः कुर्वन्ति सर्ज्जनादिकम्।
न करोति स्वयं किञ्चित् सृष्टयादिकं शिव ।।

(पद्म पुराण पा. ख. वृ. मा.)

श्रीभगवान श्रीशिव जी के प्रति कहते हैं—

हे शिव! मेरे अंशावतार माया गुणों द्वारा सृष्टि रचना आदि कार्य करते हैं मैं स्वयं कोई कार्य नहीं करता हूँ।

आप अलिप्त हैं । यथा:—

" न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्म फले स्पृहा ।" (गीता ४ अ. १४ श्लो.)

कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है इसलिये मुझको कर्म लिप्त नहीं करते हैं ।

अनंत शक्ति आधीश अचिंतक ऐश्वर्य्यादि अखिल गुन धाम ।
सब कारन के कारन कर्त्ता नित नैमित्य नियंता श्याम ।।३।।

श्रीप्रिया प्रीतम अनन्त शक्तियों के आधीश, अचिन्त्य ऐश्वर्य्य तथा समस्त गुणों के धाम स्वरूप हैं । आप ही नित्य, नैमित्य, नियन्ता तथा सब प्रकार के कारणों के कारण स्वरूप हैं ।

अनन्त शक्ति आधीश इत्यादि । यथा:—

"अचिन्त्यानन्त शक्ती नामधि यस्य महामुने ।
आत्मात्मा चान्तरात्मा च एष आकाश निर्म्मलः ।।
दिव्य दृगीक्ष्यः सन्मात्रः पुरुषो वसुदेवजः ।
समस्त कल्याण गुणों निर्गुणश्चेश्वरेश्वरः ।।
(स्कन्द पुराण वै. खं वा. मा.)

श्रीभगवान श्री नारायण कहते हैं—

हे नारद जी ! श्रीकृष्ण अचिन्त्य अनन्त शक्तियों के अधिपति हैं समस्त आत्माओं के आत्मा तथा अन्तरात्मा हैं । विभु तथा मायिक गुणों से अतीत हैं समस्त कल्याण गुणों की राशि तथा सब ईश्वरों के भी ईश्वर हैं । सबके सत्ता स्वरूप, परम पुरुष, श्रीकृष्ण के एक मात्र दिव्य दृष्टि से ही दर्शन हो सकते हैं ।

'सब कारण के कारण' इत्यादि । यथा:—

"इदमेव वदन्त्येते वेदाः कारण कारणम् ।।" (पद्म पुराण पा. खं. वृ. मा.)

सब वेद भी श्रीकृष्ण को ही सब कारणों का कारण बतलाते हैं ।

सकल लोक चूड़ामनि जोड़ी वोरी रस माधुर्य्य अशेष ।
कोटि कोटि कन्दर्प दर्प-दल, मलन मनोहर विशद सुवेष ।।४।।

श्रीप्रिया प्रीतम की जोड़ी जो अशेष माधुर्य्य रस में निमग्न है । श्रीलक्ष्मी नारायण आदि सब जोड़ियों की चूड़ामणि स्वरूपा है । जिनका विशद् सुवेष अर्थात् सुन्दर

वेष भूषा मन को हरन करने वाला है। जिसे देखकर करोड़ों कामदेवों के सुन्दरता के गर्व चूर्ण हो जाते हैं।

'सकल लोक चूड़ामनि जोड़ी'। यथा:—

"राधा वामांश सम्भूता महालक्ष्मीर्बभूव।
ऐश्वर्य्याधिष्ठात्री देवीश्वरस्येति नारद॥
तदंशा सिन्धुकन्या च क्षीरोदमथनोद्भवा।
मर्त्य लक्ष्मीश्च सा देवी पत्नी क्षीरोद शायिनः॥
तदंशा स्वर्ग लक्ष्मीश्च शक्रादीनां गृहे गृहे।
स्वयं देवी महालक्ष्मीः पत्नी वैकुण्ठवासिनः॥

(नारद पञ्चरात्रे ज्ञानामृत सागरे)

हे नारद जी! श्रीराधिका जी के वाम भाग से वह महालक्ष्मी जी प्रकट हुई जो ईश्वर की ऐश्वर्य्य-अधिष्ठात्री देवी हैं।

उन्हीं के अंश स्वरूप वह सिन्धु कन्या मृत्यु लोक की लक्ष्मी है जो क्षीर सागर मन्थन करने से प्रकट हुई थी जिनको क्षीरोदशायी विष्णु की पत्नि कहते हैं।

उन्हीं के अंश स्वरूप वह स्वर्ग लक्ष्मी है जो इन्द्रादि देवताओं के घर घर में विराजमान है।. (और कहाँ तक कहें) स्वयं देवी महालक्ष्मी भी जो श्रीवैकुण्ठ नाथ की पत्नि है वे भी आप के ही अंश स्वरूपा हैं।

श्रीकृष्ण सब अवतारों के अवतारी हैं। यथा:—

"देवि! सर्वेऽवतारास्तु ब्रह्मणः कृष्ण रूपिणः।
अवतारी स्वयं कृष्ण सगुणो निर्गुणो स्वयम्। (नारदीय पुराण)

हे देवि! सब अवतार परब्रह्म श्रीकृष्ण के हैं सगुण-निर्गुण स्वरूप श्रीकृष्ण ही इन सबके अवतारी हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट है श्रीप्रिया प्रीतम ही लक्ष्मी नारायण आदि सब जोरियों के अवतारी स्वरूप हैं। इसीलिये सकल चूड़ामणि हैं।

वोरी रस माधुर्य्य अशेष। श्रीप्रिया प्रीतम अशेष माधुर्य्य रस में निमग्न हैं।

यथा:— "विश्वेषामनु रञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणी श्यामल कोमलैरुपनयन्नङ्गै रनङ्गोत्सवम्।

स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि ! मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति ।।" (गीत गोविन्दम्)

हे सखि देख, साक्षात् मूर्तिमान् शृङ्गार रस-स्वरूप मनोहर श्रीकृष्ण वसन्त ऋतु में क्रीड़ा कर रहे हैं । आप समस्त विश्व के प्राणी मात्रों को अनुञ्जन द्वारा आनन्द प्राप्त कराते हैं । आप अपने नील कमलों की श्रेणी सदृश श्यामल कोमल मनोहर विग्रह से उन गोपियों के अनङ्ग उत्सवों को बढ़ाते हैं जिन्होंने आपके सब अङ्गों का अपनी इच्छा पूर्वक आलिङ्गन कर रक्खा है ।

"नव नव वर माधुरी धुरीणाः प्रणय तरङ्ग करम्बितान्तरङ्गाः ।
निज रमण तया हरि भजन्तीः प्रणमतः ताः परमाद्भुताः किशोरीः ।।
(भक्ति रसामृत सिन्धु पृ. ४२६-२७)

हम श्रीकिशोरी जी को उनको सहेलियों सहित प्रणाम करते हैं जो नवीन से नवीन माधुर्य्यों को वहन कर रही हैं । जिनका मन प्रेम रूपी तरङ्गों से तरङ्गायित हो रहा है । जो अपने प्राण नाथ श्रीकृष्ण की सेवा कर रही हैं ।

कोटि कोटि कन्दर्प दर्प दल मलन मनोहर विशद् सुवेष आपकी रूप माधुरी इतनी मनोहर है जिसे देख कर करोड़ों काम देवों के सुन्दरता के गर्व नष्ट हो जाते हैं यथाः—

"कन्दर्प कोटचर्बुद रूप शोभानिराज्य पादाब्ज नखं चलस्य ।
कुत्राप्य दृष्ट श्रुतरम्य कान्ते ध्यानं परं नन्द सुतस्य वक्षे ।।" (तन्त्र)

मैं उन नन्द नन्दन श्रीकृष्ण का परम श्रेष्ठ ध्यान का वर्णन करता हूँ जिनके चरणारविन्द के एक नखाग्र की छटा सौन्दर्य पर करोड़ों, अरबों कामदेवों को वार के फेंक दें । ऐसी मनोहर सुन्दरता अन्य किसी अवतार में न तो देखी और न सुनी ।

परावरादि असत् सत् स्वामी निर्वधि नामी नाम निकाय ।
नित्य सिद्ध सर्वोपरि हरिप्रिया सब सुख दायक सहज सुभाय ।।

पर+अवर=कार्य कारण रूप जगत । असत्=प्रकृति आदि कारण । सत्= पृथ्वी आदि कार्य अर्थात् आप कार्य कारण रूप जगत के एक मात्र स्वामी हैं । यद्यपि आपके अनन्त नाम हैं जिनकी गिनती नहीं हो सकती है तो भी उनमें नित्य सिद्ध 'श्रीहरि प्रिया' नाम ही सर्वोपरि है जो स्वभाव से ही सब सुखों का देने वाला है ।

परावरादि असत् सत् स्वामी=कार्य कारण रूप जगत के एक मात्र स्वामी ।

"परावरेशे त्वयि जायति मति।" (भा: स्क. १० अ. ५१ श्लो. ५४)

कार्य कारण रूप जगत् के एक मात्र स्वामी ! फिर जीव की बुद्धि अत्यन्त दृढ़ता से आप में लग जाती है।

निर्वधि नामी नाम निकाय ॥
नित्य सिद्ध सर्वोपरि हरिप्रिया,
सब सुख दायक सहज सुभाय ॥

यद्यपि आपके अनन्त नाम हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती है तो भी इन सब में नित्य सिद्ध श्रीहरिप्रिया नाम ही सर्वोपरि है जो स्वभाव से ही सब सुखों का देने वाला है।

यहाँ "श्रीहरिप्रिया" के तीन अर्थ हो सकते हैं। (१) "श्रीहरिप्रिया अर्थात् श्रीकृष्ण और उनकी प्रिया श्रीराधिका जी (२) श्रीहरि की प्रिया अर्थात श्रीराधिका जी इन दोनों अर्थो की व्याख्या विस्तार पूर्वक श्रीमङ्गला चरण के श्लोक की व्याख्या करते हुए "राधा कृष्णौ" के शीर्षक से वर्णन कर चुके हैं।

॥ दोहा ॥

तिहिं समानि बड़भाग को, सो सबकें सिरमोर।
मन वच क्रम सर्बस सदा, जिनकें जुगलकिसोर ॥

॥ पद ॥२१॥

जिनकें सर्बस जुगलकिसोर।
तिहि समानि अस को बड़भागनि गनि सबकें सिरमोर ॥
नित्यबिहार निरन्तर जाकौ करत पान निस भोर।
श्रीहरिप्रिया निहारत छिन-छिन चितै चखिन की कोर ॥२१॥

जिन साधकों के मन क्रम वच करके सदा सर्वस्व श्रीयुगल किशोर ही हैं, उनके समान और कौन बड़भागी हो सकता है ? वे ही और सब साधकों के सिर मौर हैं, क्योंकि वह निरन्तर अहर्निश विहार रूपी अमृत का पान करते रहते हैं। श्रीप्रिया-प्रीतम भी उनकी ओर कृपा भरी दृष्टि से छिन छिन में देखते रहते हैं।

इस बिशय को श्रीआचार्य पाद श्रीप्रबोधानन्द जी 'सरस्वती' अपने 'वृन्दावन-महिमामृत' ग्रन्थ में इस प्रकार निरूपण करते हैं। यथा:—

"धन्यो लोके मुमुक्षु र्हरिभजनपरो, धन्य धन्य स्ततोऽसौ ।
धन्यो यः कृष्ण पादाम्बुज रति परमो रुक्मिणीश प्रियोऽतः ।।
याशोदेय प्रियोऽतः सुवलसुहृदतो गोप कान्ता प्रियोऽतः ।
श्रीमद् वृन्दावनेश्वर्यति रस, विवशाराधकः सर्व मूर्ध्नि ।।
(वृ. म. मृ. द्वि. श श्लो. ३४)

"इस संसार में मुक्ति चाहने वाले पुरुष धन्य हैं । उनसे अधिक वह धन्य हैं जो हरि भजन परायण हैं । उनमें भी वे धन्य हैं जिनका प्रेम भगवान श्रीकृष्ण चरण में है। उनमें भी श्रीरुक्मणी नाथ के प्रेमी श्लाघनीय हैं । उनसे अधिक प्रशंशनीय श्रीयशोदानन्दन के भक्त हैं । उनसे अधिक सख्य भाव रखने वाले सुवल सुहृद्—श्रीकृष्ण के भक्त, और उनसे अधिक वह भक्त धन्य हैं जो श्री गोपीजन वल्लभ व उपासना करते हैं । जो भक्त रास विलास में आसक्त वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका सहित श्रीकृष्ण को उपासना करते हैं वह सबके चूड़ामणि स्वरूप हैं ।" श्रीग्रन्थकार का संकेत इसी अन्तिम उपासना को ओर है।

पद में ग्रन्थकार वर्णन करते हैं "नित्य विहार निरन्तर जाको करत पान निशि-भोर ।" इसका विवेचन करते हुए प्रमाण में द्वितीय श्लोक । यथा—

एकं सख्यापि नो लक्षित मुरसि लसन्नित्य तादात्म्य कान्तं ।
तप्दृश्यं दूरतोऽन्यद व्रतति नव गृहेऽन्यत्तु तन्नर्म शर्म ।।
अन्यद् वृन्दावनान्त विहरदथपरं गोकुले प्राप्त योगं ।
विच्छेद्यन्यत्त देवं लसति बहु विधं राधिका कृष्ण रूपम् ।।
वृन्दावन महिमा मृ. द्वि. खं. ३५ श्लो

श्रीप्रिया प्रीतम के बहुत प्रकार के स्वरूप हैं एक ऐसा स्वरूप है जहाँ सखियों की भी गम्य नहीं है । जहाँ दौनों सुरति केलि में तादात्म्य भाव को प्राप्त हो रहे हैं । दूसरे स्वरूप में लता निर्मित नवीन मण्डप में विराजमान श्रीप्रिया प्रीतम के विलास को सखी गण दूर से ही देख सकती हैं । तीसरा एक ऐसा भी स्वरूप है जिसके साथ सखी गण हास परिहास करती रहती हैं । चौथे स्वरूप में श्रीप्रिया प्रीतम सखियों सहित वृन्दावन की निकुञ्जों में विहार करते हैं । पाँचवा वह स्वरूप है जिसमें श्रीलाल ललना निकुञ्जों से गोकुल में भी आते जाते हैं (यहाँ गोकुल शब्द से श्रीनन्द गाँव बरसाना ग्रहण करना चाहिये । छठवां वह स्वरूप है जिसमें श्रीप्रिया प्रीतम विरह लीलाओं का आश्वादन करते हैं ।

उपरोक्त श्लोक में सर्व प्रथम वर्णित सुरति केलि में आसक्त तथा तादात्म्य भाव को प्राप्त श्रीप्रिया प्रीतम के स्वरूप का वर्णन किया गया है यहाँ ग्रन्थकार का इसी स्वरूप की ओर संकेत है।

॥ दोहा ॥

तिनहिं प्रिया हरि हितहि करि, निति राखें निजपास।
नवकिसोर सुखरासि कौ, जिनिकें अननि उपास॥

॥ पद ॥२२॥

जिनकें यहै अनन्य उपास।
तिनकौ प्रिया-लाल नित हित करि राखें अपने पास॥
माया त्रिगुन प्रपंच पवन की अंच न आवें तास।
श्रीहरिप्रिया निपट अनुवर्तिनि ह्वै निरखें सुखरास॥२२॥

सब तुकों का पृथक पृथक विवेचन किया जाता है।

तिनहिं प्रिया हरि हितहि करि नित राखें निजपास।
नवकिसोर सुखरासि कौ जिनकें अननि उपास॥
जिनकें यहै अनन्य उपास।
तिनकौ प्रिया लाल नित हित करि राखें अपने पास।

जो श्रीयुगल किशोर के अनन्य उपासक हैं उनको श्रीलाल ललना कृपा करके सदा अपने निकट रखते हैं। यथा:—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥" (गीता अध्याय ९ श्लो २२)

जो भक्त अनन्य भाव से मेरा निरन्तर चिन्तवन करते हुए उपासना करते हैं उन, एक भाव से मेरे में स्थित पुरुषों का योग क्षेम अर्थात भगवत् प्राप्ति के निमित्त, साधन की रक्षा मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

माया त्रिगुण प्रपंच पवन अञ्च न आवै तास उनको संसार की आँच किसी प्रकार का किञ्चित् मात्र भी कष्ट नहीं दे सकती है। यथा—

"तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बध्दसौहृदाः ।
त्वयाभि गुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ।।
(भा. स्क. १० अ. २ श्लो. ३३)

परन्तु भगवन् ! जो आपके जन हैं, जिन्होंने आपके चरणों में सौहृद जोड़ रक्खा है वह कभी भी अपने साधन मार्ग से नहीं गिरते हैं प्रभो ! बड़े बड़े विघ्न डालने वालों की सेना के सरदारों के सिर पर पैर रख कर निर्भय विचरते हैं । कोई भी विघ्न उनके मार्ग में रुकावट नहीं डाल सकते हैं क्योंकि आप उनके रक्षक हैं ।

श्रीहरि प्रिया निपट अनुवर्तिनि ह्वै निरखैं सुख रास ।

वे साधक अन्तस्चिन्तित देह से सखियों के अनुवर्तिनी होकर सुख रासि स्वरूप श्रीप्रिया प्रीतम को निरन्तर निहारते रहते हैं । यथाः—

"कृष्ण प्रिया सखी भाव समाश्रित्य प्रयत्नतः ।
तयोः सेवां प्रकुर्वीत दिवानक्तमतन्द्रितः ।।"
(स. कु. सं. ३६ पटल श्लो. १३४)

साधक को अन्तस्चिन्तित देह से श्रीकृष्ण प्रेयसी श्रीराधिका जी की सखी भाव को यत्न पूर्वक आश्रय करके तथा आलस को त्याग कर अहर्निश उन दोनों की सेवा में लग जाना चाहिये । जो साधक इस प्रकार करते हैं । सुख रास स्वरूप लाल ललना के सदा दर्शन करते रहते हैं ।

।। दोहा ।।

नित्यधाम बिलसत सदा, अति रति राधाकंत ।
अमित गुननि अर्णव अघट, अद्भुतरूप अनन्त ।।

।। पद ।। २३ ।।

अमित गुन अर्णव अघट अनन्त ।
बिलसत नित्यधाम नव नायक अति रति राधाकंत ।।
अद्भुतरूप अनूप नवल छबि छोर न ओर कहंत ।
श्रीहरिप्रिया एक रस दिन-दिन छिन-छिन सुख सरसंत ।।२३।।

नित्य धाम श्रीवृन्दावन में श्रीराधा कन्त अति रति अर्थात सुरति केलि विलास को सदा विलसते रहते हैं । इन दोनों की रूप माधुरी तथा गुण माधुरी समुद्र की तरह

अनन्त तथा गम्भीर है जिसका कोई आर पार नहीं पा सकता है। श्रीहरि एवं प्रिया एवं प्रकार से एक रस केलि विलसते हुए भी, क्षण क्षण में नवीन नवीन सुखों को आस्वादन करते रहते हैं।

अमित गुन अर्णव अघट अनन्त। यथा:—

"गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः॥
(भा० १० स्क. १४ अ. ७ श्लो.)

जिन समर्थ पुरुषों ने अनेक जन्मों तक परिश्रम करके पृथ्वी का एक एक कण, ओस की बूंदें, तथा तारों को गिन डाला है, परन्तु हे भगवन्! उनमें भी भला ऐसा कौन हो सकता है जो आपके अनन्त गुणों को गिन सके। आप संसार के कल्याण के लिये ही अवतीर्ण हुए हैं। आपकी महिमा का ज्ञान तो बड़ा ही कठिन है।

अतः रसिक दम्पति के गुण समुद्र सरीखे गम्भीर तथा अनन्त हैं।

॥ अनुरागिनी गौरमुखी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

वृन्दावन-घन-कुञ्ज में, बिलसत सांवरि गोरि।
मनहरनी जोरी महा, सुख सरसनी किसोरि॥

॥ पद ॥ २४ ॥

सुख सरसनी मनोहर जोरी जुव बर जुगलकिसोर-किसोरी।
वृन्दावन-घन-कुंज-सदन में बिलसत बहुबिधि सांवरि-गोरी॥
अति अभिराम अमल मृदु मूरति अद्भुत मंजुल रस में बोरी।
महामोद मङ्गल मर्यादा छबि झकोर माधुर्य झकोरी॥
दैन चैन चित नैन सबनि कें ऐंन मैंन मनु सांचें ढोरी।
श्रीहरिप्रिया साछ्यात स्वयं वपु सदा बसौ उर निसा अहोरी॥२४॥

अनुरागिणी गौर मुखी मध्याभास=राग गौरी।

॥ दोहा ॥

श्रीवृन्दावन की निभृत निकुञ्जों में परस्पर मनों को हरन करने वाली तथा

महा सुख सरसनी सांवल गौर किशोर की जोरी सदा विलास करती रहती है।

॥ पद ॥

सुख सरसनी, परस्पर मनों को हरन करने वाली तथा सदा युव अवस्था प्राप्त युगल किशोर किशोरी की यह जोरी श्रीवृन्दावन निभृत निकुञ्जों में बहुत प्रकार से सदा विलास करती रहती है। इन दोनों के विग्रह अत्यन्त सुन्दर, स्वच्छ तथा कोमल हैं और ये सदा अद्भुत मञ्जुल रस में निमग्न रहते हैं। ये महा मोद मङ्गल तथा प्रेम की मर्यादा की छवि अर्थात् मूर्तियां हैं जो माधुर्य रस में सदा निमग्न रहतीं हैं। इन दोनों का स्वरूप इस प्रकार एक समान है मानों एकही सांचे में ये दोनों ढले हुए हों। इनके दर्शनों से सबके नैन तथा चित्त अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। श्रीहरिप्रिया सखी यह प्रार्थना करती हैं कि ये दोनों साक्षात स्वरूप से मेरे हृदय में सदा निवास करते रहे।

"युग्म तत्व समीक्षा" ग्रन्थ में उपरोक्त पद के भावों को इस प्रकार अङ्कित किया है :— पृष्ट २८६

"यौ नित्यं नव दम्पती रसमयौ नित्यं विलासोन्मदौ।
गौर श्याम तनू नितान्त मधुरौ नित्यं किशोरो रसौ॥
नित्यानन्त सखीजनैः सुरसितौ वृन्दावनोल्लासिनौ।
देवौ श्रीपुरुषोत्तमौ मम कदाकान्तौ भवेतां सदा॥"

(युः तः सः पृः २८६)

ये दोनों पुरुषोत्तम स्वरूप रसिक दम्पति कब सदा के लिये मेरे कान्त होंगे। जो नित्य नव दम्पति है, रस स्वरूप है तथा जो नित्य विलास में उन्मत्त रहते हैं। जिन का गौर श्यामल विग्रह है, जो अत्यन्त मधुर हैं, नित्य कैशोर तथा जो श्रीवृन्दावन के रस में उल्लास प्राप्त नित्य अनन्त सखि जनों से सेवित हैं।

"महा मोद मङ्गल मर्यादा छवि।"

महा मोद अर्थात आनन्द की मूर्ति यथाः—

"ककारः पुरुषः कृष्ण सच्चिदानन्द विग्रह।" इत्यादि अर्थात् काम बीज में जो ककार है वह सत्-चित्-आनन्द मूर्ति श्रीकृष्ण है अतः आप महा मोद अर्थात आनन्द की मूर्ति हैं।

"मङ्गल की मूर्ति" यथाः—श्रीमहावाणीकार सेवा सुख में स्वयं कहते हैं

"मङ्गल कुन्ज में मङ्गल आरति...........मङ्गल मूर्ति हिये में धारति।"

"मर्यादा की मूर्ति" :—यहाँ "मर्यादा" से "प्रेम मर्यादा" ग्रहण करना चाहिये। अर्थात प्रेम की यह मर्यादा है। जितना प्राप्त होता है उतनी ही प्यास बढ़ती जाती है "प्यारी प्या+री रटत ताके और न कछु हियारी।" "हाँ काम दहा हो प्यारी।" इत्यादि (श्रीकेलिमाल)

॥ दोहा ॥

सहस बदन हू सकत नहिं, जाकी महिमा लाध।
इक मुख अलप कहा कहैं, अति गुन रूप अगाध॥

॥ पद ॥२५॥

अतिहि अगोचर महा अगाध।
लीला उदधि पार नहिं पावत सहस बदन से समरथ साध॥
इक मुख अलप कहा लगि बरनें अमित कलप लों भर्‌यो उपाध।
कृपा कटाछि चितै श्रीहरिप्रिया तबही सकै चरन रज लाध॥२५॥

॥ दोहा ॥

जिन श्रीप्रिया प्रीतम की महिमा सहस्र मुखों से साक्षात् श्रीशेष जी भी नहीं वर्णन कर सकते हैं फिर आपके अति अगाध गुण रूपों को मैं एक छोटे से मुख से कैसे कह सकता हूँ।

॥ पद ॥

आपकी महिमा अति अगोचर, अगम्य तथा अगाध है। आपकी लीलाऐं समुद्र सरीखी गम्भीर हैं जिनका सहस्र बदन वाले, साधु शिरोमणि और सब सामर्थ्य युक्त साक्षात् श्रीशेष भगवान् भी आर पार नहीं पा सकते हैं। फिर मैं जो कल्प कल्पान्तरों से अनेक उपाधियों से भरा हुआ, एक छोटे से मुख वाला आपकी लीला माधुरी को कैसे वर्णन कर सकता हूँ। मेरी तो एक मात्र आपके चरणारबिन्द की रज प्राप्ति की आकांक्षा है वह भी हे श्रीहरि एवं श्रीप्रिया! आपके कटाक्ष चितवनि बिना नहीं मिल सकती है।

॥ दोहा ॥

सदा सर्वदा जुगल इक, एक जुगल तन धाम।
आनंद अरु अहलाद मिलि, विलसत ह्वै द्वै नाम॥

॥ पद ॥ २६ ॥

एक स्वरूप सदा द्वै नाम।
आनंद की अहलादनि स्यामा अहलादनि के आनंद स्याम॥
सदा सर्वदा जुगल एक-तन एक जुगल तन बिलसत धाम।
श्रीहरिप्रिया निरन्तर नित-प्रति कामरूप अद्‌भुत अभिराम॥२६॥

पृथक पृथक तुकों की व्याख्या की जाती है।

सदा सर्वदा जुगल इक एक जुगल तन धाम।
आनंद अरु अह्लाद मिलि विलसत ह्वै द्वै नाम॥

एक स्वरूप सदा द्वै नाम।
आनन्द की अह्लादनि श्यामा अह्लादनि के आनंद श्याम॥

श्रीप्रिया प्रीतम एक स्वरूप होकर भी सदा युगल हैं और युगल होकर भी सदा एक हैं। यद्यपि आपके नाम पृथक पृथक आनन्द और आह्लाद हैं तो भी यह दोनों एक ही स्वरूप हैं क्योंकि जो आनन्द है वही आह्लाद है और जो आह्लाद है उसी को आनन्द कहते हैं। यथाः—

"येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडानर्थं द्विधाऽभूत।"
(श्रीराधिकोपनिषद्)

"यः कृष्णः साऽपि या राधा कृष्ण एव सः।" (औदम्बर संहिता)

ये श्रीराधिका जी और श्रीकृष्ण ये दोनों तत्वांश में एक ही स्वरूप है परन्तु रस विलास के लिये अनादि काल से ही दो स्वरूपों से ही विराजमान हैं।

जो कृष्ण हैं वही श्रीराधिका जी हैं जो श्रीराधिका जी हैं वही श्रीकृष्ण हैं। सदा सर्वदा युगल एक तन एक युगल तन विलसत धाम।

आप दोनों युगल होकर एक और एक होकर युगल अपने दिव्य मङ्गल विग्रह स्वरूप वृन्दावन धाम ही में परस्पर विहार करते हैं।

आपका युगल तन ही वृन्दावन है। यथाः—

"तन वृन्दावन जगमगै," (म. वा. सि. सुख पद)

"पञ्चयोजनमेवास्ति वनमे देह रूपकम् ।" (वृहद गौतमी तन्त्र)

श्रीकृष्ण कहते हैं :—

पञ्चयोजन परिमाण वाला श्रीवृन्दावन मेरी देह स्वरूप है।

श्रीहरिप्रिया निरन्तर नित प्रति काम रूप अद्भुत अभिराम ॥

श्रीप्रिया प्रीतम दौनों अत्यन्त सुन्दर काम रूप अर्थात् काम बीज स्वरूप हैं।

यथाः— "सदा वन्दे कलात्मकौ" (म. वा. सि. सुख)

श्रीलाल ललना काम बीज स्वरूप हैं। मैं उनकी वन्दना करता हूँ।

पुनः। यथाः—

"क कारः पुरुषः कृष्ण सच्चिदानन्द विग्रह ई कारः प्रकृती राधा नित्यं वृन्दावनेश्वरी लश्चानन्दात्मकः प्रेम तयोश्च कीर्तितम्। चुम्बनाश्लेष माधुर्यं विन्दुनाद मुदीरितम् ॥ (वृ. गौत. तन्त्र)

काम बीज में जो 'क' कार है वह परम पुरुष श्रीकृष्ण हैं 'ई' कार प्रकृति स्वरूप नित्य वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा हैं 'ल' कार दोनों का प्रेम रूपी आनन्द है। और नाद बिन्दु उनका चुम्बनाश्लेष माधुर्य है।

॥ दोहा ॥

नवरंग भीनी सखी संग, महल टहल अनुकूल।
नित बिहरें श्रीहरिप्रिया, सकल सुखनि के मूल ॥

॥ पद ॥ २७ ॥

स्यामा-स्याम सकल सुख मूल।
नित्य बिहार करत वृन्दावन कलकलिंदजा जू कें कूल।
सखी संग नवरंग-रङ्गीली महल टहल फूली उर फूल।
श्रीहरिप्रिया प्रतिछिन प्रमुदावत गावत गुन मिलि टूलनि टूल ॥२७॥

॥ दोहा ॥

सब सुखों के मूल स्वरूप श्रीहरि एवं प्रिया नित्य वृन्दावन में सदा बिहार करते

रहते हैं। नव नव अनुराग से भीगी हुई सखियाँ इनका रुख देख कर इनकी महल टहल में सदा लगी रहती हैं।

॥ पद ॥

श्यामा श्याम सब सुखों के मूल स्वरूप हैं। ये नित्य वृन्दावन में श्रीयमुना के कूल पर नित्य विहार करते रहते हैं। नये नये अनुराग से रञ्जित सब सखियाँ जो महल टहल सेवा जन्य सुख से फूली हुई हैं, श्रीहरि एवं प्रिया की सेवा करती हुई, अनेक यूथों से यूथ मिल कर, रसिक दम्पति के सौभाग्य को गाती हुई, इन्हें लडा रही हैं।

॥ अनुरागिनी केलिकौमुदी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

बिपुल पुलक अङ्ग-अङ्ग भरें, नवल चारु चैतन्य।
अरस परस दरसत सदा, कोटि काम लावन्य॥

॥ पद ॥ २८ ॥

कोटि कन्दर्प दुति ललित लावन्य।
दिपत दम्पति दरस सरस दिन-दिनहिं प्रति,
अमित अभिरम्यता पुञ्ज परजन्य॥
परसपर विपुल पुलकावलिन निकर नव,
नित्य नागर नवल चारु चैतन्य।
श्रीहरिप्रिया निरखि निज नैन छबि ऐंन अलि,
सैंन सब मानहीं भाग बड़ धन्य॥२८॥

आभास दोहे तथा पद की सम्मिलित व्याख्या की जाती है।

श्रीरसिक दम्पति की रूप माधुरी का क्या वर्णन करें? आपकी सुन्दरता करोड़ों कामदेवों की सुन्दरता को लज्जित करने वाली है। आप दोनों के दर्शन से ऐसा प्रतीत होता है मानों क्षण क्षण में सुन्दरता रूपी मेघ माला की वर्षा हो रही हो। इस वर्षा से दोनों के अङ्गों पर यद्यपि भारी रोमाञ्च हो रहे हैं तो भी नव नित्य नागर नागरी भलो प्रकार से सावधान हैं। इस प्रकार आपकी छवि को निहार के सब सखियाँ अपने आपको धन्य मानती हैं।

यहाँ रोमाञ्च अत्यन्त हर्ष के कारण से हैं। यथा:—

"रोमाञ्चोऽयं किलाश्चर्य्य हर्षोत्साह भयादिजः।
रोम्णामभ्युद् गमस्तत्र गात्र संस्पर्शनादयः॥" (भक्ति. रसामृत सिन्धु)

आश्चर्य्य, हर्ष, उत्साह तथा भय आदि से निश्चय रोमाञ्च हो जाते हैं। जहाँ दोनों के गात्रों का संस्पर्श आदि होता है वहाँ भी रोम उद्‌गम हो जाते हैं।

इस पद में 'विपुल पुलक' अत्यन्त हर्ष और संस्पर्श आदि से हैं।

॥ दोहा ॥

दौरत बहुत बिसाल बन, जहाँ लगि कहियत दौर।
श्रीहरिप्रिया निजधाम छबि, बरनत ह्वै बुधिबौर॥

॥ पद ॥ २६ ॥

बरनत ही बुधि होत है बौर।
दौरत बहुत बिसाल बिपिन में जहँ लगि कहियत मन की दौर॥
सूर कें नीचें न सेस कें ऊपर गोपुर हू तें अगोचर ठौर।
श्रीहरिप्रिया बिराजत हैं तहाँ जुगलकिसोर सकल सिरमौर॥२६॥

श्रीग्रन्थकार श्रीनित्य वृन्दावन का वर्णन करते हुए कहते हैं:—श्रीनित्य वृन्दावन का क्या वर्णन करैं इसके करने में बुद्धि बौरा जाती है। जहाँ तक मन की गति है, वहाँ तक मन दौड़ता है। समस्त ब्रह्माण्डों में घूम घूम कर वापिस आ जाता है। उसे श्रीनित्य वृन्दावन का कहीं भी पता नहीं लगता है। क्योंकि यह धाम न तो सूर्य के नीचे और न शेष के ऊपर है। यथा:—

"वृन्दावनं महत्पुण्यं सर्व पावन पावनम्।
सर्व लोक वहिर्भूतं निराधारं परिस्फुटम्॥"
(स. सं. पटल ३१ श्लो. २२)

वृन्दावन की बड़ी महिमा है यह सब पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है। यह सब लोकों से बाहर निराधार स्थित है।

पुनः। यथा:—

"न तद्‌भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।" (गीता अ. १५ श्लो. ६)

मेरा धाम स्वयं प्रकाश है इसलिये वहां न तो सूर्य प्रकाश करता है और न वहाँ चन्द्रमा तथा अग्नि है।

गो पुर हू ते अगोचर ठौर।

श्रीनित्य वृन्दावन गोलोक से भी अगोचर है। यथाः—

"गतो राधापति स्थानं यत्सिद्धैरप्य गोचरम्।
ततश्च तदुपादिष्टो गोलोकादु परिस्थितम्॥
नित्य वृन्दावनं नाम नित्य रास रसोत्सवम्।
अदृश्यं परमं गुह्यं पूर्ण प्रेम रसात्मकम्॥

(पद्म पुराण पाताल खण्ड वृन्दावन मा.)

अर्थात वह (अर्जुन) फिर श्रीप्रिया प्रीतम के उस स्थान में पहुँचा जो सिद्धों के भी अगोचर हैं। जिसकी स्थिति गोलोक से भी ऊपर है। जिसका नाम नित्य वृन्दावन है। जहाँ रास आदि नित्य उत्सव होते रहते हैं। जो स्थान पूर्ण प्रेम रसात्मक अत्यन्त गुह्य तथा अदृश्य है।

श्रीहरि प्रिया विराजत है तहाँ युगल किशोर सकल सिरमौर॥

सबके चूड़ामणि स्वरूप नित्य किशोर अवस्था वाले श्रीरसिक दम्पति उपरोक्त श्रीनित्य वृन्दावन में विराजते हैं।

॥ दोहा ॥

साधन करि नाकादि फल, नश्वर पावत जोय।
एक कृपा ही करि कछू, सिद्धि होय सो होय॥

॥ पद ॥ ३० ॥

एक कृपा करि होय सो होई। साधन सिद्ध रह्यौ नहिं कोई॥
नाकादिक नश्वर फल पावें। जाय आय में आयु बितावें॥
जितनें साधन उर में धरहीं। तितनें या बिच अन्तर करहीं॥
सब तजि सदा मनावें याही। औरन तें मनधरि अवग्याही॥
श्रीहरिप्रिया परम-पद चाहैं। तौ या बिना न आन उमा हैं॥३०

अब पृथक पृथक तुकों की व्याख्या इस प्रकार है—

साधन करि नाकादि फल नश्वर पावत जोय।
एक कृपा ही करि कछू सिद्ध होय सो होय ॥
एक कृपा करि होय सो होई। साधन सिद्ध रह्यौ नहिं कोई ।।
नाकादिक नश्वर फल पावें। जाय आय में आयु वितावें ।।१।।

एक मात्र श्रीप्रिया प्रीतम की कृपा से ही श्रीनित्य वृन्दावन प्राप्त हो सकता है भक्ति विहीन साधन करने से स्वर्ग आदि नश्वर फल प्राप्त होते हैं और पुण्य समाप्त होने से फिर उन्हें इसी संसार में जन्म लेना पड़ता है। यथाः—

"त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा, यज्ञै रिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ।।
ते तं भुक्त्वास्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।।
(गी. अ. ९ श्लोक २०, २१)

तीनों वेदों में विधान किये हुए सकाम कर्मों को करने वाले और सोम रस को पीने वाले एवं पापों से पवित्र हुए पुरुष मेरे को यज्ञों के द्वारा पूज कर स्वर्ग की प्राप्ति को चाहते हैं वे पुरुष अपने पुण्यों के फलस्वरूप इन्द्र लोक को प्राप्त होकर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोग को भोगते हैं। वे उस विशाल स्वर्ग लोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्यु लोक को प्राप्त होते हैं।

पुनः। यथाः—

"नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वद्भद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ।।
(भा. स्क. १ अ. ५ श्लो. १२)

भगवद्भक्ति से रहित ज्ञान भी अपना यथार्थ फल नहीं दे सकता है फिर वह काम्य कर्म जो साधन तथा फल दोनों अवस्थाओं में दुःख दाई हैं बिना भगवत चरणारविन्द में अर्पण किये कैसे फल दे सकते हैं।

एक कृपा करि होय सो होई।

एक मात्र आपकी कृपा से ही आपकी प्राप्ति हो सकती है। यथाः—

"तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ।।
(भा. स्क. १० अ. १४ श्लो. ८)

जो कोई अपने प्रारब्ध के अनुसार सुख दुखों को भोगता हुआ आपकी कृपा की वाट देखता रहता है और जो हृदय वचन तथा देह से आपकी भक्ति करता रहता है वह आपके उन चरणारविन्दों का जो मुक्ति प्रदान करने वाले हैं इसी प्रकार अधिकारी हो जाता है जैसे अपने पिताकी सम्पत्ति का पुत्र। पुनः। यथा:—

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव। तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम्॥

(नारद भक्ति सूत्र, सूत्र ४०, ४२)

भक्ति श्रीकृष्ण की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है इसलिये—
कृपा प्राप्ति की साधना करना चाहिये।

जितने साधन उर में धरहीं। तितने या बिच अन्तर करहीं॥२॥
सब तजि सदा मनावैं याही। और न तें मन धरि अवज्ञाँही॥३॥
श्रीहरिप्रिया परम पद चाहैं। तौ या बिना न आन उमाहैं॥४॥

भक्ति विहीन जितने साधन किये जाते हैं उनसे आपकी प्राप्ति तो दूर रही वस्तु तस्तु वे सब साधन आपकी प्राप्ति में विघ्न देने वाले बन जाते हैं। इसलिये और सब साधनों को छोड़ कर एक मात्र कृपा की वाट देखनी चाहिये। यदि श्रीप्रिया प्रीतम के चरणारविन्द प्राप्ति की इच्छा है तो एक मात्र कृपा छोड़कर और कोई मार्ग नहीं है।

यथा:—

"सा कर्म्म ज्ञान वैराग्य पेक्ष कस्य न सिद्धचति।
परं श्रीकृष्ण कृपया तन्मात्र पेक्ष कस्य हि॥
कर्म्म विक्षेपकं तस्या वैराग्यं रस शोषकं।
ज्ञानं हानिकरं तत्तच्छोधितं त्वनुयाति तां॥"

(बृ. भागवतामृत २ ख. श्लो. २०४, २०५)

वह श्रेष्ठ भक्ति कर्म, ज्ञान, तथा वैराग्य आदि से भी सिद्ध नहीं हो सकती है इन सबकी आशा छोड़कर जो केवल भक्ति को ही चाहते हैं उनको यह भक्ति श्रीकृष्ण की कृपा से प्राप्त हो जाती है।

कर्म से उस भक्ति का विक्षेप होता है और वैराग्य से उसका रस सूख जाता है और ज्ञान से वह नष्ट हो जाती है इसलिये इन तीनों को अलग करना ही शुद्ध भक्ति की प्रथम कक्षा है।

॥ दोहा ॥

॥ अनुरागिनी कर्णकांता मध्याभास ॥

बिधि निषेध आदिक जिते, कर्म-धर्म तजि तास ।
प्रभु कें आश्रय आवहीं, सो कहिये निज दास ॥

॥ पद ॥३१॥

जो कोउ प्रभु कें आश्रय आवें। सो अन्याश्रय सब छिटकावें ॥
बिधि-निषेध कें जे जे धर्म। तिनिकों त्यागि रहें निष्कर्म ॥
झूठ क्रोध निन्दा तजि देंहीं। बिन प्रसाद मुख और न लेंहीं ॥
सब जीवनि पर करुना राखें। कबहुँ कठोर बचन नहिं भाखें ॥
मन माधुर्य-रस माहि समोवें। घरी पहर पल वृथा न खोवें ॥
सतगुरु के मारग पगु-धारें। हरि सतगुरु बिचि भेद न पारें ॥
ए द्वादस-लच्छिन अवगाहें। जे जन परा परम-पद चाहें ॥
जाकें दस पैंड़ी अति दृढि हैं। बिन अधिकार कौन तहाँ चढि हैं ॥
पहले रसिक जनन कों सेवें। दूजी दया हिये धरि लेवें ॥
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि हैं। चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनि हैं ॥
पंचमि पद पंकज अनुरागें। षष्टी रूप अधिकता पागें ॥
सप्तमि प्रेम हिये विरधावें। अष्टमि रूप ध्यान गुन गावें ॥
नवमी दृढ़ता निश्चें गहिबें। दसमी रसकी सरिता बहिबें ॥
या अनुक्रम करि जे अनुसरहीं। सनै-सनै जगतें निरबरहीं ॥
परमधाम परिकर मधि बसहीं। श्रीहरिप्रिया हितू संग लसहीं ॥३१

मङ्गला चरण के श्लोक में "परमौ नियम प्रेमणोः–परागस्यौ" के शीर्षक से पराभक्ति का विस्तार पूर्वक निरूपण करचुके हैं। अब इस पद से 'पराभक्ति' की अनुष्ठान विधि का वर्णन करते हैं :—

इस 'भक्ति' का अनुष्ठान दो तरह से होता है एक 'वाहिक' दूसरा 'आन्तरिक'। यथाः— "सेवा साधक रूपेण सिद्ध रूपेण चात्रहि ॥" (भक्ति रसामृत सिंधु)

साधक को यथावस्थित देह द्वारा तथा अन्तस्चिन्तित देह से सेवा समाधान

करनी चाहिये।

अन्तश्चिन्तित देह द्वारा सखी भाव से सेवा प्रकार को पहले "अग्रवर्ति रहि अवसरहिं" इत्यादि इसी सिद्धान्त सुख के पद में विस्तार पूर्वक वर्णन कर चुके हैं। अब यथावस्थित साधक देह द्वारा सेवा की पद्धति बतलाते हुए कहते हैं। यथा:—

विधि निषेध आदिक जिते कर्म धर्म तजि तास।
प्रभु के आश्रय आवही सो कहिये निज दास॥

जो कोई प्रभु के आश्रय आवै। सो अन्याश्रय सब छिट कावै॥
विधि निषेध के जे जे धर्म। तिनकौं त्यागि रहै निष्कर्म॥१॥

"पराभक्ति" प्राप्ति के लिये पहले श्रीगुरुदेव द्वारा साधक को भगवत शरणागति प्राप्ति करना चाहिये। विधि निषेध आदिक जितने कर्म धर्म हैं उनको छोड़ कर जो कोई प्रभु के आश्रय आते हैं वही दास कहलाते हैं। प्रभु के आश्रय आने वाले को अन्य आश्रयों को त्याग देना चाहिये। जो जो विधि निषेध धर्म हैं उन सबका परित्याग करके निष्काम भाव से प्रभु की सेवा करनी चाहिये। यथा:—

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।" (गी. अध्या १८ श्लो. ६६)

(हे अर्जुन) सब कर्म धर्मों को परित्याग करके केवल मेरी ही शरण में आओ।

शरणागति के यह छः अङ्ग हैं। यथा:—

"आनुकुल्यस्य संकल्पः प्रातिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा॥
आत्म निक्षेप कार्पण्येषड् विधा शरणा गतिः। (वैष्णव तन्त्र)

(१) प्रभु के अनुकूल ही धर्म तथा कर्म का अनुष्ठान करना।
(२) जो उनके प्रतिकूल धर्म तथा कर्म हैं उनका आचरण नहीं करना।
(३) भगवान निश्चय रक्षा करेंगे यह दृढ़ विश्वास रखना।
(४) रक्षा विषय में उन्हीं को वरण करना।
(५) अपनी आत्मा को उनके चरणारविन्द में अर्पण करना।
(६) दीनता रखना।

श्रीग्रन्थकार के श्रीगुरु चरण श्रीश्रीभट्टदेव जी ने भी भगवत् शरणागति के विषय में इस प्रकार लिखा है। यथा:—

"चरण कमल की दीजिये सेवा सहज रसाल।
घर जायो मोहि जानिकैं चेरौ मदन गोपाल।।

मदन गोपाल शरन तेरी आयो।
चरन कमल की सेवा दीजै चेरौ करि राखौ घरि जायो।
धनि धनि मात पिता सुत बन्धु धनि जननो जिनि गोद खिलायो।
धनि धनि चरण चलैं तीरथ कों धनि गुरु जिनि हरि नाम सुनायो।।
जो नर विमुख भये गोविंद सों जन्म अनेक महा दुख पायो।
श्रीभट के प्रभु दियौ अभै पद जम डरप्यौ जब दास कहायौ।।(युगलशत)

झूँठ, क्रोध, निन्दा तजि देही।
झूँठ, क्रोध तथा निन्दा यह तीनों भक्ति के विरोधी हैं।

इसलिये इन तीनों को छोड़ देना चाहिये। झूंठ छोड़कर सत्य का ही पालन करना चाहिये क्योंकि आप सत्य स्वरूप हैं। यथाः—

"सत्य व्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं। सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।"

(भा. स्क. १० अ २ श्लो. २६)

हे प्रभो! आप सत्य संकल्प हैं। सत्य ही आपको प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है। सृष्टि के पूर्व, प्रलय के पश्चात् तथा संसार की स्थिति के समय—इन असत्य अवस्थाओं में भी आप सत्य हैं। पृथ्वी, जल तेज, वायु और आकाश—इन पाँच दृश्यमान सत्यों के आप ही कारण हैं और आप ही इनमें अन्तर्यामी रूप से बिराजमान हैं। आप इस दृश्यमान जगत् के परमार्थ स्वरूप हैं। आपही मधुर वाणी और सम दर्शन के प्रवर्तक हैं। भगवन्! आप तो बस सत्य स्वरूप ही हैं। हम सब आपकी शरण में आये हैं।

क्रोध। यथाः—

"क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित्।
क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति।।"

(भा. स्क. ११ अ. ४ श्लो. ११)

भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी एवं आंधी, पानी के कष्टों को तथा रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के वेग को, जो अपार समुद्रों के समान हैं कोई कोई जीत भी लेते हैं। परन्तु

वही पुरुष गाय के खुर के गड्ढे के समान आत्म नाशक क्रोध के वश में हो जाते हैं और अपनी कठिन तपस्या रूप भजन को खो बैठते हैं।

निन्दा। यथा:—

निन्दा सुनना तथा करना अपराध है :—

"निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा।
ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः॥"

(भा. स्क. १० अ. ७ श्लो. ४०)

हे परीक्षित ! जो भगवान की या भगवत्परायण भक्तों की निन्दा सुनकर वहाँ से हट नहीं जाता है वह अपने शुभ कर्मों से च्युत हो जाता है और उसको अधोगति होती है। पुनः यथा:—

"परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति।
स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः॥" (भा. ११ स्क. २८ अ.२ श्लो.)

जो कोई दूसरे के स्वभाव या कर्म की प्रशंसा अथवा निन्दा करता है वह असद् अभिनिवेश से जल्दी ही अपने अभिष्ट साधन से गिर जाता है। इसका निषेध दश नामापराधों में वर्णित है। यथा:—

"सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते।" (तन्त्र) इत्यादि महत् जनों की निन्दा करना बड़ा अपराध है।

बिन प्रसाद मुख और न लेहीं ॥२॥

बिना भगवत् अर्पण किये किसी वस्तु को ग्रहण नहीं करना चाहिये। यथा:—

"शक्तौ गौणोपचारश्च अनिवेदित भक्षणम्" (तन्त्र)

"पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानाद्यमौषधम्।
अनिवेद्य न भुञ्जीत यदा हाराय कल्पितः॥"
"अनिवेद्यतुभुञ्जानः प्रायश्चिती भवेन्नरः।
तस्मात सर्वं निवेद्यैव विष्णोर्भुंजीत सर्वदा॥ (ब्रह्माण्ड पुराण)

अम्बरीष गृह पक्वं यदभीष्टं सदात्मनः।
अनिवेद्य हरे भुञ्जन् सप्त कल्पानि नारकी॥" (पद्म पुराण)

सेवा अपराधों में वर्णित हैं :—

सामर्थ्य होने से साधारण उपचार करना तथा बिना निवेदन किये भोजन करना अपराध है। ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णित है :—जो कोई पत्र, पुष्प, फल, जल, अन्न और औषधादि भोजन के उपयोगी द्रव्यों को भगवान के बिना निवेदन किये खाता है वह अपराधी होता है। इसलिये सब वस्तुओं को भगवान के भोग लगाकर खाना चाहिये।

पद्म पुराण में वर्णित है :—हे अम्बरीष ! जो पदार्थ अपने आपको प्रिय लगता है उसको घर में बनाकर बिना भगवान के निवेदित किये जो खाता है वह सप्त कल्प तक नरक में वास करता है।

सब जीवन पर करुणा राखैं।

सब जीवों पर करुणा रखनी चाहिये। यथा :—

"पितेव पुत्रं करुणो नो द्वे जयति योजनम्।
विशुद्धस्य हृशीकेशस्तूर्णं तस्य प्रसीदति ॥" (महाभारत)

जो प्राणी मात्र को उद्वेग नहीं देता है जैसे पिता पुत्र पर करुणा करता है उसी प्रकार करता है तो उस पर भगवान जल्दी ही प्रशन्न हो जाते हैं। कबहु कठोर बचन नहीं भाखैं ॥३॥

भक्ति पथिक को कभी भी कटुक वचन नहीं बोलने चाहिये। यथा:—

"न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाणैः सुमर्मगैः।
यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥" (भा. स्क. ११ अ. २३ श्लो. ३)

कठोर वचन से जैसे दूसरे के हृदय में पीड़ा होती है उतनी मर्म भेदी वाण के आघात से भी नहीं होती है।

पुनः। यथाः—सेवा अपराधों में वर्णित है।

"निग्रहानुग्रहौ चैव नृषु च क्रूर भाषणम्।"

भगवान के सन्मुख किसी को दण्ड देना किसी पर कृपा करना तथा क्रूर भाषण करना अपराध है इसलिये यह सब नहीं करने चाहिये।

मन माधुर्य्य रस माँहि समोवै। घरी पहर पल वृथा न खोवे ॥४॥

साधक को अपना मन श्रीप्रिया प्रीतम के मधुर रस में डुबोये रखना चाहिये। एक क्षण काल भी वृथा नहीं खोना चाहिये। यथा :—

"दिवानिशं मनो मध्ये द्वयोः प्रेम भराकुलम् ।
एव मात्मानमनिशं भावयेद् भक्तिमाश्रितः ।।" (साधन चन्द्रिका)

साधक को श्रीप्रिया प्रीतम के प्रेम से विह्वल होकर दिनरात उनकी लीलाओं का भक्ति भाव से चिन्तवन करना चाहिये । पुनः । यथाः—

"सर्व माधुर्य्य साराणि सर्वाद्‌भुत मयानि च ।
ध्यायन् हरेश्चरित्राणि ललितानि विमुच्यते ।।" (पद्म पुराण)

श्रीप्रिया प्रीतम की लीलायें अद्‌भुत माधुर्य्यों की सार स्वरूपा हैं । उन ललित चरित्रों का ध्यान करने से साधक संसार बन्धन से छूट जाता है ।

"स्मर्त्तव्यं सततं विष्णु विस्मर्तव्यो न जातु चित् ।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः ।।" (पद्म पुराण)

पुनः । यथाः—साधक को एक क्षण काल भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिये । प्रभु का निरन्तर स्मर्ण करना चाहिये । उनको कभी भी नहीं भूलना चाहिये । जितने विधि निषेध शास्त्रों में वर्णित है, यह सब इन दोनों—स्मर्ण और विस्मर्ण के किङ्कर हैं । अर्थात् श्रीप्रिया प्रीतम के जिन्तवन करने से साधक को सब विधियाँ पूर्ण हो जाती हैं और विस्मर्ण होने से सब निषेध अर्थात् पापाचरण हो जाते हैं ।

सत गुरु के मारग पग धारै ।

सत् गुरु के बतलाये हुए मारग का अनुसरण करै । यथाः—

"तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ।।
तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षद् गुर्वात्मदैवतः ।"
(भा. स्क. ११ अ. ३ श्लो २१-२२)

जिस किसी को उत्तम श्रेय की इच्छा हो उसको पहले उन श्रीगुरुदेव की शरणागत होना चाहिये जो शान्त हों शब्द ब्रह्म तथा परब्रह्म में निश्नात हों । फिर उनको अपने प्रिय दैवत जानकर उनसे भागवत धर्मों की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।

हरि सत् गुरु बिच भेद न पारै ।।५।।

हरि तथा गुरु में भेद बुद्धि नहीं रखनी चाहिये । यथाः—

"आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्धयासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ।।"

(भा. स्क. ११ अ. १७ श्लो. २७)

श्रीभगवान कहते हैं :—

मेरे और आचार्य के बीच में कभी भी भेद वुद्धि न करे। मनुष्य समझ कर गुरु की कभी अवज्ञा न करे, क्योंकि गुरु सर्व देव स्वरूप है।

ये द्वादश लक्षन अवगाहैं। जे जन परा परम पद चाहैं ।।६।।

उपरोक्त द्वादश लक्षणों के अवगाहन करने से साधक 'परम परा' भक्ति प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है।

जाके दश पैंड़ी अति दृढ़ हैं विन अधिकार कौन तहाँ चढ़ि है ।।७।।

पहिले रसिक जनन को सेवैं। दूजी दया हृदय धरि लेवैं ।।
तीजी धर्म स्व निष्ठा गुनि हैं चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनिहैं ।।
पंचमि पद पंकज अनुरागै षष्टी रूप अधिकता पागै ।।
सप्तमि प्रेम हिये विरधावैं अष्टमि रूप ध्यान गुन गावैं ।।
नवमी दृढ़ता निश्चय गहिवे। दशमो रस की सरिता वहिवे ।।

यह दस भूमिकाएँ आचार्य चरण श्रीमधुसूदन सरस्वती जी ने भी अपने 'भक्ति रसायन' ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत स्कन्ध प्रथम अध्याय पांचवी तथा छटी में देवर्षि नारद जी के निम्नलिखित चरित्र से उधृत करके इसी क्रम से इस प्रकार निरूपण की हैं।

उपायाः प्रथमस्कन्धे नारदेनोपवर्णिताः ।
सङ्क्षेपात्तानहंव्वक्ष्ये भूमिभेद विभागतः ।।
प्रथमम्महतां सेवा, तद्दयापात्रता ततः ।
श्रद्धाऽथ तेषान्धर्मेषु, ततो हरि गुणश्रुतिः ।।
ततो रत्यङ्कुरोत्पत्तिस्स्वरूपाधि गतिस्ततः ।
प्रेम वृद्धिः परानन्दे, तस्याथ स्फुरणन्ततः ।।
भगवद्धर्म निष्ठाऽतस्स्वस्मिंस्तद् गुण शालिता ।
प्रेम्णोऽथ परमा काष्ठे त्युदिता भक्ति भूमिकाः ।। (भक्ति रसायन)

जिन श्रीमद् भागवत के श्लोकों का आशय लेकर यह कारिकाऐं निर्माण की गई हैं वे निम्न लिखित है। यथाः—

(१) प्रथमम्महतां सेवां, (२) तद्दयापात्रता ततः,

श्री. भा. श्लोः

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ।
निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ।।
ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके, दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ।
चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ।।

(अ. ५ श्लो २३, २४)

(१) साधक पहले महात्माओं को सेवा करे । (२) फिर उनकी दया का पात्र बनें।

हे मुने ! पिछले कल्प में अपने पूर्व जीवन में मैं वेद वादो ब्रह्मणों की एक दासी का लड़का था । वे योगी वर्षा–ऋतु में एक स्थान पर चातुर्मास्य कर रहे थे । बचपन में ही मैं उनकी सेवा में नियुक्त कर दिया गया था । मैं यद्यपि बालक था फिर भी किसी प्रकार की चञ्चलता नहीं करता था, जितेन्द्रिय था, खेल-कूद से दूर रहता था और आज्ञानुसार उनकी सेवा करता था । मैं बोलता भी बहुत कम था । मेरे शील स्वभाव को देख कर समदर्शी मुनियों ने मुझ सेवक पर अत्यन्त अनुग्रह किया ।

[३] श्रद्धाऽथ तेषान्धर्मेषु;

उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्त किल्विषः ।
एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ।।

[भा. स्क १ अ. ५ श्लो. २५]

[३] सन्तों के बताये हुए धर्मों में निष्ठा रक्खे ।

उनकी अनुमति प्राप्त करके बरतनों में लगा हुआ जूँठन मैं एक बार खा लिया करता था । इससे मेरे सारे पाप धुल गये इस प्रकार उनकी सेवा करते करते मेरा हृदय शुद्ध हो गया और वे लोग जैसा भजन-पूजन करते थे, उसी में मेरी भी रुचि हो गयी ।

[४] ततो हरिगुण श्रुतिः । [५] ततो रत्यङ्कुरोत्पत्ति ।

तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः ।।

[भा. स्क. १ अ. ५ श्लो. २६)

[४] हरि कथाओं का श्रवण करे। [५] जिनसे अनुराग उत्पन्न होगा।

उस सत्सङ्ग में उन लीला गान परायण महात्माओं के अनुग्रह से मैं प्रतिदिन श्रीकृष्ण की मनोहर कथाएं श्रद्धापूर्वक सुना करता था इस प्रकार एक एक पद श्रवण करते करते प्रिय कीर्ति श्रीकृष्ण में मेरी 'रति' हो गई।

[६] स्वरूपाधिगतिस्ततः।

"तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम।
ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे॥" [भा.स्क.१अ५ श्लो२७]

[६] इन्द्रियों द्वारा रूप आदि माधुर्यों का अधिकतर अनुभव

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती जी इस श्लोक का इस प्रकार अर्थ करते हैं। प्रिय कीर्ति श्रीकृष्ण में मेरी रति होने से मेरी मति भी उन में दृढ़ हो गई तब मैंने यह देखा कि जिस मति द्वारा मैं अपनी स्थूल सूक्ष्म देहों को जिनको अज्ञानता वश मैं अपनी मान रहा था, वह स्वयं ही श्रीकृष्ण चरण में लग गई अर्थात स्थूल देह से तो मैं दण्डवत् प्रणाम आदि सेवा करने लगा, सूक्ष्म देह—इन्द्रियों द्वारा मैं रूप आदि माधुर्यों का अधिकतर अनुभव करने लगा।

[७] प्रेम वृद्धिः परानन्दे।

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम्।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्तात्मरजस्तमोपहा॥
(भा. स्क. १ अ. ५ श्लो. २८]

[७] आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण में प्रेम की वृद्धि।

इस प्रकार शरद् और वर्षा—इन दो ऋतुओं में तीनों समय उन महात्मा मुनियों ने श्रीहरि के निर्मल यश का सङ्कीर्तन किया और मैं प्रेम से प्रत्येक बात सुनता रहा। अब चित्त के रजोगुण और तमोगुण को नाश करने वाला "प्रेम" का मेरे हृदय में प्रादुर्भाव हो गया।

[८] तस्याथ स्फुरणन्ततः।

तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आस्थितः।
आत्मनाऽऽत्मानमात्मस्थं यथा श्रुतम चिन्तयम्॥ (भा. स्क. १ अ. ६ श्लो १६]

[८] उससे ध्यान तथा रूप की स्फूर्ति ।

उस निर्जन वन में एक पीपल के नीचे आसन लगाकर मैं बैठ गया । उन महात्माओं से जैसा ध्येय स्वरूप मैंने सुना था मेरे प्रेम से वशीभूत होकर मेरे हृदय में रहने वाले उस स्वरूप का मैं अपने मनही मन में ध्यान करने लगा ।

[६] भगवद्धर्म निष्ठा, ऽतस्स्वस्मिंस्तद्गुण शालिता ।

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ।। [भा. स्क. १ अ. ६ श्लो. १७]

[६] ध्यान में दृढ़ता होने से आपका प्रकट हो जाना ।

भक्ति भाव से वशीकृत चित्त द्वारा श्रीकृष्ण के चरण कमलों का ध्यान करते ही उनकी प्राप्ति की उत्कट लालसा से मेरे नेत्रों में आँसू छल छला आये और हृदय में धीरे धीरे श्रीहरि प्रकट हो गये ।

[१०] प्रेम्णोऽथपरमा काष्ठेत्युदिता भक्ति भूमिकाः ।

प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ।
आनन्दसम्प्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ।। [भा. स्क. १ अ. ६ श्लो १८]

[१०] प्रेम की अत्यन्त पराकाष्ठा । इत्यादि भक्ति भूमिकाऍं हैं ।

हे वेद व्यास जी ! उस समय प्रेम भाव के अत्यन्त उद्रेक से मेरा रोम रोम पुलकित हो उठा । हृदय अत्यन्त शान्त और शीतल हो गया । उस आनन्द रूपी रस सरिता में मैं ऐसा डूब गया कि मुझे अपना और ध्येय वस्तु का तनक भी भान नहीं रहा ।

अब महावाणी में वर्णित दस पैड़ियों (भूमिकाओं) की पृथक पृथक व्याख्या की जाती है :—

(१) पहिले रसिक जनन को सेवें ।

[२] दूजी दया हृदय धरि लेवें ।।८।। यथाः—

साधक को पहले रसिक महात्माओं की सेवा द्वारा उनकी दया का पात्र बनना चाहिये । यथाः— "प्रथमं महतां सेवा तद्दयापात्रता ततः" [भक्ति रसाग्रन]

(३) तीजो धर्म स्वनिष्ठा गुनि हैं ।

तीजे उन संतों के बताये हुए धर्मों में निष्ठा होनी चाहिये यथा :—

"श्रद्धाथ तेषां धर्मेषु ॥" (भक्ति रसायन)

पुनः। यथा :— "स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः।
विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः॥"
(भा. स्क. ११ अ. २१ श्लो. २)

उनके बताये हुए धर्मों के अनुसार ही भक्ति करनो चाहिये। क्योंकि अपनी अपनी उपासनाओं में निष्ठा होना ही गुण कहलाता है। इसके विपरीत करने से दोष होता है। यही गुण दोषों की मीमांसा है।

(४) चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनि हैं ॥९॥

(५) पंचमि पद पंकज अनुरागै। यथाः—

चौथे उन महात्माओं के मुखारविन्दों से निर्गत हरि कथाओं को अतृप्ति पूर्वक सुनें। पाचवाँ कथा सुनने से श्रीप्रिया प्रीतम के चरणारविन्दों में अनुराग—रत्यङ्कुर उत्पन्न होगा। यथाः—

"ततो हरि गुण श्रुतिः। ततो रत्यङ्कुरोत्पत्तिः" (भक्ति रसायन)

पुनः यथाः—"सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि।
प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत् स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ता।"
(भा. स्क. १० अ. १३ श्लो. २)

रसिक सन्तों की वाणी, कान और हृदय भगवान की लीला गान श्रवण और चिन्तन के लिये ही होते हैं। उनका यह स्वभाव ही होता है कि वे क्षण प्रतिक्षण भगवान की लीलाओं को अपूर्व रसमयी और नित्य नूतन अनुभव करते रहते हैं—ठीक वैसे ही जैसे लम्पट पुरुषों को स्त्रियों की चर्चा में नया नया रस जान पड़ता है।

अब "ततो रत्यङ्कुरोत्पत्ति" की व्याख्या करते हुए 'रति' के लक्षण लिखते हैं।

'रति' अर्थात 'भाव' यह प्रेम की ही एक अवस्था विशेष है।

"शुद्ध सत्व विशेषात्मा प्रेम सूर्य्यांशु साम्य भाक्।
रुचिभिश्चित्त मासृण्य कृदसौ भाव उच्यते॥" (भक्ति रसामृत सिन्धु)

अप्राकृत विशुद्ध सत्व ही 'भाव' का स्वरूप है। यह प्रेम रूपी सूर्य की किरण सदृश है। यह 'भाव' श्रीकृष्ण चरणारविन्द में रुचि बढ़ा कर चित्त को पिघला देता है।

(६) षष्ठी रूप अधिकता पावै ॥१०॥ यथाः—

'रत्याङ्कुर' उत्पन्न होने से रूप आदि माधुर्य्यों का अधिकतर अनुभव होने लगेगा। यथाः-- "स्वरूपाधि गतिस्ततः" (भक्ति रसायन)

पुनः। यथा :--यौ नित्यौ नव दम्पती रसमयौ लीला विलासोन्मदौ।
गौर श्याम तनू किशोर वयसौ सन्नील पीताम्बरौ ॥
नित्यानन्त सखीजनैः सुर सितौ वृन्दावनोल्लासिनौ।
तौ राधा पुरुषोत्तमौ विजयतां मन्मानसे सर्वदा ॥" (युग्म तत्व समीक्षा)

नित्य अनन्त सखियों द्वारा सेवित, वृन्दावन विलासी वह प्रिया प्रीतम मेरे मन मन्दिर में सदा विराजमान रहैं, जो नित्य रस मय नव दम्पति हैं, जो लीला विलास में उन्मत्त हो रहे हैं, जिनका स्वरूप किशोर गौर श्याम है और जो नीलाम्बर पीताम्बर धारण किये हुए हैं।

(७) सप्तमि प्रेम हिये विरथावैं। यथा :—

"प्रेम वृद्धि परानन्दे" (भक्ति रसायन)

जिससे हृदय में प्रेम वृद्धि को प्राप्त होगा। प्रेम के लक्षण यह हैं :--

"सम्यक् मृणित स्वान्तो ममत्वातिशयांकितः।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुद्धैः प्रेमानिगद्यते ॥" (भक्तिरसामृत सिन्धु)

रसिक जन उस भाव की गाढ़ अवस्था को ही प्रेम कहते हैं, जिससे चित्त में अपनी अभीष्ट प्राप्ति की सम्यक् प्रकार से अभिलाषा बढ़ जाती है जिससे चित्त पिघल जाता है और अतिशय ममता का प्रकाश होता है।

(८) अष्टम रूप ध्यान गुन गावैं। यथाः—

"तस्याथ स्फुरणं ततः" (भक्ति रसायन)

हृदय में प्रेम का संचार होने से स्वाभाविक ही वह अपनी अभीष्ट वस्तु के रूप का ध्यान करने लगता है, उसके हृदय में रूप की स्फूर्ति होने लगती है। यथा--

"नवोद्यत् कैशोरं नव नव महा प्रेम विक्लम्।
नवानंग क्षोभस्तरल तरलं नव्य ललितम् ॥
नवीना दृष्टंचगोक्तिषु मधुर भंगीदधदहो।
महो गौर श्यामं स्मरत नव कुञ्जेतदुभयम् ॥" (वृन्दा. रा.)

श्रीवृन्दावन की नव निकुञ्ज में उन श्रीप्रिया प्रीतम का ध्यान करें जिनके अङ्गों

की कान्ति गौर तथा श्याम है। जिनकी अवस्था नव कैशोर है, जो नये नये प्रेम से व्याकुल हो रहे हैं। जो अति रमणीय हैं और जिनके चित्त परस्पर अनङ्ग के क्षोभ से चञ्चल हो रहे हैं। जिनकी नई नई दृष्टियाँ परस्पर अङ्गों में तथा वाणियों में मनोहर प्रकार की भङ्गियाँ प्रकाश कर रहीं हैं।

पुनः। यथाः—

"मिथोन्यस्त प्राणं कथमपि नहि स्नान शयना-
शनादौ विच्छिन्नं गुरुभिरनुरागै र्नव नवैः।
सदाखेलद् वृन्दावन नव निकुञ्जावलिषु तद्
भजे गौर श्यामं मधुर मधुरं धाम युगलम् ॥" (वृन्दावन शतक)

मैं उन श्रीलाल ललना के गुणों का गान करता हूँ जिन्होंने अत्यन्त आशक्ति से अपने परस्पर प्राणों को भी एक दूसरे के अर्पण कर दिये हैं जिनका शयन भोजन तथा स्नानादि में भी कभी विच्छेद नहीं होता है और जो नये नये अनुराग से वृन्दावन नव निकुञ्ज में निरन्तर विहार करते हैं।

(९) नवमी दृढ़ता निश्चय गहिवे। यथाः—

"भगवद्धर्म निष्ठात्स्स्वस्मिस्तद् गुण शालिता।" (भक्ति रसायन)

ध्यान में दृढ़ता होने से श्रीप्रिया प्रीतम जल्दी ही प्रकट हो जाते हैं।

ऐसी अवस्था होने से साधक क्षण काल के लिये भी उसे नहीं छोड़ सकता है।

यथाः—"मुग्धं मां निगदन्तु नीति निपुणा भ्रान्तं मुहुर्वैदिका।
मन्दं बान्धव संचया जडधियं मुक्तादराः सोदराः॥
उन्मत्तं धनिनो विवेक चतुराः कामं महादाम्भिकाम्।
मोक्तुं न क्षमते मनागपि मनो गोविन्द पाद स्पृहाम् ॥" (श्रीमाघ कवि)

नीति निपुण यदि मुझको मूर्ख कहैं और वेद शास्त्र के जानने वाले भ्रान्त चित्त कहैं, तो कहने दो। भाई बान्धव मन्द कहकर मेरा बहिष्कार करैं तो करने दो। धनी लोग मुझको पागल कहै, विवेकी कपटो कहैं, तो कहने दो। मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि मैं एक क्षण काल के लिये भी श्रीगोविन्द चरणारविन्द प्राप्ति की अभिलाषा को नहीं छोड़ूंगा। पुनः। यथाः—

"त्रिभुवन विभव हेतवेऽप्य कुण्ठ स्मृतिरजितात्मसुरादिभि विमृग्यात्।

न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लव निमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्रयः ।।"
(भा. स्क ११ अ. २ श्लो ५३)

बड़े बड़े देवता और ऋषि मुनि भी जिन चरणारविन्दों को ढूँढ़ते रहते हैं, ऐसे चरण कमलों को जो आधे क्षण, आधे पल के लिये भी नहीं छोड़ता है। यहाँ तक कि कोई स्वयं उसे त्रिभुवन की राजलक्ष्मी दे तो भी वह भगवत् स्मृति का तार नहीं तोड़ता है, उस राजलक्ष्मी की ओर ध्यान भी नहीं देता है। वही पुरुष वास्तव में भगवत् भक्त वैष्णवों में सबसे श्रेष्ठ है।

(१०) दशवीं रस की सरिता वहिवे ।।१२।।

"प्रेम्णोऽथ परमा काष्ठेत्युदिता भक्ति भूमिकाः ।।" (भक्ति रसायन)

ध्यान में दृढ़ता होने से तथा हृदय में श्रीप्रिया प्रीतम प्रकट होने से, साधक रस समुद्र में डूब जाता है इसी भूमिका में प्रेम की पराकाष्ठा है। यथाः—

"प्रेमातिभर निर्भिन्न पुलकाङ्गोऽति निर्वृतः ।
आनन्द सम्प्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ।।" (भा. स्क १ अ. ६ श्लो. १८)

हे वेद व्यास जी उस समय प्रेम भाव से अत्यन्त उद्रेक से मेरा रोम रोम, पुलकित हो उठा। हृदय अत्यन्त शान्त और शीतल हो गया। उस आनन्द रूपी रस सरिता में मैं ऐसा डूब गया कि मुझे अपना और ध्येय वस्तु का तनक भी भान नहीं रहा।

रस स्वरूप समुद्र में लाल ललना और सब सहचरी भी इसी प्रकार निमग्न रहती हैं—यथाः—

"श्यामानन्द रसैक सिन्धु बुडितां वृन्दावनाधीश्वरीम् ।
तत्स्वानन्द रसाम्बुधौ निरवधौ मग्नञ्चल श्यामलम् ।।
तादृक् प्राण प्रार्ध वल्लभ युग क्रीड़ावलोकोन्मदा ।
नन्दैकब्धि रस भ्रम तनुधियो ध्यायामि तास्तत्परा ।। (श्रीवृन्दावन शतक)

मैं उन श्रीप्रिया जी का ध्यान करता हूँ जो श्याम सुन्दर रस रूपी समुद्र में निमग्न रहती हैं तथा उन लाल जी का स्मरण करता हूँ, जो प्रियाजी रूपी अथाह आनन्द सागर में डूबे रहते हैं। उन दोनों के सदृश उन सखियों का मैं ध्यान करता हूँ जिनको प्रिया प्रीतम अपने करोड़ों प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। और जो उनके विहार के दर्शनानन्द समुद्र में इस प्रकार डूब रही हैं कि उनको अपने मन बुद्धि तथा देह की भी सुध बुध नहीं है।

या अनुक्रम करि जे अनुसरहीं शनैः शनैः जगते निरवरहीं ॥१३॥
परम धाम परिकर मधि वसहीं श्रीहरिप्रिया हितू सङ्ग लसहीं । १४॥

उपरोक्त दश भूमिकाओं को समाप्त करते हुए पराभक्ति की फलस्तुति कहते हुए विषय को समाप्त करते हैं।

जो साधक उपरोक्त अनुक्रम के अनुसार चलते हैं वे शनैः शनैः जग बन्धन से छूट जाते हैं और नित्य वृन्दावन में वसकर श्रीहरिप्रिया हितू सखियों के साथ रास विलास के सुखों को विलसते हैं।

॥ दोहा ॥

अति अनूप सांचे ढरी, निरखि होत मति भोरि।
अद्भुत स्यामा-स्याम की, सहज भांवती जोरि॥

॥ पद ॥ ३२ ॥

स्यामा-स्याम भांवती जोरी। अविचल नित्य किसोर-किसोरी॥
सांवर पिय-प्यारी तन गोरी। सोभा बरनि सकै कबि कोरी॥
अद्भुत रूप रङ्ग रस बोरी। अति अनूप साँचे सी ढोरी॥
श्रीहरिप्रिया करत चित चोरी निरखत नैन होति मति भोरी॥३२॥

अब पृथक पृथक तुकों की व्याख्या करते हैं।

अति अनूप साँचे ढरी निरख होति मति भोरि।
अद्भुत श्यामा श्याम की सहज भाँवती जोरि॥

श्रीश्यामा श्याम की अद्भुत सहज भाँवती जोरी है, इन दोनों की आकृति परस्पर इतनी सदृश है कि मानों ये दोनों एक ही अति अनूप साँचे में ढले हुए हों। यथा:—

"राधाकृष्णयोरेकमासनपद्म, एका बुद्धिः, एकं मनः, एकं ज्ञानं, एक आत्मा, एकं पदं एकाकृति, एकं, ब्रह्मतऽऽयासनं" इत्यादि (पुरुषार्थ बोधनी अथर्वण उपनिषद)

श्रीराधा माधव का एक ही पद्मासन, एक ही बुद्धि, एक ही मन, एक ही ज्ञान, एक ही आत्मा, एक ही स्थान, एक ही आकृति तथा एक ही ब्रह्ममय उपवेशन है।

उपरोक्त उपनिषद् वाक्य से दोनों की एक ही 'आकृति' सिद्ध होती है।

श्यामा श्याम भावती जोरी अविचल नित्य किशोर किशोरी।
साँवर प्रिय प्यारी तन गोरी शोभा वरनि सकै कवि कोरी॥

नित्य किशोर किशोरी श्रीश्यामा श्याम की गौर साँवरी भाँवती जोरी है। ऐसा कौन कवि है जो इनकी रूप माधुरी का वर्णन कर सकै। यह जोरी अविचल अर्थात् सनातन है। यथा:—

"श्रीराधिकाकृष्णयुगं सनातनं नित्यैक रूपं निगमादि वर्जितम्।
यद्वज्जलोल्लोल युगं मिथोरतं सद्गोचर यावद वाप्नुयान्नतु॥"
(औदम्बर संहिता)

श्रीप्रिया प्रीतम की जोरी नित्य सनातन है। ये दोनों एक ही स्वरूप हैं, जल, तरङ्ग की तरह इनमें विच्छेद की सम्भावना नहीं है। ये परस्पर आसक्त हैं। इनके दर्शन एक मात्र महात्माओं की कृपा से ही हो सकते हैं अन्यथा नहीं।

अद्भुत रूप रङ्ग रस बोरी। अति अनूप साँचे सी ढोरी॥
श्रीहरि प्रिया करत चित चोरी। निरखत नैन होति मति भोरी॥

इन दोनों का अद्भुत रूप है। यह दोनों रङ्ग—सुरति केलि रस में निमग्न हैं। इन दोनों की आकृति इस प्रकार समान है मानो ये किसी अति अनूप साँचे में ढले हुए हों इन दोनों की रूप माधुरी सब के चित्तों को चुराने वाली है जो कोई इन्हें देखता है उसकी मति बौरा जाती है।

॥ अनुरागिनी विचित्र शोभा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

**जाके पद नख जोति की, आभा कौ अनुलेस।
जगमगात है जगत में, परब्रह्म परमेस॥**

॥ पद ॥ ३३ ॥

**जाऊँ बलिहारी नित्य वैभव बिहारी।
जुगलकिसोर स्वयं सत्य श्रुतिसारी॥
अखिल ब्रह्माण्ड ब्रह्मव्यापक है जोई।
तिहारे चरन नख आभा है सोई॥
परमातम विश्वकाय नारायण विष्णु।
धर्म हैं तिहारे तुम धर्मी जग जिष्णु॥**

बाल कौमार पौगण्ड वपुधरि कें।
करत बिहार जन हेत अनुसरिकें ॥
ललित अगाध लीला बरनी नहिं जाई।
श्रीहरिप्रिया भागवत कहैं प्रभुताई ॥३३॥

अब पृथक पृथक तुकों की व्याख्या इस प्रकार है।

जाके पद नख ज्योति की आभा कौ अणुलेश।
जगमगात है जगत में पर ब्रह्म परमेश ॥

यही विषय इसी ग्रन्थ के पद कहत हैं जिहि विदुष व्यापक ब्रह्म है जग में जोई। चरण नख आभाष करि करि साँच कल्पत हैं सोई ॥" की व्याख्या में विस्तार पूर्वक प्रमाणों सहित वर्णन कर चुके हैं।

जाउँ बलिहारी नित्य वैभव विहारी।
युगल किशोर स्वयं सत्य श्रुति सारी ॥

जिन युगल किशोर का नित्य विशाल वैभव है मैं उनकी वलिहारी जाऊँ। आप सत्य श्रुतियों के सार स्वरूप हैं पहले यह विवेचन करते हैं कि "सत्य श्रुति सार" कहने से क्या तात्पर्य है। श्रुतियाँ तो सभी सत्य हैं। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए वर्णन करते हैं। यथा:—

"त्र्यगुण्य विषया वेदा निस्त्र्यगुण्य भवार्जुन" (गीता)

श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! वेद सतोगुण, रजो गुण तथा तमो गुण विषयों वाला है तू तीनों गुणों से अतिरिक्त गुण वाला अर्थात् निर्गुण हो।

उपरोक्त न्याय से श्रुतियों के चार विभाग हैं—सात्विक, राजसिक, तामसिक तथा निर्गुण। जिन श्रुतियों में ज्ञान का प्रधानतया निरूपण है वे सात्विकः जिनमें सृष्टि आदि का वर्णन है वे राजसिक, जिनमें संहारादि का वर्णन है वे तामसिक हैं तथा जिनमें भगवान का ही वर्णन है वे निर्गुण कहलाते हैं। यथा:—

हरिहि निर्गुण साक्षात् पुरुषः प्रकृते परः।
स सर्व दृगुपद्रष्टा त भजन् निर्गुणो भवेत् ॥ (भा. स्क. १० अ. ८८ श्लो.५)

हरि तो निर्गुण प्रकृति से परे स्वयं पुरुषात्तम है तथा सबके साक्षी हैं। जो इनका भजन करता है वह भी निर्गुण हो जाता है।

उपरोक्त निर्गुणा श्रुतियाँ ही सत्य श्रुतियाँ कहलाती हैं। ये श्रुतियाँ रसिक दम्पति को ही समस्त उपास्य देवों में श्रेष्ठ प्रतिपादन करती हैं। यथाः—

"तस्मात्कृष्ण एव परमो देवस्तं ध्यायेत् तं रसयेत् तं भजेत्"

(गोपाल तापिनी उपनिषद्)

इसलिये श्रीकृष्ण ही सब देवों में परम श्रेष्ठ हैं साधक को उन्हीं का ध्यान तथा उन्हीं की सेवा करनी चाहिये। और उन्हीं के रस में रसायित होना चाहिये।

पुनः यथाः—

"कृष्णो ह वै हरिः परमो देवः षड विधैश्वर्य्य-परिपूर्णो भगवान् गोपी गोप सेव्यो वृन्दाऽऽराधितो वृन्दावनादि नाथः, स एक एवेश्वर ॥" (श्रीराधिकोपनिषत्)

श्रीहरि कृष्ण ही परम देव हैं, ये छःओं ऐश्वर्यों से परिपूर्ण भगवान गोपियों और गोपों के सेव्य हैं। ये वृन्दादेवी के द्वारा आराधित श्रीवृन्दावन के अधीश्वर हैं। यही एक मात्र सर्वेश्वर हैं।

अखिल ब्रह्माण्ड ब्रह्म व्यापक है जोई।
तिहारे चरन नख आभा है सोई ॥१॥

अखिल ब्रह्माण्डों में जो व्यापक ब्रह्म है वह आपके चरणारविन्द के नख की ही एक कान्ति है। इसी पद के 'आभास दोहे' में वर्णन कर चुके हैं इस विषय की विस्तार पूर्वक व्याख्या सि. सु. पद में देखनी चाहिये।

परमातम विश्वकाय नारायण विष्णु।
धर्म हैं तिहारे तुम धर्मी जग जिष्णु ॥२॥

हे जग पालन कर्त्ता ! आप तो धर्मी हैं और परमात्मा विश्वकाय नारायण विष्णु इत्यादि आपके स्वरूप आपके धर्म हैं।

इस तुक की व्याख्या करते हुए पहले 'धर्म' धर्मी का विवेचन करते हैं। यथाः—

"यस्मिन् धर्मा विद्यन्ते तत् धर्मि यथा गन्धवत्वं पृथिव्या लक्षणम्। अत्र पृथिवी धर्मिणी गन्धो धर्मः। पृथवीमाश्रित्य एव गन्धरूप धर्मो विद्यते न तु धर्म माश्रित्य पृथवी विद्यते एव मेव परमात्मादि धर्मः श्रीकृष्ण धर्मी। अतः श्रीकृष्णमाश्रित्य एव परमात्मादि धर्मो विद्यते न तु परमात्मादि माश्रित्य श्रीकृष्णो विद्यते।

(पुराणान्तर)

श्रीब्रह्मवैवर्त्त पुराणे तथा श्रीबृहद्भागवतामृत ग्रन्थे श्रीकृष्णे नारायणादीनां प्रवेशो । यथाः—

"गत्वा नारायणोदेवो विलीनः कृष्ण विग्रहे ।"

पुनः यथाः—

"अवरुह्य स्वयं विष्णु पाता च जगतां पतिः ।
आजगाम चतुर्बाहुः बनमाला विभूषितः ॥
स चापिलीनस्तत्रैव राधिकेश्वर विग्रहे ।" (ब्रह्म वैवर्त्त)

पुनः । यथाः—

"तत्तन्महा प्रेम विहार कामः कस्मिन्नपि द्वापर काल शेषे ।
गोलोक नाथो भगवान् स कृष्णः कृस्नांश पूर्णोऽवतरत्यमुष्मिन् ॥"
(बृहद्भागवतामृत खं २ अ. ५ श्लो ६२)

जिनको आश्रय करके धर्म रहते हैं उनको धर्मी कहते हैं । जैसे पृथवी में गन्ध रहती है इसलिये पृथ्वी धर्मिणी है और गन्ध धर्म है । यहाँ पृथवी को आश्रय करके ही गन्ध रहता है । गन्ध के आश्रय करके पृथ्वी नहीं रहती है । इसी प्रकार श्रीकृष्ण धर्मी हैं और परमात्मा आदि धर्म हैं इसीलिये श्रीकृष्ण को आश्रय करके ही परमात्मादि रहते हैं । परमात्मादि को आश्रय करके श्रीकृष्ण नहीं रहते हैं ।

श्रीब्रह्म वैवर्त्त पुराण तथा श्रीबृहद भागवतामृत ग्रन्थ में श्रीनारायण आदि का श्रीकृष्ण के विग्रह में इस प्रकार प्रवेश वर्णित हैं ।

"श्रीकृष्ण के अवतार के समय श्रीवैकुण्ठ नाथ नारायण श्रीकृष्ण के पास आकर उनके विग्रह में लीन हो गये ।" इसके पश्चात्‌ः "जगत् के पालन कर्त्ता, वनमाला विभूषित श्रीविष्णु भगवान् रथ से उतर कर उन्हीं श्रीराधा कान्त में समा गये(ब्रह्मवैवर्त्त पुराण) पुनः—

"जब गोलोक नाथ श्रीकृष्ण की अपने प्रेममय विविध प्रकार के विहार करने की इच्छा होती है, तब वह किसी एक द्वापर के अन्त में अपने समस्त अंशावतारों को अपने में सायुज्य करके इस गोकुल में प्रकट होते हैं ।"

बालक कुमार पौगण्ड वपु धरिकैं ।
करत विहार जन हेत अनुसरिकैं ।।३।।
ललित अगाध लीला वर्नी नहि जाई
श्रीहरि प्रिया भागवत कहै प्रभुताई ।।४।।

श्रीप्रिया प्रीतम ही विश्व के मङ्गल के लिये बाल, कुमार तथा पौगण्ड वय के अनुसार वपु धारण करके विहार करते हैं। ये लीलायें अति ललित तथा अगाध हैं उनको कौन वर्णन कर सकता है। श्रीमद् भागवत में ये लीलायें आपकी ईश्वरत्व तथा माधुर्य प्रभुताई की द्योतक है बाल, कौमार, पौगण्ड आदि अवस्थाएें धर्मी धर्म हैं कैशोर धर्मी है यथा:—

"वयसो विविधत्वेऽपि सर्वभक्ति रसाश्रयः ।
धर्म्मी किशोर एवात्रनित्यनाना विलासवान् ।।"

(भक्ति रसामृतसिन्धु दक्षिण लहरी पृः १३४)

यद्यपि श्रीकृष्ण की अवस्थाऐं बाल कौमार पौगण्ड आदि विविध प्रकार की है तो भी यह सब अवस्थाऐं धर्म हैं और इनके धर्मी स्वरूप तो सब भक्ति रस के आश्रय, नित्य लीला विलासी किशोर ही हैं।

।। दोहा ।।

कारनीक कारनहि के, मङ्गल-मङ्गल के जु ।
अवतारी अवतार के, अंसी अंसन के जु ।।

।। पद ।।३४।।

अंसन के अंसी अवतार अवतारी ।
कारन के कारनीक मङ्गल महारी ।।
स्वयं रूप सुद्ध सत्व इच्छा बिसतारी ।
जाकरि कें भयौ नाद ब्रह्म निर्विकारी ।।
ताकों सब ठाट पाट घाट अघटारी ।
असत सतादि परावर के प्रचारी ।।
बिबिध विसेषण बिचारि बकतारी ।
बरनत हैं बानी जाहि मति अनुसारी ।।

श्रीहरिप्रिया नित्यधाम बिलसत बिहारी।
कोटि काम अभिराम बिचित्र-सोभारी ॥३४॥

अब पृथक पृथक तुकों को व्याख्या इस प्रकार है।

कारनीक कारनहि के मङ्गल मङ्गल के जु।
अवतारी अवतार के अंशी अंशन के जु ॥
अंशन के अंशी अवतार अवतारी।
कारन के कारनीक मङ्गल महारी ॥

श्रीकृष्ण ही सब कारणों के कारण, सब मङ्गलों के मङ्गल सब अवतारों के अवतारी तथा सब अंशों के अंशी स्वरूप हैं।

सब कारणों के कारण। यथा:—

"ईश्वरः परमः कृष्ण सर्व कारण कारणम् ।" (ब्रह्म संहिता)

श्रीकृष्ण ईश्वर हैं सब उपादानादि कारणों के भी कारण स्वरूप हैं।

सब मङ्गलों के मङ्गल। यथा:—

"मधुर मधुर मेतन्मङ्गलं मङ्गलानाम्।
सकल निगम वल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम् ॥
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा।
भृगुवर नर मात्रं तारयेत् कृष्ण नाम ॥ (हरिभक्ति विलास)

हे भृगुवर! श्रीकृष्ण नाम मधुर से भी मधुर है। मङ्गलों को भी मङ्गल देने वाला है। वेद रूपी लताओं का यह सच्चिदानन्द श्रेष्ठ फल है। जो कोई मनुष्य इस नाम को श्रद्धा या अश्रद्धा से किसी प्रकार एकबार भी उच्चारण करता है उसका यह नाम उद्धार कर देता है।

सब अवतारों के अवतारी। यथा:—

"देवि! सर्वावतारास्तु ब्रह्मणः कृष्ण रूपिणः।
अवतारी स्वयं कृष्ण सगुणो निर्गुणो स्वयम् ॥ (नारद पुराण)

हे देवि! परब्रह्म श्रीकृष्ण के ही सब अवतार हैं। इसलिये सगुण तथा निर्गुण स्वरूप श्रीकृष्ण ही अवतारी हैं।

सब अंशों के अंशी । यथाः—

"यसांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्ति लयो दयाः ।
भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वा द्याहं गतिं गता ।।"

(भा. स्क. १० अ, ८५ श्लो ३१)

हे विश्वात्मन् श्रीकृष्ण ! आपके अंश के अंश भाग से जगत् की उत्पत्ति, विकास तथा प्रलय होता है । मैं आज सर्वान्तः करण से आपकी शरण हूँ ।

स्वयं रूप शुद्ध सत्व इच्छा विस्तारी ।
जा करिकैं भयो नाद ब्रह्म निर्विकारी ।।१।।

आपका दिव्य मङ्गल विग्रह स्वयं विशुद्ध अप्राकृत सत्व मय है । आप अपनी इच्छा से विश्व का विस्तार करते हैं । आपसे ही शब्द ब्रह्म प्रकट हुआ है ।

स्वयं रूपः—

अनन्यसिद्धं यदरूपं स्वयं रूपस्तदुच्यते (लघुभागवतामृत)

स्वयं रूप शुद्ध सत्व=यथाः—

"विशुद्ध सत्वं तव धाम शान्तम् । तमोमयं ध्वस्त रजस्तमस्कम् ।।"

(भा. स्क. १० अ. २७ श्लो. ४)

आपका स्वरूप परम शान्त, ज्ञानमय, रजोगुण तथा तमोगुण से रहित एवं विशुद्ध अप्राकृत सत्वमय है ।

जा करिकैं भयौ नाद ब्रह्म निर्विकारी । =यथाः—

"कृता युग्मेन सा केलि"………इत्यादि (सनत्कुमार सं. प. ३१ श्लो ७४)

इस विषय को कई स्थानों पर वर्णन कर चुके हैं । विलास समय में श्रीप्रियाजी के नूपुर से जो कलरव होता है उसी को शब्द ब्रह्म कहते हैं ।

ताकौ सब थाट पाट घाट अघटारी । असत् सतादि परावर के प्रचारी ।।२।।

ताकौ=शब्द ब्रह्म का । थाट पाट घाट=समस्त विश्व । अघटा=घट अर्थात उद्योग । अघट विना उद्योग । असत्=सृष्टि के कारण स्वरूप । सत्=सृष्टि के कार्य स्वरूप । पर=श्रीब्रह्मादिक । अवर=इन्द्रादि लोकपाल । प्रचारी=प्रकट करने वाले ।

श्रीकृष्णएव मुख्यवृत्तः इत्यादि सिद्धान्त रत्नाञ्जली तृः १४८-१४६

शब्द ब्रह्म अर्थात कामबीज से ही बिना किसी उद्योग के समस्त विश्व की रचना हुई है। यही सृष्टि का कारण तथा कार्य स्वरूप है। इसके द्वारा ही श्रीब्रह्मादिक तथा इन्द्रादिक लोकपालों का सृजन हुआ है। यथा:—

क्लीं काराद् सृजद्विश्वमिति प्राह श्रुते शिरः।
ल काराद् पृथिवी जाता क काराज्जल संभवः।।
ई काराद्वह्निरुत्पन्नो नादाद्वायु रजायत।
विन्दोराकाश संभूति रिति भूतात्मको मनुः।।" (गौतमीय तन्त्र)

श्रुति का शिरोभाग–गोपाल तापिनी में काम बीज से ही इस विश्व की उत्पत्ति वर्णित है। ल कार से पृथ्वी, क कार से जल, ई कार से अग्नि, नाद से वायु और बिन्दु से आकाश उत्पन्न हुआ इसी लिये इस मन्त्र को भूतात्मक भी कहते हैं।

सनत्कुमार संहिता में शब्द ब्रह्म से ही ब्रह्मादिक तथा इन्द्रादिक लोक पालों का प्राकट्य इस प्रकार वर्णित है। यथा:—

"कृता युग्मेन सा केलि महानन्दमयी ध्रुवा।
नूपुराज्जनितो रावः स एव ब्रह्म संज्ञिकः।।
ततो जातस्तु पुरुषः सु शुद्धः प्रकृते परः।
ततो प्रकृति पुरुषौ ततो नारायणः परः।।
तन्नाभि कमलाज्जातो ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
ततो रुद्राश्च मुनयो जाता वै सृष्टि कृत्तमाः।।
सनत्कु. सं. पटल ३१ श्लो ७४. ७५. ७६)

श्रीप्रिया प्रीतम ने मिलकर आनन्दमयी सुरति केलि की, उस समय श्रीस्वामिनी जू के नूपुर का जो शब्द हुआ उसी को 'शब्द ब्रह्म' कहते हैं। उसी शब्द से मायातीत 'पुरुष' प्रकट हुआ उससे प्रकृति तथा पुरुष (मायान्तर्यामी) आविर्भाव हुए। जिनसे श्री नारायण प्रकट हुए इनकी नाभि कमल से वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ श्रीब्रह्माजी का जन्म हुआ। उनसे श्रीमहादेव जी तथा अन्य प्रजापति प्रगट हुए।

विविध विशेषनि विचार वक्तारी। वर्नत है वानी जाहि मति अनुसारी ।।३।।
श्रीहरिप्रिया नित्य धाम विलसत विहारी कोटि काम अभिराम विचित्र शोभारी।४।

जिनका विचार वक्ता अर्थात ज्ञानी लोग अपनी अपनी मतियों के अनुसार

विविध प्रकार के विशेषणों द्वारा वर्णन करते हैं वही प्रिया प्रीतम नित्य वृन्दावन में नित्य विहार विलसते हैं। आपकी विचित्र रूप माधुरी करोड़ों कामदेवों से भी सुन्दर हैं।

॥ अनुरागिनो कन्दर्प कामा मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

दरसनीय कैसोर मृदु, मूरति अति कमनीय।
आनन्दमय अहलाद जै. नित्य-सुधाम धनीय ॥

॥ पद ॥ ३५ ॥

जै-जै नित्यधाम धनीय।
स्याम-स्यामा सहज सुन्दर कामरति कमनीय ॥
दरसनीय किसोर मूरति महामोद सनीय।
श्रीहरिप्रिया आनन्दमय अहलाद जोरि वनीय ॥३५॥

श्रीप्रिया प्रीतम की जोरी दर्शन के योग्य कैशोर अवस्था वाली अति सुन्दर है ये दोनों आनन्द आह्लाद स्वरूप नित्य सुधाम अर्थात् वृन्दावन के धनी हैं श्रीश्यामा श्याम की स्वाभाविक सुन्दरता कामदेव और रति से भी कमनीय है। ये दोनों महामोद अर्थात सुरति केलि में आसक्त हैं।

श्याम श्यामा सहज सहज सुन्दर काम रति कमनीय। यथाः—

"काम बीजात्मकः कृष्णो रति बीजात्मिका राधा।
ताव वान्योन्य संश्लिष्टौ रसस्य परमावधिः ॥" (यु: त. रस मयूख)

श्रीकृष्ण काम बीज स्वरूप हैं, श्रीराधिका जी रति बीजात्मिका हैं इन दोनों का मिलन रस की परम अवधि कहलाती है।

आनन्दमय अहलादि जोरि वनीय।

आनन्दमय=यथाः—

"निर्दोष पूर्ण गुण विग्रह आत्म तन्त्रो निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्च हीनः।
आनन्द मात्र कर पाद मुखो दरादिः सर्वत्र च स्वगत भेद विवर्जितात्मा ॥
(लक्ष्मी तन्त्र)

श्रीकृष्ण का दिव्य मङ्गल विग्रह दोष रहित तथा सब गुणों का आकर, स्वतन्त्र,

प्रकृति शरीर के अचेतनादि गुणों से रहित है। इनके हस्त, चरण मुख उदरादि जितने अवयव हैं सब सच्चिदानन्द हैं। आपका श्रीविग्रह स्वगत भेद से भी रहित है।

पुनः यथाः—

"आनन्द मूर्तिमजहाददति दीर्घ तापम्।" (श्री. भा. १० स्क. ४८ अ. ७ श्लो.)

कुब्जा ने आनन्द मूर्ति श्रीकृष्ण को आलिङ्गन करके दीर्घ काल तक बढ़े हुए ताप को शान्त किया।

अह्लाद = यथाः—

"देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका पर देवता।
सर्व लक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लाद स्वरूपिणी॥
अतः सा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनो तु मनीषिभिः॥"(पद्म पुराण वृ. मा.)

हे विप्र! श्रीस्वामिनी राधिका जो देवी कृष्णमयी सर्व लक्ष्मी स्वरूपा हैं। यह श्रीकृष्ण की अह्लाद स्वरूपा हैं। इसलिये रसिक जन इनको आह्लादिनी कहते हैं।

॥ दोहा ॥

अङ्ग सङ्गनि ततपर सदा, टहल करें सब जाम।
सब सुख अवधि जहाँ बसे, अद्‌भुत स्यामा-स्याम॥

॥ पद ॥ ३६॥

सब सुख अवधि स्यामा-स्याम।
नित्यधाम निवास अद्‌भुत अहुनिसा अभिराम॥
महलनी निज टहल में ततपर सदा सब जाम।
श्रीहरिप्रिया अँग सङ्ग सेवा पुजवहीं मनकाम॥३६॥

ग्रन्थकार इस पद से 'अङ्ग सङ्गनी' सखियों का वर्णन करते हैं। ये सखियाँ वस्त्र आभूषण रूप से श्रीलाल ललना के दिव्य मङ्गल विग्रह में सदा निवास करती हैं। ग्रन्थ कार कहते हैं इन अङ्ग सङ्गनियों के बड़ भाग का हम क्या वर्णन करें इनका निवास स्थान श्यामा श्याम का वह अद्‌भुत श्रीविग्रह है जो सब सुख अवधि अर्थात् आनन्द अह्लाद मय है। वहाँ ये सखियाँ अहर्निश निवास करती हैं। ये महलनी अर्थात् अङ्ग सङ्गनी आठोंयाम आपकी निज टहल अर्थात् रहस्य क्रीड़ाओं में भी तत्पर रहती हैं और

रसिक दम्पति की परस्पर की अङ्ग सेवा रूपी सब मन अभिलाषाओं को पूर्ण कराती रहती हैं।

अङ्ग सङ्गनी सखियों का श्रीग्रन्थकार स्वयं अपने सिद्धान्त रत्नाञ्जली ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन करते हैं:—

"नित्य मुक्ताः द्विविधाः पार्षदा आनंतर्य्याश्च पार्षदा गरुडादयः आनंतर्य्यास्तु किरीट कुण्डल बंश्यादयः एतेषां तु पुनरीश्वरेच्छानुगुणित निजेछया विग्रहादि परिग्रहो।" (सिद्धान्त कुसमाञ्जली पुः ५३–५४)

॥ अनुरागिनी सुष्ठुसुन्दरी मध्याभास ॥

॥ दोहा ॥

सुनत गुनत सुख होत अति, मन पावत उपराम।
सहचरि जुगलकिसोर की, अङ्ग-सङ्गनि के नाम॥

॥ पद ॥ ३७॥

प्रथमहि जुगल चरन चित लाऊँ। जिहं बल सकल मनोरथ पाऊँ॥
निज उरके अभिलाख पुराऊँ। अङ्ग सङ्गनि जस बरनि सुनाऊँ॥
सुनाऊँ जस अङ्ग सङ्ग सहचरि चतुर्विधि संकीर्तनी।
प्रिया प्रीतम की सदा अंतरंगिनी समवर्तिनी॥
दम्पति रिझावें सहज सेवा सुरत उत्सव सजि सदा।
परम प्यारी काहु विधि करि न्यारी होति नहीं कदा॥
समरयंत्रिनी तिलक रूप धरि। बाल भाल पर रही रङ्ग भरि॥
हरि मन हरनी हार हिये परि। सदा विराजत कुचन बीच ररि॥
ररि कुचन बिचि रुचिर रोचनि श्रवन ताटंका बनी।
सिंगार छत्रनि सीसफूल स्वरूप ह्वै सिर पर तनी॥
गंजना उड मुक्तमंगा पंच सारनि पच सिरी।
मंडला मनि ह्वै हमेल सुरेलि रस हिय पर ढरी॥
चंद्रकांतिका सहचरि सरसी। ह्वै उरबसी सदा उर परसी॥
रुचिर सुमनिका पोति सुहाई। प्रभाकरा बेसरि छबि छाई॥

छाइ छबि महा मदन मंजरि पदिक रूप रसालिनी ।
संखचूडा सहचरी सीमंतमनि गुणजालिनी ॥
चटक रावा ह्वै सुकंकन केयुरामनि कबु'रा ।
वृन्द बलयावलि सु चूरी लसति बाहुन चित चुरा ॥
ह्वै करपत्र रत्न बंधाना । सेवति प्रिया सुकर सुख साना ॥
बिपछ मर्दनी मदसहचारी । होय मुद्रिका सोभित भारी ॥
भारी सोभित किंकिनी ह्वै कनक चित्रांगनि अली ।
गोपुरा नामनि सहेली ह्वै सुनूपुर पद-रली ॥
जेहरी ह्वै रही हरि अभिलाषिनी अनुचारिनी ।
श्रीसुसदनावति सखी बिछिया स्वरूप सुधारिनी ॥
जोतिप्रकासनि अनवट ओर्पति । भई पद पत्र अमित आभावति ॥
बसन रूप बेलावलि केली । इहिं प्रकार सेवति अलबेली ॥
बेलि अलि सेवति सदा अङ्ग सङ्ग सहचरि श्रीमती ।
सुनहु प्रीतम की जु अब अङ्ग-सङ्गनी जो रसरती ॥
भुवन मोहनि वंसिका ह्वै चतुर कंचन कंकना ।
रत्नमुख्या मुद्रिका कल झंकरा किंकनिझना ॥
हंस मदहि गंजन मनरंजनि । ह्वै मंजीर रहति पद कंजनि ॥
तडित प्रभावति ह्वै मणिमाला । निगम सुभावति बसन रसाला ॥
रसाल बसन सुनिगम सोभा हृदय मोदा सहचरी ।
चौकि ह्वै सेवति सदा पिय हियहिं अति आनन्दभरी ॥
रति सुरंगावलि सहेली करन कुण्डल बनि रही ।
रत्नपत्रावलि किरीट सुरागवल्लरि गुंजही ॥
इष्ट मोहनी अति ही सोंहनि । ह्वै छवि तिलक रही फबि भोंहनि ॥
अब सुनि अंतरङ्गा अङ्ग संगनि । समझि हियें धरि भरहु उमङ्गनि ॥
उमंगनि भरि धरहु हिय में प्रेम प्रणय पुरावली ।
सरसरागा सहचरी ह्वै प्रीति सेवति रसरली ॥

अमित उर उलहनि सुरुचि ह्वै चाह चारु अनंतिनी।
चिमतकारावलि सखी ह्वै चौंप हिय हुलसंतिनी ॥
सदा मोहनी मन छबि सोहैं। गुण रस मंजरि गिरा जु जोहैं ॥
सखी सुधा संचारनि हासा। सहज सनिग्धनि नेह निवासा ॥
निवासा नेह सनिग्धनी सुनि विनय नव वासावली।
ललित गुण सुन्दरी लाड़ उमङ्ग आनन्दावली ॥
सार सारावली सुख सनी मोद महा मातङ्गनी।
सदय सुन्दरि दृष्टि विमद विन्यासनी गति वर बनी ॥
अनङ्ग उदीपनि सहचरि जोई। अनतरूप बिबि सेवैं सोई ॥
रहसि रङ्ग आवलि रति रूपा। अङ्गद अम्भोज्वलि सुरस अनूपा ॥
अनूपा रस चित्र रागावलि जु सेवति रङ्ग ह्वै।
सत्य संकल्पा सखी जु स्वभाव बिहरति सङ्ग ह्वै ॥
सदाप्रियकर्तृनी सहचरि श्री सुजय उतकर्षिनी।
सुभ्र सोभावली सहचरि यस सदा रसवर्षिनी ॥
अब सुनि समवर्तनि सखि जोई। इहि प्रकार बिबि सेवैं सोई ॥
सरदेंदुका मुकर मन मोहैं। अनन्तरङ्गा सिंघासन सोहैं ॥
सोहैं अनंतरङ्गा सिंघासन चँवर मधु-मारुत अली।
छत्र ह्वै ऐश्वर्यपूर्ण सुगन्ध गन्ध मादावली ॥
सर्वतोभद्रनी सिज्या सुमन बल्लरि फूल ह्वै।
स्वतः संतोषणि स्मय ह्वै सेवहीं अनुकूल ह्वै ॥
निज सहचरि इच्छा अनुसारैं। बिबिध रूप धरि सङ्ग बिहारैं ॥
कहियें जो कछु पारहिं पावैं। यथासक्ति कहि भलौ मनावैं ॥
मनावैं भलौ कहि यथासक्तिहिं हार मानि न रह जियें।
कहत सुनत ही होत है उपकार यातें कह जयें ॥
जै-जै श्रीहरिप्रिया सहचरि सदा तत्पर टहल में।
नित्य राजत राज अविचल महा मोहन महल में ॥३७॥

अङ्ग सङ्गिनियों का विवेचन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं :—पृथक पृथक तुकों को व्याख्या इस प्रकार है ।

सुनत गुनत सुख होत अति मन पावत उपराम ।
सहचरि युगल किशोर की अङ्ग संगनि के नाम ।।
प्रथमहिं युगल चरन चित लाऊँ । जिहिं वल सकल मनोरथ पाऊँ ।।
निज उर के अभिलाष पुराऊँ अँग सङ्गनि यश वर्नि सुनाऊँ ।।

श्रीग्रन्थकार प्रार्थना करते हुए कहते हैं । कि इन युगल किशोर को अङ्ग सङ्गनियों के नामों को सुनने गुनने से अत्यन्त सुख होता है। मन को शान्ति प्राप्ति होती है । इसलिये पहले श्रीप्रिया प्रीतम के उन चरण कमलो में मैं चित्त लगाता हूँ जो कि सकल मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं । मेरी निज उरकी अभिलाषा—अङ्ग सङ्गिनियों के यश वर्णन करने की है कृपा करके उसे पूर्ण करें ।

सुनाऊँ यश अङ्ग सङ्ग सहचरि चतुर्विधि संकीर्त्तिनी ।
प्रिया प्रीतम की सदा अन्तरङ्गिनी समवर्तिनी ।।
दम्पति रिझावैं सहज सेवा सुरत उत्सव सजि सदा ।
परम प्यारी काहु विधि करि न्यारी होत नहीं कदा ।।

प्रिया प्रीतम की अङ्ग सङ्गनि सहचरी चार प्रकार की कही गई हैं । यथा:—

(१) श्रीप्रिया प्रीतम की अङ्ग सङ्गनि । (२) अन्तरङ्गनी । (३) समवर्त्तनी ।

(४) इच्छा स्वरूपा श्रीरङ्गदेवी आदि-ये चार प्रकार की सहचरियाँ रसिक दम्पति को सेवा उत्सव, सुरति तथा सहज सुख को सब लीलाओं में सज सज कर रिझाती रहती हैं । ये सब इनकी अत्यन्त प्यारी हैं । ये कभी भी किसी प्रकार भी आपसे न्यारी नहीं होती हैं ।

समर यंत्रिनी तिलक रूप धरि वाल भाल परि रही रङ्ग भरि ।

'समर यंत्रिनी' नामक अङ्ग सङ्गनि तिलक रूप से श्रीप्रिया जी के भाल पर रङ्ग अर्थात अनुराग में मैं परिपूर्ण होकर सुशोभित हैं । यथा:—

"तिलकं स्मरयन्त्राख्यं" (श्रीराधा कृष्ण गणोद्देश दीपिका)

प्रियाजी के तिलक का नाम स्मरयन्त्र है ।

हरि मन हरनी हार हिये परि । सदा विराजत कुचनि वीच ररि ।।

'हरि मन हरनी' नामक अङ्ग संगनी श्रीप्रियाजी के गले का हार होकर उनके वक्षस्थल पर ढरकती रहती है। यथा:—

"हारो हरिमनोहरः ।"   (श्री. रा. कृ. ग. दीपिका)

श्रीप्रिया जी के हार का नाम हरि मनोहर है।

रिरि कुचन बिच रुचिर रोचनि श्रवन ताटंका बनो।

'रुचिर रोचनि' अङ्ग सङ्गनि श्रीप्रिया जी के कानों के कुण्डल होकर विराजमान हैं। यथा:— "रोचनौ रत्न ताटङ्कौ।"   (श्रीरा. कृ. ग. दीपिका)

रत्न कुण्डलों का नाम रोचनि है।

श्रृंगार छत्रिनि शीश फूल स्वरूप ह्वै शिर पर तनी ।।

"श्रृङ्गार छत्रिनि" अङ्ग संगनि प्रिया जी के शीश फूल स्वरूप से उनके मस्तक पर छत्र सदृश तनी हुई सुशोभित है। यथा:—

"स्यमन्तकान्यपर्य्यायः शंख चूड़ शिरोमणिः ।
पुष्पवन्तौ क्षिपन् कान्त्या सौभाग्य मणिरुच्यते ।"   (श्री रा. कृ. ग. दी.)

शंख चूड़ के मस्तक की मणि जिसका दूसरा नाम स्यमन्तक मणि है जिसकी कान्ति सूर्य चन्द्रमा सदृश है वह प्रियाजी की सौभाग्य मणि कहलाती है।

श्रीग्रन्थकार दूसरे स्थान पर "श्रृंगार छत्रिनि" नामक सखी को "सौभाग्यमणि" नाम से भी वर्णन करते हैं। यथा:—

सुभग जराव जरयो अति सोहै ललित लाल छवि छाजी हो मनहुँ भागमनि भाल वालके बाहिर आनि विराजी हो।   (म. वा. उ. सु. होरी)

गंजना उड़मुक्त मंगा पंच सारिनि पचसिरी ।
मण्डला मनि ह्वै हमेल सुरेलि रस हिये पर ढरी ।।

"गंजना" अंग संगनि श्रीप्रियाजी के तारा सदृश मांग के मोती होकर, "पंच सारिनि" जो पचसिरी आभूषण और रसरेलि स्वरूपा "मण्डला मनि" श्रीप्रियाजी की हमेल आभूषण होकर हृदय कमल पर सुशोभित हैं।

चन्द्रकांतिका सहचरी सरसी; ह्वै उरबसी सदा उर परसी।

"चन्द्र कांतिका" अंग संगनि सहचरी श्रीप्रियाजी के उरबसी नामक आभूषण होकर उन के हृदय को सदैव स्पर्श करती रहती हैं।

रुचिर सु मनिका पोत सुहाई ।

'रुचिर सु मनिका' नामा अंग संगनी प्रियाजी का पोत आभूषण स्वरूप से सुशोभित है ।

प्रभा करा वेसरि छवि छाई ।

'प्रभा करा' अंग संगनी प्रिया जू की वेशर स्वरूप से सुशोभित हैं । यथा:—

"प्राणमुक्ता प्रभाकरी ।" (श्री. रा. कृ. ग. दे. दीपिका)

प्रियाजी की नासिका की वेशर का नाम 'प्रभाकरी' है ।

छाई छवि महा मदन मञ्जरि पदिक रूप रसालिनी ।

"महा मदन मञ्जरि" अंग संगनी श्रीप्रिया जी के पदिक आभूषण स्वरूप से सुशोभित होकर रस प्रदान करती हैं । यथा:—

"छन्न कृष्ण प्रतिच्छायं पदकं मदनाभिधम् । (श्री. रा. कृ. ग. दे. दीपिका)

पदक नाम 'मदन' है जो श्रीकृष्ण के प्रतिविम्ब से ढका रहता है ।

शंख चूड़ा सहचरी सीमन्त मनि गुन जालिनी ।

सब गुण समुदाय स्वरूपा 'शंख चूड़ा' अंग संगनी श्रीप्रिया जी की सीमन्त मणि स्वरूप से विराजमान है । यथा:—

"शंख चूड़ शिरोमणि: ।" (श्री. रा. कृ. ग. दे. दीपिका)

श्रीप्रिया जी की शिरोमणि का नाम 'शंख चूड़' है ।

चटक रावा ह्वै सु कङ्कन केयुरा मनि कर्वुरा ।

"चटक रावा' सुन्दर कंकण स्वरूप से तथा केयुरा" मणियों के बाजू बन्द स्वरूप से श्रीप्रियाजी के हस्त कमलों में सुशोभित हैं । यथा:—

"कटकाश्चटकाराबा: केयुरे मणि कर्व्वुरे ।।" (श्री. रा. कृ. ग. दे. दीपिका)

कङ्कणों का नाम 'चटकरावा' और वाजू वन्दों का 'मणि कर्व्वुरा' हैं ।

वृन्दवलयावलि सु चूरी लसति वाहुन चित चुरा ।

श्रीलाल जू के चित्त को चुराने वाली 'वृन्दवलयावलि' अङ्ग संगनी सुन्दर चूड़ी स्वरूप से श्रीप्रियाजी भुजाओं में सुशोभित हैं ।

ह्वै कर पत्र रतन वैधाना । सेवति प्रिया सुकर सुख साना ।

सुख में सनी हुई 'रतन वेधाना' अंग संगनी प्रियाजी के हथफूल स्वरूप से प्रियाजी के सुन्दर कर कमलों की सेवा करती हैं।

विपछ मर्दिनी मद सहचारी। होय मुद्रिका शोभित भारी ॥

'विपक्ष मद मर्दिनी' अंग संगनी श्रीप्रियाजी की मुद्रिका स्वरूप से अत्यन्त सुशोभित हैं। यथाः— 'मुद्रा नामाङ्किता नाम्ना विपक्ष मद मर्द्दिनी।' (श्री. रा. कृ. ग. दे. दीपिका)

प्रिया जी की अँगूठी का नाम 'विपक्ष मद मर्द्दिनी' है।

भारी शोभित किंकिनी ह्वै कनक चित्रांगिनि अली।

'कनक चित्रांगिनि' अंग संगनी श्रीप्रियाजी की कौंधनी होकर अत्यन्त सुशोभित हैं। यथाः— "काञ्ची काञ्चन चित्रांगी" (श्री रा. कृ. ग. दे. दी.)

प्रियाजी की कौंधनी का नाम 'कनक चित्रांगी' है। गो पुरा नामिनि सहेली ह्वै सु नूपुर पद रली।

'गो पुरा' नामक अंग संगनी श्रीप्रियाजू के नूपुर स्वरूप से चरणारविन्दों में सुशोभित हैं। यथाः— "नूपुरे रत्न गोपुरे।" (श्री रा. कृ. ग. दे. दी.)

नूपुरों का नाम 'गोपुरा' है।

जेहरी ह्वै रही हरि अभिलाषिनी अनुचारिनी।

'हरि अभिलाषिनी' अंग संगनी श्रीप्रियाजू की जेहरी स्वरूप से विराज मान हैं।

श्रीसुसदना वति सखी विछिया स्वरूप सु धारिनी।

'श्री सु सदना' अंग संगनी प्रियाजू के विछिया स्वरूप होकर सुन्दर प्रकार से उनके (चरण कमलों की अँगुलियों में) धारण हो रही हैं।

ज्योति प्रकाशिनि अनवट ओपति।

'ज्योति प्रकाशिति' अंग संगनी अनवट स्वरूप से सुशोभित है।

भई पदपत्र अमित आभावति।

'अमित आभावनि' अंग संगनी श्रीप्रियाजी के चरण कमलों के पद फूल होकर सुशोभित हैं। बसन रूप वेलावलि केली

'वेलावलि केलि' अंग संगनी श्रीप्रियाजू के नीलाम्बर स्वरूप से सुशोभित हैं। यथाः

"वासो मेघाम्बरं नाम" (श्री. रा. कृ. ग. दे. दी.)

श्रीप्रिया जी के वस्त्र का नाम मेघाम्बर है। मूल में 'वेलावलि केलि' वर्णित हैं। 'वेला' का अर्थ 'लहर' हैं अर्थात आपका वस्त्र मेघ की लहरों की केलि सदृश है।

इहि प्रकार सेवति अलवेली।

उपरोक्त प्रकार से अंग संगनी श्रीप्रियाजू के वस्त्र आभूषण स्वरूप से सेवा करती हैं।

वेलि अलि सेवति सदा अँग संग सहचरी श्रीमती।
सुनहु प्रियतम की जु अब अँग संगिनी जो रस रती॥

श्रीप्रिया जी की उपरोक्त वर्णित प्रकार से 'वेलावलि केलि' आदि अंगसंगनी विविध प्रकार के वस्त्र भूषण स्वरूप से सेवा करती हैं। अब श्री लालजू की उन अंग संगनीयों का जो रस में निमग्न हैं वर्णन किया जाता है।

भवन मोहनि वंशिका ह्वै चतुर चंकन कंकना।

'भवन मोहनि' अंग संगनि श्रीलालजू की वंशी और 'चतुर चंकन' कंकण स्वरूप से सुशोभित हैं। 'वंशी' समस्त भुवनों को मोहन करने वाली है। इसलिये इसका नाम 'भुवन मोहनि' है। यथा:—

"वंशी भुवन मोहनी" (श्री. रा. कृ. ग. दी.)

"बंशी का नाम भुवन मोहनी है।'

चतुर चंकन। यथा:— "चङ्कने नाम कङ्कणे" (श्री. रा. कृ. ग. दी)

श्रीलालजू के कंकण का नाम 'चंकन' है।

रतन मुख्या मुद्रिका कल झंकरा किंकिनिझना।

श्रीलाल जू की 'रतन मुख्या' अंगसंगनी मुद्रिका स्वरूप से तथा 'कलझङ्कारा' कौधनी स्वरूप से सुशोभित है। यथा:—

"मुद्रा रतन मुखी।" "किङ्कणी कलझङ्कारा।" (श्री रा. कृ. ग. दी)

श्रीलालजू की मुद्रिका का नाम 'रत्न मुखी' तथा कौंधनी का नाम 'कलझङ्कारा' है।

हंस मर्दहि गंजनि मन रंजनि,
ह्वै मंजीर रहति पद कंजनि॥

'हंस मद गंजनि' नामक अंगसंगनी लालजू के चरणारविन्दों की मञ्जीर होकर प्रियाजी के मन को रंजन करती है।

यथाः—"मञ्जीरौ हंस गञ्जनौ" (श्री. रा. कृ. ग. दी)

मञ्जीरों (चरणों के आभूषनों) का नाम 'हंस गंजन' है।

तड़ित प्रभावति ह्वै मनि माला। निगम सुभावति वसन रसाला॥

श्रीप्रीतम की 'तड़ित् प्रभावति' अंग संगनी मणिमाला स्वरूप से तथा 'निगम सुभावति' सुन्दर वस्त्र स्वरूप से सुशोभित हैं। यथाः—

"मणिमाला तड़ित्प्रभा।" "पीतं वासो निगम शोभनम्॥" श्री रा. कृ. ग. दी.)

श्रीलालजी की मणिमाला का नाम "तड़ित् प्रभा" तथा पीताम्बर का नाम 'निगम शोभा' है।

रसाल वसन सु निगम शोभा हृदय मोदा सहचरी।
चौकी ह्वै सेवति सदा पिय हियहि अति आनँद भरी॥

आँनन्द से भरी हुई 'हृदय मोदा' अंगसंगनी श्रीलालजी के हृदय पर रहने वाली चौकी आभूषण स्वरूप से सेवा करती है। यथाः—

"रुद्ध राधाप्रति कृतिनिष्को हृदय मोदनः।" (श्री०रा०कृ०ग०दे०दी०)

श्रीराधिका जी के प्रतिबिम्ब से युक्त श्रीलालजी की 'चौकी' का नाम 'हृदय मोदा' है।

रति सुरंगा वलि सहेली कर्न कुण्डल वनि रही।

"रति" तथा "सुरंगावलि" ये दोनों अंग संगनी लालजी के दोनों कुण्डल स्वरूप से सुशोभित हैं। यथाः—

"कुण्डले मकराकारे रति रागाधि दैवते।" (श्री०रा०कृ०ग०दे०दी०)

"रति अधिदेव' और 'रागाधि देव' नाम के लालजू के दो मकराकृत कुण्डल हैं।

रतन पत्रावलि किरीट सुराग वल्लरि गुञ्जही।

श्रीलाल जू की 'रत्नपत्रावलि" अंग संगनी किरीट स्वरूप से तथा 'सुराग वल्लरी' गुञ्ज माल स्वरूप से सुशोभित हैं।

यथाः—"किरीट रत्न पाराख्यं।" "राग वल्ली तु गुञ्जाली।"(श्री रा०कृ०ग०दे०दी)

श्रीप्रीतम के किरीट का नाम"रत्न पारा" तथा गुञ्जमाल का नाम 'रागावल्ली' है।

इष्ट मोहनि अतिहि सोहनि ह्वै छबि तिलक रही फवि भौंहनि॥

अति सुन्दर "इष्ट मोहनि" अंग संगनी लालजू की भौंहनि की छवि स्वरूप

तिलक स्थानापन्न होकर सुशोभित है। कहीं कहीं "दृष्टि मोहनि" पाठ है। वहाँ श्री स्वामिनी जी की दृष्टि को मोहन करने वाला लालजू का तिलक है। यह अर्थ करना चाहिये। यथा:— "तिलकं दृष्टि मोहनम्" (श्री०रा०कृ०ग०दी०)

श्रीलालजी के तिलक का नाम दृष्टि मोहन है।

अव जु अन्तरंगा अँग संगनी समझि हिये धरि भरे हु उमंगनि ।।

श्रीग्रन्थकार कहते हैं अब तीसरी प्रकार की अन्तरंगा अंग संगनीयों का विवेचन किया जाता है। साधक गण उमंग से भरकर अपने अपने हृदयों में समझ कर धारण करें। उमंगनि भरि धरहु हिय में प्रेम प्रनय पुरावली।

"प्रनय पुरावली' नामक अन्त रंगा अंग संगनी श्रीप्रिया प्रीतम के परस्पर प्रेम स्वरूप से दोनों के हृदयों में विराजमान है। प्रेम के लक्षण। यथा:—

"सम्यङ्मसृणित स्वान्तो ममत्वाति शयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ।। (भक्ति रसामृतसिन्धु)

भाव की उस गाढ़ अवस्था को विद्वान लोग प्रेम कहते हैं कि जिसमें चित्त पूर्ण रूप से पिघल जाता है। और परस्पर अतिशय ममता हो जाती है।

सरस रागा सहचरी ह्वै प्रीति सेवति रस रली ।।

'सरस रागा' अन्तरंगा अंग संगनी लाल ललना के रस में आविष्ट होकर दोनों की "प्रीति" स्वरूप से सेवा करती हैं।

अमित उर उलहनी रुचि ह्वै चाव चारु अनन्तनी।

"अमित उर उलहनी" अन्तरंगा अंग संगनी 'रुचि' स्वरूप से तथा "चारु अनन्तनी" 'चाव' स्वरूप से प्रीया प्रीतम की सेवा करती हैं।

चमत्कारा वलि सखी ह्वै चौंप हिय हुलसन्तिनी।

'चमत्कारावलि' नामक अन्तरंगा अंग संगनी 'चौंप' होकर दोनों के हृदयों को उल्लास प्राप्त कराती हैं। चौंप। यथा:—

सदा मोहनी मन छवि सोहै गुन रस मञ्जरि गिरा जु जोहै।

'सदा मोहनी' अन्तरंगा अंग संगनी प्रीया प्रीतम के मन की 'छबि' स्वरूपा तथा "गुन रस मञ्जरि" 'गिरा' स्वरूप से हैं।

गिरा। यथाः—

सखी सुधा संचारिनि हासा। सहज स निग्धनि नेह निवासा।।

"सुधा संचारिनि" नामा अन्तरंगनी अंग संगनी प्रिया प्रीतम के हास्य स्वरूप से और 'सहज–सनिग्धनि' नेह स्वरूप से सुशोभित हैं।

नेह अर्थात् स्नेह। यथाः—

निवासा नेह सनिग्धनी सुनि विनय नव वासावली।

"नव वासावली" अन्तरंगा अंग संगनी श्रीलाल ललना के विनय स्वरूपा हैं।

विनय। यथाः— ललित गुन सुन्दरी लाड़ उमंग आनन्दावली।

"ललित गुन सुन्दरी" नामा अन्तरंगा अंग सङ्गनी श्रीप्रिया प्रीयतम के 'लाड़' स्वरूप से तथा "आनन्दावलि" 'उमंग' स्वरूप से सुशोभित हैं।

उमंग। यथाः— सार सारावली सुख सनि मोद महा मत्तंगिनी।

"सार सारावली" नाम अन्तरंगनी अंग संगनी प्रिया प्रीतम के 'सुख' स्वरूपा तथा 'महा मत्तंगनी' 'मोद' स्वरूपा हैं।

मोद। यथाः— सदय सुन्दरि दृष्टि विमद विन्यासिनी गति वर वनी।

"सदय सुन्दरि" अन्तरंगा अंग संगनी 'दृष्टि' स्वरूपा तथा 'विमद विन्यासिनी' प्रिया प्रीतम की श्रेष्ठ गति स्वरूपा है।

अनँग उदीपनि सहचरि जोई अतन रूप विवि सेवै सोई।

"अनँग उद्दीपनि" अन्तरंगा अङ्ग सङ्गनि 'काम' और 'रति' रूप से दोनों की सेवा करती हैं।

रहसि रङ्ग आवलि रति रूपा। अगद अम्भोज्वलि सु रस अनूपा।

"रहसि रङ्ग आवलि" अन्तरङ्गा अङ्गसङ्गनि सुरति केलि रूप से 'अगद' अम्भोज्वलि' अनूप केलि उत्थित सुन्दर रस स्वरूप से दोनों की सेवा करती हैं।

अनूपा रस चित्र रागावलि जु सेवति रङ्ग ह्वै।

'चित्र रागा वली' नामक अन्तरङ्गा अङ्ग सङ्गनी प्रिया प्रीतम की 'रङ्ग' स्वरूप से सेवा करती हैं।

सत्य संकल्पा सखी जु स्वभाव विहरति सङ्ग ह्वै :

'सत्य सङ्कल्पा' अन्तरङ्गा अङ्ग सङ्गनी प्रिया प्रीतम के 'स्वभाव' स्वरूप से सङ्ग होकर विचरती हैं।

सदा प्रिय कत्रिनी सहचरि श्रीसुजय उत्कर्षिनी।

'सदा प्रिय कत्रिनी' नामा अन्तरङ्गा अङ्ग सङ्गनी प्रिया प्रीतम का उत्कर्ष करने वाली 'श्रीसुजय' स्वरूपा हैं।

शुभ्र शोभावली सहचरी यश सदारस वर्षिनी।

"शुभ्र शोभावली" नामा अन्तरङ्गा अङ्ग सङ्गनी प्रीया प्रीतम के रस को सदा वर्षाती हुई उनके 'यश' स्वरूप से सुशोभित है।

अव सुनि समवर्त्तिनि सखि जोई। इहि प्रकार विवि सेवैं सोई॥

अब श्रीग्रन्थकार चतुर्थ प्रकार की समवर्त्तिनी नामा सखियों का वर्णन करते हुए कहते हैं। ये सखियाँ रसिक दम्पति की इस प्रकार सेवा करती हैं।

शरदेन्दुका मुकर मन मोहैं अनङ्ग तरङ्गा सिघासन सोहैं॥
सोहै अनंग् तरंगा सिंघासन चँवर मधु मारुत अली।

"शरदेन्दुका" समवर्त्तिनी अङ्ग सङ्गनी 'दर्पण' स्वरूप से दोनों प्रिया प्रीतम के मन को मोहती है। 'अनङ्ग तरङ्गा' सिंघासन स्वरूप से सुशोभित है। तथा 'मधु मारुत अली' चँवर स्वरूप से आपकी सेवा करती हैं। यथाः—

"शरदिन्दुस्तु मुकुरो व्यजनं मधु मारुतम्।" (श्री रा. कृ. ग. दी.)

प्रिया प्रीतम के दर्पण का नाम 'शरदेन्दु' तथा 'चँवर' का नाम "मधु मारुत" है।

छत्र ह्वै ऐश्वर्य्य पूरनि सुगन्ध गन्ध मादा वली।

'ऐश्वर्य्य पूरनि' नामा समवर्त्तिनी अङ्ग सङ्गनी छत्र स्वरूप से और 'गन्ध मादा वली' सुगन्ध अर्थात् इत्र, चन्दन, धूप आदि सुगन्धित पदार्थों स्वरूप से दम्पति को सेवा करती हैं। यथाः—

"चन्द्र कोटि प्रतीकाशं छत्रकं च स चामरम्।" (अनन्त संहिता)

आपका छत्र और चँवर करोड़ों चन्द्रमाओं से भी अधिक प्रकाशमान है।

सर्व तो भद्रिनी शय्या सुमन वल्लरि फूल है।

"सवतो भद्रिनी" नामा सम वर्त्तिनी अङ्ग सङ्गनी प्रिया-प्रीतम की शय्या स्वरूप

मे और 'सुमन वल्लरी' फूल होकर आपकी सेवा करती हैं।

स्वतः संतोष निस्मय ह्वै सेवही अनुकूल ह्वै।

"स्वतः संतोषनि" नामा समवर्त्तिनी अङ्ग सङ्गनी श्रीप्रिया प्रीतम के अनूकूल होकर 'समय' रूप से आपकी सेवा करती हैं। अर्थात् बसन्त, शरद् आदि जैसे समय में रसिक दम्पति को क्रीड़ा करने की इच्छा होती है उसी समय को प्रकट करके उन दोनों की सेवा समाधान करती है।

निज सहचरि इच्छा अनुसारैं विविध रूप धरि सङ्ग विहारैं॥

उपरोक्त प्रकार से श्रीप्रिया प्रीतम की इच्छा के अनुसार अङ्गसङ्गनी विविध प्रकार के रूप धारण करके आपकी सेवा समाधान करती हुई आपके साथ बिहार करती रहती हैं।

कहियै जो कछु पारहि पावै यथा शक्ति कहि भलौ मनावै।
मनावैं भलौ कहि यथा शक्तिहि हार मानि न रह जियें।
कहत सुनत ही होत है उपकार यातें कह जियें॥

अंग सङ्गनी सखियाँ अनन्त रूप धारण करके रसिक दम्पति की सेवा करती हैं। इसीलिये इनका पार नहीं पा सकते हैं। तो भी यथा शक्ति कहकर भला मनाते हैं क्योंकि हार मानकर चुप नहीं रहना जाहिये। कहने सुनने से उपकार होता है इसी लिये कहने का साहस कर रहे हैं।

जय जय श्री 'हरिप्रिया' सहचरि सदा तत्पर टहल में।
नित्य राजत राज अविचल महा मोहन महल में॥

जिन श्रीप्रिया प्रीतम का मोहन महल में नित्य अविचल राज है उनकी सेवा में जो सखियाँ सदा तत्पर रहती हैं उनकी जय हो इस प्रकार सखियों की जै जै कार करते हुए ग्रन्थकार प्रस्तुत विषय को समाप्त करते हैं।

॥ दोहा ॥

महावाणी रस-रतन कौ, भर्यौ गहर द्दढ गेह।
ताके ताले खुलन कौ, कहूँ तालिका एह॥

॥ पद ॥३८॥

महावाणी रस-रतन सालिका। कहूँ जु याकी एह तालिका॥

तन अवनी सरिता सिंगार । चरन कदम्ब कहावत चार ॥
कही केतकी पिंडुरी रूप । कदली जंघा जानि अनूप ॥
मंडल जघन सुकटि तटि कहिये । मध्य देस पुनि संज्ञा लहिये ॥
नाभि सरोवर गहर गम्भीर । भर्यौ सुधा नव–निर्मल नीर ॥
चल दल उदर अनूपम ओभा । श्रीफल कोक कलस कुच सोभा ॥
हृदय कमल मुख कमल सुहाये । कर पद नैन कमल मनभाये ॥
औरहु कमल भेद बहु बिधि के । भरे सुरङ्ग समर रिधि सिधि के ॥
जहाँ-जहाँ जैसो लगै सम्बन्ध । तहाँ-तहाँ तैसो समझि प्रबन्ध ॥
खंज मीन अलि मृग-दृग कहिये । चंप बरन पुनि नासा लहिये ॥
पुनि मुख की ससि संज्ञा मानहु । अधर बिम्ब रद कुन्दहि जानहु ॥
भरे तम्बोल रङ्ग रद जोई । मञ्जुल-मनि सु कहावत सोई ॥
पुनि अनार की उपमा पावें । अब आगे सुनि और बतावें ॥
मधुक सुमन संज्ञा कपोल की । कोकिल कलरव कही बोल की ॥
चिबुक रसाल कुब्ज छबि पावें । गहवर कुञ्ज सुहियो कहावें ॥
कम्बु कपोत कंठ गुन डोरी । कदलीपत्र पीठि रस बोरी ॥
मौलसिरी सो भालहि जानों । रायबेलि सोई रुचि मानों ॥
चारु पदाग्र चमेली कही । जोहनि जुही मानिये सही ॥
सदा सुहाग सेवती स्यामा । याही तें पियवासौ नामा ॥
आलिङ्गन चुम्बन जो वही मल्लि मालती संज्ञा लही ॥
करना भरना अङ्क कहावें । उरज अग्र जम्बू–मन भावें ॥
पाण्डर परनि विनय जा चंज्ञा । पारिजात परिरंभन संज्ञा ॥
नाना बरन उचारन जोई । कही निवारि नवेली सोई ॥
कोमल चित्त जुगल कौ जोहें । महामृदुल–रसमहल सु सोहें ॥
जाचित में जो अति अभिलास । सोई कहिये सरद निवास ॥
त्रिबिध पवन मनरवन महाई । सो समुझो स्वासा-सुखदाई ॥
अंग-अंग उदै होय जो काम । रतनजोति जाही को नाम ॥

निज तन सुभग रतनमनि कहिये। कमल निकुंज कमल हू लहिये ॥
रतिपति-भवनहु कहिये जाही। और भेद बहु भाँति जू ताही ॥
महली जन मुखतें सुनि पइयें। सो-सो सब हियरें धरि लइयें ॥
मन केवर केसरि रति रङ्ग। सुबरन हूँ जो जहाँ प्रसङ्ग ॥
बिबिध वृक्ष अङ्ग-अङ्ग कहावें। छबि की लता लपटि छबि पावें ॥
और तरु लता अमित अपार। अङ्ग सङ्ग में सबको अधिकार ॥
मर्कत मनि कंचन घन दामिनि। सो पिय प्यारी तन संज्ञा गनि ॥
तथा तमाल कनक की बेली। रति अनङ्ग रस रङ्ग सहेली ॥
आनंद अहलादनि पिय-प्यारी। सुरति सोई सुन्दरि सहचारी ॥
सुभग भूमि मग में अनुसरहीं। तिहि अङ्ग की पग संज्ञा धरहीं ॥
निकट नितंबन के निज डौरि। कहियें ताहि सांकरी खौरि ॥
ठौर–ठौर निर्मल जलआसैं। सो अङ्ग-अङ्ग प्रति पानिप भासैं ॥
मुख ही करि पावत रस रेली। ताहि सोहिलो कहत सहेली ॥
जामधि सौरभ सकल लसन्त। ताकी संज्ञा कही बसंत ॥
जोवन मौर वेग जव नाम। रितु बसन्त बिलसें बर बाम ॥
साखि जवादि कुमकुमा जोई। ततसुख सुख सुरङ्ग सुनि सोई ॥
घनबिहार सोई घनसार। जिहि सुख माचैं मार अपार ॥
मदन रङ्ग मद मृगमद जोहें। जखि कर्दम सौभग रस सोहें ॥
अतर अरगजा और अगरसत। उमङ्ग उलास अनङ्ग रङ्ग बरसत ॥
कुटिल कटाछि छुटत पिचकारी। भरी रहसि रङ्गन सों भारी ॥
बिबिध भाँति के बाजे बाजें। अङ्ग-अङ्ग भूषन सुर साजें ॥
लसनि हसनि में द्विज दुति जोई। अबीर गुलाल कही हैं सोई ॥
अति चित चाव सोई चोवा सुनि। सुख संगम सोधौं गुनिये पुनि ॥
कर पद बर अंसन पर ढाल। सोई कही कमल की माल ॥
बीरी कल कपोल रस चाखें। ताही की यह संज्ञा भाखें ॥
अधर राग बन्दन छबि पावें। सुमन सनेह फुलेल कहावें ॥

रोरी तिलक अछित मुकतन के। जानि सुलगनि मनोरथ मन के ॥
भाल कह्यौ तन लाल बालकौ। सब सुख दायक सखिन जालकौ ॥
सुखदासन सौं कहिये बेंदी। जानत हैं जिय में जो भेदी ॥
खेलत में चंचलता जोई। चाचरि नाम कहावें सोई ॥
झूंमि-झूंमि अलि झूम करावें। सोई झूमक नाम कहावें ॥
रहसि-रङ्ग रति-रस में सानें। सोई कहिये बसन सहानें ॥
अङ्ग-अङ्ग प्रति सीवां सोई। थल अरु बिथल जानिये जोई ॥
पग रोपन सोई बंस बसन पन। जीति निसान बजेंबौ जय रन ॥
रङ्ग भरें मुख सों मुख चूमें। बूका बरन कह्यौ है जू में ॥
सम्बोधन दे बरनत जोरी। ताकी संज्ञा कहियत होरी ॥
फूल-फूल मिलि बिहरें जोर। जाहि कहत हैं फूल हिंडोर ॥
जिहि सुख तें सीतलता लहें। चन्दन सिंगारहि तिंहि कहें ॥
सुरत समुद्र न्हवावति जोई। जल-बिहार कहवावति सोई ॥
मञ्जु-मनोरथ में पधरावें। सो रथ आरोहन जु कहावें ॥
बहु-रस बरसें लहरि लड़ावें। सो वर्षा-रितु नाम कहावें ॥
फूल गुलाबी जो यह कह्यौ। सो समुझो प्रीतम डहडह्यौ ॥
मिलि सब तीय जुगल सनमानें। सोई पहली तीज बखानें ॥
चरन खम्भ डाण्डी कर चार। सुरत रङ्ग हिण्डोर–बिहार ॥
सावन श्रावन सुकल सुहावन। एकादसी कही सो पावन ॥
जिहिं सुख में बहु गुन बिसतार। पिय–प्यारी करि राखें हार ॥
रंग्यौ महारस में है जोई। कह्यौ पवित्रा पचरङ्ग सोई ॥
फोंदा जरी कह्यौ है चोज। जा करि ओपें उर अम्भोज ॥
रति-बिहार राखें विरमाय। सोई राखी नाम कहाय ॥
जिहिं सुख करि पुरवें मनकाम। सोई सलून्यों पून्यों नाम ॥
बिन ब्रीडा क्रीड़ावें तीजे। तीज पाछिली सो सुनि लीजे ॥
मिलि सब सखी जनन गुन गावें। रिझ-रिझ रीझ परसपर पावें ॥

बिपुल पुलक अङ्ग अङ्ग न माई। तिहिं कहियतु हैं रहसि बधाई॥
घुरि-घुरि अनङ्ग रङ्ग बरसावें। बरसि गांठि सोई दरसावें॥
भर बरसें सरसें सब मही। भादों कृष्ण रोहनी कही॥
बढ़ि-बढ़ि बीच विवसता पावें। सोई अर्ध-निसा जु कहावें॥
ताहू में जो अति रति भासै। सो सुकला अरुनोदय आसै॥
सब रस दै राखत पिय-मान। तासों कहियतु है रस-दान॥
कुसुमनि करि करि क्रीडत सांझ। सो सांझी समुझौ मन मांझ॥
कन्द्रप कोटि विजय बिबि करहीं। दसमी विजय ताहि उच्चरहीं॥
सुभग भूमि मण्डल पर बास। ताहि जु कहिये रति-रस रास॥
प्रथम समागम रङ्ग रमावें। सो बिहार बिधि व्याह कहावें॥
अमित कला बिहरें पिय-प्यारी। तासों कहिये निसा-दिवारी॥
क्रीड़ा करत सकुच जो होई। कही केंलि की कुन्दी सोई॥
सुभरव भैरव राग उचार। दिविगन्धा है देव गन्धार॥
रत्नकला सो रामकली पुनि। ललितानना ललित रागनि गुनि॥
विस्वाभा विभास कहिये कल। अरु विलास आवलि जु विलावल॥
आनन्दा आसावरि जानहु। सुरङ्ग अङ्ग सारङ्गहि मानहु॥
गौरमुखी गौरी को जान। केलिकौमुदी कहि कल्यान॥
कर्नकांतिका सो कान्हरौ। और कहूँ जो उर में धरौ॥
अलबेलि केलि अडानो कहिये। विचित्र सोभा बिहागरौ लहिये॥
कंद्रपकामा कहि केदारौ। खंजनाक्षि खंभायचि धारौ॥
सुष्टिसुन्दरी सोरठ सोई। बैजयन्ति बसन्त है जोई॥
किसोर सुन्दरी काफी सोहें। धनिभागा जु धनासिरी जोहें॥
जयति सोभना जयति सिरी पुनि। आनन्द-सिन्धुन आसासिंधुनि॥
चित्रमुखी सो गौरी चैती। मुक्त-माल मलार समझैती॥
सुरङ्ग-माल सारङ्ग मलार। लहरि मालहू यह उरधार॥
माला लहरि सु लूहरिवाक। अर्क बिन्दु कहिये ऐराक॥

टहल तत्परा टोडी जानों। मार मोहनी मारू मानों॥
प्रनय प्रचुर पूरब पहिचानि। परम प्रवर परजहिं पुनि मानि॥
तुङ्गविद्या के जूथ-मंझारी। ये सब अनुरागनी उचारी॥
अरुन रङ्ग अनुरागहि जानो। स्याम रङ्ग सिंगारहि मानों॥
कह्यौ प्रेम को पीत जु रङ्ग। समझो जैसो जहाँ प्रसंग॥
और अनन्त भेद बहु—भाव। जिनकौ जानों कृपा उपाव॥
श्रीहरिप्रिया रहसि रस गाथ। जब पावें तब आवें हाथ॥३८॥

अब सब तुकों का पृथक पृथक अर्थ करते हैं।

महावानी रस रतन को भरयौ गहर दृढ़ गेह।
ताके ताले खुलन की कहौं तालिका एह॥
महावानी रस रतन सालिका। कहौं जु ताकी एह तालिका॥

यह महाबाणी रस रूपी रत्नों से भरा हुआ दृढ़ घर है उसके खुलने की यह तालिका कहता हूँ अर्थात् श्रीमहाबाणी ग्रन्थ के शब्द श्लेशालङ्कारों से अलंकृत हैं उनके अर्थों का ज्ञान कराने के लिये यह तालिका रूपी कोष कहता हूँ।

तन अवनी सरिता शृङ्गार। चरन कदम्ब कहावत चार॥

जहाँ 'अवनी' वर्णन की गई है उसका अर्थ श्रीप्रिया जी का दिव्य मङ्गल विग्रह समझना चाहिये। जहाँ सरिता अर्थात जमुना जी वर्णन की गई हैं उसका अर्थ शृङ्गार रस तथा जहाँ कदम्ब वर्णित है उसका अर्थ प्रियाजी के चरण कमल समझने चाहिये।

यथा:— तन अवनी=यथा:—

"दिव्य कनक मय अवनि अखण्डित।
मृदु मनि मण्डित मयी मनोज।" (म. बा. सि. सु.)

सरिता शृङ्गार=यथा:—

"वहति विमल कल केलि रूपनी। श्रीयमुना कमना चहुँ कोद॥" (म.वा.सि.सु)

चरण कदम्ब=यथा:—

"अम्ब कदम्ब जम्बु निम्बू श्री-फल चल दल कदली कमनीय॥" (म०बा०सि०सु)

यहाँ कदम्ब चरण का वाची है।

कही केतकी पिंडुरी रूप। कदली जंघा जानि अनूप ॥२॥

'केतकी' से श्रीप्रियाजी की पिंडुरी तथा 'कदली' से अनूप जंघा जाननी चाहिये। यथा:—केतकी=यथा:—

"कुरवक कुब्ज केतकी केवड़ पारिजात रोचक रमनीय।" (म०बा०सि०सु०)

यहाँ 'केतकी' पिंडुरी का वाची है।

कदली=यथा:—

"अम्ब कदम्ब जम्बु निम्बू श्री-फल चल दल कदली कमनीय।" (म०बा०सि०सु०)

यहाँ कदली जंघा का वाची है।

मण्डल जघन सु कटि तट कहिये मध्य देश पुनि संज्ञा लहिये ॥३॥

जंघाओं के कटि पश्चात् भाग को कहीं 'मण्डल' शब्द से और कहीं 'मध्य देश' वर्णित किया गया है।

मण्डल=यथा:—

"मण्डल महल मनोहर मोहन। जँह विलसत बिबि केलि अभङ्ग।"

मध्य देश=यथा:—

"मध्यदेश के वेश को नवरंगी लाला।
बंधन भयो विमोच। रगमगे ए री ए नवरंगी लाला" (उ०सु०डोल)

नाभि सरोवर गहर गँभीर। भरचो सुधा नव निर्मल नीर ॥४॥

गहर गँभीर 'सरोवर' से प्रिया जी की नाभि ग्रहण करें नव निर्मल से 'सुधा' अर्थात् नाभी की सौन्दर्यता लेनी चाहिये।

नाभि सरोवर=यथा:—

"मधुर सरोवर रस भरचो अमल कमल जहाँ रहे रस 'झूम' (म०बा०उ०सु०)

इस तुक में 'सरोवर' से नाभि तथा 'रस'से सुधा नव निर्मल नीर समझना चाहिये।

चल दल उदर अनूपम ओभा। श्री फल कोक कलश कुच शोभा ॥५॥

"चल दल" से अनुपम कान्ति वाला उदर तथा 'श्रीफल' तथा 'कोक कलश से वक्षोजों की शोभा समझें। यथा:—

'चल दल'–'श्रीफल'=यथा:—

"अम्ब कदम्ब जम्बु निम्बू श्री-फल चल दल कदली कमनीय ।।" (म. वा. सि. सु)

यहाँ 'श्रीफल' वक्षोजों का तथा 'चल दल' उदर का वाची है ।

कोक कलश=यथा:—

"चरन कमल की अरुनता कमलन कुमुँद रँगाय ।
कहैं मधुक केतकि कमल कलस निवास वसाय ।"

हृदय कमल मुख कमल सुहाये । कर पद नैंन कमल मन भाये ।।६।।
औरहु कमल भेद वहु विधि के । भरे सुरङ्ग समर ऋधि सिधि के ।।७।।
जहाँ जहाँ जैसौ लगै समन्ध । तहाँ तहाँ तैसौ समझि प्रबन्ध ।।८।।

श्रीप्रियाजी के दिव्य मङ्गल विग्रह में हृदय कमल, मुख कमल, कर कमल, पद कमल तथा नयन कमल इत्यादि सुरति केलि सम्बन्धी ऋद्धि सिद्धि से भरे हुए विविध प्रकार के रङ्ग विरङ्गे 'कमल' हैं । जिन जिन कमलों का जहाँ जहाँ जो सम्बन्ध सुशोभित हो वहाँ वहाँ उसी प्रकार का अर्थ समझना चाहिये । यथा:—

"ठौर ठौर निरमल जल आशय मध्य कमल फूले वहु रङ्ग ।

पुन यथा:—

"अरुण, पीत, सित, असित, अमित
रिधि जा मधि फूले बहु विधि फूल ।" (म. वा. सि. सु.)

खञ्जन, मीन, अलि, मृग दृग कहिये । चम्प वर्न पुनि नासा लहिये ।।९।।

खञ्जन, मीन, भ्रमर, मृग से नेत्र कमल तथा चम्प वर्न से नासा ग्रहण करें यथा:—

खञ्जन, मीन, अलि मृग=यथा:—

"खग, मृग, नग लख दृगन भये अग
पग भरि करि न सकत सञ्चार ।" (म. वा. सि. सु.)

"खग मृग तन वन क्रीड़हों अप-
अपने मिलि सहज स्वभाव ।" (म. वा. उ. सु. होरी)

सौंदर्यताय सौरभ सुभाय रहे अलि आलिन लोचन लुभाय ।। (उ. सु. वसन्त २)

चम्पवर्न=यथा:—

"महि महि चारु चँवेली चन्दन । चम्पक वकुल वर्न वर वेष ।" (म. वा. सि. सु)

यहाँ चम्पक शब्द से नासिका ग्रहण की है ।

पुनि मुख की शशि संज्ञा मानँहु । अधर विम्ब रद कुन्दहि जानहु ॥१०॥

शशि से मुख, विम्ब से अधर तथा कुन्द से दन्तावलि समझना चाहिये । यथाः-

शशि=यथाः— "नव पल्लव रस सरस शशी की,
लसी वसी योवन वनयाचि ।" (म. वा. सि. सु)

विम्ब=यथाः— "अधरन बिम्बे अँचवत अम्बे लागि नितम्बे ।" (उ. सु. होरी)

कुन्द=यथाः--

'इततें कुन्द कली चली मधुक सुमन सों करन कलोल। (म. वा. उ. सु. होरी)

"बिम्बनि विम्ब विहारहीं ।' (उ. सु. डोल)

भरे तँवोल रङ्ग रद जोई मञ्जुल मनि सु कहावत सोई ॥११॥

पुनि अनार की उपमा पावें अब आगें सुनि और वतावें ॥१२॥

पान के रङ्ग रे रंजित दन्तावलि को कही 'मञ्जुल मणि, से कहीं 'अनार' से वर्णित किया गया है ।

मञ्जुल मणि=यथा--

"मंजुल मनि रसमय रचेंरी सीस सुमनको आंक । (उ. सु. सहेली)

अनार=यथाः--

सन्ध्या समय सङ्ग अँग सङ्गिनि मिथुन मनोहर मन्मथ मार ।
चंपक मधुक केवरा केतकि कदलि कदम्बनि अम्ब अनार ॥" (सु.सु.)

मधुक सुमन संज्ञा कपोल की कोकिल कलरव कही बोल की ॥१३॥

'मधुक सुमन" कपोल की तथा 'कोकिल कलरव' बोल (वाणी) की संज्ञा हैं ।

यथाः-- मधुक सुमन=यथाः-

"इततें कुन्द कली चली मधुक सुमन सों करन किलौल।" [म.वा. उ.सु. होरी]

यहाँ 'मधुक सुमन' कपोल का वाची है ।

कोकिल कलरव=यथाः—

"आज कल कोकिल बोलें हैं कल कोकिल वोलें हैं ।" [उ. सु. लूहरी]

यहाँ 'कोकिल' बोल का बाची है ।

चिवुक रसाल कुञ्ज छवि पावैं गहवर कुञ्ज सु हियो कहावैं ॥१४॥

'रसाल कुञ्ज' श्रीप्रिया जी की चिवुक [ठोढ़ी] तथा 'गहवर कुञ्ज' प्रियाजी के हृदय की संज्ञा है । यथाः--

रसाल कुञ्ज=यथाः—

"श्रीवृन्दावन सुख पुञ्ज में मञ्जु कमल कल कुञ्जरसाल ।(उ. सु. होरी प.३२)

गहवर कुञ्ज=यथाः— "हितू सखी सँग लै चले लाल ।

गहवर-कुञ्ज-निकुञ्जते आगे जहाँ बोलति कोकिला रसाल ॥ (सु. सु.)

कम्बु कपोत कण्ठ गुन डोरी कदली पत्र पीठ रस बोरी ॥१५॥

श्रीप्रिया जी के कण्ठ की संज्ञा 'कम्बु' (शंख) तथा कपोत हैं । 'गुन' से डोरी तथा 'कदली पत्र' से रस निमग्न पीठ समझना चाहिये । यथाः—

"अंक माल दिये लाल दोऊ कहुँ चले चलत कहुँ ठमकत ठहरें ।
श्रीहरि प्रियामत्त गजवर ज्यौं राखे हैं बाँधि गुननि करि गहरें ॥" (उसु.चंदन यात्रा]

कम्बु कपोतः— कदली पत्र=यथाः—

मोल श्री शोभा लहि जानों । राय वेलि सोई रुचि मानों ॥१६॥

'मोल सिरी' से शोभा तथा 'राय वेलि' से रुचि समझना चाहिये ।

मोलसिरी=यथाः—

"मालति महकति मोगरे फूले फूल हिंडोरें ।
मोलसिरी चम्वेली सों झूलही फूले ।" (उ. सु. फूल डोल)

राय वेलि=यथाः--

"चम्पक मधु कुँद केतकी फूले राय वेलि चित चायकें ॥झू. [उ.सु. फू. डो.]

चारु पदाग्र चमेली कही जोहनि जुही मानिये सही ॥१७॥

प्रियाजी के सुन्दर चरणारविन्द के अग्रभाग को 'चमेली' की तथा परस्पर देखने की 'जुही' की संज्ञा दी गई है । यथाः—

चमेली=यथाः— "महि महि चारु चमेली चन्दन
चम्पक वकुल वर्न वर वेष ।" (म. वा. सि. सु)

जुही=यथा:— "मालति मिलि चलि मौगरे
जुही सेवती सदा सुहाय ।।" (म. वा उ. सु. होरी)

सदा सुहाग सेवती श्यामा । याही ते पियवासो नामा ।।१८।।

'सदासुहाग', 'सेवती' तथा 'पियवासा' से श्रीश्यामाजी अर्थात् प्रिया जी ग्रहण करें । यथा:—

"पियवासे अनुकूल वसन्ती। सदा सेवती सुमन सु देश ।।" (म. वा. सि. सु)

सदा सुहाग=यथा:—"मालति मिलि चली मौगरे
जुही सेवती सदा सुहाग ।" (म. वा. उ. सु. होरी)

आलिङ्गन चुम्बन जो वही । मल्लि मालती संज्ञा लही ।।१६।।

श्रीप्रिया प्रीतम के परस्पर आलिङ्गन चुम्बन को 'मल्लि' 'मालती' की संज्ञा दी गई है । यथा:— "मालती मिलि चली मौगरे,
जुही सेवती सदा सुहाग ।" (म. वा. उ. सु होरी)

यहाँ 'मल्लि' के स्थान में 'मौगरा' प्रयोग किया गया है ।

करना भरना अंक कहावै । उरज अग्रजम्बू मन भावै ।।२०।।

रसिक दम्पति के अंक को 'करना भरना' तथा बक्षोजों के अग्रभाग को 'जम्बू' की संज्ञा दी गई है ।

करना भरना=यथा:— वर करना सौं केतकी
विलसन्त फूल फाल कौ भाग । (उ. सु. होरी)

करना करना भरन में; फूले फूल हिडोरे । (उ. सु. डोल)

जम्बू=यथा:— "अम्ब कदम्ब जम्बु निम्बू श्री-
फल चल दल कदली कमनीय ।" (म. वा. सि. सु.)

पाडर परनि विनय जाचंज्ञा । पारिजात परिरम्भण संज्ञा ।।२१।।

विनय युक्त रति विलास याचना की "पाडर परनि' तथा परिरम्भण की "पारिजात" संज्ञा हैं ।

पाडर परनि=यथा:— 'पाडर परनि निवार नवेली
जुही जुहीसौं अति रति राच ।" [म. वा. सि. सु]

पारिजात=यथा:— "कुरवक कुब्ज केतकी केवड़
पारि जात रोचक रमनीय।" [म०वा०सि०सु०]

नाना वर्न उचारन जोई। कही निवारि नवेली सोई ॥२२॥

विविध प्रकार के शब्द उच्चारण को 'निवारि नवेली' को संज्ञा दी गई है। यथा:–
'पाडर परनि निवार नवेली, जुही जुही सौं अति रति राच।' [म०वा०सि०सु]

कोमल चित्त युगल को जो है। महा मृदुल रस महल सु सो है ॥२३॥

श्रीप्रिया प्रीतम के कोमल चित्तों को 'महामृदल रस महल' की संज्ञा दी गई है। यथा:—'महा मृदुल रस महल मधि सोहिलौ शरद निवास' [म०वा०उ०सु० सोहिलौ]

याचत में जो अति अभिलाष। सोई कहिये शरद् निवास ॥२४॥

रति विलास याचना में जो अत्यन्त अभिलाषा है उसी को 'शरद निवास' कहते हैं। यथा:— "महा मृदुल रस महल मधि
सोहिलौ शरद निवास।" [म०वा०उ०सु०सोहिलौ]

त्रिविधि पवन मन रमन महाई। सो समझौ श्वासा सुख दाई ॥२५॥

श्रीप्रिया प्रीतम के सुख दाई श्वासा को मन को रमाने वाली "त्रिविध–शीतल, मन्द सुगन्ध पवन" की संज्ञा दी गई है। यथा:—
'त्रिविधि पवन गवनें मन रमनें। शीतल मन्द सुगन्ध सुहाय।' (म०वा०सि०सु०]

अँग अँग उदय होय जो काम। रतन ज्योति ताही कौ नाम ॥२६॥

श्रीप्रिया प्रीतम के अंग अंग में जो काम उद्दीपन होता है उसकी 'रतन ज्योति' संज्ञा दी गई है। यथा:—

"सो हिलौ सुख जम्यौ जतनै रतन ज्योति जगाय।
नवल नेह निसंक पौढ़े अंक सौं अंक लगाय॥" [उ०सु० सोहिलौ]

निज तन सुभग रतन मनि कहिये। कमल निकुञ्ज कमल हू लहिये ॥२७॥
रति पति भवनहु कहिये जाही और भेद वहुँ भाति जु ताही ॥२८॥
महली जन मुख ते सुन पइये। सो सो सब हियरे धरि लइये ॥२९॥

श्रीप्रियाजी के निज सुभग तन को कहीं 'रतन मणि' कहीं 'कमल निकुञ्ज' कहीं 'कमल', तथा कहीं कहीं 'रति पति भवन' की संज्ञा दी गई है। इन संज्ञाओं के और भी

वहु प्रकार के भेद हैं महली जन अर्थात निकुञ्ज उपासीयों के मुख से जो जो भाव श्रवण किये जाँय साधकों को वे सब अपने अपने हृदय में धारण कर लेना चाहिये।

रतन मनि=यथा:—

"मृदु मनि मण्डित मन हरैं दिव्य अखण्डित सहज स्वरूप।
सुभग सिंहासन सोहनौ पद्म राग मनि झलक सुहाय ॥" (उ. सु. होरी)

कमल निकुञ्ज=यथा:—

"रस मय होरी खेलही जय जय नित्य विहारी लाल।
श्रीवृन्दावन सुख पुञ्ज में मंजुक मल कल कुञ्ज रसाल।" (उ. सु.)

कमल=यथा:—'कमल कमोद सुगन्ध मनोहर लेत हेत जग जोती जी' (उ. सु. कामन)

रति पति भवन=यथा:—

"रति पति भवन की अतिवनी सोहिल गैल।
परत पाम तहाँ प्रान प्रिय के गये गरव गुन फैल ॥" (उ०सु०सोहिलो)

मन केवर केसर रति रङ्ग। सुवर्न हू जो जहाँ प्रसङ्ग ॥३०॥

मन की संज्ञा 'केवड़ा' है तथा रतिरङ्ग की 'केशर' और 'सुवर्ण' हैं जहाँ जैसा प्रसङ्ग हो अर्थ कर लेवें।

केवर=यथा:—चंपक मधुक केवरा केतकि कदलि कदंवनि अंब अनार। (सु०सु०)

केशर=यथा:— "कल केशर के चहु वचे
कर कर भर पिचकार।" (म०वा०उ०सु होरी)

विविध वृक्ष अँग अंग कहावैं। छवि की लता लपटि छवि पावैं ॥३१॥
और तरु लता अमित अपार अँग सङ्ग में सब कौ अधिकार ॥३२॥

श्रीलाल जी के अङ्ग प्रति अङ्गो को उन "विविध वृक्षों" की संज्ञा दी गई है जिन पर प्रिया जी की छवि रूपी लता लिपट कर सुशोभित हैं। और भी अमित अपार तरु लता हैं, उन सबको भी प्रिया प्रीतम के अङ्ग सङ्गमें अधिकार दिया गया है। यथा:-

"सोहिलो ललित लता लपटि रही रुमि झूमि तमाल।
पत्र पल्लव फूल फल फवि रहे रूप रसाल ॥" [म०वा० उ०सु०]
"चम्पक मधु कुन्द केतकी, कोमल कुवलय कदली कदम्ब।"

"ललित लता कुल संकुला,
लपटि लपटि रहि रस अवलम्ब।" (म०वा०उ०सु० होरी)

मर्कत मनि कञ्चन घन दामिनि। सो पिय प्यारी तन संज्ञा गनि ॥३३॥
तथा तमाल कनक की वेली रति अनङ्ग रस रङ्ग सहेली ॥३४॥

श्रीप्रिया प्रीतम के दिव्य मङ्गल विग्रहों की संज्ञा कहीं "मर्कत कञ्चन मनि से कहीं 'घन दामिनी' से कहीं "तमाल कनक की वेली" से कहीं "रति अनङ्ग" से और कहीं "रस रङ्ग सहेली' से दी गई है।

मर्कत मनि कञ्चन=यथाः—

"कमल कमल एकत करवावें। मर्कत मनि कंचन खचवावें॥" (उ०सु०४९)फूल डोल

घन दामिनि=यथाः—

"अम्बर में घन दामिनी वर्षत रस आनन्द अह्लाद।" [म०बा०उ०सु०होरी]

तमाल कनक की वेली—यथाः—

"प्यारी जू कञ्चन की लता, अरु प्रीतम श्याम तमाला जू।"

रस रङ्ग=यथा—"अङ्ग अङ्ग रस रङ्ग पर कोटि काम वलिहार।" [उ०सु०वर्षा]

रति अनङ्ग=यथाः—"काम रूप रतिधाम रङ्गीले।
राजत अति अभिराम नवीने॥" [उ०सु०ब्याहिलो १७६ पद]

आँनद आह्लादिनि पिय प्यारी। सुरति सोई सुन्दर सहचारी ॥३५॥

श्रीप्रिया प्रीतम को 'आँनद आह्लादिनि' की और 'सखियों' को "सुरति केलि" की संज्ञा दी गई है।

आँनन्द आह्लादिनि=यथाः—

"अम्बर में घन दामिनी वर्षत रस आँनद अहलाद।" [म. वा. उ. सु होरी]

सुरति=यथाः—

"श्यामल घन सँग दामिनी विहरत सुरति समाज॥
कैसी मन की मोहनी बनी विहारिनि आज॥" [उ. सु. वर्षाऋतु]

सुभग भूमि मग में अनुसरहीं तिहिं अङ्ग की पग संज्ञा धरहीं ॥३६॥

श्रीप्रिया जी के पग की संज्ञा "सुभग भूमि" है जिसे लालजी अनुसरण कर रहे

हैं। यथाः- "सोहिलो सुख सुभग भूपर
रमि रसिक शिर मौर ॥" [म०वा०उ०सु० सोहिलौ]

निकट नितम्बनि के निज डोरि। कहिये ताहि साँकरी खोरि ॥३७॥

श्रीप्रिया जी के कटि पश्चात भाग अर्थात नितम्बों की निज डोरि को 'साँकरी खोरि' की संज्ञा दी गई है। यथा:—

"सोहिलो रङ्ग भरी रसीली सुखद साँकरि खोरि" (म. वा. उ. सु. सोहिलो)

ठौर ठौर निर्मल जल आशै सो अँग अँग प्रति पानिप भासै ॥३८॥

श्रीप्रिया जू के अङ्ग प्रति अङ्गों की कान्ति को "ठौर ठौर निर्मल जल आशै" की संज्ञा दी गई है। यथा:—

"ठौर ठौर निर्मल जल आशै मध्य कमल फूले बहु रङ्ग" (म०वा०सि०सु०

सुख हो करि पावत रस रेलो। ताहि सोहिलौ कहत सहेली ॥३९॥

श्रीलाल ललना को सुखी करके जो सहेलियों को रस रेली प्राप्ति होती है उसी को संज्ञा 'सोहिलो' है। यथा:—

विविधि कुञ्ज वृन्दाविपिन विलस मनोरम केलि।
सुनहु सहेली सोहिलो सब सुख आज सहेलि' इत्यादि (म.वा.उ. सु. सोहिलौ)

जा मधि सौरभ सकल लसन्त। ताकी संज्ञा कही बसन्त ॥४०॥

जिस विहार में सब प्रकार के विलासों की सौरभ उठ रही है उसको "वसन्त" की संज्ञा दी गई है। यथा:—

सुरति रङ्ग न्हानादि लै अरु आरति प्रयंत भली भाँति पूज्यो मृगज नैनि मनोहर कंत आज भली भाँति पूज्यो वसन्त।" इत्यादि

पुनः यथा:—

'रसिक रसिकनी सेजपर विविध हेज विलसन्त।
फल फलादि सौरभ सने विवि तन बने बसन्त" (म.वा.उत्सव-सुख)

यौवन मौर वेग जव नाम। ऋतु वसन्त विलसैं वर वाम ॥४१॥

श्रीप्रिया जी ऋतु वसन्त को यौवन के वेग से विलसती हैं। यहाँ यौवन को 'मौर' और वेग को 'यव' की संज्ञा दी गई है। यथा:—

'रति रङ्ग रङ्गीली कनक थारि मधि सरस नूत मौर जब संवारि ।'

(म०वा०उ०सु० वसन्त)

साखि जवादि कुमकुमा जोई तत्सुख सुख सुरङ्ग सुनि सोई ।।४२।।

प्रिया प्रीतम को रति सुख में सुखी देख कर जो सुरङ्ग सुख सखियों को प्राप्त होता है । उसी को 'साखि जवादि कुमकुमा' कहते हैं । यथाः–

'फूली फूली लै लै सरस डार;
अम्ब मौर हरित जब नव सँवार' (म०वा०उ०सु० वसन्त)

घन विहार सोई घन सार । जिहिं सुख माँचै मार अपार ।।४३।।

जिस घन विहार अर्थात काम युद्ध में सुख मयी अपार मार मचती है उसको 'घनसार' कहते हैं । यथाः—

'कृष्नागर मलिया गिरी घोर घोर घन सार' (म०वा०उ०सु० होरी)

मदन रङ्ग मद मृगमद जो है । यख कर्दम सौभग रस सोहै ।।४४।।

मदन रङ्ग मद को 'मृग मद' की और सौभग रस को 'यख कर्दम' की संज्ञा दी गई है । यथाः–यख कर्दम—

"अति रति वरषा वरसहीं पूषन पूषन वंध ।
चोवा चंदन कुमकुमा जखि कर्दम सौगन्ध ।।" (उ. सु)

मृगमद= "घसि घसि अङ्ग लगावहीं री मृग मद मलय कपूर ।
परसत हीं पावत सुख तन मन मगन प्रेम के पूर ।। [उ. सु. सहेली]

अतर अरगजा और अगर सत । उमँग उलास अनँग रँग वर्षत ।।४५।।

उमंग, उल्लास तथा अनंग रङ्ग वर्षन को क्रमशः 'अतर', 'अरगजा,' और 'अगर सत्' की संज्ञा दी गई है । यथाः—

अतर=यथाः—हो हो हो कहि लटक चालसौं लाल गहे पग आछें हो ।
भिरि भामिन छिरकति छवि सौं गन्धिक अतर अमोले हो ।। [उ.सु.होरी]

अरचे अतर अमोल सों सगवगे सङ्ग सुरङ्ग [उ. सु]

अरगजा=यथाः—"सरस सुगंधनि अगरगजा उमँगि उमँगि अंग दिये लगाय"

[उ० सु० हो० पद ३२]

अगर सत=यथाः—"नव कुमकुम करपूर अगरसत
भरि पिचकारि परस्पर छोरी।"　　　　　　[उ. सु. हो.]

कुटिल कटाक्ष छुटत पिचकारी भरी रहसि रङ्गन सों भारी ॥४६॥

रहसि केलि रूपी रङ्ग से भरी हुई कुटिल कटाक्षों को 'छुटत पिचकारी' की संज्ञा दी गई है।

यथा— प्यारी पिय पर छोरी। रोम रोम रमि रह्यौ रङ्ग
आनन्द उमङ्गन कोरी॥ (उ. सु. हो. १५ पद)

विविध भाँति के बाजे बाजैं। सोई अँग अँग भूषन सुर साजैं ॥४७॥

सुरति केलि में अङ्ग अङ्गों के भूषणों से उत्थित स्वरों को 'विविध भाँति के बाजे बाजैं' की संज्ञा दी गई है। यथाः—

"विविध भाँति वाजनि की वनी सुनि सुनि श्रवननि सजनी।
रुचि तरङ्ग वाढ़ी अति गाढ़ी अङ्ग उतङ्ग उरझनी हो॥ (सु. सु. होरी)

लसनि हँसनि में द्विज द्युति जोई अवीर गुलाल कही है सोई ॥४८॥

प्रिय प्रीतम के हँसने में दो प्रकार दन्तावलि से शुभ्र तथा अधरों से रक्त वर्ण की कान्तियाँ छिटकती हैं। इन्हीं को 'अवीर गुलाल' कहा गया है। यथाः—

'मुस्कनि हँसनि अवीर गुलालनि मार मची दुहुँ ओरी॥' (उ. सु. हो. १५ पद)

अति चित चाब सोई चोवा सुनि। सुख सङ्गम सौंधों गुनिये पुनि ॥४९॥

लाल ललना के चित्त के अति चाव को 'चोवा' और सुख सङ्गम को 'सौंधों' कहते हैं। यथाः—

चोवा=यथाः—'चरचित चोवा चोप चायके चंद मुखी चटकीली हो' (उ. सु.)
सौंधों=यथाः—'सुख सौंधे सानत मन मानत मान मती मटकीली हो।' (उ. सु.)

कर पद बर अंशन पर ढाल। सोई कहो कमल की माल ॥५०॥

श्रीस्वामिनी जी के कर कमलों या चरण कमलों को श्रीलाल जू के अंशन पर ढाल देना ही 'कमल की माल' कहलाती है। यथाः—

'कमल की माल वनावोरी लाल के गर लहकाओ री।' (म. वा. उ. सु.)

बीरी कल कपोल रस चाखें। ताही की यह संज्ञा भाखें ॥५१॥

प्रिया प्रीतम के परस्पर कल कपोल रस चखने को 'बीरी' संज्ञा दी गई है।

यथा:— 'मुख बीरी दीनी कल कपोल' (उ. सु. वसन्त)

अधर राग वन्दन छवि पावै। सुमन सनेह फुलेल कहावै ॥५२॥

अधरों की लाली को 'वन्दन' की और सुमन सनेह को 'फुलेल' की संज्ञा दी गई है। यथा:—वन्दन=रङ्ग रङ्ग अवीर गुलालैं उड़ावैं रङ्गीली रङ्गभरी।
वूका वन्दन चन्दन घालैं रङ्गीली रङ्गभरी ॥[उ. सु. प. २६]

फुलेल=यथा:–'सी सी सुभग फुलेल की ढव सौं दई ढरकाय।
एक वरन भये भरत में तन न पिछाने जाँय।' (उ. सु.)

रोरी तिलक अछत मुक्तन के। जानि सु लगनि मनोरथ मन के ॥५३॥

श्रीलाल जी के मन के मनोरथों का भली प्रकार पूर्ण होने को ही 'रोरी तिलक अछत मुत्तन के' की संज्ञा दी गई है। यथा:–

कमल की माल बनावो री लाल के गर लहकाओ री।
रोरी कौ तिलक रचाओ री मोतिन के अछत लगाओ री।

यहाँ स्वामिनी जू को लालजू के अंक में विराजमान कराकर श्रीलालजू की अभिलाषाओं को पूर्ण कर दिया है। इसीलिये दूसरी तुक में 'रोरी कौ तिलक' तथा 'मोतिन के अछत' का वर्णन है।

भाल कह्यौ तन लाल बाल कौ सब सुख दायक सखिन जाल कौ ॥५४॥

श्रीलाल जी अथवा श्रीप्रिया जी के किसी अङ्ग विशेष की संज्ञा 'भाल' है।

यथा—— 'दृष्टि-रस-वृष्टि करि पुष्ट अँग सकल सुष्ट।
सन्तुष्ट पद परसि निज भाल के ॥" (सु. सु. ४)

'प्यारी जू परम प्रवीन मन भायो सब कौन री रङ्ग होरी।
विविधि अवीर गुलाल चित्रित कीनौ भाल री रङ्ग होरी' ॥ (उ. सु. हो. १६)

सुखदासन यौं कहिये वेदी। जानत है जिय में जो भेदी ॥५५॥

सुखदासन की संज्ञा 'वेदी' है। जो रसिक जन श्रीप्रिया प्रीतम की रहस्य लीलाओं के भेदी हैं वास्तव में वही जान सकते हैं। यथा:—

"सुख वेदी सौरभा सँवारी ।
विविध भाँति रचना रचि भारी ।" (म. वा. उ. सु. व्याहुलौ)

पुनः यथाः—"वेदी में सुख विलसाओ री ।" (उ. सु.)

खेलत में चञ्चलता जोई । चाचरि नाम कहावै सोई ॥५६॥

सुरति क्रीड़ा में चञ्चलता की संज्ञा 'चाचर' है । यथाः—

'या मतवारे मीत सौं मिलि चाचर खेलौरी ।"

पुनः यथाः—मच्यौ चाचर खेल सुहायौ खिलारिनि रङ्ग भरी ॥ (उ०सु० होरी)

झूमि झूमि अलि झूँम करावैं सोई झूमक नाम कहावैं ॥५७॥

झूमझूमाती सखियां श्रीप्रिया प्रीतम को झूम झुमाकर सुरत क्रीड़ा कराती हैं उसी को 'झूमका' कहते हैं । यथाः—

'इहि भाँतिन झूम झुमाय सु झूमक रङ्गभरी । (उ. सु. होरी)

रहसि रङ्ग रति रस में सानें । सोई कहिये वसन सहानें ॥५८॥

रहसि रङ्ग और रति रस सने हुए प्रिया प्रीतम को संज्ञा 'वसन सहानें' से दी गई है । यथाः—

"रूप सरोवर में सपराऊँ कञ्चन वरन बनाऊँ जू ।
सब रस सुखद वसन पहिरांऊ हित अँग राग लगाऊँजू ॥" (उ. सु. कामन)

अङ्ग अङ्ग प्रति सीमा सोई । थल अरु विथल जानिये जोई ॥५९॥

अङ्ग और प्रति अङ्ग सीमा को 'थल अरु विथल' कहते हैं । यथाः—

"फल कल घल दल थल विथलन में श्रीहरि प्रिया संचारे री ॥" (से. सु.)

पुनः यथाः—"अम्बर में घनदामिनि वर्षत रस आनन्द अह्लाद ।
थल अरु विथल भरे सवै एकमेक करें तजि मरजाद ॥" (उ.सु.होरी)

पग रोपन सोई वंश वसन पन । जीति निशान वजैवो जय रन ॥६०॥

पग रोपन को 'वंश वसन पन' और सुरति केलि रन में विजय प्राप्त करने को 'जीति निशान वजैवौ' कहते हैं । यथाः—

"एक वंश के बसन बँधावो अति० दोऊ दल बीच रुपावो
करि करि उठावनी धावो अति० जाहि जीति निसान बजावो ॥"(उ० सु० चाँचरि)

रङ्ग भरे मुख सों अङ्ग चूँमै । बूकावर्न कह्यौ है जू मैं ॥६१॥

सुरति क्रीड़ा में अनुराग से भरे हुए मुख से अङ्ग चूमने की संज्ञा 'बूकावर्न' कही गई है । यथा:—

'रंग रंग अबीर गुलालैं उड़ावै रंगीली रंग भरी ।
बूकाबन्दन चन्दन घालैं रंगीली रंग भरी ॥ (उ. सु. पद २६)

सम्बोधन दै वर्नत जोरी । जाको संज्ञा कहियत होरी ॥६२॥

सखियाँ श्रीप्रिया प्रीतम की जोड़ी को होरी यह सम्बोधन देकर वर्णन करती हैं । इसलिये इसको 'होरी' कहते हैं । यथा:—

'होरी सहज साँवरी गोरो सोहै जोरी परम उदार होरी ।' (उ.सु.होरी)

फूलि फूलि मिलि विहरैं जोर । जाहि कहत हैं फूल हिंडोर ॥६३॥

श्रीलाल ललना फूल फूल कर अति रति विहार करते हैं उसी की संज्ञा 'फूल हिंडोर' है । यथा:—

'झूमि झूमि दोउ झूलहीं फूले फूल हिडोरे' (उ. सु.)
जिहिं सुख तें शीतलता लहैं । चंदन श्रृंगारहि तिहि कहैं ॥६४॥

रति विलास रूपी सुख से श्रीप्रिया प्रीतम को शीतलता प्राप्त होती है । इसलिये इसकी संज्ञा 'चन्दन श्रृंगार' दी गई है । यथा:—

'कुँजविहारिनि कुँज विहारो बनि वैठे चंदन चित्र सारी ।
चंदन अँग सिंगार किये हिये चंदन सम सीतल सुखकारी ।''

पुनः यथा:—

'चित्रित चित्र विचित्र रदन रस मदन कोटि मन को मोहै ।
तन मन सकल भये सोतल तउ कल नहिं परत है परत विछोहै ॥' (उ.सु.चंदन सिंगार)

सुरत समुद्र न्हवावत जोई । जल विहार कहवावति सोई ॥६५॥

श्रीप्रिया प्रीतम के सुरत रूपी समुद्र में निमग्न होने को 'जल विहार' की संज्ञा दी गई है । यथा:—

'केलि-सरूप-सरोवर में कंत कामिनी जोर ।
वन विहार मिलि जूझहीं नहिं सूझहिं निसि भोर ॥' (उ० सु० जलविहार)

मञ्जु मनोरथ में पधरावैं सो रथ आरोहन जु कहावैं ।।६६।।

श्रीप्रिया प्रीतम को सुन्दर मन्मथ रूपी रथ में पधराने को 'रथ आरोहन' की संज्ञा दी गई है । यथाः—

'देखहु री देखहु छविसों दोउ मन्मथ–रथ आरोहन किये' (उ०सु०रथारोहन)

बहु रस वर्षै लहरि लड़ावैं । सो वर्षा ऋतु नाम कहावैं ।।६७।।

जिस सुरति केलि में बहुत प्रकार के रसों की वर्षा की लहरों द्वारा सखियाँ आपको लड़ाती हैं । उसकी संज्ञा 'वर्षाऋतु' दी गई है ।

"चहल पहल भई महल में भई अहल तरसाय ।
अद्भुत वरसा वरसहीं घन दामिनि हरसाय ।।
आज बन अद्भुत वरसा बरसी ।
सजल श्याम घन सङ्ग सौ दामिनि वरभामिनि हिय हरषी ।।"

इत्यादि । (उ० सु० वर्षाऋतु)

फूल गुलाबी जो यह कह्यौ । सो समझौ प्रियतम डहडह्यौ ।।६८।।

श्रीलाल जी को ही 'डहडह्यौ फूल गुलाब' कहकर वर्णन किया गया है । यथाः–

"सखि ! डहडह्यौ फूल गुलाब कौ सखि ! सुरङ्ग रङ्ग झूमि ।" (उ.स.लूहरि)

मिलि सब तीय युगल सन्मानैं । सोई पहलो तीज बखानैं ।।६९।।

सब सखियाँ रसिक दम्पति का मिलकर सन्मान करती हैं । उसी को 'पहली तीज' कहते हैं । यथाः—

"सहज सुहावनौ दिन आज ।
मास सावन सुख-वढावन पुरवनौ मन-काज ।
कुञ्ज कुञ्जनते चली मिलि सहचरो सजि गोल ।
मनहु आई अरसितै ये उतरि पुतरिन टोल ।।
प्रमुदि पद वंदन कियो कल कह्यो वचन सुभाषि ।
आई वलि या तीज के त्योहार कौ अभिलाषि ।।" (उ. सु. पहली तीज)

चरन खम्भ डाँडी कर चार । सुरत रंग हिंडोर विहार ।।७०।।

प्रियाजी के चरण कमलों को 'खम्भों' की'हस्त कमलों को 'डाँडी' की और सुरति रङ्ग को 'हिंडोर विहार' की संज्ञा दी गई है । यथा—

"खम्भ अनूपम स्वरन के डाँडी चारु सुढार।
झूलत रङ्ग हिण्डोरना प्रीतम परम उदार ॥" (उ. सु. हिंडोरना)

सावन श्रावन शुक्ल सुहावन। एकादशी कही सो पावन ॥७१॥

जिहि सुख में वहु गुन विस्तार पिय प्यारी करि राखैं हार ॥७२॥

श्रावण शुक्ल पक्ष की सुहावन एकादशी को श्रीलालजूने प्रियाजी को अपने गले का हार बना रखा है इसीलिये इसको पवित्रा अर्थात पावन कहते हैं क्योंकि इस सुख में बहुत गुनों का विस्तार है। यथाः—

"चित्र मई–सी ह्वै गई महा मनोभव वाम।
अद्भुत पहिरन पेखि के गौर पवित्रा स्याम ॥
गौर पवित्रा पहिरे स्याम।
सोभा देखि छकी रति सजनी विसरि गई पति काम ॥
करत मनहिं मन महा मगन ह्वै यह जु दाम किधौं वाम ॥

इत्यादि (उ० सु० पवित्रा एकादशी)

रँगच्यौ महारस में है जोई। कह्यौ पवित्रा पचरँग सोई ॥७३॥

फौंदा जरी कह्यौ है चोज। जा करि ओपैं उर अम्भोज ॥७४॥

श्रीलाल जी सुरति सम्बन्धी महारस में रङ्गे हुए हैं इसलिये उनको 'पचरङ्ग पवित्रा" की संज्ञा दी है। उनको जरी का फौंदा कहने में यह चोज है कि जब आप प्रिया जी के उर अम्भोज में लगते हैं तब आपको अत्यन्त शोभा होती है। यथाः—

"पवित्रा पहिरैं प्रीतम प्यारी।
पच रङ्ग पाट जरी वर फौंदा सोभा वढ़िय महा री ॥" (उ. सु.)

उपरोक्त पद में प्रीतम प्यारो का अर्थ लालजू की प्यारी अर्थात स्वामिनी जी करना चाहिये।

रति बिहार राखैं विरमाय। सोई राखी नाम कहाय ॥७५॥

रति विहार को विरमाने की संज्ञा को 'राखी' कहते हैं। यथाः—

"रतन सुन्दरी जतन रचि अतन रहस्य रमाय।
राखी रङ्गीली छवि निरखि पल पल लेति बलाय ॥" (उ०सु०राखी)

तिहि सुख की पुरवैं मन काम। सोई सलूना पूनों नाम ॥७६॥

प्रिया प्रीतम की मन की सब अभिलाषाएँ इस सुख में पूर्ण होती हैं इसीलिये इसको 'सलूनों पूनों' कहते हैं। यथाः—

"सावन शुक्ल सलून्यौं पूनौं।
रक्षा बन्धन करति सहचरी धरति हिये छवि दून्यों।
कर पकराय सुरङ्गित श्रीफल पढ़त मन्त्र तजि मून्यौं।।
देत असीस सदा सुख विलसौ श्रीहरि प्रिया सलून्यौ।।" (म०वा० सलून्यौ)
बिन क्रीड़ा क्रीड़ावें तीजें। तीज पाछिली सो सुनि लीजें।।७७।।

सखियाँ जिस समय लज्जा का परित्याग करके प्रिया प्रीतम को सुरति केलि में क्रीड़ा कराती हैं उसकी संज्ञा 'पाछिली तीज' है। यथाः—

पुलक दोऊ अँग अङ्ग में नव जोवन समतूल।
तीज हिण्डोरे झूलहों कालिन्दी के कूल।।
तीज हिंण्डोरे झूलत फूले नव जोवन समतूले।
पुलक परस्पर दोउ सुन्दर वर गहि डाँडी भुज भूले।।
उदित अनङ्ग अङ्ग अङ्गनि में खग मृग सब सुधि भूले।
श्रीहरिप्रिया प्रसन्न वदन क्रीड़त कालिन्दी कूले।। (उ०सु० मलार)
मिलि सब सखी जनन गुन गावैं। रिझि रिझि रीझ परस्पर पावैं।।७८।।
विपुल पुलक अँग अङ्गन माई तिहि कहियत है रहसि बधाई।।७९।।

जिस क्रीड़ा में सब सखी प्रिया प्रीतम के जस का गान करके परस्पर रीझतीं रिझाती हैं उनके अङ्ग प्रति अङ्गों में विपुल पुलकावलि प्रकट हो जाती है। उसी को 'रहसि बधाई' कहते हैं। यथाः—

"प्रान वारि वलिहारि लै सुधि सकल विसारि।
वदन सुधानिधि निरखि के फूली तन सहचारि।।
सहचरि फूली अङ्ग न समाई
वदन–सुधानिधि निरखि स्याम कौ सब मिलि मोद बढ़ाई।।
वारत प्रान लेत वलिहारी तन मन सुधि विसराई।।" (उ०सु०म.१११)
घुरि घुरि अनङ्ग रङ्ग वर्षावें। वर्ष गाँठि सोई दर्शावें।।८०।।

सखियाँ उमँग उमँग कर रसिक दम्पति को सुरति केलि में प्रवृत्त कराती हैं। उसी को 'वर्ष गाँठ' कहते हैं। यथाः—

'बरसगाँठ' मोहन की सब मिलि मङ्गल गावौ" इत्यादि। (उ०स०)

भर वर्षै सरसै सब मही। भादौं कृष्ण रोहिनी कही ॥८१॥
वढ़ि वढ़ि बीच विवशता पावैं। सोई अर्द्ध निशा जु कहावैं ॥८२॥

सुरति केलि रूपी अत्यन्त वर्षा से सब मही अर्थात् वृन्दावन की सब सम्पत्ति सरसता को प्राप्त होती है उसे "भादौं कृष्ण रोहिनी" की संज्ञा दी गई है। सुरति केलि के बीच बीच में रसिक दम्पति विवशता को प्राप्त होते हैं उसी को 'अर्ध निशा' कहते हैं।

यथाः— "भादौं-कृष्ण-रोहिनी आठे, अर्द्ध निशा जब आई॥" (उ. सु.)

ताहू में जो अति रति भासै। सो शुक्ला अरुनोदय आसै ॥८३॥

सुरति केलि में अति रति भास ने की 'शुक्ल अरुनोदय' संज्ञा है। यथाः—

"भादौं शुक्ला अष्टमि आई अरुनोदय विरियाँ सुख दाई।
सब रस दै राखत पिय मान। तासों कहियत है रस दान ॥८४॥

श्रीस्वामिनी जी श्रीलालजू को सब रस देकर उनका मान रखती हैं उसी की संज्ञा 'रस दान' है। यथाः—

"जदपि सकल सिरमौर तौऊं तेरिय आस निदान।
अहो ! प्रिया प्रतिपाल दै अधर सुधा रस दान॥"
सुनि सहचरि के बचन पुनि देखि लाल कौ हाल।
करुणा भरी कृशोदरी ढरी वाल तत्काल॥
पिय लियो है लगाय उरोज प्रिया; अम्भोज मिलाय अम्भोज प्रिया।
(उ०सु० रसदान) ११६

कुसुम निकर करि क्रीड़त साँझ। सो साँझी समझौ मन माँझ ॥८५॥

प्रिया प्रीतम सुरति केलि सम्बन्धी सुमनों को परस्पर चुन चुन कर सन्ध्या समय जो क्रीड़ा करते हैं उसको 'साँझी' की संज्ञा दी गई है। यथाः—

"चित्र विचित्र बनाय कें चुनि चुनि फूले फूल।
साँझी खेलें दोऊ मिलि नव जोवन समतूल॥ (उ. सु. सांझी)

कन्दर्प कोटि विजय विवि करहीं। दशमी विजय ताहि उच्चरहीं ॥८६॥

श्रीप्रिया प्रीतम सुरति केलि रूपी युद्ध में करोड़ों कामदेवों को विजय करते हैं उसी की संज्ञा "विजय दशमी" है। यथाः—

"अँग सङ्गनि सँग लै सखी लेउ सवै सुख लूटि ।
आज विजय दसमी निसा विजय करौ जुग जूटि ॥" (उ. सु. विजय दशमी)

सुभग भूमि मण्डल पर वास । ताहि जु कहिये रति रस रास ॥८७॥

श्रीस्वामिनी जी के श्रीअङ्ग रूपी सुभग भूमि मण्डल पर जो रहस्य रास होता है उसी की संज्ञा 'रति रस रास" है । यथा:—

"देखौ देखौ री सखी चिदानन्द घन रूप ।
प्यारी राधे कौ वन्यौ वृन्दा विपिन अनूप ॥
प्यारी राधे को वृन्दावन देखौ री चिदानन्द घन ।
तैसिय सरद उजारी राका रुचिकारी
तैसोई त्रिविध वहै पवन सनन नभ ॥
कुंज कुंज द्रुम वेलि प्रफुल्लित
अलवेली झेली रस झूमि झूमि रहि रति रेली तन ॥
तहाँ श्रीहरिप्रिया हुलास भरे रच्यो रास रसिक
प्यारे लाल तत्ता थेई थेई उघटत न न न न न० (उ०सु०रास)

प्रथम समागम रङ्ग रमावैं सो विहार विधि व्याह कहावै ॥८८॥

श्रीप्रिया प्रीतम को प्रथम समागम के रङ्ग में रमाने को "विधि पूर्वक व्याह विहार" की संज्ञा दी गई है । यथा—

"व्याहि विराजे सेज पर श्रीहरि प्रिया लिये सङ्ग ।
हुलसि हुलसि हिये विलसहीं वाढचौ अति रति रङ्ग ॥
सेज पर वाढचौ अति रति रङ्ग ।
दूलह दुलहिनि अलक लड़ीले अलवेले अँग अङ्ग ॥
नित्य नवीन किसोर लाल दोऊ नित्य नवीन अभङ्ग ।
विलसत विविध विलास वितन के श्रीहरिप्रियाजू के सङ्ग ॥ (उ.सु. विवाह)

अमित कला विहरैं पिय प्यारी तासों कहिये निशा दिवारी ॥८९॥

पिय प्यारी के अमित कला विहार की संज्ञा को "निशा दिवारी" कहते हैं ।

यथा:— "आज दिवारी की निशा नीकी जगमग जोति ।
कोटि कोटि राकानि की देखि मन्द दुति होति ॥" (उ. सु. दिवारी)

क्रीड़ा करत सकुच जो होई। कही केलि की कूंदी सोई ॥९०॥

सुरति क्रीड़ा में सकुच को 'केलि की कूंदी' की संज्ञा दी गई है। यथाः—

"सब निसि विलसी हुलसि हिये, पेलि केलि की कूंदि।
सुखद सेज में सुन्दरी बरषि बितन वन बूंदि।।" (सु०सु० ६६)

शुभरव भैरव राग उचार दिवि गन्धा है देव गंधार ॥९१॥
रतनकला सो राम कली पुनि ललिता नना ललित रागनि गुनि ॥९२॥

भैरव राग को 'शुभरव' देव गन्धार को 'दिवि गन्धा रामकली को 'रतन कला' और ललित रागनी को 'ललितानना' की संज्ञा दी गई है।

विश्वाभा विभास कहिये कल। अरु विलास आवलि जु विलावल ॥९३॥
आनन्दा आसावरि जानहु। सुरँग अंग सारंगहि मानहु ॥९४॥
गौर मुखी गौरी कौ जान। केलि कौमुदी कहि कल्यान ॥९५॥
कर्न कान्तिका सो कानरौ और कहौं जो उर में धरौ ॥९६॥

विभास राग को 'विश्वाभा' विलावल को 'विलास आवलि' आसावरि को 'आनन्दा' सारग को 'सुरँग अङ्ग' गौरी को 'गौर मुखी' कल्याण को 'केलि कौमुदी' और कन्हरौ को 'कर्न कान्तिका' की संज्ञा दी गई है।

अलवेलि केलि अड़ानौं कहिये विचित्र शोभा विहागरौ लहिये ॥९७॥
कन्द्रप कामा कहि केदारौ खंज नाक्षि खम्भायचि धारौ ॥९८॥
सुष्टु सुन्दरी सोरठि सोई वैजयन्ति वसन्ति है जोई ॥९९॥
किशोर सुन्दरी काफी सोहै। धनि भागाजु धनासरि जोहै ॥१००॥

अड़ानौ को 'अलवेलि केलि', विहागरे को 'विचित्र शोभा' केदारे को 'कन्द्रप कामा' खम्भाच को 'खञ्जनाक्षि', सोरठ को 'सुष्टु सुन्दरी' वसन्त को 'वैजयन्ति', काफी को, किशोर सुन्दरि और धनाश्री को 'धनि भागा' की संज्ञायें दी गई हैं।

जयति शोभता जयति सिरी पुनि। आँनद सिन्धुनि आशा सिन्धुनि ॥१०१॥
चित्र मुखी सो गौरी चती। मुत्तमाल मलार समझंती ॥१०२॥
सुरँग माल सांरग मलार। लहरि माल हू यह उर धार ॥१०३॥

जयति श्री को 'जयति शोभना', आशासिन्धु को 'आनन्द सिन्धु' चैती गौरी को 'चित्र मुखी,' मलार को मुत्तमाल, सारग मलार को 'सुरँग माल' अथवा 'लहरि माल'

की संज्ञायें दी गईं है ।

माला लहरि सु लूहरि वाक अर्क विन्दु कहिये एराक ॥१०४॥
टहल तत्परा टोड़ी जानौं । मार मोहनी मारू मानौं ॥१०५॥
प्रनय प्रचुर पूरवि पहिचान । परम प्रवर परजहिं पुनि मान ॥१०६॥
तुँग विद्या के यूथ मझाँरी । ये सब अनुरागिनी उचारी ॥१०७॥

लूहरि को 'माला लहरि' ऐराक को 'अर्क बिन्दु' टोड़ी को 'टहल तत्परा', मारू को 'मार मोहनी' पूरवि को 'प्रनय प्रचुर' और परज को 'परम प्रवर' की संज्ञायें दी गईं हैं ।

उपरोक्त अनुरागनी तुङ्ग विद्या के यूथ में सखी स्वरूप से विद्यमान हैं ।

अरुन रङ्ग अनुरागहि जानौं । श्याम रङ्ग सिंगारहि मानौं ॥१०८॥
कह्यौ प्रेम कौ पीत जु रङ्गा । समझौ जैसौ जहाँ प्रसङ्गा ॥१०९॥

अनुराग का लाल, शृंगार का श्याम और प्रेम का पीत रङ्ग है । जहाँ जैसा प्रसंग हो उसके अनुसार अर्थ करें ।

और अनन्त भेद बहु भाव । जिनकौ जानौ कृपा उपाव ॥११०॥
श्रीहरिप्रिया रहसि रस गाथ जब पावै तब आवै हाथ ॥१११॥

बहुत से भाव जो उपरोक्त तालिका में वर्णित किये गये हैं इनसे अतिरिक्त और अनन्त भेद हैं । जिनको जानने के लिये एक मात्र प्रिया प्रीतम की कृपा ही उपाय है । साधक के हाथ श्री प्रिया प्रीतम की रहस्य रस गाथाएें तभी आ सकती है जब उनकी कृपा प्राप्त हो ।

॥ कुण्डलिया ॥

अवतारी अवतारमनि स्यामा-स्याम स्वरूप ।
जिनकौ यह सिद्धांत-सुख बरन्यौ परम अनूप ॥
बरन्यौ परम अनूप रसिक जन होय सु चित्तहि ।
सुनों गुनों अविरुद्ध बुद्धि संमत या बित्तहि ॥
निगमागम कौ सार तंत्र कौ मंत्र जु भारी ।
श्रीहरिप्रिया अनन्त सक्ति लीला अवतारी ॥

यह सिद्धान्त सुख जो अनूप प्रकार से वर्णन किया गया है उन श्यामा श्याम का

है जो स्वयं सब अवतारों के अवतारी तथा श्रेष्ठ अवतार स्वरूप हैं रसिक जनों को यह सिद्धान्त सुख रूपी वित्त अर्थात धन को शुद्ध चित्त से अपनी बुद्धि के अनुसार सुन गुन कर धारण करना चाहिये। अनन्त शक्ति वाले लीलावतारी श्रीप्रिया प्रीतम का यह सिद्धान्त सुख वेद शास्त्रों का सार स्वरूप तथा तन्त्रों का श्रेष्ठ मन्त्र स्वरूप है।

॥ दोहा ॥

इहि बिधि यह सिद्धांत सुख, महा अर्थ गंभीर।
कृपा करें तब ही लहैं, सुधा सरोवर सीर॥
द्वै श्लोक द्वै दोहरा, पद अठतीस अनूप।
आभासन जुत समझियौ, इक कुण्डलिया रूप॥
ता पीछें इक दोहरा, सब चालीसरु चार।
अब इनकी अनुरागनी, प्रति प्रति पदहि निहार॥

इस प्रकार इस 'सिद्धान्त सुख' का अर्थ अत्यन्त गम्भीर है। एक मात्र रसिक दम्पति की कृपा से ही साधक इस सुधा सरोवर के क्षीर अर्थात रस को प्राप्त कर सकता है। इस "सिद्धान्त सुख" में दो श्लोक, दो दोहा, अठतीस आभास दोहे युक्त अनूप पद तथा एक कुण्डली हैं। तत्पश्चात् एक दोहा है। ये सब मिलाकर चवालीस हैं। अब इन पदों की राग रागनियाँ निम्न प्रकार हैं।

॥ कवित्त-छप्पय ॥

सुभजुरवा में पाँच षष्ठ पद विश्वाभा में।
चारि विलासावली चारि हू आनन्दा में॥
सुरङ्ग अङ्ग में चारि चारि हूँ गौरमुखी चहि।
केलिकौमुदी तीन कर्नकांता द्वै पद कहि॥
द्वै बिचित्रसोभाहि में कंद्रपकामा दोय पद।
सुष्ट सुन्दरी दोय पद इहि बिधि यों अठतीस हद॥

पाँच पद 'शुभरवा—भैरवी में, छः पद 'विश्वाभा'—विभास में, चार पद विलासावली—विलावल में, चार पद आनन्दा—आशावरी में, चार पद सुरँग अँग—सारंग में चार पद गौर मुखी–गौरी में, तीन पद केलि कौमुदी—कल्याण में दो पद कर्न

कान्तिका—कान्हरे में दो पद विचित्र शोभा—विहागरे में दो पद कन्दर्प कामा-केदारे में और दो पद शुष्टु सुन्दरी—सोरठ में हैं।

इस प्रकार से इन सब पदों की संक्षा अठतीस है।

॥ दोहा ॥

एकादस अनुरागनि में ए पद अठतीस।
गावें जा ऊपर कृपा, करें जुगल जगदीस॥
सेवा अरु उत्साह-सुख, सुरत सहज सिद्धान्त।
वृन्दाबिपिन बिलास मय, लीला राधाकांत॥
महाबानी जानी जु यह, खरी खरग की धार।
जतन जतन सों राखियो, ज्यौं पावौ सुखसार॥
दुर्ल्लभ हूँ तें दुर्ल्लभ जु, सो सुर्ल्लभ भई तोहि।
हित चित हिय नहिं धरहि तौ, अहित इष्ट तें होहि॥
पंचरत्न ए दिवि महा, काढ़े सोधि पयोध।
जाकरि श्रीहरिप्रिया कौ, पावें पद अविरोध॥

इति श्रीपदविलासनिकुंजरहस्य श्रीमहादिव्य-महाराजेश्वरप्रवरपरमहंसवंशाचार्य श्रीमद्हरिव्यासदेव जू कृता महावाणी श्रीसिद्धांतसुख सम्पूर्णम्।

॥ श्रीहरिप्रियास्वामिन्यै नमो नमः॥

उपरोक्त अठतीस पद ग्यारह प्रकार की राग रागनियों में वर्णित हैं। जिन पर प्रिया प्रीतम को कृपा होती है वही साधक इनको गाते हैं। (१)

इस ग्रन्थ में श्रीराधा कान्त की वृन्दावन विलास लीलायें सेवा, उत्साह, सुरत, सहज तथा सिद्धान्त सुखों में वर्णित की गई हैं। (२)

श्रीग्रन्थकार साधक को सचेत कराते हुए कहते हैं। यह श्रीमहाबाणी ग्रन्थ खरी खड्ग की धार समान है। इसका अध्ययन अध्यापन यत्न पूर्वक करना चाहिये जिससे सुखसार प्राप्त हो सके। (३)

प्रिया प्रीतम की सुरति केलि आदि अत्यन्त दुर्ल्लभ से दुर्ल्लभ रहस्य लीलायें भी

तुझको सुलभ हो गई हैं। यदि तेरा युगल चरणार विंद में हित अर्थात प्रेम नहीं है और तू इन लीलाओं का लौकिक दृष्टि से अनुशीलन करता है तो तेरा हित होना तो दूर रहा बल्कि तेरा अहित होगा और तू इष्ट प्राप्ति से च्युत हो जायगा। (४)

वेद शास्त्र रूपी समुद्र का मन्थन करके सेवा, उत्साह, सुरति, सहज तथा सिद्धान्त सुख रूपी ये पांच महा दिव्य रत्न प्रकट किये हैं। इनके अनुशीलन करने से प्रिया प्रीतम के चरणार विन्दों को साधक सहज ही बिना किसी विरोध के प्राप्त कर सकेगा।

इति श्रीपद विलास निकुञ्ज रहस्य श्रीमहादिव्य महाराजराजेश्वर प्रवर परमहंस-
वंशाचार्य श्रीमद् हरिव्यास देव जू कृत श्रीमहावाणी
पञ्चरत्न सम्पूर्णम् ॥



